साप्ताहिक सत्संग में सुनाएं

वेद विषयक चर्चा

(सत्यार्थप्रकाश पाठ संख्या २४)

ले०—श्रीसुरेशचन्द्र वेदालंकार एम. ए. एल. टी. डी. वी. कालेज गोरखपुर

वेदों के विषय में हम अपने पिछले लेखों मे बता चुके हैं कि वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं और भारतीय संस्कृति के मूलाधार वेद हैं। यदि हम संसार की उत्तम पुस्तकों और संस्कृतियों का अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होगा कि वेद एक ऐसा भंडार है जिसमें किसी चीज की कमी नहीं। कमी है उस चीज का ग्रहण करने वाले की। एक एक मंत्र को लेकर ऐसी व्याख्यायें की जा सकती हैं जिनको देखकर बड़े बड़े सिद्धान्तों के अन्वेषक विद्वान दांतों तले अंगुली दबाते रह जाय। गीता के सैकड़ों संस्करण निकल चुके हैं, अनेक भाषाओं में इसकी व्याख्या अनुवाद और इस पर टिप्पणियां प्रकाशित की जा चुकी हैं, इस गीता ने अनेक मनुष्यों को मनुष्यत्व से उठाकर देवत्व की कोटी में ला बैठाया है, पर क्या कभी आप ने सोचा है कि गीता का आधार क्या है? यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के प्रथम दो हैं। मंत्र गीता के आधार हैं। इसीलिए तो किसी ने कहा है "वेद ईश्वर की विमल वाणी है और विश्व के उद्धार के लिए ही उसका अवतरण हुआ है। वैदिक वाङ्मय पारिजात से भी अधिक सुगन्धमय और स्फटिक मणि से भी अधिक शुभ्र है। वेद के किसी मंत्र में कुरुक्षेत्र का भैरव रव है, किसी में वीरों की भयकर हुंकार है किसी में रणचण्डी का प्रचण्ड अट्टहास है, किसी में समरभूमि का विकट झणत्कार है, किसी में लक्ष्मी (धन दौलत) का मधुर हास्य है, किसी में वृन्दावन का प्रेम प्रवाह है किसी मे दिव्य शारदा का नवल नृत्य है और किसी में महा रुद्र का ललित विलास है। श्रुति भगवती जिसे छू देती है वह अमृत से भी अधिक मधुर बन जाता है जिसे देख देती है वह चन्द्रिका से भी अधिक निर्मल हो जाता है और जिसके ऊपर पैर रख देती है वह पद्मनाभ मणि से भी अधिक मूल्यवान् हो जाता है'।

तभी तो स्वामी जी महाराज ने वेदों को सब सत्य विद्याओं की पुस्तक माना है और वेद का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना सब आर्यों का परमधर्म भी बतलाया है।

वेद के विषय में एक विद्वान का कथन है "वेद सम्पूर्ण आर्य वाङ्मय का स्रोत है। वह भक्ति रस की मन्दाकिनी और उच्च गंभीर विचारों का आवास है। वेद में ओज, तेज और वर्चस्व की राशि है। वेद ब्रह्मगवि का गान और ब्राह्मण के विहाग है। वेद मदिरा-दग्ध तन को पावन करने वाले उदात्त उपदेश हैं। वेद में मानवता के विद्रोहियों में हड़कम्प मचाने वाले अनुपम आदेश हैं। वेद अत्याचारियों अनाचारियों को ध्वस्त विध्वंस करने वाला रणोन्मादी आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। वेद मानव के समस्त उच्च गुणों की क्रीड़ा स्थली है। वेद में आधिभौतिक उन्नति की चरम सीमा है, आधिदैविक अभ्युदय की पराकाष्ठा है और आध्यात्मिक उन्नति का चूडान्त रूप है।"

अत वेद का पढ़ना प्रत्येक आर्य का परम कर्तव्य होना चाहिए। मनु महाराज ने वेदों की महत्ता को ध्यान में रखते हुए लिखा है कि "वेद शास्त्र के तत्व का जानने वाला व्यक्ति जिस किसी आश्रम में निवास करता हुआ कार्य का सम्पादन करता है वह इस लोक में रहते हुए भी ब्रह्म का साक्षात्कार करता है। उन द्विजों की निन्दा है जो वेद का अध्ययन बिना किए दूसरे शास्त्रों का अध्ययन प्रारम्भ कर देते हैं। वे जीवित दशा में ही अकेले नहीं बल्कि पूरे वंश के साथ शूद्रत्व को शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है।

योऽनधीत्य द्विजो वेद,
मन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वम
शु गच्छति सान्वय।

महाभाष्यकार पतञ्जलि ने लिखा है 'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मो षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च' अर्थात् षडङ्ग वेद का अध्ययन तथा ज्ञान प्रत्येक ब्राह्मण का सहज कर्म होना चाहिये।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदों का महत्व हिन्दू एवं आर्य जाति के लिए अत्यधिक है। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि वेदों के अध्ययन का अधिकार किसको है? यदि वे धार्मिक, सामाजिक भौतिक, दैविक एवं आध्यात्मिक सभी दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं तो इनको पढ़ने का अधिकार शूद्रों तथा स्त्रियों को क्यों नहीं दिया गया?

इसका उत्तर स्वामी जी महाराज ने 'सत्यार्थ प्रकाश' और 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' दोनों ही ग्रन्थों में दिया है। उन्होंने लिखा है कि वेद पढ़ने का अधिकार सबको है। क्योंकि जो ईश्वर की सृष्टि है उसमें किसी को अनधिकार नहीं हो सकता। देखिए कि जो २ पदार्थ ईश्वर से प्रकाशित हैं वो सो सबके उपकारार्थ हैं। उन्होंने लिखा है कि जो यह कहा जाता है कि वेदों के पढ़ने का अधिकार केवल तीन वर्णों को ही है क्योंकि शूद्रादि का वेदादि शास्त्र पढ़ने का निषेध किया है और द्विजों में भी केवल ब्राह्मण का है यह बात मिथ्या है। देखो यजुर्वेद में स्पष्ट लिखा है "यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः" अर्थात् चारों वेद वाणी सबकी कल्याण करने वाली है तथा जैसे सब मनुष्यों के लिए मैं वेदों का उपदेश करता हूं वैसे ही तुम भी किया करो।

इस विषय को समाप्त करने से पूर्व हम आर्य बन्धुओं का ध्यान इस विषय की ओर आकृष्ट करना चाहेंगे कि वेदों के अध्ययन का प्रबन्ध आर्य समाजों में होना आवश्यक है। आर्य समाज क्यों अधिक उन्नति न कर सका? मैं इतिहास के कबीर पंथियों की ओर आर्य भाइयों का ध्यान आकृष्ट करना चाहूंगा। कबीर पंथी साधुओं ने, अध्ययन की महत्ता को घटा दिया, कबीर के वाक्यों पर ही ज्ञान की पूर्णता मान ली और परिणाम यह हुआ कि वे जीवन के क्षेत्र में आगे न बढ़ सके। बौद्ध क्यों बढ़े? क्यों उन्नत हुए? इसके अन्य कारणों के साथ ज्ञान विषयक उन्नति भी एक बड़ा कारण है। अत इस दिशा में नेताओं का कार्य है कि सोचें और सत्संगों में वेद मन्त्रों के अध्ययन एवं मनन की ओर रुचि उत्पन्न करने का प्रयत्न करें। वेद विषयक कुछ साधारण एवं प्रारम्भिक बातें हम अपने उन आर्य भाइयों के लिए, जो श्रद्धा वश आर्यसमाज में आए हैं, और जिन्हें अपने साहित्य का प्रारम्भिक ज्ञान भी नहीं, आप ने अगले लेख में देंगे।

आओ गाएँ !

प्राग्नये वाचमीरय, वृषभाय क्षितीनाम्।
स नः पर्षद् अतिद्विषः ॥ ऋक्- १० १८७, १ ॥

(क्षितीना) मनुष्यों के (वृषभाय) अभीष्टों को बरसाने वाले (अग्नये) अग्नि के लिये (वाच प्र आ ईरय) वाणी को प्रकृष्टता से प्रेरित कर (स नः द्विषः अतिपर्षत्) यह हमें द्वेषों से पार लगा दे।

आओ—गायें उसका गान।
जिसकी महिमा देख चकित-सा
विश्व खड़ा है कुछ विस्मत-सा,
साँस रोक कर चित्र-लिखित-सा,
अर्ध चेतना अर्ध ज्ञान में,
शिशु-सा बन कर के अनजान।

जो देता, केवल देता है,
और न कुछ भी जो लेता है,
सब की नाव सदा खेता है।
जिसके शीतल प्रेम-स्पर्श से,
द्वेषों का होता अवसान।

जो सबका है पाप जलाता,
और अभीष्ट-सुधा बरसाता,
वाणी में प्रकृष्टता लाता
महामहिम उस वृषभ अग्नि पर,
हो जावें हम सब बलिदान॥

आर्य समाज के समस्त पत्रों में सबसे अधिक छपने वाला आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र—

लखनऊ—रविवार ८ मई तदनुसार ज्येष्ठ कृष्ण २ सम्वत २०१२ (सौर २६ वैशाख) दयानन्दाब्द १३१ सृष्टि सवत १९ ... २९४९०५५

उत्तर दीजिए !

...अन्धकारमय घड़ियों में प्रकाश की धार संचार विहार रहा है। उषा की ज्योतित किरणों का स्वागत करने को सभी उत्सुक हैं। विहान कब होगा यह प्रश्न सभी के मन में समाया हुआ है, किन्तु—

इस नये विहान उदय के लिए प्रयत्न करना कैसे सम्भव हो, कैसे इस निराशा में आशा की अनुभूति प्राप्त कर सके यह, प्रश्न है जिस पर सभी को विचार करना चाहिए।

इसी महान् लक्ष्य की सिद्धि के लिए आर्यसमाज की स्थापना हुयी थी और महर्षि दयानन्द सरस्वती ने यत्न किया था कि संसार को बदला जाए, सोचने, विचारने और व्यवहार करने के प्रकार को बदला जाए। यह परिवर्तन करना ऋषि का लक्ष्य था आर्य समाज स्थापना का हेतु था और था भारत का सदेश।

दिन बीतते गए, एक सदी आगे हम लोग आ पहुचे, ससार के विचार क्रम में मौलिक परिवर्तन हो गए, किंतु हम कहाँ है, यह हमने कभी नहीं सोचा। हम आगे बढ़े या पीछे इस पर भी हमने कभी विचार नहीं किया? स्थिति आज भी बदलती जा रही है। संसार की समस्त व्याख्याए बदल रही हैं ऐसे में हम जीवित कैसे रह सकेंगे यह भी हमने सोचना है।

सत्य यह है कि हम अपने आदर्श से पतित हो गए, हम पर भी वर्तमान आदर्शों ने अपना प्रभाव जमा लिया और जो इस युग को बदलने चले थे युग के साथ विलीन हो गए, किन्तु अब ... विश्वास नहीं है, अपने आदर्शों के प्रति, ऋषि के आदेशों के प्रति। ईश्वर विश्वास का दम भरने वाले हम आज भौतिक बल का महत्व देते हैं सत्य के पुजारी असत्य के पीछे दौड़ रहे हैं वेद के उपासक अज्ञान का आराधना कर रहे है।

स्थिति को देख हम रोना आता है, हम बार बार कहते हैं पर सुने कौन? महर्षि के लक्ष्य की चिन्ता भी किसे है। कैसे चलेगी यह गाड़ी?

बहुत से हम निराशावादी समझ सकते हैं किन्तु स्थिति का स्पष्ट रूप सम्मुख होते हुए भी भ्रम में पड़ रहना हम उचित नहीं समझते। सभी तथ्य अनुभव करते है पर भूल का सुधार नहीं करना चाहते इसीलिए आत्म प्रशसा में लगे हैं। पर अब इस प्रकार कार्य न चल सकेगा। युग बदलना है तो हम बदलना होगा और अपना पूरी शक्ति से अपने मन्तव्यों का व्यावहारिक रूप देने में लगना होगा।

प्रत्येक आर्य समाज के सदस्य और अधिकारी से हमारा निवेदन है कि वे सारी स्थिति पर स्वय गभीरता पूर्वक विचार कर अपने कर्तव्य का निर्णय कर क्या वास्तव में दयानन्द के आदेशों का पालन हम कर रहे है, क्या हम लक्ष्य सिद्धि की ओर बढ रहे है इसका उत्तर दीजिए।

दैनिक आर्य मित्र के लिये!

जिस समय दैनिक निकालने का प्रश्न आर्य जनता के सम्मुख उठाया था उस समय से लेकर आज तक हम कुछ विचित्र स्थितियों का सामना करना पड रहा है। प्रारम्भ में जब ५००० सदस्य बना देने पर दैनिक निकालने की घोषणा सभा की ओर से की गयी तब बहुतों ने कहा निकल जाए तब सहयोग देंगे, सदस्य बनाएंगे। हमने जनता के विश्वास पर बिना किन्हीं विशेष साधनों के दैनिक आरम्भ करने पर बल दिया। जनता की माँग का ध्यान में रख अन्तरंग सभा ने दैनिक प्रकाशन का निश्चय किया। परिणाम स्वरूप २८ मार्च आर्यसमाज स्थापना दिवस से दैनिक मित्र प्रकाशन आरम्भ हुआ।

बधाइयों, प्रशंसाओं के पत्र अनगिन संख्या में आए सर्वत्र जनता ने इसका स्वागत किया हमारी प्रार्थना पर मुक्त हस्त होकर दान भी भेजा इस सारे सहयोग के लिए हम आर्य जनता के आभारी है।

किन्तु मूल प्रश्न आज भी उलझा हुआ हमारे सम्मुख है। चिन्ता हमें व्याकुल किए है, और हम सोच रहे है कि क्या हमारे स्वप्न स्वप्न ही रहेंगे?

हमने प्रार्थना की थी कि हमें दैनिक मित्र के सफल सचालन के लिए पाँच हजार सदस्य चाहिए ऐसे सदस्य जो एजेंसी से लेने वाले न हों अपितु सीधे कार्यालय से अगाऊ धन भेजकर सदस्य बने हों तभी दैनिक मित्र उन्नत और सफल रूप में सचालित किया जा सकता है।

किन्तु आर्य जनता से सीधे शब्दों में हम पूछ रहे है कि आखिर वह चाहती क्या है? क्या उसे यह इष्ट नहीं कि आर्य समाज का गौरव बढे? वैदिक भावनाओं का प्रसार हो या ससार से अज्ञान अन्याय और अभाव को समाप्त किया जाए? यदि है तो फिर यह उदासीनता क्या है?

स्टेजों पर लबे लबे व्याख्यान देकर वैदिक धर्म प्रचार के गीत गाने वाले मीटिंगों में घटों बहस करने वाले और बातों में जमीन आसमान एक करने वाले सभी व्यक्तियों का बल आज दैनिक आर्यमित्र में क्या नहीं लगता? हमारे नेता और अधिकारी सदस्य कहाँ सो रहे है? क्या आर्य समाज का सारा बल केवल ५ हजार सदस्य भी पूरे नहीं कर सकता?

यह सत्य के जीवन मरण का प्रश्न है, ससार में बढते हुए राक्षसीपन का कुचलने व भोगवाद का मिटाने के लिए दैनिक मित्र का प्रकाशन आरभ किया गया है क्या इन महान् कार्तों ... के बल को बढाना आप अपना कर्तव्य नहीं समझते?

मानवता का अर्थी सजा कर भारतीय सभ्यता का गला घोट कर नास्तिकता गुरुडम और अनाचार के पोषक जीते आगे बढ या महर्षि दयानन्द के अनुयायी ससार में सत्य ज्ञान और वेद की ज्योति छितराने में सफल ... आ पहुचा है।

हम कहना चाहते है कि यदि आप वास्तव में आर्य है दयानन्द को अपना गुरु मानते है आप के हृदय में वेद के प्रति तनिक सी श्रद्धा है तो पूरे बल से लगिए आर्यमित्र के सदस्य बनाने में। जितना बल हो सामर्थ्य हो साधन हो आर्यमित्र की उन्नति में लगा दीजीए।

यह न भूलिए कि वर्षों के प्रयत्नों का यह परिणाम है। इसकी सफलता दयानन्द ऋषि की सफलता है।

हम आज पूरे बल से दयानन्द के अनुयायियों को सहयोग के लिए पुकार रहे है आर्य समाज का लहराता ध्वजा आर्यमित्र को झुकने न दीजिए। यह जैसा है आपका है। इसके अधिक सदस्य बनाने में लग जाइए जो दे सकते हो इसकी उन्नति के लिए दीजिए। आर्य जनता से यह निवेदन है। आर्य जनता सुने नहीं सुनेगी तो और कौन सुनेगा? आर्यमित्र उसीका पत्र है यह समझ हम उससे सब कुछ कह रहे है इस आशा और विश्वास के साथ कि हमारी इस प्रार्थना पर अवलब ध्यान दिया जायगा।

युद्ध के बादल

नवीनतम समाचारों के अनुसार पाकिस्तान ने अफगानिस्तान को १५ मई तक का अल्टीमेटम दिया है। अफगानिस्तान क्षमा माँगे इसकी ... सम्भावना नहीं फिर सीधा युद्ध छिडने का ही सम्भावना प्रधान हो गई है।

पिछले दिनों बाडुंग सम्मेलन में शांति के लिए व्याख्यानों की झडी लगाने वाले मि० मुहम्मद अली ... वस्तु स्थिति एक दम सामने आ ... आपसी समझौते के स्थान पर ... अल्टीमेटम दिए जाने लगे।

किंतु क्या यह पाकिस्तान ... विचार मात्र है या अमरीका के ... से उसी के बल पर रूस को ... बनाने का यह भी कोई षडयत्र है राजनीतिक गतिविधि का विश्लेषण करने के बाद प्रतीत होता है कि कासिम र...

शेष पृष्ठ १४ पर

क्रोध को अपना मित्र बना लीजिए

(लेखक---श्री महावीर अधिकारी)

ऐसा कौन आदमी होगा, जिसे क्रोध नहीं आता। भारत के प्राचीन इतिहास में सामान्य जनों की तो बात ही छोड़ दीजिए—ऋषि मुनियों के प्रचण्ड क्रोध की गाथाएं भरी पड़ी हैं, पर इन ऋषियों के क्रोध से उनकी अपनी हानि कभी होती नहीं सुनी गई। वह क्रुद्ध होकर शाप दिया करते थे। इससे यह प्रकट होता है कि क्रोध मानव स्वभाव का एक अंग है, जो कि हमारी प्रौढ़ावस्था में पहुंचकर दब जाता है। किसी ने कहा है कि वह मूर्ख है, जिसे क्रोध नहीं आता, लेकिन वह बुद्धिमान है जो क्रोध नहीं करता। सच तो यह है कि यदि मानव क्रोध न करता होता, तो विवेक का आविर्भाव इस दुनिया में कभी न हुआ होता। विवेक की सृष्टि दो भावनाओं से होती है -क्रोध से और पराजय से। यह बात सुनने में विचित्र भी लगती है, लेकिन जैसे अत्यन्त तिक्त बूटियां से अमृत सदृश औषध बनती हैं जैसे नीम पर मधु के समान मीठी निबौली लगती हैं उसी प्रकार क्रोध के अंधकार में से विवेक का प्रकाश उदय होता है। जिसने अपनी वासना को जीत लिया है। वह जितेन्द्रिय है, लेकिन जिसने क्रोध को, वासना को विवेक में परिणत कर दिया है वह तपस्वी है।

क्रोध का परिणाम---

क्रोध, अगर साधारण मानव का है, जो दूसरों को शाप देने से पहिले, अपने को ही अभिशप्त कर डालता है। क्रोधी लोग सदैव ही कृशकाय और निस्तेज होते हैं। उनकी जठराग्नि मन्द पड़ जाती है। वे सदैव ही उदर व्याधियों से पीड़ित रहते हैं और ब्लड-प्रेशर जैसे रोगों के शिकार हो जाते हैं। प्राचीन नीतिकारों के अनुसार चिन्ता और क्रोध को मन में धारण करके सोना किसी विषधर विषधर को बगल में लेकर सोना है। पश्चिमी वैज्ञानिकों ने क्रोधी मनुष्यों को लेकर उनके परीक्षण किये हैं और अत्यन्त आश्चर्य-जनक परिणाम निकाले हैं। क्रोध करने वाले मनुष्य के शरीर में एक प्रकार का जहर पैदा हो जाता है। न्यूयार्क में कुछ वैज्ञानिकों ने क्रुद्ध व्यक्ति के रक्त की एक बूंद खरगोश के शरीर में प्रविष्ट करके परीक्षण किया, इसका परिणाम यह हुआ कि बाईस मिनट बाद ही वह खरगोश उन्मादी-सा हो गया और आसपास के लोगों को काटने दौड़ने लगा। लगभग १५ मिनट बाद उसने लोगों को काटना भी शुरू कर दिया और एक घंटे के बाद छटपटा कर गिर पड़ा और मर गया।

१५ मिनट का क्रोध

९॥ घंटे के बराबर

डाक्टर ज. फुस्टर ने क्रोध के कारण भस्म होने वाली शक्ति का अनुमान लगाते हुए जो घोषणा की है, वह अत्यन्त ही चौंका देने वाली है। उनका कहना है कि १५ मिनट के क्रोध से आदमी की शक्ति का जितना ह्रास होता है, उससे सामान्यतया वह आदमी साढ़े नौ घण्टे कठिन परिश्रम कर सकता है। क्रोध हानियों को वास्तव में रखकर जरा चारों ओर निगाह उठाकर देखिए तो इस अज्ञात शत्रु ने कितनी महान मानवीय सम्पदा को चिता में झोंक डाला है। आइने के सामने अपना मुख करके देखिए, नेत्र कोटरों के नीचे जो काली रेखा है वह क्रोध की रेखा है, आँखों में जो ये लाल डोरे हैं। ये भी क्रोध की मदिरा पीने का परिणाम हैं - चेहरे पर जो रूखापन है, जो स्नो क्रीम और हेसलीन की कोटिंग को चीरकर फिर से झांकने लगता है, वह भी क्रोध का ही परिणाम तो है। हाथों में जो नीली नसें उभर आई हैं, जिह्वा में जो कांटे उभर आये हैं और यौवन में जो बुढ़ापा झांकने लगा है, वह भी कहीं क्रोध का ही तो पारितोषिक नहीं।

अपने लिए स्वयं दुर्वासा----

अपने मन का विश्लेषण करके आप देखिए तो इन सबकी जड़ में क्रोध का सर्प ही आपको कुण्डली मारकर बैठा दिखाई देगा। इतने पर भी आपको क्रोध आता है और अपने लिये ही आप दुर्वासा बने हुए हैं। क्रोध कब आ जावे इसका कुछ पता नहीं। माँ भोजन बनाती है बच्चा मचल उठता है। अपनी परेशानियों में पिसती हुई

इसकी बिगड़ जाए, चाहे प्राणों की बाजी देनी पड़े, हमारी बात छोटी क्यों रहे!" मानो कि जैसे क्रोध कोई महान मानवीय गुण हो, जिसकी उपलब्धि हमारे व्यक्तित्व की शोभा को बढ़ाती है, पर इस बात में कहीं थोड़ा सत्य सन्निहित भी है। अत्याचार, दमन और शोषण के प्रतिरोध में सबसे पहिले हमें क्रोध ही आता है, पर देखना यह है कि क्या दमन, शोषण और उत्पीड़न के लिये कोई व्यक्ति विशेष उत्तरदायी है। सारा समाज इसके लिये उत्तरदायी होता है। इस लिये आपकी व्यक्तिगत भावनाओं का अपघात चाहे एक आदमी के द्वारा हुआ हो, परन्तु विवेक पूर्वक देखने पर पता चलेगा कि उस व्यक्ति के पीछे सारा समाज खड़ा हुआ है। जिस क्षणिक आवेश में बहकर आप अपना और अपने प्रतिरोधी का सर्वनाश कर डालते हैं—वही आवेश क्रोध का विवेक प्रयोग करने से आपके जीवन में पवित्र मिशन के रूप में आविर्भूत हो सकता है।

क्रोध व्यक्त करने से लाभ--

दक्षिणी अफ्रीका में गांधी जी को एक गोरे ने प्रथम श्रेणी के डिब्बे में से बाहर

> मनुष्य का महान शत्रु क्रोध, किस प्रकार घुन की तरह व्यक्ति को खोखला कर देता है और किस तरह इस घुन से छुटकारा पा सकते है इस का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत लेख में किया गया है। जिसे पढ़ पाठकों को "क्रोध" से बचने की प्रेरणा, मिलेगी ही विश्वास है।
>
> --संपादक

माँ क्रोध से लाल हुई और सन्तान के मुंह में जलती लकड़ी झोंक दी। सास का मिजाज बिगड़ा, वह क्रुद्ध हुई और कुएं में छलांग लगा गई। रास्ते में किसी से कन्धा टकरा गया। क्रोध आया और सिर फूट गए। किसी ने मजाक की। क्रोध आया, और एक भयंकर शत्रुता जन्म भर के लिये पल्ले बंध गई। चुंगी वाले ने एक आना महसूल मांगा। क्रोध आया कि गुत्थमगुत्था हो गई और सौ रुपया जुर्माना और एक दिन की हवालात।

क्रोध की हानियों की कोई सीमा नहीं, सभी क्रोधी इन हानियों से आतंकित भी होते हैं, लेकिन क्रोध का भूत जबतक दूसरे के सिर पर सवार है तभी तक, अपना अवसर आया कि वह भी स्वेच्छा से उसी भूमिका में बैठ लेते हैं। लेकिन कुछ ऐसे क्रोधी भी हैं जो क्रोध को अपनी मनस्विता का लक्षण स्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिये मन में क्रोध का उद्वेग होता है। "वह आदमी क्या जिसे गाली खाकर तैश नहीं आता, अपमान सहकर प्रतिशोध की आग जिसके अन्तर में नहीं भभकती, वाह, जी! चाहे सारी

निकाल दिया। उस समय क्या गांधीजी के हृदय को ठेस नहीं पहुँची होगी? उन्हें क्या क्रोध नहीं आया होगा? लेकिन उस क्रोध ने संसार को अहिंसा, सत्य और सत्याग्रह का दर्शन दिया। भारत को स्वाधीनता दी। मार्क्स ने इसी प्रकार एक वर्गहीन समाज का वैज्ञानिक निरूपण किया। इसलिए यह तो प्रतीत होता है कि क्रोध अगर आपसे अपनी सन्तान का गला घुटवा सकता है, तो वह क्रोध आप में एक पवित्र बुद्धि भी जगा सकता है, लेकिन कैसे?

यह तो ठीक है कि क्रोध से हानि होती है। एक क्रोधी ने कहा कि "आप क्या कहते हैं जब क्रोध चढ़ता है तो मुझे १०४ तक तापक्रम पहुँच जाता है और जब उतरता है तो शरीर बरसों निर्जीव सा बन जाता है, पर जब चढ़ता है तो रुकता नहीं। रोका जा सकता नहीं।" यह सच है कि जब क्रोध चढ़ता है तो रोका नहीं जा सकता। पर एक बार रोकिए, रोकना ही पड़ेगा, यह समझकर कि आदमी के लिए कम से कम एक बार दुनिया में कोई भी काम कर सकना असम्भव नहीं है।

क्रोध का शमन कीजिये----

एक गिलास ठण्डा पानी पी लीजिए, शरबत या रस का एक गिलास ले लीजिए। मिष्ठान्न का एक कण मुँह में डाल लीजिए। बहुधा प्रचण्ड क्रोधियों के आमाशय में पित्त इतना उत्तेजित हो जाता है कि किसी भी पदार्थ को वह ग्रहण नहीं करता, तत्काल वमन हो जाता है, पर सीख लीजिए कि आप उतने प्रचण्ड क्रोधी नहीं हैं। आप देखेंगे कि केवल १५ मिनट बाद आप अपनी विजय पर इतने उत्फुल्लित होंगे कि अपने प्रतिद्वंद्वी से हस्तांदोलन करने के लिये छटपटा उठेंगे और मन में कह उठेंगे "छी' मैं भी कितना ओछा हूं, यूं ही किसी के मुंह लगने लगता हूं!" अगर इस भावना की एक झलक भी आपके अन्दर आई तो समझ लीजिए कि मन्त्र काम कर गया। अगली बार यदि क्रोध चढ़े तो स्वयं ही, एक गिलास शरबत प्रतिद्वंद्वी को पिला दीजिए। अगर पानी या शरबत अथवा मिष्ठान्न कुछ भी नहीं है तो टाफी, चाकलेट अथवा सौंफ टिकिया तो आप जेब में रख ही सकते हैं। जब क्रोध चढ़ा कि एक मीठी गोली मुंह में डाल लीजिए और किसी तरह, अपने ऊपर काबू करके एक गोली प्रतिद्वंद्वी को भी दीजिए। देखिये तो चाकलेट का जायका चाख चखकर वह कैसी हास्यास्पद चेष्टाएं करता है, उन चेष्टाओं और बाल्यावस्थियों से उसकी प्रतिक्रिया आपके मुँह पर स्वयं हास्य खिल उठेगा, और बात बन जायगी।

गांधीजी तक निबाह न पाये—

उपरोक्त दोनों प्रयोग अनुभूत हैं और कभी असफल नहीं होते देखे गए। अत्याचारी के सम्मुख प्रतिरोध करना और एक गाल पर चपत खाकर दूसरा गाल भी सामने प्रस्तुत करना बहुत बड़ी साधना के बाद संभव होता है। स्वयं गांधीजी अपने राजनीतिक जीवन में कई बार उसे निभा न पाए। क्रोध की व्याधि से पीड़ित रोगियों को ऐसा निदान कभी न सुझाना चाहिए और न उसका कुछ परिणाम ही होता है।

उपरोक्त दो उपायों के अतिरिक्त दूसरे अनेक उपाय भी काम में लाये जा सकते हैं। साथ ही क्रोध के मूल कारणों पर विचार करने और आत्म-निरीक्षण में भी समय लगाना चाहिए।

क्रोध हम क्यों और कब करते हैं? यदि कोई हम पर प्रहार करे, अश्लील भाषा का प्रयोग करे, हमें हमारे अधिकार से वंचित करे! इसके अतिरिक्त क्रोध का मूल और बलवान कारण है असहिष्णुता। कोई हमारी आज्ञा के अनुरूप आचरण नहीं करता, तो हम क्रुद्ध हो उठते हैं।

सब समान हैं—

गुरुकुल-निवासी लोग अपने को इतना शिष्ट, शालीन और महान मान लेते हैं कि बस उनके भावना को व्याघात क्या कि पारा चढ़ा। हमें सोचना चाहिए कि सभी प्राणी एक समान हैं। कोई हमसे छोटा नहीं है। जो कोई शिक्षा और शक्ति में कम है, तो हमारी सहानुभूति का पात्र है कोई शक्ति में कम है तो दया का पात्र है और यदि कोई मूर्ख-बालक है तो क्षमा

(शेष पृष्ठ १९ पर)

आर्यत्व का प्रसार कैसे हो

(ले०—पं० लालचन्द जी आर्य मेरठ)

श्री पंडित हरि शंकर जी शर्मा की "आर्य समाज का सपना" शीर्षक कविता में जो कि दैनिक आर्य मित्र के प्रथम अंक अर्थात् चैत्र सुदि पंचमी वि० २०१२ में छपी है, निम्न शब्द देश के सामाजिक जीवन को सही तौर पर अंकित कर रहे हैं —

सामाजिक दोषों से यह देश भरा है,
नैतिकता का अनुपम उत्कर्ष गिरा है,
सद्भाव हीन सब लोग स्वार्थ में रत है,
फिर शांति कहां सब भ्रान्त और भीड़त हैं।

पहले भारतीय मानव समाज का नैतिक स्तर उन्नत नमूना ही आर्य समाज का ध्येय है। यह पवित्र और आवश्यक कार्य वैदिक संस्कृति के प्रसार द्वारा ही सम्भव है। वेद मानव मात्र के लिए हैं पर जब एक भारतीय आर्य अपना जीवन उज्ज्वल नहीं बनाते भारतीय वैदिक जीवन कैसे फैलेगा? भारतीय जीवन पद्मय था और भारत की पूजा सारा विश्व करता था। सभी देशों से ज्ञान पिपासु जीवनामृत पान करने यहां आते थे। भारत पुनः ज्ञान और जीवन कला का स्रोत बन जाय यह काम आर्य समाज ने करना है। जो स्वयं उन्नत है वही उन्नति का सार जानता है।

आज का भारत सुखी नहीं है। स्वराज्य तो प्राप्त हुआ है पर सुराज्य अभी आना है सुराज्य लाने का पावन कार्य आर्य समाज द्वारा होना चाहिये। आपस का सद्व्यवहार, ऋजु जीवन-चर्या, सरल तथा सीधा बर्ताव और आपस की सहानुभूति, पर संसार का विश्वास उज्ज्वल नैतिक जीवन, संक्षेपत आर्यत्व का देश में प्रसार आर्य समाज के सदस्यों द्वारा होना चाहिये। आर्य समाज का आंदोलन इन सब कार्यों को सफलता पूर्वक कर सके इसके लिऐ आपस का सहयोग अपेक्षित है दलबन्दी तथा समाज में अधिकारों का चेष्टा और रचनात्मक कार्यों की अवहेलना से तो स्थिति सुधरेगी नहीं, और बिगड़ेगी ही। इसके साधन क्या है, मैं कुछ एकत्र कर नीचे देता हूं —

(१) वैदिक संस्कृति पर प्रामाणिक ग्रन्थ तय्यार किया जाना चाहिये।

(२) वैदिक राजनीति पर सुन्दर पुस्तक की रचना होनी चाहिये,

(३) सभा अंगों में वैदिक जीवन का आदर्श क्रम हो और कैसे वह आदर्श पूरा हो इस पर योग्यता पूर्ण संकलन होना चाहिये।

(४) वेद के ज्ञान का प्रसार सुबोध पुस्तकों द्वारा किया जाना चाहिये।

(५) ऋषि दयानन्द द्वारा लिखा हुआ वैदिक साहित्य प्रामाणिक रूप में छपना चाहिये।

(६) ऋषि दयानन्द कृत वेद भाष्य ... [illegible]

(७) आर्य समाज की शक्ति अन्य मतों की चर्चा में अधिक लग रही है उसे सदस्यों के वैदिक जीवन बनाने में लगाना चाहिये।

(८) प्रत्येक आर्य मंदिर शक्ति और ज्ञानज्योति का केन्द्र बनना चाहिये, इसके लिए उत्तम पुस्तकालय तथा शारीरिक उन्नति के साधन जुटाने चाहिये।

(९) बहुत शीघ्र आर्य सदस्यों को वैदिक सन्ध्या तथा वैदिक अग्निहोत्र और स्वस्ति वाचन तथा शांति प्रकरण के मंत्रों के सुबोध अर्थ हृदयंगम कराने चाहियें।

(१०) प्रत्येक आर्य सदस्य अपनी जिम्मेदारी समझने लगे इसलिये आर्य सदस्य देखभाल कर चरित्र और योग्यता कसौटी अनुसार ही बनाये जाने चाहियें।

(११) केवल धन के कारण ही आर्य समाज में लोगों का सम्मानक और प्रतिष्ठा बन्द होनी चाहिये केवल धन के कारण ही कोई बड़ा आदमी न समझा जाए। शील और चरित्र का स्थान आर्य समाज में धन से ऊंचा करना चाहिये।

(१२) आपस का परिचय तथा विश्वास और धीरे धीरे सौहार्द और प्रेम बढ़ाने का पूरा यत्न होना चाहिये।

(१३) आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संग तथा दैनिक सत्संग अधिक आकर्षक और उपयोगी बनाये जांय, उनमें वेद के उपदेशों को और वैदिक सुन्दर गीतों को प्रधानता दी जानी चाहिये।

(१४) संक्षेप: आर्य सदस्यों को ध्यान वेद तथा वैदिक संस्कृति की ओर खींचना चाहिये।

(१५) आर्य समाज में गीतों का स्तर अधिक तर शुद्ध और ऊंचा होना चाहिये और समाज के सत्संगों में क्रमशः उद्बोधन, आराधना प्रार्थना, और उपासना के ही गीत गाये जाने चाहियें।

(१६) सत्संगों में केवल वेद की ही कथा हो तथा वेद मंत्रों के आधार पर ही व्याख्यान होवें।

ये कुछ सुझाव हैं जो मैं प्रेमी आर्य सज्जनों के विचार के लिए रख रहा हूं। हमें ऐसी दृढ़ता से कार्य करना चाहिये कि आर्य समाज बहुत शीघ्र अपना स्थान पुनः पावेवे। आर्य समाज के सदस्यों की जिम्मेदारी बहुत है उन्होंने स्वय उन्नत होना है, आर्य बनना है, देव (भगवान) के दिव्य गुण धारण करने हैं अपने जीवन व्यवहार से आपस के प्रेममय बर्ताव से अथक परिश्रम तप और सौजन्य से आर्यत्व का प्रसार करना है। प्रत्येक आर्य सदस्य अपने बालकों अपने सेवकों को और जिनसे भी उसका सम्पर्क हो उन्हें वैदिक धर्म में प्रवेश कराना अपना सर्वोत्तम कर्तव्य समझे तो अवश्य ही आर्य समाज का भविष्य बहुत उज्ज्वल होगा और आर्य समाज द्वारा पहले समूचे भारत का और विकासित होते होते सारे विश्व में आर्य तत्व का प्रसार होगा। यह स्वप्न पूरा होगा, अवश्य पूरा होगा, जब कि प्रत्येक आर्य अपना कर्तव्य समझेगा कि वह स्वयं सत्य और सत्यकर्म धर्म के नियमों को धारण करेगा और अपने जीवन द्वारा कार्यकर्ताओं में धर्म का प्रसार करेगा भगवान सदाशुभ कार्य में सहायता करते हैं कार्यकर्ताओं को भगवान का शुभ आशीर्वाद प्राप्त होगा। + +

आर्य समाज कानपुर की ईसाइयों को चुनौती

पादरी उत्तर देने में असमर्थ

कानपुर—गत कुछ दिनों से कानपुर में कुछ ईसाई पादरी मनमाना प्रचार कर रहे हैं—इस बीच में वह की गई शंकाओं के समाधान की भी डींग हांका करते हैं। गत ३ मई को आर्य समाज कानपुर की ओर से श्री लालता प्रसाद जी ने उन पादरियों के सम्मुख निम्नलिखित ५ प्रश्न रक्खे जिनका कि उत्तर वे अभी तक नहीं दे सके हैं—और न भविष्य मे देने की आशा ही की जाती है। वे प्रश्न हैं—

(१) इलहाम (ईश्वरीय-ज्ञान) की परिभाषा और ईश्वरीय ज्ञान पुस्तक की कसौटी क्या है।

(२) "तौरेत" से पूर्व संसार में कौन सा उसूल विद्या अनित न था, जिसके लिए 'तौरेत' नाजिल हुई? और इसके बाद 'ज़बूर' तथा इंजील ने कौन सी कमियों को पूरा किया?

(३) गुनाह का सबब क्या है? उसका जीवात्मा से सम्बन्ध है या शरीर से।

(४) यदि परमात्मा सर्व व्यापक है तो कोहतूर पर हजरत मूसा को आग की शक्ल में कैसे दिखाई पड़ा।

(५) हजरत ईसा मसीह पर कबूतर की शक्ल में खुदा की रूह कैसे प्रकट हुई। प्रकट वहाँ पर होती है जहाँ पर न हो। जब सब जगह है तो आग और कबूतर की शक्ल में होने की क्या जरूरत?

वैदिक भावनाओं के प्रसार के लिये आर्यमित्र की ... [illegible]

कानपुर की हड़ताल

[पिछले पृष्ठ का शेष]

दूर संगठन में सर्वश्री अर्जुन अरोड़ा, यदुनाथसिंह, सन्तसिंह यूसुफ संतोष चंद्र कपूर, राजाराम शास्त्री विमल मेहरोत्रा, गंगासहाय चौबे मकबूल हुसेन, सलावत हुसेन आदि ने एक नये संयुक्त संगठन "सूती मिल मजदूर सभा" की स्थापना की। मजदूरों को नवचेतना तथा सम्पूर्णतः अहिंसक होने की प्रेरणा दी।

परिणाम सामने है। पुलिस ने लाठियां बरसाईं सैकड़ों को जेलों में ठूंस दिया, मजदूरों को उनके घरों पर जाकर अपमानित किया किन्तु मजदूर पूर्ण शान्त रहे जिसकी तसदीक लखनऊ में श्रममंत्री आचार्य जुगलकिशोर कर चुके हैं।

हड़तालियों के नेता श्री राजाराम शास्त्री एम. पी. ने हड़ताल के प्रारम्भ मे दोस्ती का हाथ बढ़ाया तो उनके नाम सरकारी वारण्ट पहुंचा। केन्द्रीय श्रममंत्री खण्डू भाई ने हड़ताली मजदूरों पर निराधार आक्षेप किये फिर भी शास्त्री जी दोस्ती का हाथ बढ़ाये हुये हैं।

अब देखना है कि सरकार दोस्ती का जवाब उसी भावना से देती है या दमन पर उतर कर मिल मालिकों के तालाबंदी के सुने गये 'इरादे को पूराकर कानपुर मे "हड़ताल बनाम तालाबंदी" की नयी उलझन को आमंत्रण देती है।

हाजी की हज

कायम ६ मई। यहाँ के एक हाजी जी ने जिनकी अवस्था लगभग ५० वर्ष की है, अभी हाल ही मे एक १३ वर्षीय अज्ञात यौवना कन्या से विवाह किया है। हाजी जी जात के कुंजड़ा हैं, एवं स्वाभाविकता ने उक्त हाजी महोदय के यहाँ जाने से इन्कार किया, तब कुंजड़ों की पंचायत हुई, फलस्वरूप पंचायत ने लड़की को विवाह के विधान के अनुसार हाजी जी के यहाँ जाने के हेतु विवश किया, तदनुसार हाजी जी के अनुयायी उस बाला को ससुराल लिये जा रहे थे कि रास्ते में एक कुँए में उक्त बाला कूद गई तुरन्त व्यवस्था कर निकाली गई वह जीवित निकली। अब वह बाला अपने सम्बन्धियों के यहाँ रह रही है, हाजी जी के यहाँ जाना नहीं चाहती और हाजी जी के ... हाजी के यहाँ से भागने के लिये ... [illegible]

अफ्रीकी हबशियोंकेसाथ अमेरिका में दुर्व्यवहार

(लेखक—श्री कुंवर चांदकरण शारदा, अजमेर)

अमेरिका में अछूतों की संख्या भारतवर्ष की अपेक्षा कहीं अधिक है। वहाँ पर पहले गुलामी की प्रथा बहुत प्रबल थी, और गुलामी की प्रथा उठ जाने के बाद भी वहाँ पर अस्पृश्य और अछूत हब्शियों के साथ निर्दयता का व्यवहार किया जाता है। हब्शी को अमेरिका वाले जानवर से भी बुरा समझते हैं। हब्शी को दलितावस्था में रखने के लिए उसको भागने से रोकने के लिये और भाग जाने के पश्चात् पुनः पकड़ने के लिये और स्वामी को उसपर पूर्ण शासन का अधिकार देने के लिये अत्यन्त कठोर कानून बनाये गये हैं। अमेरिकी स्वामी अपने हब्शी दासों को पीटते थे और उनकी किसी सरकारी कचहरी में कोई सुनाई नहीं होती थी। गुलामों का इतिहास पढ़ने से यह सिद्ध है कि अमेरिकी लोग हब्शियों पर निर्दयता पूर्ण अत्याचार करते थे। उनको मताधिकार नहीं था, स्वतन्त्र होने पर भी हब्शी किसी ऐसे मुकदमे में गवाही नहीं दे सकता था जिसमें कि किसी गोरे मनुष्य के विरुद्ध अपराध लगाया गया हो। सार्वजनिक स्कूलों में हब्शी भर्ती नहीं किये जाते थे। स्वतन्त्र हब्शी को नागरिक अधिकार नहीं थे, कुछ राज्यों में हब्शियों को दवा बेचने की आज्ञा नहीं थी, कुछ में वे गेहूं या तम्बाकू नहीं बेच सकते थे, कुछ में उनका बाजार की वस्तुए लेकर फेरी फिरना या नौका रखना कानून के विरुद्ध था। कतिपय राज्यों में स्वतन्त्र हब्शी का राज्य सीमा पार करना भी कानून के विरुद्ध समझा जाता था, और कुछ में जब कोई हब्शी दासता से मुक्त किया जाता था तो उसे उसी समय वह राज्य छोड़ देने के लिए विवश होना पड़ता था। अमेरिकी दक्षिणी रियासतों ने ऐसे ऐसे कानून बनाये जिससे काली और गोरी जाति में समानता का भाव कदापि स्थापित नहीं हो सकता था, और हब्शी कदापि संयुक्त राज्य के नागरिक नहीं हो सकते थे। १८ वर्ष की आयु के ऊपर के हब्शियों को बिना काम या रोजगार के रहना और अनियमित रूप से दिन में या रात में एकत्रित होना अपराध करार दे दिया गया था। हब्शियों को अदालत वाले चाहे अपनी इच्छानुसार काम पर भेज देते थे, किसी किसी राज्य में हब्शियों पर एक डालर प्रति व्यक्ति अधिक कर लगा दिया गया था। हब्शी अथवा अन्तर्विवाह के सर्वथा वर्जित कर दी गई थी।

राज्यों ने कानून बना दिया। "स्थायी या सामाजिक" कानून बनाकर गोरों के साथ अन्तर्विवाह वर्जित करते हैं। हब्शी महिलाओं की बड़ी दुर्दशा थी, अमेरीकी कानूनों के अनुसार रेल गाड़ियों ट्राम गाड़ियों और स्टीमरों में गोरों और हब्शियों के लिये पृथक व्यवस्था रहती थी। गोरों और हब्शियों के लिये भोजनालय और विश्रामगृह पृथक्-पृथक् रहते थे। सड़कों पर चलनेवाली किराये की गाड़ियों में गोरे लोगों को आगे व काले लोगों को पीछे बैठने का स्थान दिया जाता था। रेल की यात्रा में कोई हब्शी कितना ही धनी क्यों न हो, उसको सोने के लिये स्थान नहीं दिया जाता था, सार्वजनिक स्कूलों में हब्शियों के बालक गोरों के साथ नहीं पढ़ने पाते थे और जिन स्कूलों में

कर सकते हैं। हबशियों के विरुद्ध इस सामूहिक आक्रमण के सम्बन्ध में लिखते हुए "अमरीका कम्स आफ एज" के लेखक हमें विश्वास दिलाते हैं कि "इस कार्य में प्राय गोरी जाति के सर्वोत्तम अङ्ग जैसे समाज सचालक उच्चपदाधिकारी और न्यायाधीश तक भाग लेते हैं। उन लोगों ने स्वयं मुझ से यह बात कही है। वह सभ्य और शिष्टाचार की मूर्ति जिससे आप बातें कर रहे हैं, बहुत कुछ सम्भव है कि एक ऐसा हत्यारा हो जो निशाकाल में जगल में अपने सैकड़ों साथियों के साथ एक व्यक्ति का प्राण लेने जाता हो। ऐसे ही आप सहस्रों व्यक्तियों से मिल सकते हैं। उनमें आपके मित्र भी हो सकते हैं जो इस कार्य में उसके सहायक होते हैं।

हबशी अमरीका में हताश

अफ्रीका से हबशी गुलाम बना बनाकर अमेरिका में भेजे जाते थे, उनके साथ कैसा दुर्व्यवहार होता था। यही इस लेख में बताया गया है

गोरों के बालक पढ़ते हों, उनमें हब्शी अध्यापक नहीं रखे जाते थे। हब्शियों को होटलों में युवक ईसाई तथा युवती ईसाई संघों में और थियेटरों में नहीं जाने पाते थे। गोरों की कब्रगाहों में वे अपने मुर्दे नहीं गाड़ने पाते थे, बिचारे हब्शी पृथक गिरजाघरों में प्रार्थना करते, प्रथम होटलों में ठहरते, और प्रथम निवास स्थानों में रहते हैं, और जीवन की समस्त दिशाओं में यहाँ तक कि गोरों की बड़ी बड़ी दुकानों में ये क्रय विक्रय करने के लिये घुमने नहीं पाते थे। इस जाति विद्वेष ने सबसे निकृष्ट रूप यह धारण किया है कि जो हब्शी अपराधी होते हैं या जिन गोरों के विरुद्ध किसी प्रकार के अपराध का सन्देह किया जाता है वे मुकद्दमा चलाये जाने से या किसी अदालत द्वारा अपराधी ठहराने से पहले ही क्रूरता के साथ मार डाले जाते हैं। व्यापक रूपसे "सुसगठित" कू क्लक्स क्लान की इस हालत से अमेरिकावासियों की योग्यता का परिचय मिल जाता है। वे गुप्त क्रान्तिकारी सघ के समान अपना कार्य करते हैं। और उन्हें यह ज्ञात है कि वे नियम और

स्वदेश से पृथक किये गये व्यक्तियों के रूप में लाये गये थे। इस प्रकार लाये गये दास अपने देश और जाति से बहिष्कृत तथा तिरस्कृत तो समझे ही गये उनको पराजित और पराधीन भी बनना पड़ा। अमरीका में दासता काल में न तो उन्हे पढ़ने लिखने की स्वाधीनता प्राप्त थी। न चलने फिरने की, न परस्पर कोई सम्पर्क रखने की और न कहीं अनियन्त्रित रूप में एकत्रित होन की। साधारणतया जिन बातों से मनुष्य सभ्य बन सकता है वे सब उनसे दूर रखी गई। स्वामी के ऊपर अपने दासके साथ बर्ताव करने में किसी प्रकार का कानूनी या धर्माचरण सम्बन्धी उत्तरदायित्व नहीं था। पुरुष या स्त्री सब के साथ वे समान बर्ताव करते थे। आज हबशियों की एक बड़ी संख्या अपने पूर्व के हबशियों के अनीतिपूर्ण और नियम विरुद्ध बर्ताव का जीवित प्रमाण है। दासता की प्रथा में हबशी अपने आत्म सम्मान के अत्यन्त नीचे दबाये गये। काली स्त्री प्रायः अब गोरे बच्चे की माता बनने में कहीं अधिक महत्व समझती थी। गोरा स्वामी या ओवरसियर काली महिला पर बला-

सामाजिक व आत्मिक नियन्त्रण का अनुभव नहीं करता था। डीन मिलर कहते हैं.—"इस देश में हबशी बलिदान के पशु हैं। वे गोरी जातियों के बोझ ढाने वाले हैं। वे समाज के हीन अंग हैं और उन्हें उस निम्नस्थान की समस्त यातनायें भोगनी पड़ती हैं। वे अपनी स्थिति के समस्त दुःखों को सहते हैं, और उन्हे उस स्थिति में पाप भी करने पड़ते हैं।

एक दूसरे स्थान पर यही लेखक लिखता है :—

इस देश में जितनी जाति के लोग रहते हैं या सैर के लिये आते हैं उन सबकी पाशविक वासनाओं को तृप्त करने के लिये हबूशी महिलायें विवश की जाती हैं। इस नाम मात्र की हबशी जाति की नसों में मनुष्य की प्रत्येक जाति या उप जाति का रक्त दौड़ रहा है। यह रक्त सम्मिश्रण समस्त जाति में ही नहीं, भिन्न भिन्न व्यक्तियों में भी पाया जाता है। और इस प्रकार मिश्रित हुआ है कि वह पृथक नहीं किया जा सकता।

रेड इण्डियन

अभी एक ऐसी जाति का वर्णन करना और शेष रह गया है, जिस के ऊपर भी अमरीका में अछूतों के ही समान निर्दयतापूर्ण बर्ताव किया जाता है। यह जाति रेड इंडियन की है। योरप के लोगों ने जब से अमरीका का पता लगाया है तभी से इन लोगों को उस देश के जगली भैंसो और अन्य पशुओं की भांति नष्ट करना आरम्भ कर दिया है। इसका सरकार और नागरिक दोनों ने कोई विचार नहीं रखा।

अब बनैले पशुओं के समान उनका पीछा और शिकार नहीं किया जाता, वे अफ्रीका के आदिवासियों के ढर्रे पर आ गये हैं। जिस प्रकार पूर्वी अफ्रीका में वहाँ जाति के लोगों के लिए विशेष भूमि नियत कर दी जाती है और उसमें वे पशुओं की भांति रख दिये जाते हैं वैसे ही इनके

मानव समाज के लिए शांति मार्ग

लेखक—श्री विश्वम्भर सहाय प्रेमी, मेरठ

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों का स्वाध्याय करने से यह बात भली प्रकार विदित होती है कि महर्षि मानव समाज को कल्याणकारी मार्ग पर चलाना चाहते थे। वे चाहते थे 'मानव समाज में शुद्धाचरण' आचरण को उन्नत करने से मनुष्य पारस्परिक विषमता को नष्ट कर सकता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने प्रत्येक आर्य समाज के सदस्य के लिये शुद्धाचारी होना आवश्यक बताया। प्रारम्भ में आर्य समाज में केवल वे व्यक्ति ही प्रविष्ट हुये जिनका जीवन पवित्र था और जिनके हृदय में वैदिक धर्म के प्रति स्नेह था। ऐसे योग्य ही व्यक्तियों ने भारतवर्ष की जटिल समस्याओं को सुलझाने का यत्न किया और उन सामाजिक दुर्गुणों को मिटाने का यत्न किया जिनके कारण इस देश के निवासी पददलित हो रहे थे और जिनके स्वाभिमान की नीति अस्तगत हो चुकी थी।

आर्य समाज ने अपना एक कार्यक्रम बनाया। उसके अनुसार आर्य समाज ने मानव जीवन में पवित्रता लाने के लिये साप्ताहिक सत्संगों की व्यवस्था की। भारत के लाखों नर नारियों के कानों में वेदमंत्रों की ध्वनि पहुंची और भगवत भक्ति में लीन होकर इन तृषित प्राणियों ने आर्य समाज की वेद वाणी से लाभ उठाकर अपने जीवन को उन्नत बनाया। व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से मनुष्यों में धार्मिक भावना लाने के लिये आर्यसमाज यत्न किया। स्वाध्याय की ओर भी आर्य समाज ने करोड़ों नर नारियों को प्रेरणा दी। यह तो रहा जीवन को उन्नत करने का कार्यक्रम, इसके अतिरिक्त सारे देश में आर्यसमाज ने शिक्षा का विस्तार किया, अछूतों को अपनाकर उन्हें मानव समाज का श्रेष्ठ अंग बनाने का यत्न किया। अनाथों, विधवाओं की रक्षा का कार्य भी आर्यसमाज ने व्यापक रूप से अपने हाथ में लिया। वैदिक साहित्य का प्रचार और प्रकाशन भी, इस समय अपना एक महत्व रखते थे।

हम आर्यसमाज के सभी कार्यों की गणना इस प्रकार पर नहीं कराना चाहते। हमारा आशय तो केवल इतना है कि आज का मानव समाज, आर्यसमाज के कार्य से परिचित होकर अपना एक ऐसा मार्ग निश्चित करे जिसमें विषमता न हो। आज के मानव समाज में कटुता, असमता [illegible] इतनी आई है [illegible] सही मार्ग पर चलना ही [illegible] कठिन हो गया है। देखना [illegible] कि हम सामाजिक विषमता किस प्रकार मिटें।

[illegible] दयानन्द ने बताया [illegible] '[illegible] जीवन व्यतीत करो'। मनुष्य को आदेश दिया था अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझना चाहिये। परन्तु आज यह ध्येय कम व्यक्ति प्राप्त कर जाते हैं। सामाजिक जीवन की दौड़ में पारस्परिक सहृदयता भी अब कम होती आ रही है। जिन गुणों के आधार पर आर्य समाज मानव समाज को उन्नत करना चाहता था, वे गुण अब व्यक्तियों में भी नहीं दिखाई देते हैं। क्यों? यह एक जटिल प्रश्न हम सब के सम्मुख है। उत्तर स्पष्ट है—पिछले दो बड़े युद्धों ने मानव जीवन के आचरण को नीचे गिरा कर मनुष्य को लक्ष्मी का दास बना दिया। पैसे के पीछे मनुष्य मानव-जीवन और सदाचार को भी भुला बैठा। ऐसी बात नहीं कि इस देश के पैंतीस करोड़ सभी व्यक्ति सदाचार से नीचे गिर गये परन्तु जिन व्यक्तियों का समाज में आदर था, वे धन के पीछे चोर बाजारी करके अपना नैतिक स्तर ऊंचा न रख सके। हो सकता है अनेक व्यक्ति इनमें से भी काला बाजार के शिकार न बने हों परन्तु अधिकांश व्यक्तियों ने नैतिक स्तर को नीचे गिराया।

समाज में एक दोष यदि व्यापक रूप से फैल जाय तो अन्य अनेक दोष भी उभर आते हैं। सुरापान दुराचार राष्ट्रीय कामों में [illegible] आदि अनेक बुराइयों ने हमारे समाज को काफी कलंकित किया। परन्तु अब फिर उस दिशा को परिवर्तित करने का यत्न किया जा रहा है। हमारा सुझाव है कि आर्य समाज इस महत्वपूर्ण कार्य को फिर पूर्ववत अपने हाथ में ले।

कुछ महानुभाव कह सकते हैं कि आर्य समाज ने नैतिक स्तर को उन्नत करने के काम को कब छोड़ा है? परन्तु मेरा इस प्रकार के व्यक्तियों से विनम्रनिवेदन है कि यदि आर्यसमाज ने अपने प्रारम्भिक काल के समान देश के नैतिक स्तर को उन्नत करने का उद्योग जारी रक्खा होता तो आज इस सम्बन्ध में घोर निराशा न होती।

आज भी समाज के सामने अनेक ऐसे कार्य हैं जिनको यदि संगठित रूप से किया जाय तो देश का वातावरण बहुत सुधर जाय। आज हमारा विश्वास यह है कि धार्मिक सामाजिक तथा आर्थिक उत्थान में आर्य समाज के कर्मठ कार्य कर्ता देश को कब सही मार्ग दिखा सकते हैं। धार्मिक रूप से आर्य समाज संसार भर को वैदिक शिक्षा की ओर प्रेरित करता है। वेद सत्य ज्ञान को मानव तक पहुँचाते हैं। सत्य ज्ञान ही धार्मिक भावना जाग्रत करता है। मिथ्या विचारों को दूर करने में आर्य समाज ने अपनी एक बड़ी शक्ति लगाई और आज हमारे विचार में फिर उसी शक्ति के प्रयोग करने की आवश्यकता है। यदि देखा जाय तो पहिले की अपेक्षा अब कार्य और भी कठिन है क्योंकि पहिले साधारण ज्ञान रखने वालों को वैदिक धर्म की ओर मोड़ने का यत्न किया गया और अब काफी ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों को जिनमें भौतिकवाद पूर्ण हो गया है, वैदिक धर्म की ओर लाना होगा। इसके अतिरिक्त जिन लाखों, करोड़ों व्यक्तियों में अब भी मूर्ति पूजा, अंध विश्वास मिथ्यावाद है, उनको भी एक ईश्वरवाद की ओर लाने का प्रयत्न करना होगा। इस सम्बंध में हमारे विचार में महिलाओं में प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता है।

सामाजिक दृष्टि से वैसे सभी कहते हैं कि देश में बड़ी जागृति आई है परन्तु इसमें कोई दो मत नहीं हैं कि समाज में शराब का, जुये का काफी प्रचार बढ़ा है। चोरी की घटनायें कभी हृदय दहला देती हैं। दुराचार ने लाखों नवयुवक और नवयुवतियों को पाप के गढ़े में धकेला है। इस प्रकार के दोषों को दूर करने में आर्य समाज अग्रसर होकर कार्य करे तो समाज की दशा में भारी परिवर्तन आ सकता है। खानपान की स्थिति तो इतनी बिगड़ी है कि शुद्धाशुद्धि का कोई विचार ही नहीं रहा। हजारों नये नये होटल मांस मदिरा के लिये खुल गये। चाय और शर्बत के नाम पर खुली शराब बिकती है। इस स्थिति में अपने देश को बचाने के लिये शुद्ध खानपान सेवन करने का प्रचार करना होगा। इसी प्रकार के और भी अनेक सामाजिक दुर्गुण ऐसे हैं जिनको मिटाने और कम करने के लिए आर्य समाज की भारी आवश्यकता है।

अब अंतिम समस्या आर्थिक उत्थान की है। समाज में कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जो करोड़ों रुपये होते हुये भी गरीब मजदूरों को चूसते हैं और करोड़ों मजदूर और गरीब ऐसे हैं जिनके पास भरपेट भोजन प्राप्त करने के साधन भी नहीं हैं। कल्पना कीजिये उस गरीब की स्त्री की, जिसके चार पांच बच्चे हों और कमाने वाला वह अकेला हो और वह भी तीस चालीस रुपये मासिक से अधिक न कमाता हो। इस स्थिति को बदलने के लिये समता की भावना को पैदा करना और फैलाना है। ठीक उसी प्रकार से जिस प्रकार आचार्य विनोबा भावे चेतना पैदा कर रहे हैं। आर्य समाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द तो सारे देश की खुशहाली (वैभव सम्पन्नता) देखना चाहते थे। वे समाज में से विषमता, भेदभाव और अन्याय अधर्म से अर्थ संचय की भावना को मिटा देना चाहते थे। बात काफी गम्भीर है। कथन मात्र से इस दिशा में कोई सफलता नहीं मिल सकती। गरीबों के आर्थिक स्तर को ऊंचा करना और पूंजीपतियों के स्तर को कुछ घटाना जब तक सरकार अपना सिद्धान्त न बना लेगी तब तक इसमें सफलता प्राप्त नहीं हो सकती परन्तु आर्य समाज ने जैसा अपने कार्यक्रम में लिखा था कि अपने ही पुरुषार्थ की कमाई से मनुष्य को [illegible] चाहिये, [illegible] सारे देश के सामने यह [illegible] चाहिये। + +

जीवन-चक्र

दुहराई जाती जीवन में फिर फिर वही कहानी।
वही सांझ, वे ही घर आंगन, वे ही राजा रानी।
चांद सितारे, खेल खिलौने, ले निशीथिनी आती,
मग्न मुग्ध, गोदी में बैठे, शिशु की याद जगाती,
वही सुनाती रोज-रोज उसको मनमानी नानी।
उसी तरह लेता रजनी रानी का हृदय तरंगें,
हाव लास मधुमय विलास रस भरी अपूर्ण उमंगें,
रंग लुटाती पलक-पलक पर सपनों भरी जवानी।
श्याम श्वेत होते, विस्मृति तम ज्योतिर्मय हो जाता,
सांझ उषा में, जन्म मरण में उसी तरह खो जाता,
सागर में लय होती सरिता ले सागर का पानी।

—सूर्यकुमार

वर्षा के लिए बादल बनाइए !

रेगिस्तान में पानी नहीं, समय पर कभी वह बरसता नहीं तो क्या किया जाए ? यह समस्या है जिस पर आज संसार के वैज्ञानिक विचार कर रहे हैं। प्रस्तुत लेख में इसी समस्या को इस विद्वान् लेखक ने प्रस्तुत किया है, पाठकों को इससे नया ज्ञान प्राप्त होगा—ऐसा विश्वास है। —सम्पादक

राजस्थान और अजमेर राज्य में अधिकतर पानी की कमी के कारण जनता अनादि अनेक प्रकार से कष्ट उठा रही है, इसमें शक नहीं कि वर्तमान भारत में अन्न के उपजाने के अनेक उपाय काम में लाये जा रहे हैं। और खाद्यान्न की स्थिति दिन प्रतिदिन सुधर रही है। कृषि विकास के लिए अनेक प्रकार के प्रयास हो रहे हैं। खाली जमीनों को कृषि योग्य बनाया जा रहे हैं। वैज्ञानिक कृषि गवेषणा तथा उपज में अणुशक्ति का प्रयोग कर खाद्यान्न की चिंता से संसार को मुक्ति दिलाने में प्रयत्नशील है। कृषि विशेषज्ञ अनुसंधान शालाओं में ऐसे प्रयोग कर रहे हैं जिससे कि आबादी के भविष्य में वृद्धि के साथ साथ खाद्य समस्या भी हल हो जाय और अधिक अन्न का उत्पादन होने लगे, आगामी सालोंमें चावलकी पैदा करके लिए जो उपाय काम में लाये गये, वो भी काम में लाये जा रहे हैं पंचवर्षीय योजना में कृषि विकास को काफी सफलता मिली है। और द्वितीय पंचवर्षीय योजना में सिंचाई के लिए, ऊसर भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिये सिंचाई की सुविधा के लिये रासायनिक खाद उत्पन्न करने के लिये तथा उत्तम किस्म का बीज लगाने के लिये टिड्डी दलों के आक्रमणों से फसल की रक्षा करने के लिये तथा वृक्षारोपण पशु पालन, कृषि व्यवस्था हाट व्यवस्था और फसल प्रतियोगिता आदि से कृषि विकास की योजनायें बनाई गई हैं। परन्तु उसका मूल कारण कृषि विकास के लिये वर्षा का अभाव है। जब वर्षा ही नहीं होगी तो लोग कहाँ से पानी पियेंगे, और खेती कहाँ से होगी। इसका उत्तर कृषि विभाग वाले यह देते हैं कि हम कुएँ खुदवा रहे हैं, तालाब बनवा रहे हैं, और पंजाब की ओर चम्बल नदी की नहरें राजस्थान में आ रही हैं। परन्तु नहरें जो आयेंगी तब आयेंगी आज के दिन तो लोग प्यासे मर रहे हैं, खेती के लिये पानी तो दूर रहा। और जोधपुर के और मारवाड़ के काफिले पीने का पानी न मिलने के कारण दिल्ली के पास यमुना तट पर पहुँच भी गए और राजस्थान की जनता चारों ओर से त्राहि-त्राहि और हाहाकार मचा रही है। राजस्थान का क्षेत्रफल एक लाख तीस हजार दो सौ सात वर्गमील है। और इसकी आबादी एक करोड़ ४० लाख ५० हजार नौ सौ अधिवासी लोगों की है। प्रति वर्ग मील एक सौ सात लोग बसते हैं। भला इतने लोगों को पानी पिलाना और खेती के लिए पानी मंगवाना एक बड़ी भारी समस्या है। राजस्थान में वर्षा नहीं होती अत, उपजाऊ भूमि और जंगल रेतीला बनता जा रहा है। अब जहाँ कहीं घाटी योजना चल रही है, वहाँ कृषि विभाग का यह भी कर्तव्य है कि ऐसे उपाय काम में लावें जिससे हम जब चाहें हमारे उपयोग के लिए पानी बरसा सकें।

यह पानी बरसाने के उपाय अमेरिका में काम में लाये जा रहे हैं। और उनका [illegible] भी हुए हैं। कलकत्ते के पास भी कई वैज्ञानिकों ने इसकी परीक्षा की है राजस्थान में तो ऊँचाई पर बसे और विशेष तौर से अजमेर इलाका जैसे स्थान पर है जहाँ पर नदी घाटी योजना से पानी की समस्या हल नहीं हो सकती ? ऐसी दशा में कुवें खुदवाना भी निरर्थक हो गया है, जैसा कि अजमेर निवासियों ने देखा कि पुष्कर के पास के गनोहेड़ा गांव के कुवें लाखों रुपये लगाने पर भी सूखते चले जाते हैं। अत हमको अमरिका विधि से बादलों से पानी बनाकर अपने खेतों में बरसाने का प्रयोग काम में लाना चाहिए।

अमेरिका में वर्षा का पानी कैसे बनाया जाता है

अमेरिका में कुछ आदमी ऐसे हैं जिनका धंधा ही यह है कि पानी बनाना और बादलों द्वारा उनको खेतों में बरसाना रिडर्स डाईजेस्ट नामक मासिक पत्र के सितम्बर के अंक में इसी विषय का एक बड़ा मजेदार लेख छपा है, जिसमें विस्तृत विवरण दिया गया है, कि बादल कैसे बनाये जा सकते हैं। और कैसे अपने २ खेतों में बरसाये जा सकते हैं। आजकल तो 'वालेस होवल' नामक व्यक्ति इस काम का प्रवीण वैज्ञानिक माना जाता है, वह न्यू यार्क में रहता है। सिलवर आईडाईड से यह बादलों में बीज बोता है, जैसे कि अपन भूमि में जो गेहूँ बोते हैं। ज्योंहीं तूफान रवाना होता है, तो जगह से वह उसकी नमीको पकड़ लेता है। प्रेसीडेंट आइजन हावर अमेरिका के राष्ट्रपति इस मामले में बहुत दिलचस्पी लेते हैं। उन्होंने इस विषय में एक सलाहकार कमेटी भी नियुक्त कर दी है। यह कमेटी वर्षा बनाने के नियम बनायगी। और उसपर कन्ट्रोल भी रखेगी और वर्षा बनाने वालों को लाइसेंस पट्ट बहुत तथा एम एस वेदर ब्यूरो आदि ने जो वर्षा बरसाने का ठेका लेते हैं। उन्होने छान बीन के बाद देगी, करिक नामक वर्षा बनाने वाले ने और उसके सहयोगी ने इनकी शर्तें मान ली हैं, वर्षा बनाने वाले वैज्ञानिकों ने बताया है कि हम जब सूरज जोर से चमकता हो तब वर्षा नहीं बना सकते हैं। यह तो वर्षा की मौसम में जब वर्षा के दिन हैं, उन्हीं दिनों में वर्षा बना सकते हैं। ये रासायनिक पदार्थ बादलों में छोड़ते हैं, जिससे बादल खूब बरसते हैं। जैसे कि भूमि में अच्छा खाद डालने से अच्छी पैदावार होती है, वर्षा बनाने वाली कम्पनियों की एक सामूहिक कमेटी बनाई जा रही है, जिसमें ऋतु जानने वाले बड़े बड़े विद्वान बड़े बड़े रसायन शास्त्री काम कर रहे हैं। "सिलवर आई आईड 'बोम्बर" चाहे तो अपने बम्बों से मूसलाधार पानी बरसा सकता है। चाहे जरूरत के माफिक थोड़ा थोड़ा पानी बरसा सकता है। ये पानी वाले महाराज जब कभी मजबूत बलशाली ओलों का तूफान आता है तो उसी समय वे अपने रासायनिक पदार्थों के द्वारा उसे पकड़ लेते हैं, और पानी के रूप में अपने खेतों पर अपने बादलों का सारा पानी खाली करा लेते हैं।

एक कम्पनी खुली है, जिसका नाम "वाटर रिसोर्सेज डेवलेपमेंट कारपोरेशन" है ये कम्पनी नगरों में बड़े बड़े उद्योग पतियों के पास काम करती है। और उनको मनचाहा पानी पहुँचा देती है इसी प्रकार से इस कम्पनी द्वारा मौसम में ऐसा रासायनिक औषधियों द्वारा काम कराया जा रहा है, जिससे ऋतु परिवर्तन हो जाता है, और जंगल हराभरा होकर अधिक घास पैदा करने लगता है। और गत चार वर्षों में इस पानी उपजाऊ कम्पनी ने बहुत उन्नति की है। अगर भारतवासी भाग्यवादी होते तो माथा ठोक कर बैठजाते और कहते किपानी बरसना हमारे हाथ की बात नहीं है। यह तो किस्मत की बात है इस प्रकार बहुत से लोग बेकार पुरुषार्थहीन बनकर माथा ठोककर बैठ जाते हैं और आलसी और प्रमादी बन जाते हैं। पर अमरिका के कर्मवीरों ने भाग्यवाद पर भरोसा नहीं किया वो अपने बाहुबल पर निरंतर प्रकृति से युद्ध करके मनुष्य को उन्नति के शिखर पर पहुँचा रहे हैं। नये नये आविष्कार कर रहे हैं। बादलों से वर्षा निकालने के लिए ठीक ऐसा ही उपाय रखते हैं, जैसे एक गाय का मालिक अपनी गाय से अधिक से अधिक दूध उत्पन्न करने का प्रयत्न करता है। जैसे हवाई जहाजों में स्प्रे जेट रहते हैं। (सप्लायक) वैसे ही बादलों में पानी का बीज बोने वाले (सप्लायक) काम करते हैं। वो जमीन से बादलों पर गोले बरसाते हैं। और उन गोलों से सिलवर आइडाइड के कण वायु मंडल में भर देते हैं। और ऋतु विज्ञान वेत्ता अच्छी तरह से बतला देते हैं कि ठीक नमी हो गई है। और तापमान ठीक पहुँच गया है, तब वे गोले छोड़कर बादलों से पानी इसी प्रकार निकाल लेते हैं, जैसे कि गाय का दूध दुह लेते हैं। इनके पास बड़े-बड़े जनरेटर चलते हुए रहते हैं। और उनके द्वारा सिगनल रान राकेट पाते ही आसमान की ओर सिलवर आइडाईड की गोलाबारी प्रारम्भ हो जाती है। ये गोलाबारी एक घंटे में १६ हजार फीट ऊँचाई तक सिलवर आइडाईड बादलों में पहुँचा देते हैं और वहाँ जाकर इसके कण बारूद हो जाते हैं। और फिर हवा इन कणों को उड़ाकर नहीं ले जा सकती। और बादलों को मनचाही जगह वे लोग बरसा देते हैं। इस अन्वेषण से गत २० वर्षों में अमेरिका की पैदावार दुगनी हो गई है और वहाँ अकाल और पानी की कमी नहीं होती। और जंगल भी मन चाहे स्थानों पर बन जाते हैं। भारत में प्राचीन काल से ही हवन यज्ञों द्वारा और हवन की नाना प्रकार की औषधियां और सामग्री द्वारा इसी प्रकार सिलवर आईडाईड और अनेक सुगंधित द्रव्य डालकर वायु मंडल को सुगंधित अपने कब्जे में करते थे। और मन चाहा पानी बरसा लेते थे। वेदों के आम्नाय में ज्ञाता ब्रह्म पंचस्व वाले मंत्र में इस्तेमाल से हवन फल वाली औषधियां और ठीक समय पर वर्षा बरसाने वाले बादलों की साधना की है हमें हर्ष है कि संसार हमारा बाना को मानता जा रहा है। —

❀ चुने हुए फूल ❀

गुणवदाश्रयान्निर्गुणोऽपि गुणी भवति। कौटिल्य

सत्संग द्वारा गुणवान् के आश्रय से निर्गुणी भी गुणी बन जाता है।

× × ×

श्रुत कृतधियां संगाज्जायते विनय श्रुतात्।
लोकानुरागो विनयान्न किं लोकानुरागत ॥

विद्वानों की संगति से शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त होता है, शास्त्रीय ज्ञान से विनय शिष्टाचार सौजन्य और विनय से लोग अनुराग करते हैं, लोकानुराग प्राप्त होने से फिर क्या नहीं हो सकता ?

× × ×

"जाड्यं धियो हरति, सिंचति वाचि सत्यम्,
मानोन्नतिं दिशति, पापमपा करोति।
चेत प्रसादयति, दिक्षु तनोति कीर्तिम्
सत्संगति कथय किं न करोति पुंसाम् ॥ भर्तृहरि

सत्संगति बुद्धि की जड़ता नष्ट करती है, वाणी को सत्य से सींचती है, मान बढ़ाती है, पाप मिटाती है, चित को प्रसन्नता देती है, संसार में यश फैलाती है, सभी कुछ तो करती है।

अफ्रीकी हबशियों के साथ दुर्व्यवहार

[पृष्ठ ७ का शेष]

लिए भी प्रबन्ध हो गया है। पूर्वी अफ्रीका में जिस प्रकार अत्यन्त उपजाऊ भूमि का गोरे दखल लेते हैं और रद्दी भूमि वहाँ के आदिनिवासियों को मिलती है उसी प्रकार अमरीका में भी 'रेड इण्डियन' को ऐसी रद्दी भूमि मिलती है कि जिससे जीवन निर्वाह बड़ी कठिनता के साथ हो सकता है। (फिर भी गोरों के लिए एक दुख का कारण उपस्थित हो गया, क्यों कि इस रद्दी भूमि के भी कुछ भाग ने अपने हृदय में मिट्टी के तेल आदि के खजाने छिपा रखे थे और उन से रेड इण्डियन की सम्पत्ति बहुत बढ़ गई है।)

रेड इण्डियनों को अस्वास्थ्यकर स्थानों में रखा जाता है, इसलिए उनकी मृत्यु संख्या गोरों की मृत्यु संख्या से बहुत अधिक बढ़ गई है। उनमें तपेदिक और नेत्र रोग विशेषरूप से पाये जाते हैं।

रेड इण्डियनों की शिक्षा के लिये अमरीका का संयुक्त राज्य धन व्यय कर रहा है। परन्तु जिसके हाथ में इस व्यय का अधिकार दिया गया है उनकी रेड इण्डियनों के साथ कोई सहानुभूति नहीं है। इससे उचित फल की प्राप्ति नहीं हो रही है। मैन्चेस्टर गार्जियन के न्यूयार्क के संवाददाता ने मिस्टर एम० एल० रसेल एक रेड इण्डियन स्कूल के प्रधान के पत्र से कुछ प्रमाण हाल ही में उद्धृत किये थे। उस पत्रमें मिस्टर रसेलने स्कूलोंमें रेड इण्डियनों के बालकों पर जो पाशविक अत्याचार किया जाता है उसी के सम्बन्ध में लिखा था। संयुक्त राज्य की सिनेट में एक रेड इण्डियन की समस्याओं पर विचार करने वाली कमेटी है उसी के सामने यह पत्र उपस्थित किया गया था। पत्र का कुछ अंश इस प्रकार है :—

"मैंने देखा कि दण्ड देने के लिये रेड इण्डियन के बालकों को रात में बिस्तर से बांध देते हैं। मैंने देखा है कि व मकानों के नीचे बनी गुफाओं में बंद कर दिये जाते हैं। इन गुफाओं को छात्रावास का अधिकारी कारागार कहता है। मैंने देखा है कि उनके जूते निकलवा लिये जाते हैं, और उन्हें दूध दुहने में सहायता देने के लिये गोशाला तक बर्फ पर नंगे पांवों जाने के लिये विवश किया जाता है। मैंने देखा है कि वे उन के रस्सों से, पानी रखने के थैलों से भी पीटे जाते हैं, और कर्मचारियों तथा सुपरिटेंडेन्ट के लिये शिक्षा और उद्योग की आड़ में नौकरों का काम करते हैं। बदले में सत्ताप में बालकों पर अत्यन्त नियन्त्रण रखने और उनसे काम लेने वाली प्रथा अब तक जीवित है और खूब फल-फूल रही है।

१९२६ ईसवी में संयुक्त राज्य में रेड इण्डियन की संख्या ३,४९,९६४ थी। यह अनुमान किया जाता है कि उनको नागरिक स्वीकार कर लिया गया है। परन्तु वे पूर्णरूप से किसी प्रकार के राजनतिक अधिकार से ही वंचित नहीं हैं, बल्कि 'गृह-प्रबन्ध सम्बन्धी अधिकारों से भो वंचित है। संयुक्त राष्ट्र की सरकार का इंडियन शासन विभाग जिसमें लगभग ५००० वेतनिक गोरे कार्य करते हैं—"अयोग्य रेड इंडियनों की सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार रखता है। रेड इंडियनों की जो सम्पति सीधी इस विभाग के अधीन है वह कुल मिलाकर ३०,००,००,००० पौंड की अनुमान की जाती है। इसमें नकद और अमानतें मिलकर १,४०,००,००० पौंड है। ये 'अयोग्य रेड इंडियन वाशिंगटन में स्थित अपनेकी कमिश्नर की स्वीकृति लिये बिना अपनी सम्पति का स्वतंत्रता के साथ प्रयोग नहीं कर सकते, जब तक वह (कमिश्नर) स्वीकार न करे तो पट्टा लिख सकते हैं, भूमि खरीद सकते हैं, और न बेच सकते हैं, या किसी को दे सकते हैं, वे अपनी पैरवी कराने के लिये वकील नियुक्त कर सकते हैं, परन्तु इस बात के अनेक प्रतिवाद आते रहते हैं कि उनकी ऐसी इच्छायें कुछ ही वकीलों तक परिमित हैं, वे वकील वही होते हैं जो फेडरल के कर्मचारियों के विरुद्ध नहीं जाते।

इतिहास इस बात का प्रमाण है कि गोरा-साम्राज्यवाद संसार के लिये सबसे बड़ा खतरा है। और इसका जाति द्वेष केवल इस विचार पर स्थित है कि जो 'गोरे' नहीं वे मनुष्य से कम हैं। इसने विशाल जनसमूह को राजनैतिक और नागरिकता-सम्बन्धी अधिकारों से वंचित कर रखा है। और यह निर्दयता के साथ उसे अपने अर्थ-साधन के लिये सता रहा है, इसने आचार का दौर-दौरा कर दिया है। हाल के ऐसे अनेक कार्यों में पूर्व की रानी डेमरकस पर फ्रांस द्वारा गोले-बारी का उदाहरण दिया जा सकता है, यदि शीघ्रता और प्रभाव के साथ इसे रोका न गया तो इसमें केवल गोरे जातियों की ही सभ्यता को नहीं संसार की समस्त सभ्यता नष्ट कर देने के लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं, १९१४ के विश्वव्यापी युद्ध में जाकर और द्वेष से पोषित किया गया इसका एक नमूना जर्मन देश

भ्रष्टाचार

(एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन)

(ले०—श्री बाबू पूर्णचन्द्र जी एडवोकेट, प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश)

पहले लेख में भ्रष्टाचार के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के सम्बन्ध में इस प्रचलित युक्ति पर विचार किया गया था कि आय कम है व्यय ज्यादा है। व्यय को पूरा करने के लिये अनैतिकता भ्रष्टाचार बेईमानी अति आवश्यक और अनिवार्य है। इस युक्ति का खंडन आर्य शास्त्र के इस सिद्धान्त पर किया गया था कि व्यय का बजट बनाते समय आय की मात्रा पर ध्यान देना होगा। यह नहीं हो सकता है कि व्यय का बजट प्रचलित समाज की परिस्थिति के अनुसार या पारिवारिक परिस्थिति के अनुसार या रुढ़ी वाद के अनुसार बना लिया जावे फिर उस की पूर्ति के लिये उपाय ढूँढे जावें। प्रचलित अनैतिकता का एक कारण यह भी है कि प्रत्येक व्यावसाय में हर एक व्यक्ति सफलता चाहता है। और इस सफलता-रूपी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये साधनों के उचित और अनुचित होने पर विचार करना आवश्यक नहीं समझता। व्यवसाय के सूत्र में और व्यवसाय के अन्तर्गत नौकरियां भी इस दृष्टि कोण से आ जाती हैं। प्रत्येक व्यवसायी और प्रत्येक विभाग में नौकरी करने वाला यह कहता हुआ सुना जाता है कि घोड़ा दाने घास से यारी करके कहाँ रह सकता है। उनका अभिप्राय यह होता है कि वह घोड़े हैं और अपने व्यवसाय और नौकरी के क्षेत्र में जिन से वह सम्पर्क में आते हैं वह दाने और घास के समान हैं। इस युक्ति के आधार पर अदालतों में वकील और अहेलकार मुकदमें वालों से अनैतिकता का व्यवहार करना जन्म सिद्ध अधिकार समझते हैं। डा० मरीज से फीस लेना अपना अधिकार मानता है और फीस की मात्रा बढ़ाने में यदि रोग की वृद्धि भी करनी पड़े या स्वस्थ होने की अवधि बढ़ानी पड़े तो संकोच नहीं करते। आयु सम्बन्धी और रोगी होने सम्बन्धी झूठे और सच्चे प्रमाण पत्र डाक्टरों से कम और ज्यादा खर्च करके मिल ही जाता है। यही हाल करीब करीब प्रत्येक विभाग का है। परन्तु व्यवसाय में सफलता का वास्तविक रूप से बेईमानी और अनैतिकता से मिल सकती है यह विचारणीय है। व्यवसाय में ईमानदारी सच्चाई कम से काम देता है यदि व्यवसाय की यह साख बन जावे कि यह ईमानदार है और [illegible] है [illegible] है आरम्भ में कुछ समय अधिक श्रम और कुछ विशेष कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। आरम्भमें जो व्यवसायी को नैतिकता के कारण प्रतीक्षा करनी पड़ती है उसका फल बड़ा मीठा होता है। कारोबार के जगत में व्यवसाय के तीन मुख्य अंग हैं। अर्थात् उत्पादन, बिक्री, और इन दोनों से सम्पर्क प्राप्त कराने वाला समुदाय। यदि उत्पादन वाले उत्पत्ति के समय अर्थात् वस्तु के बनाते समय यह ध्यान रखें कि जो चीज वह बनाते या बनवा रहे हैं उस में हर चीज उचित मात्रा में लगाई जावे तो जो पदार्थ तैयार होगा वह अधिक बिक्री प्राप्त कर सकेगा। इस समय दुर्भाग्य है कि बनाने और बनवाने वाले दोनों इस चिन्ता में रहते हैं कि हींग लगे न फिटकरी रंग चोखा आ जावे। कम खर्च में पदार्थ बन जावे ऊपर की रूप रेखा ऐसी हो कि खरीदने वाला धोखे में आ जावे तो वह अपने बनाने के कार्य को बड़ा सफल समझते हैं। वह यह भूल जाते है कि काठ की हाँडी केवल एक बार आग पर चढ़ती है। जब पोल खुल जाती है तब फिर उनको कोई पूछता भी नहीं। इस दूषित मनोविज्ञान के आधार पर बहुत से कारखाने वाले बरबाद हो गये और हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं और बेरोजगारी का शिकवा कर रहे हैं। बनाने वालों से भी बुरा हाल बिक्री वालों का है वह अनैतिकता के आधार पर बनी हुई चीजों को बेचते समय उसमें किसी न किसी रूप से मिलावट करके मूल्य बढ़ा कर खरीदने वाले को धोखा देकर उस वस्तु के सम्बन्ध में एक विशेष प्रकार की श्रद्धा उत्पन्न कराने के साधन बनते हैं। दूकानदारों की दूकानदारी ईमानदारी से चलती है। किसी-किसी की दूकान बेईमानी से कुछ समय के लिये चल जाती है परन्तु अन्त में घाटा ही सामने आता है। हमारा सबका यह कर्तव्य है कि जहाँ हम सब उत्पादन की विधि और उत्पादन की मात्रा की वृद्धि के लिये विचार करें। उसके साथ ही उत्पादन के [illegible] [illegible] [illegible] विचार करना होगा, [illegible] [illegible] । और [illegible]

बच्चों की देख भाल

(श्रीमती कुन्तल "विशारद")

प्रत्येक माता का यह कर्तव्य है कि वह अपने बच्चों के भोजन, शिक्षा, स्नान, कपड़ों व आदतों की उचित देखभाल करे। बच्चों की उन्नति उनकी उचित व्यवस्था पर ही अवलम्बित है।

स्नान

बहुधा मातायें बच्चों को उत्तम रीति से स्नान कराना नहीं जानतीं। कभी कभी तो वे बच्चों को सर्दी खांसी के डर से हफ्तों स्नान नहीं करातीं। बच्चों को सावधानी से स्नान कराना चाहिए। उन्हें ठंड में एकाएक नग्न नहीं करना चाहिए। धूप निकल चुकने पर तेल की मालिश कर लेने के कुछ देर पश्चात् स्वच्छ जल से स्नान कराना चाहिए। स्नान के बाद तुरन्त ही सूखे वस्त्र पहनाना चाहिए ताकि स्नान के पश्चात् ठंड में अधिक समय तक बच्चा भीगा न रहे। स्नान कराते समय नाक, कान, मुँह आदि को भी सावधानी से स्वच्छ कर देना चाहिए।

वस्त्र

बच्चों को ऋतु के अनुसार कपड़े पहनाने की व्यवस्था करनी चाहिए। वस्त्र इस तरह के हों कि उनको कष्ट न हो। बहुधा बच्चों की लार बहा करती है। अतएव गले में कोई अन्य स्वच्छ कपड़ा बाँध देना चाहिए, ताकि वस्त्र गन्दे न हों।

बच्चों को अधिक से अधिक सोने देना चाहिए। उन्हें अफ़ीम या दूध आदि न पिलाना चाहिए। मातायें बहुधा बच्चों को अपने पास ही सुलाती हैं यह ठीक नहीं। जहाँ तक हो बच्चों को अलग सुलाना चाहिए। मुँह ढका न रहे इस बात का ध्यान रखना चाहिए। सोने का कमरा स्वच्छ एवम् प्रकाशवान होना चाहिए।

भोजन

बच्चों को भोजन, दूध आदि समय पर ही देना चाहिए। जहाँ तक हो बच्चों को विटामिन युक्त पदार्थ जैसे शाक भाजी का रस व फल आदि देना चाहिए, बच्चों के लिए समय से गरिष्ठ चीज मत दीजिए।

स्वास्थ्य

बच्चों के स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए उन्हें प्रतिदिन खुले मैदान व उद्यानों में घूमने खेलने चाहिए। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

महिला-मण्डल

फिजूल खर्ची से बचिए

(ले०—श्री ओमप्रकाश)

लोग बिना सोचे समझे पैसा खर्च करते हैं, इसलिए उन्हें आर्थिक कठिनाई में फँसना पड़ता है। जब कोई शख्स अपने खर्च को सन्तुलित नहीं रखता, आमदनी से अधिक खर्च करता है तब उसे ऐसी कठिनाई से गुजरना ही पड़ता है।

—, उदाहरण के लिए मेरे ही आफिस में काम करनेवाले एक कर्मचारी को लीजिए। उसका नाम चन्द्रकिशोर है। चन्द्रकिशोर सीधा-सादा, मेहनती और ईमानदार व्यक्ति था। मैं उसे बहुत अच्छा व्यक्ति समझता था। पर एक दिन एक व्यक्ति आफिस में ही आ धमका और उससे अपना रुपया माँगने लगा। चन्द्रकिशोर ने उसे टालना चाहा। तब वह मेरे पास आया।

मैंने उसे समझाने की चेष्टा की कि चन्द्रकिशोर मेहनती और ईमानदार आदमी है, वह उसके रुपये जरूर अदा कर देगा। तब उस व्यक्ति ने बताया कि चन्द्रकिशोर पर कई आदमियों का कर्ज है और वह कभी किसी का रुपया नहीं चुका पाता। कभी अगर वह किसी का कर्ज चुकाता भी है तो वह किसी दूसरे आदमीसे कर्जलेकर।

पता लगने पर मुझे मालूम हुआ कि नन्दकिशोर फिजूलखर्ची का शिकार है। वह बेकार की चीजें खरीदने में, घूमने फिरने में, सिनेमा थियेटर में और पान सिगरेट जैसे शौकों में अपनी तनख्वाह का इतना रुपया फूँक डालता था कि हर महीने उसे दस बीस रुपया कर्ज लेना पड़ता है। अपना खर्च वह घटाता नहीं, इसीलिए वेतन में से वह किसी का कर्ज नहीं चुका पाता वह इस कर्ज के घेरे से निकलने की कोशिश ही नहीं करता।

चन्द्रकिशोर अकेला ही नहीं। आजकल बहुत-से सम्पन्न झूठे आडम्बर के चक्कर में फिजूलखर्ची के शिकार हो जाते हैं। बाजार में नये-नये ढंग की चीजें देखकर वह उन्हें जरूर खरीद लेते हैं, भले ही बाद में उन्हें अपनी आवश्यकता की चीजें खरीदने के लिए कर्ज क्यों न लेना पड़े।

मेरे पड़ोस में ही एक नव विवाह दम्पति रहते हैं। चाहते तो अपनी तनख्वाह से मजे में गुजारा कर सकते लेकिन मैं देखता हूँ कि झूठी टीम टाममें वे लोग इतना पैसा खर्च करते हैं कि हर महीने के अन्त में उन्हें थोड़ा बहुत कर्ज जरूर लेना पड़ता है।

यह दम्पति यह नहीं सोचते कि थोड़ा-थोड़ा होने पर भी यह कर्ज किसी दिन बहुत अधिक हो जायेगा। उस वक्त वह उसे कैसे चुकायेंगे? धीरे धीरे उनका परिवार बढ़ेगा उस वक्त वह खर्च कैसे चलायेंगे? यह दम्पति इन बातों को नहीं सोचते। वह तो जवानी के जोश में आँख मूँद कर पैसा खर्च करते चले आ रहे हैं पर जिस दिन उनकी आँख खुलेगी वह पछतायेंगे कि पहले ही ध्यान क्यों नहीं दिया।

बाजार की चमक-दमक, चीजों को देखकर उनमें से ज्यादे-ज्यादा खरीदने की कोशिश करना बेकार है। समय परिवर्तनशील है। समय के साथ-साथ फैशन बदलते हैं, नई नई चीजें बनती हैं, आप आखिर उनमें से कितनी चीजें खरीद सकेंगे?

आवश्यकता की चीजों पर खर्च होनेवाले रुपये के अलावा जो रुपया आपके पास बचता है, वह सबका सब या उसमें से अधिक से अधिक आप इन चीजों पर क्यों खर्च करना चाहते हैं? मैं पूछता हूँ? बेकार की चीजों पर आप कम-से-कम रुपया खर्च क्यों नहीं करते?

इसी तरह बहुत-से लोग रुपया जोड़कर घर बनाने के चक्कर में पड़ जाते हैं। सबको इस काम का अनुभव तो होता नहीं। होता यह है कि मकान बनवाने में अन्दाज से कहीं ज्यादा रुपया खर्च हो जाता है। बचे हुए रुपये के अलावा घर के आभूषण इत्यादि तक स्वाहा हो जाते हैं। फिर मकान बनने के बाद ही कहीं कोई आर्थिक विपत्ति आ टपकी तो इनलोगों को कर्जदारों का मुँह जोहना पड़ता है! अब आप ही बताइये कि मकान बनवाने में सारा रुपया इस तरह फँसा देना कहाँ की बुद्धिमानी है?

हमारे भारतवर्ष में लोग शादी विवाह के अवसर पर भी बेहिसाब धन व्यय करते हैं। इस मौके पर भी लोग धूम धाम और आडम्बर के चक्कर में ढेर-सा रुपया खर्च करते हैं। कन्या पक्ष वाले ज्यादातर कर्ज में फँस जाते हैं। दहेज की दूषित प्रथा को निभाने के लिए कन्या का पिता कर्ज लेकर वर-पक्ष की माँगें पूरी करता है। भले ही इस विवाह में उसका घर-बार ही नीलाम हो जावे। इस अवसर पर भी बुद्धिमानी से काम लेकर लोगों को अपनी हैसियत के भीतर ही खर्च करना चाहिये।

किसी भी तरह का खर्च हो वह हैसियत के भीतर ही होना चाहिए। फिजूलखर्ची आर्थिक संपन्नता की बहुत बड़ी दुश्मन है। फिजूलखर्ची में सैकड़ों घर तबाह हो चुके हैं, हो रहे हैं और होते जायेंगे। हममें से हर शख्स का यह कर्त्तव्य है कि इस फिजूलखर्ची से बचें और दूसरों को भी इससे बचाने की कोशिश करें।

इस अवसर पर मुझे एक विद्वान् की उक्ति याद आ रही है दूसरे लोग भी उससे फायदा उठाने की कोशिश करें, तो मुझे खुशी होगी। उस विद्वान् का कथन है—"बचत के बाद जो कुछ बचे, उसी को खर्च कीजिए, यह नहीं कि खर्च करने के बाद जो कुछ बचे, उसे बचत कीजिए।"

घरेलू नुसखे

१—मिट्टी के तेल की दुर्गन्ध दू करने का सरसों का तेल मलो औ तब साबुनसे हाथ धो डालो।

२—खिड़कियों और बड़े दरवाजों के शीशे सिरके मिले हुए पानी से साफ करने से बहुत चमकते हैं।

३—मोतियों के गहनों को घर प लक्स साबुन से साफ करना चाहिए

४—चाँदी के बर्तन सूखे चूने साफ करने चाहिए। बर्तनों में चमक आ जाती है।

बनाना सीखिए!

धान की खील के लड्डू

धान को खील साफ क लीजिये। फिर मिश्री की चाशनी तयार कर उसमें खील छोड़ क लड्डू बना लीजिये। यह लड्डू अत्यन्त गुणकारी होते हैं, गर्मियों प्रति दिन एक लड्डू खाइये।

आम की चटनी

सामग्री—आम पाव भर, प्याज आधा पाव मिर्चा आधी छटाक नमक अन्दाज से तेल एक कनव और लहसुन चार जौ।

विधि—आमों को छील क गुठली निकाल दें और सिल प महीन पीस लें, साथ में लहसुन भी पीस लें, उसमें नमक भी मिल दें। फिर प्याज का महीन-महीन कतर कर आम में मिला लें और फि मिर्चा को तेल में भून कर उसको हा से चूर चूर करके चटनी में मिला दें यह चटनी खाने में बहुत ही स्वादिष्ट होती है।

खरबूजे के छिलके की कचरी

मेरी बहिनो! खरबूजे तो आप घर अवश्य ही खाते होंगे, उसक छिलका फेंकने की अपेक्षा कचरी सुख कर खाइये

खरबूजे के छिलके का बारीक बारीक काट कर सुखा दीजिये औ जब एक दम सूख कर कचरी जैस हो जाय तो घी अथवा तेल में भू कर नमक मिर्च डाल, चाय के सा खाइये, अति स्वादिष्ट होती है।

अधिक परिश्रम के खेल न खल

[प्रथम कालम का शेष]

छोटे बच्चों को व्यायाम के बद प्रतिदिन तेल की मालिश की जान चाहिए। बच्चों को स्वस्थ रखने लिए यह आवश्यक है कि उन्हें कभ भय न दिखाया जाय और उनके कामों में डाँटा न जाय। बच्चा जरा बड़े होने पर और भी सावधान

एक प्रेरक कहानी—

मुक्ति-दण्ड

(लेखक—श्री विजयनारायणसिंह)

पाटलिपुत्र के सिंहासन पर सम्राट् अशोक विराजमान थे, जिन्होंने भारत पर एक छत्र राज्य किया था। कुणाल उन्हीं का पुत्र था। वह बहुत ही सुन्दर था। उसके अंग प्रत्यंग में विधाता की बुद्धि का चमत्कार था। गाता था तो आतागण ठक से रह जाते थे। एक बार सम्राट् को यात्रा में एक कन्या मिली। उसका नाम कंचना था। कंचना सम्राट् के साथ राजमहल में आयी। कुणाल और कंचना में बहुत प्रेम था। वे अपने विनोद से राजमहल को स्वर्ग बनाये रहते थे। पीछे दोनों में विवाह सम्बन्ध स्थापित हो गया।

एक बार तक्षशिला के शासक ने सम्राट् अशोक के पास एक पत्र लिखा उसमें प्रजा के विद्रोही होने की सूचना थी तथा यवनों के आक्रमण की सम्भावना का उल्लेख था। सम्राट् ने विद्रोह दमन के लिये बालक कुणाल को तक्षशिला भेज दिया। साथ में कंचना भी गई। दोनों वहाँ रहने लगे।

इसी बीच सम्राट् व्याधि-ग्रस्त हुए। पेट में जोरों से पीड़ा रहने लगी, उसकी अन्तड़ियों से कीड़े गिरने लगे। योग्य से योग्य वैद्य भी उन्हें निरोग नहीं कर सके। सम्राट् अपने जीवन से निराश हो गये।

उनकी एक रानी थी। उसका नाम तिष्यरक्षिता था। वह कुणाल की सौतेली मा थी। किसी कारण से वह कुणाल से कुपित हो गयी और उसकी दोनों आँखें निकलवाने का प्रयत्न करने लगी। महारानी तिष्यरक्षिता ने सम्राट् की खूब सेवा की, पर कोई लाभ नहीं हुआ। उनके राज्य में एक कुम्हार था। उसे भी वही रोग था, जो महाराज को था। महारानी ने उसे बुलवा भेजा। उसने कुम्हार के पेट को चीर डाला और उसकी अन्तड़ियों के कीड़ों को भिन्न २ भिन्न औषधियों में डाला, पर वे नहीं मरे। तब वे लहसुन के अर्क में डाले गये। तब वे चारों खाने चित्त हो गये। इस औषधि के चमत्कार से महारानी तिष्यरक्षिता को अपार आनन्द हुआ, वह फूली न समायी। हर्ष-विह्वल हो वह सम्राट के पास पहुँची और बोली 'महाराज! यदि मैं आपकी व्याधि मुक्त कर दूँ, तो आप मुझे क्या पुरस्कार देंगे?'

सम्राट ने अपना अनन्य प्रेम प्रकट करते हुए कहा—'रहस्यमयी! मैं तुम्हारे वश में हूँ। सारा राज्य तुम्हारा है। कहो, तुम्हें किस प्रकार की आवश्यकता है?'

तिष्यरक्षिता ने कहा—'यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो एक दिन के लिए राज मुहर मुझे दें। कहिये वचन देते हैं?' सम्राट ने वचन दिया। तिष्यरक्षिता ने सिर झुका लिया। उसने सम्राट को लहसुन का अर्क देना आरम्भ किया। सम्राट थोड़े ही दिनों में अच्छे हो गये।

[२]

सम्राट से वरदान पाकर तिष्यरक्षिता एक दिन राज-गद्दी पर बैठी उसी दिन उसने तक्षशिला के शासक को एक पत्र लिखाया—'आप कुणाल की दोनों आँख निकाल कर राज्य से निकाल दें।' और उसने राजमुहर चिपका दी। पत्र भेज दिया गया। सम्राट के कानों में इसकी जूँ तक भी नहीं रेंगी।

शासक यह पत्र पढ़कर बहुत ही विस्मित हुआ। कानों पर विश्वास न हुआ। उसे इस पत्र पर सन्देह हुआ और उसने मन ही मन सोचा—'यह जाली पत्र है। सम्राट ऐसा कभी नहीं लिख सकते। मैं ऐसा नहीं होने दूँगा। उस समय कुणाल आखेट के लिए जंगल गया था। आने पर यह खबर उसके कानों में पहुँची वह बहुत ही प्रफुल्लित हुआ और शासक से बोला 'मुझे सम्राट की आज्ञा सिर आँखों पर है। आप भी सम्राट की आज्ञा का पालन कीजिए।' शासक असमंजस में पड़ गया।

तदनन्तर कुणाल की आज्ञा का पालन किया गया। वह अन्धा कर दिया गया। उसकी आँखें निकाल दी गई। कंचना ने यह सुना और उसके दिल के दो टुकड़े हो गये। वह बहुत ही दुखी हुई और कुणाल के साथ ही निर्वासित हो गई।

महारानी तिष्यरक्षिता के दिल की आग ठंडी हुई। उसने अपने अपमान का बदला लिया।

[३]

कुणाल और कंचना दोनों राज्य से निकाल दिए गए। अब केवल संगीत ही उनके जीवन का एकमात्र सहारा हो गया। लोगों के बीच वे गीत गाते और उससे जो कुछ मिल जाता, उसी से अपना जीवन-यापन करते। इस तरह की घटना को बारह वर्ष से अधिक बीत गए। संसार में बहुत से परिवर्तन हो गये। कई बस्तियाँ उजड़ गयीं, वन बस गए। बच्चे जवान हो गये, जो तरुण थे उनके केश सफेद हो गए।

कुणाल और कंचना भी अब तरुण हो चुके थे और संगीत विद्या में दिन पर दिन आगे बढ़ रहे थे। स्वर में जादू था और तान में आश्चर्यमयी मोहिनी। गाते थे तो पत्थर तक पिघल जाते और पंछी तक मुग्ध हो जाते थे। सुनने वाले स्तब्ध होकर खड़े रह जाते थे। एक दिन घूमते घूमते वे पाटलिपुत्र के बाजारों में आ टिके। सम्राट् के गजशाला के प्रधान कर्मचारी ने उन्हें ठहरने का स्थान दिया। सम्राट् का शयन कक्ष समीप ही था। रात्रि के चौथे पहर में उन्होंने कुणाल का एक गीत सुना। रात्रि के चौथे पहर में उन्होंने कुणाल का एक गीत सुना। गाना सुनकर वे स्तम्भित हो गये। सूर्योदय होते ही कर्मचारियों द्वारा उन्होंने कुणाल और कंचना को बुलवा भेजा। दोनों राज दरबार में उपस्थित हुए। सम्राट् ने उन्हें बैठने को कहा और वे दोनों बैठ गये। समय के फेर से कोई उन्हें पहचान नहीं सका। सम्राट् की आज्ञा से उन्होंने एक गाना आरम्भ किया। उनके मुख से संगीत की एक मधुर ध्वनि की धारा बहने लगी। दोनों मस्त थे और सुनने वाले मस्त थे। गाना समाप्त होने पर सम्राट् ने उनका परिचय पूछा। कुणाल ने कहा 'महाराज! हम गरीब भिक्षु हैं और राज्य में घूम कर भिक्षा माँगना ही हमारी वृत्ति है। इसी से हमारी जीविका चलती है।'

सम्राट् ने पुनः पूछा—'भिक्षु होने के पहले तुम क्या थे? यह जानने के लिए मैं बहुत ही उत्सुक हूँ।'

कुणाल ने आँखों में आँसू भर कर कहा—'इस के पहले मैं सम्राट् अशोक का पुत्र था।'

यह सुनते ही सम्राट् धड़ाम से नीचे गिर पड़े। तन की सुधि न रही। उन्होंने तुरन्त पुत्र को छाती से लगा लिया और कहा—'पुत्र कुणाल!'

कुणाल ने कहा—'हा पिता जी!'

पुत्र की यह दशा देखकर सम्राट् की आँखें रो पड़ीं। उन्होंने पता लगाना आरम्भ किया कि किसने यह कर्म किया? [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तिष्यरक्षिता [illegible] [illegible] [illegible]

तिष्यरक्षिता ने अपना अपराध स्वीकार किया। तुरन्त ही आज्ञा हुई, 'अभी तिष्यरक्षिता के दोनों नेत्र निकाल लिये जाँय।' बधिक उसके नेत्र निकालने को तैयार हुए।

सम्राट् ने इंगित किया, कि कुणाल ने प्रार्थना की, 'महाराज! मैं कुछ कहना चाहता हूँ।'

सम्राट् बोले—पुत्र जो तुम्हें कहना है, कहो।'

कुणाल ने आँखों में आँसू भर कर कहा—'महाराज! मेरी माता का अपराध क्षमा किया जाय।'

यह कहना था कि एक अपूर्व चमत्कार हुआ। कुणाल को एक दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई। उसकी खोयी हुई आँखें पहले जैसी हो गयीं।

'पुत्र कुणाल!' तिष्यरक्षिता ने कहा और वह सम्राट् के चरणों में गिर पड़ी।

हृदय के संकुचित पात्र में इतना एहसान न समा सका।

भ्रष्टाचार

(पृष्ठ १० का शेष)

दारों को भी नैतिकता का पाठ पढ़ाना होगा। हम सबने अपने अपने अनुभव में देखा है कि जिस हलवाई, जिस पंसारी और जिस कपड़े वाले की साख जम जाती है उसकी बिक्री नित्यप्रति बढ़ती रहती है और सब उसी के यहाँ कुछ अधिक कष्ट उठाकर भी जाते हैं और यदि एक दो पैसा ज्यादा भी देना पड़े तो विश्वास के आधार पर उसे अधिक देने को भी प्रसन्नता से सहन करते हैं। जब तक नौकरी करने वालों के मस्तिष्क से यह भावना नहीं निकल जाये कि उनके कर्तव्य के क्षेत्र में जो उनके सम्पर्क में आये उससे अनुचित रूप से कुछ प्राप्त कर लेना उनका अधिकार है उस समय तक नैतिकता का प्रचार और विस्तार नहीं हो सकता। अदालतों और दफ्तरों में 'हक' के नाम पर ग्राहक भ्रष्टाचार बढ़ रहा है और नौकरी करने वाले आय कम होने और व्यय अधिक होने की युक्ति के आधार पर और व्यवसाय में सफलता की युक्ति के आधार पर भ्रष्टाचार से बचे रहने की भावना नहीं रखते। नित्य प्रति भ्रष्टाचार में वृद्धि ही हो रही है। पहले और इस दूसरे लेख में इन दोनों दूषित युक्तियों का निराकरण करने का यत्न किया गया है। यदि इस पर विचार हो तो व्यवसाय भी सफल होंगे। व्यवसायी ईमानदार होंगे और उनके सम्पर्क में आने वाली जनता सुखी रहेगी। [illegible] आवश्यकता [illegible] है कि [illegible] और ईमानदारी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

हंसिए नहीं :

मुझे भी चार गोली खिला दो

एक धोबी का गधा बहुत ही सुस्त और अड़ियल था। वह उसे गाँव के हकीम के पास ले गया। हकीम जी ने उसके मुंह में दवा की एक गोली डाल दी। गोली खाते ही गधा दुलत्ती फटकारता भाग खड़ा हुआ, और आँखों से ओझल हो गया।

धोबी ने आश्चर्य से आँखें फाड़ कर पूछा—'आपने उसे कितनी गोली खिलाई थीं ?'

'एक !' हकीम जी बोले

'ठीक है तब मुझे भी जल्द चार गोली खिला दो। मुझे उसका पीछा करना है !' धोबी बोला।

* * *

यह तो बुरा होगा !

एक डाक्टर एक बुड्ढे मरीज से—'यह लो, इस दवा को खाकर तुम फिर से जवान हो जाओगे।'

मरीज—'यह तो बुरा होगा, डाक्टर साहब !'

डाक्टर—'क्यों ? क्या जवान बनना नहीं चाहते।'

मरीज—'नहीं, डाक्टर साहब ! फिर तो मुझे पेन्शन भी देर से मिलेगी !'

* * *

फिर तो यह बहुत कम है !

मुन्नी—'माता जी रखी की यह सारी प्लेट क्या पिताजी के लिए रक्खी है ?'

माता जी—'नहीं बेटी, यह तुम्हारे लिए है।'

मुन्नी—'फिर तो यह बहुत कम है, माता जी !'

* * *

अपनी बेटी को तोल कर देखिए !

एक घर की मालकिन दूकानदार से—मैंने अपनी लड़की को तुम्हारी दूकान से एक सेर अंगूर लाने के लिए भेजा था, पर तुमने तीन पाव ही दिये। क्या बात है ?'

दूकानदार—'मेरी तराजू में कोई कुसूर नहीं। आप अपनी बेटी को ही तोल कर देख लीजिए।'

* * *

आप ही ने तो कहा था !

मां—"अरे मोहन, सारी गुलाब जामुन क्यों खाली तुमने ?

मोहन—"माता जी, आप ही ने तो कहा था, कि उन्हें ऐसी जगह रखना, जहां वह पर चींटियां न पहुंच सकें !"

* *

मुझ जल्दी भी बेटी आना !

बेटी (मौके से वापस आ)—

इतिहास बनता है!

बादल गरजकर बरसते भी हैं

सुकरात की पत्नी अत्यन्त क्रोधी स्वभाव की थी और उन्हें बहुत तंग करती थी। एक दिन जब वह बहुत ही हल्ला मचाने लगा, तब सुकरात मकान की देहरी पर जाकर चुपचाप बैठ गये और आने जाने वाले राहगीरों को देखने लगे। पत्नी का चिल्लाना तब भी बन्द न हुआ। शोरगुल सुनकर मकान के बाहर बहुत से लोग एकत्र हो गये, सुकरात फिर भी उनकी ओर देखकर केवल मुस्कराते रहे।

पत्नी ने सुकरात की यह 'ढिलाई' देखी तो और भी आगबबूला हो गई। वह एक लोटे में पानी भर लाई और आव देखा न ताव, सभी के सामने उसे सुकरात के सिर पर उड़ेल दिया।

उपस्थित लोगों को यह बात बुरी तरह अखरी, परन्तु सबसे अधिक विस्मय उन्हें इस बात से हुआ कि सुकरात अब भी उसी प्रकार शान्त बैठे थे। उन्होंने मुसकरा कर केवल इतना ही कहा—'यह तो मैं पहले से जानता था कि बादल पहले गरजते हैं और फिर बरसते हैं।'

मेहनत की कमाई क्यों लौटाय

महात्मा टाल्स्टाय एक बार बहुत साधारण से कपड़े पहने, स्टेशन के प्लेटफार्म पर घूम रहे थे। एक स्त्री ने उन्हें कुली समझा और बुला कर कहा—"यह पत्र ले सामने के होटल में मेरे पति को दे आ। मैं तुझे दो दूंगी। टाल्स्टाय ने चुपचाप उसका काम पूरा कर दिया, दो रूबल ले लिए।

कुछ देर बाद टाल्स्टाय के एक मित्र वहां आ पहुंचे और बहुत ही अदब के साथ उन्हें काउंट कह कर पुकारा। काउंट शब्द सुनते ही उस महिला का माथा ठनका। उसने नवागतुक से पूछा—"यह महाशय कौन है ?" उस व्यक्ति ने चकित होकर कहा—आप नहीं जानतीं, काउण्ट टाल्स्टाय हैं।' टाल्स्टाय का नाम सुनते ही उस स्त्री के पैरों के नीचे की धरती खिसक गई—काटो तो खून नहीं। बार-बार क्षमा मांगते हुए उस स्त्री ने कहा— 'कृपया वे रूबल तो लौटा दीजिए। मैंने आपका बहुत अनादर किया है परमात्मा मुझे क्षमा करना।

टाल्स्टाय ने हंसकर कहा— 'देवीजी क्षमा करना तो परमात्मा का काम है परन्तु मैंने तो काम करके पैसे लिए हैं—मेहनत की कमाई क्या लौटा दूं ?' यह बात सुनकर महिला निरुत्तर हो गई

मां (नाराज होकर)—"सा जा जल्दी, नहीं तो डंडा से पीटूं गी।"

बेटी—"माता जी, डंडी लेने आयेगी तो देर फिर पानी भी लेगी

वीर !

प्रकाशीप्रसाद सिंह

कंटकों से वीर का
तलुवा कभी छिलता नहीं।
दिन बना हर चीज का है,
दिन बना हर चीज का है
एक दिन में त्याग कोई
भी कहीं खिलता नहीं।
है सरोवर जलकणों से
आयु बनती है क्षणों से
एक क्षण में लक्ष्य कोई
भी कहीं मिलता नहीं।
वह सफलता पा न सकता
गीत जय का गा न सकता
जो अथक ले धैर्य अपने
काम में पिलता नहीं।
ज्योति पथ पर बढ़ गये हैं,
वे शिखर पर चढ़ गये हैं
सत्य से विश्वास जिनका
है कभी हिलता नहीं।

लौटाए यह इकन्नी !

महात्मा तिलक एक बार बम्बई से पूना जा रहे थे। उन्होंने एक स्टेशन में उस दिन का दैनिक पत्र खरीदा और उसे देखने लगे, पर अभी वे उसका मोटी लाइन भी न देख पाये थे कि पास बैठे किसी यात्री ने कहा—कृपा कर एक पेज मुझे दीजिएगा।' तिलक ने उठकर खूंटी पर टंगे अपने अंगरखे की जेब से निकाल कर एक इकन्नी उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा—लीजिए यह इकन्नी, दूसरा अखबार खरीद लीजिए और कृपा कर मुझे मेरा अखबार शान्ति से पढ़ने दीजिए।

पता नहीं उस पत्र खिलाने न

चुने हुये फूल !

मानव सभ्यता की किरणें पूर्व ही फूटेंगी

इन दिनों जब कि मेरा जीवन व यौवन का सूर्य ढला हुआ है और मैं पैर मृत्यु की चौखट की ओर बढ़ रहे हैं मेरा यह विश्वास टकरा कर चूर चूर हो गया है जो मन अपने यौवन के दिनों में कायम किया था वह विश्वास था कि विश्व की पाश्चि ओं अशप्त मानवता का पश्चिम से ही आलोक प्राप्त होगा।

किंतु आज ज्वलि मर पे तीव्रता से मृत्यु की दहलीज से निकट तम होते जा रहे हैं मेरा विश्वास पूरी तरह टूट चुका है और अब मैं अपने सम्पूर्ण विश्वास से दृढ़तापूर्वक यह घोषित कर रहा हूं कि मानव सभ्यता के नूतन आलोक की किरणें पूर्व से ही फूटेंगी।

—गुरुदेव रवीन्द्र नाथ ठाकुर

व्यक्ति और मानव जाति के उद्देश्य समान हैं

जो समाज अपने अस्तित्व को कायम रखने को व्यक्तियों का शोषण और अपनी शान्ति के लिए उनके अधिकारों एवं संस्कृति का हनन करता है, उसकी तुलना उस मां से की जा सकती है जो अपने बच्चों को खा गई हो। जो व्यक्ति स्वार्थवश सार्वजनिक नियम का दुरुपयोग करता या उन्हें तोड़ता है, वह ऐसे नादान बच्चे की तरह है, जिसने हाथ सेकने के लिए अपने घर ही आग लगा दी है जिस प्रकार सामाजिक व्यवस्थाओं और व्यक्तिगत स्वच्छन्दता में विरोध नहीं किया जा सकता उसी प्रकार व्यक्ति और मानव जाति के लक्ष्य में कोई अन्तर नहीं है। × × ×

—औगस्ट सेबेटियर

जगत द्वन्द्व से भरपूर है। इस द्वन्द्व से हटना अनासक्ति है। द्वन्द्व को जीतने का उपाय द्वन्द्व को मिटाना नहीं है लेकिन द्वन्द्वातीत समान होना है

हम महानता के निकटतम होते हैं जब हम नम्रता में महान हैं।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

पढ़ने की अपेक्षा जब हम फकर होते तब विवेक के अधिक निकट होते हैं।

—वर्डसवर्थ

प्राणियों की अनुग्रह के लिए धर्म का प्रवचन किया गया है अतः जो प्राणियों का अभ्युदय का कारण हो वही धर्म है

—महाभारत

नार होकर प्रयत्न ही शूर

मनुष्य निर्माण की सोचिए

[ले० — श्रीरामजीप्रसाद कोषाध्यक्ष आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश]

इस देश को स्वतंत्र हुये सात वर्ष हो गये। नि सन्देह देश के शासक वर्ग ने इस अवधि में यहाँ के नागरिकों की सुविधा, सुरक्षा तथा सुशिक्षा के लिए अनेक महत्व पूर्ण पग उठाये—इनमें कुछ पूर्ण हो चुके हैं और शेष पूर्णता की ओर हैं। यातायात स्वास्थ्य और जीवनयापन सम्बन्धित अनेक कार्य किये गये हैं। इसके अतिरिक्त देश के गण्यमान्य नेता और विचारक इस प्रयत्न में हैं कि देश के छोटे छोटे गाँवों को भी बिजली पूर्ण, औषधालय इत्यादि जैसी सुविधायें निकट भविष्य में प्राप्त हो जावें। इसके लिये सरकार पंचवर्षीय योजनायें कार्यान्वित कर रही है। यह सब कुछ तो है और हो रहा है किन्तु इन सबका उपयोग जिसे करना है उसके निर्माण की कहीं चर्चा भी नहीं हो रही है यह बात उतनी ही अन्याय पूर्ण अनुपयुक्त है जितनी यह कि एक सैनिक के लिये विभिन्न प्रकार के अस्त्र शस्त्र का निर्माण तो किया जा रहा हो किन्तु उसे इसके चलाने की शिक्षा देने का कोई प्रबन्ध न हो। वह युवक सैनिक कार्यक्षेत्र में अपने लिये तथा अन्यों के लिये कितना हानिकारक और कष्टप्रद हो सकता है इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। ठीक इसी प्रकार यदि देश के निवासियों को योग्य नागरिक—मनुष्य बनने की शिक्षा देने की कोई योजना सरकार के सम्मुख नहीं है तो यह सारी की सारी योजनायें जो इन पाँच वर्षों में हुई है अथवा आगे आने वाले पाँच वर्षों में होने वाली हैं, निरर्थक सिद्ध होंगी।

अब विचार यह करना है कि मनुष्य बनाने की कौन सी योजना हो सकती है और इसमें कितना लगेगा। इसका प्रयोग कैसे किया जावे जिससे थोड़े समय में अधिक उत्साहवर्धक परिणाम निकले। आज से ८० वर्ष पूर्व आर्य समाज के प्रवर्तक आर्यवर दयानन्द सरस्वती ने इस प्रश्न पर अपने दृष्टिकोण से विचार किया था। इस सम्बन्ध में उनके दो प्रमुख जयघोष थे—संसार के श्रेष्ठ पुरुषों एक हो" तथा "वेदों की ओर लौटो"। इस देश के करोड़ों नर नारियों को भिन्न भिन्न मतमतान्तरों में विभाजित तथा अपने-अपने क्षेत्रों में भी कई भागों में ऊँच नीच के आधार पर पुनः विभक्त स्थिति में देखकर उस सुधारक का हृदय रो उठा। इसी भावना से प्रभावित हो मानवमात्र के लिये सुगम मार्ग प्रशस्त करने के हेतु सभी धर्म ग्रन्थों की सत्य की कसौटी पर समीक्षा करते हुये सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ की रचना की। इतना ही नहीं दिल्ली दरबार का समाचार सुन वहाँ भी पहुँचे। यवन, ईसाई तथा हिन्दू धर्मों के पंडितों को बुलाया और कहा आओ हम सब मनुष्य मात्र के कल्याण हेतु एक सर्वधर्म सम्मेलन आयोजित करें। सभी धर्मों की धर्म पुस्तकों में जो जो सत्य ज्ञान और तर्क के आधार पर दिखाई दे एकत्रित कर लिया जावे और उन्हें सबके लिये उपयोगी होने की घोषणा कर दी जावे। इस प्रकार एक सार्वभौम धर्म की स्थापना हो सकेगी। और अन्त में जिसके आधार पर सार्वभौम राज्य भी बन सकेगा। दुर्भाग्य उस आदित्य ब्रह्मचारी देश भक्त दयानन्द की बात किसी ने नहीं सुनी। इतना ही नहीं कितने ही व्यक्तियों ने धार्मिक उन्माद के भिन्न हो उस देश के साम्प्रदायिक होने की भी व्यवस्था की।

आज पुनः वह समय आ गया है जब द्वेष और ईर्ष्या की भावना से ऊपर उठकर राष्ट्रकल्याण की भावना से प्रभावित हो हमें इस प्रश्नपर विचार करना है। मनुष्य बन—स्वयं जावे दूसरे को जीने दें, उन्नत हो और दूसरे की उन्नति के बाधक नहीं सहायक हो ऐसी विचार धारा देश के सभी नागरिकों में भर देना है तभी कल्याण हो सकता है। अधिकार और कर्तव्य का सुन्दर सामञ्जस्य व्यक्ति और समाज का एकीकरण तथा सर्वोदय की स्वर्णिम कल्पना कराई दयानन्द के वाक्यों में पढ़कर जो मनुष्य निर्माण योजना में सहायक ही नहीं अपितु हितकारी सिद्ध होंगे— 'प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिये—अपितु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये"—'सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी में सब स्वतन्त्र रहें।'

महर्षि की इस घोषणा में हम निश्चितरूपेण एक सुन्दर विधि मानव समाज के निर्माण की पाते हैं। इसी घोषणा को क्रियात्मक रूप देने के लिए एक ओर गुरुकुलों की स्थापना की गई तो दूसरी ओर वयस्कों के लिए आर्य समाज बने। यहां हम इसी आर्यसमाज पर विचार करेंगे और देखेंगे कि मनुष्य को मनुष्य बनाने में इस संस्था का कितना योग रहा है। स्वामी श्रद्धानन्द और लाला लाजपत राय का चित्र हमारे सामने है। इनके जीवन का सारा कार्य इसी समाज की प्रेरणा का परिणाम था। आज भी कितने ही राजनीतिज्ञ, दार्शनिक और योद्धा इससे प्रभावित हैं, यह किसी से छुपा नहीं है।

इस समाज में सभी वर्ग और सभी श्रेणी के लोग समान रूप से देखे जाते हैं। यह समानता शब्दों में नहीं अपितु कार्य में यहीं पाई जाती है। सामाजिक समानता के साथ-साथ यहां सभी को धार्मिक समानता भी अपने अपने गुण की और स्वभाव के आधार पर मिली हुई है। यहाँ ब्राह्मण वही जो ब्रह्म प्राप्ति की साधना में रत पाया जाता है। क्षत्रिय वह है जो अपने हृदय में देश, जाति तथा धर्म के लिए विशेष प्रेम रखने के साथ ही उस पर न्योछावर होने के लिए अपने प्राण हथेली पर लिए प्रतिक्षण तैयार रहता है। वैश्य वह है जो कृषि तथा वाणिज्य के द्वारा धन प्राप्त कर सारे समाज के पालन-पोषण को निश्चित उद्देश्य के साथ उसका व्यय करता है। यह संज्ञा भी उसकी जन्मजात स्थिति के आधार पर नहीं दी जाती है अपितु उसकी वर्तमान कार्य करने की पद्धति पर मिलती है उपर्युक्त समाज के साधारण व्यय के लिए प्रत्येक अपनी अपनी आय का शतांश देता है जिससे आर्थिक समानता भी बनी रहती है और इसके साथ ही साथ विद्वान सन्यासी तथा कर्मठ कार्यकर्त्ता जो इस प्रकार का आर्थिक सहयोग नहीं कर सकते उन्हें भी वही सम्मानपूर्ण स्थान वहां प्राप्त है जो अन्यों को है।

इसके साथ ही वर्णाश्रम व्यवस्था की भी मर्यादा यहाँ पाई जाती है। सन्यासी समाज में सर्वोपरि स्थान पाता है। प्रत्येक आर्य नर नारी को आश्रम व्यवस्था की ओर प्रेरित करने तथा इसके लिये उन्हें सुविधा दिये जाने के दृष्टिकोण से स्थान स्थान पर वानप्रस्थ आश्रम तथा साधुआश्रम खोले गये हैं। अब हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि मनुष्य बनाने के लिये, किये जाने वाले अन्य प्रयोगों में सबसे अधिक क्रियात्मक तथा उपयोगी प्रयोग वर्णाश्रम व्यवस्था की स्थापना करना और इसे बल देना है जो आर्यसमाज ने अपने हाथ में लिया और जिसमें सबका सहयोग सहर्ष अपेक्षित है।

प्रसिद्ध आर्य कवि

श्री प्रकाश चन्द्र जी "कविरत्न" अजमेर

रुग्णावस्था से पूर्व

रुग्णावस्था के बाद

आर्यसमाज इलाहाबाद

प्रधान—श्री कुँवर बहादुर जी
मन्त्री—श्री मुंशी लाल जी
कोषाध्यक्ष—श्री लालमणि जी
पुस्तकाध्यक्ष—श्री शिवसहायजी

आर्यसमाज चंदौसी

प्रधान—श्री कृष्णचन्द्र आर्य
मन्त्री—श्री राजाराम आर्य
कोषाध्यक्ष—श्री गोपालदास आर्य
पुस्तकाध्यक्ष—श्री श्यामसुन्दर

फतेहगढ़ का वार्षिक अधिवेशन

फतेहगढ़ आर्यसमाज का वार्षिक अधिवेशन १ मई से ६ मई तक होने जा रहा है। जिसमें अनेकों सम्मेलन होंगे

पता—'आर्यमित्र'
१ मीराबाई मार्ग, लखनऊ
फोन—११३
तार—"आर्यमित्र"

आर्यमित्र

रजिस्टर्ड नं० ए० ... मई, १९५५

आयसमाज का एकमात्र 'दैनिक'

वर्ष ५७—संख्या १४, लखनऊ—१२ मई १९५५ बृहस्पतिवार ज्येष्ठ कृष्ण ८ संवत् २०१२ [सौर २ ज्येष्ठ] दयानन्दाब्द १३१

अद्याद्या श्वः श्व इन्द्र त्रास्व परे च नः। विश्वा च नो जरितॄन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः। ऋ० ८।६१।१७

हे इन्द्र ! प्रत्येक आज के दिन प्रत्येक आने वाले [कल के] दिन और उससे अगले [परसों के] दिन हमारी रक्षा कर हे सज्जनों के पालक ! हम में जो तेरी स्तुति करने वाले हैं उन सबकी प्रति दिन, रात दिन रक्षा कर।

इस अंक के आकर्षण

वार्षिक ८)
एक प्रति का ≈)

क्या आर्य जनता अग्नि-परीक्षा में असफल रहेगी ?

लाखों महर्षि के अनुयायी क्या एक दैनिक पत्र चलाने की भी क्षमता नहीं रखते ?

वेद धर्म का प्रसार क्या केवल बातों से सम्भव हो सकेगा ?

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा व आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के मंत्री श्री कालीचरण जी आर्य की देश के समस्त आर्यों से अपील

जिस समय दैनिक आर्यमित्र का प्रकाशन आरम्भ करने का ध्यान हमारे मानस में आया उस समय केवल ईश्वर विश्वास और आर्य जनता का बल सम्मुख था। वर्तमान विषम समय में जब कि लाखों रुपये की पूंजी वाले पत्र असफल सिद्ध हो रहे हैं दैनिक का प्रकाशन खाली हाथ आरम्भ करना एक विचित्र परीक्षण था किन्तु हमने आर्य जनता के उत्साह पर विश्वास रख यह महान् कार्य आरम्भ कर दिया।

जहां तक सफलता का प्रश्न है, हम आशा से अधिक सफल हैं और मार्ग में रुकावट यदि कोई है तो केवल एक, कि हम किसी भी मूल्य पर आदर्श से झुकना नहीं चाहते।

यदि हम आज सिनेमा व अन्य अश्लील विज्ञापनों को अन्य पत्रों की भांति स्थान देने लग जाएं तो किसी भी प्रकार की कमी हमारे सम्मुख नहीं रह जाती और हम स्वावलम्बी बन आगे बढ़ सकते हैं पर हमारा तो यह अटल निश्चय है कि हम टूट भले ही जाएं झुकेंगे नहीं।

आर्य जनता से हम मार्मिक शब्दों में पूछना चाहते हैं कि क्या वह महान वैदिक आदर्शों के प्रसार प्रचार के एक मात्र सबल साधन दैनिक आर्यमित्र को चलाने की सामर्थ्य नहीं रखती ? हम आशामय वातावरण से चल रहे हैं, सफलता हमारे आगे आगे है। इस मास में ही दैनिक की ग्राहक संख्या प्रकाशन दिवस से ज्यादा हो गया साप्ताहिक मित्र इस वर्ष की अवधि में तिगुना छपने लगा। फिर भी जनता की जितनी सहायता मिलनी चाहिए थी वह नहीं मिल रही। मैं देश की समस्त आर्य जनता और महर्षि के अनुयायियों से यह सानुरोध निवेदन करना चाहता हूं कि इतिहास बार बार नहीं बनता अवसर भी सदा नहीं आते इस लिए देरी और उदासी छोड़िए और जो भी कर सकते हों दैनिक मित्र के लिए कीजिए।

अपने खर्चों में कमी कर समाज से अपना तथा कमसे कम नहीं अधिक से अधिक धन दैनिक मित्र की उन्नति कोष में भेजिए। पूरे बल से वार्षिक सदस्य बनाइए। इस कार्य को अत्यधिक महत्व देकर समस्त देश के आर्य भाइयों को सफल बनाने में लग जाना चाहिये। इस आशा और विश्वास के साथ कि मेरी इस प्रार्थना पर आप ध्यान देंगे सहयोग के लिए निमन्त्रण दे रहा हूं—विनीत कालीचरण आर्य

वेदोपदेश

सुपथ पर चलने के फल

ओ३म्, स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत्। प्र न आयूंषि तारिषत्॥ (ऋ १।२५।१२)

(सः) वह (सुक्रतुः) उत्तम कर्मों वाला (आदित्यः) असखण्डनीय शक्ति वाला भगवान (विश्वाहा) सब दिन (नः) हमारे लिये (सुपथा)। उत्तम मार्ग (करत्) बनाता है, वह (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनों को (प्रतारिषत्) बहुत लम्बा करे।

भगवान् सबका सदा कल्याण करते हैं। अल्पज्ञ मनुष्य को अपने गन्तव्य पथ का पूर्ण ज्ञान नहीं होता अतः सृष्टि के आरम्भ में भगवान उसको वेदज्ञान प्रदान करते हैं। उस ज्ञान के द्वारा ही मनुष्य को कर्म्म, अकर्म्म, पुण्य-पाप, भद्र अभद्र, स्वित दुरित, गन्तव्य अगन्तव्य, कृत्य, अकृत्य का बोध होता है। भगवान सृष्टि के आरम्भ मे ज्ञान देकर विश्रान्त नहीं हो जाते, वे सदा मनुष्य को चेतावनी देते रहते हैं। जब जब मनुष्य के हृदय मे कोई पाप भावना उठती है, भगवान उसके विरुद्ध उसके हृदय में उसे सावधान करते हैं। भले ही वह मनुष्य उस अनसुना कर दे।

इसी लिए भगवान से प्रार्थना की जाती है—अग्ने नय सुपथा (य० ४०।१६) हे सबको आगे ले जाने वाले भगवान्! हमें सुमार्ग से ले चल। भगवान के अतिरिक्त सुमार्ग का पूर्ण ज्ञाता और कोई है भी तो नहीं।

भगवान् का इस मन्त्र में आदित्य कहा गया है। आदित्य का एक अर्थ है—अदिति=प्रकृति का स्वामी। अदिति का एक अर्थ भोगसामग्री का मूल। अर्थात् भगवान् समस्त भोग-सामग्री के मूल के स्वामी हैं। दूसरे शब्दों में वह जीवनाधार है। जीवना धार जीवन की सामग्री जब देता है तब उसके उपयोग की विधि, प्रयोग की पद्धति का ज्ञान भी अवश्य देता है। यतः भगवान् की ज्ञान बल क्रिया शाश्वत हैं, अतः वह ज्ञान भी सदा देते हैं। आदित्य का एक और अर्थ है अखण्डनीय नियमों वाला। वेद मे बहुत बार कहा गया है कि भगवान के व्रत=नियम अदाभ्य=न दबाए जा सकने वाले हैं।

आदित्य का विशेषण यहाँ दिया गया है सुक्रतुः। इसके सम्बन्ध मे वेद मे इस प्रकार कहा गया है—

स सुक्रतुर्यो विदुरः पदानां
पुनानो अर्कं सुभोजसं नः।
होता मन्द्रो विशां दमूनास्तिर
स्तमो ददृशे राम्याणाम्॥ ऋ० ७।९।२

वह सुक्रतु है जो भक्तों की कठिनताओं को दूर करता है, और हमारी स्तुति को पवित्र करता हुआ, प्रगति शील करता हुआ हमें उत्तम भोजन साधन प्रदान करता है। वह सबको प्रेरणा देता हुआ आमन्त्रित करता है और प्रजाओं के शान्त हृदय में वास करता हुआ रमणीय पदार्थों पर से अन्धकार का आवरण दूर करके दर्शन देता है।

जब कोई कठिनता आ जाए किसी विकट संकट से घट जाने का भय उपस्थित हो तो उससे निपटने को भगवान का ध्यान करो। उसका गुण गण गान करो। अवश्य यह संकट कट जायगा, वह कठिनता बैठ जायगी हम अज्ञानी हैं। हमारे स्तोत्र मे भूल हो सकती है, उस भूल चूक को सुधार कर, सवार कर भगवान उसे पवित्र करके स्वीकार कर देते हैं। विचारने की बात है। भगवान् की यह कितना महती कृपा है। कौन अभागा है जो इस तत्व को जानकर भगवान् का गुणगान न करेगा, उसका ध्यान न करेगा?

वह हमें सदा पुकारता है, तथा सदा हमारी सुनता है। ऐसे के साथ संबन्ध स्थापित करना किसे न रुचेगा? और जब कि वह मस्ती देने वाला, आनन्द प्रफुल्ल करने वाला है। उसे खोजने के लिए कहीं बाहर नहीं जाना पड़ता वह सबके हृदय में वास कर रहा है। बहिर्मुख नेत्रों को मूंद कर भीतर के चक्षु खोल लो, प्रीतम के दर्शन होंगे और साथ ही अनुभव होगा कि वह हमारे अज्ञान आवरण को दूर कर रहा है। हमारे भोग्य पदार्थों पर पड़े पर्दे को फाड़ कर उनका यथार्थ स्वरूप दिखला रहा है।

जिस सूक्त का यह मन्त्र है, उसका देवता=प्रतिपाद्य विषय 'वरुण' है। वरुण का एक अर्थ अन्तर्यामी है. अर्थात् गुप्त बात तक को वह जानता है, तभी तो प्रतीची दिशा का उसे अधिपति माना गया है। अथर्ववेद में कहा भी गया है—यत्र द्वौ निषद्य मन्त्रयेते.........=जहाँ दो मिलकर कोई गुप्त मन्त्रणा कर रहे हैं। वहां तीसरा वरुण उनकी मन्त्रणा को जान रहा है। वरुण को ऋ० १।२५।१ में सर्वव्यापक कहा गया है। यथा—निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः॥ दृढ़ नियमों वाला सुक्रतु वरुण सम्पूर्ण ठिकानों में पूर्णरूप से साम्राज्य मे रह रहा है।

सर्वव्यापक के साथ वह सबका राजा भी है। ठीक प्रकार से राज्य करने के लिए राज्य में सर्वत्र विद्यमान रहना आवश्यक है। सर्वत्र मूल्य कारण और सदा रहने के कारण वह सर्वज्ञ भी है यह बात ऋ० १।२५।११ में कही गई है। यथा—अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति। कृतानि या च कर्त्वा॥=सर्वव्यापक होने के कारण वह ज्ञाता सब अद्भुत बीत चुके, वर्तमान तथा आगे होने वाले कार्यों को सम्मुख देखता है।

अतः वह मार्ग, अमार्ग का सब ज्ञाता है और वही इसी हेतु सुपथ प्रदर्शन करा सकता है। सुपथ पर चलने के अभिलाषियों को सदा उसकी शरण ग्रहण करनी चाहिये वह अवश्य सुपथ पर ले जायगा।

जीवन एक दीर्घ यात्रा है, मृत्यु उसका पड़ाव है। विश्राम करके फिर आगे चलना होता है। यहाँ जान है, वह अत्यन्त कष्ट एवं परिश्रम से प्राप्त होता है। उसके लिये [illegible] निरन्तर उद्योग करना [illegible] मृत्यु उस सतत यत्न में विघ्न करता है। मृत्यु के पश्चात यदि मानव तन न मिला तो मार्ग से यात्री भटक गया। यदि मानव तन मिला तो बालपन व्यर्थ जायगा, ही उसके पश्चात किन्हीं कुसंस्कारों की ओर जा पड़ी तो पुनः अभिष्ट की पूरी संभावना [illegible]

इन बातों को सोचकर ऋषि लोग दीर्घ जीवन की कामना किया करते थे क्योंकि जीवन्नरो भद्रशतानि पश्यति=जीवित मनुष्य सैकड़ों के अनुभव करता है। इसी लिए यहाँ मन्त्र में प्रार्थना की है—प्रण आयूंषि तारिषत्=भगवान हमारे जीवन बहुत लम्बे करे। इस मन्त्र में इस प्रार्थना का बहुत बड़ा महत्व है। अर्थात् यह प्रार्थना है कि तब तक हमारा जीवन-तन्तु वितत रहे जब तक हम सुपथ प्राप्त करके चरम लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर लेते। दीर्घ जीवन का एक साधन दीर्घ सन्ध्या है जैसा कि मनु जी ने कहा है—ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद् दीर्घमायुरवाप्नुयुः=दीर्घ संध्या करने के कारण ऋषियों ने दीर्घ आयु प्राप्त की। दीर्घ सन्ध्या के लिए मनुष्य को अपना जीवन सुव्यवस्थित बनाना पड़ता है। आहार विहार आदि सब मे सद्व्यवहार का अवलम्बन करना होता है। कहा भी है—युक्ताहार विहारस्य युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा। योग नियमित आहार वाले, संयत विहार वाले व्यवस्थित निद्रा तथा जागरण वाले मनुष्य के दुःख का नाश करता है।

भगवान् स्वयं सुक्रतु हैं अतः भक्तों को भी सुक्रतु होना पसन्द करते हैं।

एक मनोरथ !

अयं कविरकविषु प्रचेता, मर्त्येष्वग्निरमृतो निधायि।
स मा नो अत्र जुहुरः सहस्वः, सदा त्वे सुमनसः स्याम॥

ऋ०—७.४.४.

(अयं) यह (प्रचेताः अग्निः) चेतन अग्नि (अकविषु कविः) इन अकवियों में कवि होकर (मर्त्येषु अमृतः) इन मरने वालों में अमृत होकर (निधायि) निहित है, रखा हुआ है। (सहस्वः) हे बल तेज शक्ति वाले! (सः) वह तू (नः अत्र मा जुहुरः) हमें इस संसार में कभी मत विनष्ट कर, किन्तु हम (सदा) सर्वदा (त्वे) तुझ में (सुमनसः स्याम) अच्छे मन वाले, प्रसन्नता पाने वाले (स्याम) बने रहें।

वही अचेतन इस शरीर में, एक चेतनामय है।
वही विनश्वर विश्व जगत में अमृत-रूप अक्षय है॥
वही काव्यमय है सुन्दर है सर्व शक्ति संपन्न महान्।
प्रेम भाव से शीस नवाकर करते सब उसका ही ध्यान॥
रूठ जाय दुनिया; तुम केवल बने रहो मेरे स्वामी।
मैं तुम मे, तुम मुझ में लय हो रमे रहो अन्तर्यामी॥

आर्य समाज के समस्त पत्रों में सबसे अधिक छपने वाला आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र—

लखनऊ–रविवार १५ मई तदनुसार ज्येष्ठ कृष्ण १ सम्वत २०१२ (सौर ३ ज्येष्ठ) दयानन्दाब्द १३१ सृष्टि संवत् १ ७२९४९०५५

अगला कदम !

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने अपनी १ मई की बैठक मे आर्य समाज की वर्तमान निष्क्रियता को समाप्त करने के लिए एक विशेष कार्य क्रम स्वीकृत किया है। कार्यक्रम इसी अङ्क में अन्यत्र प्रकाशित है, यह कैसा है, इसे पाठक पढ़कर स्वयं अनुभव करेंगे।

यह प्रसारित कार्यक्रम कितना भी अच्छा क्यो न हो, यदि देश की आर्य समाजें व जनता उसे व्यावहारिक रूप नहीं देगी तो वह केवल कागज पर रह जाएगा, यह हमें भली भाँति समझ लेना चाहिये।

प्रसारित कार्यक्रम के चार भाग हैं १—आंतरिक २—जनसघर्ष ३—प्रसार विधि ४—विदेश प्रचार। इन चारो मार्गों का अपना विशेष महत्व है। और प्रत्येक एक दूसरे पर आधारित हैं। दूसरे शब्दो म यह कहा जा सकता है कि किसी एक अश की उपेक्षा सारी व्यवस्था पर प्रभाव डालती है।

कार्यक्रम के प्रथम अग में मुख्य बात यह है कि आर्यसमाज की वेदी आर्यसमाज की वेदी रहने दी जाए। आर्यसमाज मदिरो मे अवैदिक कृत्यो को स्थान न दिया जाए, और सभी आर्य महानुभाव जीवन में वैदिक आदर्शों को व्यावहारिक रूप देने का यत्न करें।

कार्यक्रम का दूसरा भाग जन सम्पर्क की प्रेरणा करता है इस बात से सभी सहमत हैं कि हम आज जनता से दूर होते जा रहे हैं, व्यवहारिक कठिनाइयां सुलझाने का हमारे पास कोई साधन नहीं है और विरोधी तत्वों को [illegible]

हममें होनी चाहिए वह भी उस मात्रा में आज नहीं पायी जाती, जिसकी कि आशा हमसे की जाती रही है। अत इस कार्यक्रम द्वारा इन कमियो को दूर करने पर बल दिया गया है। गो रक्षा आदोलन, ईसाई विरोध आँदोलन, शुद्धि, चरित्र निर्माण और विद्यार्थियो म अनुशासन पर बल दिया गया है। सह शिक्षा का रचनात्मक निरोध करने और आर्य सस्थाओ को लक्ष्य के अनुसार ढालने का निर्देशन है।

तीसरा और चौथा कार्यक्रम वेद प्रचार का है। एक देश में और दूसरा विदेश मे। गभीरता से सोचा जाये तो हमारा यह अग अत्यन्त दुर्बल है। जिसका कारण हमारी उदासीनता प्रतीत होती है। "प्रचार" शब्द म जो गभीर उत्तरदायित्व छिपा हुआ है उसे हम अभी अनुभव नहीं कर पा रहे, और न हम सोच भी पा रहे हैं कि इस विषय मे कैसे कार्य किया जाए ?

लाखो दैनिक, साप्ताहिक, मासिक समाचार पत्र समस्त विश्व के रेडियो, टेलीविजन, सूचना विभाग एक ओर हैं और हम आर्यसमाज के सैनिक एक ओर! अथाह धन राशि एक ओर और खाली हाथ एक ओर। किन्तु फिर भी इन का सामना हमने करना ही है। भौतिक साधनो से हम कर नहीं सकते, फिर सामना कैसे हो ?

उत्तर म हमारा कथन है कि त्याग और बलिदान से! वे धन म बड़े ह हम त्याग म बडे बनें! इस प्रचार कार्य को सचालित करने के लिए प्रारम्भ म कुछ ब्राह्मण चाहिएँ। गद्दियो और कुर्सियो पर आसीन व्यक्ति नहीं। इसलिए इस कार्यक्रम की सफलता के लिए सर्वस्व होम कर प्राण की आहुति तक देने की निष्ठा वाले कर्मवीर आर्य चाहिए! हमारा कथन है कि यदि १०० व्यक्ति भी आर्य समाज में सच्चे दयानन्द के भक्त निकल आयें तो एक वर्ष में देश का काया पलट किया जा सकता है।

सार्वदेशिक सभा के मत्री का गुरुतर कार्यभार कर्मठ लौह पुरुष माननीय श्री कालीचरण जी आर्य ने सभाला है, उनम ऋषि के प्रति अटूट श्रद्धा है, सर्वस्व होम कर भी कार्य मे लगने की भावना है, और हैं वे त्याग साधना के मूर्तिमान प्रतीक। उन के निर्देशन मे, प० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति के प्रधानत्व मे आज आर्य समाज की नौका चल रही है। प० इन्द्र जी अमर शहीद के सुपुत्र हैं और आर्य जगत् आज उन्हे भी निडर पिता के वीर पुत्र के रूप मे देखने के लिए उत्सुक है।

निर्माण की दिशा में इस वर्ष दैनिक-आर्यमित्र का प्रकाशन भी एक क्रांतिकारी पग है। हम अनुभव कर रहे हैं कि समय बदल रहा है, हमारा आर्य समाज का नया इतिहास भी लिखा जा रहा है, ऐसे में यदि देश के एक छोर से दूसरे छोर तक रहने वाली आर्यजनता भी जाग उठे तो युग बदलते देर न लगेगी।

हम देश की समस्त आर्यसमाजो व आर्यपुरुषो से यह निवेदन करना चाहते हैं कि वे कर्तव्य को पहचानें वर्तमान गति को बदलें और चलें महान गुरू महर्षि दयानन्द की राह पर।

समाजें उपदेशक, कार्यकर्ता सदस्य सभा यदि इस कार्यक्रम को मूर्त रूप देना लक्ष्य बना लें तो कौन कह सकता है कि सफलता न मिलेगी। आज हाहाकार और सम्प्रदायवाद [illegible] सघर्ष के तूफान म एक ही आशा की किरण है और वह है महर्षि का वेद का दिव्य सदेश। सदेश का प्रसार हमारे हाथ म है। विश्व का निर्माण इस सन्देश के हाथ म है। धरती का भविष्य सभाले हम मौन बैठे हैं यह मौन टूटे हम उठे एक बार फिर ससार को बदलने के लिए यही है आज की सबसे बड़ी आवश्यकता और सार्वदेशिक सभा द्वारा प्रसारित कार्यक्रम का सार। किन्तु सफलता तो आपके हाथ म है आप यह क्या [illegible]

भूलिए नहीं !

इसी अक के मुख्य पृष्ठ पर सार्वदेशिक व उत्तर प्रदेशीय आर्यप्रतिनिधि सभा के मन्त्री माननीय कालीचरण जी की मार्मिक अपील देश के समस्त आर्य जनों के नाम प्रकाशित हो रही है। आर्यसमाज के सर्वमान्य विद्वान पण्डित गगाप्रसाद जी उपाध्याय ने भी 'सफेद हाथी नहीं' शीर्षक से आर्य जनता को सहयोग के लिए पुकारा है इन विद्वानो के कहने के बाद हमारे, कहने की आवश्यकता कुछ नहीं रह जाती।

हम केवल माननीय श्री कालीचरण जी आर्य के इन शब्दों की ओर जनता ध्यान का आकर्षित कराना चाहते हैं कि आर्यमित्र का कमी का कारण केवल आदर्शों पर अडिग रहना है। वस्तुस्थिति का यह स्पष्ट चित्रण है। यदि आज हम नगर के सिनेमा विज्ञापन प्राप्त करने लगे तो हमें कम से कम ६०) दैनिक की आय हो सकती है। किन्तु ऐसे विज्ञापन तो हम किसी भी मूल्य पर लेंगे नहीं तब एक ही मार्ग हमारे सम्मुख रह जाता है कि हम उन व्यक्तियो को पुकार जो हमारे आदर्शों से सहमत हो।

हमारी समझ म बहुत विचार करने पर भी यह नहीं आता कि जब [illegible] १२५००) [illegible] इकट्ठा [illegible] रहा है तब उसकी प्राण रक्षा के लिए वे सभी उत्साही व्यक्ति क्यो नहीं आ जाते !

क्या हजारो दयानन्द भक्तो म एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं जो पूरे बल से इसकी सहायता के लिए धन दे सके! ईंट पत्थर और मकानो के लि[illegible] जलसो का तीन दिन के प्रसिद्ध के लिए हजारो रुपया [illegible] करनेवाले व्यक्ति और समाजें क्या मौन हैं? क्या आप वैदिक भावनाओ का प्रसार

सफेद नहीं, काला हाथी!

आर्यसमाज के जीवन के लिए आवश्यक

श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय की अवसरोचित चेतावनी

एक सज्जन मेरे पास आये और कहने लगे। "इस सफेद हाथी के विषय में आप का क्या विचार है? यह कब तक चलेगा? मैंने कहा, कौन सा सफेद हाथी? उत्तर मिला, "दैनिक आर्यमित्र" मैंने कहा,' सफेद ही हाथी" तो नहीं। वह बिल्कुल काला है। ऐसा काला जैसे सब सामान्य हाथी होते हैं। यह जी भी सकता है और उपयोगी भी हो सकता है यदि खाना निरन्तर मिलता रहे", उन्होंने इस को 'सफेद हाथी' इस लिये कहा कि जैसे सफेद हाथी को केवल फैशन के लिये पालते हैं वह किसी काम में नहीं आता इसी प्रकार 'दैनिक आर्यमित्र भी है। इस के खान के लिये बहुत चाहिये, इसका लाभ कुछ नहीं। इस विचार के बहुत लोग हैं, विशेष कर आर्य समाज में। यदि ऐसे विचार न होते तो क्या इतनी आर्य जनता जो लाखों प्रतिमास व्यय करती है एक दैनिक न चला सकती। परन्तु मनोवृत्ति भी तो चाहिये और उपयोगिता के परखने के लिये बुद्धि की प्रखरता भी। मुझे यहा एक घटना याद आगई। प्रयाग के पाणिनि कार्यालय में एक किताब छापी थी। पचास वर्ष पूर्व। उसका मूल्य था ~~)। मुझे पिछले दिनों आवश्यकता हुई। मैंने खोज की तो उत्तर मिला कि केवल तीन पुस्तकें बची हैं। वे जिल्द की लेना हो तो ५०) प्रति पुस्तक देंगे, मैंने तुरन्त ५०) भेज दिये और एक फटी सी जिल्द मेरे पास आ गई जिसकी जिल्द भी बंधी नहीं और पन्ने तो छूने से ही फटते हैं। परन्तु फिर भी मैंने ईश्वर को धन्यवाद दिया कि पु[illegible]क मिल [illegible]। कौन जान कोई दूसर[illegible] ने आता तो फिर छपन की नौबत मेरे [illegible]न में [illegible] आ नहीं सकती थी। मैंने [illegible]सको यत्न सभालकर रक्खा है और निरन्तर प्रयोग म लाता [illegible] मेरे नौकर को तो आश्चर्य हुआ कि उन फटे से पन्नो के लिये मैने उसका तीन मास से अधिक [illegible] च कर दी। यह है। [illegible]न्तर मन[illegible] म। लोग आर्यमित्र [illegible] मूल्य को नहीं समझते। और [illegible]

[illegible]कते। उनके समाज मन्दिर में जो चित्रकारी करता है उसका मूल्य उस मनुष्य से अधिक है जो एक उपयोगी पुस्तक लिख देता है। आज माण्डूक्य उपनिषद् जैसी दो पन्ने की पुस्तक को लोग दो पैसे को भी न लेंगे। इसको कहते हैं दिनो का फेर आर्यसमाज के भी दिनो का फेर है कि इसको 'दैनिक मित्र' की उपयोगिता का न भान होता है न परख सकते हैं।

मुझे तो दैनिक मित्र देखकर बड़ा हर्ष होता है। प्रथम लाभ तो यह है कि प्रति दिन वेद के किसी न किसी मंत्र की व्याख्या मिल जाती है। दूसरे आर्य समाज के मुख्य समाचार समय पर अवगत हो जाते हैं। इधर सार्वदेशिक का चुनाव हुआ उधर दूसरे ही दिन सब को पता चल गया, यदि अपना पत्र न होता तो यह प्रमुखता कौन देता? श्री मंत्री जी ने जो सन्देश दिया वह क्या दूसरे छापते साधारण समाजों के समाचार भी कब छप जाते हैं। यह क्या कुछ कम है।

राजनीति की बात सब से अधिक तो नीति का मतभेद मेरे और अधिकारियों के बीच में रहता है। सम्पादक जी वही नहीं लिखते जो मुझ को प्रिय है। और यह हो भी कैसे हो सकता है कि प्रत्येक बात मेरे मन की ही हो जाय। परन्तु उदार दृष्टि से देखने से दैनिक मित्र की उपयोगिता समझ में आ जाती है और मुझे मतभेद खटकता नहीं जब तक कि उस में उदारता हो और अनुदारता हो तो भी क्या? हम को अभिमान होना चाहिये कि हमारे पास एक दैनिक है और अवसर पड़ने पर हम उसका उपयोग कर सकते हैं।

आर्य समाजियों का चाहिये कि दैनिक मित्र को किसी प्रकार बन्द न होने द। पर अवश्य हाथी है। इस को रोज दो मन भोजन चाहिये। परन्तु यह करते भी हाथी का ही काम है दो ताले खाने वाले चूहों से नहीं हो सकता।

दैनिक मित्र सफेद हाथी नहीं है। हैं। वह तो सर्वथा काला है। जामुन की तरह काला और जामुन की तरह मीठ लेकिन आकार में महान्।

मैंने जब श्री कालीचरण जी के सार्वदेशिक सभा के मन्त्री होने का समाचार सुना तो प्रसन्नता हुई और बधाई भी दी। लेकिन एक आशङ्का हो गई कि कहीं 'दैनिक मित्र' के पालन पोषण में कमी न आ जाय। दरिद्र माता के जल्दी जल्दी दो सन्तान हो जायँ तो कुछ कठिनाई अवश्य हो जाती है परन्तु आशा रखनी चाहिये कि दैनिक मित्र के पालन पोषण में कोई

([illegible] का शेष)

नहीं चाहते, क्या आप नहीं चाहते कि यह [illegible] सदा के लिए समाप्त हो जाय, 'फिर क्यो नहीं देते साथ!

कई दिन से हम घोर चिन्ता मे बैठे यह सोच रहे हैं कि क्या कारण है, कौन सी त्रुटि है जो आर्यबन्धु हमारी अर्चना पर ध्यान नहीं दे रहे, हम अपनी भूल खोज नहीं पा रहे, आर्यमित्र दैनिक का प्रकाशन हमे अनुचित नहीं लग रहा, अपितु हम यह अनुभव कर रहे हैं कि हमे प्रचार का 'एक अस्त्र' मिल गया हमारी एक बड़ी दुर्बलता दूर हो गयी।

और आज भी हम अपने निश्चय और विश्वास पर अटल हैं। हृदय कह रहा है कि आर्यमित्र उन्नति करेगा, भारत के अन्य दैनिक पत्रो के समान निकलेगा केवल आवश्यकता यह है कि आप यह चाहने लग जाए।

काश, कि आज सम्पूर्ण आर्यजगत् हजारो रुपए अन्य स्थानों पर व्यय करने के स्थान पर हमे देता तो फिर ज्ञात होता परिणाम और कार्य।

यह न भूलिए कि आर्यमित्र की उन्नति आपकी उन्नति है आर्यसमाज की उन्नति है। शक्ति परीक्षा के अवसर बार-बार नहीं आते यह अवसर बहुत प्रतीक्षा के बाद आया है और हम सोच रहे हैं कि क्या क्या लहराता गौरव का प्रतीक 'आर्यमित्र' झुक जाएगा?

क्या हम सभी के लिये यह लज्जा की बात न होगी? क्या फिर कभी हम यह साहस कर सकेंगे? क्या हम फिर खड़े रह सकेंगे? सोचिए इन प्रश्नो पर गभीरता से, और फिर आइए हमारे साथ। धन की कमी दूर करने के लिए जो भेज सकते हो भेजिए। सदस्य अधिकाधिक सख्या मे बनाइए।

आशा के साथ, जीवन के लिए, निर्माण पथ पर चलने का हमारा निमत्रण आप ठुकराए नहीं, समय की यही मॉग है।

अनिवार्य फौजी सेवा

आस्ट्रिया में आरंभ होगी

विएना, १२ मई। आस्ट्रियन समाचार पत्रों की धारणा है कि आस्ट्रियन सधि की पुष्टि होने के बाद ही आस्ट्रिया की सरकार पार्लियामेंट से अनिवार्य फौजी सेवा का स्वीकृति मॉगेगी।

सम्भवत सन् १९५६ के आरंभ मे सन् १९४५ की श्रेणी वाले सैनिको को एतदर्थ बुला लिया जायगा। किंतु अनिवार्य फौजी सेवा योजना पर पार्लियामेंट की स्वीकृति मिल जाने पर ही ऐसा हो सकेगा।

ए० एफ० पी०

कलकतिया बन्दर पागल हो गया

तीन बच्चों को फेंक दिया

कलकत्ता, 13 मई। दक्षिणी कलकत्ता की निकटवर्ती [illegible] बस्ती बेहाला में एक बन्दर अचानक पागल हो गया और एक-एक करके उसने तीन बच्चों को घायल कर डाला।

पहिले वह बन्दर एक झोपड़ी में गया और गृहस्वामी के सोये हुए बच्चे को उठाकर पेड़ की फुनगी पर जा बैठा। शोर मचाये जाने पर उसने बच्चे को नीचे फेंक दिया जिससे वह बुरी तरह घायल हो गया। बाद में उसने दो अन्य बच्चों को घायल कर डाला और एक से दूसरे वृक्ष पर छलांगें मार-मार कर काफी देर तक ऊधम मचाये रक्खा। यू० पी०

भारतीय नौपोत भूमध्य सागर में अभ्यास करेंगे

नयी दिल्ली, १४ मई। इस गर्मियो म भारतीय नौसेना के ६ जहाज भूमध्य सागर में बृटिश बेड़े के साथ शिक्षण सम्बन्धी गति विधियो मे भाग लेंगे। भारतीय बेड़े का नेतृत्व ध्वजपोत ' दिल्ली ' करेगा। इसके अतिरिक्त बेड़े में 'राजपूत ' रणजीत, ' ' गोदावरी, ' ' गगा ' और ' गोमती ' जहाज भी होंगे।

किदवई-स्मारक-कोष

नयी दिल्ली, १४ मई। रफी अहमद किदवई के स्मारक कोष के लिये प्रधान मन्त्री के अपील के बाद देश के सभी भागों से जनता उदारता पूर्वक कोष में दान दे रही है! १२ अप्रैल १९५५ से 11 मई १९५५ तक १५-[illegible])॥। कोष में और प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार 11 मई १९५५ तक कुल कोष में ९,११, ८२७-)॥ जमा हो चुके हैं! श्री एस० ओ० [illegible], [illegible] हाउस, नयी दिल्ली के पते पर इस कोष के लिये धन भेजा जा-

मशीनें सब काम करेंगी और आदमी......?

[लेखक—बर्ट्रेण्ड रसेल]

वैज्ञानिकता ने आज के विचारकों के समक्ष एक गंभीर समस्या खड़ी कर दी है। व्यक्ति के श्रम की उपेक्षा कर आज का वैज्ञानिक मशीनों को परिष्कृतकर सब काम चलाना चाह रहा है इस प्रकार मशीनों को काम दे व्यक्ति को बेकार बनाने के यत्न जारी हैं किन्तु परिणाम क्या होगा इस की चिन्ता कौन करे? गंभीर विचारक विश्वविख्यात दार्शनिक लेखक ने प्रस्तुत लेख में एक नया सुलझा दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है —संपादक

बहुत सम्भव है कि एक शताब्दी बाद यह कहा जाय कि 'आदमी—प्रकृति का वह पुराना पुर्जा।' आज मशीनों के कार्य की प्रगति को देखकर यह प्रश्न उठना स्वभाविक है कि दुनियां की जरूरियात की हमारी सारी बातों को अगर मशीनें ही पूरा करने लगेंगी, तो आदमियों का क्या उपयोग रह जायगा? यह कल्पना करना कि सन् २०५५ में मनुष्यों के लिए करने को बहुत कम रह जायगा, सर्वथा असंगत नहीं है। इस सम्भावना की यथार्थता को समझने के लिए हमें १०० वर्ष पहले की अपनी स्थिति पर दृष्टिपात करना होगा। १८५५ में फैक्टरियों की चिमनियां साफ करने के लिए छोटे-छोटे बच्चों को उनमें उतारा जाता था। किन्तु आज सिर्फ एक बटन दबाने भर से बहुत कम समय में वे अपने आप ही साफ हो जाती हैं। एक या दो शताब्दी पहले जो कपड़े, खाना, फर्नीचर तथा जीवन की अन्य आवश्यक चीजें हाथों से तैयार की जाती थीं, अब अधिकांशतया मशीनों से ही बनने लगी हैं।

मशीनों को चलाने के लिए एलेक्ट्रोनिक्स

फिर भी आज मशीनों को चलाने और नियन्त्रित करने के लिए मनुष्य के हाथ की आवश्यकता है। एक शताब्दी बाद शायद यह आवश्यकता भी नहीं रह जायगा, क्योंकि मनुष्य के हाथों और दिमाग का काम एलेक्ट्रोनिक्स से अपने आप ही हो जाया करेगा। अमरीका और इंगलैण्ड में इनका काफी प्रयोग होने भी लगा है, उदाहरण के लिए आज जो रेडियो सैट बनते हैं, उनके विविध अंगों को जोडने और लगभग पूरा सैट तैयार करने का काम इनके द्वारा अपने आप ही हो जाता है। अलग अलग बने हुए पुर्जे ठीक समय पर एक दूसरे के निकट आते हैं और यन्त्र मानुष के हाथ उन्हें जोड देते हैं। इस कार्य में मनुष्यों का उपयोग केवल उन एलेक्ट्रोनिक इंजीनियरों के रूप में ही होता है, जो निश्चित समय पर विविध बटनों को दबाकर इस कार्य को सम्पन्न कराते हैं। इस तरह काम करनेवाले यन्त्र पूरे २४ घंटे काम करते हैं और सफाई या मरम्मत के सिवा उनके कभी छुट्टी मांगने या हड़ताल करने की भी कोई सम्भावना नहीं।

बिना ड्राइवर की मोटरें!

ऐसा कोई वैज्ञानिक कारण नहीं देख पड़ता कि जो अन्यान्य चीजें यन्त्रों द्वारा बनती हैं, उनमें भी इसी विधि का कोई कारण भी नहीं देख पड़ता कि जिन कार्यों के लिए आज मनुष्य बहुत आवश्यक समझा जाता है, उनमें इस विधि के प्रयोग से वह अनावश्यक क्यों नहीं हो जायगा। एलेक्ट्रोनिक्स के विशेषज्ञों का कहना है कि मोटरें तक बिना ड्राइवर की चल सकेंगी। उनका संचालक राडर से होगा और उसीके द्वारा उन्हें दुर्घटनाओं से बचाने की भी व्यवस्था रहेगी। उनका चालन ऐसे सिगनलों से नियन्त्रित होगा कि उनके मुड़ने, चलने और रुकने आदि में कोई गड़बड़ी न होगी धीरे धीरे यात्रीगण इस आश्चर्यजनक अनुभव के आदी हो जायेंगे। ऐसे ही वे उन हवाई-जहाजों में भी यात्रा करने के आदी हो जायेंगे, जो स्वचालित होंगे और जिन्हें कुहरे या अन्धेरे के कारण किसी भी प्रकार की कठिनाई न होगी।

समाचार पत्रों का स्थान टेलिवीजन

अगले ५० वर्षों में टेलिवीजन बहुत-कुछ समाचारपत्रों का स्थान लेने लगेगा और सुबह तथा शाम की खबरें केवल पढ़ी या सुनी ही नहीं, देखी भी जा सकेंगी। यह परिवर्त्तन विश्वव्यापी होकर रहेगा और विशिस्की तथा आइसनहोवर के उत्तराधिकारी आपके उतने ही निकट आ जायेंगे, जितने कि आपके मित्र - परिजन। हां, इससे एकांत या गोपनीयता अवश्य पुराने की चीज हो जायेंगी और आज जिस प्रकार माताएं टेलिविजन द्वारा बराबर अपनी सन्तान के सम्पर्क में रहती हैं, उसी तरह अब लोग सब किसी के सम्पर्क में रह सकेंगे—भले ही वे चाहें या न चाहें। सार्वजनिक कार्यकर्त्ता भी इससे बच नहीं सकेंगे। 'इन्फ्रा रेड' टेलिविजन से तो पुलिस और मकान-मालिक चोरों तक की हर गतिविधि को देख और सुन सकेंगे।

मानव-मस्तिष्क की जगह मशीनें

यह सुनकर तो शायद बहुत लोगों को राहत मिलेगी कि आनेवाले जमाने में अंकगणित अथवा समूचा गणित ही पुराने जमाने की चीज हो जायगा। बड़े-बड़े व्यापारी दफ्तरों और बैंकों में पहले हिसाब किताब का जो काम दर्जनों क्लर्क किया करते थे, अब चन्द मिनटों में ही छोटी-छोटी मशीनें करने लगी हैं। अमरीका में इस काम को करनेवाली बड़ी बड़ी मशीनें भी तैयार की गई हैं। इनमें से एक का नाम है 'यूनिवेक' जिसने पिछले चुनाव में पड़े वोटों का परिणाम केवल चालिस मिनटों में ही घोषित कर दिया था। बाद में जो अन्तिम परिणाम घोषित हुआ, उससे इस परिणाम में केवल एक प्रतिशत का ही फर्क निकला। एक सीमा तक ये मशीनें सोच भी सकती हैं, किन्तु अधिकांशतया तो ये मानव मस्तिष्क द्वारा दी गई सूचनाओं को सम्बद्ध ही करती हैं।

तब आदमी क्या करेगा?

इस स्थिति में जो महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है, वह यह है कि जब मनुष्य की आवश्यकता की सारी चीजें—खाना और कपड़ा तक—मशीनें ही तैयार करने लगेंगी, तब आदमी अपने समय का उपयोग किस प्रकार करेगा? मशीनों के संचालन और नियन्त्रण के लिए कुछ विशेषज्ञों और इंजीनियरों की आवश्यकता अवश्य पड़ेगी, किन्तु बाकी लोगों को तो शायद प्रतिदिन एक घंटे से भी अधिक काम नहीं करना पड़ेगा। बाकी समय का उपयोग वे पढ़ने-लिखने, गाने बजाने, नाचने, चित्रकारी करने, गीत बनाने और अन्यान्य ऐसे बौद्धिक कामों को करने में लगा सकेंगे जो कि मशीनें नहीं कर सकतीं।

यह स्थिति बहुतों को बड़ी आकर्षक और आनन्ददायक जान पड़ेगी, किन्तु इसका एक दूसरा और गम्भीर पक्ष भी है। वह यह है कि जो इन मशीनों के मालिक होंगे, उनके हाथ में इतनी अधिक सत्ता आ जायगी, जितनी कि शायद मानव-इतिहास में पहले कभी भी नहीं रही। ये लोग चाहे शासक हों और चाहे कुछ व्यक्तियों का एक समूह मात्र, पर वे इस असाधारण सत्ता का उपयोग बड़ी-से-बड़ी भलाई अथवा बुराई के लिए कर सकेंगे। इस प्रकार उत्पादन के साधन स्वभावतया कुछ ही लोगों के हाथों में केन्द्रीभूत हो जायँगे, जिनके द्वारा मानवता का अहित न होकर हित ही हो, इसके लिए सामाजिक चिन्तन में एक नई क्रान्ति की आवश्यकता होगी।

बहुजनहिताय का आदर्श

यह कहना आसान है कि ऐसा हमारे जीवन-काल में तो होगा नहीं, अतः हमें इस स्थिति का मुकाबला करने की चिन्ता क्यों करनी चाहिए? औद्योगिक क्रान्ति के जिस अभिशाप को हम अभी तक भुगत रहे हैं, वह भी इसी तरह सोचनेवालों द्वारा की गई थी। उन्होंने भी आनेवाली पीढ़ियों के भविष्य के सम्बन्ध में बहुत सोचने विचारने का कष्ट नहीं किया था। हमारे समय में विज्ञान तथा यन्त्रों की प्रगति इस तेजी से हो रही है कि हमें इसकी विभीषिका का ठीक-ठीक एहसास हो, इससे पहले ही यान्त्रिक उत्पादन के विकास का ताना बाना हमें चारों ओर से घेर ही न ले। कम से-कम अभी तो हम इसके लिए तैयार नहीं हैं। पिछले युद्ध के बाद से ऐसे कई उदाहरण सामने आए हैं, जबकि मजदूरों ने कम आदमियों से अधिक उत्पादन करानेवाली मशीनों पर काम करने से इसलिए इन्कार कर दिया कि उनसे उनके अनेक साथी बेकार हो जायँगे। वे यह समझ ही नहीं सकते कि यदि खुद उत्पादन अधिक होगा, तो उन्हें मजदूरी अधिक मिलेगी और अधिक लोगों के लिए काम भी होगा।

स्वचालित यन्त्रोंका विरोध

कुछ समय पहले ब्रिस्टल में रेल से अपने-आप माल उतारने के यन्त्र लगाए गए थे। इनमें से प्रत्येक यन्त्र १०० आदमियों जितना काम करता था। किन्तु मजदूर इन्हें चलाने को तैयार नहीं हुए। आखिर रेलवे-अधिकारियों को मजदूरों को बहुत समझा-बुझाकर तथा बोनस आदि का प्रलोभन देकर इन्हें काम में लाने के लिए राजी करना पड़ा। ऐसा ही एक दूसरा उदाहरण लन्दन डॉकयार्ड का भी है। वहां कुछ समय पूर्व एक ऐसा यन्त्र लगाया गया, जिसके द्वारा मजदूरों

[शेष पृष्ठ ११ पर]

आर्यसमाज का भावी कार्यक्रम

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली की साधारण सभा दिनांक १-५-५५ द्वारा निर्धारित तथा प्रसारित

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, समस्त प्रदेशीय प्रतिनिधि सभाओं व उनसे सम्बन्धित आर्य समाजों का ध्यान निम्न लिखित बातों की ओर आकर्षित करती है और आदेश देती है कि अपनी भावी कार्यप्रणाली में इनका ध्यान रखें।

(१) आन्तरिक

१—वेदी की पवित्रता आवश्यक है अतः आर्य समाज की वेदी से मुख्यतः महर्षि दयानन्द के सिद्धांतों का ही प्रचार हो अन्य किसी संस्था का नहीं।

क—आर्य समाज की वेदी से सिद्धांत विरोधी बात न कही जावे और सुयोग्य उपदेशकों को ही वेदी पर बैठने की अनुमति दी जावे।

ग—आर्य समाज मन्दिर में या आर्य समाज की किसी शिक्षा संस्था या इमारत में नाटक आदि खेल तमाशे कदापि न करने दिये जायें।

२—आर्य समाज की वेदी से सत्संगों और सार्वजनिक सभाओं में प्रबन्ध सम्बन्धी आलोचनायें न की जायें। प्रबन्ध सम्बन्धी त्रुटियों पर विचार आवश्यक हो तो त्रुटियां अन्तरंग सभा के सम्मुख प्रस्तुत की जाया करें।

३—साप्ताहिक सत्संगों को रोचक बनाने के लिये पूर्व से निश्चित कार्यक्रम के अनुसार कार्य किया जाय।

४—प्रचार की सफलता के लिये आवश्यक है कि आर्य समाज का प्रत्येक सदस्य अपने परिवार में आर्य सामाजिक सिद्धान्तों का प्रविष्ट करे और इस प्रयोजन के लिये परिवार सहित साप्ताहिक सत्संगों में सम्मिलित हुआ करें।

५—जन्म की जात पांत को समाप्त करने के लिये आर्य समाज की वेदी से तीव्र आन्दोलन किया जावे।

(ख) अपना व अपने सन्तान का गुण कर्मानुसार विवाह करने वाले आर्य सदस्यों का प्रत्येक समाज में नियमित लेखा रक्खा जावे।

(ग) आर्य समाज के अधिकारियों की योग्यता का एक आधार वैदिक वर्ण व्यवस्था का क्रियात्मक किया जाना भी माना जाया करे।

(२) जन सम्पर्क

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा समस्त प्रदेशीय प्रतिनिधि सभाओं व उनसे सम्बन्धित आर्य संस्थाओं का ध्यान निम्नलिखित पारस्परिक कार्य क्रम की ओर आकर्षित करती है—

१—गोरक्षा का आन्दोलन तीव्र गति से प्रचलित रखा जावे और गोपालन का क्रियात्मक प्रचार किया जावे।

२—ईसाइयों के अराष्ट्रीय तथा वैदिक संस्कृति विरोधी प्रचार से भारतीय जनों की रक्षार्थ क्रियात्मक उपाय प्रयोग में लाये जायें।

३—शुद्धि आन्दोलन को तीव्र किया जावे।

४—चरित्र निर्माण सम्बन्धी आन्दोलन अधिक तीव्रता से संचालित किया जावे जिससे देश में से भ्रष्टाचार व अन्य बुराइयां दूर हो सकें और स्वराज्य प्राप्ति के साथ साथ सुराज भी हो सके। इस आन्दोलन को सफल बनाने के लिये आर्य सभासदों व आर्य कार्यकर्ताओं को इस कार्य पर विशेष बल देना चाहिये और आर्य समाजों से यह भी अनुरोध है कि आर्य सभासदों की सूची बनाते समय सदाचार सम्बन्धी नियमों पर विशेष ध्यान रखें।

५—विद्यार्थियों में अनुशासन की भावना उत्पन्न करने पर बल दिया जावे।

६—सह-शिक्षा (बालिकाओं बालकों का साथ-साथ शिक्षा प्राप्त करना) ऋषि दयानन्द द्वारा प्रदर्शित वैदिक मर्यादाओं का विरोधी है अतः सह शिक्षा आर्य संस्थाओं में प्रचलित न की जावे। आर्य पुरुषों से अनुरोध है कि वे बालकों को सहशिक्षा वाले विद्यालयों में प्रविष्ट न करें।

७—आर्य शिक्षा संस्थाओं में जो आर्यत्व का अभाव देख पड़ता है उसे दूर करके उन्हें वास्तविक आर्य संस्थाओं का रूप दिया जावे।

८—आर्य समाज की शिक्षा संस्थाओं तथा गुरुकुलों, महाविद्यालयों, स्कूलों और कालेजों आदि में पाठ्यक्रम, परीक्षाशैली आदि की दृष्टि से एकरूपता लाने के लिये पग उठाया जाय और इस कार्य की एक विशेष योजना तय्यार की जावे।

(३) प्रचार विधि

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा प्रदेशीय सभाओं का ध्यान वैदिक धर्म प्रचार की निम्न बातों की ओर आकर्षित किया जाता है—

(१) साहित्य निर्माण तथा प्रकाशन

१—वेदों की शिक्षा को अधिक सरल प्रभावोत्पादक और मनोवैज्ञानिक रूप देने वाले वैदिक साहित्य का प्रकाशन किया जावे।

२—आर्य सिद्धान्तों की पुष्टि में तुलनात्मक दृष्टि से ग्रन्थ तयार कराये जावें।

वैदिक अनुसंधान विभाग की स्थापना की जावे।

२ प्रचारकों द्वारा प्रचार

१—प्रचारकों को नियुक्त करते समय उनके सिद्धान्त ज्ञान और व्यक्तिगत चरित्र पर विशेष ध्यान रखा जाय।

२—प्रचारकों का ध्यान आकर्षित किया जाये कि वे वेदी से वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध प्रचार न करें।

३—उत्सवों की रूपरेखा इस प्रकार की बनाई जावे कि उनका रूप भीड़ भड़क्कों और मेलों का न रह कर गम्भीर प्रचार का हो।

४—आर्य समाज के सन्देश को ग्राम्य जनता तक पहुंचाने के लिये ग्राम प्रचार की ओर विशेष ध्यान दिया जावे।

५—ग्रामों में वैदिक धर्म प्रचार के लिये नियमित योजनानुसार कार्य प्रारम्भ कर दिया जावे।

(३) सम्मेलनों द्वारा

सार्वदेशिक सभा की ओर से वैदिक संस्कृति सम्मेलन किया जावे जिसमें ऋषि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित वैदिक संस्कृति के स्वरूप का निरूपण किया जाय और वर्तमान काल में अनेक विद्वानों द्वारा आर्य समाज सिद्धान्त विरोधी वैदिक साहित्य की व्याख्याओं का निराकरण करने की व्यवस्था की जाये।

(४) विदेश प्रचार

विदेश प्रचार का कार्य नियमित रूप से हाथ में लिया जाकर आगे बढ़ाया जाये।

१—निश्चय हुआ कि यह कार्यक्रम यथा पत्रक द्वारा आर्य समाजों को प्रेषित किया जाय।

२—प्रदेशीय सभाओं, आर्य समाजों और उपदेशकों को प्रेरणा की जाय कि इस कार्यक्रम को विशेषरूप से क्रियान्वित करें और इसकी प्रगति का नियमित विवरण प्रदेशीय व सार्वदेशिक सभाओं के कार्यालयों में रखा जावे। — +

"शब्बरात और शिवरात्रि"

(श्री राजेन्द्र जी आर्य प्रधान आर्य समाज अतरौली अलीगढ़)

अभी कुछ दिन पूर्व मुसलमानों ने अपना शब्बरात पर्व मनाया है। यह पर्व प्रति वर्ष हिजरी के शाबान मास में १४ वीं तारीख को होता है। 'शब्बरात' और 'शिवरात्रि' के नामों में समानता होने के कारण मुझे इसका इतिहास जानने की उत्कंठा हुई। अतएव मैंने एक शिक्षित मुसलमान से इस पर कुछ प्रकाश डालने की प्रार्थना की। उसने बताया कि इस्लाम में इसका कोई ज्ञात इतिहास नहीं है। और न इस शब्द की व्युत्पत्ति का ही किसी को कोई ज्ञान है। उसने बताया कि इस का दूसरा नाम 'शबे ब्रुकद्र' अर्थात प्रतिष्ठा की रात्रि है। इस दिन उपवास के साथ रात्रि जागरण तथा ईश्वरोपासना का विधान है। आतिशबाजी आदि के प्रदर्शन का इस पर्व से कोई सम्बन्ध नहीं है—इत्यादि।

अब हम शिवरात्रि और शब्बरात के पर्वों की तुलना करते हैं तो उपर्युक्त विचारों के प्रकाश में इन दोनों में आश्चर्यजनक समानता दीख पड़ती है। शिवरात्रि पर्व भी फाल्गुन रात्रि के प्रथम पक्ष में १४ वीं तिथि- चतुर्दशी को मनाया जाता है। उस दिन भी व्रत, रात्रि जागरण और शिवपूजन का विधि विधान है। हिन्दुओं में यह किंवदन्ती है कि मुसलमानों का तीर्थ स्थान मक्का पहिले एक शिव मन्दिर था और वहां के लोग निवासी इस्लाम से पूर्व शैव धर्मावलम्बी थे। वहां संगअसवद जिसे हज करते समय मुसलमान आदर से चूमते हैं—एक अवशेष शिवलिंग है। ऐसा भी अनेक विद्वानों का मत है।

उपर्युक्त तथ्यों पर विचार करने से ऐसा प्रतीत होता है कि मुसलमानों का यह पर्व इस्लाम प्रचार से पूर्व अरब देशों के शैव निवासियों का शिवरात्रि पर्व है और परम्परागत आज भी मुसलमानों में चला आ रहा है। यही कारण है इस्लाम के धार्मिक ग्रन्थ इसके इतिहास एवं शब्दार्थ के संबंध में मौन हैं। क्या इस्लाम मत के परिचय रखने वाले विद्वान् इस पर प्रकाश डालने की कृपा करेंगे। + +

संसार को एटम बम नहीं, मनुष्य चाहियें!

श्री ओ३म्प्रकाश जी पुरुषार्थी

ज्वालामुखी पहाड़ की भांति आज संसार अन्दर ही अन्दर विद्वेष, घृणा और क्रोधाग्नि से धधक रहा है। कब, कहां और किस क्षण यह ज्वाला फट पड़े और देखते देखते समस्त मानव जाति को अपने गर्भ में समाले यह प्रश्न वर्तमान् समय के राजनीतिज्ञों का ही नहीं अपितु सर्वसाधारण व्यक्ति तक का प्रश्न बन गया है। इसे फटने से रोकने के निमित्त सर्वत्र सम्मेलनों का जोर चाला है, परन्तु प्रयत्नों के उपरान्त भी आशा की एक रेखा तक कहीं दिखलाई नहीं पड़रही है।" मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की" वाली कहावत चरितार्थ हो रही है।

अधिकांश और मुख्यतः भोगवादी लोगों का विश्वास है कि यदि विज्ञान की सहायता से यथेष्ट मात्रा में भोग सामिग्री प्राप्त करली जाय तो संसार से अशान्ति दूर हो जाय, परन्तु ऐसे लोग कभी यह विचारने का कष्ट नहीं करते कि यदि भोग सामग्री की यथेष्टता ही शान्ति का एक मात्र उपाय है तो फिर इस आधार पर अमेरिका, रूस और योरुप में सब से अधिक शान्ति होनी चाहिये, जहाँ कि भोग सामग्री सब से अधिक प्रचुर मात्रा में है। अकेले अमेरिका में अनाज की इतनी अधिक मात्रा है कि कभी कभी वहां बड़ी फसलें इसलिये जला दी जाती हैं कि कहीं अनाज का भाव न गिर जाय। मकानों की यह अवस्था है कि अकेले न्यूयार्क में एक-एक मकान १०४ मंजिल तक है जिस में ८००० व्यक्ति निवास करते हैं। परन्तु दु:ख के साथ कहना पड़ता है ये वैज्ञानिक आविष्कार तथा भोग सामग्री के केन्द्र ही आज अशांति के केन्द्र बने हुये हैं और एशिया के वह देश जहाँ गरीबी अपना ताण्डव नृत्य कर रही है वह अपेक्षाकृत शान्त हैं।

घबड़ाहट की इस अवस्था में भोगवादियों ने शान्ति की प्राप्ति के निमित्त एक नया भ्रान्तिपूर्ण व विनाशकारी मार्ग ढूंढा है और वह है "एटम व हाइड्रोजन बम" परन्तु जब से इस शक्ति का सहारा लिया गया है तब से और भी अशान्ति व युद्ध की सम्भावना बढ़ गई है। इसके अतिरिक्त शान्ति की खोज में सैकड़ों नये इज्मों और मतवादों की उत्पत्ति नित्य नये रूप में हो रही है, परन्तु अभी एक नयी पार्टी को जन्म देकर उस विद्वेषाग्नि को बढ़ावा ही दे रहे हैं।

वैज्ञानिक आविष्कार तथा भोग-सामग्री दोनों निर्जीव वस्तुयें हैं। इनका सदुपयोग जहाँ संसार को स्वर्ग बनाने की सामर्थ्य रखता है वहां इनका दुरुपयोग संसार को नरक बनाने की भी शक्ति रखता है। अतः शान्ति-अशान्ति की स्थापना इनकी अपेक्षा इनके 'प्रयोग कर्ता' पर अधिक निर्भर करती है। परन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि वर्तमान् समय 'मनुष्य' की, कि जिस पर इनका सदुपयोग और दुरुपयोग निर्भर है सर्वथा उपेक्षा की जा रही है। परिणाम स्वरूप स्थिति इस अवस्था को पहुंच गई है कि जिस प्रकार एक अबोध बच्चे के हाथ में हजामत बनाने का ब्लेड आ जाय और जिस प्रकार वह उस ब्लेड से काम न उठाकर अपने ही अङ्गों को काटता है ठीक उसी प्रकार आज का भौतिकवाद विज्ञान के द्वारा अपना ही विनाश करने पर तुला बैठा है। भूतपूर्व गवर्नर जनरल श्री राजगोपालाचार्य ने ठीक ही अपने वक्तव्य में कहा है कि जिस प्रकार किसी बन्दर के हाथ में जलती हुई मशाल आ जाय और वह उसे लेकर नगर के छप्परों पर कूदता फिरे उसी प्रकार आज मानव देहधारी बन्दरों के हाथ में एटम बम आ गया है कि जिसका वह दुरुपयोग कर रहे हैं।"

सारांश में भोगवादी विचार धारा के परिणाम स्वरूप भौतिक जगत को उन्नति तो चरम सीमा को पहुंच गई और उन्नति के सर्वोत्तम साधन भी मानव को प्राप्त हो गये, परन्तु इस उन्नति के साथ साथ मानवता की कब्र खुदाई गई और परिणाम स्वरूप मानव, दानव बन गया और उसके हाथ में आ गये ये वैज्ञानिक साधन। इसका जो परिणाम हो सकता है वही हो रहा है और वही आगे भी होगा। ऐसी स्थिति में तो जितनी ही वैज्ञानिक उन्नति होगी और भोग सामग्री बढ़ेगी उतनी ही लूट-खसोट, बाजार प्राप्ति के लिये संघर्ष और राष्ट्रों के मध्य आर्थिक तथा राजनैतिक प्रतियोगिता बढ़ेगी और शोषण, अन्याय, द्वेष, युद्ध तथा विनाश इसके परिणाम होंगे।

अतः संसार की सर्व प्रथम आवश्यकता एटम बम या ऐटमिक शक्ति नहीं अपितु इसका सदुपयोग करने वाले मनुष्य तथा आत्मिक शक्ति की आवश्यकता है। आज संसार को ऐसे मनुष्यों की आवश्यकता है कि जो भौगोलिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक संकीर्ण साम्प्रदायिकता के बन्धनों से मुक्त हों और संसार के प्राणी-मात्र को एक ईश्वर पिता और पृथ्वी माता की सन्तान समझ एक परिवार के रूप में देखें। उनकी दृष्टि में मनुष्य का मूल्य उसकी आत्मिक शक्ति से हो पैसे से नहीं। उनके सम्मुख मनुष्यों की दो ही श्रेणियाँ हों अर्थात् भले और बुरे अथवा आर्य-अनार्य और इस अच्छे बुरे की पहिचान हो उनके अच्छे और बुरे कर्म।

आज प्राणी मात्र के कल्याणार्थ ऐसे मनुष्यों की आवश्यकता है कि जो—

१ सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सर्वदा उद्यत हों।

२ जो सब कार्य धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करने वाले हों।

३ जो संसार का उपकार करना अपना परम धर्म समझें।

४ जो सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार तथा यथायोग्य व्यवहार करें।

५ जो अपनी ही उन्नति में संतुष्ट न रह कर सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझें।

६ जो स्वहितकारी कार्यों में अपने को स्वतन्त्र तथा सर्वहितकारी कार्यों में अपने को परतन्त्र समझें—

संक्षेप में, आज संसार में ऐहिक

(शेष पृष्ठ १२ पर)

समाज को जर्जर बनाने वाला रोग

दहेज

(लेखक—श्री गंगाशरण जी फिरोजाबाद)

भारतीय समाज में दहेज की प्रथा का चलन वर्तमान काल का सबसे बड़ा पाप है और इसकी वजह से एक दो नहीं अपितु असंख्य समस्यायें उत्पन्न होकर समाज व देश को दूषित एवं कमजोर बना रही हैं। बाल विवाह प्रथा, विधवा व वेश्यावृत्ति की समस्या, पारिवारिक जीवन में अशांति तथा देश के आन्तरिक पतन और कमजोरी का प्रमुख मुख्य कारण विवाह में दहेज की कुप्रथा का प्रचलन है। अतएव, इन सभी को ठीक प्रकार समझ-कर दहेज को समूलनष्ट करना वर्तमान युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

प्रस्तुत लेख में दहेज और इससे उत्पन्न विभिन्न समस्याओं का सुन्दर सरल वर्णन है और फिर दहेज को शीघ्र एवं समूल नष्ट करनेवाले प्रयत्नों के लिये कुछ उपयोगी सुझाव रक्खे हैं।

—लेखक

प्राचीन काल में भारतीय नारी समाज विश्व में सबसे अधिक उन्नतिशील था। सम्पूर्ण इतिहास उसकी गौरव गाथा से भरा हुआ है। वैदिक काल में स्त्रियाँ स्वेच्छा पूर्वक राष्ट्र के प्रत्येक कार्य में पुरुषों की तरह समान भाग लेती थीं। राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और अन्य सभी क्षेत्रों में कार्य करने वाली अनेक महिलाओं के नाम आज भी इतिहास के सुनहरे पृष्ठों पर अंकित हैं। लेकिन अब स्थिति पूर्णतः बदली हुई दिखाई देती है। आजका भारतीय नारी समाज विश्व में कदा-चित सबसे अधिक बुरी अवस्था में है। स्त्रियों का अधिकार केवल मकानों की चहार दीवारी तक घरेलू कार्यों तक ही सीमित रह गया है। नारियों के अन्दर शिक्षा, स्वास्थ्य, और सभ्यता सभी का अभाव है। कुछ महिलाओं को निकाल देने पर शेष सम्पूर्ण नारी समाज की स्थिति बहुत दयनीय दिखाई देती है। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के उपरान्त हमारी कुछ ऐसी धारणा बन गई है कि नारी समाज ने भी प्रगति की है किन्तु स्थिति पूर्णतः भिन्न है। नारी समाज वास्तविकता में, अन्दर ही अन्दर खोखला होता चला जा रहा है और इसका प्रमुख कारण समाज में कुछ भयानक कुरीतियों का प्रचलन है।

भारतीय समाज मे दहेज की प्रथा का चलन वर्तमान युग का सबसे बड़ा पाप है। विवाह में दहेज के प्रचलन से एक दो नहीं अपितु असंख्य भयंकर समस्यायें उत्पन्न हो रही हैं जिनकी वजह से देश और समाज दिन प्रति दिन पतन की ओर बढ़ रहा है। केवल आर्थिक समस्याओं के हल मात्र से ही राष्ट्र जीवित नहीं रह सकता। क्या आपने कभी यह सोचने का प्रयत्न किया है कि आखिर बाल विवाह प्रथा विधवा एवं वेश्या वृत्ति की समस्या, पारिवारिक जीवन में अशांति, अयोग्य नागरिकों की वृद्धि, अस्वस्थ, अशिक्षित एवं अयोग्य महिलाओं और उनकी अयोग्य सन्तानों की वृद्धि तथा देश के पतन व कमजोरी का मुख्य कारण क्या है? अनेकों भरसक प्रयत्न करने के बाद भी देश में पाप और अत्या-चार क्यों बढ़ रहा रहे हैं? और सामाजिक जीवन में शान्ति क्यों नहीं है? इन सब कुरीतियों की उत्पत्ति का कारण विवाह में दहेज का चलन है। अतएव यह निर्विवाद सत्य है कि बिना दहेज को समूल नष्ट किये अन्य समस्यायें हल नहीं हो सकतीं। दहेज को समाप्त करने के साथ ही राष्ट्र के सुख वैभव की सुखद कल्पना की जा सकती है। आइये, आज दहेज और इससे उत्पन्न विभिन्न अनेकानेक कुरीतियों को समझकर कुप्रथा को नष्ट करने वाले उपायों पर विचार करें, फिर राष्ट्र और समाज को पूर्ण रूप से सुखी बनायें।

दहेज की प्रथा का प्रचलन मुसल-मानी राज्य से प्रारम्भ हुआ है। इससे पूर्व समाज में कहीं भी दहेज, बाल विवाह प्रथा और पर्दा आदि के रिवाज का वर्णन नहीं मिलता। 'मुसलमानों के आक्रमण और अत्या-चारों के युग में जबकि वे कुमारी लड़कियों का अपहरण कर लेते थे किन्तु विवाहिता को अपने काम की न समझकर उसकी ओर देखते भी नहीं थे, तो समय की आवश्यकता को समझ कर कम आयु में ही लड़कियों का विवाह किया जाने लगा और कुछ नये श्लोक शास्त्रों में रचे गये।' कम आयु में अपनी कन्याओं का विवाह करते समय माता पिता कुछ धन सम्पत्ति भी अपनी सामर्थ्या-नुसार देने लगे। यही धन सम्पत्ति दहेज के रूप में जो उस समय कन्या पक्ष के प्रेम और आदर का चिन्ह था, अब कर्ज की भांति प्रथा बन गयी है। वर पक्ष स्वयं इसकी माग करता है और फिर इस अटल एवं आवश्यक माँग की पूर्ति में कन्या और उसके परिवार को अगणित विपत्तियों का सामना करना पड़ता है।

आज हिन्दू समाज में दहेज 'ठहराव' के रूप में बदल गया है। 'विवाह-सम्बन्ध' की बात चीत प्रारम्भ होते ही दहेज का प्रश्न सबसे पहिले उपस्थित हो जाता है। लड़का जरा भी पढ़ालिखा अथवा योग्य हुआ तो वर पक्ष विवाह से पूर्व अपनी इच्छा-नुसार रुपये की माग करता है और फिर उसी जगह विवाह करने को प्रस्तुत होता है, जहाँ से उसे अधिका-धिक धन-सम्पत्ति मिलने का वचन मिलता है। इस प्रकार आज कल विवाह पुत्र और पुत्रियों के क्रय-विक्रय के समान हो गया है। यह कथन कि 'आजकल विवाह लड़के और लड़कियों के बीच में नहीं अपितु एक परिवार की दूसरे परिवार की धन सम्पत्ति के साथ होते हैं', अक्षरशः सत्य है। आजकल विवाहों में धन-सम्पत्ति का आदान प्रदान ही प्रधान लक्ष्य रह गया है।

इन दहेज से व्याकुल परिवारों में कन्याओं के गुणों का महत्व नहीं बल्कि रुपये पैसे के साथ कन्या का मूल्य आंका जाता है। यदि किसी कारण वर पक्ष द्वारा मांगी हुई धन सम्पत्ति की माँग को कन्या पक्ष पूरी नहीं कर सका तो कन्या का सम्पूर्ण विवाहित जीवन कष्ट मय हो जाता है और उसके साथ दर्दनाक अमानु-षिक अत्याचार किये जाते हैं। अनगिनत कन्याओं द्वारा आत्महत्याओं की कहानियाँ और समाचार बहुधा समा-चार पत्रों में पढ़ने को मिलते हैं। भारतीय परिवारों में अगणित विवा-हित कन्यायें इसी वजह से पीड़ित और व्याकुल हैं।

भारतीय परिवार में यदि लड़के की बजाय लड़की का जन्म हो जाता है तो सम्पूर्ण परिवार में दुःख छा जाता है। और लड़की के साथ साथ उसकी माता को भी घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। कारण स्पष्ट है। परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में कन्या के उस चौदह-पन्द्रह वर्ष के उपरान्त आने वाली दहेज और वर सम्बन्धी कठिनाइयों का जीता जागता स्पष्ट चित्र अंकित हो जाता है। मध्यम श्रेणी के परिवार के व्यक्ति उस कन्या को व्यर्थ में दस पन्द्रह हजार रुपये का व्यय समझते हैं। यही कारण है कि बचपन से ही कन्या के पालन पोषण में उपेक्षा और लापरवाही की जाती है। परिणाम यह होता है कि कन्याओं का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और शिक्षा भी समुचित नहीं हो पाती जिससे वे मूर्ख कमजोर और निरक्षर रह जाती हैं। फिर अस्वस्थ एवं अयोग्य माताओं से किस आधार पर सुयोग्य सन्तानों की कल्पना की जा सकती है। अस्वस्थ और अयोग्य नागरिकों से राष्ट्र किस आधार पर सुख सम्पन्न एवं गौरव शाली बन सकता है। सुयोग्य सुन्दर व स्वस्थ और बुद्धिमान माताएँ और उनकी सन्तानें बिना दहेज को समाप्त किये कदापि सुलभ नहीं हो सकतीं।

जब कन्या विवाह योग्य हो जाती है तब सारे परिवार में चिन्ता की लहर दौड़ जाती है। हिन्दू परिवार में चौदह पन्द्रह की अवस्था से अधिक कन्या का अविवाहित रहना आपत्ति जनक समझा जाता है। साधारण आर्थिक स्थिति वाले परिवार के व्यक्ति धन-सम्पत्ति के अभाव में कन्या का विवाह करने में असमर्थ रहते हैं यदि किसी योग्य शिक्षित वर से अपनी कन्या के विवाह की बातचीत करते हैं तो तुरन्त अतुल धनराशि के रूप मे दहेज देन की समस्या उत्पन्न हो जाती है। फलस्वरूप धन के अभाव में और दहेज के देने की सामर्थ्य न होने की वजह से कन्यायें बहुत बड़ी हो जाती हैं। अधिकांश परिवारों में दहेज के कारण बीस पच्चीस वर्ष की आयु से अधिक कन्यायें अविवाहित हैं। घर में अविवाहित कन्या को देख कर सारे परिवार की मानसिक स्थिति बदल जाती है। और वह कन्या सम्पूर्ण परिवार के लिए भयानक रोग के सदृश हो जाती है। कन्या का जीवन नर्क तुल्य बन जाता है और वह अपने को परिवार के लिये भारस्वरूप समझने लगती है। असंख्य नवयुवा अविवाहित कन्यायें माता पिता का कष्ट न सहसकने की वजह से या तो आत्महत्या कर लेती हैं अथवा घर छोड़कर भाग जाती हैं जो बाद में

(शेष अगले पृष्ठ पर)

दहेज

(पिछले पृष्ठ का शेष)

जीवन निर्वाह के उद्देश्य से विवश होकर वेश्या वृत्ति अपना लेती हैं। यह वेश्यायें आकाश या पाताल से नहीं अपितु कुलीन किन्तु दरिद्र परिवारों से दहेज के कारण भागी हुई दुश्चरित्र कन्याएं हैं जो जानबूझ कर विवश हो इस पाशविक जाल में फंसती हैं।

दहेज देने के अभाव में जब माता-पिता अपनी कन्याओं का सुयोग्य वरों के साथ विवाह करने में असमर्थ रहते हैं तो लाचार होकर अयोग्य वरों के साथ विवाह कर देते हैं। अनेकों ऐसे उदाहरण उपस्थित हैं कि कुमारी पन्द्रह-सोलह वर्ष आयु वाली कन्याओं के विवाह तीस पैंतीस वर्ष की अवस्था वाले अयोग्य-अनमेल व्यक्तियों के साथ इस शर्त पर किये हैं कि वे विवाह में दहेज नहीं लेंगे। अनेकों युवा कन्याओं का विवाह पचास-साठ वर्ष के धनी नर पिशाच वृद्ध व्यक्तियों के साथ उनसे विवाह करने के लिये कुछ धन सम्पत्ति लेकर भी होने के उदाहरण उपस्थित हैं। दहेज के कारण इन अनमेल विवाहों से कन्याओं की दुर्दशा की कहानी कहने की आवश्यकता नहीं, लगभग पाठक जानते हैं।

जैसा कि पहिले बताया जा चुका है कि बाल विवाह की प्रथा मुस्लिम काल से आरम्भ हुई। वैदिक काल में विवाह के समय कन्या की आयु १६ से १८ वर्ष तक व लड़के की आयु २१ से २६ वर्ष तक होना आवश्यक समझा जाता था। लेकिन बाद में धनी परिवारों में दहेज की आशा से लड़के का विवाह कम आयु में ही किया जाने लगा। ऐसे अनेकों उदाहरण हैं जबकि बच्चों के जन्म होते ही ... दहेज लेकर विवाह कर दिये गये हैं। यह भारतवर्ष का दुर्भाग्य है कि यहाँ ग्यारह बारह वर्ष की आयु वाली विवाहित लड़कियाँ भी गर्भ धारण कर लेती हैं और दुबले पतले बच्चों को जन्म देकर स्वयं और राष्ट्र ... का जीवन नष्ट करती हैं। दोष कन्याओं का नहीं अपितु दहेज के लिये व्याकुल उन पापी माता-पिता का है जो थोड़े से चांदी के टुकड़ों से प्रभावित होकर अपने बच्चों के जीवन को नष्ट कर डालते हैं।

बाल्यावस्था में विवाह होने की वजह से अल्प आयु में ही मृत्यु हो जाती है। अनमेल विवाह और बाल विवाह के फलस्वरूप समाज में विधवाओं की संख्या बढ़ रही है। हिन्दू समाज में विधवा का विवाह करना नीची दृष्टि से देखा जाता है। विधवाओं का विवाह आदि शुभ अवसरों के अवसर पर व घरों में उनका दर्शन मात्र भी अशुभ माना जाता है। एक ओर पुनर्विवाह पर रोक और दूसरे उनके साथ कटु बर्ताव—परिणाम यह होता है कि नवयुवा विधवायें घर में यातनायें न सह सकने की वजह से निराश होकर आत्म हत्या कर लेती हैं अथवा घर छोड़कर भाग जाती हैं और फिर पेट पालने के उद्देश्य से वेश्या वृत्ति अपना लेती हैं। आधुनिक सिनेमा आदि एवं अन्य गन्दे वातावरण का प्रभाव इस सबको प्रोत्साहित करने में समर्थ सिद्ध हो रहा है। वेश्यावृत्ति की बढ़ती हुई समस्या को तब तक समाप्त नहीं किया जा सकता जब तक कि दहेज को समूल नष्ट नहीं कर दिया जाता। अतएव यह नितान्त आवश्यक है कि दहेज की प्रथा को रोकने वाले उपायों को समझ कर उनको कार्य रूप में परिणित किया जाए।

आजकल विवाह-शादी की बातचीत आरम्भ होते ही, धन सम्पत्ति के लेने देने का ठहराव होने लगता है। वर पक्ष अपनी इच्छानुसार मांग करता है और कन्या पक्ष से वह रकम ठहरा लेता है। यह दहेज 'ठहराव' के रूप में तेजी से बढ़ता चला जा रहा है और व्यक्ति निःसंकोच निर्भयता-पूर्वक मांग उपस्थित कर देते हैं। इस 'ठहराव' की संकुचित मनोवृत्ति का पूर्णरूप से विरोध होना नितान्त आवश्यक है। विवाह की पुण्य-पवित्र रस्म लड़के और लड़कियों के क्रय-विक्रय पर नहीं तो गुण, योग्यता और प्रेम पर आधारित होनी चाहिये। धन सम्पत्ति के रूप में दहेज पर आधारित नींव से पारिवारिक जीवन कदापि सुख-शान्ति मय नहीं बन सकता। इस ठहराव की प्रथा का जो क्रय-विक्रय के समान तेजी से बढ़ रही है, बुद्धिमान व्यक्तियों द्वारा पूर्ण रूप से विरोध करना चाहिये।

विवाह शादी में एक बहुत बड़ी धन राशि आभूषणों पर व्यय हो जाता है। आभूषणों का अधिक आदान-प्रदान दहेज का ही रूप है। यह कथन सत्य है कि आभूषणों के रूप में बहुत-सा धन सुरक्षित रहता है लेकिन यह भी सत्य है कि इनका प्रचलन दोनों पक्षों के लिये आर्थिक कठिनाइयाँ पैदा कर देता है। आभूषणों के बनवाने में और दहेज की पूर्ति में साधारण स्थिति वाले परिवारों को मकान जायदाद बेचकर और महाजनों से ऋण लेकर धन जुटाना पड़ता है जिससे एक या दो कन्याओं के विवाह के उपरान्त परिवार की अत्यन्त दयनीय अवस्था हो जाती है सारे परिवार को दाने दाने के लिये तंग और घोर दरिद्रता का जीवन व्यतीत करना पड़ता है। कन्या के विवाहोपरान्त दयनीय ऐसे परिवारों से आप भली प्रकार परिचित होंगे। दहेज की प्रथा का प्रचलन समाज में सबसे बड़ा पाप है।

देश में बहुत से दोषों और रीतियों को सरकारी कानून द्वारा दूर किया जाता है। बाल-विवाह की प्रथा और सती प्रथा केवल कानूनों द्वारा समाप्त हुई। सती प्रथा कुरीति के रूप में बदल गई तब राजा राम मोहन राय ने इस प्रथा के विरुद्ध एक बड़ा आन्दोलन उठाया और फलस्वरूप सरकार को कानून बनाने के लिये प्रेरित किया और सती प्रथा समूल नष्ट हो चुकी है। आज सम्पूर्ण देश भर में दहेज-विरोधी आन्दोलन की आवश्यकता है। सरकार को इस बात की राय दी जाय कि दहेज-विरोधी कानून बनायें और फिर कानून को कठोरता पूर्वक लागू किया जाय। केवल कानून से भी काम नहीं चलेगा दहेज एक सामाजिक समस्या है और प्रत्येक परिवार से सम्बन्ध रखती है अतएव राष्ट्रव्यापी सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता है जिसमें प्रत्येक श्रेणी के व्यक्ति और राष्ट्र के प्रत्येक घटक के पूर्ण सहयोग की जरूरत है।

दहेज-विरोधी साहित्य का पूर्ण अभाव है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो लेखक और कवियों की दृष्टि में दहेज एक मामूली समस्या है अथवा उन्होंने इसे अभी तक समझने का प्रयत्न नहीं किया है। साहित्य में अपार शक्ति होती है और कलम की शक्ति तलवार से भी अधिक मानी जाती है। यदि साहित्यकों ने इस ओर शीघ्र ध्यान दिया तो इस कुप्रथा को बहुत शीघ्र रोका जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि सरल भाषा में उच्चकोटि का दहेज-विरोधी साहित्य लिखा जाय। पुस्तकें, और पर्चे छपवाए जावें और उनको बिना मूल्य ही मुफ्त अथवा सस्ते मूल्यों में जनता में वितरित किया जाय। यह कार्य समाज सेवी अनेकों संस्थायें अच्छी प्रकार कर सकती हैं अतएव इन संस्थाओं को यह कार्य शीघ्राति-शीघ्र अपने हाथों में लेना चाहिये।

इन सबके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि दहेज-विरोधी लेख समाचार पत्र व पत्रिकाओं में प्रकाशित हों और सम्पादक स्वयं टिप्पणियाँ आदि लिखकर सक्रिय भाग लें और इसके लिये अखबारों में स्थान सुरक्षित करें। प्रसन्नता का विषय है कि 'आर्य मित्र' और 'अमृत पत्रिका' आदि कई पत्र-पत्रिकायें इस दिशा में प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं। अनेकों लेख व पत्र अब कभी जनता को पढ़ने को मिलते हैं। इस गति में और अधिक प्रगति की आवश्यकता है। फिल्म-निर्माताओं का भी कर्त्तव्य है कि 'दहेज' जैसे और अधिक चल-चित्र निर्माण करें और उनका सिनेमा घरों में प्रदर्शन हो। दीवालों आदि पर दहेज विरोधी चित्र व पोस्टर चिपकाए जायें।

साहित्यिक क्रान्ति के साथ-साथ सामाजिक जन क्रान्ति की भी आवश्यकता है। इसके लिये प्रत्येक नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में 'दहेज-विरोधी सप्ताह' आयोजित किये जावें प्रभात फेरी निकाली जावें और जुलूस निकाले जाएं। सुन्दर सरल भाषा में भाषण हों और जनता को दहेज के दोषों से परिचित कराके बताये हुये सुझावों को समझाया जाए। अध्यापक अपने युवक छात्रों को दहेज के दोष बतायें और फिर उनको अपने विवाह में दहेज न लेने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ बनावें। यदि युवक वर्ग का उचित सहयोग व समर्थन मिला तो दहेज की प्रथा शीघ्र नष्ट की जा सकती है।

समाज और देश में ऐसे भी व्यक्ति पाये जाते हैं जो कहते हैं कि 'ईश्वर ने दिया है तो क्यों न दें और क्यों न लें।' यह व्यक्ति किसी प्रकार राजकीय व सामाजिक नियमों को भंग करके अपनी इच्छानुसार अनुचित कार्य करते हैं। यह अच्छी प्रकार समझ लेना चाहिये कि वे व्यक्ति समाज के शत्रु एवं पोषक हैं जो दहेज की कुप्रथा के पोषक हैं अतएव ऐसे व्यक्तियों का सामाजिक बहिष्कार करना आवश्यक है। इनके विरुद्ध घोर प्रदर्शन हों और कठोर दण्ड दिया जाय। इस तरह की घटनाओं के होने पर अन्य व्यक्ति स्वयं ही ठीक मार्ग पर आजाएंगे।

उपर्युक्त बताये हुए सभी उपायों को कार्य रूप में परिणित करके दहेज रूपी इस भयानक पाप को समूल नष्ट कर सकते हैं। और फिर अपने देश व समाज को पुनः सम्पूर्ण सुख सम्पन्नमय एवं भारत माता को ... बना सकते हैं।

सभा की सूचनायें

उपदेश विभाग की सूचना

श्री रणधन्तसिंह जी साहित्यभूषण वानप्रस्थी अवैतनिक उपदेशक औरिहा पो० जवाँ (अलीगढ़) का नाम सभा की रिपोर्ट में अवैतनिक उपदेशकसूची दयानन्द प्रचारक सभ में छपने से रह गया है। अतः उक्त वानप्रस्थी जी सभा के अवैतनिक उपदेशक हैं इन्हें प्रचार करने का अधिकार दिया जाता है।

निरीक्षण सम्बन्धी सूचना

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश की ओर से निरीक्षक नियुक्ति के पत्र कार्यालय से भेजे जा चुके हैं। कृपया स्वीकृति पत्र सभा कार्यालय में भेजने का कष्ट करें जिससे प्रमाण पत्र, निरीक्षण फार्म सभा से भेजे जा सकें। यदि निरीक्षक महोदय को अवकाश न हो तो अन्य व्यक्ति का नाम स्वीकृति कर अपने जिले के लिये प्रस्तावित करें।

अन्तरंगाधिवेशन की सूचना

सर्व अन्तरङ्ग सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश की अन्तरङ्ग सभा का साधारण अधिवेशन दिनाङ्क २७ व २८ मई १९७५ को स्थान आर्यसमाज मंदिर नैनीताल में होगा। प्रथम दिवस की बैठक सायं ७ बजे प्रारम्भ होगी। कृपया अवश्य सम्मिलित होकर कृतार्थ करेंगे।

नैनीताल आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव तथा मंदिर का उद्घाटन होगा और २७।५ को नगर कीर्तन के रूप में किया जायगा। अत सर्व अन्तरङ्ग सदस्यों से प्रार्थना है कि उसमें सम्मिलित होने की कृपा करे।

उप प्रतिनिधियों के नाम आदेश

जिला आर्य उप प्रतिनिधि सभा के संचालकों एव अधिकारियों से निवेदन है कि प्रत्येक जिले म प्रचारार्थ एक कान्फ्रेंस बुलावें जिसमें शिथिल समाजोंकी जागृति, सभा का बकाया धन प्राप्ति, और ईसाई निरोध प्रचार, गौ रक्षा प्रचार, भ्रष्टाचार नशा निवारण इत्यादि विषयो पर विचार कर योजना बनाई जावे और जिले के किसी केन्द्रीय स्थान म जिला आर्य सम्मेलन करने का आयोजन करें। इस सुअवसर पर सभा के माननीय श्री प्रधान जी अन्यप्रतिष्ठित व्यक्तियों ने सम्मेलन में पहुचने का वचन दिया हुआ है। जो उप सभा इस कार्य को सम्पादन करे उसकी सूचना सभा कार्यालय में तुरन्त भेजने की कृपा करें। जिससे एक प्रचारक पूर्व से जिला प्रचार करने के लिये भेजा जा सके। आशा है उपसभाओं के मंत्री गण इस ओर विशेष रूप से ध्यान देकर कृतार्थ करेंगे।

सभा के विभागों के साथ उप सभाओं की त्रैमासिक रिपोर्ट अन्तरङ्ग सभा मे २७ मई को प्रस्तुत करें।

काशीचरण आर्य
सभामंत्री

(पृष्ठ ८ का शेष)

शक्ति के निर्माण करने वाले कारखानों के साथ-साथ इसके प्रयोगकर्ता मनुष्य के निर्माण करने वाली कारखानों की नितान्त आवश्यकता है और संसार को एटम बम नहीं अपितु इस एटमिक शक्ति का सदुपयोग करने वाले मनुष्यों की आवश्यकता है। यदि कुछ समय के लिए वैज्ञानिक उन्नति न भी हो और मनुष्य का ठीक ठीक निर्माण करने पर संसार के राष्ट्र बल दें तो इन्हीं वर्तमान वैज्ञानिक साधनों के द्वारा संसार को स्वर्ग बनाया जा सकता है।

अतः संसार के प्रत्येक माता-पिता संस्था एवं राष्ट्र का यह परमधर्म हो जाता है कि वह अपनी योजनाओं में मनुष्य निर्माण को सर्व प्रमुख स्थान दे।

मशीनें सब काम...

[पृष्ठ ६ का शेष]

की सैकड़ों घंटों की मजदूरी की बचत होती थी। इसके द्वारा ब्रिटेन का यातायात-व्यापार बहुत अधिक हो सकता था और अधिक विदेशी जहाज उसके डॉक्समें आ-जा सकते थे। पर मजदूरों ने इस यन्त्रको चलाने से साफ इन्कार कर दिया। पार्लमेण्ट के एक सदस्य के कथनानुसार ब्रिटेन के विभिन्न उद्योगों में लगाए गए स्वचालित यन्त्रों को चलाने से इन्कार करके मजदूरों ने उसे कुल उत्पादन के लगभग २० प्रतिशत भाग का नुकसान पहुचाया। कहना न होगा कि इस २० प्रतिशत उत्पादन से ब्रिटेन विदेशों से अपनी आवश्यकता की अन्य बहुत-सी चीजें खरीद सकता था और साथ ही राशनिंग की व्यवस्था समाप्त कर अपने देशवासियों के जीवन-स्तर को भी उन्नत कर सकता था।

यदि यन्त्रों के बढ़ते हुए उपयोग और महत्व के प्रति मनुष्य का रुख इसी प्रकार आशंका और अविश्वासका रहा, तो भविष्य कुछ बहुत अच्छा नहीं होगा। इसका परिणाम यही हो सकता है कि जिन चन्द स्वार्थी लोगो के हाथों में मशीनें और उत्पादन के साधन रहेंगे, वे इन्हे दूसरों पर बलात् थोपेंगे, जिसका परिणाम एक ऐसा भयकर महायुद्ध होगा, जिसकी अभी हम शायद कल्पना भी नहीं कर सकते। इसके विपरीत यदि सब लोग मिलकर बहुजनहिताय यन्त्रों के उपयोग की चेष्टा करे, तो एक समय ऐसा आ सकता है, जबकि मनुष्य यन्त्रों की सेवा के बल पर सुखी और सुसस्कृत जीवन बिता सके। तब भी ऐसी अनेक चीजें तो रह ही जायेंगी, जिन्हें करने के लिए मनुष्यों की आवश्यकता होगी मशीनें कला, साहित्य और दर्शन की महान् कृतियां तो पैदा नहीं कर सकती, मानव हृदय की सुख और आनन्द के उपभोग की सूक्ष्म भावनाओं का उद्रेक तो वे नहीं कर सकती और न ही वे मानव-मैत्री और प्रथम बार ही कुछ कर सकती हैं। इनका उद्रेक तो चिरन्तन काल से मानव के दैनन्दिन श्रम से ही होता आया है। पता नहीं, यन्त्रों के युग में इनका भविष्य कैसा हो।

* * *

वकील की सूझ

[पृष्ठ ११ का शेष]

'रामकिसन' में वकील [illegible] को [illegible] देकर [illegible] लिखा है।" [illegible] ने कहा—"ठीक है, विनोद बाबू ने [illegible] [illegible] की थी।" [illegible] मुकदमा [illegible] हो। [illegible] बोला—"[illegible] हो [illegible], यह सब [illegible] हैं, गरीबों की [illegible] ही [illegible]।"

फैसला सुनकर बेचारी चम्पो की आँखों के आगे अँधेरा छा गया।

× × ×

मैं फैसला सुनकर सीधा विनोद बाबू के घर पहुँचा। वे अभी कचहरी से लौटे थे। चम्पो और रामकिसन [illegible] उनकी प्रतीक्षा में बैठे थे। चम्पो [illegible] कह रही थी—"हाय रे [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] मालगुजार हर बार [illegible]—"

रामकिसन [illegible] [illegible] रहा था, मैं चुप बैठा था।

× × ×

थोड़ी देर के बाद वकील साहब की मोटर आ गई। वे [illegible] [illegible] और पल भर बाद ही हाथ में एक [illegible] लिये हुए वापस लौटे। चम्पो उन्हें देखते ही [illegible] लगी। विनोद बाबू ने उसे चुप करते हुए कहा—"देख, ये हैं तीन हजार रुपये, जो मैं तेरे लड़के के नाम बैंक में जमा कर देता हूँ [illegible] मालगुजार की [illegible] [illegible] वकील की [illegible]—इसे ले जा और गाँव में [illegible] [illegible] कर। अब तुझे कोई तकलीफ हो तो मेरे पास आना।"

रामकिसन घबराई हुई आँखों से विनोद बाबू की ओर देख रहा था। चम्पो कभी मालगुजार की तरफ और कभी अपने जीवनदाता—वकील साहब—की ओर देख रही थी। किन्तु विनोद बाबू स्वयं [illegible] शून्य आकाश की ओर देख रहे थे, मानो वह जानना चाहते हों कि इस मुकदमे में उन्होंने पाप किया या पुण्य।

यह [illegible] देकर विनोद बाबू के एक ऐसी समस्या उपस्थित कर दी थी जिसे न तो वे खुद ही समझ सकते थे, न चम्पो समझ पाई और न मालगुजार ही समझ सका। मैं तो यह देख [illegible] चित्रवत् खड़ा रह गया। केवल इतना ही समझ पाया कि विनोद बाबू मुकदमा हारकर भी जीत गये थे।

• •

आज विनोद बाबू इस संसार में नहीं हैं। फिर भी हमारे आस-पास में जब उनकी चर्चा होती है तो कुछ लोग इस मुकदमे के सम्बन्ध में कहते हैं—विनोद बाबू ने [illegible] चम्पो के साथ [illegible] की।

घरेलू नुसखे

१—नींबू के पत्तों का रस लगाने से बगल में पसीना की दुर्गन्ध दूर होती है।

२—धतूरे के बीज और जवाखार सम भाग लेकर कडुए तेल में पकाइये इस तेल की मालिश से बिवाई ठीक होती है।

३—सज्जी, चूना और साबुन को जल के साथ मसे पर लगाने से मसा जड़ से नष्ट हो जाता है।

४—हर्र की छाल, लोध, नीम के पत्ते, अनार के छिलके, आम के छिलके इन सबको सम भाग लेकर गुलाबजल के साथ पीस कर उबटन करने से देह का कुवर्ण दूर होकर कान्ति बढ़ती है।

५—चमेली के पत्तों को चबाने से मुख के छाले शान्त हो जाते हैं।

६—गोपी चन्दन, चूना, सिंदूर इन सब को एक जात करके सिर में लगाने से केश काले स्याह होजाते हैं।

७—नमक का पानी, यदि दाहिने अंग में बिच्छू काटा हो तो बाँये कान में और यदि बाँये अंग में काटा हो तो दाहिने कान में, ५, ६ बार डाल कर गिरवा दिया जाय तो तुरन्त विष उतर जाता है।

अदरख के प्रयोग

अदरख का टुकड़ा दाढ़ के नीचे रखने से दाढ़ का रोग चला जाता है।

अदरख का रस गरम करके कान में डालने से कान का दर्द जाता है।

अदरख के रस में पुराना गुड़ मिलाकर खाने से बदन की सूजन नष्ट हो जाती है।

अदरख के रस में अजवाइन को भिगोकर मसल कर सुखा लेने और समय पर खाने से वात दर्द आराम होता है।

अदरख का रस और तिल्ली का तेल एक साथ पका कर उस तेल की मालिश करने से गठिया सान्धिवात मिटती है।

भोजन के पहले अदरख में सेंधा नमक लगाकर खाने से भूख बढ़ती है अदरख को नींबू के रस में डाल कर और नमक मिलाकर खाने से अजीर्ण अरुचि नाश होती है।

लू की दवा

पके हुये शरीफे की बीज १९-२० दाना बीज कर पानी में पीस कर उसकी लुगदी बना लो। लुगदी को तिल या सरसों के तेल में फेंट कर बालों में लेप कर दो और बालों को बाँध दो। दो तीन दिन बाद खोलकर [illegible]

महिला-मण्डल

गर्मियों में शीतल रहिए !

(लेखिका—कु० पुष्पलता एम० ए०)

ग्रीष्म-ऋतु के कष्ट से बचने के लिये हम बाह्य उपकरणों को जुटाने का जितना प्रयत्न करते हैं, उतना शरीर को शीतल रखने का नहीं। यदि हमारे मन में शान्ति तथा शरीर में शीतलता रहे तो हम उतनी अधिक गर्मी का अनुभव न करें जितना इन दो वस्तुओं के अभाव में करते हैं।

प्राचीन काल में नवीन युग के समान वैज्ञानिक साधन न थे। न तो बिजली का पंखा था और न कमरा ठंडा करने की मशीन ही। उष्णता से बचने के लिये लोग शीतल लता कुञ्जों में विश्राम करते, स्त्रियाँ सुगन्धित उबटन का प्रयोग कर शरीर पर चन्दन का लेप करती तथा जल में गुलाब की पखुड़ियाँ छोड़ कर स्नान करतीं। क्रीम पाउडर से उन्हे कोई प्रयोजन न था। फिर भी उनकी त्वचा सुन्दर व पुष्ट रहती थी।

किन्तु आज कल प्राचीन सौन्दर्य के प्रसाधनों का स्थान क्रीम पाउडर और साबुन ने ले लिया है। इन वस्तुओं के उपयोग से लाभ के अतिरिक्त हानियां अधिक हैं। किन्तु हम इनके इतने आदी हो गये हैं कि सभ्यता के नाते इन वस्तुओं को प्रयोग में लाना ही पड़ता है। पसीने के कारण मुख पर आयी हुई चिकनाहट दूर करने के लिये साबुन व पाउडर का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। अतः क्यों न हम ऐसे साधन की खोज करें जिससे अधिक गर्मी का अनुभव ही न करना पड़े। पर यह तभी सम्भव हो सकता है जब आप अपने सिर, मस्तिष्क, नेत्र, मुख तथा शरीर को शीतल रखने के लिये शीतलता-प्रदायक वस्तुओं का उपयोग करें। नियमित व हल्का भोजन करें, शीतलता पहुंचाने वाले पेय पदार्थों का सेवन करें, समय से स्नान करें और क्रोध से दूर रहे।

सिर धोने का अवलेह

मस्तिष्क को ठंडक पहुंचाने के लिये सिर को शीतल रखना अत्यधिक आवश्यक है। सिर धोने के लिये ठंडी वस्तुओं का उपयोग करना ही उचित होगा। इसके लिये सबसे श्रेष्ठ वस्तु आंवला है। इस में कुछ और वस्तुओं का सम्मिश्रण करने से सिर धोने का बहुत अच्छा मसाला तैयार हो जाता है। आप अपने घर से सन्तरे के छिलकों को फालतू समझ कर फेंकिये नहीं, वह सिर धोने तथा उबटन में डालने के बहुत काम आता है।

रात को दो तोला आँवला और दो तोला सन्तरे का छिलका लगभग पाव भर पानी में भिगो दीजिये, सुबह बारीक पीस कर आध पाव दही तथा दो चम्मच सरसों अथवा गरी का तेल मिला कर बालों की जड़ों में मलिये। दस मिनट बाद ठंडे पानी से सिर धो डालें।

इस प्रकार हफ्ते में लगभग तीन बार बालों को धोने से सिर ठंडा व खुशबूदार तो रहेगा ही और साथ ही साथ बाल भी बढ़ेंगे।

इस अवलेह के अतिरिक्त त्रिफले का पानी, दही तथा मुलतानी मिट्टी से भी धोने पर सिर में ठंडक रहती है।

नेत्र

गर्मी के कारण अक्सर नेत्रों में जलन होने लगती है। इसे दूर करने के लिये सुबह उठ कर गाय के कच्चे दूध अथवा त्रिफले के पानी से आँखे धोने से नेत्रों के हर प्रकार के कष्ट जाते रहते हैं।

मुख

किसी भी ऋतु में मुँह पर साबुन लगाना उचित नहीं। साबुन में सोडे का मिश्रण होने के कारण वह त्वचा को हर प्रकार से हानि पहुंचाता है। साबुन का उपयोग करने से सर्दियों में त्वचा फट जाती है और गर्मियों में खुश्क होकर धूप के कारण झुलस जाती है तथा मुँह जलने लगता है। अतः चेहरे की जलन दूर करने के लिये—

[१] रात को सोते समय दूध के ऊपर की मलाई अथवा खुरचन मुँह पर अच्छी तरह मल कर मुँह धोवें।

[२] नहाने से पूर्व थोड़ा-सा सन्तरे का छिलका तथा एक बादाम थोड़े से

मेवों का दही बड़ा

उड़द की दाल भिगो कर धो लो और महीन पीसकर उनके पीठी की लोई बनालो। चकले पर भीगा कपड़ा बिछाकर लोई को चिपका दो उसके ऊपर भुना हुआ सफेद जीरा, गरम मसाले की बुकनी, अन्दाज से नाम मात्र को हींग का पतला पानी, चार दाना कालीमिर्च, गरी, पिस्ता, बादाम, की कतरन, चिरौंजी और किशमिश फैला दो। उसी प्रकार की दूसरी लोई हाथ पर बढ़ा कर उस पर मेवा रखकर भर दो और पानी से सवार कर दूसरे दोनों ओर किनारों को चिपका दो। फिर कढ़ाई में घी डालकर पूड़ी की तरह काढ़ लो। और दही में भिगो दो। दही को कपड़े में छान कर मट्ठा कर लेना चाहिये। उसमें पानी न डालना चाहिये। बल्कि अन्दाज से भुना जीरा, नमक, कालीमिर्च पीस कर डाल दो। फिर खाने के काम में लाओ।

स्वादिष्ट पेठा

पेठा लेकर उसे छील डालिये। बीजों को निकाल लीजिये। पेठे के चौकोन बड़े टुकड़े काट लीजिये तत्पश्चात काँटों अथवा सलाइयों से चारों ओर गोद डालिये। चूने के पानी रात भर रहने दीजिये प्रातः निकाल कर दो—तीन पानी में स्वच्छ कर लीजिए पेठे के छोटे छोटे चौकोन टुकड़े कर लीजिये। ढाई गुनी शक्कर की चाशनी बनाइये। चाशनी चूल्हे पर ही रहे किन्तु पतली भी रहे। टुकड़ों को डाल कर बराबर चलाते रहिये। पक जाने पर उन टुकड़ों को निकाल लीजिये। और चाशनी को गाढ़ी कीजिए जब चाशनी लिपटने लगे टुकड़ों को फिर डाल कर कढ़ाई उतार लीजिये। गुलाबजल इलायची डाल कर काम में लाइए। अत्यन्त रुचिकर एवं पौष्टिक होंगे।

आम की कढ़ी

विधि—अच्छे रसदार पके हुए आम लेकर रस निकाल लो। सेर भर रस निकाल कर अलग रख दो। उस रस में छटाँक भर बेसन घोल दो। फिर आध पाव बेसन लेकर उसमें अन्दाज का नमक जीरा पीस कर मिला दो। पानी मिला कर उसे खूब फेटो। फिर कढ़ाई में घी गरम करके फेटे हुए बेसन की पकौड़ियाँ बनालो। बचे हुए घी में हींग, जीरा राई लाल मिर्च का बघार देकर आम के रस में घुले हुए बेसन का छौंक दो। जब दो तीन उफान आ जाय तो पकौड़ियाँ भी डाल दो साथ ही खट्टा दही और अन्दाज का नमक

'परिगणित जातियों में मेहतरों का प्रश्न'

(एक हरिजन हितैषी)

परिगणित कही जाने वाली हिन्दू जातियों में कई जातियों ने पर्याप्त उन्नति की है। उत्तरी भारत में जाटव (चमार) जाति का नाम इस सम्बन्ध में विशेषतः उल्लेखनीय है। इस जाति ने अपनी इस प्रगति के लिये त्याग और तपस्या का परिचय दिया है। मृतक पशुओं का मांस भक्षण, उनकी खाल उतारना एवं उनकी सफाई का परित्याग करके उन्होंने न केवल स्वच्छ रहने के अपने संकल्प का ही परिचय दिया है अपितु आर्थिक हानि भी सहन की है। परिणामतः आज इस जाति के बहुत से लोग शिक्षित होकर ऊंचे पदों पर आसीन हैं और उसके प्रति छुआछूत की भावना स्वयं मिटती जा रही है। परन्तु मेहतर जाति का प्रश्न आजकल वैसे का वैसा जटिल बना हुआ है। उन्होंने अपनी रीति-नीति, रहन-सहन तथा अपनी जीविका के अमानुषिक एवं घृणित प्रकार में कोई परिवर्तन नहीं किया। मल के टोकरों को अपने सिर पर ले जाकर, अपने घरों में सूअरों के लिये उसका संग्रह, मैले गाड़ियों पर काम करते हुए भोज्य पदार्थों का सेवन, जूठन खाना, हर प्रकार के रोगियों और मृतकों के वस्त्रों का उपयोग, मांस मदिरा का खुला प्रयोग आदि ऐसी घृणित एवं अमानुषी हैं जिन्हें छोड़ने के लिए वह उद्यत नहीं है। फलतः यह आज भी हिन्दू जाति के एक सड़े हुए अंग के समान हैं। इनके हाथ का खान पान तो दूर, लोग स्पर्श करने में भी संकोच करते हैं।

मेरा अपना अनेक वर्षों से निश्चित मत है कि जब तक यह जाति मल-मूत्र उठाने के कार्य का परित्याग नहीं करती, इसका उत्थान कठिन ही नहीं अपितु असम्भव है और राज्य द्वारा बनाये गये अस्पृश्यता विधेयक भी इनको विशेष सहायता नहीं कर सकेंगे। मेरी यह धारणा जातिभेद के आधार पर न होकर शुचिता के आधार पर है। आज स्वर्गीय मालवीय जी, जगजीवन राम, राजर्षि श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन आदि देश के अनेक नेता भी यही बात अनेक अवसरों पर दुहरा चुके हैं। परन्तु यह जाति आलस्य और प्रमादवश अपनी जीविका के इस अशुचि साधन को छोड़ने के लिए उद्यत नहीं है।

सवर्ण हिन्दू जब इनके इस कार्य के परित्याग की बात सुनते हैं तो प्रश्न करते हैं कि इस कार्य को तब कौन करेगा? किन्तु यदि देखा जाय तो यह समस्या इतनी जटिल नहीं है जितनी कि लोगों ने समझ रखी है। दूसरे देश भी तो हैं जहां इन कार्यों के लिए कोई पृथक वर्ग अथवा जाति नहीं है। और वहाँ के निवासी किसी अन्य प्रकार अपना कार्य चला रहे हैं। हम भी उन्हीं साधनों को अपना सकते हैं। मल-मूत्र उठाने का कार्य केवल बड़े नगरों अथवा उपनगरों तक ही विशेषरूप से सीमित है। ग्रामों की तो यह समस्या है ही नहीं, जहाँ देश की बहुत बड़ी जनसंख्या निवास करती है। बम्बई, कलकत्ता, तथा देहली जैसे बड़े नगरों को छोड़कर शेष नगरों की जनता भी बड़ी संख्या में मल त्याग के लिए नगरों के बाहर ही जाती है। शेष थोड़े लोग शौचालयों का प्रयोग करते हैं। बहुत से बड़े नगरों में फ्लश द्वारा यह समस्या सुलझाई जा चुकी है—दूसरे लोग भी इसका अनुकरण कर सकते हैं।

छोटे नगरों में जहाँ यह सम्भव नहीं है वहाँ सेप्टिक टैंक (sephi tunk) ढंग के शौचालय बनवाकर यह कार्य बड़ी सुगमता और स्वच्छता से किया जा सकता है। इन नगरों की नगर पालिकाएँ अपना सहयोग प्रदान कर इस कार्य में जनता का बहुत कुछ हाथ बटा सकती हैं और इस योजना को सफल बना सकती हैं।

यहाँ हमें एक बात देश की नगर समितियों और नगरपालिकाओं के अधिकारियों से और निवेदन कर दूं। उनको अपने यहाँ रखे गये मेहतरों को सफाई के लिये आधुनिक ढंग के उपकरण देने की व्यवस्था करना चाहिये जिससे वे मल-मूत्र से बिना हाथ लगाये अपने कार्य को स्वच्छता से कर सकें। दुर्भाग्यवश राज्य और पालिकाएँ दोनों ही इस ओर से उदासीन हैं। हमें स्वयं इनको साफ सुथरे रहने के उपायों को सोचना है।

अन्त में मैं निवेदन करूँगा कि जहाँ राज्य की ओर से छुआछूत दूर करने के लिये विधेयक बनाये गये हैं वहां उसका यह भी कर्तव्य है कि इस प्रकार के गन्दे और घृणित रहन-सहन और जीविका के साधनों पर भी प्रतिबन्ध लगाये। अन्यथा केवल सार्वजनिक स्थानों, संस्थाओं एवं भोजन तथा जलपान गृहों के विरुद्ध वैधानिक कार्यवाही करने का दूसरा अर्थ अशुचिता और अस्वच्छता का प्रोत्साहन देना है, जो किसी भी सभ्य जाति के लिये शारीरिक तथा मानसिक दोनों ही दृष्टि से अत्यन्त हानिकर है।

[पृष्ठ १५ का शेष]

बनकर तैयार हो गयी। यह बड़ी स्वादिष्ट बनती है।

कच्चे केले के बड़े

एक दर्जन कच्चे केले उबाल कर छील डालो फिर उनका गूदा खूब मसल डालो। कटा हुआ अदरक हरा धनिया या चटनी भर कर आलू के चौप की सी टिकिया बना लो। बाद में बेसन में नमक, अजवायन मिला कर फेंट कर उसमें केले के बड़े लपेट-लपेट कर तेल में आगे-आग सेंक लें। चाहे इन्हें यों ही चाय के साथ खायें या दही में डाल कर गर्म मसाला आदि डाल कर खायें। इन्हीं का यदि मीठा बनाना हो तो केले की टिकिया में चटनी के स्थान पर मेवा भर कर, बेसन की जगह मैदा (फोका) के घोल में लपेट कर घी में तल लें बाद में एक तार की रसगुल्ले की सी चाशनी में, जो पहले बना कर रख ली जाय उसमें छोड़ते जांय, कोई अलग आग से।

[पृष्ठ १३ का शेष]

त्वचा का रंग साफ होगा तथा वह मुलायम और पुष्ट रहेगी। यदि आपके मुँह पर मुहांसे अथवा झांइयाँ हैं तो इस बीच चिरौंजी के दाने भी इस उबटन में पीस लीजिये। ख्याल रहे कि उबटन लगाते समय मुँह जोर से रगड़ा न जाये।

[३] चम्मच भर दूध में चार-पांच बूँद नींबू का अर्क निचोड़ कर मुँह पर मल कर मुँह धोयें।

[४] साबुन के स्थान पर दही बेसन से भी मुँह धोया जा सकता है। पाउडर का उपयोग कम से कम करें।

आहार

गर्मियों में स्वास्थ्य लाभ के लिये सबसे मुख्य वस्तु नियमित तथा सन्तुलित भोजन ही है। जहाँ तक हो सके हल्का व साधारण भोजन करें। सब्जियों में खटाई मिर्च व मसालों की अधिकता गर्मियों की ऋतु में ठीक नहीं। मौसमी व हरी शाक भाजियां अधिक उपयोग में लायें। बासी अथवा ठंडा भोजन हानि पहुंचाता है। जहाँ तक सम्भव हो अपनी खुराक से कुछ कम ही भोजन करें। रात्रि का भोजन सोने से लगभग दो घण्टे पूर्व करें; जिससे भोजन की पाचन क्रिया ठीक हो।

पेय पदार्थ

ग्रीष्म ऋतु में प्यास अधिक लगती है। हमारे अधिकांश भाई बहनों की यही इच्छा रहती है कि बर्फ का ठंडा पानी पीकर प्यास बुझाई जाये। बर्फ छूने व खाने में तो अवश्य ठंडा होता है किन्तु पेट में पहुंच कर बहुत गर्मी करता है। अतः मिट्टी के रेतदार घड़े या सुराही में ठंडा किया हुआ पानी पीना अधिक लाभदायक है। ग्रीष्म ऋतु में जितना अधिक हो सके उतना पानी पीजिये।

सौंफ का पानी

सेर भर पानी में आधी छटांक सौंफ उबाल कर उसका पानी मिट्टी के बर्तन में ठंडा कर के दिन भर में तीन चार बार अवश्य पीवें, इसके पीने से पेट में ठंडा रहता है।

बहुत सी बहनों को चाय पीने की आदत होती है। वे चाह कर भी गर्मियों में चाय नहीं छोड़ सकतीं। चाय अथवा काफी के पीने से गर्मी अधिक लगती है। चाय के स्थान पर आप दूध, बादाम की ठंडाई और दही की लस्सी अपना सकती हैं। चाय की आदत छुड़ाना कोई कठिन बात नहीं। दो-चार दिन आप अवश्य ही चाय की कमी अनुभव करेंगी किन्तु बाद में चाय छोड़ कर आपको अत्यधिक प्रसन्नता होगी।

इस प्रकार यदि आप अपने भोजन इत्यादि पर विशेष नियन्त्रण रक्खेंगी तो ग्रीष्म ऋतु आपके लिये उतनी अधिक कष्ट प्रद न सिद्ध होगी। + +

श्री मेहर चन्द्र खन्ना निर्विरोध चुन लिये गये

नयी दिल्ली, १३ मई। केन्द्रीय पुनर्संस्थापन मंत्री श्री मेहरचंद खन्ना राज्यसभा के लिये निर्विरोध चुन लिये गये। राज्यसभा में यह स्थान दिल्ली राज्य के श्री ओंकार नाथ के त्यागपत्र से रिक्त हुआ था।

घरेलू-उद्योग

(ले०—श्री ओमप्रकाश आर्य)

देश की उन्नति के लिये उद्योग धन्धों का अधिक प्रचार होना चाहिये। सभी उद्योग धन्धों के लिये विदेशों से लाकर मशीनें नहीं खड़ी की जा सकतीं। इन मशीनों से जन-साधारण का उतना हित नहीं होता जितना घरेलू उद्योग धन्धों की उन्नति से होता है। मशीनों के युग ने मनुष्यों को भूखों मारडाला है हमारे देश में ७ करोड़ऐसे आदमी हैं, जिन्हे दोनो वक्त भोजन नहीं मिलता। आज हमारे यहां कपड़े, चमड़े, तेल, बर्तन, घी, लकड़ी, औजार, टोकरी, चटाई आदि के धन्धे चल रहे हैं। परन्तु इनको चलाने वालों के पास प्रायः पूंजी का अभाव रहता है। उपर्युक्त धन्धे सूद पर रुपया लेकर किये जाते हैं। काम करने वाले अपनी रोटी का भी सवाल नहीं हल कर पाते। गांवों की बिखरी हुई शक्ति को सभालने के लिये और उन्हें जीवन दान देने के लिये हमे अपने उद्योग धन्धों का प्रचार करना चाहिये। अगर हम इस बात के लिये सावधान हो जावें कि भारत के ७ लाख गावों में एक भी आदमी बेकार न रहने पावे तो निश्चय ही देशवासियों की रोटी हल हो जायेगी और देश उन्नति करेगा।

घरेलू उद्योगों के विकास के लिये ऋणों और अनुदानों के रूप में केन्द्रीय सरकार का खर्च बढ़ता ही जा रहा है, जिससे पता चलता है कि सरकार इन उद्योगों पर कितना अधिक ध्यान दे रही है। १९४९ ५० से १९५२ ५३ तक के चार सालों में कुल ५० लाख रुपया खर्च हुआ था, परन्तु १९५३ ५४ में सरकार ने १.६४ करोड़ रुपया स्वीकार किया। चालू वित्त य वर्ष के लिये १० करोड़ रुपये की व्यवस्था की गयी थी, जिसमें दिसम्बर के मध्य तक ऋणों और अनुदानों के रूप में ८ करोड़ स्वीकृत किये जा चुके हैं। घरेलू और छोटे उद्योगों में, बड़े कारखानों मे बनने वाली चीजों को छोड़ कर बाकी सब प्रकार का उत्पादन आ जाता है। हमारे देश में एक तो धन की कमी है, और दूसरे बेकारी बढ़ी हुई है।

ऐसी स्थिति मे घरेलू और छोटे उद्योगों के विकास से ही हमारी गरीबी और बेकारी की समस्या हल हो सकती है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए इन उद्योगों को सहायता देना अनिवार्य है ताकि वे अपने उत्पादन के ढंग और प्रबंध में सुधार कर सकें और विद्युत का भी समुचित उपयोग कर सकें आधुनिक ढंग का साज समान खरीदने के लिये भी उन्हे धन दिलाने की व्यवस्था करनी होगी और इनका सगठन यथा सम्भव सहकारिता के आधार पर करना होगा।

केन्द्रीय सरकार मुख्य रूप से राज्य सरकारों द्वारा इन उद्योगों को सहायता देती है। इसके अतिरिक्त भी केन्द्रीय सरकार ने इन उद्योगों को उचित सलाह और निर्देश देने के लिये विभिन्न क्षेत्र के अलग अलग मंडल बना दिये हैं, जैसे अ० भा० खादी और ग्रामोद्योग मडल, अ० भा० हाथ करघा मडल और लघु उद्योग मडल। लघु उद्योग मडल के अधीन छोटे उद्योगों के लिये प्रादेशिक विस्तार विद्यालयों की स्थापना की जा रही है। इनमें से कुछ उद्योगों की, विशेष रूप से खादी और ग्रामोद्योगों की योजनाओं का सचालन सम्बन्धित मण्डल स्वयं भी करते हैं। धन्धों को सहायता दी जा रही है, उनमें से एक खादी भी है, खादी की बिक्री पर ३ आना प्रति रुपया छूट दी जाती है। हाथ से कुटे धान, घानी के तेल, घरेलू साबुन और हाथ के बने कागज आदि के उत्पादन एव बिक्री पर भी राज्य सहायता दी जाती है। अ० भा० ग्रामोद्योग बोर्ड के द्वारा केन्द्र स्थापित किये जा रहे हैं जो अच्छे और नये प्रकार के उपकरणों के इस्तेमाल का प्रचार करेंगे। १९५३ के खादी के प्रचार के लिये ५ करोड़ रुपये की तथा अन्य ग्रामोद्योगों को ९० लाख रुपये की सहायता दी जा चुकी है। घरेलू उद्योगों में सबसे बड़ा हाथ करघा उद्योग है और इस उद्योग को भी सरकार सहायता दे रही है। सरकार इस उद्योग को सरकारी ढंग पर चलाना चाहती है। पिछले दो सालों में ऐसी सरकारी संस्थाओं के लिये ७।। करोड़ रुपये का ऋण दिया जा चुका है। यह सरकारी संस्थाएं बुनकरों को उचित मूल्य पर सूत देती है और उसके बनाये माल का उचित मूल्य पर बेचती है। हाथ करघों के लिये सूत तैयार करने के निमित्त गुंटकल में दो कारखाने स्थापित किये गये थे। अब दो और स्थापित किये जायेंगे, एक उड़ीसा में दूसरा मद्रास में इन सब सरकारी प्रयासों से घरेलू उद्योगों में प्रगति अवश्यम्भावी है।

हाथ से बनी हुई चीजें यन्त्र निर्मित द्रव्यों से कहीं अधिक सुन्दर और टिकाऊ होती हैं, यहां तक कि ढाका की भी मलमल जैसे सूक्ष्म वस्त्र का उत्पादन आज तक पृथ्वी के किसी भी देश ने किसी भी यन्त्र द्वारा नहीं बनाया। हाथ से बनी हुई चीजों में कुछ न कुछ नूतनत्व रहता ही है, पर यन्त्रों से बनी हुई चीजों में नहीं। इस लिये इस यन्त्रयुग में भी घरेलू उद्योग का एक अपना विशिष्ट स्थान है।

आज जब की वर्षा काल में हमारे कृषक भाई प्राय बेकार पड़े रहते हैं उस समय यदि वे सूत कात कर करघा चलाने का उद्योग करें तो दो पैसे की आमदनी हो सकती है। इस विषय में राष्ट्रपिता बापू ने पथ प्रदर्शन कर हमें शिल्प उन्नति का मार्ग दिखलाया है।

+ +

निर्माण की दिशा में।

संसार इस समय बड़े सकट से गुजर रहा है और सभी समझदार लोग नया विश्वयुद्ध रोकने का भरसक यत्न कर रहे हैं इसलिए मानवीय बन्धुत्व एवं विश्व शान्ति पर आधारित एक विश्व का जो आदर्श नई पीढ़ी के सामने रखा गया है, उसका सभी समझदार लोगों को समर्थन करना चाहिए

केवल नैतिकता और आध्यात्मिकता का सहारा लेकर ही मानव समाज बच सकता है तथा अणु शक्ति पर नियन्त्रण किया जा सकता है आज दो महायुद्धों से पीड़ित विश्व के लिए गाँधी जी की शिक्षाएं पहिले से अधिक महत्वपूर्ण हैं —नेहरू जी

पता—'आर्यमित्र'
१ मीराबाई मार्ग, लखनऊ
फोन—१९३
तार—"आर्यमित्र"

आर्यमित्र

रजिस्टर्ड नं० ६०ए०
८ मई, १९५५

आर्य शिक्षण संस्थायें ध्यान दें

(ले०—आचार्य श्री वीरेन्द्र शास्त्री एम. ए., काव्यतीर्थ, अधिष्ठाता शिक्षाविभाग आर्यप्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश, जयनारायण वर्मा रोड, फतेहगढ़)

'आर्यमित्र' द्वारा गतवर्षों में अनेकबार समस्त प्रान्तीय आर्यशिक्षण संस्थाओं को संगठित होकर एक 'आर्य विश्व विद्यालय' के निर्माण की आवश्यकता प्रतिपादित की जाती रही है। अब समय आगया है कि प्रान्त की लगभग ३०० संस्थायें (आर्य गुरुकुल तथा स्कूल कालेज आदि) संगठित होकर इस विषय पर विचार करें।

१. गत वर्ष अन्तरंग सभाने 'आर्य शिक्षा-समिति' की योजना स्वीकृत की थी। उसमें सभा के प्रधान और अधिष्ठाता और शिक्षा विभाग के अतिरिक्त ५ अन्य सदस्य होंगे जिनको अधिष्ठाता और सभा प्रधान २ सदस्य मुख्याध्यापकों में और २ सदस्य संस्थाओं के प्रबन्धकों में से और १ अन्तरंग सभा से] मनोनीत करेंगे। आर्य शिक्षा समिति की बैठक मई १९५५ के अन्तिम सप्ताह में प्रधान सभा की अन्तरंग की बैठक के साथ अन्तरंग के स्थान पर ही होगी। उसमें प्रान्त की शिक्षण संस्थाओं के संगठन, वेद, संस्कृत, वैदिकधर्म पौरोहित्य आदि की परीक्षाओं के प्रचलन, तथा आर्य विश्व विद्यालय के (जिसमें सभी संस्थाओं के प्रबन्धक और शिक्षकों का एक एक इस प्रकार लगभग ६०० प्रतिनिधि सम्मिलित हों) निर्माण पर विचार और निश्चय किया जावेगा।

आर्यशिक्षण संस्थाओं के प्रबन्धकों और मुख्याध्यापकों से (तथा मुख्याध्यापिकाओं से भी) प्रार्थना है कि वे उक्त विषयों पर अपने अपने सुझाव मेरे पास शीघ्र भेजें।

२. यदि कोई आर्यसमाज अथवा शिक्षण संस्था अपने यहाँ प्रान्तीय आर्यशिक्षा सम्मेलन (जिसमें लगभग ३०० शिक्षण संस्थाओं के प्रबन्धक और प्रधानाचार्य सम्मिलित होंगे) करने का भार वहन करना स्वीकार करें तो वह कृपया शीघ्र सूचित करें।

यदि किसी ने यह भार लेना स्वीकार न किया तो यह सम्मेलन कन्या गुरुकुल हाथरस अथवा गुरुकुल वृन्दावन के उत्सव के समय अथवा अगले वर्ष सभा के वृहदधिवेशन के साथ किया जावेगा। सम्मेलन से पूर्व यदि किसी विषय में सुझाव अथवा सम्मति आवश्यक हुई तो आर्यमित्र द्वारा तथा डाक द्वारा सूचना मिलने पर कृपया समस्त शिक्षण संस्थायें उस विषय पर अपनी अपनी सम्मति डाक द्वारा भेजें।

३. प्रान्त की जिन जिन आर्य शिक्षण संस्थाओं (स्कूल, कालेज, गुरुकुल, कन्या पाठशाला आदि) ने अपना अपना वार्षिक विवरण रिपोर्ट अभी तक न भेजा हो और वार्षिक शुल्क न दिया हो वे संस्थायें कृपया वार्षिक शुल्क तथा विवरण शीघ्र भेजें।

४. जो संस्थायें प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से आर्य प्रतिनिधि से सम्बद्ध किसी आर्य समाज अथवा संस्था के द्वारा संचालित हैं और अभी तक आर्य प्रतिनिधि सभा से स्वीकृत तथा सम्बद्ध (रिकग्नाइज्ड और एफिलियेटेड) नहीं हुई हैं वे अवश्य तथा शीघ्र ही सम्बद्ध होजावें। नियत प्रार्थनापत्र सभा कार्यालय से अथवा मुझ से प्राप्त करें और नियत प्रवेश शुल्क के साथ शीघ्र ही मेरे पास अथवा सभा के कार्यालय में भेजने की कृपा करें। सम्बद्ध होने से विशेष लाभ होगा कि उनको अपनी संस्था इन्टर मीजियेट बोर्ड से हाईस्कूल तथा इन्टरमीजियट तक स्वीकृत कराने के लिये अनिवार्य रूप से निश्चित सुरक्षित कोष इकट्ठा करना आवश्यक न होगा। प्रतिनिधि सभा से—सम्बद्ध संस्थाओं को यह बहुत बड़ी सुविधा सरकार से प्राप्त हुई है। उसका लाभ आर्य संस्थायें उठा सकती हैं।

५. सभा की अन्तरंग के निश्चयानुसार आर्य समाज से सम्बन्धित किसी शिक्षा संस्था के प्रबन्धक तथा प्रधानाध्यापक का सभा से सम्बन्धित किसी आर्य समाज का आर्यसभासद होना अनिवार्य है, अतः यदि कोई प्रबन्धक तथा प्रधानाध्यापक अबतक आर्यसभासद न हो तो शीघ्र बन जावें और यदि वे विचार वैषम्य के कारण आर्य सभासद बनना चाहें तो अपने पद से त्यागपत्र देने की कृपा करें। (शेष पृष्ठ १० पर)

साप्ताहिक सत्संग में सुनाएं

उपनिषदों का महत्व

(सत्यार्थप्रकाश पाठ संख्या २१ सप्तम समुल्लास)

(ले०—श्रीसुरेशचन्द्र वेदालङ्कार एम० ए०—डी० वी० कालेज, गोरखपुर)

उपनिषद् आरण्यकों में ही सम्मिलित है वेद के अन्तिम भाग होने से तथा सारभूत सिद्धान्तों के प्रतिपादन होने के कारण उपनिषद् ही वेदान्त के नाम से विख्यात हैं। भारतीय तत्त्व ज्ञान तथा धर्म सिद्धान्तों के मूल स्रोत होने का गौरव इन्हीं उपनिषदों को प्राप्त है। उपनिषद् वस्तुतः वह मानसरोवर है जिससे ज्ञान की विभिन्न सरिताएं निकलकर इस पुण्य भूमि में मानव मात्र के ऐहिक कल्याण तथा आमुष्मिक मंगल के लिए प्रवाहित होती हैं। इसी लिए जब किसी विदेशी विद्वान् को इसे पढ़ने का तथा मनन करने का अवसर मिला तब से वह इनकी समुन्नत विचारधारा उदात्त, चिन्तन, मार्मिक अनुभूति तथा आध्यात्मिक जगत् की रहस्यमयी अभिव्यक्तियों को शतमुख से प्रशंसा करता आया है। सत्रहवीं शताब्दी में हिन्दुओं के कट्टर विरोधी औरंगजेब का बड़ा भाई दारा शिकोह का हिन्दू धर्म की ओर प्रभावित करने में उपनिषदों का बड़ा हाथ है। १९ वी सदी के जर्मनी के बहुत बड़े दार्शनिक शापनहार ने जरमनी जगत् प्रसिद्ध फिलासफी का आश्रय छोड़ कर उपनिषदों को ही जीवन और अन्त काल के लिए शांति दायक समझा। महाकवि गेटे ने अपने ग्रन्थों में उपनिषदों की बड़ी प्रशंसा की है तथा इसे अपने तात्त्विक विचारों का आश्रय बनाया है।

इस प्रकार तत्व ज्ञान की पराकाष्ठा उपनिषदों के समय हुई। उपनिषदों के सिद्धान्तों के आधार पर ही बौद्ध जैन आदि धर्मों की स्थापना हुई। इन उपनिषदों में मानवीय मस्तिष्क सत्य की खोज में उसको तह तक पहुंचने की कोशिश कर रहा है। और चारों ओर तर्क और कल्पना के घोड़े दौड़ा रहा है उपनिषद् शब्द का अर्थ है उप - ब्रह्म सामीप्य, निषिद्यते =प्राप्यते यथा सा उपनिषद् अर्थात् ब्रह्म की समीपता जिससे प्राप्त होती है वह उपनिषद् है।

उपनिषदों में सत्य की टटोल हो रही है, विश्व का रहस्य जानने का उद्योग हो रहा, परमसुख का मार्ग ढूंढा जा रहा है। तरह-तरह के विचार पैदा हो रहे हैं चारों ओर स्वतंत्रता पूर्वक बहस हो रही है, बिना किसी डर के नए-नए सिद्धान्त निकाले जा रहे हैं। जीवन का मूल तत्व आत्मा है। आत्मा का नाश नहीं होता, वह मरता नहीं है, न बूढ़ा होता है, ब्रह्म को जानना जीवनका परम ध्येय है, ब्रह्म में भिन्न जाना अर्थात् अविद्या से छुटकारा पाना ही मोक्ष है। ब्रह्म स्वयं सिद्ध है अर्थात् उसे किसी ने बनाया नहीं वह आप ही बना हुआ है। जो ब्रह्म को जान लेता है, उसे ठीक ठीक पहचान लेता है। वह सब स्वार्थ छोड़ देता है। वेद पढ़ने से या विद्या से या ज्ञान से सिद्धि नहीं हो सकती, सदाचार भी होना चाहिए, धर्म का पालन करना चाहिए, परमेश्वर की भक्ति करना चाहिए, आत्म समर्पण कर देना चाहिए। यही उपनिषदों का ब्रह्म सामान्य है।

उपनिषदों की संख्या कितनी है यह एक विवादास्पद विषय है। किसी ने १५१ उपनिषदें मानी हैं तो किसी ने १०८ ही। इधर अड्यार लाइब्रेरी मद्रास ने ६० अप्रकाशित उपनिषदों का संग्रह प्रकाशित किया है जिस में वामनेय आदि ४ उपनिषदों का भी समावेश है। इनका अनुवाद १७ वीं शताब्दी में दारा शिकोह ने फारसी भाषा में करवाया था। श्री शंकराचार्य ने दश उपनिषदें मानी हैं:—
(१) ईश (२) केन (३) कठ (४) प्रश्न (५) मुण्डक (६) माण्डूक्य (७) तैत्तरीय (८) ऐतरेय (९) छान्दोग्य (१०) बृहदारण्यक स्वामी जी महाराज ने एकादशोपनिषद् में इन दस के अतिरिक्त श्वेताश्वतरोपनिषद् का भी ग्रहण किया है।

इस प्रकार उपनिषदों के तत्व ज्ञान तथा कर्तव्यशास्त्र का प्रभाव भारतीय जीवन के दर्शन पर पूर्ण रूप से विद्यमान है। उपनिषद् वेदों के तत्वज्ञान तथा रहस्य प्रतिपादन के कारण यथार्थ ही 'वेदान्त' हैं। इनका अध्ययन भी प्रत्येक आर्य नर नारी को करना चाहिए।

आर्य समाज के समस्त पत्रों में सबसे अधिक छपने वाला आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख्य पत्र—

ओ३म्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

आर्य-मित्र

वर्ष २७ — अंक ५५

लखनऊ—रविवार २२ मई तदनुसार ज्येष्ठ शुक्ल १ संवत् २०१२ (सौर १० ज्येष्ठ) दयानन्दाब्द १३०

क्या चाहते हैं आप

जीत या हार ?

भारतेन्द्रनाथ "साहित्यालंकार"

आज यह पंक्तियां मैं आर्यमित्र के संपादक के नाते नहीं व्यक्तिगत रूप में लिख रहा हूँ। बहुत सोचा है इनको लिखने से पहले मैंने, और बहुत विवश होकर ही यह सब लिखना पड रहा है।

मैं देख रहा हूँ कि हम आर्यसमाज के सभी सदस्य और अनुयायी निष्क्रिय और निराशावादी होते जा रहे हैं, लक्ष्य से भटक कर संसार के प्रवाह में बहते हुए सभी कुछ चल रहा है। महान् महर्षि के लक्ष्य पूर्ति की चिन्ता किसी को नहीं है, हम सब मार्ग से भटके, मनमानी करते हुए, स्वार्थ भावना में लकीर पीटते हुए चल रहे हैं, किन्तु इस चलने का परिणाम जीवन नहीं, मृत्यु है।

यह धारणा मेरी आज नयी नहीं बन गयी, निरंतर तीन वर्षों से सभी कुछ देखते, समझते मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि हम गलत रास्ते पर चल रहे हैं और यह रास्ता हमें न जाने कहां पहुंचाकर विश्राम लेगा ?

जिस समय 'दैनिक मित्र' के प्रकाशन की बात सम्मुख आयी उस समय लगभग सभी की एक ही सम्मति थी, दैनिक और वह भी बिना पूंजी के, आज के युग में नहीं चलाया जा सकता, किन्तु मेरा हृदय कहता था कि इतना बड़ा आर्यसमाज, महर्षि दयानन्द के इतने अधिक भक्त एक दैनिक को सफलता पूर्वक चला सकते हैं। प्रश्न केवल दैनिक मित्र के प्रकाशन का नहीं था, समस्या समस्त आर्य समाज के आगे बढ़ने की थी, मेरे सामने सदा यही सवाल रहा है कि महर्षि दयानन्द का महान् लक्ष्य पूरा हो तो कैसे ? अधूरा रहना महर्षि के उत्तराधिकारियों के लिए लज्जा की बात रहती, [illegible] पूर्ति के लिए चाहिए साधन।

[illegible] आगे बढ़ रहा है, भले [illegible] विनाश की ओर [illegible] निश्चित है कि [illegible] है, प्रचार के साधन भी [illegible]

दैनिक समाचार पत्र का प्रकाशन भी प्रचार का एक सबल हथियार है, इस हथियार के अभाव में आर्य समाज निर्बल रहे, आगे न बढ पाए, यह सहन करना किसी सच्चे ऋषि भक्त के लिए तो संभव नहीं, इसी भाव को लेकर आर्य भाई समय-समय पर दैनिक प्रकाशन का यत्न करते रहे हैं।

हजारों रुपया दैनिक के लिए इकट्ठा भी किया गया, बडी-बडी तैयारियां भी की गयी, पर दुर्भाग्य से

दैनिक न निकला, क्यों न निकला इसकी विवेचना मुझे नहीं करनी है।

पर इस का परिणाम यह अवश्य हुआ कि इस बार जब दैनिक निकालने के लिए आवाज उठायी गयी तब पूर्व की असफलता से उत्पन्न जनता का अविश्वास मार्ग की दीवार बन सामने आया, सभी ने कहा कौन जाने इस बार भी निकले या नहीं, कहीं यह भी रुपया इकट्ठा करने का प्रपंच तो नहीं है। जनता का कहना भी [illegible] था, दूध का जला छाछ को भी फूंक-फूंक कर पीता है, के कथनानुसार जनता ने मन की बात कह दी।

पर मार्ग से हटना तो कायरता होती, कर्मनिष्ठ श्री कालीचरण जी के बल आग्रह से वह समय भी आया जब दैनिक मित्र का प्रकाशन आरम्भ करने का निश्चय कर दिया गया। किन्तु आज ४७ अंक प्रकाशित हो जाने के बाद भी आर्य जनता की गहरी नींद, मेरे लिए चिंता का विषय बन चुकी है।

एक ओर से दूसरी ओर तक सब कहीं मौन सा छाया प्रतीत हो रहा है और मैं सोच रहा हूं कि आखिर आर्य पुरुष चाहते क्या हैं ? मैं यह मानने के लिए कभी तैयार नहीं हो सकता कि आर्य जनता एक दैनिक पत्र नहीं चला सकती, या आर्य समाज का दैनिक पत्र नहीं चल सकता ? तब सीधी दूसरी बात जो सामने आती है वह यही है कि आर्य जनता मार्ग से भटक चुकी है [illegible]

[illegible] धिकारी लक्ष्य छोड चुके हैं और पीट रहे हैं सभी लकीर। पर यह लकीर पीटना अवसर पडने पर असफल सिद्ध हो जाता है। और हुआ भी वही, "दैनिक मित्र के प्रकाशन ने आर्य जगत के सम्मुख परीक्षा का अवसर ला कर खड़ा कर दिया !

मैं प्रत्येक आर्य से यह पूछना चाहता हूं कि दैनिक मित्र का प्रकाशन आरम्भ कर क्या कोई अनुचित पग उठाया गया था क्या इस के चलाने से वेद ज्योति का प्रसार नहीं होता, फिर आप गहरी नींद में क्यों सो रहे हैं ?

यह न भूलिए कि यह आर्य समाज के जीवन-मरण का प्रश्न है। भविष्य का निर्माण और लक्ष्य की पूर्ति सभी इसी बात पर आकर केंद्रित हो गयी है। इस बार पीछे हटकर हम निकट भविष्य में आगे बढ सकें, इसकी संभावना नहीं, फिर बाट किस की देखी जा रही है।

प्रांत में ही हजारों आर्य समाजें हैं, प्रतिनिधि सभा के भी ६० अंतरंग सदस्य हैं, यदि सभी चाहें तो आप का दैनिक आर्यमित्र अन्य पत्रों से भी अच्छा निकल सकता है।

अब भी कुछ बिगडा नहीं है, उदासी और तमाशा देखना छोड़िए, अपने, आर्य समाज के गौरव की रक्षा के लिए आइए आगे, और पूरे बल से 'दैनिक मित्र' को आर्थिक चिंता से मुक्त करने का प्रण ले लें।

मैं अनुभव कर रहा हूं कि (परमात्मा न करे) यदि दैनिक बन्द हुआ तो यह हमारी समस्त दयानन्द भक्तों की जबरदस्त हार होगी और होगा सभी के माथे का एक अमिट कलंक, हमारी असफलता और अकर्मण्यता का प्रमाण पत्र !

किन्तु क्या देश के आर्य भाई यह कलंक लेने को तैयार हैं ? यह मैं पूछना चाहता हूं।

मेरे पास धन नहीं है यदि होता तो एक पैसा भी पास न रखकर दैनिक मित्र को चलाने लिए दे देता फिर

(शेष [illegible])

हार्दिक अभिलाषा

आर्यमित्र के उत्साही व सुयोग्य संपादक पं० भारतेन्द्रनाथ जी 'साहित्यालंकार' ने आर्य जनता से 'दैनिक आर्यमित्र' को चलाने के लिए मार्मिक अपील करते हुए सभी को सहयोग के लिए निमन्त्रण दिया है। साथ ही उन्होंने एक आदर्श उपस्थित करते हुए २५) मासिक एक वर्ष तक 'दैनिक मित्र' को चलाने के लिए देने का निश्चय भी घोषित किया है। क्या यह आशा करूं कि आर्य जनता अपनी निद्रा त्याग, दान भेजने व सदस्य बनाने में लग जाएगी—देरी उचित नहीं और न सोचने का समय है, आज से ही आर्य जन पूरे बल से सहयोग देना आरम्भ कर यह मेरी हार्दिक अभिलाषा है—

कालीचरण आर्य
मन्त्री
सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा व आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश

कश्मीर विवाद का हल भविष्य के लिए टला : भारत-पाक सीमा के झगड़े रोकने की व्यवस्था करने का निर्णय : दोनों देशों के नेताओं की संतोषजनक वार्ता : निकोवाल कांड के लिए सयुक्तराष्ट्र के पर्यवेचकों द्वारा पाकिस्तान पर दोषारोपण : गोआ की मुक्ति के लिए भारतीय सत्याग्रहियों का अभियान और पुर्तगाली अधिकारियों के अमानुषिक अत्याचार

निकोवाल कांडकी छाया में भारत पाकिस्तान ने विवादग्रस्त प्रश्नों पर दिल्ली में दोनों देशों के प्रमुख नेताओं की वार्ता गत सप्ताह की प्रमुख घटना रही।

भारत के प्रधान मंत्री नेहरू और पाकिस्तानी प्रधानमंत्री मुहम्मद अली ने कश्मीर के प्रश्न के सभी पहलुओं पर विचार किया पर कोई हल नहीं निकाला जा सका।

१४ से १८ मई तक दोनों देशों के प्रमुख अधिकारियों के बीच हुई वार्ता के सम्बन्ध म प्रकाशित सयुक्त विज्ञप्ति में कहा गया कि दोनों सरकार कश्मीर के मसले पर पूरी तरह विचार कर लेने के बाद पुन वार्ता करेंगी।

वार्ताओं में भारत की ओर से प्रधानमंत्री नेहरू, शिक्षा मंत्री मौलाना आजाद व गृहमंत्री पण्डित पत ने तथा पाकिस्तान की ओर से प्रधान मंत्री मुहम्मद अली और गृहमंत्री मेजर जनरल इस्कन्दर मिर्जा ने भाग लिया।

वार्ता में सीमावर्ती घटनाओं को रोकने के प्रश्न पर समझौता हुआ। दोनों देशों के गृहमंत्रियों ने फैसला किया सीमाएं निर्धारित करने का कार्य जल्दी से जल्दी पूरा कर लिया जाए और ऐसी व्यवस्था की जाय, ताकि भविष्य मे दुर्घटनाएं न हों और सेनाओं को संघर्ष करने का अवसर न मिले।

धार्मिक स्थानों की के सुरक्षा बार म भी समझौता हुआ इस सबन्ध म निर्णय किया गया कि १९५३ में हुए समझौते को कार्यान्वित करने के लिए एक कमेटी बना दी जाय।

पाकिस्तानी प्रधान मंत्री मुहम्मद अली ने स्वदेश लौटने पर वार्ताओं पर सतोष प्रकट किया है। वे यह मानते हैं कि कश्मीर की गुत्थी बहुत उलझी हुई है और यह पुरानी बीमारी एक क्षण में छूमन्तर नहीं हो सकती।

पाकिस्तान को अपने रवैये पर नये सिरे से गौर कर उसमें परिवर्तन करना चाहिए तथा समस्याओं का सतोष जनक हल निकल सकता है और दोनो देशों के बीच स्थायी मैत्री हो सकती है।

* * *

निकोवाल काण्ड के सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्र संघ के पर्यवेक्षकों ने पाकिस्तान को दोषी बताया है और अपनी रिपोर्ट में कहा है कि गोली चलाने की योजना पहले से बनायी गयी थी।

पाकिस्तानी प्रधानमन्त्री के दिल्ली आने पर इस दुर्घटना पर खेद प्रकट किया था और कहा था कि दोषी माने जाने वालों को समुचित दण्ड दिया जायगा। अगर पाकिस्तान भविष्य में इस तरह की घटनाओं को रोकना चाहता है तो वह इस घटना की निष्पक्ष जाँच कर दोषियों को कड़े से कड़ा दण्ड दे, ताकि भविष्य में इस तरह की गैर-जिम्मेदाराना हरकतें न होने पाये।

पकड़ने वाले संघर्ष में भारतीयों ने भी खुलकर योगदान आरम्भ कर दिया।

महाराष्ट्र की प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष श्री एन० जी० गोरे और ७४ वर्षीय क्रान्तिकारी नेता सेनापति बापट के नेतृत्व में ५४ स्वयंसेवकों के दल ने सत्याग्रह करने के लिए गोआ में अभियान किया।

पुर्तगाली पुलिस ने इन निहत्थे सत्याग्रहियों पर गोली बरसायी। ४ सत्याग्रहियों को गोली लगी। श्री गोरे और सेनापति बापट को बुरी तरह मारा गया। सेनापति बापट के [illegible] [illegible] पर दिन भर-मार पड़ी। [illegible] सत्याग्रही घायल हुए।

प्रधान मन्त्री नेहरू ने गोआ

इस काण्ड का सबसे चिंताजनक पहलू यह है कि पाकिस्तानी पुलिस ने भारतीय सैनिक अधिकारियों पर भी बिना किसी चेतावनी के गोली चलाई गोलीकांड के फलस्वरूप ६ सैनिक जिनमें प्रमुख सेनाध्यक्ष मेजर जनरल बुधवार भी थे तथा ६ नागरिक मारे गए।

पाकिस्तान सरकार को चाहिए कि वह इस काण्ड के लिए भरपूर मुआवजा दे, ताकि कृषकों के परिवारों की स्थायी सहायता की व्यवस्था की जा सके।

जब तक इस तरह के अप्रिय काँड होते रहेंगे दोनों देशों के बीच सौहार्द पूर्ण सम्बन्ध कायम होने की कल्पना नहीं की जा सकती। दोनों देशों के उच्चाधिकारियों की वार्ताओं का तब तक कोई लाभ न होगा, जब तक दोनों देशों के नागरिक परस्पर सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाये रखने के लिए प्रयत्न शील नहीं होंगे।

\+ \+ \+

१८ मई का दिन इस सप्ताह का प्रमुख दिन है। भारत की भूमि पर परतन्त्रता के एकमात्र चिन्ह पुर्तगाली शासन के पंजे से मुक्त कराने के लिए

वासियों पर ढाये जाने वाले जुल्मों और उन्हें निर्वासित किये जाने के विरुद्ध हाल में कड़ी चेतावनी दी थी। कुछ दिन पूर्व गोआ के मुक्ति आन्दोलन में भाग लेने वाले इन व्यक्तियों को पुर्तगाल भेज दिया गया है।

गोआ के स्वतन्त्रता प्रेमियों और सत्याग्रहियों पर अमानुषिक अत्याचार किये जा रहे हैं। स्त्रियों का भी खुले आम अपमान किया जा रहा है। पुर्तगाली अधिकारियों के जुल्म ब्रिटिश सरकार के जुल्मों को भी मात कर रहे हैं।

पुर्तगाली अधिकारियों ने सारे गोआ को फौजी शिविर बना रखा है। पूरी बस्ती में सैनिकों का जाल बिछा दिया गया है। जिस व्यक्ति पर स्वतन्त्रता आन्दोलन से सहानुभूति रखने का सदेह होता है, उसे कुचलने की भरपूर कोशिश की जाती है।

श्री गोरे के शब्दों में यह स्थिति भारत की शान्तिपूर्ण नीति के लिए चुनौती है। अब समय आ गया है कि भारत सरकार गोआ की मुक्ति के लिए ठोस कदम उठाये और भारत की धरती को विदेशी [illegible] से पूर्ण

हार या जीत

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हार २५) [illegible] एक [illegible] [illegible] रखूंगा।

मैं चाहता हूं कि भारत की [illegible] धनी-मानी व सभी श्रेणी के व्यक्ति अपनी आवश्यकताएं कम कर 'आर्य' दैनिक मित्र को चलाने के लिए भेजना आरम्भ कर दें।

"मैं निराश हूं नहीं, आज भी मेरा अटल विश्वास है कि परमात्मा आर्य भाइयों को ऐसी प्रेरणा करेंगे जिससे वे अपने पूरे बलसे कार्यमें लग जायंगे। साथ ही कल से मैं स्वयं भी प्रांत की समाजों में पहुंचकर सहयोग की प्रार्थना करूंगा, किन्तु अच्छा होता यदि आर्य भाई पूरे बल से हमारे आर्थिक संकट को दूर कर देते, तब हम पूरे बल से लगते दैनिक सफल बनाने में।

जीवन-मरण, हार या जीत आर्य जनता के हाथ में है, वह क्या चाहती है इसका उत्तर रचनात्मक रूप में, मैं उससे जानना चाहता हूं इस आशा के साथ कि "जीत" के लिए प्रयत्न हो आज से ही आरम्भ कर देगी।

मुक्त कराने को अपने [illegible] को पूरा [illegible] करें।

× × ×

विवाह की प्रणाली में—

सुधार की आवश्यकता !

(श्री विष्णु स्वरूप जी, बी ए एल एल बी)

[illegible] विवाह सम्बन्धी [illegible] कुरीतियों की कठिनाइयाँ [illegible] नहीं हैं। उनके [illegible] और दुखी हैं। जिनसे कतिपय इन कुरीति [illegible] से मजबूर होकर ईसाई तथा मुसलमान हो जाते हैं, कितनी कई [illegible] से लेकर युवावस्था बिताती हैं और उनमें से कितनी ही पथभ्रष्ट हो जाती हैं। यद्यपि दयानन्द तथा अन्य नेताओं के समय समय पर इन कुरीतियों के विरोध करते रहने पर भी यह परिस्थिति बिगड़ती ही गई है। किन्तु दुख की बात है कि शायद आर्यों में से एकाध लोग ही विशुद्ध वैदिक रीति से अपने बच्चों के विवाह करते हैं। इनमें से भी वास्तव में शायद वैदिक प्रणाली का अनुसरण करने वाले लोग शायद ही कोई हों। सेहरा, घोड़ी, बाजा, भात-न्यूतना, [illegible], लेन-देन, जाति-बिरादरी आदि अनेकों की रूढ़ियों एवं रस्मों का अनुसरण आर्य समाजियों तक के विवाहों में होता है और केवल विवाह संस्कार में पण्डा पुरोहित न आकर आर्य समाज के पंडित संस्कार विधि के मन्त्रों द्वारा विवाह करा देते है।

परन्तु यह भी सत्य है कि भारतवर्ष में पिछले वर्षों में सामाजिक क्षेत्र के अतिरिक्त अन्य सभी क्षेत्रों में बड़े बड़े परिवर्तन हुए हैं और हमने निश्चित रूप से प्रगति की है। पर ढाँचे में सामाजिक रूढ़िवाद स्पष्ट [illegible] नहीं हो रहा है और आज के व्यापक असन्तोष का यह बहुत बड़ा कारण है। शायद दहेज जात-पाँत आदि की समस्याएं अब उस दशा को पहुँच चुकी हैं जहां उन्हें समाप्त ही होना पड़ेगा। गरीबी, बेकारी और भुखमरी के जमाने में बदलती हुई परिस्थितियों में वर ढूंढने की समस्या और दहेज देने की परेशानियों ने इस विषाक्त फोड़े का रूप धारण कर लिया है जिसे हमें अब अविलम्ब नश्तर लगा देना चाहिये, अन्यथा यह समाज के ही नहीं, समस्त राष्ट्र के जीवन को [illegible] बना देगा। विशेषकर आर्य समाज के अनुयायियों को, जो वैदिक धर्मानुरागी और देशभक्त होने का ढोल पीटते आए हैं, अपने हृदय पर हाथ रखकर सोचना पड़ेगा कि इस दिशा में उन्होंने अपने कर्तव्य का पालन कहाँ तक किया है? ईसाइयों तथा अन्य प्रचारवादी मतों का [illegible] करने के साथ ही हमें अपना सुधार यहीं [illegible] में भी करना पड़ेगा अन्यथा हमारे सारे ढोंग झूठे सिद्ध होंगे।

[illegible] विवाह के लिए [illegible] बातों की आवश्यकता है —

(१) गुण कर्म स्वभाव की समानता,

(२) आर्थिक आत्म निर्भरता,

(३) आयु एवं स्वास्थ्य का सामञ्जस्य, तथा

(४) वर-वधू की सम्मति।

यह भी स्पष्ट रूप से शास्त्रों में लिखा हुआ है कि विवाह जितनी ही दूर का होता है उतना ही अच्छा होता है, पर आज न जाने किस प्रकार यह रिवाज चल पड़ा है कि लोग अपनी जाति और अपने वर्ग में ही वर ढूँढ लेते हैं।

उपरोक्त आदेशों के अतिरिक्त शेष सभी चिन्ताएं व्यर्थ होती हैं। जन्म कुण्डली मिलाना, जाति पाँति देखना, विवाह को एक सौदे का रूप देना, आदि सभी पाखण्ड हैं जिनका विद्वानों ने सदैव विरोध किया है।

उदाहरण छोड़ जाते हैं, जिनकी नकल करने के चक्कर में हजारों घर बरबाद हो जाते हैं। पर शायद अब वह समय आ गया है जब सम्पन्न घर वालों को भी समाज के सम्मुख आदर्श रखने के लिए ही साधारण से साधारण और सस्ती से सस्ती से शादियाँ करनी चाहियें और देश में एक स्वस्थ वातावरण का निर्माण करना चाहिए। वही धन जिसे हम अपनी कन्याओं के विवाह में व्यय करने के लिए जीवन भर भले बुरे काम कर एकत्र करते हैं राष्ट्र निर्माण के काम में लगकर हमारी अधिक भलाई कर सकता है।

कन्याओं के जन्म पर हम दुखी होते हैं और उन्हें एक विपत्ति के समान समझते हैं। शुरू से ही हम उनकी शिक्षा दीक्षा की अधिक चिन्ता न कर अपने समस्त प्रयासों से उनके विवाह के अवसर के लिए धन एकत्र करते

बर्बर समाज को बदला जाए, यह तो सभी चाहते हों पर परिवर्तन सुधार के लिए हो अथवा संहार के लिये हमने यह सोचना है समाजकी रीढ़ विवाह है। विवाह सम्बन्ध में उत्तर दायित्व है पवित्रता है, किन्तु आज यही विवाह अभिशाप बन चुका है, परिणामस्वरूप "समाज" विशृंखलित हो चुका है। इसे सुधारने के लिये दृष्टिकोण परिवर्तित करना होगा यही इस लेख का उद्देश्य है। सम्पादक

यह हमारी कमजोरी है कि इन विचारों से सहमति रखते हुए भी हम अपने संकुचित दायरे से बाहर निकलने का साहस नहीं बटोर पाते और चाहे हम जीवन भर मूर्तिपूजा के विरोधी और अन्धविश्वासों के शत्रु रहे हों, विवाह का मौका आते ही पुराण-पन्थियों से जा मिलते हैं—एक एक रस्म पूरी करते हैं, किसी न किसी रूप में दहेज लेते हैं और ऐसी शादी में आर्य समाज को पाँच दस रुपए दान भी दे डालते हैं। अपनी कन्याओं के लिए वर ढूंढते समय हम ऋषि के आदेश को भूल जाते हैं कि वर्णभेद कर्मानुसार होते हैं और कर्मानुसार समान वर्ण का लड़का ढूंढने निकल पड़ते हैं चाहे (जन्म से) अन्य वर्णों में उत्तमोत्तम वर सुलभ हों और चाहे उस रूढ़ि को पीटने में हमारी जेब ही खाली न हो जाय, हम कर्जदार भी हो जाय। यही नहीं यदि हम सम्पन्न हैं तो हम तो निपट जाते हैं पर समाज के गरीब परिवारों के लिए एक बुरा

हैं। यही नहीं विवाह संस्कार में हजारों रुपए व्यर्थ में फूंक डालते हैं—हम ऐसी मदों पर धन व्यय करते हैं जिनसे हमें देश अथवा जाति को कोई लाभ मिलने वाला नहीं है सिवा इसके कि एक वृहत् प्रदर्शन हो और लोग हमारे द्वारा दी गई दावतों की तारीफ करें। बहुत से लोग इस सब में अपनी शान समझ सकते हैं पर वास्तविकता यह है कि अन्य धर्मावलम्बी हमारी मूर्खता पर हंसते हैं और विदेशों में इन आयोजनों का वर्णन उसी प्रकार किया जाता है जिस प्रकार अफ्रीका की जंगली जातियों के विचित्र व्यवहारों का। हमारे समाज का ही शिक्षित वर्ग परम्परागत वस्त्रों में सजे दूल्हे को उसी दृष्टि से देखता है जिस दृष्टि से वह मदारी के बन्दर को देखता है। मैंने स्वयं एक बार किसी को चुटकी लेते सुना था—फकत डमरू की कसर है।'

हम समयानुसार परिवर्तन करने की क्षमता तथा अपने उदारतापूर्ण दृष्टिकोण के लिए प्रसिद्ध हैं। तो क्या विवाह सम्बन्धी कुरीतियों पर गम्भीरता पूर्वक विचार कर अपने रवैये को बदल नहीं सकते? अवश्य कर सकते हैं। यह भी नहीं कि हम इस प्रश्न पर विचार न करते हों। आप किसी से भी बातें कर देखिए—वह इन कुरीतियों का विरोध करता दिखाई देगा, यदि समर्थक होगा तो भी उसका हृदय सन्देह से पूर्ण दीख पड़ेगा। दूसरों के विवाह देखकर हम इन कुरीतियों का विरोध करते हैं और जहाँ तक दूसरों का सम्बन्ध है शायद हम उन्हें समझाने अथवा कुछ और रचनात्मक कार्य करने का साहस भी कर डालें। पर जब अपने पुत्र पुत्रियों के विवाह का अवसर आता है हम फिर दकियानूस हो जाते हैं। निष्कर्ष स्पष्ट है—विवाह सम्बन्धी कठिनाइयों से सारा समाज व्यग्र और दुखी है। वह इन कुरीतियों के बन्धन तोड़कर मुक्त होना चाहता है पर हिम्मत नहीं कर पा रहा है, उसी प्रकार जैसे वर्षों से कुछ रोग से पीड़ित रोगी मुक्त होने की कामना रखते हुए भी अपने गलित शरीर का बन्धन त्यागते समय विह्वल हो जाता है—रो पड़ता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह अपना धर्म पहिचाने और दूसरों को साहस से काम लेने के लिए प्रोत्साहित करे। ऐसे विवाहों का सामाजिक रूप से बहिष्कार किया जाना चाहिए जिनमें आडम्बरों, रूढ़ियों तथा कुरीतियों का पोषण हो। हमें यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि विवाह संस्कार के भावात्मक रखीकरण के बिना आर्य (हिन्दू) जाति प्रगतिशील, सुखी और समृद्ध कदापि नहीं हो सकती और इस दिशा में हमारी झिझक तथा ढिलाई आत्मघातक सिद्ध होगी।

धन और विद्या

एक सज्जन ने एक पंडित से पूछा—'विद्वान् लोग धनवानों के यहाँ रहते हैं पर धनवान् लोग विद्वानों के यहाँ नहीं मिलते। क्यों?

पंडित ने उत्तर दिया—'विद्वानों को धन की कमी मालूम होती है। लेकिन धनवानों को विद्या की कमी मालूम नहीं होती।

वकील की वसीयत

एक वकील महाशय ने मृत्यु के पहले अपना वसीयतनामा बनवाया, जिसमें उन्होंने लिखवाया कि उनकी सारी सम्पत्ति पागलों और मूर्खों में बाँट दी जाय। इस पर किसी ने उनसे पूछा, तो उन्होंने कहा—हम यह सम्पत्ति ऐसे ही लोगों से मिला है उन्हीं को लौटा देना चाहता हूं' ×

स्वराज्य प्राप्ति के बाद

भारत किधर ?

देश में भयंकर गरीबी : मंत्रियों और नेताओं के ठाठ

(लेखक—श्री प्रेमनारायण जी एम० ए०)

स्वराज्य प्राप्ति के ७ साल बाद, राष्ट्र-निर्माता गान्धी जी की मृत्यु के ६ साल बाद, पं० नेहरू के प्रधानमंत्री बनने के ८ साल बाद, प्रथम पंचवर्षीय योजना के तीन साल बाद, जिसमें उसके कुल खर्च के अनुमान से आधे के करीब अर्थात् ११०० करोड़ के खर्च हो चुकने के बाद आज हम इतने वर्षों में हुई भारत की प्रगति पर एक दृष्टि डाल कर, देखें तो कोई अनुचित बात न होगी। इस प्रगति से हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि देश किधर जा रहा है और उसके भविष्य के लिये यह शुभ या अशुभ लक्षण हैं।

कांग्रेस दल का यह दावा है कि भारत को स्वराज्य दिलाने का श्रेय कांग्रेस को है और स्वर्गीय गान्धी जी को। हमारा अपना मत है कि भारत को स्वराज्य दिलाने वाली थी अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ और इंग्लैंड का द्वितीय महायुद्ध के फलस्वरूप तृतीय श्रेणी का राष्ट्र रह जाना। इंग्लैंड के दूरदर्शी कूटनीतिज्ञ और राजनैतिक नेताओं ने इसी में अपना कल्याण समझा कि वह भारत को अपने आप बिना किसी खून खराबी के स्वराज्य दे दें। अगर ऐसी परिस्थितियाँ न होतीं, तो भारत को स्वराज्य न मिला होता; क्योंकि इस समय कांग्रेस ही देश का सबसे प्रमुख शक्तिशाली दल था, अतः उसे ही सत्ता सौंप दी गई। २ सितम्बर सन् ४६ को पं० नेहरू भारत के सबसे पहिले प्रधान मन्त्री बने थे और तबसे अभी तक देश का शासन उनके द्वारा ही चलाया जा रहा है। इसी बीच भारत का विभाजन १५ अगस्त सन् ४७ को हो गया, भारत का नया प्रजातन्त्रात्मक विधान बन गया और इसके अनुसार बालिग मताधिकार पर संसार का सबसे बड़ा चुनाव भी हो गया और इधर दो साल से इस नये चुने हुए कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों के हाथ में देश का शासन है।

गाँधी जी ने अपनी मृत्यु से कुछ ही समय पूर्व यह इच्छा प्रकट की थी कि अब स्वराज्य मिलने के बाद कांग्रेस भंग कर दी जाय और वह एक राजनैतिक दल न होकर लोक-सेवक मण्डल का रूप धारण कर ले। परन्तु उनकी इच्छा आज तक पूरी नहीं हुई है और न उसके पूरे होने की कोई सम्भावना है। गान्धी जी का नाम लेकर उनके प्रभाव से कांग्रेस की धाक बन गई है, हर समय उनका नाम लिया जाता है, जिससे जनता पर प्रभाव पड़े। पर आश्चर्य यह है कि उनके राजनैतिक उत्तराधिकारी व अन्य सैकड़ों निकटतम सहयोगियों ने उनकी यह अन्तिम इच्छा क्यों ठुकरा दी ? इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि उनकी मृत्यु के ६ साल के अन्दर उनके ही सहयोगियों ने उनके सिद्धान्तों की जितनी हत्या की है, उतनी अन्य किसी ने नहीं की और सम्भवतः संसार के इतिहास की यह पहिली घटना है कि किसी महापुरुष के सिद्धांतों को उनके निकट से निकट के साथियों ने इतनी जल्दी भुला दिया।

इतने दिनों बाद यह बात स्पष्ट दीख रही है कि कांग्रेस ने उनके सिद्धान्त, आदर्श और कार्यप्रणाली को एकदम त्याग दिया है, पर उनके नाम का पूरा-पूरा लाभ उठाने से वह नहीं बड़े भारी कांग्रेसी नेता, राष्ट्रपति या राज्यपाल भी सादगी में रहकर अनेक यातनाओं और कष्टों को सहर्ष सह कर देश के स्वातन्त्र्य आन्दोलन को आगे बढ़ाने में जुटे थे और रचनात्मक कार्य भी करते थे। यह काम आज के शासन संचालन से कम उत्तरदायित्वपूर्ण, कम मेहनत या सूझ बूझ का नहीं था। वास्तव में यह काम अधिक कठिन, उलझा हुआ, श्रम पूर्ण और अधिक सूझ-बूझ का था। परन्तु सत्ता हाथ में आते ही वह एक दम कितने बदल गये यह आज सभी देख रहे हैं। इसका कारण है कि देश की प्रगति बहुत धीमी है, पैसे की बरबादी हो रही है,

सामयिक समस्याएँ

चूकती। समय, असमय, प्रत्येक क्षण उनका नाम लेकर जनता को उल्लू बनाया जाता है। इससे यह भी ध्वनि अत्यन्त स्पष्ट होती जा रही है कि कांग्रेस का सारा बल या प्रभाव गान्धी के नाम के जादू के कारण ही है और ज्यों-ज्यों जनता इनके कामों से परिचित होती जायगी कांग्रेस कब्र के नजदीक पहुंच जायगी।

एक सबसे बड़ा अन्तर है जो इस समय देश में सबको दिखाई पड़ रहा है और जो सबको बुरी तरह खटक रहा है वह गरीब देश के पैसे की बरबादी का है। गान्धी जी दरिद्रनारायण के प्रतिनिधि थे, उनके जीवन में सादगी थी, वह किसी महल में न रह कर एक साधारण घास फूस की झोपड़ी में बैठ कर देश की राजनीति व स्वातन्त्र्य आन्दोलन का सफलतापूर्वक संचालन करते थे। गर्मियों में वह शैल-शिखर नहीं जाते थे, न अपनी कुटिया को ठंडा रखने का यत्न करते थे। न रहने के लिये विशाल भवन चाहिये था न पुष्पवाटिकाओं की आवश्यकता थी, न दर्जनों नौकरों चाकरों की। उनके अभाव में आज के मन्त्रीगण व

शासन में नियंत्रण कम है, ढिलाई ज्यादा है, जनता ज्यादा पिस रही है, गरीबी बढ़ रही है, सरकारी कर्मचारियों अपेक्षाकृत अधिक रिश्वतखोरी, कामचोरी

अनुत्तरदायित्व की भावनायें बढ़ रही हैं। एक शब्द में अगर हम कहें तो आज की जनता यह चिल्ला चिल्ला कर कह रही है कि आज के स्वराज्य से तो बृटिश काल की परतन्त्रता में वह अधिक सुखी थी। तब यह गड़बड़ियाँ कम थी जो आज हैं। देश में चारो तरफ से अन्धकार ही अन्धकार दीख पड़ता है, कहीं आशा की किरण दिखाई नहीं पड़ती। कहीं किसी तरफ भी स्वराज्य सरकार ने कुछ लाभ नहीं पहुंचाया। एक सबसे बड़ी बात यह हो गई कि वह अपने नेताओं को भी खो बैठी, उनके और जनता के बीच में बड़ी लम्बी चौड़ी भारी भरकम दिवाल खड़ी हो गई है। अब वोट माँगने के बाद दिखाई नहीं देते, उनके दुःख दर्द की बात पूछने कभी नहीं आते। अब तो कभी कभी दर्शन होते हैं—मोटरकारों में आते जाते या प्लेटफार्म पर खड़े हुए उपदेश देते हुए। वह कहती है कि स्वराज्य प्राप्ति के इतने चन्द वर्षों में महात्मा के मरने के ६ साल बाद ही देश का सारा वातावरण एकदम बदल गया। अगर अभी यह हाल है, जबकि हमारे वह सेनानी मौजूद हैं, जिन्होंने स्वतन्त्रता की लड़ाई में खून पानी बहाया था, जिन्होंने उसका नेतृत्व किया था तो आगे का तो ईश्वर ही मालिक है—जब अगली बिगड़ी हुई अनियन्त्रित उच्छृंखलता और उनके आदर्शों पर चली हुई पीढ़ी शासनसूत्र को सम्भालेगी।

हाल ही में हमने समाचार पत्रों में पढ़ा है कि दिल्ली में मन्त्रियों के घरों में ६ लाख रुपये खर्च करके ठंडा रखने के यन्त्र लगाये जा रहे हैं। हाल ही में हमें राष्ट्रपति भवन, प्रधान मंत्री का निवास स्थान देखने का मौका मिला और उनके ठाठबाट देखकर हम दंग रह गये। एकाएक यह विश्वास नहीं हुआ कि इसमें रहने वाले हमारे वही पुराने सेवक हैं जिनके लिए सब सख्ती, शान ठाठ और बड़ी से बड़ी यातनायें और कष्ट कुछ भी नहीं थे। कांग्रेस दल के लोग उनकी तुलना अंग्रेज शासकों से करते हैं और इन्होंने इनमें जो कमी की है उनके गाने गाते हैं। पर यह तुलना गान्धी जी से और पूर्व जीवन से या भारत की गरीबी से क्यों नहीं करते। गाँधी जी की कुटिया में बड़े से बड़े विदेशी आते जाते थे। वह लंगोटा पहन कर लन्दन का गोलमेज परिषद् में भाग ले सकते थे, सम्राट से मिल सकते थे, पर यह हमारे नेता "दरिद्रनारायण" के प्रतिनिधि बनने में शरम अनुभव करते हैं। अगर आज गांधीजी जीवित होते तो यह निश्चय था कि इनके रंगढंग में भारी अन्तर होता और यह कांग्रेस छिन्न भिन्न हो गई होती और इन नेताओं को अपनी नई पार्टी बनाकर अन्य पार्टियों के मुकाबले में वोट माँगना पड़ता। अगर यह अपना रंगढंग न बदलते, वर्तमान रवैये को जारी रखते तो गान्धी जी की जोरदार आवाज निःसंदेह उनके विपरीत होती और वह उनके अस्तित्व को खतरे में डाले बिना न रहती।

अगर हम यह ठाटबाट न दिखावें, इतना रुपया बरबाद न करें तो क्या संसार हमारी उपेक्षा करेगा ? नहीं, प्रश्न है कि जबतक मौका है गुलछर्रे उड़ा लो। सरकार के धन से तीर्थ कर आओ, देशविदेश घूम आओ अपने सम्बन्ध बनालो, नाते रिश्तेदारों को नौकरी दिलाओ, पार्टी को मजबूत बना लो, जिससे बाद में आराम से रह सको। हमारा तो खयाल है कि अगर हम अपना

(शेष अगले पृष्ठ पर)

न्याय दर्शन में प्रतिपादित—

आत्मा का स्वरूप

[लेखक—श्रुतिशील शर्मा तर्क पंडित गुरुकुल वृन्दावन]

आजकल सारा संसार प्रायः चाहे वैज्ञानिक जगत् हो चाहे नास्तिक समाज हो चाहे पौराणिक या अन्य मतावलम्बी हो सभी आत्मा की सत्ता किसी न किसी रूप में अवश्य मानते हैं, अतः इस विषय में विद्वज्जनों की विप्रतिपत्ति हो सकती है। परन्तु आत्मा की सत्ता के विषय में सबका एक मत है।

इसी आत्मा के प्रत्यक्ष के विषय में उपनिषद् कहती है—

'आत्मा वारे द्रष्टव्यः'

परन्तु इसके साथ ही आत्मा का प्रत्यक्ष सरल नहीं बताया और बिना त्याग के आत्मा का प्रत्यक्ष असम्भव बताया है। अतः उपनिषद् का यह वचन है।

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः न मेधया न बहुना श्रुतेन"

हमें शिक्षा देता है कि हमें बलवान होना चाहिए। परन्तु इस वचन पर कुछ विद्वानों को आपत्ति है, कि इसमें कुछ निराशा की झलक है। परन्तु इसके आगे ही उपनिषद् में इसके प्रत्यक्ष का उपाय।

"मनसैवानु द्रष्टव्यम्"

कह कर बताया, अर्थात अपने मन को शक्तिशाली बनाना चाहिए। तभी उसका प्रत्यक्ष हो सकता है।

तथा इसका स्वरूप भी "बालाग्रशतभागस्य" कहकर बहुत सूक्ष्म कर दिया है इस प्रकार उपनिषद् प्रतिपादित आत्मा का स्वरूप स्पष्ट है। और उसका नित्यत्व प्रति पादन स्पष्ट तथा दृष्टिगोचर होता है। अब वेद के उपांग दर्शनों का विचार जानना आवश्यक है।

आजकल यद्यपि बहुत से दर्शनों का प्रचार है परन्तु मुख्य दर्शनों की गणना कम है। उसमें भी नास्तिक और आस्तिक भेद से दो प्रकार हो जाते हैं बौद्ध, जैन चारवाक नास्तिक दर्शनों की कोटि में आते हैं और भारतीय षड् दर्शन आस्तिक की कोटि में आते हैं। इनके ईश्वर के विषय में नाना मत होते हुए भी आत्मा के विषय में सब एक मत हैं। परन्तु किसको आत्मा माना जावे इसमें भेद है। जैसे, चारवाक शरीर इन्द्रियों को आत्मा मानता है। और मीमांसक प्रभाकरादि नित्य विज्ञान को आत्मा मानते हैं और बौद्ध क्षणिक विज्ञान को आत्मा मानते हैं। इस प्रकार विभिन्न मत हैं। अब षड्दर्शनों में न्यायदर्शन का स्थान प्रथम है। अतः उसके मत पर दृष्टिपात करना आवश्यक है।

न्याय दर्शन

इस शास्त्र के प्रणेता गौतम या अक्षपाद कहे जाते हैं। यह तर्क प्रधान शास्त्र है। इसमें प्रमाण, प्रमेयादि १६ पदार्थों की तर्क के आधार पर विवेचना की है। प्रमाण चार हैं और प्रमेय १२ माने हैं। जैसे कि इस सूत्र में वर्णित है।

"आत्मशरीरेन्द्रियार्थ बुद्धिमनः प्रवृत्तिदोष प्रेत्यभाव फल दुःखापवर्गास्तु प्रमेयम्"

इन प्रमेयों की विवेचना की गई है। इसमें प्रथम स्थान आत्मा का है अतः इसकी विवेचना करते हैं। इस दर्शन में हमें आत्मा का कोई विशेष स्वरूप प्रतीत नहीं होता। परन्तु इस सूत्र में उसके धर्म अवश्य बताये हैं।

इच्छाद्वेष प्रयत्न सुखदुःख ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति हम सुखादि को का अनुभव करते है। इससे आत्मा की सत्ता सिद्ध होती है। परन्तु इसमें उसका वर्णन उपलब्ध नहीं है। परन्तु वात्स्यायन भाष्य में कुछ अंशों में मिलता है।

तत्रात्मा सर्वस्य द्रष्टा सर्वस्य भोक्ता सर्वज्ञः सर्वानुभावकः (वा.भा. १।९)

परन्तु इसमें भी उपनिषद् की तरह स्पष्ट स्वरूप नहीं मिलता। इस दर्शन में विशेषता यह है कि अन्य दर्शनों ने विप्रति पत्ति पर ध्यान न देकर केवल स्वरूप मात्र सिद्ध किया है। और इसको तर्क की कसौटी पर कसा है। चारवाक कहता है कि देहादि से अतिरिक्त आत्मा नहीं है। अपितु देहादि ही हैं। क्यों कि प्राण नेत्रादि के भिन्न भिन्न विषय हैं, वे ही यथा समय अपने आप पदार्थों का ग्रहण करेंगे। अतः अतिरिक्त आत्मा मानने की आवश्यकता नहीं है परन्तु उसका खण्डन करते हैं कि इन्द्रियाँ जड़ हैं बिना चेतन के वे अपना काम नहीं कर सकती अतः चेतन आत्मा इनसे अतिरिक्त है। तथाच "शरीरदाहे पातकाभावात्"

जब मनुष्य मर जाता है तो उसका शरीर जलाने में पाप नहीं लगता। यदि देहादि ही आत्मा हो तो उसको जलाने में पाप लगता है। परन्तु मरने के पश्चात् आत्मा शरीर से निकल जाता है तब पाप नहीं होता। तथा च इन्द्रियान्तर विकारात् जैसे किसी को खट्टा फल खाते देख कर अन्य मनुष्य के मुँह में खटास का अनुभव होने लगता है यदि देहादि ही आत्मा हो तो ऐसी अनुभूति नहीं हो सकती। अतः देहादि से अतिरिक्त आत्मा है तत्पश्चात् इसकी नित्यता पर विचार करते हैं। क्षणिकवादि बौद्ध नित्यआत्मा नहीं मानता अतः गौतमाचार्य कहते हैं कि आत्मा नित्य है। क्यों? पूर्वाभ्यस्त स्मृत्यनुबन्धनात् जातस्य हर्ष भयशोक संप्रतिपत्तेः पूर्व संस्कारानुसार नव प्रसूत बच्चा हर्षादिकों का अनुभव करता है। संस्कार का स्थान आत्मा है, और बच्चा भूख लगने पर स्वयं ही स्मृति वश माँ के स्तनों से दूध पीने लगता है। यह सब स्मृति के बिना हो सकता यदि आत्मा अनित्य होता पूर्व जन्म के आत्मा का जन्म में नाश हो होता और उसके अभाव से पूर्वजन्म संस्कार और स्मृति का भी अभाव रहता। परन्तु बच्चा पैदा होते ही दूध की इच्छा करता है और संस्कार वश कभी रोता है कभी हंसता है। अतः सिद्ध है कि आत्मा नित्य है। अब उसके एकता अनेकत्व पर विचार करते हैं। गौतमाचार्य ने आत्मा को प्रति शरीर भिन्न माना है। अन्यथा एक आत्मा हो तो यदि एक मनुष्य मर जावे तो सभी मर जावें यदि एक अन्धा हो तो सभी अन्धे हो जावें यदि एक मनुष्य कर्म में प्रवृत्त होगा तो सभी प्रवृत्त हो जावें। परन्तु ऐसा कहीं भी नहीं देखता। अतः आत्मा अनेक है और प्रति शरीर भिन्न हैं। इस प्रकार इस दर्शन शास्त्र में उसका लक्षण यद्यपि ठीक नहीं किया तथापि स्वरूप सुष्ठुतया बताया है। और अन्त में सिद्धान्त सूत्र से आत्मा की नित्यता और आंतरिकता की पुष्टि की है। अतः इस शास्त्र में उसका स्वरूप अच्छी तरह बताया है।

भारत किधर

(पिछले पृष्ठ का शेष)

गरीबी का प्रदर्शन करने में शरम नहीं तो विदेशियों की दृष्टि में सम्मान समाप्त करने के मद्दे। हमें और हमारे बहुतेरे मित्रों को तो ऐसा लगता है कि गोरे साहबों के बदले में काले साहब आ गये हैं और यह अधिक स्वतन्त्र भारतीयों पर ज्यादतियां करते हैं, इनका वैसा बरताव करने मे, क्योंकि यह उनके भाई हैं, उन्होंने पहिले बड़े बड़े त्याग किये हैं।

हाल ही में हमे कुछ दिन दिल्ली रहने का अवसर मिला। वहाँ यह सब रंग ढंग देखकर हमारी आँखें खुल गईं जब लौटकर अपने गाँव की भयंकर गरीबी देखी, एक वक्त खाना खाने वाले देखे, कपड़े के अभाव में लंगोटी लगाने वाले देखे, पौष्टिक भोजन के अभाव में बूढ़े जवानों को देखा, पैसे के अभाव मे दवादारू का प्रबन्ध न करने के कारण भी बच्चे व जवानों को मरते देखा तो हम हतबुद्धि रह गये। दोनों में जमीन आसमान का अन्तर है और यह अन्तर बढ़ रहा है और देश की ८५ प्रतिशत जनता गावों में ही रहती है। देश की यह परिस्थितियाँ और नेताओं की यह मनोवृत्ति और रंगढंग हमें स्पष्ट बताते हैं कि देश किधर जा रहा है और इसका भविष्य क्या है?

फुलझड़ियां

—संकलनकर्ता—

स्वामी पारसनाथ सरस्वती

लड़का—क्यों पोस्टमास्टर साहब! यह लिफाफा भारी तो नहीं हो गया है?

पोस्टमास्टर—भारी है। एक टिकट और लगाओ।

लड़का—टिकट लगाने से तो और भी भारी हो जाएगा। कहिए तो एक टिकट छुटा लूँ।

पिता—तुमने ये अवगुण कहांसे सीखे? मुझसे तो सीखे नहीं।

पुत्र—आपसे सीखता तो आपके कम न हो जावे!

+ + +

एक वकील ने एक नया देहाती लड़का नौकर रखा। शाम को वकील के चन्द मित्र आये और कमरे के बाहर चबूतरे पर बैठकर बातचीत करने लगे। वकील ने कहा—

"रमचवा, जरा पीकदान देना!"

"यहाँ पीकदान नहीं है!"

लड़का नहीं जानता था कि पीकदान किसे कहते हैं।

वकील—अबे, वहीं मेज के नीचे रखा है।

क्या वेदों में इतिहास है?

श्री पं० जयदेव शर्मा 'विद्यालंकार चतुर्वेद भाष्यकार'

वैदिक धर्म मासिक पत्र के सम्पादक वयोवृद्ध वेदानुशीलक श्री पं० सातवलेकर जी वेदों के विद्वान् रूप से भारत भर में प्रसिद्ध हैं। आपने अथर्ववेद का सुबोध भाष्य बनाया। वेदों के १८, १९ ऋषि दर्शन हिन्दी अनुवाद सहित निकाले। चारों वेद मूल प्रकाशित किए, देवता संहिताएं प्रकाशित कीं और 'वैदिक धर्म' के समान गुजराती में 'वेद संदेश' और मराठी में 'पुरुषार्थ' मासिक निकालते हैं। अब आयु में आप ८५ वर्ष से अधिक हैं ऐसे विद्या वयोवृद्ध को जब हम अब अवसरवादी वेद व्यवसायी (रश्मि-वणिक्) के रूप में वेदों पर अपना संहारास्त्र चलाते देखते हैं तो चित्त में खेद होता है।

श्री प्र० दीवान रामनाथ कश्यप जी ने, एक पुस्तक मेरा लिखा 'क्या वेदों में इतिहास है?' आपके पास भेज दिया। आपने उसे देख कर उसकी तीव्र आलोचना ४, ५ पृष्ठों में की और वह सुन कर मुझे दुख भारी भी लिखा। पर मेरे पास तो वृद्ध विद्या वयोवृद्ध के लिए कहने को कोई कुछ शब्द नहीं, पर हां, वेद व्यवसायी या (वेद-वणिक्) अवश्य हैं। उनका अपना कोई सिद्धान्त नहीं है। 'गङ्गा गये गङ्गादास, जमुना गये जमनादास।' क्यों?

श्री पं० सातवलेकर जी ने अपने पत्र 'वैदिक धर्म' में प० जगदीश जिज्ञासु के वेदार्थ की आलोचना करते लिखा—दयालु परमात्मा ने ऋषियों के अन्तःकरण में प्रेरणा करके उनकी भाषा में वेद प्रकाशित किए।'

कैसा सीधा सा वैदिक सिद्धान्त श्री पं० जी ने लोगों के सामने रख दिया। इसे पढ़ कर सभी मुग्ध हो सकते हैं। परन्तु अपने 'वैदिक धर्म' में जो गत १०-२० वर्षों से १८-१९ ऋषियों के दर्शन निकाले हैं जिसमें हजारों मन्त्रों की सरल हिन्दी भाषा और आलोचना की है, स्थान स्थान पर आये शब्दों को ऐतिहासिक व्यक्ति नाम मान लिया है। और उन स्थलों पर अनेक प्रकार के राजाओं और ऋषियों का इतिहास मानलिया है।

जब वेदों को ईश्वर प्रेरित ज्ञान माना है तब उसी में लौकिक इतिहास मान लेना एक विडम्बना नहीं तो क्या है?

श्री पं० सातवलेकर जी ने १९५७ में (वैदिक धर्म) में 'वसिष्ठ दर्शन' प्रकाशित करते हुए ऋग्वेद के ७ वें मण्डल के ३३ सूक्त में देववान् के पुत्र सुदास और उसके दिये दान में होनेवाले रथ और चार घोड़ों की दान की कथा का इतिहास निकाल कर लिख दिया, जिसे देखकर वेद प्रेमी आर्य पुरुषों को वेद की स्थिति पर यह एक ज्वलन्त आक्षेप श्री प० सातवलेकर जी द्वारा पड़ता दिखा दिया।

मैंने 'क्या वेद में इतिहास है?' इस नाम की पुस्तक में ऋग्वेद के ७ वें मण्डल में आये समस्त ऐतिहासिक तथा कथित उन आक्षेपों का विवेचन किया जिनको श्री प० सातवलेकर जी ने ऐतिहासिक रूप से बतलाया था।

यह पुस्तक अब प्रकाशित होकर अनेक आर्य विद्वानों के हाथ में पहुंच चुकी है। उनसे उनके अभिप्राय भी कालान्तर में प्राप्त होने की आशा है, और भी जो महानुभाव चाहते हों वे

अवश्य प्राप्त कर सकते हैं। हमें केवल इस बात की उत्सुकता है, कि आर्य विद्वान् इस दिशा में गम्भीर विचार करें कि वेदों में जो श्री प० सातवलेकर जी ने पचासों स्थलोंपर इतिहास मान लिए हैं वे कहाँ तक युक्ति संगत हैं? और उन स्थलों की क्या उचित व्याख्या है जिससे उनका अनित्य ऐतिहासिक पक्ष लुप्त हो सकता है।

श्री० पं० सातवलेकर जी ने वैदिक धर्म अप्रैल मास के अंक में सातवलेकर जी ने वैदिक धर्म के अप्रैल मास के अङ्क में ४-५ पृष्ठों में जो आलोचना लिखी है उसमें सातवलेकर जी ने अपनी एक और स्थापना प्रकट की है जो उन्होंने अपने ऋषि दर्शनों में किसी स्थान पर प्रकट नहीं की थी। वह स्थापना यह है कि 'वेदों में ऐतिहासिक कथा के समान ही अधिक वर्णन हैं। किसी देवता के मन्त्र देखिये कथा कहने के समान ही सर्वत्र वर्णन है, शब्दों के अर्थ अनेक होने पर भी विषय प्रतिपादन कथा के समान ही रहेगा।'

(वैदिक धर्म पृ० १११ स्तम्भ २)

यदि यह स्थापना पं० जी अपने ऋषि दर्शनों को प्रकट करने के पहले प्रकट करते तो उसका कुछ महत्व होता परन्तु अब जब पं० जी के मन्तव्यों की आलोचना की गई तो प० जी ने पैंतरा बदला है। सीधे शब्दों में तो प० जी ने यह नहीं लिखा कि वेदों में इतिहास नहीं है। परन्तु द्रविड़ प्राणायाम से अवश्य मानलिया कि ऐतिहासिक कथा के समान ही अधिक वर्णन है। अर्थात् ऐतिहासिक कथा के समान है, ऐतिहासिक कथा नहीं है।

ऐसा लिखना भी श्री प० सातवलेकर जी के केवल अवसरवादिता का सूचक है। उधर उनको इतिहास के मैक्डिकों को अपने साथ रखना है। इसके लिए उनका वा बचा रखते हैं, इधर आर्य जगत् के वेद प्रेमियों को भी छोड़ना नहीं चाहते, इसलिए इनको सुहाने वाले वाक्यों की भी रचना प्रकट करते हैं।

इन दो प्रकार के रंगों में रंगे वाक्य पढ़कर पाठक अवश्य भ्रम में पड़ेंगे। आप लिखते हैं कि:—

'केवल दुराग्रही लोग ही कहते हैं कि ऐतिहासिकों का निरुक्त कार खण्डन करते हैं। वेद के वचन ही ऐसी व्यवस्था से रचे गये हैं कि जो अनेक अर्थों को धारण कर सकें। यदि कोई कहेगा कि केवल इतिहास ही वेद में है सो यह असत्य है। जैसा ही केवल अध्यात्मज्ञान ही है ऐसा कहे तो भी यह पूर्ण सत्य नहीं। एक एक मन्त्र अनेक बात बतलाता है। उनको देखना चाहिए और वेद मन्त्रों के अर्थों की गम्भीरता अनुभव में आनी चाहिए। जो यह विद्वान् यह कर सकेंगे उनके लिए इतिहास सदृश रचना दुःख नहीं देगी।' (पृ० ११४ स्तम्भ १ वैदिक धर्म मास अप्रैल १९५५)

इस वाक्य में प० जी ने प्रथम तो आंशिक इतिहास माना, और उपसंहार में वेद में 'इतिहास सदृश रचना' मानली। और निरुक्तकार को ऐतिहासिकों का पक्षपाती मानलिया।

जो निरुक्तकार यास्क को ऐतिहासिक पक्ष का नहीं मानते उन ऋषि दयानन्द तथा उनके अनुयायी विद्वानों को श्री प० जी ने अपने श्री मुख से 'दुराग्रही' कह दिया है और वह व्याकरणकार पाणिनि और भाष्यकार पतञ्जलि, काशिकाकार जयादित्य और कौमुदीकार भट्टोजी जिन्होंने वेद में एक भी प्रयोग लिड्, लुङ, लिट् लकारों का भूतकालिक नहीं माना और वे भाष्यकार जिन्होंने इन लकारों के अर्थ भी ऐतिहासिक भूतकालिक के समान नहीं किए वे सब 'दुराग्रही' कोटि में आगये हैं।

अब वे आर्य विद्वान् जो वेद में इतिहास सर्वथा नहीं मानते 'न वेद' में ऐतिहासिक कथा ही मानते हैं वे श्री प० जी के कथनानुसार अपने दुराग्रह कृपया सदाग्रह का स्वरूप अवश्य प्रकट करेंगे और श्री प० जी ने जो १८-१९ ऋषिदर्शनों में ऐतिहासिक पक्ष का बड़ा आग्रह किया है उसका समाधान भी करेंगे। ऐतिहासिक कथा के समान वर्णन करने की जो नयी स्थापना प० जी ने की है, इस मत परिवर्तन का स्पष्टीकरण भी जनता के सामने आना चाहिए।

केवल लोगों को बहुरूप वादिता से भ्रम में डाले रखना विद्वानों का सत्कार्य नहीं है। 'समालोचना' की अन्य भी विचार योग्य बातों को आर्य जनता के सामने रखेंगे।

लखनऊ में—

पतिपूजन महायज्ञ रूपी महा पाखण्ड

(लेखक—श्री गंगाप्रसाद जी रिटायर्ड चीफ जज)

११-५-५५ के Times of India दैनिक पत्र में श्री K. G. Khanna के. जी. खन्ना के नाम से एक नोट प्रकाशित हुआ है, जिस का आशय इस प्रकार है कि ता० ६ से सुलतानपुर निवासी एक शेष जी नामक व्यक्ति ने बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर व दो अन्य अध्यापकों की सहायता से लखनऊ में गोमती के किनारे "पति पूजन महायज्ञ" के नाम से एक महा पाखण्ड की रचना की है। इस में लगभग ५ मन वनस्पति घी, गुड़, चन्दन आदि की ५ अग्नि कुण्डों में ५५ होताओं के द्वारा आहुति डाली जाती है। सैकड़ों सनातनी स्त्रियाँ आकर अपने पति देव के चरणों पर फूल डालती हैं, और उन को दण्डवत करती हैं। नोट के लेखक ने लिखा है कि एक स्थानिक कन्या पाठशाला की प्रिंसिपल ने बड़े जोश के साथ उनसे इस कार्य की निन्दा की और युक्त प्रान्त की महिला मण्डल की ओर से इसके विरोध में कार्य किये जाने का विचार है। नोट में लिखा है कि पूर्वोक्त शेष जी महा यज्ञ केवल भागवत के आधार पर करते हैं कि श्री कृष्ण जी ने द्वारका में इसका उपदेश दिया था। एक साधु का यह भी कहना है कि इस यज्ञ के प्रभाव से स्त्रियों में तलाक का भाव नष्ट हो जायगा।

(२) यदि श्री कृष्णजी का ऐसा उपदेश होता तो वह गीता में मिलता जो निर्विवाद रूप से कृष्णजी की कही हुई है। यदि पुराण में किसी ने कृष्णजी के नाम से ऐसा लिख दिया तो वह प्रामाणिक नहीं, पुराणों ने तो श्री कृष्णजी के ही चरित्र को झूठी बातों से कलंकित कर रक्खा है। वास्तव में बात यह है कि गत ५ मई १९५५ को पार्लियामेंट में हिन्दू विवाह विधान स्वीकृत हुआ जिसमें पति व पत्नी को तलाक की छूट दी गई है। सनातनी भाइयों ने इस का विरोध किया था, पर ५ ता० को जब वोट ली गई तो लगभग २५० या ३०० सदस्यों में केवल एक व्यक्ति (हिन्दू-महासभा के मन्त्री) ने विरोध में मत दिया। शेष सब ने हर्षपूर्वक विधान को स्वीकार किया। श्री करपात्री जी और उनको के शिरोमणि हैं, उनका भी छोटा सा दल पार्लियमेंट में है, पर मतदान के समय वे उपस्थित न हुए, विवाद में कुछ भाग लिया था ऐसे ही अनुदार विचार वाले कुछ लोगों को यह बात सूझी कि इस प्रकार का ढोंग कर के स्त्रियों को प्रभावित किया जाय। पर यह व्यर्थ है। हिन्दू विवाह विधान में पति व पत्नी दोनों को तलाक की केवल छूट ocction दी गई है कि यदि किसी की इच्छा हो तो उससे लाभ उठावें। तिलाक करने का किसी पर बन्धन नहीं है। परन्तु शेष जी जैसे लोगों को इस से क्या ?

(३) फरवरी १९५५ के "सार्वदेशिक" पत्र में मैंने एक लेख लिखा था जिस का शीर्षक था—'पुराणों में पतिव्रत धर्म की विडम्बना और नारी जाति का घोर तिरस्कार' उस लेख में मारकण्डेय पुराण की एक प्रसिद्ध कथा का वर्णन था, जो संक्षेप से इस प्रकार है—प्रतिष्ठान पुर में एक कोढ़ी व्यक्ति कौशिक नाम का रहता था जिसकी स्त्री बहुत पतिव्रता थी। कौशिक एक साधारण व्यक्ति था। उस के चरित्र का अन्दाज इसी बात से लग सकता है कि वह कोढ़ी था और चलन में असमर्थ था, उसने एक वेश्या देखी और उस पर इतना आसक्त हो गया कि अपनी पत्नी से कहा कि यदि मुझको जीवित रखना चाहती है तो उस वेश्या के पास चल। पत्नी ने कहा—स्त्री के लिए पति परमेश्वर है और उसकी इच्छा ही ईश्वर इच्छा है, जिस तरह हो सकेगा मैं आप को उस वेश्या के पास ले चलूंगी, पत्नी कौशिक को अपने कन्धे पर बिठाकर ले चली।' पूरी तरह कथा लिखने की यहाँ आवश्यकता नहीं। मार्ग में एक ब्राह्मण माण्डव्य शूली पर लटका हुआ था कौशिक का शरीर उससे छू गया जिससे उसको पीड़ा हुई। माण्डव्य ने शाप दिया स्त्री ने भी शाप दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि सूर्य का उदय न हुआ। देवता में भी हाहाकार मचा, विष्णु की शरण गये। विष्णु जी की सलाह से श्री अनुसूया जी के पातिव्रत धर्म के बल से दोनों शाप दूर हुए और सूर्योदय हुआ। इस कथा से दो "शिक्षा" दी गई हैं, एक यह कि ब्राह्मण का शाप व्यर्थ नहीं होता और दूसरी यह कि पातिव्रत धर्म में भी बड़ा ही बल है। पतिव्रत धर्म का यह झूठा महत्व इस लिये बनाया गया कि स्त्रियां (जिनको पढ़ने लिखने की भी आज्ञा नहीं दी गई) मनुष्यों की दासी बन कर रहें, इस अभिप्राय से ही यह "पति पूजन महायज्ञ" का ढोंग रचा गया है। मुझ को दृढ़ आशा है कि शिक्षित स्त्रियों की ओर से तथा विचार शील पुरुषों की ओर से भी (चाहे वे आर्य समाजी भी हों या न हों) इस बनावटी "महायज्ञ" का घोर विरोध होकर इसका शीघ्र अन्त कर दिया जायगा। यज्ञ का नाम पति पूजन रक्खा, पति-पूजन से तात्पर्य है "पत्नी तिरस्कार" या नारी पतन। हिन्दू विधान का एक मुख्य उद्देश्य स्त्रियों का उद्धार है। के लिये सारे देश का भारी बहुमत रहा तो भी कुछ विरोधी लोग उसके प्रभाव को नष्ट या कम करने के लिये ऐसे ढंग रचते हैं जैसा कि यह लखनऊ में रचा गया।

आर्यसमाज क्या चाहता है ?

(श्री मदनमोहन विद्यासागर, आचार्य दयानन्द उपदेशक विद्यालय गुरुकुल घटकेश्वर, हैदराबाद राज्य)

इसका स्पष्ट उत्तर यह है कि आर्य समाज विश्व में 'आर्यत्व' का विस्तार चाहता है; "आर्य समाजित्व" का नहीं।

'आर्यत्व' का अभिप्राय है; श्रेष्ठता, सज्जनता, साधुता और निर्दोष कर्त्तव्य अर्थात् सामाजिक रूप में मिलकर रहने की भावना। इसको वैदिक शब्दों में कहूं, तो

संवदध्वम्=मिलकर बोलो,

संगच्छध्वम्=मिलकर चलो,

सं वो मनांसि जानताम्=एक दिल बनो,

समानी प्रपा, सह वोऽन्न भागः=खान पान में समान अधिकार हों,

सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यत=पूजा का अवसर सब का समान हो,

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्, मा स्वसारमुत स्वसा=सब भाई बहिनों की तरह मिले रहें।

मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षामहे=प्राणीमात्र में स्नेह बुद्धि रक्खें।

ऐसा कह सकता हूं।

इस प्रकार की भावनाओं का विस्तार ही 'आर्यत्व' का विस्तार है। अर्थात् संसार में सब जन 'श्रेष्ठ, उत्तम चरित्रवान्, धार्मिक विद्वान्, और आस्तिक बुद्धि वाले बनें,' यही आर्य समाज चाहता है।

ऐसा होना मानव जन्म में ही सम्भव है। मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जो परमेश्वर द्वारा 'निर्माण' किया जाकर अपने स्वकर्तृत्व से स्वयं निर्मित भी होता है। परमेश्वर जीव को उसके कर्मों के अनुसार नाना योनियों में भेजता है; यहाँ तक जीव परतंत्र है। यही उसका पुरुष रूप (=शरीर में आगमन) में निर्माण होना है अर्थात् किसी न किसी रूप में प्राण धारण करके सृष्टि में आना है। मनुष्य जन्म को छोड़, अन्य जन्मों में आया जीव जैसा निर्माण किया गया है, वैसा ही रहता है। गौ घास ही खावेगी, उसकी सब्जी नहीं। गौ जैसे मूत्रपुरीषोत्सर्ग करती है, वैसे ही सदा करेगी, बाथरूम लैट्रिन नहीं बनावेगी। बन्दर तैरना सीखेगा नहीं, भूलेगा नहीं। परन्तु तरह तरह की कलाबाजियाँ और तैरियाँ पानी में नहीं करेगा। और मनुष्य तैरना सीखेगा, कलाबाजियां करेगा, तैरियों के तीखे प्रदर्शन करेगा।

चिड़िया घोंसला जैसा बनाती है, वैसा ही बनावेगी। चूहे और चींटियाँ बिल बनाते हैं, पर कभी सीमेण्ट का प्रयोग नहीं करेंगे। पशु पक्षी वृक्ष पत्तों का आश्रय वर्षा गर्मी से बचने के लिए करेंगे, परन्तु कभी भी छतरी का आविष्कार नहीं कर सकते।.....परन्तु मनुष्य देह में आया जीव अपनी बुद्धि के चमत्कार से अपने सुख सुविधा के लिए न जाने कैसे २ चमत्कार पूर्ण आविष्कार कर लेता है। यह उसका अपना निर्माण करना है अर्थात् अपने को बनाना है।

यह इससे भी एक कदम आगे बढ़ता है और कुछ अधिक निर्माण करता है। वह है, अपने गुण कर्म स्वभाव का निर्माण करना, विकास करना अर्थात् अपने को उन्नत करना, श्रेष्ठ बनाना, अपना अभ्युदय करके निःश्रेयस् प्राप्ति। सीधी सादी भाषा में इसको कहते हैं, 'अपना लोक और परलोक सुधारना।'

जन्मते समय बालक पिछले जन्म के कुछ गुण, कर्म, स्वभाव लेकर आता है। इस जीवन में उनका संस्करण करना होता है। अगर बुरे गुण, कर्म, स्वभाव लेकर पैदा होता है, तो उसे अच्छी परिस्थितियों में रख, अच्छी शिक्षा दिक्षा देकर उनका संस्करण संशोधन कर उसे अच्छा मनुष्य और उत्तम नागरिक बनाया जा सकता है। यदि वह उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव लेकर ही पैदा हुआ है, तो उसके लिये मोक्ष का मार्ग खुल जाता है। इस सारी प्रक्रिया का नाम 'आर्यत्व' का विकास करना है।

पंचमहायज्ञविधि, इस दिशा में दैनन्दिनी है; षोडशसंस्कार अभ्युदय की शतवार्षिक योजना है; वर्ण व्यवस्था सामुदायिक उन्नति का सैद्धान्तिक व्यवस्था है और आश्रम व्यवस्था उसे मनुष्य जन्म पाकर अपनी सर्वाङ्गीण उन्नति कर मोक्ष की मार्गदर्शिका है। इनका विशेष व्याख्यान फिर करेंगे।

इस प्रकार आर्यसमाज यही चाहता है कि 'जीव मुक्त का प्राप्त कर सके। ऐसे कर्म कर, ताकि मानव जन्म मिले। मानव देह में आ वह अपने को आर्य बनावे अर्थात् उत्तम चरित्रवान् धार्मिक विद्वान् बने और साथ ही परहित का ध्यान रख अपना हित साधने वाला बने, सबकी उन्नति में अपनी उन्नति चाहता हो और पाप छूटने का यत्न कर परमेश्वर के आनन्द ही में स्वतंत्रता पूर्वक विचरे।' इस उद्देश्य की साधनाकी जो योजना प्रस्तुत करनी है, उसका ऊपर संकेत कर दिया है। पाठको ने चाहा, तो पीछे विस्तार से लिखेंगे। × × ×

धर्मार्य सभा से

(पृष्ठ ५ का शेष)

पूर्ति का साधन मात्र है। मैं सम्पादक महोदय की यह राय भी अपने विचारानुकूल पाती हूं। इसमें कोई सन्देह नहीं विवाह की वर्त्तमान प्रणाली को बदला जाय। ऊँट और बैल के जोड़े का नाम विवाह नहीं है, विवाह समान गुणकर्म स्वभाव के अनुसार हो, कन्या और वर की सम्मति भी परस्पर में होनी आवश्यक है। स्वामी जी ने तो संस्कार विधि में यहाँ तक लिखा है मरणपर्यन्त पिता के घर में बिना विवाह के बैठी भी रहे परन्तु गुणहीन असदृश दुष्ट पुरुष के साथ कन्या का विवाह कभी न करे और वर कन्या भी अपने आप स्वसदृश के साथ ही विवाह करें"

हमारे सामने लेख का प्रश्न यही है। आज भी दहेज के लोभ मे अनमेल विवाह बड़ी संख्या में हो रहे है, भाग्य की आड़ में ऊँट बैल का जोड़ा मिलाया जाता है, विपरीत कार्य करते हुए भी भाग्य पर दोषारोपण किया जाता है। मुझे इस भाग्य पर खीज आती है, आखिर यह भाग्य है क्या ? कर्मों का फल मिलना ही तो भाग्य है जब हम कर्म विपरीत कर रहे हैं तो परिणाम कैसे शुभ हो सकता है ?

आर्य जगत के विद्वानों को कुछ प्रश्नों पर गम्भीरता तथा पूर्ण खोज के साथ विचार करना है। उचित तो यही है कि रोग पैदा ही न होने दिया जाय किन्तु जब राग फूट पड़ता है तो उसके शमन के लिये भी उपाय करना होता है। पिछले महिनो के आर्यमित्र में श्री गंगा प्रसाद जी उपाध्याय और श्री विश्वप्रवा जी के बीच इस विषय पर काफी चर्चायें हुईं किन्तु कोई नतीजा नहीं निकला कम से कम मुझे तो इससे सन्तोष नहीं हुआ। मैं अपने भाइयों तथा विशेष कर बहिनों की समस्या को देख कर सोचा करती हू आखिर ऐसी अवस्था में क्या किया जाना चाहिये।

अंत मे आर्य जगत् के विद्वानों से आशा करती हूं कि निम्न अवस्थाओं में वेद शास्त्रादि का क्या आदेश है, पूर्ण खोज के साथ प्रकाश डालेंगे—

१—पुरुष या स्त्री पागल हो, धोखे से सम्बन्ध कर दिया जाय।

२—पुरुष नपुंसक या स्त्री शीतला हो और धोखा देकर विवाह कर दिया जाय !

३—विवाह के पश्चात् पुरुष नपुंसक हो जाय ?

४—स्त्री वन्ध्या हो ?

५—धन सम्बन्धी कारण से स्त्री विशेष कर पुरुष लापता या साधु बन जाय ! इत्यादि संकट कालीन अवस्था में क्या किया जाय ?

पाठकगण मेरे प्रश्नो का मतलब तलाक बिल वर्तमान अवस्था में पास किये जाने के समर्थन से न लगावें। मेरे सामने इस प्रकार की घटनाएँ जिनमें आर्य परिवार भी है जिस पर करती हूं आखिर कुछ तो हल विद्वद्जन करें। हमारे पड़ोस की लड़की है जिसकी शादी के हुए दो वर्ष भी नहीं होने पाये थे कि लड़के ने दहेज के प्रश्न को लेकर दूसरी शादी करली, एक दूसरी लड़की भी जिसकी शादी को हुए एक वर्ष भी नही होने पाया था कि विनाशकारी दहेज के लालच में लड़के ने दूसरी शादी करली। ऐसी ही अन्य घटनाएँ हैं उन लड़कियों की जिनकी नपुंसक से जान पूछ कर शादी करदी गई, बताया नहीं गया, किन्हीं कन्याओ के पतिलापता साधु बन गये वह बेचारियाँ प्रतीक्षा करते करते ही मर गई और कुछ आज भी प्रतीक्षा कर रही हैं, कुछ बहने अपने भाग्य पर इसलिए आँसु बहा रही है जिसके पति वैश्याओं के चक्कर में हैं और दूसरी स्त्री के प्रेम पाश में विवाहिता पत्नी को घर से निकाल दिया गया।

यह सब पाठकगण असत्य बनावटी न समझें मे कम से कम २० २५ घटनाओं का विवरण एक एक करके सामने रख सकती हूं किन्तु इससे क्या लाभ। जब मैं इन बहनों के सम्पर्क में आती हूँ तो मूक पशु की भाँति सोचती रह जाती हूं वाहरे निर्दयी पुरुष का अत्याचार, तिस पर भी समाज का अन्याय। इस प्रकार की स्त्रियो के लिए कुछ विद्वानों की सम्मति है कि वह स्त्री अपने भाई बन्धुओं के बीच में जीविका उपार्जन करते हुए अपना जीवन बिताएँ। पुरुष महाशय कभी न कभी चूल्हा फूंकते फूंकते हैरान होकर अपने आप आ जायेंगे अन्यथा वह स्त्री अपने भाग्य पर रहे। पाठकगण जानते है आज के नीच पापी समाज के दूषित वातावरण में इस प्रकार की स्त्री का रहना कितना कठिन है। मुझे ऐसी दलीलों पर रोष आता है, क्यों नहीं विद्वन मडली सही मार्ग दर्शाती।

अन्त में मैं आर्य जगत के विद्वानों से प्रार्थना करती हूं कि वह पूर्ण खोज के साथ प्रमाणो द्वारा सर्व साधारण के लाभार्थ अपने विचार करें तथा सार्वदेशिक धर्मार्य सभा अपना ठोस निर्णय देकर पथ प्रदर्शक बनें। + + ×

वादा कीजिए

—कि आप दृढ़ बनेंगे और कैसी भी हालत में अपने मन की शान्ति नष्ट नहीं होने देंगे।

—कि आप अच्छी से अच्छी बात सोचेंगे, अच्छे से अच्छा काम करेंगे और अच्छी बातों की ही आशा करेंगे।

—कि आप अतीत जीवन की असफलताओं को भूल जायेंगे और भविष्य में महान कार्य करने की कोशिश करेंगे।

—कि आप अपना सुधार करने में इतना वक्त खर्च करेंगे कि दूसरे लोगों की आलोचना करने का मौका ही आपको न मिले।

—कि आप अपने स्वार्थ की बात कम से कम सोचेंगे, पर इस बात की घोषणा नहीं करेंगे। आप परोपकार के महान कार्य में ही यह बात प्रकट करेंगे।

—कि आप सदा प्रसन्न रहेंगे और सबसे मिलते जुलते वक्त, आपके चेहरे पर मुस्कराहट नाचती रहेगी।

—कि आप सदा यह विश्वास रखेंगे, कि जब तक आप अपने को धोखा नहीं देते, यह दुनियाँ हमेशा आपका साथ देगी,

यह आठ वादे कीजिए और इनको निभाइये—देखिये जीवन भर सफलता आपके चरण चूमेगी।

अफीमची की कहानी

यह एक दूसरे अफीमची की कहानी है। एक बार उसने अपने नौकर से दूध मंगाया। नौकर तो दूध लेने चला गया और अफीमची ने अपनी जेब से अफीम की डिबिया निकाली। थोड़ी सी अफीम खाकर वह अपनी आराम कुर्सी पर जाकर बैठ गया। थोड़ी देर बाद नौकर दूध लेकर आया और उसने आवाज लगाई—"बाबूजी, दूध ले आया हूं।"

अफीमची ने कोई जवाब नहीं दिया। नौकर को यह समझने में देर नहीं लगी कि उन्होंने अफीम चढ़ा ली है। नौकर ने दूध पीकर मलाई उसकी मूछों पर लगा दी।

जब कुछ देर बाद अफीमची होश में आया तो उसने नौकर को आवाज लगाई—"क्यों रे दूध लाया?"

नौकर बोला—"बाबूजी, दूध तो आपने पी लिया।"

अफीमची बोला—"ऐं! दूध मैंने नहीं पिया।"

नौकर अन्दर गया और शीशा लेकर सामने खड़ा हो गया और बोला—"देखिए बाबूजी! मलाई तो अभी तक आपकी मूछों में लगी है।"

अफीमची ने अपना मुंह शीशे में रखकर कहा—"तब ठीक है। मैं भूल गया था।"

हमें चाहिए!

[जगमोहन]

कटें देश के संकट जिससे;
हमें चाहिए अमर जवानी!
जिसके एक इशारे से ही
बैरी की छाती फट जाये;
और जुल्म की काली बदली
फूँक मारते ही हट जाये।
जिसके कदम कदम पर बनती, हो पावन बलिदान कहानी;
जो मरतों को जिला सके बस, हमें चाहिए अमर जवानी!
शृंखलाओं में जिसके उल्लास;
नित नूतन निर्माण भरे हों;
गति में जीवन परिवर्तन के,
अति भीषण तूफान भरे हों।
हँस हँस शीश कटाये देश; हो निर्भय जीवन का दानी;
जो दुखियों की आह बन सके, हमें चाहिए अमर जवानी!
उर में उमड़ी देश-भक्ति हो,
भुज-दण्डों में अजय शक्ति हो;
साथ संगठितपूर्ण शक्ति हो;
युग नायक प्रत्येक व्यक्ति हो।
देश धर्म की रक्षा में ही, रत हो जो सच्चे सेनानी;
ध्येय एक, जय या कुरबानी, हमें चाहिए अमर जवानी!

समय का मूल्य

बड़ी देर तक बेंजमिन फ्रैंकलिन की दूकान के सामने घूमने वाले एक आदमी ने अन्त में पूछा—

'इस किताब की क्या कीमत है?'

क्लर्क ने उत्तर दिया—"एक डालर।"

'एक डालर! इससे कम नहीं?'

'नहीं।'

खरीदने वाले ने थोड़ी देर इधर-उधर देखने के बाद उससे पूछा—'क्या मि० फ्रैंकलिन भीतर हैं।'

'हाँ, अभी काम में लगे हुए हैं।'

'मैं जरा उनसे मिलना चाहता हूं।'

मालिक बुलाये गये और खरीदार ने उनसे पूछा—'मि० फ्रैंकलिन, आप इस पुस्तक की कम से कम क्या कीमत लेंगे?'

'सवा डालर।' 'अभी तो आपका क्लर्क एक डालर कहता था?'

'ठीक है, पर अपना काम छोड़ कर आने में मेरा समय भी तो खर्च हुआ न?'

खरीदार आश्चर्य में पड़ गया और अपनी बातचीत को खत्म करने के विचार से उसने फिर पूछा—

'अच्छा, अब इसकी कम से कम कीमत बता दीजिए तो मैं ले लूं।'

'डेढ़ डालर!'

'डेढ़ डालर! वाह, अभी तो आप सवा डालर ही कह रहे थे?'

'हां, मैंने वह कीमत उस समय कही थी। पर अब तो डेढ़ डालर होगी, और ज्यों-ज्यों आप देर करते जायेंगे, किताब की कीमत बढ़ती जायगी।'

ग्राहक ने जेब से पैसे निकाल कर दे दिए और किताब लेकर घर का रास्ता लिया।

उसे आज समय को धन अथवा विद्या में परिवर्तित कर देनेवाले स्वामी से एक उत्तम शिक्षा मिल गई।

हंसिए नहीं

सेठ—देखो राम! होशियार नौकर का काम है कि मालिक एक काम बतलाए और वह दो काम कर लाए। मान लो कि मैंने कहा—'जूता लाओ,' तो तुमको मुनासिब है कि जूता लाओ और जूते का जोड़—मोजा—भी ले आओ। समझे?

नौकर—समझ गया। जोड़ की बात खुद सोच लिया करूंगा।

एक दिन सेठ जी बीमार पड़ गए। नौकर से बोला—'जाओ, डाक्टर को लिवा लाओ।'

* * *

नौकर गया और डाक्टर को लिवा लाया। साथ ही दूसरी दूकान से कफन भी लेता आया।

सेठ—यह क्या लाया है?

नौकर—कफन!

सेठ—क्यों?

नौकर—डाक्टर के जोड़ की चीज कफन ही होती है।

बालक की चतुरता

बहुत दिन हुए। एक गड़रिये का लड़का अपनी बुद्धिमानी के लिए प्रसिद्ध हो गया। वह किसी भी प्रश्न का इतनी बुद्धिमत्ता से उत्तर देता था, कि लोग उसकी भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे थे। राजा ने भी उस लड़के की तारीफ सुनी। पर उन्हें विश्वास नहीं हुआ, कि वह इतना चतुर है। उन्होंने उसे दरबार में बुला भेजा। उसके आने पर राजा ने उससे कहा—मैं तुमसे तीन प्रश्न पूछूँगा, यदि तुम्हारा उत्तर बुद्धिमत्तापूर्ण होगा, तो मैं तुम्हें अपने महल में अपने लड़के की भाँति रक्खूंगा।"

"आप पूछिये, मैं यथाशक्ति उत्तर दूँगा" लड़के ने कहा।

"समुद्र में पानी की कितनी बूँदें हैं?"—राजा ने पहला प्रश्न किया था।

"महाराज!"—छोटे गड़रिया ने कहा—"जब तक मैं समुद्र के जल की बूँदों की गणना करूँ, तब तक आप पृथ्वी की उन समस्त नदियों का बहाव रुकवा दें, जो समुद्र में गिरती हैं। तभी मैं आपको बूँदों की संख्या बतला सकूँगा।"

इस उत्तर को राजा ने बड़े ध्यान से सुना, और दूसरा सवाल पूछा—"आसमान में कितने सितारे हैं?"

"मुझे एक बड़ा कागज चाहिए," लड़का बोला। कागज उसे दिया गया। उसने कागज में सुई से छेद करना प्रारम्भ किया, समूचे कागज को छेदों से पूर्ण रूप से भर दिया। फिर राजा को वह कागज देते हुए बोला—आप इन छेदों को गिनवा लें। आसमान में उतने ही तारे हैं, जितने इस कागज में छिद्र हैं।"

परन्तु कागज के उन छेदों का गिनना सरल नहीं था, क्योंकि गिनने वालों की आँखें चौंधिया जाती थीं, और वह गिन नहीं पाते थे।

तब राजा ने तीसरा प्रश्न पूछा—"अनंतकाल में कितने सेकेंड हैं?"

लड़का बोला—"पाताल-लोक में एक संगमरमर का पहाड़ है, जो एक मील लम्बा एक मील चौड़ा, और एक मील ऊँचा है। प्रत्येक वर्ष एक चिड़िया उस पहाड़ पर आती है, और अपनी चोंच से उस पहाड़ को रगड़ना शुरू करती है, और समूचे पहाड़ को रगड़ देती है, तब अनन्त काल का एक सेकेंड बीतता है।"

राजा ने कहा—"जिस ढंग से तुमने मेरे तीन प्रश्नों के उत्तर दिये हैं, उससे मैं बहुत प्रसन्न हूं। तुमने अपनी चतुराई का अच्छा प्रदर्शन किया है, और आज से तुम मेरे महल में मेरे लड़के की भाँति रहोगे।" + +

श्री स्वामी विश्वेरानन्द जी महाराज

(लेखक—कविरत्न श्री प० हरिशङ्कर जी शर्मा)

श्री प० गंगादत्त शर्मा आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान् व्याख्याता और प्रचारक हैं। आपका सारा जीवन वैदिक धर्म और आर्य समाज की सेवा से ओत प्रोत है। छात्रावस्था से ही आप जन सेवा और लोकहित सम्बन्धी कार्यों में संलग्न रहे हैं, जिस दिशा और जिस क्षेत्र में आपने कार्य किया, उसी में सफलता प्राप्त की। जहाँ रहे, वहाँ के लोगों पर पण्डितजी के सदाचार सम्पन्न और कर्मकाण्ड पूर्ण जीवन का प्रभाव पड़ा। इस समय पण्डित जी की आयु सत्तर वर्ष की है। आप वानप्रस्थाश्रम में तो पहले ही प्रवेश कर चुके थे, अब आपने १३ अप्रैल को वैदिक साधना आश्रम, यमुना नगर (अम्बाला) में श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज से विधिवत् सन्यास ग्रहण कर लिया। स यास आश्रम का आपका नाम है श्री स्वा० विश्वेरानन्द जी महाराज, सन्यासी होकर तो पण्डित गंगादत्त शर्मा जी का कार्य क्षेत्र और अधिक विस्तृत तथा व्यापक हो गया है। अब तो आप प्रचार कार्य और भी अधिक तन्मयता, संलग्नता और दृढ़ता से कर सकेंगे और इस प्रकार आर्यसमाजों और आर्य जनता का आपके द्वारा बड़ा हित साधन होगा। यहाँ हम श्री स्वा० विश्वेरानन्द जी के जीवन परिचय से सम्बन्ध रखने वाली कुछ पंक्तियाँ लिखना आवश्यक समझते हैं। आशा है, पाठकों के लिये एक विद्वान की संक्षिप्त चरित्र चर्चा पथ प्रदर्शन का काम देकर उन्हें कर्त्तव्य की ओर अग्रसर करेगी।

श्री प० गंगादत्त जी का जन्म अबसे ७७ वर्ष पूर्व बिजनौर जिले के एक नगर में हुआ था। प्राथमिक शिक्षा घर पर ही हुई। १८९६ ई० में आप कानपुर की एक वैदिक पाठशाला में प्रविष्ट हुए और वहाँ अध्ययन करते हुए, आर्य समाज ठठेरकुल कानपुर के सदस्य भी बने। आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशनों में ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका की कथा आप बड़ी सुन्दरता और सरलता से करते थे, सुनने वालों पर अच्छा प्रभाव पड़ता था। इन्हीं दिनों से पण्डित जी का अध्ययन अध्यापन और प्रचार-क्रम निरन्तर चलता रहा। कानपुर से आप सिकन्दराबाद (बुलन्दशहर) गुरुकुल आये और वहाँ से वीतराग श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज के आदेशानुसार कोटा (राजपूताना) चले गये। वहाँ एक वर्ष कार्य करते रहने के पश्चात् स्वामी जी ने आपको बदायूँ गुरुकुल बुला लिया, और वहाँ लगातार तीन वर्ष तक पठन पाठन और गुरुकुल का प्रबन्ध किया। उन्हीं दिनों उक्त गुरुकुल में डाक्टर श्री पू० मंगल देव शास्त्री और स्व० श्री प० शङ्कर देव पाठक शिक्षा प्राप्त करते थे। इसके अनन्तर पण्डित जी ने राजस्थान आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से राजस्थान तथा मालवा के मुख्य मुख्य नगरों और राज्यों में प्रचार कार्य किया। इससे इस प्रदेश में अच्छी जागृति हुई और आर्य समाज के सन्देश का विस्तार हुआ।

राजस्थान से पण्डितजी अबोहर (जिला फीरोजपुर) चले आए और वहाँ से निरन्तर तेरह वर्ष तक पंजाब के नगरों तथा ग्रामों में प्रचार कार्य करते रहे। आर्य जनोपयोगी अनेक आर्य संस्थाओं की स्थापना की। आर्य कुमारों और आर्य महिलाओं के लिये भी सभा तथा समाजों की व्यवस्था की वाचनालय और पुस्तकालय भी खोले साथ ही शुद्धि आन्दोलन को प्रगतिशील बनाया। पण्डित जी की धर्मशीला पत्नी श्रीयुत सुन्दरी देवी जी भी सुशिक्षित थीं। आपने आर्य कन्या पाठशाला की मुख्याध्यापिका का कार्य बड़ी योग्यता से सम्पन्न किया और स्त्रियों में आर्य समाज का प्रचार करने में भी अच्छी सफलता प्राप्त की।

अबोहर छोड़कर पण्डितजी अजमेर पधारे और यहां श्री दयानन्द अनाथालय की प्रबन्ध व्यवस्था बड़ी सुन्दर रीति से की। वहाँ से आप कर्मवीर प० जियालाल जी के साथ अनाथालय के लिये धन संग्रहार्थ कलकत्ता गये। और वह लगभग ढाई मास रहकर चौदह सहस्र रुपया एकत्र किया। इन दिनों पण्डितजी का आर्य समाज कलकत्ता (कार्नवालिस स्ट्रीट) के साप्ताहिक अधिवेशनों में प्रवचन करने और कथा कहने का अवसर मिला। इन प्रवचनों का कलकत्ता के आर्य भाइयों पर ऐसा प्रशंसनीय प्रभाव पड़ा कि उनकी इच्छा पण्डित जी को वहीं रखने की हुई। उस समय तो पण्डित जी वहाँ नहीं रहे, परन्तु पीछे आर्य भाईयों के अधिक आग्रह से आप कलकत्ता चले गये और बराबर पाँच वर्ष तक बड़ी सुयोग्यता के साथ सफलता पूर्वक काम करते रहे। वहाँ आप आर्यकन्या विद्यालय के आचार्य आर्य समाज के उपप्रधान बंगाल आर्य प्रतिनिधि सभा के अन्तरंग सदस्य आदि पदों पर प्रतिष्ठित रहे। गोहाटी में हुए कॉग्रेस महाधिवेशन के अवसर पर पण्डित जी की अध्यक्षता में आर्य प्रचारकों के एक समुदाय ने बड़ी सफलता से काम किया। आसाम की जनता पर इस प्रचार का अच्छा प्रभाव पड़ा। आर्य समाज की गम्भीर गर्जना उधर भी गूंजने लगी।

१९२७-२८ में आप वृन्दावन गुरुकुल में राजा साहब आवागढ़ द्वारा संचालित आर्य उपदेशक विद्यालय के मुख्याध्यापक रहे और आजकल पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा संचालित दयानन्द उपदेशक विद्यालय के अध्यक्ष हैं। इस संस्था के आचार्य पूज्य श्री स्वा० आत्मानन्द जी महाराज हैं।

हैदराबाद सत्याग्रह में एक सत्याग्रही की भांति पण्डित जी स्व० श्री प० देवेन्द्रनाथ शास्त्री की अध्यक्षता में हैदराबाद जा रहे थे कि इतने में सन्धि हो गयी और 'देवेन्द्रनाथ स्पेशल ट्रेन' बीच में ही रोक दी गयी। फिर आग्रह की आवश्यकता ही न हुई, पण्डित जी वापस आगए।

पण्डित जी अकेले ही आर्य समाज के प्रचारक और सेवक बने रहे, आपकी विदुषी पत्नी जी भी सदैव प्रचार कार्य में संलग्न रहीं। आपके ज्येष्ठ भ्राता श्री प० जयदत्त शर्मा तथा अनुज श्री प० हरदेव शास्त्री काव्यतीर्थ ने भी वैदिक धर्म और आर्य समाज की प्रशंसनीय सेवाएँ कीं। शास्त्री जी तो आजन्म वृन्दावन गुरुकुल के सहायक मुख्याध्यापक रहे जयदत्त शर्मा जी ने अजमेर के दयानन्द अनाथालय की व्यवस्था का कार्य भार बड़ी उत्तमता से सम्भाला इन्हीं की प्रेरणा और प्रयत्न से प० गंगादत्त जी शर्मा आर्य समाज के सदस्य बने और पढ़े लिखे।

पण्डित गंगादत्त जी के एक मात्र पुत्र श्री प० ब्रह्मदत्त शर्मा वृन्दावन गुरुकुल के स्नातक हैं। आप संस्कृत तथा हिन्दी के विद्वान और सुलेखक हैं। आजकल भारत सरकार के सूचना विभाग में एक अधिकारी हैं। श्री ब्रह्मदत्त जी शर्मा ने भी आर्य समाज के लिये बड़ी लगन है ? आपने स्नातक होते ही हैदराबाद सत्याग्रह में भाग लिया और ६ महीने का कठिन कारागार भोगा। आपके जीवन में आर्य समाज की शिक्षाएं लिये हुए हैं।

उपर्युक्त परिचायक पंक्तियों से पाठकगण भली प्रकार जान सकते हैं कि पण्डित गंगादत्त जी शर्मा और उनके परिवार का आर्य समाज की गतिविधियों और प्रचार परम्परा से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। उन्होंने वैदिक धर्म की किस प्रकार ठोस सेवा की है, और वे कैसी विशुद्ध भावना के कार्यकर्त्ता हैं। सचमुच ऐसे ही धार्मिक प्रचारकों और विद्वानों के प्रचार पुरुषार्थ पर आर्य समाज का विशाल भवन खड़ा हुआ है। अब पण्डित जी के सन्यासी होने पर हम आर्य समाज संसार की ओर से आपका स्वागत करते हैं। परमात्मा की कृपा से आप इस सन्यासाश्रम में तो और अधिक प्रचार करने में समर्थ होंगे।

आर्य शिक्षण संस्थायें ध्यान दें !

(पृष्ठ २ का शेष)

६ अन्तरंग सभा दिनांक ६-११-५४ के निश्चयानुसार प्रान्त की समस्त आर्य शिक्षा संस्थाओं को आदेश है कि यदि उनके यहाँ छात्र—छात्राओं की सहशिक्षा (Co-education) होती हो तो उसे अगले १७ जुलाई से बन्द कर दें।

७ अन्तरंग सभा दिनांक ६-११-५४ के निश्चयानुसार समस्त आर्य शिक्षा संस्थाओं में तीन चौथाई सदस्य स्थानीय आर्य समाजों द्वारा स्वीकृत आर्यसदस्य हों और आर्यसमाज का प्रधान ही प्रबन्धक समिति का प्रधान हो। शिक्षा संस्थाओं के संचालक आर्यसमाज और प्रबन्धक सभा अपने वार्षिक चुनाव के समय इस नियम के पालन पर पूरा ध्यान दें।

८ दिनांक ६-११-५४ की अन्तरंग के निश्चयानुसार प्रत्येक आर्य शिक्षण संस्था को धार्मिक शिक्षा का समुचित प्रबन्ध तथा प्रचार करना अनिवार्य होगा। सभा द्वारा स्वीकृत धार्मिक शिक्षा का पाठ्यक्रम जुलाई मास तक सूचित किया जावेगा। धार्मिक शिक्षा में यह भी आवश्यक है कि प्रतिदिन सन्ध्या-हवन में संस्था के विद्यार्थिगण सम्मिलित हों, धार्मिक शिक्षा का निरीक्षण कराने के लिये भी सभी [illegible]

ऋषि के ग्रन्थों के संरक्षण का प्रश्न

लेखक—श्री प० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०

आर्य समाज में विरला ही कोई ऐसा होगा जो ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों को सुरक्षित रखना आवश्यक न समझता हो। परन्तु संरक्षण के अर्थों और साधनों में मतभेद हो सकता है। कुछ ऐसे भी सज्जन हैं जो अपने ग्रन्थों की पोथियों को इतनी सावधानी से प्रयुक्त करते हैं कि वर्षियों साल बाद वह ऐसी लगती हैं मानों कल बनकर आई हैं। वह पढ़ते भी बहुत कम हैं। और जब पढ़ते हैं तो पत्रों की रक्षा का अर्थ विचार की अपेक्षा अधिक ध्यान रखते हैं, कुछ इतना पढ़ते हैं कि पढ़ते पढ़ते चाट जाते हैं इन में से कौन ग्रन्थों का अधिक रक्षक है इसके उत्तर भिन्न भिन्न मिलेंगे। इसी प्रकार सनातनियों ने वेद की ऐसी रक्षा की कि किसी को हवा न लगने दी। सिक्ख ग्रन्थ साहेब की पूजा करते हैं। यह सब मूल में संरक्षण के ही भाव रहे होंगे।

ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का क्या अर्थ है और उनके संरक्षण का क्या। यह बात निर्विवाद है कि ऋषि ग्रन्थ लिखते न थे लिखवाते थे उनके लेखक भी अत्यन्त साधारण योग्यता के थे। उस समय परिस्थिति ही ऐसी थी कि इससे अधिक कुछ हो ही नहीं सकता था। उनके वेतन जैसे थे उसी के हिसाब से उनकी योग्यता का अनुमान लगाया जा सकता है। ऋषि के पास कोई ऐसा जादू भी न था कि लेखक कोई अशुद्धि न कर सके। ऋषिवर को स्वयं बार बार अशुद्धियां ठीक करनी पड़ती थीं। और छपने के पश्चात् भी जो अशुद्धियां फिर दृष्टि में आती थीं उन को वह विज्ञापन द्वारा स्पष्ट कर देते थे। इससे यह भी अनुमान होता है कि अशुद्धियां छूट जाने की भी संभावना है। ऐसा भी अधिकतर संभव है कि यदि एक स्थान पर अशुद्धि शुद्ध कर दी जाय और तदनुसार कई अन्य स्थानों पर वैसा ही न किया जाय तो अन्य स्थानों पर अशुद्धि रह सकती है।

इतनी बातें निर्विवाद स्पष्ट हो जाने के पश्चात् अब प्रश्न यह उठता है कि यदि ऋषि के ग्रन्थों में कोई अशुद्धि पाई जाय तो उसे शोधा जाय या नहीं।

एक पक्ष का कहना है कि महर्षि दयानन्द ऋषि थे। उनके ग्रन्थों में हाथ लगाना अनधिकार चेष्टा है। ऋषि दयानन्द की अशुद्धि को वही शुद्ध कर सकते थे। यह भावना बड़ी उत्तम है। परन्तु है केवल भावुकता। ऋषि तो अब आने के नहीं। और यदि कल व आकर सामने खड़े हो जायं, और कहें कि मैं ही पहले 'दयानन्द' था तो भी हम उनको स्वीकार नहीं करेंगे। परोक्ष की बात है प्रत्यक्ष की नहीं। तो क्या उस अशुद्धि को तद्वत् चलते रहना चाहिये। क्या इससे ऋषि के सिद्धान्तों को क्षति नहीं पहुँचती और क्या इससे ऋषि के काम को अपयश नहीं होता? क्या उन भूलों के कारण भविष्य में भ्रम जाल फैलाने की संभावना नहीं है? उनके शिष्य गुरु-भक्ति के कारण उस को हाथ नहीं लगा सकते। उनके शत्रु द्वेषवश उन भूलों को उनके सिर मढ़ने के लिये उद्यत हैं। क्या आप ऋषि के सिद्धान्तों की परवाह न करके उनके कागज के पत्रों को सुरक्षित रखना चाहते हैं? पत्रों को तो आप कभी सुरक्षित रख न सकेंगे। कीड़ों पर किसका आधिपत्य है। आप कहते हैं कि ऋषि के ग्रन्थों को सुधारने का किसी को अधिकार नहीं। मैं पूछता हूं कि बिगाड़ने का किसको अधिकार है? लेखकों को क्या अधिकार था कि भूल कर जाते? लेकिन कर गये। कम्पोजीटरों को क्या अधिकार था कि एक अक्षर के स्थान में दूसरा रखते लेकिन उन्होंने ऐसा किया। प्रूफ संशोधकों को क्या अधिकार था कि वह सब अशुद्धियों को शुद्ध न करते परन्तु उनसे बहुत सी अशुद्धियां रह गईं। अब आप बुद्धिमान शिष्यों को क्या अधिकार है कि वह अशुद्धियों के परिशोधन में बाधक हों। दूध भर गिलास में यदि मक्खी डालने का किसी को अधिकार हो सकता है तो दूसरे को छानने का भी अधिकार होना चाहिए। आर्य ग्रन्थों में किसी न किसी की भूल के कारण पचासों अशुद्धियां मिल गईं। सनातनी यही कहते रहे कि मन्वादि ऋषि थे उनके ग्रन्थों को शोधने का हमें अधिकार नहीं। समय समय पर स्वार्थी उनमें मिलावट भी करते रहे। और सनातनी पण्डित पीछे से बाल की खाल निकाल कर उनकी संपुष्टि भी करते रहे और अब भी करते हैं। ऋषि दयानन्द ने इस प्रवृत्ति का विरोध किया क्योंकि इसने वैदिक धर्म को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। अनर्थों का प्रचार कर दिया। इसीलिये ऋषि ने घोषणा की कि प्रक्षिप्त स्थल मान्य नहीं हैं, यदि ऋषि का बस चलता तो इस घोषणा के पश्चात् अपने सामने एक एक मंत्र का छान कर शुद्ध कर देते परन्तु उनको समय न मिला। अब जो बात दूसरे आर्ष ग्रन्थों के साथ हुई वही ऋषि के स्वयं ग्रन्थों के साथ हो रही है। आर्य समाजी पण्डितों ने साहस की कमी के कारण किसी प्राचीन ग्रन्थ को न शोधा और उसी कमी के कारण ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में भी अनेक अशुद्धियां विद्यमान हैं। यही नहीं बढ़ती जाती हैं। जो पुस्तकें ऋषि के पीछे छपीं उनको अन्त तक शोधे जाने का लाभ भी प्राप्त नहीं हुआ। जैसे संस्कार विधि। ऋषि ने आरम्भ में कुछ परिशोधन किया। पीछे से छापने वालों की समझ में भी न आया और कहीं तो उन्होंने मक्खी पर मक्खी मार दी और कहीं अटकल चलाई। परोपकारिणी के अधिकारी रहे राजे महाराजे। यह बात उनकी शक्ति के बाहर थी। जब एक बार एक अशुद्धि छप गई तो उस के लाखों संस्करण ("दुष्करण" कहना अधिक उपयुक्त होगा) छप गये। और अब तक ऐसा ही होता आता है। यदि कोई सुझाता है तो उसको 'काफिर' कहकर हवा में उड़ा देते हैं। इन मामलों में राय देने का उनको अधिकार है जिन्होंने कभी ग्रन्थों के पन्ने उलटने का भी कष्ट नहीं किया। इन में से कुछ सुशिक्षित भी हैं वे एक दूसरे की पगड़ी उछालने को ही ऋषि भक्ति समझते हैं।

मैं समझता हूं कि यह अवस्था आगे देर तक नहीं चल सकती। यदि हमने ग्रन्थों को शोधा नहीं तो सिद्धान्त हानि होगी और ऋषि दयानन्द का नाम उसी प्रकार बदनाम होगा जैसा अन्य बड़े पुरुषों का हुआ। दूसरे लोग और दूसरे समाज उत्पन्न होंगे और वह खण्डन भी करेंगे और हस्तक्षेप भी। दूसरे यह कि ऋषि के ग्रन्थ कोई भी छाप देगा और वह बना और बिगाड़ दोनों ही सकता है। अभी तो ऋषि के ग्रन्थों के जीवन का पहला ही शतक है और ऐसी सामग्री भी प्राप्य है जिसके आधार पर अशुद्धियों को हम दूर कर सकते हैं। पीछे क्या होगा ईश्वर जाने। मेरी समझ में तो ऋषि के ग्रन्थों का संरक्षण तभी हो सकता है जब उनको बुद्धिपूर्वक परिशोधन किया जाय। यदि झाड़ पोंछ न की जाय तो कूड़ा ही चीज को खा जाता है।

बाबूराम "भारती" द्वारा भगवानदीन आर्य भास्कर प्रेस, ५, मीराबाई मार्ग, लखनऊ से मुद्रित एवं प्रकाशित।

वैदिक प्रार्थना

अनुमत्ता ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः ।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥ ऋ० १-१६५-९

हे पूजनीय परमेश्वर ! निश्चय ही तुझ से अधिक कोई अस्तु नहीं है और न कोई विद्वान् या धन्य गुण युक्त पदार्थ तुझ से अधिक प्रसिद्ध है । न कोई उत्पन्न होनेवाला न वह जो उत्पन्न हो चुका है, तेरे समान है, हे सबसे वृद्ध (बड़) परमात्मन्! तू करने योग्य कार्यों को करता है ।

इस अंक के आकर्षण

आप दैनिक चलाना चाहते हैं या नहीं ?

देश के समस्त आर्य गम्भीरता से उत्तर दें

आलस्य छोड़िए और दीजिए सहयोग

मैं कई बार आर्य जनता से यह निवेदन कर चका हू 'क यदि वह वास्तव में यह चाहती है कि दैनिक आर्यमित्र चले तो उस यह समभना होगा कि पत्र उसने ही चलाना है । बिना जनता की इच्छा व सहयोग के दैनिक किसी भी मूल्य पर चल सकना सम्भव नही है ।

बहुत से भाई कहते हैं कि हमें बार-बार जनता मे अपीलें नही करनी चाहिए या अपनी आर्थिक दुर्बलता का ढिंढोरा नही पीटना चाहिए, किन्तु मैं किसी भी अवस्था मे जनता को अन्धेरे मे नही रखना चाहता ।

इस समय स्थिति यह है कि यदि ७ जून तक २०० व्यक्ति या समाजें ऐसी मिल गई जो १०)मासिक दिसम्बर ५५ तक भेजने का प्रण लेकर तुरन्त कम से कम १०)मनिआर्डर द्वारा भेज दें तो हमारा आर्थिक संकट दूर हो सकता है ।

मैं निजी रूप मे और प्रतिनिधि सभा के मन्त्री होने के नाते भी देश की समस्त समाजों से सानुरोध प्रार्थना करता हूँ कि वे इन पंक्तियों को पढ़ते ही जैसे भी हो कम से कम १०) मनिआर्डर द्वारा तुरन्त भेज दें । यह आर्यसमाज की अग्नि परीक्षा है और मुझे विश्वास है कि आर्यजगत् इस परीक्षा मे सफल होगा ।

मैं यह स्वप्न में भी कल्पना नही करना चाहता कि सारे आर्यजगत में २०० व्यक्ति या समाजें भी १०) की छोटी सी राशि भेजने की सामर्थ्य नही रखती । इन पंक्तियों को लिखते हुए मैं यह आशा कर रहा हूँ कि ७ जून की प्रातः तक २०० व्यक्तियों द्वारा भेजा हुआ धन मुझे प्रत्येक अवस्था में प्राप्त हो जाएगा ।

आर्य-पुरुषो ! आर्यसमाज के महान् भविष्य निर्माण के लिए, महर्षि के अधूरे स्वप्नों की पूर्ति के लिए मैं झोली पसार कर आज आपसे सहयोग की भिक्षा माग रहा हूँ, इस आशा और विश्वास के साथ कि आर्य जनता और समाजें मुझे निराश न करेंगी ।

विनीत :—

कालीचरण आर्य

मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश

सासाहिक सत्संग में सुनाए

उपनिषदों के अनूठे उपदेश

सत्यार्थप्रकाश पाठ संख्या २५ (सप्तम समुल्लास)

(लेखक—सुरेशचन्द्र जी वेदालङ्कार एम० ए०, डी०बी० कालेज गोरखपुर)

उपनिषदों की महत्ता के विषय में हमने अपने पिछले लेख में प्रकाश डाला था। इन उपनिषदों की शिक्षायें कितनी महान्, जीवनोपयोगी आवश्यक और सरल हैं, यह तो उनके अध्ययन से ही समझा जा सकता है। सत्यार्थ प्रकाश में भिन्न स्थलों पर स्वामी जी ने इनका उल्लेख किया है, हम उनमें से कुछ का हिन्दी रूपान्तर सत्यार्थ-प्रकाश एवं अन्य पुस्तकों से संगृहीत करके पाठकों के पठनार्थ दे रहे हैं:—

केनोपनिषद् में ब्रह्म के विषय में लिखा है:—

"चक्षु उसको नहीं देख सकता, वाक्य उसका वर्णन नहीं कर सकता, तथा मन उसका अनुभव नहीं कर सकता। हम उसको नहीं जानते। दूसरे को उसका कैसे उपदेश दिया जाय, यह भी हम नहीं जानते। फिर भी जिन प्राचीन पुरुषों ने उसके संबंध में शिक्षा दी है, उनसे सुना है कि 'ब्रह्म सभी विदित पदार्थों से पृथक् है और सारे अविदित पदार्थों से ऊपर है'।"

आगे फिर इसी उपनिषद् में लिखा है'

"जो वचन के द्वारा प्रकाश नहीं पाता अपितु जिससे वाक्य का ही प्रकाश होता है उसे ही तुम ब्रह्म जानो। संसार में दूसरे जिस किसी की उपासना की जाती है, वह ब्रह्म नहीं है।"

यदि तुम समझते हो कि मैंने ब्रह्म को भलीभांति जान लिया है तब तुमने निश्चय ही ब्रह्म का स्वरूप थोड़ा सा जाना है।

तैत्तिरीयोपनिषद् में तो वैदिक संस्कृति का संक्षिप्त रूप ही उपस्थित किया गया है। संसार में प्रविष्ट होते हुए ब्रह्मचारी को आचार्य का उपदेश है यह उपदेश केवल ब्रह्मचारी को ही नहीं अपितु प्रत्येक मानव के लिए उपयोगी है। देखिए "सत्य बोलना। धर्म करना। कभी भी ज्ञानोपार्जन से ...न नहीं होना। कभी भी सत्य से ... धर्म पालन से कभी ...ध्ययन और ...गन

भीरु ब्राह्मणों के कार्यों के अनुरूप तुम भी करना।

यही उपर्युक्त वाक्य ही आदेश हैं, उपदेश हैं यही वेदोपनिषद् है और यही अनुशासन है। इसके अनुसार आचरण करके मनुष्य कितना ऊँचा उठ सकता है—जरा विचार देखिए।

कठोपनिषद् की द्वितीय वल्ली के पांचवे मंत्र में यमराज नचिकेता से कहते हैं—

"अविद्या में पड़े हुए मूढ़ व्यक्ति अपने को धीर और पंडित समझ कर अन्धे के द्वारा लाए गए अन्धे की तरह चारों ओर उलटी चाल चलते हैं।"

"उस दुर्दर्शनीय, निगूढ़, प्रच्छन्न, गुफा में छिपे हुए गह्वर में स्थित और पुरातन आत्मा को अध्यात्म योग के द्वारा परमात्मा जान लेने पर बुद्धिमान पुरुष हर्ष और शोक से छूट जाता है"।

आत्मा के विषय में उपनिषद् में लिखा है:—

"आत्मा जन्म और मृत्यु से रहित है। यह मेधावी है, यह किसी से उत्पन्न नहीं है। इसी से साक्षात अन्य पदार्थ भी नहीं उत्पन्न हुआ है। यह अजन्मा नित्य, शाश्वत और पुरातन है। शरीर के नष्ट होने पर भी यह विनष्ट नहीं होता।"

श्वेताश्वतर उपनिषद् के भी कुछ रत्न देखिए:—

"जैसे तिल को पेरने से तेल और दही को मथने से मक्खन पाया जाता है और नहर खोदने से पानी और अरणि काष्ठ के संघर्षण से आग पाई जाती है वैसे ही सत्य और ...ा के द्वारा खोज करने पर अपनी ... में ही परमात्मा को पाया

... सर्वत्र व्याप्त ...

...ा उस...

द्वारा व्याप्त है। वैराग्य भाव से सांसारिक वस्तुओं को भोगो। किसी भी विषय में 'मेरापन' मत रखो। यही दुःख का कारण है। धन का लोभ मत करो"

"इस कर्म भूमि में कर्म करते हुए ही सौ वर्ष तक जीनेकी इच्छा करो।"

"परमात्मा चलने पर भी निश्चल है। वह दूर भी है; समीप भी है। वह सबके अन्दर और बाहर व्याप्त है।

'जो मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियों को अपने में देखता है और अपने को सबमें देखता है वही आत्म ज्ञाता है"

"जिस ज्ञानी के पास सारे प्राणी अपने हैं उस एकत्व दर्शी के लिए मोह और शोक कुछ नहीं हैं।"

बृहदारण्यक उपनिषद् की कथा यह है कि एक बार राजा जनक के यहां बहुत से विद्वान् आए। उन्होंने सब से बड़े वेदज्ञ को स्वर्णमंडित गाय लेने को कहा। याज्ञवल्क्य ने उन्हें ले लिया। दूसरों से उनका शास्त्रार्थ हुआ। वे पराजित हुए। गार्गी भी पराजित हुई। उनकी दूसरी मैत्रेयी ने उनके सन्यास लेने की इच्छा होने पर उनसे एक प्रश्न किया "अमरत्व प्राप्ति का क्या उपाय है"। याज्ञवल्क्य ने उसे बहुत प्रलोभन दिए पर उसने कहा भगवान यदि धन-धान्य पूर्ण सम्पूर्ण धरित्री ही यदि मुझे मिल जाय तो क्या मैं अमर हो जाऊँगी। याज्ञवल्क्य ने कहा "अमरता तो नहीं मिल सकती"। तब मैत्रेयी ने अपना वही अमरत्व का प्रश्न किया। याज्ञवल्क्य ने जो मार्ग बताया जरा उस पर भी दृष्टि पात कीजिए। [क्या] है मार्ग?

...व्याप्त

...उस

...किया जा सकता। वह अशीर्य है क्योंकि उसका क्षय नहीं होता। वह असंग है क्योंकि उसका संग नहीं हो सकता। वह किसी को पीड़ा नहीं देता, किसी पर क्रुद्ध नहीं होता वह सबका बाहर भीतर जानता है। उस सर्व विज्ञाता को कैसे जाना जाय? मैत्रेयि? उसी की शिक्षा से अमरता प्राप्त होती है'।

प्रश्नोपनिषद् में पिप्पलाद ने छः ऋषियों के छः प्रश्नों का उत्तर दिया है। वे उत्तर माननीय हैं। इसमें कहा है" जो व्यक्ति ओंकार के द्वारा परम पुरुष का ध्यान करता है वह तेजोमय सूर्य लोक को प्राप्त होता है।

मुण्डकोपनिषद् में अंगिरा ने परा और अपरा विद्या को सीखने का शौनक को उपदेश दिया है। चारों वेद और वेदांग अपरा विद्या हैं और जिससे क्षय शून्य ब्रह्म जाना जाता है वह परा विद्या है।

"अविद्या में फंसे ज्ञान शून्य व्यक्ति समझते हैं कि हम कृतार्थ हो गए। परन्तु कर्म फल में आसक्ति होने से वे लोग मुक्ति नहीं पाते।"

"सत्यमेवजयते नानृतम्" सत्य की विजय होती है झूठ की नहीं। 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' कमजोर व्यक्ति परमात्मा को नहीं प्राप्त कर सकता" आदि अद्भुत उपदेश इसी उपनिषद् में पाये जाते हैं।

माण्डूक्योपनिषद् में कहा है—

'आत्मा सर्वेश्वर सर्वज्ञ अन्तर्यामी और समान विश्व का कारण है। क्योंकि इससे ही सारे प्राणियों की उत्पत्ति होती है और इसमें ही सारे प्राणी विलीन होते हैं'।

"ओंकार के द्वारा इस आत्मा का ज्ञान होता है'।

इस प्रकार हमने देखा कि उपनिषदों की शिक्षा का आधार त्याग, तपस्या, बलिदान और ज्ञान प्राप्त है। इनमें कहीं भी साम्प्रदायिकता, संकीर्णता और हीन मनोवृत्ति का लेश भी नहीं दिखाई देता। हमारे आर्य भाइयों का इन उपनिषदों की शिक्षाओं का दिग्दर्शन हो सके और वे स्वयं उपनिषदों को हिन्दी टीकाओं के आधार पर ही सही मनन करना प्रारंभ कर इसलिए एक हिन्दी पुस्तक के अनुवाद के आधार पर कुछ चुने हुए स्थल उपस्थित किए हैं। कितनी महती शिक्षा है इन उप लेखों की।

आर्य समाज के समस्त पत्रों मे सबसे अधिक छपने वाला आर्य प्रनिनिधि सभा उत्तरप्रदेश का मुख पत्र—

लखनऊ—सोमवार ६ जून तदनुसार अषाढ़कृष्ण १ सम्वत् २०१२ सौर २५ ज्येष्ठ दयानन्दाब्द १३० सृष्टि सम्वत् १९६०८५३०५५

१०) की बात

आज यह पंक्तियां हम लखनऊ में बैठकर नही अपितु इलाहाबाद में बैठकर लिख रहे हैं। हमें सारा काम छोडकर इसलिए बाहर निकलना पडा कि आर्य जनता ने हमारी प्राथना पर ध्यान नही दिया, जितना कि देना चाहिए था। अत लाचार होकर हमें स्थान स्थान पर जाकर अपनी कठिनाइया जनता के समक्ष रखनी पड रही हैं।

किन्तु सारी कठिनाइयों का हल करना और आर्यमित्र की उन्नति के लिए साधन जुटाना केवल आपके हाथ में है। यदि देश की समाजें इन पंक्तियों को पढते ही केवल १०) मासिक भेजन का प्रण ले लें तो हम उन्नति करते हुए वैदिक सदश को प्रसारित करने में सफल हो सकते हैं।

अबतो समस्या केवल एक रह गई है कि किसी भी तरह २०० समाजें या व्यक्ति एसे मिल जय जो १०) मासिक भजने का सकल्प कर जून मास का धन तुरन्त भेज दें तो हमारा सकट स्वय समाप्त हो जाता है।

हम आर्य जनता से पूछना चाहते हैं कि क्या यह जहां हजारो रुप्या अन्य दिखावी कामो पर व्यय करती है वहां वह अपने सबल प्रतीक दैनिक आर्यमित्र को चलान क लिए १०) मासिक देने वाले २०० व्यक्ति भी तैयार नही कर सकती ?

हम जानना चाहते हैं कि क्या आर्य समाज में दानी व्यक्तियों का सर्वथा अभाव हो गया है या उनका धन केवल ईट पत्थर और वाह-वाही मिलने के स्थानो पर ही देने के लिए रह गया है ?

हमें ज्ञात हुआ है कि बहुत से व्यक्ति आज भी तमाशा देख रहे हैं और उस अवसर की खोज में हैं जब आर्यमित्र दैनिक असफल हो और उन्हें मजाक उडाने का अवसर मिले, हम कहना चाहते हैं कि यह मनोवृत्ति शोभनीय नही। आर्यमित्र दैनिक आर्य समाज के गौरव और बल का प्रतीक है। इसका चलना उत्तरप्रदेशीय आर्य प्रतिनिधि सभा की इज्जत का प्रश्न है। यश मिलेगा तो आय समाज को, बदनामी होगी तो आर्य समाज की। क्या कोई आर्य समाजी, आर्य समाज की बदनामी सुनकर लज्जित न होगा ? फिर ऐसी भावनायें क्यों ?

हम सानुरोध विनम्र निवेदन समस्त आय पुरुषों से करना चाहते हैं कि वे दैनिक आर्य मित्र को चलाना अपना कर्तव्य समझें और पूरे बल से सदस्य बनाने व धन सग्रह में लग-जाएं। जून ७ तक २०० व्यक्तियों या समाजो का धन हमारे पास पहुंच जाए हम यही सानुरोध निवेदन आय जगत से इस समय कर रहे हैं।

१०) भेजिए इसलिए कि महर्षि का महान लक्ष्य पूरा हो, विश्व में वैदिक विचार धारा का प्रसार हो और हम निराशा की झंझा में न बहते हुए नव युग निर्माण में जुट जाएं, क्या हम आशा करें कि आप अपना धन आज ही १०) भेज कृतार्थ करेंगे।

महर्षि का आर्यसमाज

देश की सब से बडी आवश्यकता आज यह है कि "आर्य समाज महर्षि दयानन्द क समय का आर्य समाज बने। जिस महान् लक्ष्य की पूर्ति क लिए इस की स्थापना हुई थी, उसकी सिद्धि के लिए यह यत्न शील हो।

तथ्य और वास्तविकता यह है कि आज हम महर्षि के बताए मार्ग से से बहुत दूर भटक गए ह। हमारा मुख्य कार्य गौण बन गया है और हम केवल लकीर पीटते हुए अपनी गाडी खीच रहे हैं।

युग-निर्माण का आधार मनुष्य निर्माण है।

किन्तु इसके लिए भी हम कुछ कर रहे हों ऐसा प्रतीत नही होता, वेद ज्ञान प्रसार के लिए होते हुये हमारे यत्न भी आज कही दिखायी नही पड रहे। हमारा बल ईट पत्थर के मकान बनाने में, सस्थायें खडी करने में नष्ट हो रहा है, चारो ओर निराशा का साम्राज्य है, किन्तु हम उसे अनुभव नही कर पा रहे हैं और हमारी गाडी घिसटती हुयी चल रही है।

हम कार्यों के लिए सहयोग देने के स्थान पर एक दूसरे पर कीचड उछालने का यत्न करते हैं। आर्य समाज के कल्याण की बात न सोच अपनी स्वार्थ पूर्ति और प्रसिद्धि के लिये यत्नशील रहते हैं। कार्य के परिणाम की चिन्ता न कर अधिकारारूढ रहने का यत्न करते हैं।

यह स्थिति प्रत्येक आर्य के लिए शर्म की बात है। घोर अधकार में प्रकाश लाने के स्थान पर हम स्वय अपने प्रकाश को नष्ट कर रहे हैं गुरुता-नास्तिकता अनाचार हमारे रहते बढ रहा है और हम मौन पथ से विमुख बैठे हैं क्यों लज्जा अनुभव नही करते ?

खून ठंडा हो चुका है।

महर्षि के अरमानों की चिता सजाने में हम लगे हैं किन्तु हमारा प्रश्न है कि सम्पूर्ण आर्य जगत् में क्या कुछ भी एस दयानन्द के अनुयायी नही हैं जो इस चिता को बखेर कर महर्षि की फुलवारी में फूल खिलाने की तैयारी कर सकें।

हम सोचें अपने हृदय पर हाथ रख कि क्या हम वास्तव में दयानन्दके बताए मार्ग पर चल रहे हैं ? क्या आर्य समाज के अधिकारी होते हुए हम वास्तव में अपने कर्तव्य को पूरा कर रहे हैं? क्या हमने वैदिक विचार-धारा प्रसार के लिए कुछ किया है ? या क्या हमारे हृदय में कुछ करने की भावना का अवशेष भी शेष है ?

इन प्रश्नों का उत्तर आपके समक्ष स्थिति का सही चित्र उपस्थित कर देगा ? हमारी इच्छा और मार्ग केवल यह है कि आय समाज को दयानन्द का आर्य समाज बनाइए अपनी दुर्बलता के कारण ऋषि के महान लक्ष्य का गला न घोटिए।

समाजो के सत्सग, उत्सव प्रचार कार्यक्रम सभी में आमूल चूल परिवतन की आवश्यकता आज सभी अनुभव कर रहे हैं किन्तु आगे कौन आए यह प्रश्न है ? इस प्रश्न का उत्तर हम समस्त आर्य जनता से माग रहे हैं। है कोई दयानन्द का अनुयायी जो उत्तर देकर आज के आर्यसमाज को महर्षि का आर्यसमाज बनाने की प्रतिज्ञा करेगा ?

ईसाई मत-विरोधी-आन्दोलन

३ जून के दैनिक अक में हम प० नेहरू के वक्तव्य के उत्तर में अपने विचार 'पण्डित नेहरू की भयकर भूल' शीर्षक से लिख चुके हैं। आज हम आयजनता से कहना चाहते हैं कि वह देश में व्यापक रूप से ईसाई मत विरोधी आन्दोलन चलाने की तैयारी कर। इस आन्दोलन का सुधार शांतिमय होना चाहिये, आलोचना सिद्धांतों की होनी चाहिये और यदि ईसाई मिशनरी बल त धम परिवर्तन या राजनीतिक हथकण्डों का प्रयोग करते हैं तो उनके कार्यों की सूचना राज्य को व जनता को अवलम्ब देनी चाहिये। इस काय को सञ्चालन करने के लिए प्रत्येक समाज में ईसाई निरोध समिति की स्थापना अविलम्ब की जाय। इसकी सूचना अपनी सभाओं को व हमें भी अवश्य दी जाय। केवल समिति की स्थापना कर ही कार्य की इतिश्री न कर दी जाए अपितु पश्चात् भी समस्त जनता के सहयोग से आदोलन को बल दिया जाए।

अज्ञान ने ज्ञान को चुनौती दी है इस चुनौती को हम स्वीकार करें और सत्य शान्ति और मानवता की स्थापना के लिए हम ईसाई-मत विरोधी आन्दोलन चलाए। क्या देश की आर्य समाजें हमारे इस सामयिक उद्बोधन पर ध्यान देंगी।

गोआ की समस्या शीघ्र हल होगी—आन्दोलन तेजी पर—कानपुर की हड़ताल की स्थिति पूर्ववत् विषम—भारतीय मजदूर आंदोलन के जनक का निधन—कश्मीर की उलझन—पाक-अफगान विवाद—पाक-सविधान सभाका २१जून को चुनाव—ट्यूनीशिया की आजादी—४ अमेरीकी उड़ाकों की रिहाई

गोआ के सम्बन्ध में भारत सरकार की नीति का स्पष्टीकरण करते हुए प्रधानमंत्री नेहरू ने कहा है कि सरकार अपनी पहले की शांतिपूर्ण नीति पर कायम रहेगी। नेहरूजी ने कहा है कि सत्याग्रहियों पर होने वाले जुल्मों से हम सब को क्षोभ है, पर हमें बिना विचारे कोई कदम नहीं उठाना है। नेहरूजी ने कहा है कि भारत सरकार अगर जरूरी समझे तो दबाव डालने के लिए पुर्तगाली बस्तियों के खिलाफ आर्थिक प्रतिबन्ध लगा सकती है। नेहरू जी ने आशा प्रकट की है कि गोआ की समस्या शीघ्र हल हो जायगी।

गोआ के मुक्ति आन्दोलन में भाग लेने के सम्बन्ध में नेहरू जी ने कहा है कि सामूहिक रूप से तो भारतीयों का जाना जाना उचित नहीं है, पर व्यक्तिगत रूप से वे गोआनियों के साथ मुक्ति आन्दोलन में भाग ले सकते हैं।

भारतीयों द्वारा चलाये जाने वाले आंदोलन को नेहरूजी की इस घोषणा से बल मिला है। काँग्रेस अध्यक्ष श्री ढेबर ने गोआ के आंदोलन को भारत का आंदोलन बताया है और भारत सरकार के गृहमंत्री पंडित पंत ने आशा प्रकट की है कि गोआ जल्दी ही भारत में शामिल हो जायगा।

इस समय भारतीय जनमत के साथ नेतागण भी गोआ के मामले में बहुत ज्यादा दिलचस्पी ले रहे हैं। भारतीयों के दो जत्थे सत्याग्रह कर चुके हैं। तीसरा जत्था भी रवाना हो गया है। प्रजा सोशलिस्ट पार्टी १५ अगस्त को विशाल अभियान की तैयारी कर रही है।

पुर्तगाली अधिकारियों ने अपनी शक्ति भर जुल्म ढाये हैं। पर उनसे आंदोलन दबने के बजाय और जोर पकड़ रहा है। पुर्तगाली अधिकारियों को इससे सबक लेना चाहिए और जितनी जल्दी वे गोआ छोड़ देंगे उनका उतना ही भला होगा।

× × ×

कानपुर में चलनेवाली सूती मिल मजदूरों की हड़ताल को १ मास से अधिक समय हो गया, पर अभी तक समझौते के कोई लक्षण नहीं दिखायी देते। कांग्रेस के कतिपय नेता नैनीताल में राज्य के मुख्यमंत्री और श्रममंत्री से मिले हैं, पर वे सरकार को अपना रवैया बदलने पर राजी नहीं कर पाये हैं।

प्रधानमंत्री नेहरूने अभिनवीकरण के बारे में कहा है कि अभिनवीकरण उद्योग की उन्नति के लिए आवश्यक है, पर उससे अगर बेकारी बढ़ती है तो पहले बेकारी की समस्या सुलझाने का रास्ता निकालना आवश्यक होगा। प्रधानमंत्री के इस कथन से मजदूरों की मांग की पुष्टि मिलती है। मजदूर अभिनवीकरण के फलस्वरूप बेकारी और काम का बोझ बढ़ाया जाना रोकने के लिए ही हड़ताल कर रहे हैं। सरकार को अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान छोड़कर जनहित के लिए शीघ्र संकट को दूर करने का उपाय करना चाहिए।

× × ×

भारतीय मजदूर आंदोलन के जनक श्री नारायण मल्हार जोशी का निधन इस सप्ताह की बहुत ही दुख

जनक घटना है। श्री जोशी के निधन से मजदूर आंदोलन का निष्पक्ष नेता उठ गया।

कश्मीर के सम्बन्ध में पाकिस्तान के प्रधानमंत्री श्री मुहम्मद अली की घोषणा चिन्ता का विषय है। श्री अली ने कहा है कि अगर प्रधानमंत्री नेहरू के साथ आगामी वार्त्ता में कश्मीर का मसला हल नहीं हुआ, तो पाकिस्तान कश्मीर मसले को वार्त्ता से हल करने का प्रयास सदा के लिए खत्म कर देगा। पाकिस्तान की यह धमकी समझौते के मार्ग में स्वयं एक बाधा है। प्रधानमंत्री नेहरू ने श्री अली की घोषणा के एक दिन पूर्व ही कहा था कि हमें अगली वार्त्ता में कश्मीर का मसला हल होने की आशा है। हाल में दिल्ली में हुई वार्त्ता में समस्या के कुछ नये पहलू उठे थे उन पर गौर करने के बाद आगामी वार्ता में समझौते की दिशा में नया कदम उठाया जायगा। अब नेहरूजी की रूस यात्रा के बाद होने वाली वार्त्ता ही स्थिति स्पष्ट करेगी।

× × ×

संयुक्त अरब के प्रतिनिधि ने घोषणा की थी कि पाकिस्तान अफगानिस्तान का विवाद तय होनेकी आशा हो चली है। ठीक हो जाय तो अच्छा ही है। पर घटनाचक्र दूसरी ओर ही घूम रहा है। पाकिस्तान ने काबुल जाने वाली बिजली और सूती मिल की मशीनें पेशावर में रोक लीं। फलस्वरूप अफगानिस्तान इस झंझट को दूर करने के लिए रूस होकर सामान मंगाने के लिए रूस से समझौता वार्त्ता कर रहा है। पाकिस्तान अपने कार्यों से [illegible] और [illegible] कर रहा है, वह उसके लिए शोभनीय नहीं है।

\+ +

पाकिस्तान की नयी संविधान सभा का चुनाव २१ जून को करने की घोषणा की गयी है। पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान की समानता के आधार पर चुनी जाने वाली ८० सदस्यों की इस सभा की पहली बैठक जून के अन्तिम सप्ताह मे होगी। यदि यह सभा पाकिस्तान के संविधान निर्माण के कार्य में सफलता पाये तो अच्छा ही है, अन्यथा पाकिस्तान का भविष्य अन्धकार मय ही है।

× × ×

फ्रांस ने अपने अधीनस्थ ट्यूनीशिया को स्वशासन दे दिया। यद्यपि ट्यूनीशिया को अभी सीमित अधिकार मिले हैं, फिर भी ट्यूनीशिया की स्वतंत्रता का अभिनंदन किया ही जाना चाहिए। क्योंकि गुलाम देशों की स्वतंत्रता की दिशा में यह एक और कदम है। ट्यूनीशिया के राष्ट्रवादी ३॥ वर्ष के निर्वासन के बाद स्वदेश लौट आये। देशवासियों ने उनका खुले हृदय से स्वागत किया।

फ्रांस ने ट्यूनीशिया को तो आजादी दे दी, पर मोरक्को और अल्जीरिया में वह अपने पैर और मजबूत कर रहा है। अल्जीरिया में चलने वाला दमनचक्र अत्यंत निंदनीय है। अपने स्वतंत्र राष्ट्रों के बल बूते पर फौजी ताकत से अधिकार जमाये रखना फ्रांस के लिए लाभ कर न होगा। वह हिन्दचीन में धन जन की भारी हानि उठा चुका है। उसको ध्यानमें रखकर फ्रांस अपनी उपनिवेशों को जितनी जल्दी मुक्त कर दे, उतना ही अच्छा होगा। इस तरह वह विश्व के सामने एक आदर्श रखेगा और नए जागृत देशों की मैत्री भी प्राप्त कर सकेगा।

× × ×

विश्व की तनातनी दूर करने की दिशा में चीन ने ४ अमरीकी उड़ाकों को रिहाकर एक बड़ा कदम उठाया है। फारमोसाकी उलझन भरी समस्या हल करने के लिए चीन और अमरीका

× × ×

की मतानिरी दूर होना जरूरी है। भारतीय कूटनीतिज्ञ श्री मेनन के प्रयास उड़ाकों की मत रिहाई उसी तनातनी को दूर करने की दिशा में एक कदम है। अमरीका यदि इस सद्भावना का आदर कर स्वयं भी आगे बढ़े तो जल्दी फारमोसा की समस्या सुलझ जायेगी और विश्वका एक बड़ा संकट दूर हो जायगा।

गुंजाइश नहीं

मद्रास में टैक्स लगाने की

मद्रास ३ जून। मद्रास राज्य के मुख्यमंत्री श्री सी० सुब्रमनियम ने पत्रसम्वाददाताओं के प्रश्न के उत्तर में कहा कि मद्रास राज्य पहिले ही अत्यधिक टैक्स चुका रहा है अस्तु इस राज्य में नये टैक्स लगाने की गुंजाइश नहीं है।

यू० प्रे०

कहानी—

पत्थर का भगवान मर गया

[ले०:—श्री गोपालशरण 'विद्यार्थी']

गोधूलि की बेला हुई—सूर्य की लाली न रही। दिन भर प्रकाश करने के उपरान्त वह भी थक कर अस्ताचल की ओर चल दिया। पक्षियों का कलरव शान्त हो गया, वातावरण में शीतलता छाने लगी सागर की लहरें शान्त हो चलीं·······

किन्तु दूर—चला जा रहा था एक पथिक, परिश्रान्त, क्लान्त, अन्तर में विचारों का तूफान लिये, कदम जैसे उठने का नाम न ले रहे और विचार जैसे रुकने का।

शान्ति और सत्य की खोज में वह कहां चला जा रहा था। उसने न जाने कितने तीर्थों का पर्यटन किया था, जाने क्या-क्या देखा था, इस संसार में, किन्तु ढूंढता फिरा था—चिर शान्ति को, अमर सत्य को, सनातन ईश्वर को।

उसने देखा था, भक्तों का अतुल वैभव, ऊंचे मन्दिर, विशाल अट्टालिकायें, भगवान की सुन्दर सुन्दर मोहक प्रतिमायें— शिल्पी ने जैसे पत्थरों में भी जान डाल दी थी—

प्रतिमायें सदैव मुस्कराती रहतीं, अपने श्रृंगार पर, अपने वैभव पर—उनकी आंखें खुली रहतीं, पर वे देख नहीं सकती थीं—मन्दिर की चहारदीवारी को तोड़ कर जा नहीं सकती थीं—उन्हें क्या मालूम, मन्दिर के प्रांगण में क्या होता था, और होता था, उसके बाहर।

किन्तु उसने देखी थी बाहर की दुनियां—उसने देखा था, निर्धनों का निर्धन होना शोषितों का शोषण चांदी के टुकड़ों की सारी माया, जिससे अमीर, अमीर बनता जाता और गरीब-गरीब। अमीरों की सारी इच्छायें आकांक्षायें, सब पूर्ण हो जातीं, निर्धन की साधारण सी आवश्यकतायें भी अधूरी अतृप्त रहतीं!

उसने धर्म के नाम पर देखा—झूठ, पाखंड, छल, व्यभिचार, अन्ध विश्वास···।

सुनी थी एक ओर घंटों, घड़ियालों और शंखों की आवाजें और दूसरी ओर सुनी थीं, दीन-हीन त्रस्त मानव की करुण पुकारें, भीषण चीत्कारें, अनेक प्रकार की व्याधियों से प्रसित मानव का हाहाकार ····।

लोग कहते—"ईश्वर की माया है, और उसने देखा—माया ईश्वर की नहीं, सोने चांदी की माया है, और पत्थर का भगवान मायापति नहीं स्वयं माया की दास बना हुआ है।"·····और उसका मन विद्रोह कर उठा था—नारकीय जीवन से, अपरिमित ढोंगों से, माया की सत्ता से।

वह चला जा रहा था—चलता ही जा रहा था·····

सामने किसी टूटे मन्दिर के भग्नावशेष दृष्टिगोचर हो रहे थे·····थोड़ी दूर और बढ़ने पर जर्जर-विध्वस्त अवस्था में टूटे हुये मन्दिर के खण्डहर का काफी भाग उसे दीखने लगा था।

वह अन्दर गया वहीं, और देखने लगा। मन्दिर क्या था—खंडहर हो चुका था; किन्तु अवशेष यह बताते थे, कि कभी उसका भी वैभव था, ऐश्वर्य था। मन्दिर की कला-कृतियाँ, मानो जैसे अतीत की याद पर आँसू बहा रही थीं! नींव के पत्थर अपनी विशाल काया को घेरे हुये रो रहे थे। हवा तेज हो चली थी। चांद अभी निकला न था। हवा के झोंके से कभी कोई मिट्टी का ढेला, जो किसी स्तम्भ का अंग होता, या किसी गुम्बद का भाग, टूटता गिरता, और मिट्टी का ढेर हो जाता।

वह सोचने लगा, विचारों में खोने लगा"·····कभी इस मन्दिर की भी अपनी शान होगी—कोई जमाना होगा, जब इस समय इस में शंख, घंटा, घड़ियाल बजने होंगे—देवता से मान्यतायें मांगी जाती होंगी। पुजारी का आशीर्वाद पाने के लिये लोगों की भीड़ लगी रहती होगी·····।

वह एक खम्भे के सहारे बैठ गया उसने दाहिने को देखा। मन्दिर का मुख्य द्वार था। सामने किसी देवता की विशालकाय मूर्ति औंधी पड़ी थी। देवता की वह धूल धूसरित क्षत-विक्षत मूर्ति मानों

> "····मैं पत्थर की प्रतिमा यदि बोल पाती, तो चिल्ला चिल्ला कर कहती, कि मैं केवल पत्थर हूं और कुछ नहीं। मैं तुमको जीवन-समर में नहीं जिता सकती। तुम स्वयं एक बहुत बड़ी शक्ति हो। संगठित होकर शस्त्र हाथ में लेकर शत्रु का मुकाबला करो। मैदान छोड़कर भागने से सुख और शांति कदापि नहीं मिल सकती···"

स्वयं अपना ही उपहास उड़ा रही थी। वह देख रहा था उसको एक टक·······

जाने कब वह स्वप्नवत हो गया। अपनी उसी दशा में उसने देखा कि वह पत्थर की प्रतिमा उससे कुछ कहना चाह रही हो··········

"मरना चाहता है ?' —अपनी फटी-फटी आवाज में मूर्ति ने कहा।

"नहीं" साहस बटोरते हुये उसने कहा!

'दुनियां से भाग कर आया है' ?

"हां'

जायगा कहां ?

जहां शान्ति मिलेगी, हृदय की ज्वाला शीतल हो सकेगी। मन का अन्धकार मिट सकेगा।

हः हः हः भीषण अट्टहास के साथ मूर्ति हंस पड़ी! "शान्ति बाहर कहां और फिर कहां है—उसने पूछा "तेरे अन्दर तेरे अन्तःस्थल में अपनी आत्मा टटोल तू उस को अनुभव कर' अपने हृदय में उसे देख।

मैं नहीं समझा।

"तू समझ, मुझे देख:— दुनियां कभी मुझे ईश्वर, भगवान देवता समझ कर पूजती थी, लेकिन वह अब मर चुका है कभी का।

क्या भगवान मर गया ?

"हां : किन्तु चराचर में व्याप्त ईश्वर नहीं—केवल पत्थरका भगवान मर गया।

"पत्थर का भगवान मर गया हः हः खूब, तो तुम मर गई क्या ?

लेकिन आंखें खोलकर देख—अन्तर का भगवान अभी तक जी रहा है, वह हमेशा जीएगा, वह कभी नहीं मरता। वह नश्वर नहीं, अजर है, अमर है।

वह तुममें है ?

नहीं [तो है ही केवल तेरे सामने, क्योंकि मेरा नाटक रूप-रंग तो कभी का समाप्त हो चुका है, कभी का नष्ट हो चुका है, जो कुछ है वह अन्तर का शेष है·····]

"·······दुनिया से भाग मत! दुनियां को बता, कि पत्थर के ऊपरी रूप को जब तक दुनियां भगवान समझ कर पूजती रहेगी, उसे कभी शान्ति नहीं मिलेगी! पत्थर भगवान नहीं, पत्थर की मूर्ति ईश्वर नहीं हां, पत्थर के अन्तर में कण-कण में ईश्वर का अंश है, लेकिन वह सब में है. मुझ में भी, तुझ में भी, जगत के कोने कोने वृक्ष-वृक्ष में व्याप्त रही है। तुझे उसे पाने के लिए अपने अन्तर को टटोलना होगा! पत्थर का ऊपरी रूप घिस घिस कर, टूट-टूट कर नष्ट हो जाता है, किंतु उसका आन्तरिक रूप फिर भी चूरे के रूप में बिखर बिखर कर, दब दब कर, पिस पिस कर, कण कण बन कर भी जीवित रहता है······· हमेशा, हमेशा·········!

"···कभी मैं भी पत्थर का एक बहुत बड़ा टुकड़ा थी। अनेक हाथों पत्थर के रूप में मेरा मोल हुआ, और होते होते मैं इस मन्दिर के सर्व श्रेष्ठ शिल्पी के हाथों में आ गयी···वह मन्दिर, जो एक युग हुआ, इस प्रदेश के राजा ने बनवाया था इस मन्दिर की भी एक कहानी है······

वह भी सुन लेना।

'·····शिल्पी ने मुझे तराशना आरम्भ किया; मेरे समस्त ऊपरी भाग को उसने छील डाला, और फिर उसने मुझको एक मनुष्य की सी आकृति दी! मेरा मस्तक, नाक, कान, धड़, पैर सब कुछ बनने लगे·····शिल्पी ने मुझको मुस्कान दे दिया, मेरी आंखों में हीरे जड़ दिये गये, सारा शरीर स्वर्ण से मढ़ दिया गया·····

·····लेकिन मैं नहीं जानती थी, कि यह सब क्यों हो रहा था, तब एक दिन मैंने सुना, कोई पूछ रहा था

शिल्पी वह देव प्रतिमा तैयार हो गयी, कैसी बनी है, भगवान की मूर्ति ?

बहुत सुन्दर राजन, "स्थापना होने पर देखेंगे, कि मैंने अपनी सारी कला उसमें अभिव्यक्त कर दी है।'

स्थापना में अब समय शेष नहीं रहा, मुहूर्त निकट ही है।

जो आज्ञा राजन।

·····तो वह उस प्रदेश का राजा था। मुझे तो सब कुछ आश्चर्य सा लग रहा था। मैं ही क्या देवता की प्रतिमा थी? मैं ही क्या ईश्वर की मूर्ति थी? मैं सोच रही थी, इस राजा को क्या हो गया है? क्या सारा संसार बेवकूफ हो जावेगा, जो कल तक के पड़े हुए एक साधारण से पत्थर को ईश्वर समझ कर पूजने लगेगा···

"·····और एक दिन वह आ ही गया, मुझे इस बात का भी परिचय मिल गया।"—लोग पत्थर को तो पत्थर कहते ही हैं, मैंने देखा कि दुनियां के सर्व श्रेष्ठ प्राणी 'मनुष्य' की भी अक्ल पत्थर की सी थी, जो ईश्वर और पत्थर में भी भेद न कर सकी—।

"·····देव प्रतिमा के रूप में मेरी स्थापना हुई! दुनिया मेरे ऊपरी रूप को देख कर झूम उठी! भूल गई मेरा बनाने वाला भी कोई शिल्पी था। अब तो दुनिया के लिये मैं ही सब कुछ था! मेवे मिष्ठान, वस्त्र आभूषणों के चढ़ावे नित्य प्रति मुझ पर चढ़ने लगे··

इतनी सेवा-सत्कार तथा आदर पाकर धीरे २ मुझे अपने ऊपर गर्व हो गया। मैं समझ बैठी कि मैं ही ईश्वर हूँ, उसी प्रकार, जिस प्रकार अज्ञानी मनुष्य अपने क्षणिक चातुर्य को देख कर ही यह समझ बैठता है, कि वही सब कुछ है"

"····लेकिन मेरी यह भूल थी, मेरा यह विकृत रूप आज दुनिया को यही चिरन्तन सत्य बताने को साक्षी बना है कि—"इस संसार के मुकाबिले में अन्तिम सत्ता यथार्थ, शरीर की नहीं, आत्मा की है, प्रकृति की नहीं, परमात्मा की है। क्योंकि संसार है, इसलिये इसका भोग तो करो, लेकिन चूंकि अन्तिम सत्ता इसकी भी नहीं है, इसलिये इसमें लिप्त होने से बचे रहो···।।

"···· मैं बता देना चाहती हूँ कि यदि आज तक दुनिया ने मेरी पूजा छोड़ कर मेरे बनाने वाले को—उस शिल्पी को अपने हृदय मन्दिर में स्थान दिया होता, तो मेरा यह विकृत रूप न होता, क्योंकि तब दुनिया मुझे किसी की अमानत समझती, उसकी धरोहर समझती— चाहती कि यह धरोहर खो न जावे, टूट न जावे, बोली लग कर, झर झर कर झड़ न

(शेष पृष्ठ १२ पर)

ऋषि के ग्रन्थों में परिवर्तन परिवर्धन और संशोधन

[लेखक—आचार्य श्री विश्वश्रवा जी प्रधानमन्त्री धर्मार्य सभा देहली]

कुछ दिनों से यह लहर चली है कि स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थों में अशुद्धियां हैं उन्हें ठीक करो और यह ठीक करने का कार्य सब ने कर भी डाला। यह रोग परोपकारिणी सभा तक पहुंच गया है। अभी वैदिक यन्त्रालय अजमेर से स्वामी जी के ऋग्वेद भाष्य का प्रथम भाग छपा है जब वह छप रहा था तब स्वर्गीय श्री पूज्य दीवान बहादुर हरविलासजी शारदा ने उसके चालीस पृष्ठ मुझे देखने को दिये जब वह छप ही रहा था। मैंने उन चालीस पृष्ठों में चार सौ अशुद्धियां लिख कर परोपकारिणी सभा को भेज दीं। इन पृष्ठों में वर्तमान चली लहर के अनुसार स्वामी जी के वेदभाष्य को ठीक करने का दुःसाहस किया था। यहां तक कि टिप्पणी देकर ऋषि के भाष्य का खण्डन भी किया गया था। जिसका एक उदाहरण मैं यहां देता हूं।

ऋग्वेद १।२४।११ के मन्त्र 'तत् त्वा यामि' में बोध शब्द आता है। इस पर भाष्य करते हुए स्वामी जी ने लिखा है—

"बोधयें अवधेर्वा लुङ् अडभावश्च"

इस पर टिप्पणी देते हुए वैदिक यन्त्रालय के आज कल के पण्डित जी ने स्वामी जी के भाष्य को ठीक करने का यत्न किया है और लिखा है कि—

"लोटो रूपं न तु लुङ"

अर्थात् स्वामी जी ने जो "बोधि" रूप को लुङ् लकार का लिखा है वह अशुद्ध है वस्तुतः यह लोट् लकार का रूप है। यह है दशा स्वामी जी के ग्रन्थों को शुद्ध करने वालों की। एक लघु कौमुदी पढ़ा विद्यार्थी भी समझता है कि बुध धातु को लुङ् लकार में चिण् होकर बोधि रूप बनता है। स्वामी जी के भाष्य को अशुद्ध कहने का साहस इस लिये हुआ क्योंकि सायणाचार्य ने बोधि शब्द को लोट लकार का रूप कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा जोड़ तोड़ कर लाया है। मेरा अनुमान ऐसा है कि सायण भाष्य लिखने वाला कभी कभी भंग अधिक पी लेता था।

यही दशा वैदिक यन्त्रालय के पञ्च महायज्ञ विधि के नवीन संस्करण की है। अब की बार मैंने अजमेर जाकर प्रेस कापी निकाल कर वैदिक यन्त्रालय के अधिकारियों को विश्वास दिला दिया कि किस किस पण्डित का हाथ स्वामी जी के ग्रन्थों को बिगाड़ने में है। परोपकारिणी सभा के लोग अब इन पण्डितों से सावधान रहेंगे ऐसी आशा है।

श्री दीवानबहादुर हरविलास जी शारदा ने इस वेद भाष्य को छपने से रोक दिया। और जब यह दशा पञ्च महायज्ञ विधि की मैंने परोपकारिणी के वर्तमान प्रधान महाशय कृष्ण जी को बताई तो उन्होंने अपनी सम्मति यह कही इस पञ्च महायज्ञ विधि के संस्करण में आग लगाकर नया संस्करण निकालना चाहिये। दीवान बहादुर साहब स्वर्ग गये। न वह वेद भाष्य छपना बन्द हुआ और न पञ्च महायज्ञ विधि के उस संस्करण को आग लगी। आर्य साहित्य मण्डल अजमेर ने भी सत्यार्थ प्रकाश आदि को ठीक किया—

सत्यार्थ प्रकाश द्वितीय समुल्लास के आरम्भ में एक वचन है—

'मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद"

इस पर ऋषि ने लिखा है यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है अबतक इस उद्धरण पर पता नहीं दिया जाता था। शतपथ ब्राह्मण में यह वाक्यानुपूर्वी नहीं है। अब आर्य साहित्य मण्डल ने इस पर शतपथ ब्राह्मण का पता छाप दिया जिसका अर्थ यह हो गया कि उद्धरण शतपथ ब्राह्मण में है। पता नहीं इन संशोधन करनेवालों को क्या हो गया है। एक विचित्र-संस्कार विधि स्वामी जी के नाम से छपी है उस पर कहीं प्रकाशक राजपाल एण्ड सन्ज छपा है और कहीं गोविन्दराम हासानन्द देहली। यह सार्वदेशिक लिमिटेड का काम है। स्वर रहित संस्कार विधि को छाप दिया। ऐसी विचित्र संस्कार विधि आज तक कहीं न छपी थी। यह ध्यान रहे कि सार्वदेशिक लिमिटेड का अर्थ सार्वदेशिक सभा नहीं है वह एक कम्पनी है उसका भी नाम सार्वदेशिक है।

रामलाल कपूर ट्रस्ट अमृतसर ने तो जिस मन्त्र पर हाथ रखा "पूरा ही" शोध कर रख दिया है। पञ्च महायज्ञ विधि में "प्राची दिगग्नि" मन्त्र के आर्य भाषा—भाष्य में कपूर ट्रस्ट ने प्राची के अर्थ में छाप दिया है जिधर सूर्य उदय हो उस ओर ज्ञानस्वरूप परमेश्वर। पहले कहीं की छपी पञ्च-महायज्ञ विधि में ऐसा नहीं था। एक बार सत्यार्थ प्रकाश को भी शुद्ध करने का यत्न हुआ। सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम और नवम समुल्लास में प्राण अपान का अर्थ किया था कि जो बाहर से अन्दर को श्वास आवे वह अपान और जो अन्दर से बाहर को श्वास आवे वह प्राण है। आधुनिक पण्डितों की विद्या ने इसे ठीक न समझा और उलटा संशोधन कर दिया कि जो अन्दर से बाहर आवे वह अपान और जो बाहर से भीतर श्वास आवे वह प्राण। जब कुछ दिन के बाद पता चला कि स्वामी जी ही ठीक थे तब शताब्दी संस्करण में फिर वैसा का वैसा करके पण्डितों ने अपने मुख पर चपत लगाई। ऋषि के ग्रन्थों में संशोधन करने वालों की बुद्धि के नमूने मैंने कुछ ऊपर दिये हैं।

श्री मान्यवर उपाध्याय जी का एक लेख आर्यमित्र के २२ मई १९५५ के साप्ताहिक अंक में निकला है जिसका शीर्षक है। 'ऋषि के ग्रन्थों के संरक्षण का प्रश्न' मैं उपाध्याय जी से प्रार्थना करूंगा कि एक बार फिर अजमेर जाकर स्वामी जी के ग्रन्थों के सब हस्तलेखों की सब प्रतियों को देखने का कष्ट करें और यह देखें कि ऋषि अर लिखाने के बाद फिर स्वयं उसको देखते थे या नहीं। मैंने ऋषि का सब संग्रह देखा है और वहां बैठा बता सकता हूं कि कौन चीज कहां रखी है चाहे परोपकारिणी सभा वालों को उतना न पता हो। ऋषि एक बार नहीं अनेक बार देखते थे। लेखक तो छपते छपते प्रूफ तक में संशोधन करता है। ऋषि के ग्रन्थों में संशोधन करने की लहर ने ऋषि के ग्रन्थों का नाश कर दिया है अब तक ६ सहस्र संशोधन आर्यसमाजियों ने कर डाले हैं। इसी संशोधन करने की लहर का परिणाम है कि ऋषि का एक ही ग्रन्थ कई स्थानों का छपा कोई लेकर देख लिया में कुछ है किसी में कुछ है।

सार्वदेशिक आर्य महासम्मेलन हैदराबाद में एक प्रस्ताव साठ हजार की उपस्थिति में पास हुआ और उस को सार्वदेशिक की अन्तरंग सभा ने स्वीकार किया जिसका आशय यह है कि ऋषि के ग्रन्थों के छापने वालों को आदेश दिया जाता है कि ऋषि के ग्रन्थों में कुछ भी परिवर्तन परिवर्धन कोई भी न कर पाये किसी को कुछ स्थल सन्दिग्ध प्रतीत हो तो सार्वदेशिक सभा को लिखें और उसके निर्णय के अनुसार सब प्रकाशक छापें इस प्रकार ऋषि के ग्रन्थों में एकता रहेगी। सार्वदेशिक धर्मार्य सभा ने अभी एक प्रस्ताव पास करके सभा की अन्तरंग

(शेष पृष्ठ १२ पर)

आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग

नैनीताल—आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश की अन्तरंग सभा की बैठक २७ व २८-५-५५ को आर्य समाज नैनीताल में श्री पूर्णचन्द्र एडवोकेट की अध्यक्षता में हुई जिसमें अन्य विषयों के साथ निम्नांकित महत्वपूर्ण विषयों पर इस प्रकार विचार हुआ।

१. गुरुकुल वृन्दावन के संचालन में स्थायित्व लाने के विचार से एक नवीन विद्या सभा के निर्माण के बारे में निश्चय हुआ जिसमें आर्य समाजों, स्नातक मण्डल, आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा, संरक्षक मण्डल तथा अध्यापकों के प्रतिनिधि शिक्षा विशेषज्ञ तथा निश्चित धनराशि दान वाले व्यक्ति सम्मिलित होंगे और यह विद्या सभा साधारण कार्य में संचालन-तथा नियुक्ति आदि के नियम, उपनियम स्वयं बनायेगी।

२. अन्तरंग सदस्यों के निर्वाचन के लिए ३८ निर्वाचन क्षेत्र बना दिये गये जो प्रति वर्ष ४२ सदस्य निर्वाचित करेंगे। इस प्रकार लगभग प्रत्येक जिले के प्रतिनिधि अन्तरंग में आ सकेंगे, १२ पदाधिकारी होंगे और ३ सदस्य साधारण सभा द्वारा निर्वाचित होंगे और ३ अन्तरंग द्वारा सहयुक्त।

३. विवाह सम्बन्धी समस्या को सुलझाने तथा दहेज आदि अवैदिक कुरीतियों को मिटाने के लिये जिला आर्य उपप्रतिनिधि सभा लखनऊ ने जो पग उठाया है जिसके द्वारा गुण, कर्म स्वभाव के अनुसार योग्य कन्याओं का योग्य वरों से विवाह संस्कार करने का प्रयत्न किया गया है उसमें सहयोग देने के लिये सदस्यों का ध्यान आकर्षित किया गया है।

४) आर्यमित्र के संचालन के लिए सदस्यों से १० रुपया प्रतिमास भेज कर सहयोग देने के लिये आग्रह किया गया।

५. कन्या गुरुकुल हाथरस की रजत जयन्ती जो अक्तूबर सन् ५५ में होगी उसमें सहयोग देने के लिये सदस्यों से प्रार्थना की गई।

स्वराज्य का प्रथम मंत्र द्रष्टा—ऋषि दयानन्द

[ले०—श्री भवानीलाल 'भारतीय' एम ए सि वाचस्पति]

ऋषि दयानन्द ही प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने 'भारत भारतीयों के लिए' की घोषणा की। होमरूल आन्दोलन की प्रसिद्ध नेत्री श्रीमती ऐनी बेसेन्ट के इस कथन में हमें अद्भुत सत्य के दर्शन होते हैं।

ऋषि दयानन्द ने १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब स्वराज्य की कल्पना की, उस समय राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस का जन्म भी नहीं हुआ था। १९०६ में सर्वप्रथम दादाभाई नौरोजी ने 'स्वराज्य' शब्द का व्यवहार किया, १९१६ की लखनऊ कांग्रेस में लोकमान्य तिलक ने स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, इस मंत्र की घोषणा की और १९२८ में लाहौर कांग्रेस में पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्ति हमारा ध्येय बना। परन्तु ऋषि ने तो बहुत पहले ही स्वराज्य की आवश्यकता को अपनी इन अमर पंक्तियों द्वारा बतलाया था—"कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है'। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता पिता के समान कृपा, न्याय एवं दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं होता।'

इस महापुरुष ने सर्वप्रथम वेद मंत्रों में स्वराज्य और राष्ट्रीय भावनाओं के दर्शन किये। यजुर्वेद अध्याय ३८ के १४ वें मंत्र की व्याख्या में ऋषि ने लिखा—'अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों।' ऋषि के ये विचार उस समय थे जब कि अंग्रेजी शासन के गुण गाना लोगों ने अपना कर्तव्य समझ रखा था। ऋषि की इन्हीं भावनाओं को एक व्याख्यान में सुन कर एक अंग्रेज कलक्टर को कहना पड़ा था—'यदि आपके भाषण पर लोग चलने लग जायें तो हमें अपना बोरिया बिस्तर बांधना पड़ेगा।' १९४२ के भारत छोड़ो नारे का भी यही अर्थ था। ऋषि ने यह आवाज १९४२ से ६० वर्ष पूर्व लगाई थी।

स्वराज्य भावना पश्चिम की देन नहीं

यह नहीं भूल जाना चाहिये कि ऋषि के ये स्वराज्य सम्बन्धी विचार उनके अपने थे, उन्होंने पश्चिम से ये विचार नहीं लिये। अधिकांश लोगों की यह धारणा है कि राष्ट्रीय जागृति का हमारे देश में सूत्रपात अंग्रेजी शिक्षा के कारण हुआ। परन्तु ऋषि दयानन्द की भावनाओं के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता। उनके ये विचार शतप्रतिशत मौलिक हैं जो उन्होंने प्राचीन धर्म ग्रन्थों के अध्ययन के फलस्वरूप प्राप्त किये थे। भारतीयता के अनन्यतम पुजारी स्वयं महात्मा गांधी ने इंगलैंड के प्रसिद्ध विचारक रस्किन और रूस के लेखक टालस्टाय का प्रभाव अपने ऊपर स्वीकार किया है, फिर अन्य नेताओं का तो कहना ही क्या जिनकी शिक्षा दीक्षा पाश्चात्य पद्धति पर हुई है। राजा राममोहनराय, केशवचन्द्र सेन, स्वामी विवेकानन्द, रामतीर्थ, रवीन्द्र नाथ ठाकुर, अरविंद आदि धार्मिक

और सामाजिक पुनर्जागरण के नेता भी पश्चिम के प्रभाव से अछूते नहीं बचे। केवल ऋषि दयानन्द ही एक महाप्राण व्यक्ति था जिसने अपने विचारों और क्रान्तिकारी भावनाओं के लिये प्राचीन शास्त्रों से प्रेरणा ली। उनकी प्रेरणा का स्रोत वे वैदिक ऋचायें हैं जिनमें स्वराज्यार्जन विषयक कई सूक्त भरे पड़े हैं।

मातृभूमि से प्रेम

स्वर्णभूमि भारत के प्राचीन गौरव के लिये ऋषि की लेखनी से ये अमर शब्द निकले—"यह आर्यावर्त देश है, जिसके सदृश भूगोल में दूसरा देश नहीं है। इसीलिये इस भूमि का नाम स्वर्णभूमि है क्योंकि यही स्वर्ण आदि रत्नों को उत्पन्न करती है ... । जितने भूगोल में देश हैं वे सब इसी देश की प्रशंसा करते हैं और आशा रखते हैं कि पारस मणि पत्थर सुना जाता है वह बात तो झूठी है, परन्तु आर्यावर्त ही सच्चा पारस मणि है जिसको लोहे रूपी दरिद्र विदेशी छूते ही स्वर्ण अर्थात् धनाढ्य बन जाते हैं।

इसी भारतभूमि की वर्तमान अधोगति को देख कर ऋषि दयानन्द का हृदय रो उठा और उनके उत्पीड़ित हृदय से शोकोद्गार निकले—"अब अभाग्योदय से आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों में राज्य करने की तो कथा ही क्या किंतु आर्यावर्त में भी आर्यों का अखण्ड स्वतंत्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य नहीं है।

पराधीनता के कारणों की चर्चा करते हुये ऋषि ने लिखा है, 'जब आपस में भाई २ लड़ते हैं तो तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है। आपस की फूट से कौरव, पाण्डवों का सत्यानाश हो गया, परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा या आर्यों को सब सुखों से छुड़ा कर दुःख सागर में डुबा मारेगा। उसी दुष्ट, गोत्र हत्यारे स्वदेश विनाशक, नीच के दुष्ट मार्ग में आर्य लोग अब तक चल रहे हैं। परमात्मा करे कि यह राज रोग हम आर्यों में से नष्ट हो जाय' यह है दयानन्द के दुःखी हृदय का उद्गार।

सत्य का आग्रह

महात्मा गांधी ने देश के स्वाधीनता संग्राम के लिये सत्याग्रह, सत्यनिष्ठा, अहिंसा आदि अस्त्रों का उपयोग किया। ऋषि दयानन्द ने भी सत्य प्रचार में अपने प्राणों की बाजी लगा दी। उन्हें शाहपुरा से जब जोधपुर जाने के लिये रोका गया तो उनकी निम्न उक्ति सत्याग्रह की भावना को स्पष्ट रूप से प्रकट करती है—यदि लोग मेरी अंगुलियों की बत्तियाँ बना कर जला दें, तो भी कोई चिंता नहीं। वहाँ जाकर मैं अवश्य सत्योपदेश करूंगा। यह था सत्याग्रह की भावना जिसके कारण वे सभी मतमतान्तरों का निर्भयतापूर्वक खण्डन कर सके। सत्यार्थ के लिये अहिंसा धर्म की तो चर्चा ही अनावश्यक है। ऋषि ने अपने विष देने वालों और हत्यारों तक को क्षमा किया। इसलिये सत्याग्रह, सत्यनिष्ठा और अहिंसा का क्रियाशील उपासक ऋषि दयानन्द ही स्वराज्य और स्वाधीनता की भावनाओं का मन्त्र द्रष्टा कहा जा सकता है।

स्वदेशी प्रेमी

स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार की ओर भी स्वामी जी का पूरा ध्यान था। सत्यार्थ प्रकाश की वे पंक्तियाँ जहाँ स्वामीजी ने स्वदेशी और विदेशी वेशभूषा की चर्चा चलाई है। इस सम्बन्ध में विशेष द्रष्टव्य है। स्वामी जी स्वयं शुद्ध स्वदेशी वस्त्र पहनते थे और अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों को भी यही प्रेरणा देते रहते थे। जोधपुर के महाराज प्रताप सिंह आदि राज पुरुषों ने स्वामी जी की शिक्षा से ही स्वदेशी खादी के वस्त्रों का प्रयोग और सम्मान आरम्भ कर दिया था। ब्रह्म समाज और प्रार्थनासमाज से स्वामीजी का मतभेद इसी बात पर था कि वे लोग विदेशियों की नकल करने में उनकी वेशभूषा, भाषा तथा रहन सहन को अपनाने में ही अपना कल्याण समझ बैठे थे। विचारों से भी विदेशी होने के कारण स्वामीजी को ब्रह्म समाज का यह व्यवहार पसन्द नहीं आया। इस विषय में वे किसी से समझौता नहीं करना चाहते थे। इसीलिये ब्रह्म समाजियों की पश्चिम पूजा का उन्होंने तीव्र खण्डन किया है।

(शेष पृष्ठ १९ पर)

हम क्या करें......?

(ले०—श्री प्रेमकुमार "प्रेमी" शास्त्री [भूषण])

मैं आपके समक्ष तीन बातें प्रस्तुत करता हूं आप इन पर विचार करिये और उनकी आवश्यकता पर ध्यान दीजिये।

आर्य

(१) मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि मनुष्य अपनी प्रशंसा सुनना पसन्द करता है और प्रशंसा सुनकर फूल जाता है। चाहे फिर प्रशंसा झूठी ही क्यों न हो। तो आपको प्रसन्न करने के लिये जितने भी विशेषण प्रयोग में लाए जावें उन सबके स्थान पर एक ही शब्द "आर्य" यथेष्ठ सिद्ध होगा। सभी श्रेष्ठ बनना और कहलाना चाहते हैं। जो न बनना चाहते हों उनसे कहा ही क्या जा सकता है? और यदि आपको मैं 'आर्य' कहूं तो (आपका-मेरा) हमारा कर्तव्य हो जाता है कि पहले यह भी विचार लें कि क्या मैं सत्य ही कह रहा हूं या चापलूसी कर रहा हूं। यदि आप सही मायने में "आर्य" (श्रेष्ठ) ही हुये तो मेरे उस मायने के साथ साथ आपकी भी शोभा बनी रहेगी अन्यथा मुझे झूठा बनना पड़ेगा और आप भी इन भावना एवं अपनी अयोग्यता का अनुभव करके लज्जित हो अन्यों के लिये मजाक बन जायगे।

वैदिक

(२) दूसरे, जरा यह भी बताइये कि वेद शब्द का शाब्दिक अर्थ क्या है? मुझे इसका एक अर्थ "ज्ञान" मालूम है गलत तो नहीं? यदि नहीं तो वैदिक माने ज्ञान वाला हुआ! और वैदिक धर्म माने ज्ञानवाला या 'ज्ञान युक्त धर्म' हुआ!! अर्थात् ज्ञानयुक्त धर्म माने वैदिक धर्म माने ज्ञान युक्त धर्म! अब जो भी सज्जन अपने आपको वैदिक धर्म से बाहर कहते या समझते हैं वे अवैदिक धर्मी हुए ही सही और अवैदिक धर्मी का अर्थ होता है अज्ञानयुक्त धर्मी!

(३) तीसरा और अन्तिम बात भी ध्यान पूर्वक सुन लीजिये। आप यह खूब जानते हैं कि जैसे व्यक्ति के साथ रहते किसी को देखेंगे आप उसे वैसा ही समझेंगे गुण्डों में रहने वाले को गुण्डा शराबियों के साथ रहने वाले को शराबी, जुआरी के साथ जुआरी चोरों के साथ रहने वाले को वैसा ही समझेंगे। रहीम कवि इस सम्बन्ध में कितनी भाव पूर्ण पंक्तियाँ लिख गये हैं:—

रहिमन नीच प्रसंग ते,
लगे कलंक न काहि।
दूध कलारी कर गहे,
मद समझें सब ताहि॥

अंग्रेजी में एक कहावत है:—

'A man is known by the company he keeps'।

इसी भाँति किसी श्रेष्ठ समाज में रहने वाले को श्रेष्ठ ही समझेंगे और जहाँ कुछ श्रेष्ठ सभ्य और शिक्षित व्यक्ति इकट्ठे हो जाते हैं तो हम उसे देख यही कहेंगे कि श्रेष्ठ समाज है यह! मेरे ख्याल से ऐसे "भगवाहेड" वाली फिर फिरे व्यक्ति शायद ही हों जो श्रेष्ठ बनने और कहाये जाने पर एतराज करें।

तो यदि मैं ऐसे श्रेष्ठ व्यक्तियों को एवं उनको श्रेष्ठ समाज को श्रेष्ठ के पर्याय वाची शब्द आर्य और आर्य समाज कह कर पुकारूं तो स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के अनुयायीगण को छोड़कर अन्य सभी मतावलम्बी (यहाँ तक कि अन्य हिन्दू वैदिक धर्मी भी) भाग खड़े होंगे मानों उन्हें पाप लग जायेगा! और हैरत तो तब होती है जब इन भागने वालों में सबसे

आगे समझदार और विद्वान कहे जाने वाले ही दिखाई देते हैं। न जानें, वे वस्तुस्थिति क्यों नहीं समझते?

आर्य बनने को तैयार नहीं और अनार्य कह दो तो लठ लेकर खड़े हो जायँगे (एक सच्चे कार्यकर्ता के लिये कैसी विषम समस्या है) और यह हम कह ही चुके कि आर्य न बनो, स्वयमेव अनार्य हो जाओगे, न बनो वैदिक धर्मी, अज्ञानी होजाओगे और जब आर्य श्रेष्ठ और सद्ज्ञान युक्त धर्म के पालने वाले न हुए तो आपको तथा आपके समाज को कोई श्रेष्ठ व श्रेष्ठ समाज क्यों कहने लगा? और यदि आपको अनार्य बने रहने में ही आनन्द हो तो क्या कहा जावे?

'है नादान, पैर वह है बचने के काबिल'
जो अपनी खता को खता मानता है।
मगर ऐसे बीमार का क्या हो ठिकाना,
कि जो मर्ज को ही दवा जानता है।"

गँवार कीचड़ में ही राजी रहता है फिर कोई फटे में पाँव क्यों उलझाये? पर नहीं, जैसा हम पहले लिख चुके हैं प्रत्येक व्यक्ति श्रेष्ठ बनना पसन्द करता है और अपनी सामर्थ्य, बुद्धि और जानकारी के अनुसार श्रेष्ठ बनने का प्रयत्न भी करता है अब शेष कार्य यही है कि हम सब मिल कर श्रेष्ठ बनने की परिभाषा, उसके नियम और ढंगों पर विचार कर एक ही प्रणाली निश्चित करलें और फिर सब मिलकर उसके अनुसार चल कर एकमत, एक विचार, और एक मंजिल के राही बन कन्धे से कन्धा मिलाकर चलें तब सच्चा सुख, संगठन और कल्याण प्राप्त होगा।

जो जो अभी आर्य नहीं हैं उनसे बातें बाद को होती रहेंगी पहले अपने घर को साफ करना श्रेयस्कर होगा। हम आर्यसमाजी कहाँ तक आर्य समाजी हैं यही विचारणीय है। हम अपने हृदय को शुद्ध मस्तिष्क द्वारा विचार कर परखें कि क्या वास्तव में सच्चे आर्य हैं? क्यों कि यदि हम स्वयं सच्चे आर्य नहीं तो दूसरों को किस मुँह से कहेंगे और हमारी सुनेगा कौन?

वैदिक सिद्धान्त अपनी जगह पर अटल और अकाट्य है! हाँ आर्यसमाजियों में यदि कुछ स्वार्थी ... अवसर वादी अपना उल्लू सीधा करने को घुस गये हों तो अन्य सच्चे आर्य तपस्वियों को भी क्यों समेटा जावे।

यदि सरलता और गम्भीरता से हम विषय की आवश्यकता को समझ कर सारा नक्शा समझने का यत्न करें तो हम यह जान सकते हैं कि—

(१) क्या कारण है कि पूज्य ऋषिवर अकेले अपने ही दम पर जितना कार्य कर गये, उतना हम सब मिल कर भी नहीं कर पारहे हैं?

(२) दूसरों को आर्य बनाने की डींग मारने वाले अपने को ही आर्य क्यों नहीं रख पा रहे हैं?

(३) अन्य मत वाले हममें मिलना चाह कर भी क्यों नहीं मिलते?

(४) बड़े बड़े कर्मठ आर्य नेताओं की तपस्या और मेहनत का कुछ भी प्रभाव क्या नहीं पड़ रहा है?

(५) धर्मप्रचार के लिये केवल ५०००) रु. भी क्यों इकट्ठे न हो सके?

(६) [illegible] की तरह अन्यों की अपेक्षा ... प्रचार करने का दम भरता था वह स्वयं क्यों रोग ग्रस्त ... की घड़ियाँ गिन रहा है?

(७) आर्यसमाज एक साम्प्रदायिक, गुट बाज, हठी और दुराग्रही लोगों का समाज क्यों समझा जाने लगा?

उपरोक्त प्रश्नों को बड़े बड़े सुन्दर अक्षरों में लिखकर अपने अध्ययन-कक्ष में लगा लीजिये और नित्य इनके उत्तरों पर विचार कर निराकरण करने को सचेष्ट होइये।

अब प्रश्न हुआ कि हम क्या करें? जो कुछ सरल से सुझाव लिखता हूं। यदि अपनी, अपने समाज की और अपने देश धर्म की थोड़ी भी भी भलाई चाहते हों तो आज से ही इनका पालन शुरू कर दीजिये:—

(१) पहले तो यही प्रतिज्ञा कर लीजिये कि जो कहेंगे वो ही करेंगे। मजाक में भी असत्य भाषण करना छोड़ दीजिये।

(२) अपने गुण कर्म स्वभाव एक आर्य पुरुष की भाँति कर लीजिये

(३) दूसरों को मुख से उपदेश न दे अपनी सच्चरित्रता से प्रभावित कीजिये। स्वामी जी में यही बात था। लोग उनके उपदेशों के साथ-साथ उनके आदर्श चरित्र और प्रभावशाली व्यक्तित्व से अधिक प्रभावित होते थे। आज इसका घोर अभाव है।

(४) कभी अन्य मतावलम्बी के प्रति अपमानात्मक, आलोचनात्मक हास्य व्यंग या घृणा युक्त व्यवहार न कीजिये। वरन् अपनी तार्किक बुद्धि मधुर हास्यमय स्वभाव और सच्चे आदर्श चरित्र से प्रभावित कर उनके दिलों पर अधिकार कर लीजिये (जो कि सच्चे आर्य की खास विशेषता है) और फिर उन्हें सरलता से सन्मार्ग व सद्ज्ञान का अनुभव करा दें, वे स्वयं समझदार और मनुष्य (!) हैं।

(५) "स्वाध्यायान्मा प्रमदः!" के अनुसार अध्ययन करने में कभी आलस्य न करें। अपना फालतू एक-एक पैसा और एक-एक क्षण पुस्तकें खरीदने और पढ़ने में व्यय कर ज्ञान बढ़ाइये। कम से कम एक घण्टा पूर्ण श्रद्धा और ध्यान से वैदिक साहित्य पढ़िये।

(६) संयमी, स्वाध्यायशील, मधुर भाषी, सच्चरित्र और परोपकारी बनो।

(७) आर्य-साहित्य, छोटे-छोटे ट्रैक्ट्स और आलोचनात्मक पुस्तकें मंगाकर स्वयं पढ़े और साथी बालकों को पढ़ने को दें।

(शेष अगले पृष्ठ के प्रथम कालम में)

आर्यसमाज में 'उपद्रवकारी'?

[श्री पण्डित जयदेव शर्मा चतुर्वेदभाष्यकार अजमेर]

'आर्यमित्र' (२९ मई १९५५) के अंक में "क्या वेदों में इतिहास है?" शीर्षक से एक लेख प्रकाशित हुआ जिसमें बतलाया था कि—वेदानुशीलक विद्या वयोवृद्ध श्री पं. सातवलेकर जी महोदय ने वैदिक धर्म में जो स्थापना की है कि—"केवल दुराग्रही लोग ही कहते हैं कि 'ऐतिहासिकों का तिरस्कार सब करते हैं'" (वैदिक धर्म, मास अप्रैल, १९५५)। इस वाक्य से उक्त विद्या वयोवृद्ध महानुभाव ने—व्याकरणकार पाणिनि महा भाष्यकार पतंजलि, पाणिनि सूत्र पर काशिका वृत्ति के कर्ता जयादित्य, और सिद्धान्त कौमुदी के कर्ता भट्टोजी दीक्षित जिन्होंने गत लेख में लेख लीग प्रती से 'लङ्' के स्थान में 'लिङ्' तथा पाठ सुधार लें। लङ्, लुङ्, और लिट् लकारों का एक भी प्रयोग वेदों में भूतकालिक नहीं माना है और वे सभी भाष्यकार जिनमें स्कन्द स्वामी, सायण, ऋषि दयानन्द निरुक्तकार यास्क, दुर्ग, आदि टीकाकार जिन्होंने इनकारों के अर्थ भी यथायोग्य स्थलों पर ऐतिहासिक भूतकालिक के नहीं माने हैं वे सब 'दुराग्रही' कोटि में आते हैं। और तो और स्वयं पण्डित श्री सातवलेकर जी भी इस कोटि में प्रधान हैं जिनके भाष्यों के पांच छः नमूने इमने अपनी पुस्तक—'क्या वेद में इतिहास है?' के (पृष्ठ ११ से २४) में दिये गये हैं। आर्य पुरुषों और वेद प्रेमी स्वाध्यायशील सज्जनों को इस सम्बन्ध में अपना भ्रम अवश्य निराकरण कर लेना चाहिये। इसमें योरोपियन विद्वानों ने जो वेद में से इतिहास निकालने की सायण आदि भाष्यकारों की टीकायें देखकर, कोशिश की है, उसकी निःसारता भी प्रकट हो जाती है।

अपनी समालोचना में श्री पं० सातवलेकर जी ने वेद में इतिहास को न माननेवालों को 'दुराग्रही' कहा है। और अब स्वयं वेद की रचना को 'इतिहास की कथा के तुल्य रचना' बतलाने लगे हैं। और (अप्रैल १९५५) से पहले के २५ वर्षों के प्रयास से लिखे १८७१९ भाष्य ग्रन्थों में शुनःशेप की कथा, वसिष्ठ को सुदास राजा की ओर से दो बछड़ों वाले रथों की प्राप्ति आदि की कथाएं प्रचारित की हैं। इस विषम वचन वाद को देखकर विस्मय होता है।

जो व्यक्ति कहता है कि वेद में वाक्य—ऐतिहासिक कथा के समान है उसके इस कहने से अर्थापत्ति ध्वनित है कि वाक्य रचना ऐतिहासिक कथा के समान है, परन्तु वेद में इतिहास कथा नहीं। इस प्रकार उक्त वाक्य कहनेवाला व्यक्ति भी दुराग्रही कोटि में अपने वचनों से अर्थापत्ति प्रमाण से सिद्ध है। अस्तु। इस विषय में २ बातें हम श्री प० जी की दूसरी व्यवस्था, जो उन्होंने दी है, के सम्बन्ध में आर्य जनता का ध्यान आकर्षित करते हैं। वह व्यवस्था आर्य समाज के कुछ सिद्धान्तवादी व्यक्तियों के बारे में है, जिनको खुले शब्दों में श्री मान्य पण्डित जी ने 'उपद्रवकारी' की उपाधि से भूषित किया है।

आप वैदिक धर्म (अप्रैल १९५५) पृ० १०१ में लिखते हैं,—"ऐसे जोशीले भद्र पुरुषों ने बहुत वर्षों से आर्य समाज में बड़ा ही उपद्रव मचा रखा है। ऐसे भद्र पुरुषों के प्रयत्नों से पं. विश्वबन्धु शास्त्री आर्य समाज से बहिष्कृत हुए, ऐसे उपद्रवकारी लोगों ने प्रशंसनीय कार्यकर्ता को " भी व्यर्थ कष्ट दिया।.. ऐसे ही भद्र पुरुषों के प्रयत्न से पं. भगवद्दत्त जी को डी. ए. वी. कालेज छोड़ना पड़ा।"

"तात्पर्य यह है कि श्री रामनाथ कश्यप जैसे भद्र पुरुष अपने आत्यधिक जोश के कारण क्या २ करेंगे उसकी गणना आज कोई नहीं कर सकेगा।'

"दुर्दैव की बात है कि—ऐसे उपद्रवकारी कार्य करने वालों की सहायता करने के लिये पं. जयदेव शर्मा जी इस समय आगे आये हुए हैं।"

"यहाँ मुख्य प्रश्न यह है कि—'वेद में इतिहास है या नहीं है', यह एक विवादास्पद प्रश्न आर्य समाज में बहुत वर्षों से चिला आ रहा है। वास्तव में इतना संघर्ष इस पर होने का कोई प्रयोजन नहीं है।"

इन उपरोक्त वाक्यों में श्री पं सातवलेकर जी ने वेद में लौकिक इतिहास न मानने वाले को "उपद्रवकारी" कहा गया है। दूसरों के कन्धे पर बन्दूक रखकर निशाना मारना शिखण्डी की आड़ में भीरु अर्जुन का काम है जिसकी भूमिका श्री प. जी ने ग्रहण की है। श्री पं. जी ने 'दीवान रामनाथ कश्यप" को जिनकी शंका का समाधान प. जी स्वयं नहीं कर सके, और प. जयदेव जी शर्मा—

सिद्धान्त-विमर्श

जिन्होंने उनकी प्रेरणा से केवल ऋषि दयानन्द निर्दिष्ट वैदिक सिद्धान्त की रक्षार्थ "क्या वेद में इतिहास है"? नामक पुस्तक बनाकर प्रस्तुत की, उन दोनों की आड़ लेकर ऋषि दयानन्द और उनके सिद्धान्त मानने वाले और वेद में इतिहास न मानने वाले सभी आर्य विद्वानों को 'उपद्रवकारी' होने की व्यवस्था 'वैदिक धर्म" पत्र द्वारा दी है।

यदि श्री प. जी के लेखानुसार—वेद में इतिहास न माननेवाले उपद्रवकारियों के आन्दोलन से तंग आकर श्री पं. भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर, जो आर्य जगत् में एक प्रतिष्ठित आप्त विद्वान् हैं—उन्होंने वेद में इतिहास मानना प्रारम्भ कर दिया हो, या डी. ए. वी. कालेज इसलिये छोड़ा हो कि वे वेद में इतिहास मानने लग गये थे। तब तो श्री प. जी का लेख कुछ भी अर्थ रख सकता है अन्यथा श्री प. जी ने अपने मनस्ताप को कम करने के लिये मुझको वा कश्यप जी को, वा वेद में इतिहास न माननेवाले सिद्धान्त वादी आर्य पुरुषों को उपद्रवकारी लिखकर हृदय शीतल कर लिया हो तो इस प्रकार के आवेश में कहे गये वृद्ध विद्या-पुरुष के शब्दों को सह लेना हमारा कर्तव्य है। परन्तु क्योंकि श्री पं. भगवद्दत्त जी वैदिक रिसर्च स्कालर स्वयं भी वेदों में इतिहास नहीं मानते और वे भी "वसिष्ठ को सुदास राजा ने दो बछड़े दिये" इस प्रकार की श्री प सातवलेकर जी की नयी वैदिक खोज को मानने को तैयार नहीं होंगे तो भी वे पं जी के कथनानुसार "उपद्रवकारी" दल में गिने जाने योग्य हो जाते हैं।

इसी प्रकार श्री प विद्यानन्द विदेह भी वसिष्ठ का राजा सुदास द्वारा दान में दो बछड़े प्राप्त होने की कथा को, जो श्री पं. जी ने अपने वसिष्ठ ऋषि दर्शन में वेद मन्त्रों का अर्थ करते हुए बतलाई है, मानने के लिये तैयार नहीं होंगे।

मध्यकाल में राजकुमारों को शिक्षा देने के लिए राजा लोग एक 'ह्विप बॉय' रखा करते थे। जब राजकुमार कोई अपराध करता था तो उसके दण्डार्थ उस लड़के को चाबुकों से पीटा जाता था। इसी प्रकार श्री प. जी ने श्री पण्डित भगवद्दत्त जी और श्री पण्डित विद्यानन्द जी विदेह को वेद में इतिहास न मानने के अपराध में म० दीवान रामनाथ कश्यप और उनके सहयोगी पण्डित जयदेव शर्मा "क्या वेद में इतिहास" के लेखक तथा उनके समान विचार रखने वाले बात उठाने वालों को 'दुराग्रही उपद्रवकारी' आदि शब्दों द्वारा दण्डित किया प्रतीत होता है। यदि ईसाइयों की मान्यतानुसार दुनिया भर का पाप का गट्ठा लेकर ईसा सूली चढ़ गया था तो हमें इन शब्दों की ताड़ना से भी भय क्यों करना चाहिये? परन्तु इस आर्य जगत् के विद्वानों और वेद के ऋषि प्रदर्शित सिद्धान्तों पर सत्य श्रद्धा रखने वालों को भी यह 'अन्याय' क्या सहन करना चाहिये? वे अपना विवेक क्यों खो दें, यह एक विचारणीय समस्या है।

अब शेष रहा—श्री पण्डित सातवलेकर जी की नई पैंतरेबाजी कि "वेद में इतिहास कथा के समान रचना है" इसकी आलोचना व निदर्शन भविष्य के लेखों में करेंगे।

'यह नया पैंतरा है' यह बात हम इसलिए कहते हैं कि श्री पण्डित जी के गत १५-२० वर्षों के वैदिक साहित्य में इस स्थापना का सर्वथा अभाव है।

(पिछले पृष्ठ का शेष)

(८) सभी आर्य पत्र-पत्रिकाओं के ग्राहक बनकर बनाकर सहायता दें व प्रचार करें।

(९) दूसरों को अपने में मिलाकर एक दल होने की शक्ति पैदा करें।

(१०) संक्षेप में प्राचीनकाल के महात्माओं के अनुसार ही चलने का धीरे-धीरे प्रयत्न कीजिये।

अन्धविश्वास छोड़िये

(लेखक—श्री नीलकण्ठ)

हर देश में अन्धविश्वास पाए जाते हैं और यह ही होते हैं किसी भी राष्ट्र को जर्जर बनाने वाले! कुसंस्कारों से प्रभावित होकर मनुष्य जब कुछ कल्पनाएं कर लेता है तब यह उसके मन पर प्रभाव दिखाते हैं और बन जाते हैं प्रगति पथ पर रोड़ा। इन्हीं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत लेख में किया गया है। —सम्पादक

मानव जीवन का यह बड़ा अभिशाप है कि सामूहिक मानवीय बुद्धि जिस गति से विकसित होती जाती है, मानवीय अवचेतना में उस गति से परिष्करण नहीं आ पा रहा है। सभ्यता के विकास का आरम्भ हुए हजारों वर्ष बीत गये, पर अभी तक मानव अपने अन्ध संस्कारों से ही मुक्त नहीं हो पा रहा है। बर्बर युग से जो अन्ध विश्वास उसे विरासत में मिले हैं उन्हें यह आश्चर्यजनक वैज्ञानिक प्रगति के इस युग में भी नहीं त्याग पाता। और तो और बड़े बड़े वैज्ञानिक भी जब साधारण मनुष्य की स्थिति में व्यवहार करते हैं, तब उन्हें भी सारे वैज्ञानिक ज्ञान के बावजूद किसी विशेष अन्ध संस्कार को मान कर चलने की एक विचित्र प्रेरणा कभी कभी होने लगती है।

छींक का अपशकुन

कुछ अन्ध संस्कार ऐसे हैं जिन्हें बहुत प्राचीन काल से लेकर आजतक सभी देशों के दुर्बल हृदय समान रूप से मानते चले आये हैं। उदाहरण के लिए किसी शुभ कार्य या शुभ यात्रा के आरम्भ में यदि कोई व्यक्ति छींक दे तो सभी देशों में यह बहुत बड़ा अपशकुन माना जाता रहा है। पाश्चात्य देशों में यह अन्ध संस्कार धीरे धीरे मिटता चला जा रहा है। पर हमारे देश में यह अभी तक पूरे जोरों पर है। हमारे यहाँ बड़े बड़े पढ़े लिखे आदमी भी किसी शुभकार्य के आरंभ में छींक द्वारा टोके जाने पर हतोत्साह हो उठते हैं।

बिल्ली द्वारा अपशकुन

बिल्ली द्वारा यात्रा में रास्ता काटना अशुभ होता है, यह अन्ध विश्वास हमारे ही यहाँ की तरह पाश्चात्य देशों में भी आज भी पाया जाता है। किसी काने का दर्शन भी ऐसे अवसरों पर अशुभ माना जाता है।

तेरह का दुर्भाग्य

देश काल के अनुसार विभिन्न परिस्थितियें और घटनायें भिन्न भिन्न अन्ध संस्कारों को जन्म देती रहती हैं। सूली पर चढ़ाये जाने के ठीक पूर्व दिन जिस अन्तिम भोजन में ईसा मसीह शरीक हुए थे उसमें तेरह आदमी उपस्थित थे। तबसे ईसाई समाज में तेरह की संख्या अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण मानी जाती है, और आज तक बड़े बड़े शिक्षित ईसाई इस संस्कार से मुक्त नहीं हो पाये हैं।

पाश्चात्य देशों में विशेष करके अमेरिका में यह अन्ध विश्वास आज प्रचलित है जबकि वार्तालाप के बीच में सहसा बिना कारण के कुछ समय के लिए सन्नाटा छा जाता है तब कोई अनिष्टकारी प्रेतात्मा वार्तालाप करने वालों के बीच से होकर गुजरती है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि ऐसी स्थिति ठीक उस समय आती है जब किसी घण्टे के बाद ठीक बीस मिनट गुजरते हैं। इस अन्ध विश्वास की उत्पत्ति लिंकन की मृत्यु की घटना के समय से हुई है।

कहा जाता है कि लिंकन की मृत्यु शाम को ८ बज कर ३० मिनट पर हुई थी और तबसे किसी घण्टे के बीसवें मिनट बाद किसी अति प्राकृत कारण से वार्तालाप करने वालों के बीच अपने आप सन्नाटा छा जाता है जो उपस्थित व्यक्तियों में से किसी एक के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हो सकता है।

बोहनी का महत्व

हमारे यहाँ के दूकानदार बोहनी को कितना महत्व देते हैं इस बात से सभी परिचित हैं। बोहनी के समय दूकानदार कुछ रियायती दामों पर भी सौदा बेचने को तैयार रहता है ऐसा अक्सर देखा गया है। इसका कारण यह अन्ध विश्वास है कि यदि बोहनी अच्छी नहीं हुई और कोई दुर्लभ बाज ग्राहक बोहनी के समय बिना सौदा खरीदे ही लौट गया तो दिन भर की दूकानदारी चौपट हो जायगी।

दूकानदारों के अन्ध विश्वास

पाश्चात्य देशों में भी व्यवसायियों में इस तरह के बहुत से अन्ध विश्वास पाये जाते हैं। वहाँ के छोटे छोटे दुकानदार यह विश्वास करते हैं कि सोमवार को सुबह यदि ६ बजे के पहले ही कोई ग्राहक आकर कुछ भी सौदा खरीद ले जाये तो सारे सप्ताह में अच्छी बिक्री रहेगी। बहुत से अमरीकी दुकानदार सप्ताह की पहली बिक्री पर जो रेजगारी ग्राहक को लौटाते हैं उसे पहले अपने कपड़ों से पोंछ लेते हैं—इस आशंका से कि कहीं उन सिक्कों के साथ उनका सौभाग्य भी ग्राहक के पास न चला जाय? जैसे सौभाग्य उन सिक्कों के ऊपर की गन्दगी से चिपका हो!

हमारे यहाँ बोहनी के अवसर पर जो सिक्का या नोट ग्राहक से प्राप्त होता है उसे दुकानदार एक बार अपने माथे से लगा लेता है, जैसे वह उसके द्वारा लक्ष्मी तक अपने प्रणाम के साथ यह प्रार्थना भी पहुंचाना चाहता हो कि दिन भर उसकी बिक्री अच्छी रहे। पाश्चात्य देशों के दुकानदार पहली बिक्री से प्राप्त सिक्के या नोट पर थूकते हैं—इस ख्याल से कि यदि उस विशेष सिक्के या नोट से कोई दुर्भाग्य सम्बद्ध हो तो वह इस प्रकार की 'झाड़-फूँक' से दूर हो जावे।

सट्टेबाजों व जुआरियों में

क्या प्राच्य और क्या पाश्चात्य सभी देशों के सट्टेबाज और जुआरी नाना प्रकार के अन्ध विश्वासों से घिरे रहते हैं। किसी विशेष टोपी, पगड़ी या 'टाई' पहनने के दिन यदि अच्छा लाभ हुआ तो उसी को कई बाजी या और किसी व्यावसायिक लेन-देन के अवसर पर बार बार पहनते हुए लोगों को देखा गया है। उसे न धोया जाता है न बदला जाता है। धोने से कहीं उसमें 'संचित' सौभाग्य भी न धुल जाय?

९९ साल का ही पट्टा क्यों

क्या आप जानते हैं कि प्रायः सभी प्राच्य देशों में जमीन पट्टे 'लीज' की अवधि १०० वर्ष के स्थान पर ९९ वर्ष की क्यों रखी जाती है? इसका कारण यह है कि बहुत प्राचीन काल में लोग पूर्ण संख्या को अशुभ और अपूर्ण को शुभ मानते रहे हैं। इसलिए प्राचीन काल से लेकर अब तक की सरकारें इस विचित्र अन्ध विश्वास को अपनाने में ही कायम रखे हुए हैं।

९९ और १०१

हमारे यहाँ ९९ के बजाय १०१ को शुभ संख्या माना जाता है। मनोवैज्ञानिकों को यह तथ्य अविदित नहीं है कि मानवीय अवचेतना 'पूर्ण' को 'समाप्ति' के रूप में ग्रहण करती है। यह मनोविज्ञान सभी अन्ध विश्वासों से सम्बन्धित मनोविज्ञान की तरह, बर्बर युग से आज तक चला आता है। इसलिए हमारे यहाँ १०० को अशुभ और १०१ को शुभ माना जाता है। सौ में १ और जोड़ने का आशय यह मानना है कि सम्पत्ति सौ तक समाप्त न होकर सौ के परे भी निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होती चली जाय।

इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो पाश्चात्य देशों की ९९ की संख्या व हमारे १०१ की संख्या का अन्ध विश्वास मनोविज्ञान अपेक्षाकृत स्वस्थ है। सौ को निन्यानवे ही रहने देने के पीछे यह कायरता छिपी है कि आप मारे आशंका के सौ तक पहुंचना ही नहीं चाहते जबकि १०१ के पीछे यह अज्ञात मनोभाव निहित है कि आप १०० की पूर्ण संख्या को भी पार करके उसमें भी आगे बढ़ने का साहस रखते हैं! दोनों अन्ध विश्वास मूर्खतापूर्ण हैं, पर प्रश्न आपेक्षिक स्वस्थता का है।

दो की संख्या अशुभ

दो की संख्या पाश्चात्य देशों में इस हद की अशुभ मानी जाती है कि वहाँ ताश की दुक्की को 'ड्यूस' कहा जाता है, जिसका अर्थ होता है शैतान। वैसे यह ठीक है कि 'ड्यूस' के साथ लैटिन 'ड्युओं' की ध्वनि निहित है, जिसका अर्थ होता है दो। पर साथ यह भी निश्चित है कि अन्ध विश्वासी जुआरियों ने ही 'ड्युओं' से 'ड्यूस' (शैतान) में परिवर्तित किया होगा।

मोतियों के सम्बन्ध में

क्या प्राच्य और क्या पाश्चात्य सभी देशों में मोती के 'आब' से सम्बन्धित कई अन्ध विश्वास पाये जाते हैं। मोती के भीतर कुछ ऐसे रासायनिक गुण निहित हैं जिनके कारण विशेष परिस्थितियों में उसकी चमक कभी घट जाती है और कभी

[शेष पृष्ठ १२ पर]

महिला-मंडल

भारतीय नारी तथा दहेज प्रथा

[लेखिका—श्रीमती मैत्रेयी कुमारी शर्मा]

आज भारत स्वतन्त्र हो चुका है। किन्तु अभी भारत के पुरुषों को स्वतन्त्रता प्राप्त है किन्तु नारी आज भी परतन्त्रता की बेड़ी पहने बैठी है। आज हमें अपनी बहिनों की दशा पर सोचना तथा उसकी ओर पग बढ़ाना है जिनका कि गला दहेज रूपी मौत से घोंटा जा रहा है। जो कि दहेज प्रथा के कारण जीते हुए भी मर रही हैं।

नारी तथा पुरुष इन दोनों के हार्दिक सहयोग से घर बसता है तभी जीवनयात्रा प्रारम्भ होती है इस यात्रा को सुगमता से तय करने के लिए जीवन रूपी रथ तैयार किया गया है, इस रथ के स्त्री तथा पुरुष रूपी दो पहिये हैं। जब प्रकार रथ के एक पहिये के बेकार हो जाने पर वह रथ ही बेकार हो जाता है उसी प्रकार इस जीवन रूपी रथ के स्त्री पुरुष रूपी दो पहियों में से यदि एक को भी कमी हो तो रथ नहीं चल सकता। इसलिए जीवन को आगे बढ़ाने के लिए नारी तथा पुरुष का होना अनिवार्य है। दोनों की निकटतम हार्दिक सहयोगिता को ही हम 'विवाह' के नाम से पुकारते हैं। विवाहोपरान्त वे दोनों एक दूसरे के दुख सुख में भाग लेते हुए जीवन-नौका को खेते हैं।

आज जब हम समाज की ओर दृष्टि डालते हैं तो देखते हैं नारी समाज, समाज के अमानुषिक व्यवहारों से दुखित है।

भारतीय नारी का जीवन शोचनीय अवस्था में है। इन्हीं में 'दहेज-प्रथा' भी एक समस्या बनी हुई है।

इसके कारण हमारी कई बहिनों ने अपने उल्लास भरे जीवन का अन्त ही कर डाला। आज भारतीय नारी का जीवन परवश का है। उसका जीवन दुख से भरा हुआ है, वह पिंजड़े में कैद हुये पक्षी के समान है जो पिंजड़े में बन्द तड़पता है, फड़फड़ाता है किन्तु कुछ कह नहीं सकता। न उड़ सकता है।

पुरुष के इस स्वार्थपूर्ण दहेज प्रथा के कारण नारी अपने मुख को आँचल में ढाँके मूक जीवन व्यतीत कर रही है। इस कुप्रथा के कारण नारी सूली दासी बनी है तथा पैरों तले रूंदी हुई कलिका। सोचना यह है कि इसका कारण क्या है? भारतीय नारि की दयनीय दशा क्यों बनी हुई है?

मेरी समझ में तो पुरुष समाज की स्वार्थपरता ही है। क्योंकि पुरुष नारि को मनोविनोद का खिलौना समझ बैठा है। वह अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिए नारि के दुखों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देता। उसे तो अपने सुख से मतलब है न नारि के दुख या सुख से। इसी का कारण दहेज प्रथा है।

आज भारतीय पुरुष दहेज बिना विवाह सम्बन्ध स्वीकार ही नहीं करता। धिक्कार है उस पुरुष को जो दूसरों की धनराशि पर अपना रंगीला जीवन व्यतीत करना चाहता है।

यह नारि समाज के लिए अभिशाप है। नारी समाज की समस्त आशाओं तथा खुशियों पर पानी फेर देती है।

दहेज के कारण कई निरपराध कन्याओं की करुण कहानियाँ आये दिन सुनने में आती हैं ज्वलन्त उदाहरण प्रेमचन्द का 'निर्मला' उपन्यास है। दहेज के प्रश्न पर निर्मला के माता पिता निर्धनताके कारण निर्मला सुकुमारी का ४० वर्ष के वृद्ध से विवाह कर देते हैं। उसका माहात्म्य जीवन किस प्रकार बीता यह प्रत्येक बहिन जानती है। उसने अपनी समस्त आशाओं तथा उमंगों में आग लगा कर एक वृद्ध के साथ जीवन बिताना स्वीकार किया।

> दहेज प्रथा समाज का भीषण अभिशाप है। यह निन्दनीय है अनेक कुमारियों की बलि ले चुकी है। इसके कारण अनेक अल्प वयस्क कुमारियां वृद्धों के गले मढ़ी जाती हैं। नारी-जाति का चीत्कार, गरीब पिताओं की आहें समाज के कर्णधारों के रूढ़ियों से बन्द कानों पर अभी तक असर नहीं कर पायी हैं। देश की नयी पीढ़ी नवयुवकों को आगे बढ़ कर इस कुप्रथा को दूर करने के लिए प्रभावशाली कदम उठाना चाहिए।

आज स्त्री पुरुष का विवाह नहीं। स्त्री पुरुष में उस नारि का क्रय विक्रय होता है। इस जीवन-यात्रा में पुरुष को जितने अधिकार प्राप्त हैं नारी उन समस्त अधिकारों से वंचित है। इस कुप्रथा की वेदी पर कितनी बहिनों ने अपनी प्राणाहुती दी, कितनों ने विष का घूंट पीकर इहलीला समाप्त कर दी। इस प्रथा ने कईयों के परिवार का शोषण किया। दीन हीन बना डाला।

इस परिवार के लिये एक ओर प्रश्न है जीविका का कि पेट कैसे भरें? बच्चों की पढ़ाई कैसे हो, जैसे तैसे हल करने पर दूसरा प्रश्न महान् चिंता का रूप धर आता है, वह है दहेज।

एक ओर दहेज पाकर पुरुष समाज प्रसन्न है उसका मन नाच रहा है। दूसरी ओर नारि समाज आँसुओं की वेदना तथा चिन्ताग्नि के कारण दहक रहा है। अतः दहेज प्रथा नारि समाज का घातक है।

यदि नारि समाज का माहात्म्य जीवन सुखमय बनाना है तो इस प्रथा का अन्त होना आवश्यक है अनिवार्य है, समय का तकाजा है कि दहेज प्रथा का अन्त हो, यह समूल नष्ट हो।

इसके लिये सर्व प्रथम हमें ही कदम उठाना होगा। अब हमे स्वावलम्बी बनना होगा। दूसरों की आशा तजना होगा। आइये हम सब बहिन मिल कर अपनी दुखी बहिनो का दुख दूर करने में अग्रसर हो, पुरुषार्थ करें पुरुषार्थ से सब साध्य है। हमारे साहस को देख अवश्य पुरुष समाज का दिल पिघलेगा या बिचलेगा।

ईश्वर हमें साहस दे तथा सफलता दे।

·· पत्थर का भगवान····

(पृष्ठ २ का शेष)

जावें, छूट न जावे···।

"···"दुनिया ने लेकिन उस तिरछी सी भाषा को न समझा, न समझा कि मैं पत्थर ही हूँ -जिसका फल यह हुआ, कि एक दिवस यह मन्दिर विदेशी आतताइयों द्वारा लूट खूट तथा-खण्डहरों का ढेर मेरी आँखों के सामने हुआ। मन्दिर की यह दीवाल भी उसी समय टूटी·····।

' सो कैसे ?

यवनों ने जब इस देश पर आक्रमण किया, तब वे इस प्रदेश में भी घुस आये, यहाँ के सैनिक सैनिक न रहे थे, वे कायर तथा मन्द-बुद्धि हो गये थे। कारण यह कि तलवार वाले हाथों में तब खड़तालें और मालायें आ गई थीं। वीरता का स्थान विलासिता ने ले लिया था। मुट्ठी भर सिपाही लड़े, किन्तु उनकी हार हुई ! प्रदेश की जनता त्राहि-त्राहि कर उठी, और आ गई मेरी शरण में-क्योंकि मुझे वो यह सब कुछ समझती थी·····।"

"·····मैं सब कुछ देख रही थी; भविष्य की कालिमा मुझे स्पष्ट दृष्टि-गोचर होने लगी थी, मेरा अन्तर आग बना था। काश ! मैं यदि बोल पाती, तो उस समय चिल्ला चिल्ला कर कहती कि मैं केवल पत्थर हूँ; और कुछ नहीं; मैं तुमको नहीं बचा सकती। तुम स्वयं एक बहुत बड़ी शक्ति हो ! संगठित होकर, शस्त्र हाथ में लेकर शत्रु का मुकाबला करो। मैदान छोड़ कर भागने से सुख और शान्ति कदापि नहीं मिल सकती···

"·····लेकिन न मैं ही बोल सकी और न ही कोई मेरी आवाज समझ सका। इस प्रदेश के सारे नर नारी मेरे मन्दिर के इस प्रांगण में आकर इकट्ठे हो गये— जोर २ से घंटे बजाने लगे। मन्दिर के बाहर का दुवार बन्द कर दिया गया।

और तब यवन शत्रु का आक्रमण हुआ। मन्दिर की दीवारें ढहा दी गईं, और फिर क्या कुछ नहीं हुआ·····न पूछो·····!

"·····यहा के बसे हुये सुन्दर नगर का आज नाम व निशान भी बाकी नहीं। सारा नगर जला दिया गया था। पीछे जो गाँव छोड़ कर आये हो, उसे तो बसे अभी थोड़े ही से वर्ष हुये हैं।

"·····शेष हैं, अब इस मन्दिर की टूटी दीवारें खंडहरों के रूप में, और मेरी अन्तिम साँसें, जो यहाँ के सूनेपन में साँय साँय करती रहती हैं·····

"यदि तुम ने अन्तर से निकली हुई मेरी इन सांसों को सुना हो, समझा हो, तो दुनिया में-अपने कर्मक्षेत्र में वापस जाओ और कोने २ में मेरा यह अन्तिम सन्देश सुना दो, कि "देश और संस्कृति की रक्षा मन्दिरों में जाकर दास, फूल और भोग चढ़ाने से नहीं हो सकती। इसके लिये आत्म-बल पैदा करना होगा ! हाथ में शस्त्र लेकर, हृदय में देश प्रेम और वास्तविक धर्म के नाम पर-उस धर्म के लिये, जो प्रत्येक वस्तु के यथार्थ ज्ञान द्वारा मोक्ष का साधन सिद्धि कराता है- मर मिटने की साध पैदा करनी होगी·····।

पथिक का स्वप्न टूट चुका था। वातावरण की भयानकता समाप्त हो गई थी। शान्ति तथा शीतलता का प्रदायक चन्द्रमा अपनी शुभ्र-ज्योत्स्ना सहित भू-मण्डल पर आलोकित हो रहा था। पथिक को लगा, कि उस मूर्ति के रूप में यद्यपि वह मिट्टी का भगवान मर गया था; उसके अपने अन्तर का भगवान जाग उठा था।

वह पुनः वापस चल दिया, ताकि प्रातःकाल की बेला में उगते हुए सूर्य के प्रकाश के साथ साथ वह पुनः सत्य का प्रकाश संसार में कर सके !

स्वराज्य के प्रथम मन्त्रदाता

(पृष्ठ ७ का शेष)

स्वभाषा प्रेम

ऋषि ने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा कि हिन्दी ही देश की राष्ट्रभाषा बनने की योग्यता रखती है, इसलिये उन्होंने स्वयं अपने विचारों को प्रकट करने के लिये हिन्दी को ही माध्यम बनाया। कलकत्ता यात्रा में ऋषि दयानन्द बंगाल के प्रसिद्ध ब्राह्मनेता केशवचन्द्र सेन से मिले। केशव बाबू ने ऋषि की विद्वत्ता से प्रभावित होकर कहा, "काश ! संस्कृत का विद्वान दयानन्द यदि अंग्रेजी भी जानता तो मैं उसे अपने साथ इंगलैंड ले जाता और वहाँ वह भारत के धर्म का सत्य स्वरूप पाश्चात्य लोगों के सम्मुख रखता। इस पर ऋषि ने जो कुछ कहा वह अत्यन्त मार्मिक है, "अत्यन्त खेद की बात है कि ब्रह्म नेता अपने देश की भाषा से अपरिचित है। इस घटना से यह भली प्रकार ज्ञात होता है कि स्वभाषा के प्रति ऋषि दयानन्द की कितनी निष्ठा थी।

ऋषि दयानन्द धार्मिक चेतना का उत्पादक, समाज का संस्कारक और स्वराज्य भावना का जनक तो था ही, साथ ही वह देश की आर्थिक दशा से भी अपरिचित नहीं था। इन्होंने जर्मनी आदि यूरोपीय देशों में कला कौशल सीखने के लिये भारतीय युवकों को भेजने की योजना बनाई थी। वास्तव में उन्होंने भारतवासियों को अपने देश के प्रति कर्तव्य के लिए सर्व प्रथम जागरूक किया। स्वराज्य स्वसंस्कृति, सत्याग्रह, स्वदेशी भाषा आदि पर गर्व करना सबसे पहले ऋषि दयानन्द ने ही सिखलाया। भारत में स्वाधीन गणराज्य की स्थापना के साथ साथ दयानन्द का एक महान् स्वप्न पूरा हो गया है।

अन्ध-विश्वास छोड़िये

[पृष्ठ १० का शेष]

बढ़ जाती है। मनुष्य के शरीर की गर्मी मोती के 'आब' या चमक को बढ़ा देती है, पर पसीने से या किसी चर्म रोग के कारण उसकी चमक घट जाती है। इसके पीछे कुछ विशेष रासायनिक कारण हैं। पर पुराने जमाने में मोती के इस गुण को उसके भीतर निहित जादू का लक्षण माना जाता था। यदि किसी व्यक्ति द्वारा माला या दूसरे रूप में पहने गये मोतियों की चमक किसी कारण से कम होती दिखाई देती तो लोग यह अनुमान लगाते कि उस पर कोई भारी विपत्ति आने वाली है। आज भी यह विश्वास कई लोगों में पाया जाता है।

आग के विषय में

गोर्की ने अपने एक संस्मरण में आग से सम्बन्धित अन्ध विश्वास का एक रोचक उदाहरण दिया है। एक दिन जब किसी एक मकान में आग लगी हुई थी और कई लोग आग बुझाने का तमाशा देखने के लिए खड़े थे, तब गोर्की भी वहाँ पहुँच गया। वहाँ उसने देखा कि एक आदमी ने सबकी नजर बचाने का प्रयत्न करते हुए जेब से एक पुड़िया निकाली और उसे आग के बीच में फेंक दिया। गोर्की को उस व्यक्ति का यह व्यवहार रहस्यमय लगा।

दूसरे दिन वह उस आदमी से मिला, और उससे पूछा कि उसने आग में क्या चीज डाली थी और क्यों ? वह आदमी पहले तो आना-कानी करने लगा, पर गोर्की के बार-बार आग्रह करने पर उसने सारा किस्सा सुनाया जो संक्षेप में इस प्रकार है :—

कटे हुए नाखून आग में

वह आदमी जब विश्वविद्यालय में पढ़ता था तभी अपनी आर्थिक दुरवस्था और असफलता की अनुभूति से इस कदर खिन्न हो उठा था कि उसने आत्महत्या करने का निश्चय कर लिया। इस मनः स्थिति में जब वह शहर के एक पार्क में एक बेंच पर बैठा था तब सहसा कहीं से एक अधेड़ स्त्री उसके पास आयी और उसने आते ही उससे कहा कि वह चाहने पर भी आत्महत्या नहीं कर सकेगा क्योंकि उसे अभी बहुत कुछ रहना बाकी है। उस स्त्री ने उसे बताया कि यदि वह चाहता है कि उसका भाग्य पलट जाय तो उसे अपने हाथ के नाखून काट कर उन कटे नाखून को एक पुड़िया में बन्द करके रखना चाहिये और जब कहीं दूसरे के घर में आग लगे तब उस आग में उस पुड़िया को डाल देना चाहिये।

विशेष विश्वास न होने पर भी इस आदमी ने परीक्षा करने में कोई हानि नहीं समझी और एक दिन जब किसी दूसरे के यहाँ आग लगी हुई थी तब उसने अपने कटे हुए नाखूनों की पुड़िया को कुछ ताँबे के सिक्कों के साथ आग में डाल दिया। इस विचित्र जादू का फल यह हुआ कि उसी दिन वह लड़की उससे विवाह करने को राजी हो गयी जो कई दिनों से उसके प्रस्ताव को टालती जा रही थी। उसके कुछ ही दिनों बाद उसे सहसा यह सूचना मिली कि उसके रिश्ते की कोई मौसी मर गयी है और अपनी सारी सम्पत्ति उसके नाम छोड़ गयी है।

इस प्रकार आज के युग में भी अन्ध विश्वास पनप रहे हैं और शिक्षित समाज भी उन्हें मान्यता दिये चल रहा है।

ऋषि के ग्रन्थों में परिवर्तन

(पृष्ठ ६ का शेष)

को भेजा है कि सभा एक विद्वान् की इस कार्य के लिए नियुक्ति करे जो अबतक नासमझी से किये हुए परिवर्तनों की सूची तैयार करे और वे सब स्थल समार्थ सभा के सम्मुख रखे। उस पर गम्भीरतापूर्वक विचार हो। अब की बार सभा में इसी दृष्टि से व्यक्ति रखे गये हैं कि सब प्रकार के विचारकों को अवसर प्राप्त हो। मेरी निश्चित धारणा है कि मनुष्यों को स्वयं तो समझ नहीं है और अशुद्धि ऋषि के ग्रंथों में ढूंढता है जैसी कि लोकोक्ति है कि—

प्रायः शुष्कस्तनी नारी कंचुकमेवनिन्दति

नाच न आवे आँगन टेढ़ा

यह लेखक प्रेस पण्डित आदि का नाम ले लेकर ये-ये भयंकर परिवर्तन ऋषि के ग्रन्थों में कर डाले गये हैं जिनको कोई ऋषि वर का चेला सहन नहीं कर सकता। ऐसे व्यक्तियों के प्रायश्चित का समय अब आ गया है। आशा है पूज्य उपाध्याय जी मेरा साथ देने का अनुग्रह करेंगे।

शुद्धि का बिगुल कैसे बजे ?

[ले० —श्री वीर सेन शास्त्री, लखनऊ]

१८ मई के दैनिक 'आर्यमित्र' में विद्वान सम्पादक जी ने भारत में ईसाई और मुसलमानों की बढ़ती हुई गतिविधि से सचेत करते हुये आर्य जगत् को 'शुद्धि' का बिगुल बजाने की सबल प्रेरणा की है। निःसन्देह स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात देश में विदेशीय ईसाई मिशनरियों की सरगर्मियाँ बहुत बढ़ गई हैं। मुस्लिम साम्प्रदायिकता भी जोर पकड़ रही है। विदेशी और विधर्मी मिशनरी भारत की आर्थिक एवं सामाजिक दुर्दशा का अनुचित लाभ उठाकर 'धर्म' के नाम पर यहाँ विदेशीय राष्ट्रीयता का प्रचार कर रहे हैं जो भविष्य में गम्भीर संकट उत्पन्न कर सकता है।

इस संकट से देश को बचाने के मुख्यतः दो उपाय हो सकते हैं। (१) प्रथम यह कि ईसाई और मुसलमानों की गतिविधि रोकी जाय और जो लोग किन्हीं कारणों से वैदिक धर्म छोड़ चुके हैं उन्हें 'शुद्ध' करके पुनः आर्य बनाया जाय। (२) द्वितीय यह कि जिन कारणों से लोग विधर्मी हो रहे हैं उन्हें दूर किया जाय ताकि कोई ईसाई या मुसलमान बने ही न।

आर्यसमाज पहला उपाय कर रहा है अर्थात् विधर्मी प्रचारकों की गतिविधि रोकने और ईसाई या मुसलमान बने लोगों को शुद्ध करने का प्रबन्ध किया जा रहा है, किन्तु दूसरे उपाय की ओर—जिन कारणों से लोग विधर्मी हो रहे हैं—आर्यसमाज का ध्यान नहीं के बराबर है। जिस प्रकार घर का माल बाहर लुटेरों के हाथ में चले जाने पर उसे पुनः प्राप्त करना बड़ा कठिन होता है पहले से ही रोक करनी चाहिये—उसी प्रकार विधर्मियों के चंगुल में लोगों के चले जाने पर पुनः वापस लाने के प्रयत्न की अपेक्षा उन्हें उधर जाने ही न देना सरल तथा बुद्धिमत्ता का कार्य है। आर्यसमाज विधर्मी प्रचारकों की षड्यन्त्र कार्यवाइयों के विरुद्ध आन्दोलन करता है, सभा, सम्मेलन तथा शास्त्रार्थ करता है और कभी कभी दो चार शुद्धियाँ भी कर लेता है परन्तु काम नहीं हो रहा है और समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई है। इसका कारण यह है कि आर्यसमाज ऊपर से शास्त्रार्थ व शुद्धि का शोरगुल बहुत करता है परन्तु इस ओर क्रियात्मक पग उठाने तथा रोग के मूल कारणों को दूर करने का प्रयत्न नहीं हो रहा है। जिस प्रकार पेड़ की जड़ में पानी डालने के बजाय पत्तियों को सींचने से लाभ नहीं होता उसी प्रकार जबतक विधर्मी होने के कारणों को समूल नष्ट नहीं किया जाता किसी प्रकार से यथेष्ट लाभ नहीं हो सकता।

अब हमें देखना है कि किन कारणों से लोग ईसाई या मुसलमान हो रहे हैं? आर्थिक तथा सामाजिक कारणों से बाध्य होकर ही अधिकांश गरीब एवं पिछड़े वर्ग के लोग विधर्मी हो रहे हैं। भारत की जनसंख्या का एक बड़ा भाग निर्धनता के कारण न केवल नंगा भूखा रहता है अपितु हिंदुओं की संकीर्ण जात पात के कारण अछूत एवं नीच भी समझा जाता है। ऐसे वर्ग में ईसाई पादरी धन की सहायता करते, सफाई, औषधि एवं शिक्षा का प्रबन्ध करते और उनके साथ प्रेम एवं समानता का व्यवहार करते हैं। परिणामस्वरूप ऐसा वर्ग ईसाई धर्म की ओर आकर्षित होकर हिन्दुओं से घृणा करने लगता है जो कि स्वाभाविक है। जब उनके सामने यह तर्क उपस्थित किया जाता है कि वैदिक धर्म के सिद्धान्त बड़े अच्छे हैं तो उनका सीधा उत्तर होता है कि पुस्तकों में लिखे सिद्धान्तों की दुहाई देने अथवा वेद के सरसब्ज बाग दिखाने से क्या लाभ जब तक उस धर्म के अनुयायी उन सिद्धान्तों को जीवन में न धारण करें। जबतक वह हिन्दू रहते हैं वेद के अनुयायी उनकी सहायता करना तो दूर उल्टे उन्हें जन्म के कल्पित आधार पर नीच समझते हैं। किन्तु ईसाई हो जाने पर उनकी आर्थिक कठिनाई दूर हो जाती है और हिन्दुओं के सामाजिक शोषण से भी बच जाते हैं। वर्षों की आर्थिक एवं सामाजिक परतन्त्रता से ऊब कर ही ऐसा वर्ग हमारी आर्य जाति से पृथक हो विधर्मी हो रहा है।

'शुद्धि' आन्दोलन की असफलता का मुख्य कारण यही है कि हम शुद्ध हुये लोगों को अपने समाज में उचित स्थान देने व करने में असफल हो चुके हैं। आर्यसमाज के इतिहास में ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं कि 'शुद्ध' हुए लोगों के साथ वहाँ समानता का व्यवहार न होने के कारण उन्हें दुबारा विधर्मी हो जाना पड़ा। जो लोग किन्हीं कारणों से विधर्मी हो जाते हैं उन्हें प्रथम तो पुनः वापस आने को तैयार करना कठिन होता है और यदि किसी प्रकार शुद्ध हो जाते हैं तो बेचारे किसी ओर के नहीं रहते। वह ईसाई या मुसलमान रह नहीं जाते, कहने को हिन्दू अवश्य हो जाते हैं परन्तु हिन्दू समाज में वह 'अछूत' ही रहते हैं। उनके साथ हिन्दू रोटी बेटी का व्यवहार नहीं करते। परिणाम स्वरूप उनकी दशा पहले से भी खराब

(शेष अगले पृष्ठ पर)

तलाक और धर्मार्य सभा

आर्यमित्र के २२-५-५९ के साप्ताहिक अंक में एक बहन का लेख छपा है जिसका शीर्षक है 'धर्मार्यसभा से' विषय है तलाक। उनकी जानकारी के लिये कुछ पंक्तियाँ लिखता हूं। सार्वदेशिक धर्मार्यसभा ने अपनी अन्तरङ्ग सभा तथा अपने साधारण अधिवेशन में भी तलाक के विरोध में प्रस्ताव पास किया था और उसी को सार्वदेशिकसभा की अन्तरङ्ग ने भी स्वीकार किया था।

प्रश्न शेष रहता है उन परिस्थितियों का जो बहन जी ने दिखाई हैं अर्थात्—

१—किसी का पति नपुंसक हो।

२—स्त्री शीलहीन हो?

३—पुरुष या स्त्री पागल हो।

४—स्त्री वन्ध्या हो।

५—पुरुष भाग जावे साधु हो जावे इत्यादि।

ऐसी स्थिति कहीं हो तो क्या किया जावे

इन स्थितियों के दो भाग हैं एक तो वह जो धोखा देकर किया गया है और दूसरा वह जो विवाह के कुछ काल बाद स्थिति पैदा हुई है। इन स्थितियों पर भी दो प्रकार से विचार करना पड़ेगा। एक तो यह कि जिन को मनुष्य जान बूझ कर करता है जैसे कोई नपुंसक या वन्ध्या है और धोखा देकर विवाह किया है ऐसी स्थितियां पैदा ही न हों ऐसा उपाय और यदि कोई ऐसी स्थिति में है तब फिर किया क्या जावे। दूसरे ईश्वर प्रकोप अर्थात् विवाह के उपरान्त पैदा हुई स्थिति

(ऐसी स्थिति पैदा न हो)

ये स्थितियां न पैदा हों इस का उपाय यही है कि विवाह करने वाले माता पिता को जब तक घोर दण्ड की व्यवस्था राज नियम से न होगी ये स्थितियां कभी समाप्त न होंगी। जैसा कि कात्यायन का कानून है कि—

'दाता दण्डयः'

हम ऐसा कानून बनवाने में समर्थ नहीं हो रहे हैं इसके दोषी वे लोग हैं जिन्होंने आर्यसमाज का कोई राजनैतिक पहलू अब तक नहीं बनने दिया।

(जिन पर ये स्थितियां बीत रही हैं वे क्या करें)

विवाह के मन्त्रों और विधियों में कुछ बातों का वर्णन है जिन्हें समझ न सकने के कारण कुछ लोग नहीं करते और कुछ बातों को विवाह की पद्धति से निकाल देने का अदूरदर्शी लोग दूरदर्शी ऋषियों की बात को न समझ कर कहते हैं जैसे—

१—अश्मारोहण। २—पुमांसं पुत्रं जनयावहै। हृदयालम्भन। ४—देव विमोचन इत्यादि।

यदि यह स्थितियां नहीं हैं तो वह विवाह न समझा जावे अन्यथा इन बातों को विवाह में रखने का क्या प्रयोजन। एम० ए० परीक्षा वही विद्यार्थी दे सकता है जो गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन का स्नातक हो या क्वीन्स कालिज बनारस की आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण हो या बी० ए० पास हो इत्यादि। कुछ न करे या धोखा देकर एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण कर भी ले और बाद में पता चले तब वह उस परीक्षा से वञ्चित कर दिया जावेगा यदि ऐसा न किया जावे तो यूनिवर्सिटी के नियमों में स्नातक और आचार्य आदि का उल्लेख व्यर्थ होगा। अतः विवाह के मन्त्रों में उन बातों का रखना स्पष्ट करता है धोखे से हुए विवाह को अवैध घोषित कर दिया जावे।

(विवाह के पश्चात् दैव कृत प्रकोप)

विवाह हो गया कुछ दिन पति पत्नी सुख से रहे इसके उपरान्त दैव प्रकोप से नपुंसक पागल हो गये तो स्थिति में तो देश की व्यवस्था को सुरक्षित रखने के लिये वैदिक मर्यादाओं की रक्षा रहे इत्यादि बातों को देखते हुए सबको संतोष का मार्ग ही अवलम्बन करना होगा क्योंकि भारतीय पुरुष या स्त्री जो कुछ भी करेगा उसका प्रभाव उस तक ही सीमित नहीं है ऐसी स्थिति में विद्याध्ययन परोपकार लड़का गोद लेकर गृहस्थ का निर्वाह इत्यादि व्यवस्थाएं हो पालन करनी पड़ेंगी और इस से उस के देश में गौरव प्रतिष्ठा प्राप्त का काम भी होगा अपना चरित्र बनेगा, और यह क्रिया जो इस के परवाह नहीं है इसके लिए सब मार्ग खुले हैं।

[illegible]

प्रधानमन्त्री सार्वदेशिक धर्मार्य सभा

श्रद्धानन्द बलिदान भवन देहली

एक घटना

मोती

—हरीशप्रसाद किरण

सदा की भाँति किशोर ने फिर रात में कहानी सुनने की रट लगा दी। दादा झुंझला उठे उसपर। आखिर रोज-रोज कहाँ से कहानी सुनायें उसे। उनके पास कहानी का कोई खजाना तो था नहीं। पर, बिना कहानी सुने वह मानने वाला तो था नहीं। आखिर हार कर दादा ने कहानी शुरू कर ही दी।

'एक लड़का था। बिलकुल भोला। तुम्हारे जैसा ही। पर तुम जैसा वह शरारती न था और न कभी रोता ही था। वह बहादुर था। पढ़ने में भी बहुत तेज। जिस समय वह पढ़ता खूब मन लगाकर पढ़ता और जिस समय वह खेलता खूब चुस्त होकर खेलता। झूठ बोलना और चोरी करना तो जैसे वह जानता ही न था।"

"उस समय हमारा देश गुलाम था। अंग्रेज जैसे चाहते हमें नचाते और हम नाचते। क्यों न नाचते? हम गुलाम थे न उनके! वे हमारे अन्नदाता थे! हमारे स्वामी थे।"

'मौसम था जाड़े का। आकाश साफ था। वह लड़का टहलने निकला सड़क पर जा रहा था। अचानक उसका ध्यान गया एक भीड़ पर। वह उसी ओर बढ़ा। पहुंच कर देखा वहाँ केवल अंग्रेज थे। भारतीयों का नाम निशान नहीं। भला भारतीयों की क्या मजाल कि अंग्रेजों के जलसों में जाते। पर वह लड़का साहसी था, शेर था। वह वहाँ पहुंच गया।'

'भीड़ काफी थी। पीछे से लड़का देख न सकता था। इसलिये अंग्रेजों को धक्का देते हुए आगे बढ़ गया। अंग्रेज क्रोध से जल उठे। भारतीय छोकरे की यह मजाल कि उनको धक्का दे। एक अंग्रेज लड़के ने उसे पकड़ लिया और धक्का देकर उसे भीड़ से बाहर फेंक दिया। लड़का गिरा। उसे चोट भी आयी। ज्यादा चोट तो उसके दिल पर लगी। वह अंग्रेज के लड़के से बदला लेने के लिए तड़प उठा। पर अंग्रेज का लड़का उससे बहुत बड़ा था। वह वह खड़ा रहा, चुपचाप—शांत, गम्भीर। शायद वह कुछ सोच रहा था।'

'अचानक लड़के का चेहरा प्रसन्नता से चमक उठा। उसने एक युक्ति सोच ली। वह एक कुर्सी पर चढ़ गया। अब वह ऊंचाई में अंग्रेज लड़के के बराबर हो गया। उसने अंग्रेज लड़के का कान दाँत से काट लिया खूब जोरों से। अंग्रेज लड़का चीखा। उसके कान से खून की धार बह चली।'

अचानक किशोर नाक सिकोड़ कर बोल उठा—"तब तो दादा, वह लड़का दंतकटा था?'

"नहीं रे, वह बहादुर था। देश भक्त था। देश के लिए मर मिटने वाला था," दादा ने गंभीर होकर कहा। फिर पूछा—'जानता है वह कौन था?"

किशोर ने कहा—"नहीं तो। बतला दो न!"

'वह थे, पं० मोतीलाल नेहरू। सच में वह भारत के मोती थे।" इतना कह कर दादा चुप हो गये।

किशोर बोल उठा—"और दादा, वह अंग्रेज लड़का कान की दवा कर वाने अस्पताल न गया?"

किशोर की बात सुन कर दादा को हंसी आ गयी किशोर भी हंस पड़ा।

दोषी कौन?

—श्री प्रेमनारायण गौड़—

बिल्ली और लोमड़ी निकले तीर्थ-यात्रा करने,
पाप किया था जो जीवन में फल उसका सब हरने।
"कितना सुन्दर," कहा लोमड़ी ने, "जग को अपनाना!"
"इससे सुन्दर," बिल्ली बोली, "भाव दया का लाना!"
इसी तरह बातें करते वे पथ पर बढ़ते जाते;
भूखे एक भेड़िये को तब देखा सम्मुख आते।
खोया देख गड़रिये को वह झटपट आगे आया;
भोली-भाली एक भेड़ को अपना भाग बनाया।
फिर बोला—"जब दिया ईश ने क्यों न छकूं मैं जी भर?"
किन्तु लोमड़ी औ' बिल्ली की आयीं आँख तुरत भर।
बोलीं, "कितने नीच, न ये हत्या से घबराते;
ईश्वर ने जब मनुज बनाया, क्यों तब पशु हैं खाते?"
बढ़े वहां से, फिर आगे वे गीत नीति के गाते;
एक दूसरे की बातों में रुचि अपनी दिखलाते।
पहुंचे एक गाँव में मुर्गी जहाँ गयी थी पाली,
एक ललकती दृष्टि लोमड़ी ने तब उन पर डाली।
और नीति सब भूल एक मुर्गी को भाग बनाया,
देख एक चूहे को बिल्ली ने भी किया सफाया।
जाले में बैठी मकड़ी बोली हत्या को लख कर;
"हाय, बड़े निर्दयी लोग ये, दया न लाते पल भर!"
किन्तु तभी उस देखी उसने मक्खी एक भटकती;
इधर उधर चक्कर खाकर के जाले-बीच अटकती।
तुरत दौड़ मकड़ी ने भी मक्खी का भोग लगाया;
भूल दया की वे सब बात छक कर खाना खाया।
और विधाता हँसा देख कर यह सब अद्भुत माया,
दोषी कौन, नहीं उनके भी स्वयं समझ में आया।

हंसिए नहीं!

अध्यापक—'दिलीप, तुमने कोई दूध देने वाला जानवर देखा है!"

दिलीप—'जी हाँ, देखे हैं।"

अध्यापक—"कौन-कौन से?"

दिलीप—"राम राम हलवाई और किशोरी हलवाई!"

पत्नी—"यह खड़खड़ की आवाज क्यों आ रही है? देखो घर में कोई चोर तो नहीं घुस बैठा।"

पति—'अँधेरे में क्या नजर आयेगा? दिन निकलने दो, तब देखा जायेगा!"

सूरज—'हे परमात्मा! इन्दौर को भारत की राजधानी बना दे। हे ईश्वर इन्दौर राजधानी बन जाय?"

कान्ता—"सूरज भैया, यह क्या प्रार्थना कर रहे हो?"

सूरज—'कान्ता बहन क्या बताऊँ आज मैं भूगोल के परचे में भारत की राजधानी इन्दौर लिख आया हूं। इसी से यह प्रार्थना करता हूं।"

(पिछले पृष्ठ का शेष)

हो जाती है। वह 'शुद्ध' होने पर पश्चात्ताप करते हुए अन्त में पुनः विधर्मी बनने को बाध्य होते हैं। कल्पना कीजिये कि कोई शिक्षित ईसाई अपनी पत्नी व दो बालिग लड़कियों के साथ आर्यधर्म ग्रहण करता है। मैं एक सीधा प्रश्न करता हूँ और उसका एक सीधा उत्तर चाहता हूं। शुद्ध किये जाने के पश्चात् समाज में इनका क्या स्थान होगा? क्या कोई आर्य यह समझता है कि इस प्रकार का शिक्षित कुटुम्ब समाज में हीन स्थान ग्रहण करेगा अथवा वह हिन्दुओं द्वारा घृणा की दृष्टि से देखा जाकर समाज में रहना पसन्द करेगा? उसके लड़कों और लड़कियों का विवाह कहाँ होगा? यदि हम शुद्ध हुए लोगों को अपने में मिलाने और उनके साथ समानता का व्यवहार करने को तैयार नहीं हैं तो हमें 'शुद्धि' 'शुद्धि' चिल्लाना बन्द कर देना चाहिये और पहले अपनी पाचन शक्ति ठीक करनी चाहिये। पाचन शक्ति कमजोर होने का मुख्य कारण हिन्दुओं की कल्पित जात-पाँत प्रथा है जिसको मिटाने में आर्यसमाज भी असफल रहा है। जब तक ऊँच नीच का भेदभाव मिटा एक 'आर्य बिरादरी' नहीं बन जाती और शुद्ध हुए लोगों के साथ हम मनुष्यता एवं समानता का व्यवहार नहीं करते, आर्यसमाज को शुद्धि कार्य में सफलता नहीं मिल सकती।

अतः यदि हम वास्तव में शुद्धि का बिगुल बजाना चाहते हैं तो सर्वप्रथम हमें अपने घर और समाज की शुद्धि करनी होगी हिन्दुओं की जिस जात-पाँत तथा आर्थिक एवं सामाजिक शोषण से तंग आकर शोषित-वर्ग विधर्मी हो रहा है पहले उसे रोकना होगा। समस्त हिन्दुओं में ऐसी सामाजिक क्रान्ति करने से पूर्व अपने को 'आर्यसमाजी' कहने वालों को जो पौराणिकों की भाँति स्वयं भी उसी दलदल में फंस हुये हैं—अपने भीतर क्रान्ति करनी होगी। यदि हमने ऐसा करके विधर्मी होने के कारणों को समूल नष्ट कर लिया तो हम से कोई बिछुड़ना न चाहेगा और तब उनकी शुद्धि की आवश्यकता ही न पड़ेगी। यही नहीं, तब तो हम जन्म के ईसाई और मुसलमानों को भी शुद्ध करके अपने में मिला सकने में समर्थ हो सकेंगे। "शुद्धि" का बिगुल बजाने और "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" का जयघोष करने से पूर्व हम आर्यसमाजियों को इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर इस ओर क्रियात्मक पग उठाना चाहिये।

आवश्यक सूचना

आर्यमित्र प्रति दिन समय पर भेज दिया जाता है फिर भी कार्यालय में 'मित्र' के यथा समय न प्राप्त करने के शिकायती पत्र आ जाया करते हैं।

अच्छा हो कि वह सज्जन जिन्हें इस प्रकार की शिकायतें हैं निकटस्थ पोस्ट आफिस से इस सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार करने की कृपा करें।

व्यवस्थापक
'आर्यमित्र'

आर्यमित्र के एजेंटों से!

आर्यमित्र दैनिक के समस्त एजेंटों से हमारा यह निवेदन है कि वे इन पंक्तियों को पढ़ते ही मार्च अप्रैल के बिल का धन तुरन्त भेज दें। बिल में त्रुटि समझें तो जितना ठीक समझते हों, उतना ही भेज दें। बाद में पत्र व्यवहार से निश्चय होता रहेगा। आशा है कि सब आज ही मनीआर्डर कर देंगे।

-व्यवस्थापक 'आर्यमित्र' लखनऊ

प्रत्येक आर्य का कर्तव्य है कि वह २४) भेजकर एक वर्ष के लिए दैनिक 'आर्यमित्र' के ग्राहक बनें

प्रकृति के दीपक

हमारे पर्व त्योहारों में मुख्य वा होती है ज्योति आराधना। इस लिए इन सब कामों मे दीपक अवश्य जलाए जाते हैं। ज्योति जीवन के लिए आराध्य मानी जाती है। इस बात के प्रमाणित करने के लिए प्रकृति में अनेक विचित्र वस्तुए पाई जाती हैं

उनमें से हमारी जानी पहचान चीज है जुगनू। अंधेरी रात मे, ये जुगनू सितारों की तरह चमकते रहते हैं। इन्हे ही कुछ पक्षी पकड़कर अपने घोंसलों में ले जाते है, और इनसे दीपक का तरह काम लेते हैं। इसी तरह का एक कस्तूरी कीड़ा होता है देखने मे बहुत सुन्दर होता है। इसकी सारी देह से जग मगाती रोशनी आती है। इसके बारे में ही कहा जाता है कि तीन या चार कीड़ों को पकड कर कॉच की नली में डाल दें तो उनसे जा रोशनी होगी, उसमें बैठ कर कोई भी एक पुस्तक पढ़ सकता है और सहज प्रकाश देने वाले कुछ जल चर जीव भी होते हैं। इस्टामियस वोना' और 'रसयो नियस' यह दो प्रकार की प्रकाश देने वाली मछलियाँ होती हैं। उनकी देह में गोल गोल कुछ छेद रहते हैं उन्हीं से लालटेन से मिलने वाला रोशनी आती रहता है। यह मछलियों समुद्र के गर्भ में रहती हैं। और वहाँ के प्रदेश में प्रकाश फैलाती रहती हैं। 'अल्ल नाम की एक मछली होता है। इसके सिर पर दीपक का तरह प्रकाश देने वाला एक वस्तु होती है।

जब नैसर्गिक प्राणियों मे प्रकाश का इतना महानता पाइ जाता है, तो बुद्धिमान मानवों के द्वारा इन वा पर्व त्योहारों में आश्चर्य क्या?

वर की आवश्यकता

एक १५ वर्षीय सुन्दर, स्वस्थ गृहकार्यों में सुदक्ष, हिन्दी प्रथमा तक शिक्षा प्राप्त आर्य कन्या के लिये सुयोग्य शिक्षित २१-२२ वर्ष तक की आयु का उद्योगशील सुन्दर स्वस्थ वर चाहिये। कन्या के माता पिता जन्म से वैश्य हैं किन्तु दृढ आर्य विचारों के नाते जाति बंधन तोड कर पूर्ण वैदिक रीति से वैवाहिक सम्बन्ध होगा।

लिखें -मन्त्री आर्य समाज गुना (मध्य भारत)

आचार्य की आवश्यकता

एक सुयोग्य आचार्य (प्रधानाध्यापक) की आवश्यकता है। जो बिहार के संस्कृत में शास्त्री एवं अंग्रेजी मे मैट्रिक तक के छात्रों को पढा सकते हों। आर्य विचारवाले तथा गुरुकुल काङ्गडी के स्नातकों को विशेष सुविधा दी जायगी। वेतन योग्यतानुसार दिया जायगा। १५ जून तक आवेदन करें, श्री मन्त्री गुरुकुल महाविद्यालय मोहिया (छपरा)

पता—'आर्यमित्र'
५ मीराबाई मार्ग, लखनऊ
फोन—११३
तार—"आर्यमित्र"

आर्यमित्र

रजिस्टर्ड नं० ६०ए०
६ जून, १९५५

बेकारी से छुटकारा

आपको अभी काम मिल जायगा

लखनऊ तथा कानपुर में 'आर्यमित्र' बेचने के लिए अनुभवी और फुर्तीले हाकर वेतन या कमीशन पर चाहियें।

तत्काल लिखिये या स्वयं मिलिए।

फोन : ११३ — अधिष्ठाता 'आर्यमित्र'
५, मीराबाई मार्ग, लखनऊ

बाबूराम "भारई" द्वारा [illegible] प्रेस लि०, ५, मीराबाई मार्ग, लखनऊ से मुद्रित तथा प्रकाशित।

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

आर्य मित्र

नमस्कार हो '

ओं यो भूतञ्च भव्यञ्च सर्व यश्चाधितिष्ठति । स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः

अथर्व १०

जो सब भूत और भविष्यत् और विश्व के ऊपर शासन करता है, जिसका स्वरूप केवल सुख है उस सब से बडे ब्रह्म को नमस्कार हो

इस अंक के आकर्षण

आर्यसमाज के चार गौरव '

गोरक्षा के बिना
विश्व शांति असम्भव

[श्री डा० कुन्दनलाल जी एम० डी० बरेली]

यह बड़े सौभाग्य तथा गौरव की बात है कि हमारे प्रधानमन्त्री माननीय श्री नेहरू जी हृदय से विश्वशान्ति के न केवल इच्छुक हैं किन्तु उसके लिए प्रयत्नशील भी हैं, बाडुंग सम्मेलन और पंचशील की योजना का श्रेय सबसे अधिक हमारे नेहरू जी को ही है। यद्यपि साम्राज्यवादी अमेरिका के विरुद्ध इस सम्मेलन को विफल बनाने का असफल प्रयत्न करेंगे फिर भी हमारा पूर्ण विश्वास है कि जहां तक सम्मेलन की सफलता का प्रश्न है जीत हमारे प्रधानमन्त्री की होगी। फिर भी सम्मेलन की वास्तविक सफलता प्रस्तावों के कार्यरूप में परिणित होने में है जिसके लिए भूमि तैयार करनी होगी। सबसे प्रथम हमें यह विचार करना चाहिए कि विश्वशान्ति के विचार का जन्म कहां हुआ? विश्वकर्ता ने जब विश्व की रचना की तब विश्व कल्याण के विचार से वेद का ज्ञान दिया उससे वैदिक संस्कृति अथवा भारत की प्राचीन संस्कृति का जन्म हुआ। वेद ने मनुष्य जीवन का उद्देश्य 'अभ्युदय' और 'निःश्रेयस प्राप्ति' बताया है वेद न मनुष्य को संसार से सर्वथा विरक्त रहने की शिक्षा देता है न उस में इतना लिप्त रहने की छूट देता है जैसे आज लिप्त होकर संसार में अशान्ति फैला रहे हैं। किन्तु उसका कहना है कि तुम सदा कर्म करते हुए खूब अभ्युदय की प्राप्ति करो पर इस बात का सदा ध्यान रखो कि कोई भी ऐसा कर्म न हो जो निःश्रेयस प्राप्ति में बाधक हो क्योंकि तुम्हारा अन्तिम ध्येय निःश्रेयस अथवा परम शान्ति प्राप्त करना है। जबतक इस संस्कृति का अभ्युदय रहा मनुष्य कर्तव्य पर स्वार्थ को बलि देते रहे जिससे संसार में न्याय, सुख और शान्ति का राज्य रहा। राम, लक्ष्मण, भरत, सीता, कृष्ण, प्रताप, शिवाजी चाणक्य इत्यादि हमारे माननीय पूज्य पूर्वजों के उज्वल चरित्र से इतिहास भरा पड़ा है। जब इस संस्कृति का ह्रास हुआ तब फिर विश्वकर्मा ने अपनी विशेष प्रेरणा से ऋषि दयानन्दजी महाराज को भेजा जिन्होंने संसार के विषयों पर ध्यान मार कर आजन्म ब्रह्मचारी रह ४९ वर्ष तक घोर तप और त्याग के साथ विद्याध्ययन किया और संसार का भली प्रकार इलाज किया। अन्त को वह भी इसी सिद्धान्त पर पहुँचे कि केवल वैदिक संस्कृति ही 'विश्वशान्ति' की स्थापना और विश्व की कल्याण कर सकती है। क्योंकि वेद ही एक ऐसा ज्ञान है जो वर्ण और देशकाल से ऊपर उठ कर समस्त संसार को मित्र की दृष्टि से देखने का तथा ईश्वर को सर्वव्यापक व सब पदार्थों का मालिक जान केवल उसके दिए हुए अर्थात् ईमानदारी और पुरुषार्थ से प्राप्त किये पदार्थों को त्याग भाव से भोगने का उपदेश देता है इसी शिक्षा के कारण ऋषि दयानन्द का हृदय इतना विशाल था कि वह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' से नीचे की बात सोचते ही न थे। आर्य समाज के छठे नियम में केवल भारत मनुष्यों का नहीं किन्तु समस्त संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य बताया। देहली दरबार के समय ऋषि ने हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध जैसे सब ही को निमन्त्रित करके प्रस्ताव किया कि सब मतों में जो २ अच्छी बातें विश्व कल्याण की हैं उन ही का सब विद्वान् एक होकर प्रचार करें और सब सम्प्रदाय मिटा कर एक सत्य धर्म अथवा मनुष्य धर्म को मानें। पर स्वार्थी साम्प्रदायिक लोगों ने माना नहीं साम्प्रदायवाद से वह कितने दुःखी होते थे और उसे कितना हानिकारक समझते थे यह देखना हो तो सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका देख लें पर जो फिर भी जो अपने अज्ञानवश उनको साम्प्रदायिक कहते हैं उनकी बुद्धि को क्या कहा जावे। उनका कहना था कि गोरे काले देश विदेश ईसाई मुसलमान हिन्दू, बौद्ध, पंजाबी, मद्रासी का भेदभाव केवल वैदिक संस्कृति ही मिटा सकती है और यही अपने त्याग परोपकार, सेवा और अपरिग्रह के सिद्धान्तों से विश्व में सुख और शान्ति की स्थापना कर सकती है। पर यह वैदिक संस्कृति संसार में फैले कैसे इसके फैलाने को संसार से अज्ञान मिटाने के ठेकेदार त्यागी ब्राह्मण चाहिए जो अपने पुष्ट मस्तिष्क से वेद की गूढ़ वैज्ञानिक बातों को समझ कर संसार के हित के लिए नवीन २ आविष्कार कर सकें। संसार से अन्याय मिटाने का प्रण लेनेवाले सुदृढ़ शरीर वाले क्षत्रिय चाहिए संसार से अभाव मिटाने के पक्षपाती वैश्य चाहिए जो धन का संग्रह विश्व कल्याण के लिए करें। और वह शूद्र चाहिए जो बुद्धिहीन और अपढ़ होने पर भी लोकसेवा ही अपना धर्म समझते हों। मनुष्य अपने विचारों से बनता है और विचार भोजन से बनते हैं, अत उपरोक्त सब ही मनुष्यों के लिए ऐसे भोजन की आवश्यकता है जो मस्तिष्क को शक्ति देनेवाला और सात्विक हो। शरीर को पुष्टि देनेवाला और वीर्यवर्धक हो परोपकार की वृत्ति उत्पन्न करनेवाला और शान्ति देनेवाला हो। साथ ही नीरोग रखनेवाला और आयुवर्धक और अमृत के समान गुणकारी हो। आप संसार के किसी भी सच्चे वैज्ञानिक से खोज कराय। चाहे प्राचीन आयुर्वेद के आधार पर चाहे आधुनिक विज्ञान के आधार संसार का केवल एक ऐसा भोजन गो दुग्ध है। यह आज से नहीं आदि सृष्टि से ही ऐसा माना जाता है। वेद ने गाय को अमृत का केन्द्र कृश दुर्बल व्यक्ति को हृष्ट पुष्ट बनानेवाली सुन्दरता तेज और निरोगता देनेवाली बताया है परीक्षा के पश्चात् आयुर्वेद इसकी पुष्टि करता है। महाराज युधिष्ठिर से प्रश्न हुआ कि अमृत क्या है? तो उन्होंने गो दुग्ध बताया। भगवान कृष्ण ने इस अमृत को प्राप्ति को स्वयं गऊ चराई। महात्मा गान्धी का कहना था गाय के दूध को दूध नहीं अमृत कहना चाहिए। अमद साहब कहते थे कि गाय का दूध दवा घी औंस बीमारी है। हकीम अजमल

कीनिया (दक्षिण अफ्रीका) में
माऊ-माऊ आन्दोलन के संचालक प्राण

जोमो कानियाटा

आप आज कल जेल में नजरबन्द हैं। कीनिया की सरकार पूरा बल लगा कर भी आन्दोलन कुचलने में असफल रही है। आप आर्यसमाज के आन्दोलन क रुचलने में असफल रहो है। आप आयसमाज के आन्दोलन से बड़ी सहानुभूति रखते हैं।

हैदराबाद में आर्यसमाज आन्दोलन के प्राण

आर्यप्रतिनिधि सभा हैदराबाद के प्रधान
श्री नरेन्द्र जी एम० एल० ए०

खां और डाक्टर गुलाम जीलानी साहब भी इसी का समर्थन करते हैं। गाय शान्ति की मूर्ति सूखा भूसा खाकर अमृत प्रदान करती है। इस अमृत को पान करनेवालों में भी परोपकार और विश्वशान्ति की भावना उत्पन्न होती है और वह उसके लिए त्याग भी कर सकता है। पर जो अपने पेट की कब्र भरने को दूसरे जीव को मार कर खा जाता है वह "विश्व शान्ति" क्या कर सकता है। दिखावे की कुछ कहे पर ऐसा व्यक्ति कभी भी शान्ति स्थापित नहीं कर सकता। अत हम अपने प्रधानमन्त्री से निवेदन करेंगे आज भारत की दुर्बल, क्षीण गौएँ कसाई की छुरी से भयभीत होकर कांपती हुई नेत्रों में आँसू भर कर आपसे प्रार्थना कर रही हैं कि हे प्रभु, अहिंसा के अवतार! विश्वशान्ति के संस्थापक! हम दीन भी विश्व के भीतर ही हैं। फांसी की सजा मिलने पर पहले अर्ज सुन जाती है सफाई का अवसर दिया जाता है। रहम की प्रार्थना को भी अवसर दिया जाता है। पर हमें यह भी नहीं बताया जाता कि किस अपराध में हमें वध किया जाता है? समस्त विश्व के लिए आपके हृदय में दयाभाव है हमारी ओर से ऐसी निष्ठुरता क्यों है? जबतक हम निरपराध पशुओं का वध जारी है, विश्वशान्ति असम्भव है? यदि अवसर मिला तो [illegible] के अगले अंकों में हम इस विषय पर और प्रकाश डालने का यत्न करेंगे। ओं शम्।

आर्य समाज के समस्त पत्रों में सबसे अधिक छपने वाला आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र—

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

आर्य-मित्र

वर्ष ५७ — अंक १९

लखनऊ—रविवार २० जून तदनुसार आषाढ़कृष्ण १४ सम्वत् २०१२ सौर ६ आषाढ़ दयानन्दाब्द १३० सृष्टि सम्वत् १९७२९४९०५५

इस पार या उस पार ?

आज १९ जून है, २८ मार्च से दैनिक आरम्भ किया गया था, इन २ माह और २१ दिनों में जब हम अपने आगे बढने को, आर्य जनता के सहयोग को देखते हैं तो हमारा मस्तक गर्व से ऊंचा उठ जाता है। देश में बढते हुए विरोधी विचार धाराओं के प्रवाह को रोकने में हमने जो आरंभिक सफलता प्राप्त की है, 'मित्र' ने अपना जो स्थान बना लिया है वह वैदिक सिद्धांतों की गरिमा का परिचायक है। इस अरसे में जनता की निराशा, शका और धीमी गति दूर हुयी और चारों ओर से एक ही आवाज सुनायी दे रही है कि कुछ भी हो 'आर्यमित्र' दैनिक बद न होना चाहिए, हम इस आवाज के पीछे स्वर्णिम सूर्योदय को देख रहे हैं।

हम देख रहे हैं आज एक समता जिसमें सम्पूर्ण राष्ट्र सुखी, उन्नत और सच्चे अर्थों मे वेदानुयायी हो, अपने गौरव के अनुकूल जो सपूर्ण विश्व का मार्ग दर्शन करता हुआ, नए युग के लिए सफल प्रयत्न कर सके। मदिर-मस्जिद और गिरजाघर पर 'ओ३म्' की पावन पताका लहराती हो। यह सपना पूरा करने के लिए हम 'आर्य-मित्र' को सफल साधन के रूप में देख रहे हैं।

असफलता आज तक तो जीवन में देखी नही—भविष्य में भी हमें प्राप्त करने की आशा नही और यह मार्ग तो समस्त पूर्व पुरुषों के हृदय की इच्छा पूर्ति हेतु तैयार किया जा रहा है, इसमें असफलता की भावना भी क्यों हो, यह समझ नहीं आता।

कार्य बहुत बड़ा है, प्रतिदिन २००) से अधिक का व्यय है, धन का काम बातों से तो चलेगा नही, धन हमारे पास है नही, फिर भी चलना अवश्य है, तो चला कैसे जाए, यही एक प्रश्न है।

हम इस विषय पर निरतर सभी दृष्टिकोणों से सोच रहे हैं, समस्या के सारे पहलू हमारे सामने हैं, सफलता का कारण और मार्ग की रुकावटें भी प्रत्यक्ष हैं अत आज सभी पर विचार करते हुए यह सोचना है कि इस पार से उस पार जाने के लिए क्या किया जाए ?

मार्ग की सबसे बडी बाधा आर्य-मित्र प्रकाशन लिमिटिड की असफलता है। हम कई स्थानों पर गए तो हमें इसी विषय पर कडी फटकार सुननी पडी। जनता कहती है कि वह ७० हजार रुपया कहा गया ? एक दिन दैनिक निकला नही और धन का पता नही ? पहली बार भी तो जो सग्रह करने आए थे वे भी आर्य समाज के अग्रणी नेता थे, तो आज के ही अधिकारियों का क्या विश्वास ?

यह कोई भी मानने को तैयार नही कि वह पृथक कपनी थी, सभा का उससे सबध नही था जनता कपनी और सभा को एक समझती है। किन्तु इस समस्या का समाधान तो आज हो नही सकता, अब तो विचारणीय यह है कि क्या हम पिछली भूलों को सुधारने का यत्न करना चाहेंगे या उन्हें याद करते करते आगे भी भूलें ही करते रहेंगे ? सेनाए लडती हैं हारती हैं, लाखों की हानि सहता है पर फिर भी समय आनेपर आगे बढने की ही सोचती हैं। यही अवस्था आज हमारी है, हम अपने अपराधों से एक बार हार चुके, किन्तु इस बार भी हार जाना क्या बुद्धिमत्ता होगी ?

इस विषय में आर्य जनता से हम इसी दृष्टिकोण से विचार करने की प्रार्थना करते हैं। वह सोचे, कि तब दैनिक ७० हजार रुपया इकट्ठा करनेपर भी नही निकला था और आज बिना एक पैसा भी सग्रह किए ३ मास १९ दिन से निकल रहा है वह असफलता थी यह सफलता है फिर इस सफलता को स्थायी रखने के लिए क्या प्रयत्न नही होने चाहिएं ?

इसके साथ ही दूसरी रुकावट है उच्च वर्ग का असहयोग। साधारण आर्य जनता ने जिस उत्साह से हमारी प्रार्थना पर ध्यान दिया है उसके प्रति हम रोम-रोम से आभारी हैं किन्तु प्रतिनिधि सभा के अन्य उच्च कार्य-कर्ताओं ने जिनका प्रात में प्रभाव है उतना सहयोग नही दिया, जितना देना चाहिए था। यह अत्यत खेद का विषय है। प्रतिनिधि सभा के अतरग सदस्यों मे से श्री प्रो० रत्नसिंह जी, श्री रामबहादुर जी पूरनपुर व श्री ईश्वरदयाल जी आर्य तथा कुंवर नेत्रपाल सिंह जी व श्री मोहनलाल जी आर्य, श्री जयदेवसिंह जी एडवोकेट श्री जयचद जी, श्री केदारनाथ जी झासी आदि का सहयोग ही अभी तक 'मित्र' को प्राप्त हो सका है।

मान्य गगाप्रसाद जी उपाध्याय ने भी अपने पास से ५०) भेजकर अन्यों का मार्ग दर्शन किया। यदि अन्य अतरग सदस्य व अधिकारीगण भ इसी प्रकार 'मित्र' को चलाने के लिए बल लगा देते तो हमे इतनी परेशानी में से न गुजरना पडता। राजकुमार रणजय सिंह जी ने १५१) स्वय दिए—प० महेन्द्रप्रताप जी शास्त्री प्रिंसपिल डी० ए० वी० कालेज लखनऊ भी अपने अमूल्य परामर्श व निर्देशन से 'मित्र की उन्नति के लिए यत्नशील हैं, श्री कालीचरण जी आर्य के उत्साह और प्रेरणा का तो यह सारा परिणाम ही है अत आवश्यकता यह है कि अन्य महानुभाव भी इसी प्रकार सहयोग देते हुए यह अनुभव करें कि 'मित्र' हमारा है और हमें ही इसे चलाना है।

हमें यह भी ज्ञात हुआ है कि कुछ व्यक्ति आज भी दैनिक 'मित्र का विरोध करने में लगे हैं। हमारी नम्र सम्मति में यह ठीक नही।

विरोध की प्रवृति अत्यन्त हानि-कर एव निंदनीय है। दैनिक चलेगा ही, यदि आर्यसमाज ने जीवित, जागृत शक्ति के रूप में आगे बढता है। ससार की कोई लौकिक शक्ति उसके मार्ग को बाधा नही बन सकती। दैनिक नहीं चलेगा, यह प्रचार करने वाले व्यक्ति, आर्यसमाज की उन्नति के माग में रोडा बन रहे हैं जिसकी किसी भी आर्यसमाज के शुभचिंतक से आशा नही की जा सकती।

जब तक निकला नही था तब तक प्रचार किया जाता था कि निकल नही सकता। अब चल रहा है तो कहा जाता है कि चल नही सकता हम पूछते हैं कि इस भ्रात प्रचार से क्या लाभ ? हम केवल यह चाहते हैं कि आर्यसमाज उन्नत हो। आर्यसमाज की उन्नति के लिए हम चाहते हैं कि अपना प्रबल प्रेस हो, इससे अधिक हम कुछ नही चाहते।

जिस दिन से दैनिक आरम्भ हुआ है हम जानते हैं कितनी चिंताए और परेशानिया हमें उठानी पड रही हैं। प्रबन्ध है सपादन है, पत्रों के ढेर से उत्तर हैं, और सब सो बडी अर्थ की चिंता है। २००) प्रतिदिन का व्यय, पास एक पैसा नही फिर भी हम कहना चाहते हैं कि हम सफल हैं और असफल होंगे नही।

सभी से हमारा अनुरोध है कि पुरानी बातों को भुला दीजिये व्यक्तिगत राग द्वेष को मिटाइये, और यह समझिए कि यह आर्यसमाज के गौरव की रक्षा का प्रश्न है। आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश की परीक्षा का अवसर है, क्या हम आर्य भाई इस परीक्षा में अनुत्तीर्ण होना चाहेंगे ?

जनता की नीद को तोडने के लिए जितना लिखा जा सकता था हम लिख चुके, नीद टूट भी चुकी है पर-तन्द्रा शेष है अब सफलता के लिए पहला मार्ग है कि हमारी सभा के माननीय प्रधान श्री पूर्णचन्द्र जी व अन्य प्रभावशाली अधिकारीगण एक

प्रतिनिधि मण्डल बनाकर 'आर्यमित्र' के लिए नगर-नगर का दौरा करें। अभी तक प्रांत व सार्वदेशिक सभा के प्रधान मन्त्री श्री कालीचरण जी आर्य ने ही आर्यमित्र के लिए दौरा किया है व थोड़ा समय दिया है प्रो० रत्नसिंह जी ने। मन्त्री जी ७ दिन से ज्वराक्रांत हैं ऐसे में यदि अन्य व्यक्ति समाजों में पहुंच प्रार्थना करते तो समस्या का समाधान हो जाता।

दूसरा मार्ग यह है कि जनता किसी के पहुंचने की बाट न देखकर अविलंब सहयोग दे। पूराबल अब आर्य समाज को दैनिक आर्यमित्र के सचालन में ही लगा देना चाहिए।

प्रतीक्षा का अधिक अवसर नही रहा, घर में आग लगी हो तो सोचना कैसा ? विरोधी शक्तियों ने जब चुनौती दे रखी हो तब मौन क्यों ? निर्णायक अवसर पर निरतर आगे बढ़ने की तैयारी में हिचकिचाहट कैसी ?

आर्य बधुओ, दैनिक आर्यमित्र के प्रकाशन से लखनऊ के पौराणिक दल में खलबली मच गयी है। उन्होंने आर्य समाज को गालिया देते हुए शास्त्रार्थ के लिए चैलेंज दिया है, दूसरो ओर ईसाई पूरे बल से हमें मिटाने पर तुले हैं, ऐसे में क्या आर्य महर्षि का महान गौरव झुकने देंगे ? यह जलता प्रश्न है।

आज हमें निर्णय करना है कि इस पार या उस पार ? जीत या हार ? जीवन या मृत्यु ? क्या चाहते हैं आप ?

अभी तक केवल चंद समाजों ने १०) मासिक देने का बचन दिया है। धन तो कुछ का ही आया है, ५०००) की अपील की थी वह भी अभी पूरी नही हुई। क्या यह सब कुछ हम सभी के लिए लज्जा का विषय नही है !

हम सोचें गंभीरता से और कर्तव्य का निर्णय कर लग जावें ! जीत तो होगी ही, हारना आर्य नही जानते यह अटल विश्वास है। इस पार से उस पार जाने के लिए करिए प्रयाण अभियान, यही समय की पुकार है……आर्य जनता सुने, यही हम चाहते हैं।

लखनऊ सनातन धर्म सभा के मंत्री का प्रलाप !

हमारे १५ जून के दैनिक में प्रकाशित संपादकीय की आलोचना करते हुए जो विज्ञप्ति सनातन धर्म सभा के मंत्री ने प्रसारित की है उसे हम एक अज्ञानी व्यक्ति का प्रलाप मात्र समझते हैं ! इस में महर्षि दयानन्द व आर्य समाजियों पर झूठ बोलने, गाली देने का आरोप लगाया है। इस में हमें उल्लू, अंधा आदि विशेषणों से संबोधित करते हुए शास्त्रार्थ के लिए, समस्त आर्य समाज को ललकारा है !

विज्ञप्ति में जो कुछ अन्य बातें हैं उन को पढ़कर कोई भी भद्र व्यक्ति इन मंत्री महानुभाव की बुद्धिमत्ता पर हसे बिना न रह सकेगा ? इन्होंने हमें विज्ञप्ति में ३-४ बार चुनौती दी है किन्तु हमने जो १५ जून के अंक में इन्हें सत्य निर्णय के लिए आह्वान किया था, उसका उत्तर तक लिखने का साहस नही किया !

वास्तविक घटना यह थी कि "एक मेवालाल नामक व्यक्ति की जीभ काटकर काली माई पर चढ़ाने, व पुन: कालीमाई द्वारा जीभ लग जाने के प्रचार को हमने असत्य घोषित किया ! इस पर पौराणिक दल बौखला उठा और लगा आर्य समाज, आर्यमित्र महर्षि दयानन्द पर गालियों की बौछार करने, जरा आप इनकी भाषा का नमूना देखिए—

"है कोई ऐसा अन्धा आर्यसमाजी जो अश्विनीकुमारों की स्तुति कर आंख वाला बन जाय ?"

"है कोई ऐसा नामर्द आर्यसमाजी जो तपस्या द्वारा मर्दानगी पा जाय ?"

"है कोई ऐसा आर्यसमाजी जिसे जलती हुई आग में डाल दिया जाय और वह अश्विनीकुमारों की स्तुति द्वारा बच जाये ?"

"है कोई ऐसा आर्यसमाजी जो अपने मरे हुए बन्धु या पुत्र को देवताओं की स्तुति द्वारा जिला सके ?"

"आर्यसमाजी जो थे, और उस सत्य बात को स्वीकार कर लेने से सारा किला जो ढह जाता ? स्वामी दयानन्द जी के नकली सिद्धांत की पोल जो खुल जाती। आर्यसमाज के ढहते हुए किले की रक्षा तथा स्वामी दयानन्द के नकली सिद्धान्तों की रक्षा के लिए झूठ बोलना, गाली देना तथा ललकार की दुहाई देना आवश्यक था।"

झूठ बोलना तथा गाली देना ये दोनों आर्यसमाज के प्रमुख सिद्धान्त बन गये हैं। आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द जी ने अपने सत्यार्थ-प्रकाश में अनेक स्थानों पर झूठी बातें लिखकर ऋषि मुनियों को अनेक गालियां सुनाई हैं। उनके चेले आर्य-समाजी भी इन्हीं की पदपंक्ति का अनुसरण करने में अपना परम सौभाग्य समझते हैं।

अंत में मंत्री महोदय लिखते हैं—

"मैं आर्यप्रतिनिधि सभा एवं लखनऊ के समस्त आर्यसमाजों को मूर्तिपूजा विषय पर शास्त्रार्थ करने के लिए खुला चैलेंज देता हूं। यदि उनमें साहस हो तो वे "स्वामी शिवचरण गिरि मन्दिर श्री बड़ी काली जी चौक लखनऊ" इस पते पर शास्त्रार्थ विषयक लिखा पढ़ी करके मैदान में आ जायँ और सत्यासत्य का निर्णय करलें।"

ऊपर की पंक्तिया स्वय बोल रही हैं कि यह सनातन धर्म सभा के मन्त्री कितने पानी में हैं ! धर्म ज्ञान से शून्य वेद को न समझ अंधकार में पड़े न जाने किस हवा में बह रहे हैं !

इन्होंने इस विज्ञप्ति द्वारा उस महापुरुष का अपमान किया है जिसके गुण गान करता संसार नहीं अघाता। जिसकी विद्वता दूरदर्शिता, योग्यता और महानता के आगे गांधी-टैगोर सुभाष जैसे महान् पुरुष झुके उस महान पुरुष पर कीचड़ उछालने का साहस हमारे इन भ्रात बंधु ने किया है।

क्या कहें इस अज्ञानता पर ! कौन नही जानता कि राष्ट्र की समस्त जागृति का जनक महर्षि दयानन्द था। वह प्राणि मात्र का उद्धारक मानवता का उपासक संसार में प्रकाश किरणें छिटकाने आया था।

किंतु सूर्य पर धूल डालनेसे सूर्य का कुछ बिगड़ता नहीं। सत्य-सत्य है असत्य-असत्य। इसके निर्णय के लिए हम शास्त्रार्थ का चैलेंज स्वीकार करते हैं। विधिवत पत्र व्यवहार जिला सभा की ओर से प्रारम्भ कर दिया गया है। किंतु हम इन दौरात्मक मतवादियों से कहना चाहते हैं कि इस प्रकार के अभद्र प्रचार से क्या वे अपनी बात को ऊंचा उठा सकेंगे ! क्या यही आप का आदर्श है !

मूर्ति को भगवान वेद नहीं मानता, शास्त्र नही मानते, संसार नहीं मानता वह जड़ है, अपनी रक्षा नही कर सकती, फिर निर्माण या संहार क्या करेगी।

जो काली माई की मूर्ति टूट जाने पर अपने को नहीं जोड़ सकती, वह किसी की कटी जीभ क्या जोड़ पाएगी !

हम पूछना चाहते हैं कि यदि वह चमत्कार सत्य था तो आज फिर वही चमत्कार यह लोग दिखाने का साहस क्यों नही करते !

रही स्वामी दयानन्द जी द्वारा विष निकाल देने की घटना की इस घटना से तुलना की बात तो हमारा निवेदन यह है कि यह दोनों दो पृथक प्रकार की घटनाएं हैं। विष पीकर औषधि अभ्यास से निकाल देने वाले व्यक्ति तो बहुत से आज मिल जाएंगे ! किन्तु अंग भगकर तुरन्त जोड़ने वाले केवल आप ही दिखायी पड़े हैं ! और यदि उसे आपके कथनानुसार महर्षि का चमत्कार ही मान लें तो भी महर्षि तो महर्षि थे वे तो आज हैं नही, न हम उनसे हो सकते हैं पर श्री भक्त मेवालाल जी तो उपस्थित हैं, क्यो नही वे अपना चमत्कार पुनः दिखला कर आर्य जनता को अपना भक्त बना लेते !

इस विषय पर अधिक कुछ न लिखते हुए हम आर्य जनता से कहते हैं कि वे अपना कर्तव्य निर्णय कर ले। आंखें खोलकर देखिए, अभी देश में कितना अंधकार है ? यह चुनोती लखनऊ सनातन धर्म की आर्यमित्र को या स्थानीय आर्य समाज को ही नहीं है वरन् समस्त अधकार ने प्रकाश को ललकारा है। अज्ञान ने ज्ञान को चुनोती दी है क्या आर्य जनता आज कर देश से शेष पौराणिक मत-वाद मूर्ति पूजा और गुरुडम को मिटाने का प्रण लेगी। गाली-गलौज—और प्रलाप हमें डरा न सकेंगे, हम अडिग हैं, प्रतिज्ञा बद्ध हैं मूर्तिपूजा और अंध-विश्वासों को मिटाने के लिए। संसार की कोई शक्ति हमें मार्ग से हटा नहीं सकती। यह सभी को समझ लेना ही चाहिए।

"शुभ कामना"

आर्य मित्र के भव्य भाल पर अंकित यह संदेश रहे।
कृण्वन्तो विश्वमार्य्यं, इसका एक मात्र उद्देश्य रहे ॥
आर्य मित्र का हृदय पटल अभिनव भावो से भरा रहे।
रोम रोम से मानवता की इसके मधुरस धार न हो ॥
सकल सृष्टि का ले विधान बढ़ चले सफल संधान लिये।
नव नीति प्रीति शुभ रीति क्रान्ति गौरव महान् उत्थान लिये ॥
बज उठे विश्व की हृदय तंत्रियां नव अनुराग विकास लिये।
सकल विश्व के नेत्र मित्र को देखें अभितोल्लास लिये ॥
दिग्दिगन्त तक हो असीम विस्तार क्षेत्र नव भेष बढ़े।
आर्यमित्र ! संदेश "भास्कर" देश पढ़े सब देश पढ़े ॥

विद्या भास्कर शास्त्री
बरेली

राजा जी और राष्ट्र-भाषा हिन्दी

[लेखक—प्रोफेसर भूदेव शर्मा, कानपुर]

अभी हाल में हमारी केन्द्रीय सरकार ने केन्द्र की समस्त प्रतियोगिता परीक्षाओं को हिन्दी के माध्यम से लेने का केवल प्रस्ताव ही रखा है लेकिन दक्षिण भारत में इस दिशा में कुछ दिन से विरोध भाव उभर रहा है—इस सम्भावना को ही लेकर एक बवण्डर खड़ा कर रहा है। कुछ सिरफिरे युवकों की बड़बड़ाहट समझकर देश के विचारशील व्यक्ति इस काम को उपेक्षा की दृष्टि से ही देखते रहे हैं। लेकिन दक्षिण भारत में किसी 'स्वदेशी' नामक समाचार पत्र में प्रकाशित श्री राजगोपालाचार्य जी के एक लेख ने स्थिति की भयावहता का पूर्वाभास एवं संकेत स्पष्टतया में दे दिया है। उसी लेख के हूबहू अनुवाद देश के समस्त पत्रों में प्रकाशित हुए हैं। पूरे लेख के अभाव में हमें अपने इस लेख में उन्हीं उद्धरणों को आधार मानकर अपने विचार प्रकट करने पड़ रहे हैं।

राजाजी की हिन्दी माध्यम पर दो तीन मुख्य आपत्तियां निम्न प्रकार हैं

"किसी प्रदेश विशेष के व्यक्तियों को किसी दूसरे प्रदेश के नागरिकों को अपनी भाषा पढ़ने के लिये विवश करने का अधिकार नहीं है। ऐसा करने से आपसी प्रेमभाव को ठेस लगेगी और इससे घृणा एवं कटुता बढ़ेगी।"

हम जानते हैं कि ऐसे ही विचार और बहुत से अहिन्दी भाषी व्यक्तियों के होंगे। और हम भी राजा जी के इन विचारों से अक्षरशः सहमत हैं। लेकिन हमें आश्चर्य इस बात का है कि यह आपत्ति राष्ट्रभाषा के माध्यम माने जाने पर कैसे लागू की जा रही है। आज हिन्दी किसी प्रदेश विशेष की न होकर समूचे देश की राष्ट्रभाषा है। समस्त देश के सभी प्रान्तों के मतदाताओं व वर्गों द्वारा चुने हुए सदस्यों द्वारा जो भारतीय संविधान बना, उसमें एक धारा द्वारा हिन्दी को समस्त देश की एक राष्ट्रभाषा सभी सदस्यों की सम्मति से स्वीकार किया गया और अंग्रेजी के स्थान पर उसे स्थानापन्न करने के लिये १५ वर्ष का लम्बा समय भी निर्धारित किया गया और उस समय में से सात वर्ष बीतने के बाद यदि केन्द्रीय सरकार हिन्दी को माध्यम बनाने का विचार कर रही है तो कौन अपराध कर रही है। यदि देश की राष्ट्रीयता एवं एक सूत्रबद्धता में किसी प्रदेश विशेष के नागरिकों को कुछ असुविधा होती है और कुछ प्रयत्न अपेक्षित होता है तो देश के दूसरे प्रान्तों के समान उन्हें उसे राष्ट्र हित में सहर्ष स्वीकार करना चाहिए और देश की एकता की ओर होने वाली प्रगति में चौगुने उत्साह से काम करना चाहिए। यदि सैकड़ों वर्षों से राजसी भोग भोगनेवाले देश के राजा, महाराजा, ताल्लुकेदार और बड़े २ जिमींदार अपने अपने स्वार्थ को लात मारकर देश की एकता की पंक्ति में खड़े होने के गौरव का अनुभव कर रहे हैं और द्वेषभाव की घृणा, एवं कटुता का अनुभव नहीं कर रहे तो दक्षिण भारत के वे निवासी जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम के समय में गाँधी जी की इसी एकता की प्रेरणा से लाखों की संख्या में हिन्दी सीखना प्रारम्भ कर दिया था अब स्वतंत्र होने पर अपनी राष्ट्रभाषा को अपनाने के लिए अपेक्षित थोड़े से परिश्रम से कैसे विरत हो सकते हैं तथा घृणा एवं कटुता के शिकार हो सकते हैं।

राजा जी देश के चोटी के सम्भ्रान्त नागरिक हैं। समूचे राष्ट्र को उनके व्यक्तित्व उनकी विद्वत्ता, दूरदर्शिता एवं उनकी पैनी सूझ बूझ पर गर्व है। लेकिन कदाचित राजा जी यह नहीं जानते कि उनके इन प्रान्तीयता तथा अन्तर्राष्ट्रीय विचारों से देश के करोड़ों नागरिकों को कितनी ठेस पहुँची है। यदि राजाजी जैसे महानुभाव राष्ट्रीय प्रयत्नों व कार्यों को इस तरह की संकीर्णता एवं धूमिल दृष्टि से देखने लगेंगे तो दूसरे साधारण नागरिकों की क्या दशा होगी। हमें आन्तरिक दुःख है कि आज राजाजी हिन्दी को राष्ट्र भाषा न मानकर प्रदेश विशेष एवं जाति व समाज विशेष की भाषा मान रहे हैं। उन्हीं के शासनकाल में बने संविधान को स्वयं ही ठुकरा रहे हैं। यदि राजाजी के यही विचार थे तो उन्हें उसी समय स्पष्ट विरोध करना था कि देश में किसी किसी एक राष्ट्र भाषा की कोई आवश्यकता ही नहीं है। आज सात वर्ष बाद राजाजी का हिन्दी को प्रादेशिक भाषा मात्र कहना हिन्दी का अपमान नहीं है बल्कि राष्ट्र भाषा का निरादर है। अपने संविधान का प्रति विद्रोह है। यदि संविधान के धाराओं के विरुद्ध कार्य करने वाले अपराधी एवं विद्रोही माने जाकर दण्डित हो सकते हैं, यदि संविधान द्वारा स्वीकृत राष्ट्र ध्वजा एवं राष्ट्रगीत का अपमान करने वाले दण्डित समझे जा सकते हैं तो राष्ट्रभाषा को प्रादेशिक भाषा मानने का अपराध करनेवाले भी उसी प्रकार अपराधी माने और दण्डित किये जाने चाहिये। किसी प्रजातन्त्र शासन में कदाचित सिद्धान्त एवं व्यवस्था का विशेष मूल्य होता है चाहे कितना ही बड़ा व्यक्तित्व हो उसका एक इकाई के अतिरिक्त कोई अधिक मूल्य नहीं होता। हमारी दृष्टि ऐसे विचारों को प्रकट करके राजा जी ने ऐसा ही अपराध किया है। हां संविधान बनाने वालों को अपने ही संविधान को पददलित करने का अधिकार किसी धारा के द्वारा उन्हें प्राप्त हो तो बात ही दूसरी है।

आगे अपने लेख में वे सरकार का यह अधिकार मानते हैं कि "वह अपने नागरिकों पर कोई नया टैक्स लगाए और उनकी इच्छा के विरुद्ध उनसे बलात उसे वसूल भी करे लेकिन यदि वह किसी को किसी भाषा के पढ़ने के लिये विवश करती है तो वह कभी सफल न होगी और अन्त में ऐसी सरकार को घृणा एवं कटुता का पात्र बनना पड़ेगा।'

राजाजी के व्यक्तित्व का पूरा ध्यान रखते हुए पूरे ध्यान से इस वक्तव्य को पढ़ने के बाद भी हम उनके इस तर्क की कुछ सार्थकता को समझने में असमर्थ ही रहे। राजा जी एक दार्शनिक विद्वान् एवं न्यायशास्त्री समझे जाते हैं लेकिन इस प्रसंग में हमारी समझ में यह बात नहीं आई कि यदि किसी व्यवस्थित सरकार को अपने नागरिकों से उनकी इच्छा के विरुद्ध भी किसी नए टैक्स के लगाने एवं उसे वसूल करने का नैतिक अधिकार है और ऐसा करने से ऐसी सरकार को उन नागरिकों की घृणा एवं कटुता का पात्र बनने की सम्भावना नहीं है तो उसे राष्ट्र के हित में, देश की एकता के लिये अपने सरकारी काम काज को व्यापक रूप से समूचे देश में सफलतापूर्वक चलाने के लिये राष्ट्र भाषा को अपना माध्यम बनाने का अधिकार क्यों नहीं है और यदि वह सात वर्ष बाद इस उद्देश्य को क्रियात्मक रूप देने का विचार करती है तो क्या अन्याय और वह क्यों घृणा एवं कटुता का पात्र बनेगी तथा आपसी सद्भाव को ठेस पहुँचावेगी। हमारी समझ में राजा जी जब एक बार एक बात को न्याय मान लेते हैं तो दूसरी बात को मानने के औचित्य को कैसे अस्वीकार कर सकते हैं।

आगे चलकर राजाजी राष्ट्र भाषा हिन्दी के स्वरूप और उसकी रूपरेखा पर भी सन्देह करते हैं। आपकी दृष्टि में अभी हिन्दी अपने बचपन में है, अभी वह परिपक्व भाषा भी नहीं है। और उसका अभी समुचित विकास भी नहीं हुआ है। इस मत की पुष्टि में राजा जी कहते हैं कि "जहाँ अंग्रेजी को नेहरू जी से लेकर साधारण पढ़े लिखे व्यक्ति बोल पढ़ और समझ एवं समझा सकते हैं, वहाँ हिन्दी में विचार प्रकट करने में उन्हें बड़ी कठिनाई का अनुभव होता है।'

इस सम्बन्ध में हमें केवल यही कहना है कि राजा जी ने ऐसे निराधार एवं निस्सार बातें लिखकर न केवल अपनी अनभिज्ञता प्रकट की है बल्कि भाषा विज्ञान विशारदों की दृष्टि में अपने को उपहासास्पद भी बनाया है और बहुतों को यह सोचने के लिए विवश किया है कि सम्भवतः राजाजी को न भारतीय भाषाओं का समुचित बोध है और न भारत की क्या विश्व की सबसे प्राचीन संस्कृत भाषा का ही। सम्भवतः वे अंग्रेजी के ही पालने में पले हैं और वे अंग्रेजी के माध्यम से ही सोचने व समझने के अभ्यस्त हैं। अन्यथा वे ऐसी लचर बातें कभी न कहते।

हिन्दी अपने बचपन में है। अथवा बुढ़ापे में तथा दूसरी ऐसी ही लचर बातों के सम्बन्ध में हम किसी दूसरे लेख में प्रकाश डालेंगे। यहाँ तो हम केवल यह पूछना चाहते हैं कि जो बात राजा जी को सात वर्ष बाद पता लगी क्या उसका पता उस समय नहीं था, जब भारतीय संविधान में उसे राष्ट्रभाषा स्वीकार किया जा रहा था। यदि वे उस समय इन तथ्यों को संविधान बनाने वाले सदस्यों के सामने उपस्थित करते तो कुछ तात्विक फल भी निकलता। आज इतने दिनों बाद इस प्रश्न को उठाने का मतलब कुछ समझ में नहीं आया। उस समय क्यों नहीं उन्होंने तामिल आदि किसी भाषा को राष्ट्र भाषा बनाने का प्रस्ताव रखा। रही लोकसभा व राज्य सभा में हिन्दी को बोलने व समझने की कठिनाई की बात, हमारी समझ में यह तथ्य सबसे अधिक उपहासास्पद है। हम राजाजी से विनम्र भाव से पूछना चाहते हैं कि यदि कुछ दक्षिण भारत के सदस्य अथवा दूसरे सदस्य कुछ कम हिन्दी बोल व समझ नहीं पाते तो क्या हिन्दी की अपरिपक्वता के कारण अथवा हिन्दी के ज्ञान की प्राप्ति के लिये अपेक्षित अध्ययन की कमी के कारण। क्या कुछ ऐसे सदस्य हैं जो हिन्दी के भरपूर अध्ययन के बाद भी अपने को हिन्दी बोलने व समझने में असमर्थ पाते हैं। क्या जितना समय उन्होंने अंग्रेजी के पढ़ने में लगाया है उसका शतांश भी हिन्दी के पढ़ने में लगाया है। यदि ऐसा नहीं तो किस आधार पर राजाजी ऐसी धारणा बनाये हुये हैं। क्या संसार की कोई भी भाषा बिना पढ़े लिखे किसी को आई है जो हिन्दी ही सबको अनायास आ जाय। कई २ बार रुक २ कर और दुहरा कर उन्हीं को हिन्दी में बोलना पड़ता है जो हिन्दी पढ़ना अभी अपमान की बात समझते हैं। जो स्वतन्त्र होने पर भी और भारतीय भूमि में जन्म ग्रहण करके भी अभी "साहब मेड इन इंग्लैण्ड" ही बने हुये हैं। बहुत दिनों से तो ऐसे वर्ग के लोग इस प्रकार हकला २ कर अपना बड़प्पन प्रकट करते और अप्रत्यक्ष रूप से ही राष्ट्र भाषा का अपमान करने से भी नहीं चूकते यही तक अंग्रेजों पर भी पूरी तरह लग सकता है। क्या लोक सभा में ६० प्रतिशत ऐसे सदस्य नहीं हैं जो अंग्रेजी नहीं समझते और धाराप्रवाह से बोलने वालों की संख्या तो मुश्किल से पांच प्रति० ही होगी। लेकिन राजाजी और उनकी सी मनोवृत्ति रखने वालों का यही सिद्धान्त प्रतीत होता है कि जिसे वे समझते हैं उसे तो और सब समझने ही जाने चाहिये और यदि नहीं समझते तो मूर्ख

[शेष अगले पृष्ठ पर]

[पिछले पृष्ठ का शेष]

न मढ़ते हैं और जिस भाषा को वे नहीं समझते वह भाषा ही भौंडी अपरिपक्व एवं अविकसित है और उसके बोलनेवाले मूर्ख हैं। अन्यथा जिन्होंने २५ वर्ष पहले महामना मालवीय जी और पंजाब केसरी लाला लाजपतराय सरीखे समृद्ध वक्ताओं के शुद्ध हिन्दी में धाराप्रवाहिक घण्टों भाषण सुने हैं, वे कैसे विश्वास कर सकते हैं कि हिन्दी अपरिपक्व, अपूर्ण एवं अविकसित भाषा है। क्या जितने हिन्दी भाषी हैं वे सब अपने भावों को सुचारु रूप से हिन्दी में प्रकट करने में अपने को असमर्थ पाते हैं।

आगे राजाजी लिखते हैं हम तामिल भाषी अपने मलायली व कनड़ी भाइयों को तामिल भाषा के माध्यम से परीक्षा देने को बाध्य नहीं करते यहीं भी राजा जी ने वही भूल की है जो उन्होंने आरम्भ में की है। वे भूल जाते हैं कि आज यदि केन्द्रीय सरकार हिन्दी को अपना रही है तो वह केवल इसलिए कि वह आज राष्ट्र भाषा है। यदि तामिल राष्ट्रभाषा होती तो क्या वह समूचे भारत में न पढ़ी या लिखी जाती। क्या राजा जी उस समय भी यही तर्क उपस्थित करते। हाँ यदि कोई उत्तर भारत का व्यक्ति हिन्दी के प्रादेशिक रूप को पढ़ने के लिये दक्षिण भारत के लोगों को विवश करे तो अवश्य ही यह आपत्ति की बात हो।

यह सब कुछ होते हुये भी राजा जी के वक्तव्य के बाद लोक सभा में भारत के गृहमन्त्री माननीय श्री पन्त जी ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि सरकार अजमेर के अधिवेशन के समय पास हुए भाषा सम्बन्धी कांग्रेस के प्रस्ताव का अक्षरशः पालन करेगी और सभी हिन्दी के साथ मुख्य मुख्य प्रान्तीय भाषाओं के तथा अंग्रेजी के माध्यम से भी परीक्षार्थी परीक्षा दे सकेंगे। हम समझते थे कि इससे राजा जी को सन्तोष होगा लेकिन उसके कुछ दिन बाद ही जब श्री अशोक मेहता उनसे मद्रास में मिले तो पन्त जी के स्पष्टीकरण से भी राजा जी कुछ सन्तुष्ट प्रतीत नहीं हुए और उनका आग्रह यही रहा कि अंग्रेजी को ही अब तक रूप से इन परीक्षाओं का माध्यम बना रहने देना चाहिये क्योंकि जब अंग्रेजी की जड़ें यहाँ इतनी मजबूत हो चुकी हैं तो इसको इसी तरह पनपने देना चाहिये। राजा जी का यह तर्क भी हमारी कुछ समझ में नहीं आया। दक्षिण भारत के परीक्षार्थी जब तामिल के माध्यम से उत्तर दे सकते हैं तो फिर राजा जी का अंग्रेजी के लिए यह मोह और आग्रह क्यों? और यदि तर्क में कुछ सार है तो सौ वर्ष के बद्धमूल ब्रिटिश शासन को ही उखाड़ने के लिए क्यों भगीरथ प्रयत्न किया गया और इतने बलिदान किये गये। हजारों भारतीय नागरिक अब भी यह विश्वास करते हैं कि जहाँ तक शासन निपुणता का सम्बन्ध है हम भारतीयों से अंग्रेज कहीं अधिक योग्य एवं कुशल थे। फिर उन अंग्रेजों को ही यहाँ से क्यों भगाया गया। गम्भीरतापूर्वक विचार करने से पाठक देखेंगे कि वास्तविक स्थिति कुछ और ही है जिससे प्रेरित होकर राजा जी सीधे अपने उद्देश्य को प्रकट न करके इंग्लिश भाषाभाषी शैली में हेरफेर से दक्षिण भारत के स्वार्थों को अब ही वैसा ही ज्यूँ का त्यूँ बनाये रखना चाहते हैं जो उन्हें ब्रिटिश शासन में उपलब्ध थे और वे अच्छी तरह जानते हैं कि यदि हिन्दी के माध्यम हो जाने से दक्षिण भारत का यह प्रभुत्व नष्ट अथवा क्षीण हो जायगा।

यह सभी जानते हैं कि अंग्रेजी के माध्यम रहने से केन्द्र की प्रतियोगिता परीक्षाओं में दक्षिण भारत के छात्र अधिक अवसर पा जाते रहे हैं और वे आई. ए. एस. जैसी उच्च परीक्षाओं में सदैव अधिक संख्या में सफल भी होते रहे हैं। हिन्दी के माध्यम से यह प्रभुत्व नष्ट हो जायगा और दूसरे प्रान्त के प्रतिभाशाली छात्र भी इन ऊँचे पदों पर चुने जाने के अवसर पा जायेंगे, यही बात दक्षिण भारत के लोगों को सह्य नहीं इन्हीं के स्वार्थ की रक्षा के लिए संविधान में १५ वर्ष का लम्बा समय दिया गया था और अब ज्यों ज्यों यह अवधि समाप्त होती जा रही है, वे विक्षुब्ध होते जा रहे हैं और भीतरी उद्देश्य इनका ऐसा प्रतीत होता है कि इस अवधि तक तो हिन्दी को अवसर मिले ही नहीं और बाद में हिन्दी को अविकसित, अपरिपक्व एवं अपूर्ण तथा अनुपादेय ठहराकर संविधान में ऐसा संशोधन करा दिया जाय कि फिर अँगरेजी के माध्यम से दक्षिण भारत का प्रभुत्व भी जैसा का वैसा बना रहे। हमें विश्वास है कि इनके इस दुराग्रह से कुछ विलम्ब भले ही हो जाय लेकिन अब अँगरेजी राष्ट्रभाषा के स्थान पर कभी भी अवस्थित नहीं रह सकती और यदि दक्षिण भारतवासी इस दिशा में सजग रहते नहीं चेतते तो इस दौड़ में वे पिछड़ जायेंगे और उनकी भावी सन्तति उन्हें इस अराष्ट्रीय मनोवृत्ति पर कोसे बिना न रहेगी। साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि आज हिन्दी यदि राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन है तो वह हिन्दी भाषी प्रान्तों के प्रयत्न का फल है और न किसी की कृपा भावना का प्रसाद। अपने वे समस्त त्रुटियों तथा कमियों के रहते हुये भी उसमें राष्ट्रीयता की वह पुट मिली हुई है जो उसे अमर रखेगी। हिन्दी की सबसे बड़ी योग्यता एवं पूर्णता इस तथ्य में निहित है कि वह राष्ट्र के उत्कर्षापकर्ष के साथ ही उत्पन्न एवं उन्नत हुई है। आज यदि कुछ साहित्यिक-गण उसमें प्रतीत भी होती है तो वह इसीलिये कि विदेशियों ने इसे पनपने ही नहीं दिया। और यही एक ऐसा तत्व है जिसके वशीभूत होकर कुछ स्वार्थियों के अड़ंगे उपस्थित करने पर भी अवसर आने पर हिन्दी बलात् ही अपने राष्ट्र भाषा के पद पर आसीन हो गई। इससे तो राष्ट्रभक्त के प्रेमियों को प्रोत्साहित होना चाहिये था। उदयपुर चित्तौड़ के अभिज्ञ पुजारियों को यदि आज नेहरू जैसे तपे हुये संन्यासी ने फिर से चित्तौड़ में प्रतिष्ठित किया तो उनकी वर्तमान योग्यता एवं सम्पन्नता को देख कर नहीं अपितु राष्ट्र की आन व प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए की हुई उनकी अटूट प्रतिज्ञा के कारण। यह एक निर्विवाद सिद्धान्त है कि ठीक और असली परीक्षा के समय दूध पीने वाले मजनूँ सदैव ही पिछड़ जाते हैं और उस समय खून देने वाले मजनुओं का ही आदर व सत्कार होता है।

यह सत्य है कि अंग्रेजों के सर्व प्रथम दक्षिण भारत में प्रतिष्ठित होने से, वहाँ के निवासियों को अनेक सुविधायें रहीं और यह भी सत्य है कि जब उत्तर भारत वासी राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर अंग्रेजी को नहीं अपना रहे थे उस समय दक्षिण भारत के निवासियों ने अंग्रेजी में निपुणता प्राप्त करके ब्रिटिश शासन में अनेक भौतिक सुख सुविधायें प्राप्त की और दूसरे प्रान्त के लोग पीर, बावर्ची, भिश्ती बने ही बने रहे। लेकिन यह नहीं भूलना चाहिये कि यह तो एक आकस्मिक परिवर्तन था जो धूप छाँह के सदृश दक्षिण भारत के गगन में आया और चला गया। वैसे शङ्कराचार्य के दक्षिण भारत का मौलिक चरित्र वैसा ही उज्ज्वल निष्पाप एवं राष्ट्रीय है जैसा कि दूसरे प्रान्त वालों का। लेकिन इस समय का यह अंग्रेजी मोह कन्दरिया के अपने गले में मरे बन्दर के चिपटाये रहने के समान कम उपहासास्पद नहीं है। हाँ इस समय के इस बेसुरे राग से राष्ट्र की प्रगति में यदि कुछ बाधा पहुँची तो वह एक ऐसा कलंक होगा जिसको इनकी भावी सन्तति भी न मिटा सकेगी। हमें विश्वास है वहाँ के राष्ट्रभाषी तब ऐसी स्थिति उत्पन्न न होने देंगे।

हमें राजा जी की राजनीति का भी पता है और उस अवस्था का भी पता है जिसके वशीभूत होकर वे इतने विषय पर उतर आने को विवश हुए हैं। यह सर्वविदित है कि राजा जी गांधी-जी के आगे ही दाँये हाथ रहे हों आगे ही वे देश के चोटी के नेता रहे हों और आगे ही वे राजनीति क्षेत्र में चीन की सदी के चाणक्य समझे जाते रहे हों। मद्रास ने कभी उन्हें अपना नेता नहीं माना। जब जब राजाजी वहाँ के राजनीतिक रंगमंच पर उभर कर ऊपर पहुँचे, धुत्कार दिये गये। पाठक जानते हैं कि गांधी जी का पूर्ण समर्थन पाने पर भी मद्रास में वे अपना मन्त्रिमण्डल न बना सके थे। बाद में राष्ट्र के सबसे ऊँचे स्थान पर प्रतिष्ठित होकर भी जब वे मद्रास पहुँचे और नेहरू जी व कांग्रेस का पूर्ण बल व समर्थन पाकर भी उत्तर प्रदेश के पन्त जी के समान स्थायी एवं दृढ़ मन्त्रिमण्डल न बना सके और अन्त में विवश होकर उन्हें वहाँ की बागडोर दूसरों को सौंप कर राजनीति से सन्यास ही लेना पड़ा। इस विचित्र परिस्थिति में आज इस राष्ट्र के सेनानी में यह प्रतिशोध की भावना आ गई और अपने खोये हुए मसनद को मद्रासियों से पुनः पाने के लिए उन्हें राष्ट्रभाषा के प्रति इतना अपमानजनक तथा अशिष्टतापूर्ण कहना पड़ा तो पाठकों को आश्चर्य न करना चाहिये और यही सन्तोष करना चाहिये कि बकासुर रौरव पर कौरवों के पक्ष में पड़ा हुआ यह भीष्म परिस्थिति के वशीभूत होकर कुछ भी लिखे या कहे आखिर तृष्णा शान्ति के लिए जब भी उसे अर्जुनों के सोने चाँदी के गिलासों में शीतल जल पाने व पीने का इच्छुक वह कभी न होगा। उसे जीवन के अन्तिम वर्षों में भी आन्तरिक सुख राष्ट्रभक्त के प्रतीक उसी अर्जुन के गांडीव धनुष से छोड़े हुए तीर से उद्भूत पाताल स्रोत के पवित्रतम शीतल जल धारा के रसास्वादन से ही होगा और अन्त में ये अराष्ट्रीय सोने चाँदी के गिलास व कटोरे इधर उधर लुढ़के ही पड़े रहेंगे। हमें यह आशा और विश्वास रखना चाहिये कि राजा जी के हाथों से कभी कोई अराष्ट्रीय काम नहीं होगा।

अन्त में हम यही निवेदन करना चाहते हैं कि हमें मालूम है कि अनेक विद्वान इस प्रकार के विषैले प्रचार के होते पर जो चुप्पी साधे हुए हैं, वह इसीलिए कि वे जानते हैं कि ये काले बादल और कमजोर काली घटाएँ भारत के गगन में टिकाऊ नहीं हैं और अपने आप ही राष्ट्र के तीव्र एवं प्रबल झोंकों के सामने नष्ट हो जायेंगे। लेकिन साथ ही हम यह भी जानते हैं कि कभी चुप रहना भी बड़ा घातक एवं अनिष्टकारी सिद्ध हो जाता है, इसी प्रेरणा से इतने ये कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं, क्योंकि हम किसी से कम दक्षिण भारत को राष्ट्रवासी नहीं समझते और अपने इस दृढ़ संकल्प में किसी को कम अच्छा व भला भी नहीं रखते।

उपदेश विभाग की सूचना

सभा के अवैतनिक उपदेशक श्री पं० शोभाराम जी शर्मा सिद्धान्तालंकार सि० शास्त्री, सि० वाचस्पति आयुर्वेद शास्त्री म० नगला सामल पो० हाथरस जि० अलीगढ़ वर्तमान मंत्री आर्य समाज वृन्दावन का नाम सन् १९५४ की वार्षिक रिपोर्ट अवैतनिक प्रचारक संघ में नाम छपने से रह गया है। अत. सभा की ओर से आपको प्रचार करने का आदेश दिया जाता है।

काली चरण आर्य
सभा मन्त्री

वेद में इतिहास मानने वालों का नया पैंतरा

[श्री पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार मीमांसातीर्थ, आदर्श नगर, अजमेर]

> वेद में इतिहास नहीं है, यह मान्यता आर्य समाज की है किन्तु कुछ विद्वान प्रवाह में बहकर वेद में इतिहास सिद्ध करने का यत्न कर रहे है। इन्हीं नी पैंतरे बाजों की आलोचना प्रस्तुत लेख में विद्वान लेखक द्वारा की गयी है पाठक स्वय मनन कर निश्चय करें।
>
> —सम्पादक

क्या वेदों में इतिहास है ? इस पुस्तक को लिखा तो मैंने, प्रकाशक है आर्य साहित्य मण्डल लि०, अजमेर, और इसके लिखने की प्रेरणा दी श्री दीवान रामनाथ कश्यप धर्मशाला (काँगड़ा पंजाब) ने। आलोचना की वयोवृद्ध, विद्यावृद्ध, आर्य जगत के भूतपूर्व महारथी, ऋषि दयानन्द के भूतपूर्व भक्त, एवं वेदानुशीलक श्री पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर भट्ट (स्वाध्याय मण्डल, पारडी) जी ने।

इस आलोचन प्रत्यालोचन का परिणाम यह निकला कि जिन विद्यावृद्ध महानुभावों ने १६, २० अपने ऋषि दर्शनों की पुस्तकों में खुल्लम खुल्ला वेद में इतिहास माना था, अब दबी जबान से 'वेद में इतिहास है' ऐसा कहने से कतराने लगे हैं। अब सीधे शब्दों में कहने लगे हैं कि—

(१) "वेद मन्त्रों में ऐतिहासिक कथा के समान वर्णन ही अधिक है। किसी देवता के मन्त्र देखिये, कथा कहने के समान ही सर्वत्र वर्णन हैं। शब्दों के अर्थ अनेक होने पर भी विषय प्रतिपादन कथा के समान ही रहेगा।"

(२) "वेद के इतिहास सदृश वाक्य तोड़ने मरोड़ने योग्य नहीं है।'

(३) "इन्द्र ने वृत्र को मारा" यह इतिहास जैसा वाक्य जैसा का वैसा ही रहता है।"

(४) "इन्द्र ने वज्र से वृत्र को मारा' ऐसा ही ऐतिहासिक कथा के समान कहा जायगा।'

ये उक्त उद्धरण श्री पं० सातवलेकरजी के वास्तविक शब्द हैं, वे वेद के वर्णनों में—'ऐतिहासिक कथा के समान, इतिहास सदृश वाक्य, इतिहास जैसा वाक्य" मानने लगे हैं, पूर्व लेख में हमने बतलाया था कि इन वाक्यों से अर्थापत्ति निकलती है कि पं० जी के मत में—वेद मन्त्रों में इतिहास जैसे वाक्य हैं अर्थात् इतिहास नहीं है। इस अर्थापत्ति प्रमाण से पं० जी भी वेद में इतिहास नहीं मानना चाहते। यह स्पष्ट होता है। तब प्रश्न होता है कि फिर यह वाद-विवाद कैसा ?

यह वाद-विवाद सिद्धान्त के आधार पर है। यह वाद विवाद आज का नहीं है। परन्तु अनादि सिद्ध वेद संहिताओं के सम्बन्ध में पर्याप्त प्राचीन काल से है। वेद में इतिहास होने की कल्पना वेद को नित्य सनातन मानने वाले किसी भी भाष्यकार ने, क्या सायण, क्या स्कन्द स्वामी, क्या निरुक्तकार श्री यास्काचार्य, क्या निरुक्त के टीकाकार दुर्गाचार्य और वररुचि आदि किसी ने भी नहीं माना है। इसी प्रकार वेदों को नित्य मानने वाले दार्शनिक प्रवर महामुनि जैमिनि ने भी शब्द को नित्य मानकर वेद में इतिहास होने का खण्डन किया है। और तो और, जैमिनि रचित मीमांसा दर्शन पर भाष्य बनाने वाले श्री शबरस्वामी और जैमिनीय न्याय माला के कर्त्ता श्री माधव [सायणाचार्य के भ्राता, जिनका ऋग्वेद भाष्य भी अंशतः प्राप्त है। और न्याय मीमांसा के कर्त्ता श्री पार्थसारथि मिश्र इन सब मीमांसकोंने ब्राह्मण ग्रन्थों तक में आये ऐतिहासिक शब्दों को ऐतिहासिक व्यक्तियों का नाम नहीं माना है अर्थात ब्राह्मण ग्रन्थों तक में उनकी दृष्टि में इतिहास नहीं है क्यों कि वे ब्राह्मण और मन्त्र संहिता दोनों को नित्य वेद मानते हैं।

हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि 'वेद में इतिहास है, और इतिहास नहीं है" 'यह विवाद या मतभेद सिद्धान्त विषयक मतभेद है। जिसकी सत्ता अति प्राचीन काल से है। परन्तु श्री पं० सातवलेकर जी इस सच्चाई को मानना नहीं चाहते। आप लिखते हैं कि—वेद में इतिहास है या नहीं है यह एक विवादास्पद प्रश्न आर्य समाज में बहुत वर्षों से घिसा चला आ रहा है। वास्तव में इतना संघर्ष इस पर होने का कोई प्रयोजन नहीं है।

अर्थात् श्री पं० जी की दृष्टि में 'वेद में इतिहास होने' विषयक विवाद आर्यसमाज में बहुत वर्षों का घिसा हुआ प्रश्न है, जो निष्प्रयोजन है।

यदि बहुत वर्षों से चले आने वाला प्रश्न घिसा हुआ कहाता है, और घिसा हुआ प्रश्न निष्प्रयोजन होता है तब तो वस्तुतः इस निष्प्रयोजन वस्तु पर पूर्वक वैदिक विद्वानों और मीमांसकों ने एक निष्प्रयोजन, व्यर्थ की बात पर व्यर्थ ही श्रम किया। फिर पण्डित जी ने ही जरा सी बात पर वैदिक धर्म मासिक पत्र (अप्रैल १९५५) के अंक में मेरी पुस्तक की सात पृष्ठों की आलोचना क्यों की और क्यों कर कश्यप जी और मुझे और वेद में इतिहास न मानने वाले ऋषि दयानन्द के सिद्धान्त माननेवालों को 'उपद्रवकारी' और 'दुराग्रही' उपाधियों से विभूषित किया। और आप भी अंशतः उसी कोटि (कैटेगरी) में आ पड़े।

अठारह और उन्नीस ऋषियों के दर्शनों की पुस्तकोंमें श्री पं० सातवलेकर जी ने शुनःशेप की बलि होने की कथा, दधीचि की अस्थियों से वज्र बना और घोड़े का सिर लगाकर उस से अश्विनों को उपदेश करने, और 'अश्वी' शब्द से दो पुंल्लिंगी देहधारी पुरुष मानना, वशिष्ठ को सुदास जैसे दो वधुओं वाले रथ दान में मिलना आदि आदि अनेक ऐतिहासिक लटके-बाजियों को यथा-तथा मान लिया है। अब उन असंगत सी बातों पर कोई वेद प्रेमी विवाद उठाता है तो उसको कहा जाता है कि—आप संस्कृत नहीं पढ़े हो, संस्कृत पढ़ो, तुम को मेरी लिखी सचाई मालूम पड़ेगी, व्याकरणानुसार वेद में इतिहास निकलता है, आदि २"

अब सिद्ध करने का अवसर आता है तब इस बात का पैंतरा बदला गया है कि वेद में इतिहास-कथा के समान वाक्य रचना है। आपने समालोचना में अपनी इस नई स्थापना को पुष्ट करने के लिये वेद के दो तीन स्थल उद्धृत किये हैं। जैसे—

१—भरता: परिच्छिन्नतः अर्भकासः आसन्। वसिष्ठः पुर एता अभवत्। आदत् विशः अप्रथन्त ॥ ऋ० ७।३३। ६ ॥ श्री पण्डित जी का अर्थ—"भरत लोग आपस में झगड़ने वाले बालबुद्धि के थे। वशिष्ठ इनका पुरोहित बना। पश्चात् वे यशस्वी हुवे।

इस पर आपने टिप्पणी दी है कि—"श्री पण्डित जयदेव शर्मा जी ने इस मन्त्र के अर्थ के विषय में बहुत ऊटपटांग लिखा है।—"मन्त्र के पदों का यही अर्थ है। ऊटपटाँग अर्थ करने से पदों का अर्थ मारा नहीं जाता। इस मन्त्र में पुरोहित का कर्तव्य बतलाया है कि वह राष्ट्र की प्रजा की संघटना करे। और उनका अभ्युदय हो ऐसी व्यवस्था करे। इतिहास जैसे वाक्यों का सरल अर्थ कर के ही उन वाक्यों का सरल बोध लेना चाहिये। शब्दों को तोड़ने मरोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं।"

समीक्षा—इस मन्त्र के सम्बन्ध में हम पाठकों का ध्यान विशेष रूप से खींचेंगे। आग्रह करेंगे कि वे इस सम्बन्ध मे उपेक्षा न करें। स्वयं क्या वेद में इतिहास है" पुस्तक मे मँगाकर पढ़ें, देखें कि ऊटपटांग किसने की है। विद्या वयोवृद्ध श्री पं० सातवलेकर जी ने या पुस्तक लेखक श्री पण्डित जयदेव शर्मा जी ने ? हम विद्वानों से व्यवस्था चाहेंगे। पण्डित जी की व्यवस्था तो मिल गई कि हम 'दुराग्रही' 'उपद्रवकारी' और 'ऊटपटाँग अर्थ' करने वाले हैं।

श्री पण्डित सातवलेकर जी ने जो 'ऊटपटाँग' की है उसका नमूना तो देखिये। समालोचना में जो ऊपर मन्त्र दिखलाया है वह मन्त्र सारे ऋग्वेद में खोजने पर नहीं मिला। जो प्रतीक दी है उसपर नीचे लिखा मन्त्र है। ऋ० ७।३३।६ ॥

दण्डा इवेद् गो अजनास आसन परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः।
अभवच्च पुर एता वसिष्ठ आदित् तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥

पाठक लोग आँख खोल कर देखें कि मन्त्र उद्धरण करने तक में भी पं० सातवलेकर जी भट्ट ने ऊटपटांग की है। जो मन्त्र के उल्लेख में ऊटपटाँग कर सकता है वह अर्थों में क्या अनर्थ करेगा इसका सहज अनुमान हो सकता है। जिसका दिग्दर्शन हम अगले लेख में करेंगे। यहाँ इतना ही लिखेंगे कि श्री पं० जी ने अपनी टेर पूरी करने के लिए 'भरता' और 'वसिष्ठ' इन पदों का अर्थ नहीं किया 'भरत लोग' कौन हैं, क्या भरत और लोग दो पदार्थ हैं। या लोगों में 'भरत' कोई ऐतिहासिक व्यक्ति हैं जिनके लिए अपने अर्थ में 'थे', ऐसा अर्थ किया है, वसिष्ठ 'पुरोहित' किस का बना था। जिसके लिए आप लिखते हैं—'वशिष्ठ इनका पुरोहित बना।"

[शेष अगले पृष्ठ पर]

सत्यार्थ प्रकाश पाठ संख्या २७

ईश्वर-जीव-प्रकृति भेद क्या है ?

लेखक—श्री सुरेशचन्द्र वेदालङ्कार एम० ए०

स्वामीजी महाराज ने सृष्टियुत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के विषय में अष्टम समुल्लास का क्यों निर्माण किया वह इसने अपने पिछले अध्याय में बतलाया है। ईश्वर क्या है ? जीव किसे कहते हैं ? इनके भेद और सम्बन्ध विषयक वैदिक सिद्धान्तों का वैदिक धर्मोद्धारक आचार्यवर महर्षि दयानन्द ने जो उल्लेख किया है वह भी हम पाठकों को सप्तम समुल्लास की व्याख्या करते हुए बता चुके हैं। स्वामीजी महाराज के मन्तव्य के अनुसार जीव और ईश्वर स्वरूप और वैधर्म्य से भिन्न और व्याप्य व्यापक और साधर्म्य से अभिन्न हैं अर्थात् जैसे आकाश से मूर्तिमान् द्रव्य कभी भिन्न न था, न है, न होगा' इसी प्रकार परमेश्वर और जीव को व्याप्य व्यापक उपास्य उपासक और पिता, पुत्र इत्यादि सम्बन्ध युक्त माना जा सकता है। ईश्वर और जीव के अतिरिक्त स्वामीजी महाराज ने प्रकृति को भी अनादि माना है। इन तीनों वस्तुओं में भेद यह है कि कि प्रकृति सत् है। यह जड़ होने से आनंद इत्यादि की उपलब्धि नहीं कर सकती। जीव सचित् है अर्थात् उसकी सत्ता भी है तथा वह चेतन हैं और चेतन होने से वह सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष आदि का अनुभव करता हैं। इसीलिए कहा भी गया हैं

"इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख ज्ञानान्यात्मनो लिंगम्"

अर्थात् पदार्थों की अभिलाषा, दुःखादि की अनिच्छा, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान ये आत्मा के चिन्ह हैं। वैशेषिक दर्शनकार ने भी सचित् होने से जीवात्मा की परिभाषा की हैं।

प्राणापान निमेषोन्मेष मनोगतीन्द्रियान्तर विकाराः।
सुख दुःखेच्छा द्वेषौ प्रयत्नश्चात्मनो लिङ्गानि ॥'

अर्थात् प्राण, अपान, आंख को मीचना, आंख को खोलना, मन, गति, इन्द्रियों को चलाना, हर्ष, शोकादियुक्त होना, तथा ऊपर न्याय दर्शन के अनुसार बताए गुण जीवात्मा के हैं और ईश्वर इन दोनों अर्थात् प्रकृति और जीव से भिन्न सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। अर्थात् उसकी सत्ता भी हैं, वह जीव की भांति चेतन भी हैं परन्तु वह इन दोनों से भिन्न कभी दुःख का अनुभव नहीं करता, सदा आनंदस्वरूप रहता हैं। इसीलिए तो योग दर्शनकार ने लिखा हैं कि :—

क्लेश कर्म विपाकाशयै२ परा मृष्ट• पुरुष विशेषः ईश्वरः।

अर्थात् जो अविद्यादि क्लेश, कुशल-अकुशल, इष्ट अनिष्ट और मिश्र फलदायक कर्मों की वासना से रहित हैं वह सब जीवों से विशेष ईश्वर कहाता है।

सृष्टियुत्पत्ति विषय को समझने के लिए हमें इन तीनों अनादि पदार्थों अर्थात् ईश्वर, जीव और प्रकृति आदि के विषय में समझ लेना चाहिए। ऋग्वेद के १।१६४।२० मन्त्र में जिसका उल्लेख सत्यार्थ प्रकाश में स्वामीजी महाराज ने भी किया, इन तीनों अनादि पदार्थों का आलंकारिक भाषा में वर्णन किया हैं और भेद को स्पष्ट रूप से प्रतिपादित कर दिया हैं। मन्त्र हैं :—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥

(द्वा) जो ब्रह्म और जीव दोनों (सुपर्णा) चेतनता और पालनादि गुणों से सदृश (सयुजा) व्याप्य व्यापक भाव से संयुक्त (सखाया) परस्पर मित्रतायुक्त अनादि हैं और (समानम्) वैसा ही (वृक्षम्) अनादि मूलरूप कारण और शाखारूप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलय में छिन्नभिन्न हो जाता है। वह तीसरा अनादि पदार्थ इन तीनों के गुण, कर्म, स्वभाव भी अनादि हैं। (तयोः अन्यः) इन जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव है वह इस वृक्षरूप संसार में (पिप्पलं) पाप पुण्यरूप फलों को [स्वाद्वत्ति] अच्छे प्रकार खाता है [अन्यः] दूसरा-परमात्मा [अनश्नन्] न भोगता हुआ [अभिचाकशीति] चारों ओर अर्थात् सर्वत्र प्रकाशमान् हो रहा है। इस प्रकार ईश्वर से जीव, जीव से ईश्वर और और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वरूप तथा अनादि हैं।

मुण्डकोपनिषद् में भी एक मन्त्र है:—

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशम्, अस्य महिमानमिति वीत शोकः ॥

मुंडक।३।२।

अर्थात् अनादि नित्य होने से अपने समान प्रकृतिरूप वृक्ष में फँसा हुआ जीव शरीर, मन इन्द्रिय आदि पर अपने स्वामित्व को खोकर मोह, अज्ञानवश शोक करने लग जाता हैं। किन्तु जब वह अपने से अन्य भिन्न आनन्दमय ईश्वर के दर्शन करता हैं और उसकी महिमा का चिन्तन करता हैं तब वह शोक रहित हो जाता हैं।

इसी प्रकार ऋग्वेद के ८।६९।८ मन्त्र में भी ईश्वर, जीव और प्रकृति तथा प्रकृति से उत्पन्न जगत के भेद को स्पष्टतया प्रतिपादित करता हैं। मन्त्र हैं:—

तमुष्टवाय य इमा जजान विश्वा जातान्यवराण्यस्मात्।
इन्द्रेण मित्रं दिधिषेम गीर्भिरुपो नमोभिर्वृषभं विशेम ॥

अर्थात हम [तम् उ स्तवाम] उस ईश्वर की स्तुति करें [य इमा जजान] जिसने इन सब सूर्यादि पदार्थों को बनाया हैं। [विश्वा जातानि अस्मात् अवराणि] ये उत्पन्न सब इस परमेश्वर की अपेक्षा बहुत ही हीन हैं। [इन्द्रेण] आत्मा के द्वारा हम [मित्रं दिधिषेम] सबके सच्चे मित्र परमेश्वर की स्तुति करें तथा [नमोभिः गीर्भिः) नमस्कार युक्त वाणियों से उस (वृषभम) सुखों के वर्षक परमात्मा के (उप विशेम) समीप बैठ जाय अर्थात् उसकी वास्तविक उपासना करें।

ईश्वर का तथा जीव का सबंध पिता और पुत्र के रूप में भी वेदों में दिखाया गया है। ऋग्वेद का ८।५२।५ संख्या का मंत्र है :—

यो नो दाता स नः पिता महा उग्र ईशानकृत् ॥

अर्थात जो परमात्मा हमें अनेक प्रकार का दान देने वाला (विविध पदार्थ, शाश्वत सुख, शांति तथा आनन्द के रूप में) है वही हमारा पिता है। वह सब से महान है। वह उग्र है, वह दुष्टों को दंड देने वाला है, इस संसार का वह स्वामी है और सम्पूर्ण विश्व का रचयिता वही परमेश्वर है।

इस प्रकार इस मंत्र में भी जीव, ईश्वर और जगत की भिन्नता का पता चलता है।

स्वामी जी महाराज ने जो जीव और ईश्वर का सम्बन्ध उपास्य एवं उपासक रूप में बतलाया है उस विषय में एक यजुर्वेद का मन्त्र है :—

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः।

अर्थात (विप्राः) बुद्धिमान लोग (बृहतः विपश्चितः) सबसे बड़े बुद्धिमान सर्वज्ञ भगवान के साथ अपने (मनः युंजते) मन को मिलाते हैं। (उत) और (धियः युंजते) अपनी बुद्धियों को मिलाते हैं। वह (एकः इत) एक ही परमेश्वर (वयुनावित) जीवों के सब कामों को जानने वाला (होत्रा विदधे) सब पदार्थों को बनाता और उन्हें धारण करता हैं। उस (सवितुः देवस्य) सबको पैदा करने वाले सर्व प्रकाशक परमेश्वर की (महीपरिष्टुतिः) बड़ी भारी स्तुति या महिमा है। यहां भी जीव और परमेश्वर की भिन्नता का प्रतिपादन किया गया है और परमेश्वर का उपासक जीव को बतलाया गया है।

इसी प्रकार अनेक अन्य भी वेदों में मन्त्र हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि ईश्वर जीव और प्रकृति यह तीन पदार्थ अनादि हैं। सृष्ट्युत्पत्ति और प्रलय को समझने से पहले हमको इन तीनों पदार्थों की भिन्नता समझ लेनी चाहिए। क्योंकि सृष्ट्युत्पत्ति में कोई ईश्वर से ही सृष्टि की उत्पत्ति मानता है तो कोई ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करता और प्रकृति से ही इस सृष्टि का निर्माण मानता है तो कोई केवल पुरुष और प्रकृति को ही मानता है और इन दोनों से इस सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति मानता है। ईश्वर जीव और प्रकृति का हमने प्रमाणों द्वारा कुछ भेद बतलाया है। इससे पहले कि हम सृष्ट्युत्पत्ति कैसे हुई पाठकों को प्रकृति क्या है ? यह समझाना चाहते हैं जो अपने अगले लेख में बतलायेंगे। वेदान्तियों के अनुसार यह संसार मिथ्या भी नहीं है और न प्रकृतिवादियों के समान केवल जड़। वैदिक सिद्धान्तानुसार ईश्वर, जीव और प्रकृति इन तीनों की सत्ता है, तीनों अनादि हैं। जीव कर्म करता है। प्रकृति उसकी क्रीड़ा स्थली है। खेलना उसकी इच्छा पर है पर उसके खेलों का फल देने वाला परमात्मा है जिसने इस सम्पूर्ण विश्व का निर्माण किया है।

[पिछले पृष्ठ का शेष]

यह भूतकाल का अर्थ भी पं० जी ने किस आधार पर किया है ? क्या वेद मे "आसन्, अभवत्' पदों का 'थे, था' ऐसा भूतकालिक अर्थ होता है ? हमने तो पूर्व दिखलाया है कि पाणिनि और पतंजलि, जयादित्य और भट्टो जी दीक्षित इनमें से एक भी व्याकरण विद्वान ने लङ, लुङ्, लिट् लकारों का वेद में लोकवत् भूतकालिक अर्थ नहीं माना। तब प० जी किस आधार पर अटपटांग अर्थ करने पर तुले हैं। इस मन्त्र की आलोचना पाठक—"क्या वेद में इतिहास है ?" पुस्तक में पृष्ठ ९२ और पृष्ठ १०६ पर देखेंगे। वहाँ पण्डित जी किस प्रकार अपने ही किये दुरगे अर्थों में उलझ गये हैं। वे इतिहास परक अर्थ करके भी उसको छोड़ने पर बाधित हुए हैं।

टि०—जो विद्वान महानुभाव स्वतः धनाभाव से प्रकाशक से पुस्तक खरीदने में असमर्थ हों वे दीवान श्री रामनाथ कश्यप 'व्यवहार', के. डी., धर्मशाला (कांगड़ा) पंजाब के पते से प्राप्त कर सकते हैं। या वे मुझे लिखें। मार्ग व्यय मात्र ॥।) भेजना आवश्यक है। पुस्तक मूल्य २॥) रु० है।

आर्य बन्धुओं से निवेदन

ले० -'भुवन' प्रधान आर्य कुमार परिषद् मिर्जापुर

यह तो आप जानते ही हैं कि समाज की आधार शिला विद्यार्थी ही होते हैं और किसी राष्ट्र के भाग्य विधाता उस राष्ट्र के बालक एवं कुमार ही होते हैं। बड़े-बड़े बलिदानों से भारत स्वतन्त्र हुआ परन्तु क्या आप यह अनुभव नहीं करते कि इस स्वतन्त्रता को सुदृढ़ एवं चिरस्थायी करने का भार आपके कन्धों पर है। क्या आप इतने जल्दी भूल गए उन बलिदानों को जो प्रताप, शिवा, गुरुगोविन्द, लक्ष्मीबाई, खुदीराम, रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्ला, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, दुर्गा, गणेश शङ्कर विद्यार्थी, लेखराम गांधी और स्वामी श्रद्धानन्द के नाम मात्र से स्मरण होते हैं। क्या आप यह अनुभव नहीं करते कि जगतगुरु भारत को पुनः संसार का शिर मौर बनाने का उत्तरदायित्व आपके ऊपर ही है। क्या आप नहीं जानते कि भारत की उन्नति और संसार की सुख शान्ति, भारत की प्राचीन आध्यात्मिकता का पाठ पढ़ाने वाली वैदिक प्रचार धारा पर ही अवलम्बित है।

ठण्डे हृदय से, शान्त मन से तनिक सोचिए तो सही आप किधर जा रहे हैं। जिधर आप जाएगें उधर ही देश जाएगा। देश और आप पर्यायवाची हैं। पश्चिमी चकाचौंध में आकर आज आपका जीवन कितना भोग विलासमय होता जा रहा। आपकी सारी स्फूर्ति और शक्ति आज सिनेमाओं के दर्शन और तत्सम्बन्धी विवरण ज्ञान में ही नष्ट होती है। दुर्भाग्यवश हमारा शासन भी इस ओर से उदासीन है।

यह धर्म निरपेक्ष राज्य (Secular State) है। यहाँ धर्म कर्म का बन्द द्वार है। तब बतलाइये भारत के भविष्य का निर्माण कौन करेगा! इतने कठिन त्याग और अमूल्य बलिदानों से प्राप्त स्वतन्त्रता की रक्षा कौन करेगा!! सन्तप्त-विश्व को शान्ति सुधा रस कौन पिलायेगा!!! श्री राजेन्द्रप्रसाद, श्री जवाहरलाल नेहरू, श्री रामचन्द्र जी देहलवी और श्री स्वामी ध्रुवानन्द आदि अमर होकर तो आए नहीं हैं।

प्यारे भाइयो! यह सब कार्य भारत के युवक समाज को ही करना होगा। आर्य्य युवकों, भारत माता आपकी ओर आशा भरी दृष्टि से निहार रही है। क्या एक क्षण भी आपने सोचा कि आपको भारतीयता की रक्षा के लिये दयानन्द, लेखराम, लाजपत राय और श्रद्धानन्द बनना है! क्या आपके हृदय में कभी यह विचार भी उठा कि आपको भारतीय स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये तिलक, गाँधी, पटेल, नेहरू, सुभाष और बी० एन० रामाराऊ बनना है। मैं कैसे मान लूँ कि ये विचार आपके मन में कभी उठे ही न होंगे। परन्तु आत्म परीक्षा करके देखिये कि इन विचारों को साकार रूप देने के लिये आप प्रयत्नशील कितने रहे हैं। क्या आप अपना कर्तव्य पालन भी न कीजियेगा।

भारतीय राष्ट्र का निर्माण, वैदिक संस्कृति का प्रचार—'कृण्वन्तो विश्वमार्यम' का सफल प्रयत्न आप को ही करना है। आज भी हम युवकों को जर्जर करने वाली पाश्चात्य सभ्यता का भूत हम पर सवार है। अन्धविश्वासों का बोलबाला है। नागरिक शास्त्र के अनिवार्य रूप से पाठ्यक्रम में स्थान पाने के बाद भी आज हम आदर्श नागरिक न बन कर अयोग्य नागरिक बनते जा रहे हैं। इन सब का सुधार और परिष्कार आप को ही करना है।

आइये; इन सब उद्देश्यों की पूर्ति के लिये स्थानीय आर्य्य कुमार परिषद् के सदस्य बनिए और समाज, राष्ट्र एवं देश को समुन्नत बनाने में सहयोग दीजिए जिससे भविष्य यह न कह सके कि भारत को स्वतन्त्रता तो मिली परन्तु भारत के प्राण भारतीय के इस अधिकारी सिद्ध न हुए।

विवाह के अवसर पर!

समय बदला और समय के साथ हमारे सामाजिक जीवन की दैनिक दिनचर्या भी। सुनते हैं कि पहिले बरातों में चार-चार, पांच-पाच सौ बराती जाते थे—भोजन चौबीस घण्टे में मिल गया तो धन्यवाद वरन् लड़के वाला चबेनी ही बाँट कर बिलखते बराती बच्चों को सान्त्वना देता था। समय ने पल्टा खाया, अब तो बरात के भोज इतने तकल्लुफ के होते हैं कि बार बार खाते खाते थोड़े से व्यक्ति ही अपना पेट खराब न कर पाते हों, वरन् प्रायः दवा और डाक्टर की शरण लेनी ही पड़ती है। फिर आजकल तो 'डाल्डा' और 'गोल्डन-सैरो' का खुला व्यवहार!

क्या ही अच्छा हो यदि हम ऐसे अवसरों पर समतुलन भोजों का ही प्रबन्ध करें। जहाँ विवाह संस्कार में दहेज आदि बातों में सुधार की शीघ्र और पर्याप्त आवश्यकता है, वहाँ इस भोज प्रणाली में भी देर करने का कोई अवसर नहीं रह गया है।

समय था जब बारात तीन दिन और कभी कभी चार दिन ठहरती थी अब तो प्राय दूसरे ही दिन बिदा हो जाती है। तो फिर जो तीन, चार भोज इस समय में आयोजित किये जाये वे स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुए ऐसे हों कि जिससे राष्ट्र की सामग्री का व्यर्थ में दुरुपयोग न हो और साथ ही आडम्बरों में धन और समय का अपव्यय न हो।

प्रत्येक सुधार सर्वप्रथम एक व्यक्ति की सूझ ही था, इसका ध्यान रखते हुए आओ आज हम स्वयम् इस काम को अपने हाथ में ले और शुद्ध घी तथा अन्य शुद्ध सामग्री से ही भोजों की आयोजना करें और भोज के सामान की मात्रा और भिन्नता ऐसी न बना दे कि खानेवाले का पेट अनेक वस्तुओं के चखने भर से ही भर जावे। क्या आवश्यकता है कि तश्तरियां को मिठाई बड़ों और बच्चोंके लिए एक नाप और एक-सा संख्या को बनाइ जाय। क्या आपत्ति है कि हम प्रत्येक व्यक्ति को उसकी रुचि के अनुसार और उस की माँगों के अनुसार ही वस्तुयें न परोसें? मुमकिन है शुरू में आपका ऐसे भोज ज्यादा आकर्षण न प्रदान कर सकें। परन्तु हमें अब दिखावे की दुनियां से बचकर सरलता की ओर चलने में ही जीवन और भलाई प्रतीत करनी श्रेयस्कर है। आशा है, आर्यबन्धु इस मार्ग में भी समाज का पथ प्रदर्शन कर यश के भागी बनगे।

निरंजन प्रसाद एम० ए० एल० एल० बी० खुरजा

पुस्तक-परिचय

दयानन्दायन—

[सचित्र] लेखक स्वर्गीय गदाधरसिंह जी

प्रकाशक डा० सूबा बहादुर सिंह कैनिंग कालेज डिस्पैंसरी यूनिवर्सिटी लखनऊ कीमत ४) पृष्ठ संख्या ३८२

दोहा चौपाई द्वारा महाकवि तुलसी दास जी ने रामचन्द्र जी के यश को महल-कुटियाओं तक पहुंचाया। इसी उस आदर्श को सामने रखते हुए स्वर्गीय गदाधरसिंह जी ने यह रचना की है। अनेक वर्षों की साहित्यिक साधना का यह परिणाम है। आर्य ऋषि दयानन्द को अपना आचार्य माननेवालों को हिन्दी भाषा की पाठ विधि में यह पुस्तक अवश्य नियत करनी चाहिए।

कविता की शब्द रचना तथा कलेवर योजनामें कवि ने स्वाभाविकता को ही मुख्यता दी है।

युक्त प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा को चाहिए कि उत्तर प्रदेश में इस पुस्तक का प्रचार करने के लिए विशेष प्रोत्साहना दे। विद्यार्थियों को पारितोषिक रूप में, तथा समय २ पर आर्य समाजों के उत्सवों में पहले ऋषि दयानन्द तथा बाचन कर इस पुस्तक के कवि को की प्रेरणा करे।

हमें स्व० गदाधर सिंह जी के चरणोंमें बैठकर अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है हमें उनकी ऋषि दयानन्द के प्रति अगाध भक्ति भावना रह रहकर याद आती है। पुस्तक के प्रकाशकों से निवेदन है कि पुस्तक के वर्तमान संस्करण के समाप्त होने पर अगले संस्करण में ऋषि दयानन्द के माता पिता तथा जन्म स्थानादि के विषय में जो प्रामाणिक खोज हुई हैं उसके आधार पर आवश्यक परिवर्तन कर दें।

भीमसेन विद्यालंकार अंबाला छावनी

बनाना सीखें—

डोसा

अंश—उरद की दाल डेढ़ छटाँक, मूंग की दाल डेढ़ छटाँक, तिली का तेल चाय की ६ चम्मच, नमक चाय की २ चम्मच।

विधि—उरद तथा मूंग की दाल को ८ घंटे तक पानी में भीगी रहने दीजिये। महीन पीस लीजिये, नमक मिला दीजिये और थोड़ा पानी मिला कर घना मिश्रण बना लीजिए। रात भर फेन उठने दीजिए। देगची को आग पर रख दीजिये, आधी चाय की चम्मच तिली के तेल से चुपड़ लीजिये और बड़ी कल्छुली भर कर मिश्रण को देगची मे डाल दीजिये चम्मच द्वारा उसे इकसार फैला दीजिये और ढकन द्वारा ढक दीजिये। जब यह एक तरफ से पक जाय तो दूसरी तरफ एक कल्छुली से पलट दीजिये। जब दोनों तरफ सुनहरा भूरा रंग हो जाय, डोसा को देगचो से निकाल लीजिये। इसी प्रकार बाकी बचे मिश्रण से डोसा तैयार कर लीजिये।

—नैनीताल आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर

उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री श्री संपूर्णानन्द जी द्वारा उद्घाटन समारोह

मुख्य मंत्री भवन का उद्घाटन करते हुए
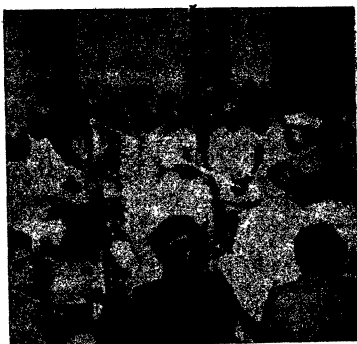
और इस चित्र में मुख्य मंत्री वेद-मंत्रों द्वारा यज्ञ वेदी पर यज्ञ कराते हुए

प्रान्त की आर्य समाजों से !

प्रिय महोदय,

सप्रेम नमस्ते !

आपको यह भली भाँति ज्ञात ही कि किन विचित्र और विकट परिस्थितियों में दैनिक प्रकाशन का निश्चय किया था ! इस समय इसका चलना आर्य समाज के गौरव की रक्षा के लिए अत्यधिक आवश्यक है।

महान् महर्षि दयानन्द की लक्ष्य पूर्ति के लिए और अवैदिक विचारधाराओं के प्रसार को रोकने के लिए दैनिक आर्य मित्र कितना बड़ा साधन है आपको यह भी बताने की आवश्यकता नहीं है।

दैनिक की उन्नति आर्यसमाज की उन्नति है और इसका बन्द होना होगा हम सभी के लिए कलंक ! इसलिए, केवल इसलिए कि यह आरम्भ किया महान् कार्य निर्विघ्न बढ़ता रहे, मैं आपसे दिसंबर १९५५ तक प्रति माह कम से कम १०) भेजने की सानुरोध प्रार्थना करता हूं। अधिक भेज सकें तो आपकी अत्यन्त कृपा !

आर्यसमाज के महान् लक्ष्य की पूर्ति के लिए आप मेरी प्रार्थना को ठुकराएं नहीं, अविलम्ब निश्चय कर साथ का प्रतिज्ञा-पत्र भर कर भेज दें और इसके साथ ही जून मास का धन भी !

भविष्य में कृपया धन मास की पहली तारीख को मनिआर्डर द्वारा भेजते रहने की कृपा करते रहें।

मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि यदि आपने दिसम्बर तक मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार कर सहयोग देना जारी रखा तो आप का 'मित्र' फिर अत्यधिक बलशाली होकर लक्ष्य पूर्ति में सहायक सिद्ध होगा। अतः इस कार्य को अत्यावश्यक समझ जैसे भी हो, निभाते रहें— विनीत—

कालीचरण आर्य

मन्त्री-आर्यप्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश

प्रतिज्ञा-पत्र

श्री मंत्री जी, आर्य प्रतिनिधिसभा उत्तर प्रदेश लखनऊ

माननीय,

हम............आर्य समाज के सदस्य आपको विश्वास दिलाते हैं कि दैनिक आर्यमित्र को चलाने में हमारा पूरा सहयोग आपके साथ है। हम प्रति माह.........रुपए सहायता रूप में दिसम्बर १९५५ तक आपको नियमित रूप से भेजते रहेंगे। प्रति माह की पहली तारीख को हम मनिआर्डर से यह राशि भेज दिया करेंगे। आप किसी तरह की चिन्ता न करें।

आशा है कि आप दैनिक मित्र की उन्नति के लिए सदा यत्नशील रहेंगे।

भवदीय

मन्त्री

आर्य समाज..............................

पूरा पता..............................

दिनांक..............................

पौराणिक पंडित जी

जब तक रहा अछूत सदा उस को ठुकराया।
डांट डपट कर दीन दलित को दूर भगाया।।

किन्तु विधर्मी बनते ही हा शीश झुकाया,।
धर्म प्रेम की कैसी अद्भुत है यह माया।।

सार्वदेशिक धर्मार्यसभा के अगले अधिवेशन में विचारणीय

सार्वदेशिक धर्मार्यसभा का अगला अधिवेशन जो लगभग डेढ़ मास पश्चात् देहली में होगा उसमें नीचे लिखे विषयों पर भी विचार करके निर्णय देना है। आर्य विद्वद्गण अपनी सम्मतियाँ शीघ्र भेजें।

१—'इदं न मम' उच्चारण करके जल में घृतबिन्दु टपकाना सर्वत्र वर्जित है या किसी संस्कार विशेष में ही।

२—संस्कार विधि के सामान्य प्रकरण के अन्त में जो हुतशेष का वर्णन

है वह जल में प्रक्षिप्त घृतबिन्दु है या यज्ञ करने से बचा हुआ ही आज्य स्थाली का घृत आदि ही हुतशेष का अर्थ है।

३—कुछ मन्त्रों में ऋषि ने 'इदं न मम' रखा है कुछ में नहीं, इसका क्या कारण है। जिनमें है उनमें क्यों, जिनमें नहीं उनमें क्यों नहीं।

४—साप्ताहिक सत्संग की पद्धति और साप्ताहिक अधिवेशन में कर्तव्य-यज्ञ की पद्धति पर विचार हो चुका है फिर भी कुछ बातें पद्धति लिखते समय विचारणीय प्रतीत हुईं उनकी पद्धति लिखने के लिए कुछ बातों पर विचार और करना है जैसे—

क-'शन्नो देवी' मन्त्र को एक बार पढ़ कर तीन बार आचमन करना चाहिये वा तीन बार पढ़कर तीन बार आचमन करना चाहिये।

ख-'अग्न आयूंषि' आदि चार मन्त्रों से साप्ताहिक अधिवेशन में आहुति दी जावे या नहीं और यदि दी जावे तो घृत से ही या सामग्री से भी।

सार्वदेशिक धर्मार्य सभा में पर्याप्त विचार के पश्चात् यह निश्चय हुआ कि यह स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द जी वृक्षों में जीव मानते थे। अब विचारणीय यह शेष है कि जिस स्थिति में अन्य लोग वृक्षों में जीव मानते हैं उन के और ऋषि के प्रकार में क्या भेद है।

आर्यविद्वान् अपनी संमतियां भेजें

ले०—महामहोपदेशक आचार्य विश्वश्रवा रिसर्चस्कालर, प्रधानमन्त्री सार्वदेशिक धर्मार्यसभा बलिदान भवन देहली।

६—सन्ध्या में किधर को मुख करके बैठे इस सम्बन्ध में ऋषि के अनुसार क्या सिद्धान्त ठीक है।

७—ऋषि के ग्रन्थों के सम्पादन के सम्बन्ध में मौलिक सिद्धान्तों का निश्चय।

यह एक खेद का विषय है कि ऋषि के ग्रन्थ जितने स्थानों से छपते हैं सब में कुछ न कुछ भेद होता है। इससे आर्यसमाज का गौरव कम होता है ऋषि के ग्रन्थों में परिवर्तन और भेद डालने की मनोवृत्ति के विरुद्ध हैदराबाद आर्यमहासम्मेलन में प्रस्ताव पास हुआ और सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग ने हैदराबाद के प्रस्ताव को ठीक समझा। अतः ऋषि के ग्रन्थों के प्रकाशकों से प्रार्थना की जाती है कि सबको मिल कर ही विचार करके एक जैसे ग्रन्थ ऋषि के प्रकाशित करने चाहिये। मैं इस सम्बन्ध में अजमेर जाकर परोपकारिणी सभा के अधिकारियों से तथा आर्य साहित्य मण्डल अजमेर के मैनेजिंग डाइरेक्टर बा० मथुरा प्रसाद जी शिवहरे से मिला। उन्होंने इस विचार की सराहना की। सार्वदेशिक लिमिटेड वाले भी सहमत हैं। अन्यों को भी यह विचार श्रेयस्कर प्रतीत होगा। अतः सब प्रकाशकों से प्रार्थना है कि अब वे जिस भी ग्रन्थ को प्रकाशित करना चाहें पहले से सार्वदेशिक सभा के कार्यालय को सूचित कर दें उस ग्रन्थ पर ही पहले विचार कर लिया जावेगा।

इस सम्बन्ध में कुछ मौलिक सिद्धान्तों पर विचार पहले करना होगा जिनका निर्णय आवश्यक है—

(१) ऋषि का ग्रन्थ कहीं भी छपे एक योग्य विद्वान प्रूफ देखनेवाला हो ऐसा न करने वाले प्रकाशकों के प्रति उचित कार्यवाही करनी होगी।

(२) ऋषि के जीवन के अन्तिम भाग में जो ग्रन्थ उनके सामने छपे हैं उन को मुख्य मानकर हस्त लेखों के साहाय्य से सम्पादन करना होगा।

(३) ऋषि के ग्रन्थों में जो उद्धरण हैं उन के सम्पादन की शैली पर विचार करना होगा।

(४) विद्वानों की सम्मति में ऋषि के ग्रन्थों के संस्कृत भाग यदि आर्ष भाषा में जो यदि त्रुटित अंश भी प्रतीत होगा वहां भी आर्ष में अनार्ष हाथ नहीं डालने दिया जावेगा।

(५) प्रतीयमान अशुद्धि समझ कर मूल पाठ को नीचे नहीं डालेंगे।

(६) ऋषि के ग्रन्थों की भाषा का ऐतिहासिक तत्व नष्ट नहीं किया जावेगा।

इस प्रकार मैंने ऊपर एक विचार धारा लिखी है विद्वद्गण अन्य प्रकारों का भी निश्चित कर सकते हैं सार्वदेशिक धर्मार्यसभा यह चाहती है कि सब ही ऋषि के भक्त हैं एक व्यक्ति भी आर्य जगत् में ऐसा नहीं जो ऋषि के ग्रन्थों को सुन्दर न देखना चाहता हो परन्तु हम सब की विधा अधूरी है। सब मिल कर बैठ जाते तब बात पूरी है अतः आर्य जगत् की सर्व शिरोमणि संस्था सार्वदेशिक सभा में आओ, एकत्र बैठकर विचार कर लो और एक बार निश्चित करके सर्वत्र एक जैसे ग्रन्थ प्रकाशित करें। इस में ही शोभा परोपकारिणी सभा की है। इस रीति से ही सार्वदेशिक लिमिटेड वालों का पुरुषार्थ सफल होगा। ऐसा करने से ही आदर्श त्यागी धर्मसूर्ति रामलाल कपूर परिवार द्वारा स्थापित रामलाल कपूर ट्रस्ट का गौरव बढ़ेगा। गोविन्द राम हासानन्द आदि पुस्तक विक्रेता और प्रकाशकों को भी ऐसा ही करना प्रचार में सहयोग समझा जावेगा। आर्य साहित्य मण्डल अजमेर भी अपनी ख्याति इस रीति से ही प्राप्त करेगा। जो व्यक्ति धर्मार्य सभा में नहीं हैं उन विशिष्ट विद्वानों के भी सहयोग की हमें आवश्यकता है, विशेष कर उन की जिन्होंने सम्पादन कला में उपाधियाँ प्राप्त की हैं और जिन्होंने हस्तलेखों के आधार पर कुछ ग्रन्थों का सम्पादन भी किया है। आशा है सब विद्वान् इस कार्य में सहयोग पत्र द्वारा और समाचार पत्रों द्वारा देंगे। अधिवेशन के समय इन्हें विशेष रूप से बुलाया भी जा सकता है।

❋ आर्य मित्र के लिए शुभ कामना ❋

आर्य जगत का एक मात्र दैनिक आर्यमित्र जो कि २८ मार्च १९५५ से से सत्य न्याय और मानवता को लेकर प्रचारित तथा प्रसारित हो रहा है। वह वास्तव में आर्य नर-नारियों की अभिलाषाओं को पूर्ण करने जा रहा है।

मैं अपनी बहिनों से चाहे वह दक्षिण की हो या उत्तर की पश्चिम की हो या पूर्व की, कर जोड़कर नम्र प्रार्थना करती हूँ कि यथा शक्ति नहीं, अपितु पूरे यत्न के साथ अपने प्रिय 'आर्य मित्र' को तन, मन, धन से सहायता करें। मुझे हर्ष और आशा है कि आर्य जगत का यही एक दैनिक पत्र है जो कि आर्यों की आर्यता को लेकर सतत अग्रणी है और रहेगा भी।

भविष्य में यह पत्र केवल आर्यों का या आर्य जगत् का ही नहीं अपितु समस्त संसार का मित्र बन जायगा, किन्तु जबकि हम ऋषि दयानन्द के "अनन्य भक्त बन जाय और हमारे देश के धनवान "भामाशाह बन जाय फिर क्या होगा। तभी हमारा कृण्वन्तो विश्वमार्यमका नारा सफल होगा।

विनीत —

सविता आर्या

आर्योपदेशिका व अन्तरंग सभासद, आर्य प्रतिनिधिसभा हैदराबाद (दक्षिण)

एक खुला पत्र

गो रक्षा कैसे ?

[श्री नरेन्द्र जी एम० एल० ए० प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा हैदाराबाद]

सेवा में

सम्माननीय श्री मुख्य मंत्री जी, महोदय

हैदराबाद राज्य,

श्रीमन् ! मैं आपका ध्यान निम्नांकित विषय की ओर आकर्षित कराना चाहता हूं ।

१—भारत के संविधान की धारा (४८] में घोषित किया गया है कि

'Thestate shall ena your to arganise agriculture and animal husbandry on modern and scintific lines and shall, in particular take steps for preserving and improving the dreeds, and prohibiting the slaughter, of cows and calves and other milk draught cattle,

इस कारण से गो वंश का संरक्षण एक विशुद्ध राष्ट्रीय प्रश्न है। गो धन से देश को वार्षिक २० अरब रुपये की आय होती है जो लोहा, वस्त्र, रेलवे तथा शक्कर इत्यादि की अपेक्षा अधिक है।

२—गो की बलि को किसी मत और संप्रादाय में आदेश नहीं और न ही उसने इसे धार्मिक कृत्य ही स्वीकारा है। इसीलिए मुगलों के शासन काल में गो वध अवैध था। निज़ाम हैदराबाद और प्रवर्त राज प्रमुख ने भी तद्विषयक धार्मिक अन्वेषण के पश्चात और धार्मिक विद्वानों के परामर्श के उपरान्त इस्लाम की अनुमति प्राप्त कर आज से २५ वर्ष पूर्व 'ईद उल जुहा' के अवसर पर गो की बलि पर प्रतिबन्ध लगा दिया था जो आज पर्यन्त लागू है।

३—स्वर्गीय महात्मा गांधी जी, श्री रफी अहमद किदवई और राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी तथा श्री आचार्य विनोवा जी भावे एवं देश के अन्य हित चिन्तकों व सद् परामर्शदाताओं ने गो वध पर प्रतिबन्ध लगाने का परामर्श दिया है।

४—कुछ ही दिन हुए कि उत्तर प्रदेश सरकार ने भी इस विषय की छान बीन के लिए प्रतिष्ठित जनों की एक समिति प्रस्थापित की थी। जो गो संवर्धन समिति के नाम से प्रस्थापित हुयी थी। इसी समिति के एक सदस्य इसी हैदराबाद राज्य के भूतपूर्व मुख्य मन्त्री नवाब श्री अहमद सईद खां छतारी भी थे। इसी समिति ने गोवध निषेध विषयक प्रत्येक अंग-प्रत्यंग पर विचार विमर्श और विश्लेषण के उपरान्त सर्व सम्मति से अपना परामर्श दिया कि गोवध पर प्रतिबन्ध लगाना नितांत आवश्यक है। तद्पि उत्तर प्रदेश सरकार ने इस समिति के परामर्श को स्वीकार कर लेने की घोषणा कर दी और संविधान का प्रारूप भी विधान सभा के सम्मुख स्वीकृत्यर्थ प्रस्तुत कर दिया है।

५—भारतीय जनता का बहुमत इस प्रकार के विधान के लागू करने के पक्ष में है और स्वर्गीय श्री किदवई जी, ने एक बार लोक सभा में अपने उद्गार प्रकट करते हुए कहा भी था कि "जनमत के आगे सिर झुकाना प्रजातंत्रीय राज्य का कर्तव्य है।"

श्री पं० जवाहरलाल जी नेहरू प्रधान मन्त्री भारत सरकार ने भी लोकसभा में इस विषय पर कहा था कि "प्रांतीय-सरकारें तद्विषयक विधान लागू कर सकती है।

उपरोक्त आधारों पर आर्य प्रतिनिधि सभा हैदराबाद प्रदेश, हैदराबाद राज्य से मांग करती है कि वह तत्काल गोवध पर प्रतिबन्ध लगाये और निम्न प्रकार के उपायों को भी प्रयोग में लावे जिससे प्रदेश में कृषि उद्योग में प्रगति हो सके। और देश के जनमत को भी संतोष दिलाया जा सके।

उपाय

१—राज्य अपनी ओर से तथा जनता के द्वारा गोशालाओं की स्थापना का प्रयत्न करे और गोशालाओं में पशु धन के पोषण का सुयोग्य प्रबन्ध करावे।

२—गो तथा बैलों आदि के चरने के लिए उपयुक्त और उचित भूमि सुरक्षित कर छोड़ी जाय। अनुभव सिद्ध और वैज्ञानिक उपायों के द्वारा इनके पोषण तथा वंश को हृष्ट पुष्ट बनाने के लिए उत्तम प्रबन्ध किया जावे। साथ ही उन संस्थाओं को जो जनता की ओर से इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्थापित की जाए या प्रचलित हों इनकी आर्थिक सहायता की जावे। और इन्हे चराई आदि के लिए राज्य की ओर से भूमि देने के अतिरिक्त अन्य सभी आवश्यक सहायता प्रदान करे।

३—पंचायत समितियाँ, नगर समितियाँ तथा नगर पालिकाएं आदि भी इस विषय में उचित प्रयत्न अपनाएं और जनता द्वारा प्रदानित कर तथा राज्य कोष से इस प्रकार की संस्थाओं की सहायता कर उन्नत बनावें।

४—इस क्रिया पर भी प्रतिबन्ध होना चाहिये कि जिन प्रांतों में अभी तक गोवध बन्द न हुआ हो इस प्रदेश से गो, बैल तथा बछड़े बछड़ी आदि न जाने पावें।

५—हरिजन जाति तथा ऐसे उन व्यक्तियों को कि जिनकी आय का साधन केवल वध किया रहा हो अर्थात जो "वधिक" रहे हों, उनके लिए राज्य की ओर से कृषि करने के लिए भूमि दी जावे अथवा योग्य कार्य दिया जाए जिससे उनकी आय पर इस प्रतिबन्ध के कारण कोई असर न पड़े।

मुझे आशा है कि हैदराबाद राज्य समय की इस महत्वपूर्ण समस्या पर ध्यान देगा और यथाशीघ्र उपरोक्त उपायों को प्रयोग में लाकर तत्काल जनमत को संतुष्ट करने का सद्प्रयत्न करेगा।

प्रधान जी की यात्रा

मैं २६ मई सन् ५५ को आगरे चलकर २७ मई को नैनीताल पहुंचा। मैं नैनीताल आर्य समाज का बड़ा भारी आभारी हूं कि उन्होंने अपने वार्षिक उत्सव के अवसर पर जो संकीर्तन हुआ उसमें सभा प्रधान व श्री कालीचरण जी मत्री सभा, और श्री शिवनरायण जी आगरा निवासी को विशेष सम्मान दिया। श्री शिवनारायण जी ने आर्य समाज मन्दिर के निर्माण में १७,००० रु० दान दिये है। मैं नैनीताल से १ जून को भवाली पहुंचा और भवाली से जो श्री शम्भूनाथ जी के नाम से पुस्तकालय है उसका निरीक्षण किया। उसी दिन मैं भवाली से चलकर रामगढ़ पहुंचा और श्री उमेशचन्द्र जी मेरे साथ थे। मैंने रामगढ में श्री पूज्य महात्मा नारायण स्वामी का आश्रम प्रथम बार देखा। आश्रम में उनका पुस्तकालय बड़ा अच्छा है। और श्री मुनी जी के पुरुषार्थ से स्वरक्षित है। श्री मुनी जी आश्रम में आकर गर्मियों और बरसात में रहते हैं आश्रम एक बड़ा उपयोगी स्थान है। आवश्यकता इस बात की है कि कोई स्वाथ्य प्रेमीवानप्रस्थी या सन्यासी बारहों महीने वहां रहे और पर्वतीय प्रचार का केन्द्र इसको बनाये। वहां पूरा समय किसी के रहने से बाग की भी रक्षा हो सकेगी आजकल भी बागसे आय होती है। और उससे आश्रमके चौकीदार का वेतन, कुछ पूरा हो जाता है शेष रुपया श्री मुनी जी सन्यासी मण्डल से लाते हैं। ऐसा उत्तम स्थान का प्रयोग अवश्य होना चाहिये। रामगढ़ में आर्य समाज मन्दिर है जिसकी रजिस्ट्री आर्य प्रतिनिधि सभा के नाम है इसका भी नीरिक्षण किया। इसका निर्वाचन दो तीन साल से नही हुआ है। नवीन निर्वाचन के लिये अनुरोध किया गया। जिला बोर्ड का चिकित्सालय आर्य समाज मन्दिर में चल रहा है जिसे किराया इत्यादि कुछ प्राप्त नही होता। इस चिकित्सालय के लिये अति शीघ्र समाज मंदिर से हटाकर दूसरे स्थान पर ले जाने का प्रबन्ध होना चाहिये। नारायण विद्यालय का प्रबन्ध सम्मिति बिरला ट्रस्ट के आधीन है। इस समय विद्यालय में धार्मिक शिक्षा बिल्कुल नही हो रही है। यदि कोई दानी सज्जन इस विद्यालय के लिये ३००० हजार रुपया साल दान दें तो विद्यालय का प्रबन्ध पुनः सीधा आर्य समाज के या आर्य प्रतिनिधि सभा के आधीन हो सकता है और वहां धार्मिक शिक्षा की भी व्यवस्था हो सकती है। अधिष्ठाता शिक्षा विभाग के इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। भवाली भी अच्छा प्रचार का केन्द्र है। यहा इसाइयों के प्रचार के विरोध में जो ट्रस्ट इत्यादि प्रकाशित हुए है वह भेज देने चाहिये। जिसे वहां से वितरण हो सके। समिति पुस्तकालय का प्रबन्ध सभा की ओरसे श्रीभारद्वाजजी कर रहे हैं उनके से ट्रैक्ट आदि भेजने चाहियें।

पूर्णचन्द्र एडवोकेट

प्रधान—आर्यप्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश

आर्यमित्र के संचालन हेतु नियमित सहायक

हमने आर्य जगत से प्रार्थना की थी कि यदि हमें २०० व्यक्ति या समाजें प्रति माह १०) मासिक देने वाली मिल जाए तो हमारा आर्थ संकट दूर हो सकता है और हम निश्चित हो प्रगति पथ पर बढ़ सकते हैं। अभी तक केवल ७ नाम हमारे पास आये हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि अति शीघ्र ही अन्य १९३ नाम भी हमें प्राप्त हो जाएंगे।

भवदीय

१—प० भारतेन्द्र नाथ जी संपादक "आर्यमित्र" लखनऊ २५) मासिक
२—मंत्री जी आर्यसमाज मोठ झाँसी १०) ,,
३—मन्त्री जी आर्यसमाज खुर्जा १०) ,,
४—मन्त्री जी आर्यसमाज सुभाषनगर बरेली १०) ,,
५—आर्यसमाज आसनसोल बर्दवान १०) ,,
६—आर्यसमाज बम्बई फोर्ट १२॥) ,,
७—आर्यसमाज देवबन्द (सहारनपुर) १०) ,,
८—आर्यसमाज पूरनपुर (पीलीभीत) १०) ,,
९—आर्यसमाज रायबरेली १०) ,,
१०—आर्यसमाज राजपुर कलाँ (बरेली) १०) ,,
११—श्री प्रेमकुमार (प्रेमी) भूपाल १०) ,,
१२—आर्यसमाज कोसी कलाँ १०) ,,
१३—आर्यसमाज रसड़ा १०) ,,
१४—आर्यसमाज भिनगा (बहराइच) १०) ,,
१५—आर्य समाज नई मंडी मुजफ्फर नगर १०) ,,
१६—आर्य समाज खतौली १०) ,,
१७—आर्य समाज चौक लखनऊ १०) ,,

कालीचरण आर्य

अधिष्ठाता आर्यमित्र व मन्त्री आर्यप्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश

आर्य मित्र उन्नति कोष

हमने ५०००) सहायता के लिए अपील निकाली थी, जिसमें निरन्तर हमें आर्य जनता का सहयोग प्राप्त हो रहा है, इसी सहयोग के बल पर हम आगे बढ़ रहे हैं। इसी आशा और विश्वास से कि जनता का सहयोग हमें निरन्तर प्राप्त होता रहेगा हम बढ़े चले जा रहे हैं। सभी दान-दाताओं के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हुए हम अन्यों से भी सहयोग की प्रार्थना करते है।

विनीत

कालीचरण आर्य

अधिष्ठाता

आर्यमित्र व मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश लखनऊ।

१७३११।=)

पूर्व योग

१—आर्यसमाज चौक प्रयाग १०१)
२—आर्यसमाज रानीमण्डी प्रयाग २०)
३—आर्यसमाज मिर्जापुर १००)
४—आर्यसमाज मुगलसराय २१)
५—आर्यकुमार सभा मिर्जापुर १०)
६—आर्यसमाज बुलानाला बनारस ५१)
७—आर्यसमाज जौनपुर १०१)
८—श्री पृथ्वीचन्द्र आर्य मुरलीपुर मुंगेर ४)
९—श्री रामनाथ आर्य आरा १)
१०—,, सावित्री देवी जी आर्या आलना २)
११—,, रामनारायण राधाकृष्ण सांडी (हरदोई) ३)
१२—,, आर्यसमाज पूरनपुर (पीलीभीत) ११)
१३—,, तुलसीराम जी ,, ,, २)
१४—मंत्री आर्यसमाज नरही लखनऊ ३०)
१५—श्री हरिदत्त जी शर्मा शिकोहाबाद २)
१६—,, कालीराम जी सहारनपुर १)
१७—,, बन्दूलाल जी सहारनपुर १)
१८—,, देवीचरण पुरुषोत्तमदास मिर्जापुर ५)
१९—,, हरिदास आर्यवीर शाहदरा ५)
२०—,, आर्यसमाज गाजियाबाद १०१)
२१—मन्त्री केन्द्रीय वेद प्रचार समिति ५००)
२२—श्री लालता स्वरूप मिलिट्री फार्म झाँसी ५)
२३—श्री शीशपाल ग्राम व पोस्ट. नेक मेरठ ५)
२४—, माडेराम नेक मेरठ ५)
२५—, सुखबारे सिंह नेक, मेरठ ५)
२६—,, ककीरा सिंह नेक मेरठ ५)
२७—,, लाल सिंह नेक मेरठ २५)
२८—,, मागमल नेक मेरठ १५)
२९—,, हुक्म सिंह नेक मेरठ ५)
३०—,, राजमल नेक, मेरठ १०)
३१—, जयदेव सिंह सेठ ब्रदर्स फर्म पावली खास मेरठ ५)
३२—श्री भरतलाल पावली खास दौराला मेरठ ५)
३३—, रुमय सिंह नेक मेरठ ५)
३४—, तारा चन्द दातल, रजवन मेरठ ५)
३५—, रिछपाल सिंह नेक मेरठ ५)
३६—,, तातूराम साहू पो० धर्म बाँधा [उड़ीसा] ५)
३७—,, रतनलाल जी महेश्वरी ट्रेडिंग कंपनी बहराइच ५०)
३८—,, शत्रुघनलाल जी उन्नाव २)
३९—,, साधुराम आर्य सिवहारा २०)
४०—,, सुभद्रादेवी जी कायमगंज १ १)
४१—,, दुर्गासिंह जी बिपल हरदोई २)
४२—,, गिरधारीलाल चंदनलाल जी कानपुर १५)
४३ ,, नादर्न इंडिया एजेन्सी कानपुर ११)
४४—,, श्री गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ५०)
४५—,, आर्य समाज हरदोई १११)
४६—,, श्री प्रभुदयाल जी मेरठ २)
४७—,, श्रीरामावतार जी जौनपुर १)
४८—,, नानूराम कल्यानारायण कोटाबाँजी ५)
४९—,, करोड़ी मल लाजपतराय ५)
५०—,,मातुराम अमरसिंह ३)
५१—,, योगेराम अग्रवाल ७)

२९५)

आर्यमित्र के ग्राहकों से !

जिन सदस्यो का शुल्क अप्रैल १९५५ से पूर्व केवल ३ माह के लिए हमे प्राप्त हुआ था वह २७ जून को समाप्त हो रहा है। नियमानुसार ऐसे सभी सदस्यो की सेवा मे आज पत्र भेज दिए गए हैं और अविलंब आगामी समय के लिए शुल्क भेजने की प्रार्थना की गयी है।

इन पंक्तियो द्वारा भी हम ऐसे सभी सदस्यो से यह सानुरोध निवेदन करना चाहते है कि वे यह सूचना पाते ही आगामी समय का शुल्क भेज कृतार्थ करे। ऐसे सभी सदस्यो के उत्साह से ही दैनिक आरंभ हुआ था और भविष्य में भी इस का संचालन आप के सहयोग से हो सम्भव है।

हम आशा रखते हैं कि २७ जून से पहले पहले ही सभी सदस्य अपना शुल्क भेज हमारा उत्साह बढ़ाते हुए दैनिक आर्यमित्र की उन्नति मे रचनात्मक हाथ बटाएगे।

—आशा और विश्वास के साथ

कालीचरण आर्य　　　भारतेन्द्रनाथ
मन्त्री　　　संपादक
आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश

उत्तरप्रदेशीय आर्य शिक्षा संस्थाओं को सूचना

[आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री एम० ए०, अधिष्ठाता शिक्षा विभाग]
(आर्यप्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश)

१ आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग द्वारा प्रदेश की आर्य शिक्षा संस्थाओं के संगठन और उनमें अनिवार्य धार्मिक शिक्षा के संचालन तथा उसके निरीक्षण आदि के लिए, एक 'आर्य शिक्षा समिति' बनाये जाने का निश्चय किया गया है जिसमें सभा के प्रधान और शिक्षा विभाग के अधिष्ठाता तथा एक अन्तरंग सदस्य के अतिरिक्त दो सदस्य प्रधानाध्यापकों में से और दो सदस्य प्रबन्धकों मैनेजरों में से मनोनीत किये जायेंगे। इस समिति का निर्माण विचाराधीन है। अतः आर्य शिक्षा संस्थाओं के जो प्रधानाध्यापक तथा प्रधानाध्यापिकाएं और प्रबन्धक इन कार्यों में रुचि रखते हों और स्वयं अपने अथवा अपनी संस्था के व्यय से समिति की बैठकों में उपस्थित होकर सहयोग देने के लिए प्रस्तुत हों वे अपने नाम और संक्षिप्त परिचय से मुझे २५ जून १९५५ तक अवश्य सूचित करें।

२ आर्य शिक्षा संस्थाओं में कक्षानुसार धार्मिक शिक्षा के पाठ्यक्रम की रूप रेखा पर भी विचार किया जा रहा है। अत इस कार्य में रुचि रखने वाले विद्वानों से प्रार्थना है कि वे अपने सुझाव २९—६—५५ तक मेरे पास अवश्य भेज द। यह ध्यान रहे कि आर्य शिक्षण संस्थाओं में वैदिक धर्म की शिक्षा दिया जाना अनिवार्य है। अत जिन आर्य संस्थाओंमें नियमित धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा रही है उनकी सूचना स्थानीय आर्य समाजों के अधिकारी मुझे दें।

३ समस्त आर्य शिक्षण संस्थाओं का आर्य प्रतिनिधि सभा से सम्बन्धित होना अनिवार्य रूप से आवश्यक है। अत स्थानीय आर्यसमाजों के अधिकारी और आ० प्र० सभा के अन्तरंग सदस्य अपने अपने क्षेत्र की उन संस्थाओं की सूची शीघ्र मेरे पास भेजने की कृपा करें जो कि अभी तक सभा से सम्बद्ध नहीं हुई हैं। साथ ही वे कृपया उन्हें सभा से सम्बद्ध होने के लिए बराबर प्रेरित भी करते रहें। यदि किसी संस्था में कोई कार्य आर्यत्व तथा वैदिक धर्म के विरुद्ध हुआ हो या होने वाला हो तो उसकी भी सूचना मुझे देने की कृपा करें।

४ आर्य संस्थाओं के अधिकारी गण देखा करें कि उनके विद्यालयों में नियमित रूप से प्रतिदिन छात्रों तथा अध्यापकों द्वारा संध्या और हवन होता है या नहीं। साथ ही उनके पुस्तकालयों में चारों वेद और महर्षि दयानन्द कृत समस्त ग्रन्थ हैं या नहीं। यदि उन्हें इन प्रश्नों का उत्तर 'नहीं' में मिले तो अतिशीघ्र प्रधानाध्यापक प्रधानाध्यापिकाओं को आदेश दें कि दैनिक संध्या हवन अवश्य किया जावे तथा वेद और महर्षि कृत ग्रन्थ अवश्य मंगवाये जायें।

एजेंटों से!

आर्यमित्र को सहयोग देने के जहाँ अन्य कई प्रकार हैं वहाँ एजेंट और ग्राहक भी बहुत सहायता कर सकते हैं। बहुत से एजेंटों ने तो अप्रैल का भी और अधिकांश ने मई के बिल का धन अभी तक नहीं भेजा। इस से आपके मित्र की अत्यंत हानि हो रही है। मैं समस्त एजेन्ट महानुभावों से सानुरोध निवेदन करता हूं कि वे इन पंक्तियों को पढ़ते ही मई तक का धन तुरंत मनिआर्डर द्वारा भेज दें। इस के लिए उनके प्रति मैं विशेष आभारी हूंगा—क्या एजेंट महानुभाव मेरी इस प्रार्थनापर ध्यान देंगे?

—विनीत
भारतेन्द्रनाथ
संपादक

प्रसिद्ध आर्य विद्वान
पं० रामदत्त जी एम०ए०

श्रद्धेय प० रामदत्तजी को बीमार हुए दो वर्ष से अधिक हो गये। परन्तु मुझे उनके दर्शन करने का अवसर इस रोग काल में पहली बार ता० ११ ६ ५५ शनिवार को उनके निवास स्थान शाहजहाँपुर में मिला। यद्यपि उनका एक हाथ नहीं उठता है तथा एक पैर भी काम नहीं देता है तथा किसी वैद्य की असावधानी के फलस्वरूप उनके पैरों में कई जगह छाले पड़कर पक जाने से जख्म हो गये हैं। जिनसे कष्ट होना स्वाभाविक है। परन्तु उनके चेहरे तथा बातचीत से उनको इसकी कोई चिन्ता होना प्रतीत नहीं होता है। वे पूर्व की भांति शान्त चित्त थे। यद्यपि रोग के कारण वह काफी दुबले हो गये हैं परन्तु उनके चेहरे पर पहले का सा तेज झलकता है। यह उनके ब्रह्मचर्य, विद्वत्ता, परोपकार वृत्ति आदि उत्तम गुणों का द्योतक है।

मैं लगभग आध घण्टे उनके पास रहा, मैं चाहता था कि उनके रोग तथा उसके उपचार आदि के सम्बन्ध में इतनी देर में अधिक से अधिक ज्ञान कारी प्राप्त करूं, परन्तु उस धर्मनिष्ठ व्यक्ति ने ऐसा करने का अवसर ही न दिया और जब तक मैं उनके पास रहा तबतक बराबर वह आर्यसमाज तथा आर्य प्रतिनिधि सभा के सम्बन्ध में ही बातचीत करते रहे। उन्हें आर्यसमाज के उत्थान तथा आर्य प्रतिनिधि सभा की उन्नति की ही एकमात्र चिन्ता रोग शय्या पर पड़े हुए भी रहती है। लखनऊ में रहते हुए तो वह अपना पूर्ण समय आर्यसमाज तथा आर्य प्रतिनिधि सभा को देते ही थे। रोग शय्या पर पड़े हुए भी उन्हीं का हर समय ध्यान रहता है।

परमात्मा से प्रार्थना है कि उन्हें शीघ्र स्वास्थ्य लाभ करें ताकि पूर्ववत् वह फिर आर्यसमाज की सेवा कर सकें।

—रामबहादुर मुख्तार पूरनपुर

प्रांत की समाजें तुरन्त ध्यान दें

१०) आ ही भेजिए !

कई बार १०) मासिक देने वाली २०० समाजों के लिए मैं प्रार्थना कर चुका हूं आज पुन यह कहता हूं कि इन पक्तियों को पढते ही आप १०) का मनिआर्डर अवश्य कर दें। ७ जून तक २०० स्थानों से १०) के मनिआर्डर प्राप्त करने पर आर्यमित्र का आर्थिक सकट टल जाएगा अत आज ही १०) भेज दीजिए।

विनीत
कालीचरण आर्य
मत्री आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश

आर्यमित्र के एजटों से!

आर्यमित्र दैनिक के समस्त एजेंटों से हमारा यह निवेदन है कि वे इन पंक्तियों को पढ़ते ही अप्रैल मई के बिल का धन तुरन्त भेज दें। बिल में त्रुटि समझें तो जितना ठीक समझते हों, उतना ही भेज दें। बाद में पत्र व्यवहार से निश्चय होता रहेगा। आशा है कि सब आज ही मनीआर्डर कर देंगे।

-व्यवस्थापक 'आर्यमित्र' लखनऊ

वर की आवश्यकता

मेरे मित्र जिनकी आयु लगभग १८ वर्ष मैट्रिक पास, व्यवसाय और मासिक आय २००) है के लिये एक पढ़ी लिखी गृह कार्यों में दक्ष कन्या चाहिए जिसकी आयु २० वर्ष तक हो जाति बन्धन तोड़ कर शादी की जायगी।
लिखें — पंडित मुरलीधर शर्मा बुकसेलर राजपुर (देहरादून) (उ० प्र०)

कान्यकुब्ज वर की आवश्यकता है

कश्यप गोत्रीय अग्निहोत्री घराने की कान्यकुब्ज कन्या के लिए स्वस्थ सुशिक्षित स्वावलम्बी योग्य कान्यकुब्ज वर की आवश्यकता है। कन्या 'सिद्धान्त शास्त्री' अजमेर से उत्तीर्ण तथा इसी वर्ष इन्ट्रेन्स की भी परीक्षा दी है और 'सिद्धान्त वाचस्पति' परीक्षा के लिये प्रयत्नशील है। केवल यू पी निवासी कान्यकुब्ज व कल्याण मार्गी भी लिख सकते हैं। सुयोग्य गृहणी की आवश्यकता हो पूर्ण विवरण सहित लिफाफे में ही पत्र व्यवहार करें।
पा० हरदयाल अग्निहोत्री
[illegible] (हरदोई)

दैनिक तथा साप्ताहिक आर्यमित्र में विज्ञापन देकर लाभ उठाइये

पता—'आर्यमित्र'
५ मीराबाई मार्ग, लखनऊ
फोन—१९३
तार—"आर्यमित्र"

आर्य्यमित्र

रजिस्टर्ड नं० ६०ए०
२० जून, १९५५

पूना के निकट खडकवासला म नेशनल डिफेन्स एकडेमी का ... य भवन

प्रधान मन्त्री नेहरू

जिनके अनुरोध पर रूस कामिन फार्म भग करने तक के लिए तत्पर हो गया है। श्री नेहरू का सर्वत्र अभूतपूर्व स्वागत हुआ है तथा एशिया के 'चीन यहा के सम्बन्ध दृढतर हो गये हैं।

डिब्रूगढ की रक्षार्थ बनाये जाने वाले बांध में कांग्रेस सेवादल आई० एन० टी० यू० सी० स्वयसेवकों के अतिरिक्त छात्र गण रात दिन काम कर रहे हैं।

श्री सेठ शूरजी वल्लभ दास के सुपुत्र श्री सेठ प्रतापसिंह जी जो बम्बई की २१ आर्यसमाजो के सम्मिलित प्रधान होने का गौरव प्राप्त कर चुके हैं।

सार्वजनिक सस्थाओं और जन सेवी प्रतिष्ठाना से सम्बद्धता आपके दैनिक जीवन का अपरिहार्य कार्यक्रम बन गया है।

बागडुग का वह ऐतिहासिक भवन जिसमें विशाल अफ्रेशियाई देशा में ने बैठकर शांति स्थापना का यत्न किया॥

मधुराम "भारती" द्वारा भगवानदीन आर्यभास्कर प्रेस, मीराबाई मार्ग,

कृण्वन्तो ... विश्वमार्यम्

आर्य मित्र

वैदिक प्रार्थना

हम स्तुति करते हैं !

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः। यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ अथर्व १०-१२१-१४

जिसकी महिमा यह बर्फ से ढके हुए पहाड़, जिसकी महिमा यह नदियों के सहित समुद्र, जिसकी यह बाहू के समान दिशाएं और उपदिशाएं वर्णन करती हैं, हम उस सुखस्वरूप प्रभु की भक्ति से स्तुति करते हैं।

इस अंक के आकर्षण

वार्षिक ८)
एक प्रति का ≈)

शुद्धि यज्ञ का प्रणेता

अमर शहीद श्रद्धेय श्रद्धानन्द !

धर्म-जाति का विजयी प्रहरी,
अमर शहीदों का सरताज।
भारत भू का उन्नायक था,
जीवन बल का सज्जित साज !!

शुद्धि यज्ञ आरंभ किया था,
यही बताया पथ कल्याण !
मत वादों के रहते कैसे,
धरती पा सकती है त्राण !!

सत्य एकता प्रेम भाव से,
भूतल बन सकता है स्वर्ग !
साथ-साथ मिलकर रहने से,
उन्नति कर सकते सब वर्ग !
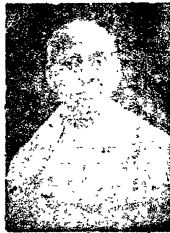
★

यही लक्ष्य था जिसको लेकर,
जामा मस्जिद से वह संत !
सबके ही उत्थान भाव से,
बतलाता था निर्मल पथ।

किन्तु ज्ञान से शून्य मनुज को,
सहन नहीं यह सब हो पाया !
तीन गोलियों से पापी ने,
स्वामी का अस्तित्व मिटाया !!

आज प्रश्न है यह मिटना क्या,
मिटा सकेगा लक्ष्य महान् !
शुद्धि यज्ञ यदि रहे अधूरा,
इससे बढ़कर क्या अपमान !!

★

महान् राजनीतिज्ञ स्व० सरदार पटेल

★

आज गोआ-अकाली-पाकिस्तान की जलती समस्याओं के बीच सरदार पटेल, की स्मृति सम्पूर्ण राष्ट्र कर रहा है और सोच रहा है कि काश आज वे होते ? .....

× × × ×

भारतीयता के प्रतीक, राष्ट्रीयता के पुजारी, अमर शहीद श्रद्धेय डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी, जिन्होंने प्राणों की बलि दे काश्मीर बचाया। आज भारत का प्रत्येक मानस इस महापुरुष के चरणों में मूक श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा है।

भारतीयता की प्रति मूर्ति
स्व० डा० श्यामाप्रसाद जी मुखर्जी

सत्यार्थ प्रकाश पाठ संख्या २७ (सप्तम समुल्लास)

वेदाङ्ग

[श्री सुरेशचन्द्र वेदालकार एम० ए० एल० टी० डी० बी० कालेज, गोरखपुर]

वेद हमारे भारतीय धर्म की प्रधान पीठ है तथा अतिशय आदर, सम्मान तथा आदर की दृष्टि से देखा जाता है। वेद के स्वरूप के तथा अर्थ के सरंक्षण के निमित्त ही वेदाङ्ग साहित्य का उदय हुआ। वेदाङ्ग छः हैं। (१) शिक्षा [२] कल्प (३] व्याकरण [४] निरुक्त [५] छन्द और [६] ज्योतिष। शिक्षा शिक्षा में वेद के मन्त्रो के उचित उच्चारण का विवेचन है। शिक्षा वास्तव में वह विद्या है जो स्वर, वर्ण आदि उच्चारण के प्रकार का उपदेश दे। वेदाध्ययन करने का तर्क यह है कि गुरु पहले किसी मत्र का स्वय उच्चारण करता है और शिष्य बाद में उसके उच्चारण का अनुसरण करता है। वेद के उच्चारण को ठीक प्रकार सचालित करने के लिए स्वर ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। शिक्षा के द्वारा विद्यार्थी को यह ज्ञान होता है कि स्वर तीन प्रकार के हैं [१] उदात्त [२] अनुदात्त और [३] स्वरित। इसमे उदात्त स्वर द्वारा वेद मत्र ऊँचे स्वर से उच्चरित होता है और अनुदात्त का धीमे स्वर से उच्चारण किया जाता है। स्वरित उदात्त तथा अनुदात्त के बीच की अवस्था है। स्वर शास्त्र का इतना अनुशीलन अन्यत्र उपलब्ध होना बड़ा कठिन है। इन स्वरो का एक लाभ यह भी है कि इनके द्वारा अर्थ का नियन्त्रण होता था। इसलिए यह भी माना जाता था कि जो मत्र स्वर या वर्ण से हीन होता है वह मिथ्या प्रयुक्त होने के कारण अभीष्ट अर्थ का प्रतिपादन नहीं करता। इस प्रकार की कहानियां भी उपलब्ध होती हैं जहा शुद्ध स्वर का उच्चारण न होने से अर्थ का अनर्थ हो गया है। इसलिए प्राचीन वैदिक गुरु गण वेद मन्त्रों के ठीक उच्चारण के विषय मे बड़े ही सतर्क थे। पतञ्जलि ऋषि ने महाभाष्य मे उस गुरु का बड़े आदर के साथ उल्लेख किया है जो उदात्त के स्थान पर अनुदात्त स्वर का प्रयोग करता है और जिसे गुरु चांटा मारकर उसके उच्चारण को शुद्ध करता है। "उदात्तस्य स्थाने अनुदात्तं ब्रूते चेत् खण्डिको पाध्यायः तस्मै शिष्याय चपेटिका ददाति"

शिक्षा के भी छः अग हैं। [१] वर्ण अर्थात् अक्षर। वेदाध्ययन के लिए अक्षरों का ज्ञान अत्यावश्यक है। संस्कृत वर्णमाला मे ६३ या ६४ वर्ण हैं। यह वैदिक काल में भी थे, [२] स्वर से तात्पर्य उदात्त, अनुदात्त और स्वरित से है। [३] मात्रा से अभिप्राय है स्वर के उच्चारण में लगने वाला समय। मात्रायें तीन प्रकार की हैं ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत एक मात्रा के उच्चारण में जितना समय लगता है उसे ह्रस्व, दो मात्रा के समय को दीर्घ और तीन मात्रा के उच्चारण में लगने वाले समय को प्लुत कहते हैं। [४] बल से तात्पर्य स्थान और प्रयत्न से है। स्वर और व्यञ्जनों का जब उच्चारण किया जाता है तब मुख में जहां से टकराता हुआ वायु बाहर निकलता है उनको वर्णों का स्थान कहते हैं और जो अक्षरो के उच्चारण में प्रयास करना पड़ता है वह प्रयत्न कहलाता है। यह प्रयत्न आभ्यन्तर और

बाह्य दो प्रकार के हैं। इस विषय को पाणिनीय व्याकरण द्वारा भी खूब जाना जा सकता है। [५] साम साम का अर्थ है दोष से रहित तथा माधुर्यादि गुणों से युक्त उच्चारण। अक्षरो के उच्चारण के दोष और गुणों का वर्णन भी शिक्षा में है।

(६] सन्तान शब्द का अर्थ है संहिता अर्थात् पदों की अतिशय सन्निधि। कई बार प्रत्येक पद का स्वतन्त्र अस्तित्व होते हुए भी आवश्यकतानुसार एक के बाद दूसरे का उच्चारण किया जाता है। जैसे 'वायो आयाहि' के स्थान पर वायवायाहि। प्रातिशाख्य अर्थात् ऋक् प्रातिशाख्य आदि ग्रन्थ ही शिक्षा के प्राचीनतम उपलब्ध प्रतिनिधि हैं।

शिक्षा के बाद दूसरा वेदांग कल्प है। कल्प का अर्थ है वेद में विहित कर्मों का क्रमपूर्वक व्यवस्थित कल्पना करने वाला शास्त्र। [कल्पो वेद विहितानां कर्मणा मानुपूर्व्येण कल्पना शास्त्रम्]। यह कल्प सूत्र शैली में लिखे गये हैं। इनका लिखने का कारण यह था कि ब्राह्मण ग्रन्थों में कर्म विधान अत्यधिक विस्तृत हो गया था अतः उसे इनके द्वारा व्यवस्थित किया गया। कल्प सूत्र चार प्रकार के हैं:—

१ श्रौत सूत्र [२] गृह्य सूत्र [३] धर्म सूत्र और [४] शुल्व सूत्र। इनमें यज्ञ भागादि का वर्णन है।

कल्प के बाद तीसरा वेदांग व्याकरण है। व्याकरण पदो की मीमांसा करने वाले शास्त्र को कहते हैं। [व्याक्रियन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्] व्याकरण शास्त्र के महत्व का प्रतिपादन वर रुचि आदि ने वेदों के अध्ययन के लिए आवश्यक माना है। व्याकरण को तो वेद पुरुष का मुख माना गया है।[मुखम् व्याकरण स्मृतम्]। स्वामी जी महाराज ने व्याकरण में पाणिनीयाष्टकम् को ही प्रामाणिक माना है।

लेखक

चतुर्थ वेदांग निरुक्त है। यह निघंटु की टीका है। इस निघण्टु में यास्क मुनि का भाष्य है और यह भाष्य ही निरुक्त कहलाता है। यास्क के निरुक्त में बारह अध्याय हैं। अन्त में दो अध्याय परिशिष्ट रूप में हैं। इस प्रकार चौदह अध्यायों में यह ग्रंथ विभक्त है। इस निरुक्त को समझने के लिए टीकाएं की गई हैं। दुर्गाचार्य आदि ने टीका की है। निरुक्त में वैदिक शब्दों की निरुक्ति दी गई है। निरुक्ति शब्द का अर्थ है व्युत्पत्ति। निरुक्त शब्दों को व्युत्पन्न अर्थात् किसी न किसी धातु से बना हुआ मानता है। निरुक्त का यह आधार अत्यन्त वैज्ञानिक है और आधुनिक भाषा विज्ञान का आधार भी है।

पंचम वेदाग छन्द है। छन्दों के बिना मंत्रों का उच्चारण ठीक ठीक नहीं हो सकता। छन्द शास्त्र का ज्ञान भी वेद पढ़ने वाले को करना चाहिए। इन वैदिक छन्दों से ही आगे चल कर लौकिक छन्दों का विकास हुआ है। वैदिक छन्द निम्न हैं—गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती।

वेदागों में ज्योतिष अन्तिम वेदाग है। इसके द्वारा नक्षत्र आदि का ज्ञान किया जाता था। गणित आदि बतें जानी जाती थीं।

इस प्रकार वैदिक साहित्य को समझने के लिए वेदांगों का भी अध्ययन करना चाहिए। क्योकि वेद को हम तब तक अच्छी तरह नहीं समझ सकते जब तक कि हम इन विद्याओं का भी ज्ञान न प्राप्त कर लें। अतः हमने सक्षेप से यह भी प्रदर्शित किया है। इस प्रकार हम वैदिक साहित्य के छन्दों पर प्रकाश डालने के बाद भारतीय दर्शन शास्त्र का भी उल्लेख करना चाहते हैं पर इस विषय को अगले समुल्लास में लेंगे।

सार्वदेशिक सभा प्रकाशन लिमिटेड के प्रकाशन

सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड कम्पनी ने लागतमात्र मूल्य पर ऋषिकृत तथा अन्य आर्य साहित्य प्रकाशित करके आर्यसमाज के साहित्य प्रचार में उत्तम योग दिया है। फिर भी कुछ आर्य भाई इस साहित्य को सार्वदेशिक सभा का प्रकाशन समझने के भ्रम में पड़ जाते हैं और इस साहित्य की सैद्धान्तिक त्रुटियो के लिए सार्वदेशिक सभा को उत्तरदाता ठहराने लग जाते हैं। इस विज्ञप्ति के द्वारा यह बात स्पष्ट कर दी जाती है कि सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड वैधानिक रूप से पृथक स्वतन्त्र सस्था है और उसके प्रकाशनों की उत्तरदायिता सीधे सार्वदेशिक सभा पर नहीं है और न हो सकती है।

कालीचरण आर्य
मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली।

आर्य समाज के समस्त पत्रों मे सबसे अधिक छपने वाला आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र —

आर्य-मित्र

वर्ष ५७ — अंक ७०

लखनऊ—रविवार २६ जून तदनुसार अषाढ़ शुक्ल ४ सम्वत् २०१७ सौर ६ अषाढ दयानन्दाब्द १३० सृष्टि सम्वत् १९७२९४९०५५

विनाश के कगार पर...

रक्षा का आमन्त्रण

आशा विश्वास और निर्माण की गति लिए विदुषी लेखिका ने आर्य जनता को भाव भरे शब्दों में झकझोरने का सफल प्रयास किया है। बहन की प्रार्थना भाई ठुकराते नहीं इस बात पर आगे बढ़ने का निमन्त्रण दिया है। पाषाण हृदय ही लेख का पढ़ मौन रह सकेंगे अतः जागरण गीत सा यह लेख हम प्रकाशित कर रहे हैं। —सम्पादक

लेखनी उठाते समय आज मैं यह सोच रही हूँ कि क्या आर्य समाज की स्थापना करते हुये देव-दयानन्द ने कभी यह स्वप्न में भी विचारा होगा की उनका प्रिय उत्तराधिकारी एक शती बीतते-बीतते पथ भ्रष्ट होकर इस प्रकार विनाश के कगार पर खड़ा हो जायेगा ?

या कातिल के छुरे का वार खाते हुये धर्मवीर लेखराम के मन में एक क्षण के लिये भी यह भाव उदित हुआ होगा कि उनके द्वारा रक्त से सींचा यह पौधा इतना शीघ्र मुरझाने लगेगा ? या श्रद्धानन्द ने सीने पर गोली खाते समय इस ह्रास की बात सोची होगी ?

मेरे इस भाव को पढ़कर आप सोचेंगे कि मैं केवल अपकार पक्ष प्रस्तुत कर रही हूँ किन्तु स्थिति तो इससे भी अधिक भयावनी है। और वास्तविकता यह है कि राष्ट्र में रहने वाले लाखों महर्षि के अनुयायियों के होते हुये भी हम लक्ष्य से दूर भटक मृत्यु की गोद में जा रहे हैं। मैं इस मृत्यु को जीवन में परिवर्तित करने के उद्देश्य से ही यह लिख रही हूँ। इस आशा और विश्वास के साथ कि सम्भवतः आप एक बहन की प्रार्थना सुन कर ही चेत जाय।

मैं समस्त आर्य जनता से पूछना चाहती हूँ कि वह सोचे कि क्या वास्तव में आज वैदिक मर्यादाओं का वह पालन कर रही है या तनिक भी उसे लक्ष्य का ज्ञान है ? क्या हम वेद ज्ञान के प्रचार के लिये कुछ कर रहे हैं ? या अन्धकार अज्ञान को मिटाने की भावना का भी कहीं शेष रह गया है ? क्या वार्षिक चुनाव उत्सव के अतिरिक्त भी कभी कुछ करने की हम सोचते हैं ? क्या मूर्तिपूजा, गुरुडम और नास्तिकता को रोकने के लिये हम कुछ कर रहे हैं। "कृण्वन्तो-विश्वमार्यम" तो दूर रहा अपने घर, ग्राम नगर और प्रदेश तक भी अभी हम आर्यत्व की भावना प्रसारित करने में अपने को असफल पा रहे हैं। स्थान स्थान पर खड़े विशाल आर्य मन्दिरों को देख प्रतीत होता है कि विशाल देह का जीवन विदा ले चुका है।

सुनायें किसे कोई सुनने वाला नहीं, पुकारें किसे, जब सभी के कान बन्द हैं, और फिर अनजान को जगाया जा सकता है, पर जान बूझ कर चादर तानकर सोने वाले को जगाने की शक्ति किसी में नहीं है। हम तो विश्व को उठाने चले थे, स्वयं ही सो गये, अब हमें कौन उठाये ? स्पष्ट और सीधे मार्ग दो दिखाई पड़ रहे हैं। पहला तो वह है ही जिस पर हम चल जा रहे हैं मृत्यु मार्ग। दूसरा है यह कि हम जीवन पर बढ़ते तथ्य को पहचानें, और सच्चे अर्थों में कर्त्तव्य का पालन करें।

सबसे बड़ी विचित्रता यह है कि विरोधी हमारे आन्दोलन को कुचल न सके। हम हारे तो अपने प्रमाद, आलस्य और लक्ष्य-भ्रष्टता से। हम जीवन पथ विस्मृत कर बैठे, प्राण सबल को ठुकरा दिया।

निराशा का आंचल ओढ़ स्वार्थ की गद्दी पर अधिकार जमा विनाश की बाट देखनी हमने प्रारम्भ कर रक्खी है, पर यह सब कब तक ?

चारों ओर बढ़ती हुई नास्तिकता, उमड़ती हुई मूर्तिपूजा, फैलते हुये अंध विश्वास और छायी हुई अज्ञानता को घटनाये हमारे नेत्र क्यों नहीं देख पा रहे ? कराल काल सी अशांति की उमड़ती आंधी भी हम क्या नहीं अनुभव कर पा रहे ? क्या हममें से अनुभूति तत्व का सर्वथा अभाव हो गया है ?

मैं कहना चाहती हूँ कि ईंट पत्थर के भवनों का नाम आर्य समाज नहीं है, अपितु आर्य समाज उन व्यक्तियों के संगठन का नाम है जो प्राणों की बलि देकर भी वैदिक ज्योति प्रसार की अभिलाषा रखते हों। ऐसे व्यक्तियों से आज मैं आर्य समाज को अधिकांश में शून्य पा रही हूँ साथ ही मैं यह भी विश्वास रखती कि यदि प्रयत्न किया जाय तो एक वर्ष के भीतर ही देश की आर्य समाजों का काया पलट किया जा सकता है। और यह परिवर्तन राष्ट्र निर्माण में कितना अधिक योग देगा, इसकी कल्पना करने भी तो हर्ष होता है।

इसके लिये अधिक नहीं, चन्द ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जो वास्तव में कुछ करना चाहते हों। सर्व प्रथम कार्यकर्त्ताओं, अधिकारियों और जनता के दृष्टिकोण में परिवर्तन की आवश्यकता है। हमें यह सदा स्मरण रखना चाहिये कि आर्यसमाज धार्मिक आंदोलन को सचालित करने वाला एक संगठन है। इसके कार्यों को आर्थिक हानि लाभ की तुला पर तोलना अदूरदर्शिता है। प्रचार प्रभाव की वृद्धि यहां लाभ है, और ह्रास हानि। धन के अभाव में आज तक न कभी कोई कार्य असफल हुआ है, न होगा। जो इसका रोना रोते हैं वे, इस बहाने अपनी दुर्बलता छिपाना चाहते हैं। कार्य वृद्धि में रुकावट अर्थाभाव नहीं अपितु व्यक्तियों का अभाव है। साथ ही कार्य की दूषित प्रणाली भी इसके लिये उत्तरदायी है। अतः सभी को सही दिशा में परिवर्तन कर आगे बढ़ना चाहिये।

सर्वप्रथम वर्तमान प्रचार पद्धति में परिवर्तन किया जाय। साहित्य प्रकाशन की ओर बल दिया जाय, सत्संगों की अवस्था सुधारी जाय और समाजों के झगड़े तथा पार्टी बाजी को समाप्त कर दिया जाय। इतने परिवर्तन हमारी नींव सुदृढ़ कर देंगे। और तब हम चल सकेंगे महर्षि दयानन्द के मार्ग पर।

शुद्ध वातावरण में उषा का स्वागत करने हेतु आर्य बन्धु-बहन उठें। निद्रा त्याग कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर हों वेद-सुधा पात्र लिये भूतल पर जीवन का विकास करें। क्षणभंगुर काया के मोह में 'आत्मा' का अन्धकार में न ढकेलें यही समय की पुकार है।

मैं जानती हूँ कि आज छायी निष्क्रियता महर्षि के अनुयायियों को कर्त्तव्य विमुख कर दिया है किन्तु साथ ही मुझे यह भी विश्वास है कि धर्म मार्ग पर चलनेवाले वीर आर्यों की भी अभी कमी नहीं। मैं आज इन पंक्तियों द्वारा ऐसे ही सच्चे दयानन्द भक्तों का सर्व प्रथम आर्य समाज में ही क्रान्ति करने हेतु आह्वान कर रही हूँ। धार्मिक

शेष पृष्ठ १२ पर

(सुश्री पंडिता राकेशरानी "साहित्यरत्न")

पूर्ण बनने के लिए।

लेखक—बाबू पूर्णचन्द्र एडवोकेट, प्रधान, आ० प्र० सभा उत्तर प्रदेश

मनुष्य जीवन का उद्देश्य पूर्ण बनना है न केवल स्वयम् पूर्ण बनना है दूसरों को भी पूर्ण बनाना है। और सबको साथ साथ पूर्ण बनते हुए जीवन निर्वाह करना है।

व्यक्ति को पूर्ण बनने के लिये शारीरिक, मानसिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति की आवश्यकता है। और सामाजिक उन्नति के लिये विशाल दृष्टिकोण और दृढ़ संगठन की आवश्यकता है।

यज्ञ की विधि व्यक्ति और समाज को पूर्ण बनाने के लिये एक अचूक और सार्वजनिक योजना है।

जब यज्ञ समाप्त होता है तो यज्ञ करने वाले और यज्ञ में सम्मिलित होने वाले सब मिलकर कहते हैं 'ओं सर्वं वै पूर्णं स्वाहा' इसका अभिप्राय साधारणतया यह समझा जाता है कि यज्ञ समाप्त हो गया, अब अपने अपने घर चलो और अपने अपने कार्यों में संलग्न हो। यज्ञ की समाप्ति पर जब "सर्वं वै पूर्णं" का उच्चारण हो तो भावना यह होनी चाहिये कि यज्ञ के प्रभाव से हम सब पूर्ण, मुकम्मिल बन रहे हैं। और इन शब्दों का उच्चारण करते ही प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक यज्ञ में भाग लेने वाले को इस बात पर गम्भीरता से विचार करना होगा कि उसकी शारीरिक अवस्था मानसिक अवस्था और आध्यात्मिक अवस्था कैसी है वह बन्धनों से मुक्त हो रहा है या बन्धनों में अधिक जकड़ा जाता है।

मनोवैज्ञानिक की दृष्टि से हम यज्ञ की पद्धति और विधि पर आज इस दृष्टिकोण से विचार करना चाहते हैं कि विधि से पूर्ण बनने का लक्ष्य कैसे सिद्ध होता है। यज्ञ की विधि को हम स्थूल रूप से निम्न लिखित विभाग में विभाजित कर सकते हैं।

१ ईश्वर की स्तुति और प्रार्थना, चाहे केवल ८ मन्त्रों से हो और चाहें उनके साथ स्वस्ति वाचन और शान्ति प्रकरण के मन्त्र भी उच्चारण किये जायें। २ आचमन ३ अङ्गस्पर्श ४ अग्न्याधान ५ तीन समिधाओं का प्रयोग ६ पाँच घृत आहुतियाँ ७ जल सिञ्चन ८ फिर घृत की आहुतियाँ ९ सामग्री की आहुतियाँ १० आहुतियों के साथ साथ यम नियम का पाठ, और फिर अन्त में शान्ति पाठ व पूर्ण आहुति।

उपरोक्त क्रियाओं के सम्बन्ध में विस्तृत विचारों के लिये एक बड़ी पुस्तक चाहिये। इस लेख में केवल भूमिका के रूप में कुछ विचार प्रकट किये जाते हैं।

ईश्वर स्तुति और प्रार्थना से अभिप्राय ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव को जानना, मानना और समझना है। और उनके आधार पर अपने जीवन को मर्यादित करना है।

संसार के रचित पदार्थों का प्रयोग जीवन है प्रयोग में बाधा रोग, और प्रयोग की शक्ति का अन्त मृत्यु है। रचित पदार्थों के प्रयोग के लिये आन्तरिक मर्यादा की आवश्यकता है। जिससे रचित पदार्थों के प्रयोग की इच्छा उचित रूप से उत्पन्न हो। इच्छा करने वाला अपनी सामर्थ्य और अधिकार को लक्ष्य में रखे और दूसरों के हित को भी लक्ष्य में रखे अपना और दूसरे का हित साथ साथ सिद्ध हो, सबका हित साधन हो।

एक का हित साधन दूसरों के हितों में बाधक न हो इस मर्यादा के लिये आवश्यकता है ऐसी सत्ता में विश्वास जिसका संचालन सार्वजनिक, सर्वत्र और अनादि है।

ईश्वर प्रार्थना के साथ आचमन की विधि भी इस अभिप्राय से है कि हम मृत्यु के भय से रहित हों, सत्य यश, लक्ष्मी और अन्य प्रकार की श्री प्राप्त करते हुये अपना जीवन निर्विघ्न समाप्त करें। इस आचमन के मन्त्रों में सारे जीवन कार्यक्रम बड़े संक्षिप्त परन्तु बड़े विशाल सुन्दर रूप में वर्णन किया गया है। मनुष्य जीवन का लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति है। जन्म और मृत्यु के बन्धन से मुक्त होना है। इस मुक्ति का छोटा सा उदाहरण सुषुप्ति अर्थात् गहरी नींद है। गहरी नींद में विशेषता यह है कि सोने वाला सबसे अधिक आनन्द प्राप्त करता है। पूर्व पुरुषार्थ के आधार पर उसे गहरी नींद का आनन्द आता है, उस समय उसकी इन्द्रियाँ भी कर्म और भोग के झंझट में नहीं हैं और मन भी इन झंझटों से बचा हुआ है। जब इन्द्रियाँ कर्मों से बची रहती हैं और गहरी नींद आती है तो मन पूर्व संस्कारों के आधार पर कार्य करता रहता है। कभी कभी बड़े विचित्र भयानक दुःख दायक स्वप्न आते हैं। और नींद आनन्द दायक होने के स्थान में दुःख का कारण शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य दोनों की दृष्टि से हो जाती है। आचमन का प्रभाव शरीर पर भी है। परन्तु इसका सबसे विशेष सम्बन्ध मानसिक वृत्तियों और मन की वृत्तियों से है। आचमन के पश्चात् जब हम अग्नि प्रज्वलित करते हैं तो उस समय हमारे अन्दर यह भावना होनी चाहिये कि हम सारी पृथ्वी को हृदय में रखकर यज्ञ वेदी को पृथ्वी का केन्द्र मानकर यज्ञ आरम्भ कर रहे हैं।

संसार का उपकार करना हमारा लक्ष्य होना चाहिये। किसी देश विशेष समुदाय विशेष या जाति विशेष का नहीं। और इस आधार पर अर्थात् यदि हम संसार के उपकार को अपना लक्ष्य बनायें तो हमारा देश प्रेम हमारी राजनीति, हमारी राज्य व्यवस्था अपने देश और राष्ट्र के सर्वथा अनुकूल होते हुए भी दूसरे राष्ट्रों के और देशों के प्रतिकूल नहीं होगी। आज संसार में देश भक्ति और देश प्रेम की कमी नहीं है परन्तु जो दुष्परिणाम व्यक्तिगत स्वार्थ समाज निर्माण पर होता है उससे अधिक हानिकारक प्रभाव संकुचित और स्वार्थ पूर्ण देश भक्ति का प्रभाव संसार के निर्माण पर पड़ता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये महर्षि ने आर्यसमाज के छठे नियम को निर्धारित किया और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये अग्नि प्रज्वलित करने के लिये जो मन्त्र है वह भी इसी विशाल दृष्टिकोण से है।

जब अग्नि प्रज्वलित होने लगे तो उसके बाद जो मन्त्र उच्चारण किया जाता है उसका अभिप्राय यह है कि जब अग्नि प्रज्वलित हो जाए तब यज्ञ करने वालों के हृदय में इष्ट और पूर्त्त की भावनायें जाग्रत हों। और जब यज्ञ की अग्नि पर्याप्त रूप से प्रज्वलित हो जाये और [illegible] यज्ञों की भावनायें [illegible] विकास हो जाये [illegible] कि यज्ञ करने वाले दूसरों के उपकार के हित के लिये अपना सर्वस्व अर्पण करके यज्ञ को अधिक प्रज्वलित और अपने को पूर्ण बनायें। समिधा शब्द में एक सुन्दरता है अर्थात् प्रज्वलित होने की शक्ति इससे प्रदर्शित होती है।

आधिभौतिक, आधिदैविक आध्यात्मिक सुखों की प्राप्ति और इसी प्रकार आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक दुःखों के निराकरण के लिये यज्ञ करने वाले उद्यत होते हैं और यज्ञ में तीन समिधायें लगाकर अपने इस उद्देश्य की पूर्ति को चरितार्थ करते हैं।

घृत की आहुतियाँ भी एक विशेष उद्देश्य के लिये हैं। घृत संसार में भोग्य पदार्थों में सबसे उत्तम और लाभदायक है प्राचीन दृष्टिकोण से गाय सबसे अधिक मूल्यवान धन है। और उस धन का मूल्यवान भाग उसका दूध और दूध का भी सबसे अधिक मूल्यवान भाग घृत है। अतः घृत आहुति से अभिप्राय यह है कि भोग्य पदार्थों में सबसे अधिक मूल्यवान वस्तु और इस प्रकार से अधिक और सर्वाधिक स्वार्थ की भावना से हर प्रकार से आहुति, और जब इस भावना से हम अपनी सब से अधिक मूल्यवान वस्तु को संसार के हित के लिये बलिदान, अर्पण, दान करने के लिये तत्पर हो जाते तो हम यज्ञ करने के साथ साथ यह अभिलाषा करने के अधिकारी हैं कि हम हर प्रकार से परिपूर्ण और सफल हो सकें। अर्थात् प्रजा पशु ब्रह्म तेज, और अन्नादि पदार्थों से परिपूर्ण हो सकते हैं। इसी प्रकार अङ्ग स्पर्श से हम शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक पवित्रता के अधिकारी बनते हैं। यज्ञ की प्रक्रिया से ऊपर लिखी सारी सद्भावनायें हमारे अन्दर प्रविष्ट और समावेश हो जाती हैं और इन भावनाओं से हमारे विचार और व्यवहार मर्यादित होते हैं। यह योजना व्यावहारिक जीवन के लिये भी बहुत मूल्यवान है। व्यावहारिक जीवन का मूल्य आधार संगठित समाज है। जिस समाज में व्यक्तियों और संगठन नहीं है वह नष्ट हो जाता है। संगठन के लिए आधार भी विशाल होना चाहिये और इस सूक्त में सबसे विशाल आधार है। देश राष्ट्र और संसार के उपकार के आधार पर ही संगठित समाज होगा या [illegible]

[शेष पृष्ठ १४ पर]

लखनऊ रविवार २६ जून १९५५

उठने के लिए प्रथम पग !

पूर्व बीच हमें उत्तर प्रदेश के कई स्थानों पर जाने का अवसर प्राप्त हुआ। कई समाजों के सत्संग भी देखे और यह देखकर हम इस निर्णय पर पहुचे हैं कि आगे बढ़ने के लिए अब प्रथम पग होना चाहिए सत्संग सुधार। प्रायः सभी समाजों में साप्ताहिक सत्संग उस रूप में नहीं किए जाते जैसे होने चाहिए। उपस्थिति अत्यन्त कम होती है, और विशेषकर यज्ञ के समय तो बहुत ही कम भाई पधारते हैं। सत्संग में देवियों की संख्या नगण्य होती है और कहीं कहीं तो बिल्कुल ही नहीं पधारतीं। किसी-किसी समाज में केवल यज्ञ कर शान्ति पाठ कर दिया जाता है और बहुत किया तो किसी पुस्तक का पाठ मात्र कर कर्तव्य की इतिश्री समझ ली जाती है। वे ही पुरानी सूरतें और वही श्रद्धा शून्य कार्यक्रम, कहीं कहीं यह भी नहीं! किन्तु क्या यह स्थिति शोचनीय है।

यह स्थिति तो बड़ी बड़ी कहानेवाली समाजों की है। कई छोटे समाजोंमें तो सत्संग होता भी नहीं है। कहीं कहीं पर विशाल मदिर खड़े हैं, पर उनमें भी बैठनेवाले व्यक्तियो का सर्वथा अभाव पाया जाता है। हमारे विचार में यदि खोज की जाए तो चंद समाजें ही सम्भवतः ऐसी पायी जाएगी, जहाँ के सत्संग सुचारुरूप से चलते हों। यह स्थिति देख हम चिन्तित हैं और दिशा परिवर्तन के उपाय सोच रहे हैं।

समाजों के मन्त्रिगण से विशेषकर और साधारणतया समस्त अधिकारियो व सदस्यों से हमारा सानुरोध विनम्र निवेदन है कि जीवन के प्रेरक, आर्य समाज की गतिविधि के प्रथम प्रतीक साप्ताहिक-सत्संगों के प्रति वर्तमान उपेक्षा को बदल दें। अधिकारी गण का यह तो सर्वप्रथम नैतिक कर्तव्य है कि वे अपनी समाज के साप्ताहिक सत्संग को रोचक, आकर्षक और श्रद्धामय बना, अधिकाधिक उपस्थिति के लिए यत्न करें। वास्तव में सत्संगों की उपेक्षा कर हम एक भयकर अपराध कर रहे हैं, यह हमें समझना चाहिए। यदि हम सत्संग को सुन्दर और रोचक बनाना अपना कर्तव्य समझ लें तो हमें निराशा नहीं हो सकती।

साप्ताहिक सत्संग हमारे प्रगति प्रचारक स्तम्भ हैं। आर्य समाज अपनी आध्यात्मिक और आधारित शान्ति संस्थापक दिव्य विचार धारा का प्रचार सत्संगों द्वारा सबल सफल रूप में कर सकता है, आवश्यकता केवल यत्न करने की है। बहुत सोचने पर भी हमारी समझ में यह नहीं आता कि साधारण से व्यक्ति के घर यज्ञादि समारोह होने पर पर्याप्त संख्या में उपस्थिति हो जाती है फिर क्या समाज में मंदिर जाने पर क्या जनता को डर लगता है? नहीं, कारण केवल एक है कि हम किसी को भी सत्संग में पहुचने के लिए निमन्त्रण ही नहीं देते। कोई भूला भटका यदि पहुच ही जाता है तो उससे प्रेम बर्ताव नहीं करते। दोष इसमें जनता का नहीं, पूरा उत्तरदायित्व समाजों के अधिकारियों का है, उनकी उपेक्षा आलस्य और प्रमाद से ही सत्संगों में यह शिथिलता है, अन्यथा एक सप्ताह में ही सत्संगों का काया पलट हो सकता है। इसके लिए कुछ सुझाव हम प्रस्तुत कर रहे हैं इस आशा से कि समाज अविलम्ब इन्हें व्यावहारिक रूप दे उन्नति का प्रथम पग उठाने में सकोच न करेंगी।

१—साप्ताहिक सत्संग निश्चित समय पर आरम्भ और समाप्त हो। समय का परिवर्तन वर्ष में ग्रीष्म और शीत ऋतुओं पर ही किया जाएगा।

२—प्रत्येक सभासद परिवार के समस्त सदस्यों के साथ ही सत्संग में आएँ।

३—सत्संग का कार्यक्रम २ घंटे से कम किसी अवस्था में न होना चाहिए।

४—समाज के अधिकारी व समस्त सभासद अपनी मित्रमण्डली को आग्रह कर सत्संग में आने का निमन्त्रण व प्रेरणा देते रहें और यत्न करें कि आप के मित्र आप के साथ आएँगे ही।

५—अन्य वानप्रस्थियों को समय समय पर आमंत्रित किया जाए और वहाँ लाकर उनका खडन न कर अपना मडन ही किया जाए, ताकि वे कुछ हमसे प्रभाव लेकर विदा हों।

६—सत्संग का कार्यक्रम-ईश प्रार्थना, स्वस्तिवाचन शान्ति प्रकरण, यज्ञादि के पश्चात् सम्मिलित सन्ध्या, पश्चात् ईश्वरभक्ति के १२ भजन, फिर किसी ऋषिकृत ग्रन्थ की कथा, और फिर उपदेश इतना अवश्य होना चाहिए। उपदेश ४५ मिनट, कथा—१५ मिनट अवश्य होनी चाहिए। यदि किसी विद्वान् का अभाव हो तो भी अपने में से ही किसी व्यक्ति के द्वारा उपदेश और कथा का कार्यक्रम अवश्य कराना चाहिए। इसके लिए ७ दिन पहले से तैयारी कर यदि आएँ तो स्वाध्याय भी हो जाएगा और अन्य आगन्तुकों के ज्ञान में भी कुछ वृद्धि होगी।

७—सत्संग के पश्चात् सभी आर्य सभासद बैठकर अगले सप्ताह के कार्यक्रम का निश्चय अवश्य किया करें। आर्य समाज की गतिविधि को बल देने के लिए हमें क्या करना है, कैसे आगे बढ़ना है, हम सत्संग के पश्चात् इन पर विचार करें, और गत सप्ताह क्या क्या किया है इस पर भी निगाह डालें।

८—हम समझें कि सत्संग का जीवन ही आर्य समाज का जीवन है यह हमारी उन्नति का केन्द्र बिन्दु है। इसकी सफलता आर्य समाज की सफलता है।

और भी बहुत से प्रकार हो सकते हैं, जिन्हें अन्य विद्वान यदि मित्र द्वारा प्रसारित करेंगे तो हमें हर्ष होगा। हम केवल यह चाहते हैं कि प्रत्येक समाज का साप्ताहिक सत्संग उत्साह से, उमंग से, जीवन से मनाया जाए ताकि सभी को मिले ज्योति, और अधकार दूर हो।

हमारी यात्रा !

पिछले सप्ताह १६ जून की रात्रि को हमने बरेला के लिए प्रस्थान किया। सभी को पूर्व सूचना दे दी गई थी पर फिर भी बिहारीपुर और भूड समाजों के अधिकारियों के न दर्शन हुए और न सहयोग ही मिला। हमारी सारी यात्रा में बरेली ही ऐसा था, जहाँ इस प्रकार का रवैया देखा गया। श्री चन्द्रनारायण जी एडवोकेट उपमन्त्री सभा ने अपने पास से १०) निरन्तर भेजने का विश्वास दिलाया और १०) एक अन्य महिला ने भी प्रति मास भेजने का आश्वासन दिया। २०) के लगभग फुटकर और प्राप्त हुए और हम सोच रहे थे कि आखिर हुआ क्या है इन बरेली समाज के अधिकारियों को। तभी निराशा गति वाले आर्यसमाज सुभाष नगर के अधिकारियों से हमारी भेंट हुई, निराशा को आशामें बदलते हुए उन्होंने बिना कहे दिए ५) तुरन्त भेंट दी। यह समाज पहले से ही १०) मासिक भेज रही है और अत्यन्त निर्धन समाज है पर जहाँ चाह वहाँ राह के अनुसार इनका सहयोग पाकर हम अन्यों का असहयोग भूल गया।

१८ जून की मध्याह्न को हमने पूरनपुर के लिए प्रस्थान किया। छोटा कस्बा है, पर सहयोग में सबसे आगे। २५०) के लगभग यहाँ प्राप्त हुए। अत वहाँ तो मांगते डर लगता था, फिर भी सकेत मात्र से ही समाज के श्री गंगाराम जी आर्य व श्री राम बहादुर जी मन्त्री ने १००) हमें प्रदान किये। इस प्रेम और उत्साह के लिये जितना धन्यवाद दिया जाए थोड़ा है। श्री राम बहादुर जी तो अन्तरङ्ग सभा के भी सदस्य हैं। आपने आरम्भ से आज तक जो योग दिया है वह सभा के लिए अनुकरणीय है। परमात्मा करे कि सभी आर्यों का हृदय प्रेम भाव से पूरित हो दयानन्द के मार्ग पर चलते हुए धर्म ज्ञान बिखराने के लिए यत्नशील रहें फिर असफलता का [illegible]?

आज हम सीतापुर, लखीमपुर, पीलीभीत, कृष्णनगर के लिए प्रस्थान कर रहे हैं, इस यात्रा का वृत्त आगामी सप्ताह में लिखेंगे।

२७ जून का चन्दा !

जिन सदस्यों का ग्राहक नं० ३००० से ३८३६ के बीच में है उन सभी का शुल्क २७ जून को समाप्त हो रहा है। सभी को कार्यालय से पत्र लिखे जा चुके हैं। कुछ का धन भी आ गया है, जिनका नहीं आया वे यदि [illegible] तक धन न भेजेंगे होने पर उनका पत्र २० जून से बन्द कर दिया जाएगा। अत सभी सदस्य महानुभाव अविलम्ब अपना शुल्क भेजने का निश्चय करें। १० जून तक के लिए शुल्क में कमी भी घोषित कर दी गई है अतः इस अवसर से लाभ उठाते हुए धन अविलम्ब भेजने का यत्न करना चाहिए।

पुराने ग्राहक धन भेजते समय कूपन पर ग्राहक नं० अवश्य लिखें व नवीन सदस्य 'नवीन' शब्द लिखना न भूलें इस से सभी को आसानी रहती है।

क्या यह आशा की जाए की पूर्व की भाँति ही समस्त सदस्य अपने धन भेज अपने आरम्भ किए पौधे को फलने फूलने का अवसर देंगे। सदस्य सिद्धि में सहायक होंगे।

आर्यमित्र-उन्नति कोष

गत सप्ताह तक हमें इस कोष में ३२१४॥≈) प्राप्त हो चुके थे। इस सप्ताह की सूची हम यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं। यदि जनता का सहयोग इसी भाँति तेजी से चलता रहा तो हम अति निकट भविष्य में ही आर्यमित्र की और भी उन्नति कर आपकी सेवा में प्रस्तुत करेंगे—आप धन भेजिए और हमसे लीजिए सेवा" तभी कुछ हो सकेगा।

पूर्वयोग—३२१४॥≈)

१—श्री हरिदत्तजी मन्त्री आर्यसमाज (पीलीभीत) १०१)
२—श्री प्रधान जी आर्यसमाज (पीलीभीत) १०१)
३—आर्यसमाज पूरनपुर (पीलीभीत) १००)
४—आर्यसमाज नानपारा (बहराइच) १०१)
५—आर्यसमाज (बहराइच) ६०)
६—आर्यसमाज सुभाषनगर (बरेली) ५०)
७—आर्यसमाज (गोला गोकरणनाथ) ५०)
८—श्री युधिष्ठिर जी विद्यार्थी (गोरखपुर) २५)
९—आर्य समाज (घुघली) (गोरखपुर) २०)
१०—प्रिंसिपल डी. ए. वी. कालेज (घुघली) १५)
११—श्री धीरकिशोर आर्य घुघली १५)
१२—आर्यसमाज गोरखपुर ३५)
१३—श्री छोटेलाल आर्य बाजना २१)
१४—श्री श्यामलाल जी बगुआ (मुरादाबाद) १०)
१५—आर्यसमाज मोलेपुर १०)
१६—आर्यसमाज मवाना कलां (मेरठ) १०)
१७—आर्यसमाज उज्जैन १०)
१८—श्री चन्द्रनारायण जी बरेली १०)
१९—श्रीमती मुक्खन कुँवर बरेली १०)
२०—श्री किशन लाल आर्य नानपारा ११)
२१—,, रघुवंशमणि त्रिपाठी गोरखपुर १०)
२२—,, प्यारेलाल चन्द्रपाल बहजोई ११)
२३—,, राजाराम पेशकार बजुआ (फतेहपुर) १०)
२४—,, धर्मदास आनंदप्रकाश अम्बैहटा सहारनपुर १०)
२५—आर्य समाज अजीतमल (इटावा) १०)
२६—श्री शिवदयालु सिंह 'त्यागी' मेरठ १०)
२७—,, बृजबिहारीलाल रुदौली (बाराबंकी) १०)
२८—,, रामचन्द्र आर्य पिथौरागढ़ (अल्मोड़ा) १०)
२९—,, गंगाराम जी आर्य पूरनपुर १०)
३०—,, आर्य समाज भटपुरा असमोली १०)
३१—,, प्रह्लाद सेठ घनश्याम सेठ बनारस १०)
३२—,, लालचन्द्रजी आ० स० कैथालयो गुलावठी १०)
३३—,, आचार्य रामदेवीजी भिक्षु जालंधर १०)
३४—आर्य समाज कटरा प्रयाग १०)
३५—श्री मंत्री आ० स० कायमगंज १०)
३६—,, उमाशंकर जी कायमगंज १०)
३७—,, मंत्री आर्य समाज पुरवा (उन्नाव) १०)
३८—,, डा० चन्द्रदत्त व्यास मेरठ १०)
३९—,, केदारनाथ जी कक्कड़ लखनऊ १०)
४०—,, प्रधान जी आर्य समाज बहराइच १०)
४१—,, आर्य स्त्री समाज बहराइच १०)
४२—,, मन्त्री आ० स० औरैया (इटावा) ७)
४३—,, घनश्याम दास जी चौक लखनऊ ५)
४४—ओमप्रकाश जी बरेली ५)
४५—,, लालानाथ जी बरेली ५)
४६—,, राधेश्याम जी बरेली ५)
४७—,, इन्द्रजीत लाल गोरखपुर ५)
४८—,, विश्वनाथप्रसाद आ० स० पीरो (बिहार ५)

२६ जून से १० जुलाई तक "आर्यमित्र" पक्ष मनाएँ!

देश की समाजें अधिकाधिक सदस्य बनाने में लग जाएँ

१५ दिन में ५००० सदस्य बनाने का निश्चय हो

आर्य भाइयो, ३ माह से आपका दैनिक आर्यमित्र पूरे बल से देश में वैदिक विचारधारा प्रसारित करने का यत्न कर रहा है। हम शीघ्र ही इसका साइज आदि बढ़ाना चाह रहे हैं। आवश्यकता केवल यह है कि देश की समस्त आर्यसमाजें २६ जून से १० जुलाई तक 'आर्यसमाज पक्ष' मनाकर अधिकाधिक संख्या में सदस्य बनाने का प्रण करें। सभी की सुविधा के लिए हमने आर्यमित्र के शुल्क में भी इन दिनों के लिए कमी कर दी है।

अतः जिन सदस्यों का शुल्क हमें १० जून तक प्राप्त हो जाएगा उनसे २४) वार्षिक के स्थान पर २०),१३) छमाही के स्थान पर ११) रु० और ७) तिमाही के स्थान पर ६) स्वीकार किया जाएगा। किन्तु ध्यान रहे यह सुविधा केवल उन्हें प्राप्त होगी, जो अपना धन १० जुलाई से हमारे कार्यालय में भेज देंगे।

देश में वैदिक विचार धारा प्रसार के लिए इच्छुक जन समुदाय ने यदि हमारी यह प्रार्थना स्वीकार की तो होगा एक नए युग का अभ्युदय!

देश के स्वर्णिम निर्माण के लिये आलस्य छोड़ें और लगें पूरे बल से सदस्य बनाने में। प्रत्येक समाज पूरी शक्ति से इन १५ दिनों में केवल दैनिक मित्र के सदस्य बनाने में लग जाए तो पाँच हजार से भी अधिक सदस्य बन सकते हैं।

२१) में साप्ताहिकभी वर्षभर मिलेगा, उसके ८, निकाल दें तो रहजाते हैं केवल १३) १३) में ७) की रद्दी आप वर्षभर बाद बेच लेंगे, रह गए ६) केवल। यह टिकटका व्यय मात्र एक पैसा प्रति दिन आर्य दैनिक मगाने को देंगे। इस एक पैसे से आर्यसमाज का कितना बल बढ़ेगा, इसकी कल्पना भी अभी आप नहीं कर सकते।

अतः आशा उत्साह और भविष्य निर्माण की चाह लिए दैनिक मित्र के सदस्य बनाने में लग जाइए यही प्रार्थना इस समय हमारी आप से है—

—विनीत

पूर्णचंद एडवोकेट
प्रधान

कालीचरण आर्य
मन्त्री

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश

४९—,, निरञ्जनप्रसाद जुगसाना [मथुरा] ५)
५०—श्रीमती सविता देवी आर्य बाजना ५)
५१—,, मंत्री आ० स० शेखसराय [बुलन्दशहर] ५)
५२—,, दयानंद वाचनालय बांदा ५)
५३—,, कृष्णचन्द्र आर्य हीराकुंड ५)
५४—श्रीमती मंत्राणी स्त्री आ० स० फैजाबाद ५)
५५—,, हातुराम सत्यनारायण कांटाबांजी ५)
५६—,, किरोड़ी मल लाजपत राय कांटाबांजी ५)
५७—श्री चोरगलाल आहूजा (खुर्जा) ५)
५८—,, राजबहादुर रामनाथ (विजयीगढ़) ५)
५९—,, धर्मेन्द्र कुमार मवाना कलां मेरठ ५)
६०—,, मंत्री आर्य कुमार सभा मेरठ ५)
६१—,, प्यारेलाल चौरसिया चौक (लखनऊ) ५)
६२—,, मंत्री आर्यसमाज ढढिया (फर्रुखाबाद) ५)
६३—,, कृष्णलाल शर्मा ३)
६४—,, जगदीश चन्द्र जी बरेली १)
६५—,, पूर्णचन्द्र जी बरेली २)
६६—,, फतेहबहादुर जी बरेली १)
६७—,, रमेश चन्द्र जी सुभाष नगर बरेली १)
६८—,, हनुमान सिंह २)
६९—,, डा० रामलाल शाह, फीरोजपुर २)
७०—,, रमेशचन्द्र आर्य २)
७१—,, भुवनेन्द्र आ.कु.परिषद् अमिलहा (मिर्जापुर) १)
७२—,, मुकुन्द जी कुँवरजी मलबाड़ा [सूरत] २)
७३—,, मानुराम अमर सिंह काम्टा बाम्बी ३)
७४—,, मोंगे राम अग्रवाल २)
७५—,, रामस्वरूप पूरण लाल [बरेली] २)

कुलयोग ४३२३॥≡)

सभ्यता और संस्कृति

[लेखक—श्री गोपालशरण विद्यार्थी एम. काम., एल एल बी, साहित्यरत्न]

सभ्यता और संस्कृति के सबंध का विश्लेषण करता हुआ यह लेख कई मानसिक गुत्थियाँ सुलझाने का बल रखता है। जीवनकी आकृतियों में मानस तन्त्री के तारों पर विजय के गीत गाने के लिए लेखक के विचार प्रेरणा का आधार बन सकेंगे विश्वास है। —सम्पादक

चेम्बरलेन ने एक स्थान पर लिखा है —"Nothing is more dangerous for the human race than science with out poetry, civilization with out-culture"—अर्थात् मनुष्य जाति के लिए बिना संगीत या कविता का विज्ञान और बिना संस्कृति की सभ्यता से हानिकारक कोई और वस्तु इस संसार में नहीं है। तात्पर्य यह कि मनुष्य यदि विज्ञान रूपी यन्त्र ही बनकर रह गया और उसमें संगीत रूपी आत्मा न रही तथा सभ्यता के साथ-साथ संस्कृति का विकास न हुआ, तो यह दोनों चीजें मनुष्य मात्र के लिए, अत्यन्त घातक सिद्ध होंगी। वर्तमान काल में आज 'विज्ञान' और सभ्यता ही दो ऐसे स्तम्भ माने जाने लगे हैं, जिनके ऊपर बीसवीं सदी का आधुनिकतम मनुष्य यह कहने का दुःसाहस कर रहा है, कि वह पूर्णता की चरम सीमा पर ही पहुँच कर रहेगा। विज्ञान और सभ्यता को ही लेकर आज शक्तिशाली राष्ट्रों में परस्पर एक होड़ सी लगी हुई है। उनमें से प्रत्येक यह चाहता है कि विज्ञान और सभ्यता के क्षेत्र में वह दूसरे से बढ़ जावे।

किन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या 'विज्ञान' और 'सभ्यता' मनुष्य को अमरत्व दिखाने में सार्थक सिद्ध हो सकेंगे, क्या यह उसको सच्ची शान्ति और फिर आनन्द प्रदान कर सकेंगे? इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे जीवन में 'विज्ञान' और 'सभ्यता' दोनों का ही बड़ा महत्व है, परन्तु यह भी सत्य है कि जितना ही हम 'विज्ञान' और 'सभ्यता' की पराकाष्ठा को प्राप्त करना चाहते हैं, उतना ही हमारा यह अनुभव होता जाता है कि हम आन्तरिक दृष्टि से कुछ खोखले हो गये हैं, भले ही थोड़ी देर को यह खोखलापन हमारे संसार की रंगीनियों में व्यस्त रहने के कारण हमारी समझ की परिधि के बाहर रह जाता हो।

आज सभ्यता शब्द का प्रयोग एक नये अर्थ में किया जाने लगा है। ऐसे लोगों की कमी नहीं, जो अमुक राष्ट्रों को सभ्य, कुछ को अर्द्ध-सभ्य और कुछ को असभ्य की संज्ञा देने में नहीं हिचकते। आज वे राष्ट्र जो विज्ञान द्वारा अपनी भौतिक उन्नति की चरम सीमा तक पहुँचाने का प्रयत्न कर रहे हैं, वर्तमान लोगों की दृष्टि में ऊँची सभ्यता को प्राप्त हुए कहे जाते हैं। इसी प्रकार जो राष्ट्र वैज्ञानिक विकास में अविकसित हैं, वे अर्द्ध-सभ्य और जो आज भी आजकी दुनिया से कोसों दूर हैं, वे असभ्य कहे जाते हैं। इस प्रकार विज्ञान प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में सभ्यता का मेरुदण्ड माना जाने लगा है।

सभ्यता के इस वर्गीकरण के अनुसार हम कभी-कभी 'संस्कृति' शब्द को भी जन-साधारण में इसी सभ्यता के रूप में लिये जाते देखते हैं। "ऊँची सभ्यता उच्च संस्कृति की द्योतक है"—यह विचार तथा सभ्यता की होड़ में अपने जीवन [illegible] बाजी लगा देनेवाले लोगों के [illegible] को सिखाते हैं। सभ्यता और संस्कृति [illegible] मौलिक भेद न समझने के ही कारण अधिकांश भारतीयों में विशेषतः शिक्षित वर्ग में एक प्रकार की हीनता की भावना (Inferiority complex) भर गई है। हम में से अधिकांश जब पाश्चात्य सभ्यता का दर्शन कर जब अपनी ओर दृष्टि डालते हैं, तो अपने आप को उस ऊपरी टीपटाप एवं चकाचौंध की तुलना में नगण्य पाकर बार-बार बस यही सोचने लगते हैं कि हम आधुनिक सभ्यता में बहुत पीछे हैं और जबतक हम पाश्चात्य सभ्यता की उस सतह तक न पहुँच जायँगे, जहाँ पर कि आज वहाँ के लोग हैं, हम कभी उन्नत एवं सुखी नहीं हो सकते। परन्तु वास्तव में यह हमारी तथा ऐसा सोचनेवाले लोगों की बड़ी भारी भूल है! सभ्यता और संस्कृति वास्तव में दो बिल्कुल भिन्न चीजें हैं और हमें यह जान लेना चाहिए कि आज की पाश्चात्य सभ्यता, चाहे वह देखने में कितनी ही उन्नत क्यों न लगती हो, तुच्छ है हेय है, क्यों कि उसमें संस्कृति को कोई स्थान नहीं। तभी तो चेम्बरलेन इस बिना संस्कृति की सभ्यता को घातक बतलाता है। न केवल चेम्बरलेन ही, आज पाश्चात्य सभ्यता में पलने के उपरान्त स्वयं वहां के अन्य विचारक भी यह महसूस करने लगे हैं, कि उनकी सभ्यता के विकास के साथ-साथ कोई ऐसी चीज विकसित होने से रह गई है, जिसके कारण आज उनकी दुनियाँ में शांति नहीं है, सन्तोष नहीं है, आनन्द नहीं है।

आज प्रत्येक भारतीय चाहे वह युवा हो या वृद्ध, सम्भले ठहरे, और सोचे—यही सब से बड़ी भारतीय समाज की आवश्यकता है। पाश्चात्य सभ्यता के पीछे दौड़ने वाले देखें, कि स्वयं वहां के विचारक ही, अपनी सभ्यता के विषय में क्या कहते हैं। हारवर्ड के प्रो० डा० प्यामा (Prof Le Piana) लिखते — v h at ve call our hilibation but a murderous macbine with no conscience and no ideals' जिसको कि हम अपनी सभ्यता कहते हैं वह केवल एक संहार करने वाली मशीन है, जिसके न तो अन्तरात्मा ही है और न कोई आदर्श)। प्रसिद्ध वैज्ञानिक दार्शनिक प्रो ह्वाइटहेड (Prof whitehead) ने भी एक स्थान पर लिखा है— "ohat thare remains the show of its ciuilization with out any of its realities' (कि यहाँ सभ्यता एक तमाशा की भाँति है, जिसमें वास्तविकता कुछ नहीं है] प्रिन्सटन के प्रो० फोस्टर Prof Foester) के शब्दों में पाश्चात्य समाज का वर्णन कितना सजीव है। वे लिखते हैं—"This is an acpuisitive socilty, materialistic in its interests, ulhealthy in itspleasure disillusioned in its ideals, and moving blindly to wards its disaster" इसी प्रकार सोमेन सार्वेश के ये शब्द "modern science with all its empty boasts of contructive and progressive forces is leading to the world fowards a physical, moral and intellectual decay' इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं, कि पश्चिम के लोग स्वयं अपनी सभ्यता के विषय में चिन्तित रहते और एक अस्पष्ट रूप में उन आध्यात्मिक तत्वों की खोज में हैं, जिनसे सुख और शान्ति द्रुत मानवता को मिल सके। कुछ समय हुआ, योरुप से 'फ्रैंक बुकमैन' के नेतृत्व में एक मण्डली भारत में आई थी, और उसने स्थान स्थान पर एक बात की धूम मचा दी थी। उन का कहना था कि वे संसार को नये सिरे से बनाना चाहते हैं, आजतक विश्व के विकास में ईर्ष्या-द्वेष, लूट-खसोट, का बोलबाला है, इनसे बुराइयाँ बढ़ीं, झगड़े बढ़े, अशान्ति बढ़ी है, किन्तु अब इन तत्वों के स्थान में, सत्य, प्रेम, सहानुभूति, त्याग, तपस्या को आधार बनाकर विश्व का नव-निर्माण करना हमारा उद्देश्य रहेगा। सारांश यह, कि सभ्यता से अधिक संस्कृति को बल देने की बात उन्होंने कही थी। इससे एक बात जो पूर्णतः स्पष्ट होती है, वह यह कि वास्तव में सभ्यता का विकास संस्कृति का विकास नहीं, संस्कृति एक पृथक चीज है और मनुष्य को पूर्णता प्राप्त करने के लिए इसका विकास करना तथा इसको बनाये रखना सभ्यता के विकास से कहीं ज्यादा आवश्यक है।

ऐसा क्यों? और इस क्यों का उत्तर समझने के लिए पुनः एक बार हमारे लिए संस्कृति और सभ्यता में अन्तर को जानना नितान्त वांछनीय हो जाता है।

'संस्कृति' शब्द वास्तव में संस्कृत भाषा का है, और कृधातु से बना है, जिसका अर्थ है "करना"। इससे भाववाचक संज्ञा बनी 'कृति' जिसका अर्थ है 'कार्य', जो स्वयं कर्म का बदला हुआ रूप है। 'कृति' में 'सम्' उपसर्ग जोड़ने से 'संस्कृति' शब्द की रचना होती है। 'सम्' का अर्थ है—'अच्छी तरह', 'श्रेष्ठ रीति से'। इस प्रकार संस्कृति का अर्थ हुआ अच्छी तरह किया हुआ कार्य, या वह कार्य प्रणाली जो श्रेष्ठ पुरुषों ने श्रेष्ठ रीति से मालूम की हो, या बनाई हो। मनुष्य समाज के प्रसंग में संस्कृति का अर्थ उन बातों से है, जो मनुष्य में विविध गुणों का विकास करे तथा उन्हें प्रकाश में लावे। अतः जो संस्कृति बिना किसी बाधा तथा बर्बादी के मनुष्य के उच्चतम विकास में योग देती है, वह निश्चय ही सर्वोत्तम संस्कृति मानी जावेगी।

'सभ्यता' का अर्थ है 'अच्छी स्थिति में होना।' मैकाइवर (Maciuer) ने कहा है—"Our culture is what we are, our ciuilzaticn is what we use" अर्थात् जो कुछ हम हैं—यानी जो गुण अवगुण सामूहिक रूप से हम में हैं वे हमारी उच्च अथवा निकृष्ट संस्कृति के द्योतक हैं, और जो कुछ अथवा जो साधन हम अपने जीवन-यापन के लिये प्रयोग करते हैं वे हमारी सभ्यता के द्योतक हैं।

आगे चलकर वही विद्वान फिर लिखता है—'By civil zation, then we mean, the whole machanism and organization whi h man has devised in his endeavour to control the cond tions for h life It includes bes des our system of social organization ourteche n ques and our material instruments as well" अर्थात् सभ्यता से हमारा तात्पर्य उस समस्त रचना तथा व्यवस्था से है, जो मनुष्य ने अपने उद्योग से अपने जीवन की परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं को नियन्त्रित करने तथा उनकी पूर्ति करने के लिये बना रखी हैं। सामाजिक व्यवस्था के अतिरिक्त इसमें हमारे समस्त भौतिक साधनों, यन्त्रों तथा प्रणालियों का भी समावेश रहता है।

"Culture, on the other hand, is concerned with ntrinsic values, with the things which are desired for their own sake It is the expression of our nature in our modes of livings, and of thin king, in our euery day intercourse, in art in literature, in religion, in recreat on and enjoyment'

"संस्कृति का सम्बन्ध हमारे उन आन्तरिक गुणों से है, जिनकी आवश्यकता हमारे शरीर को नहीं, हमारी आत्मा को रहती है। अतः हमारे प्रत्येक कार्य में, दैनिक व्यवहार में, हमारे विचार करने के ढंगों में, हमारी कला हमारे साहित्य,

(शेष पृष्ठ १ पर

दर्शन और जीवन

[लेखक—श्री प० शिवमूर्ति जी]

दर्शन क्या है, उसके आधार क्या हैं, और क्या है जीवन के लिए उसकी उपयोगिता ? यह प्रश्न 'दर्शन' की चर्चा करते ही सभी के समक्ष आ कर खड़ा हो जाता है। इसी गम्भीर प्रश्न का विद्वत्ता पूर्ण प्रभाव शाली उत्तर प्रस्तुत लेख में विद्वान् लेखक द्वारा दिया गया है इस आशा से कि मनन शील पाठक कुछ आगे बढ़ने का आधार पा सकेंगे।

—सम्पादक

हमारे युग का सबसे महान स्वप्न 'एक विश्व की रचना' है। वैज्ञानिक आविष्कारों ने पृथ्वी को सिकोड़ कर एक गेंद का रूप दे दिया है परन्तु हमारे मानसिक जगत की विभिन्नताओं का विस्तार नित्य-प्रति बढ़ता ही जा रहा है। इन मनोवैज्ञानिक बाधाओं का निवारण करना जो कि युद्धरूपी वृक्ष के बीज हैं, बढ़ती हुई विश्व एकता को आत्मा प्रदान करना ही हमारे युग का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। इस महान कार्य के सम्पादन में दर्शन शास्त्र का ज्ञान अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

मनुष्य केवल रोटी ही खाकर जीवित रहता। उसको मानसिक खुराक की भी नितांत आवश्यकता प्रतीत होती है। ज्ञानरूपी क्षुधा को बुझाने के लिए विचार रूपी भोजन ही एकमात्र उपाय है। दर्शन-शास्त्र किसी वस्तु विशेष का नाम नहीं है। वह तो विचार की शैली है, जीवन का एक मार्ग है। जीवन की समस्याओं पर पूर्ण रूप से विचार करना मनुष्य का स्वभाव है। अतएव वह सनातन प्रश्न किये बिना रह ही नहीं सकता : 'संसार क्या है ? क्या इसका कोई रचयिता भी है ? इस विश्व में मनुष्य का क्या स्थान है ? आत्मा क्या है ? यह क्षर है अथवा अक्षर ? जीव और ब्रह्म में क्या सम्बन्ध है ? जीवन का अन्तिम लक्ष्य क्या है ? इस प्रकार के प्रश्न ही दार्शनिक प्रश्न कहलाते हैं। विज्ञान केवल विश्व के पास बाह्य स्वरूप का अध्ययन करता है, वह उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ है। धर्म, नैतिक और आध्यात्मिक विचारों तक ही सीमित है। परन्तु दर्शन जीवन के तीनों पहलुओं—ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक—का समन्वय है। इसीलिए मुण्डक उपनिषद् में दर्शन शास्त्र को सभी विद्याओं का आधारभूत कहा गया है, सब विद्या प्रतिष्ठा। यह सत्य का भी सत्य है सत्यस्य सत्यम्। पाश्चात्य देशों में भी तत्वविद्या को विज्ञानों का विज्ञान कहा गया है, (Scientia scienti arum)

अतः हम यह निःसन्देह कह सकते हैं कि केवल दर्शन शास्त्र ही जीवन, ऐहिक एवं पारलौकिक, की समस्याओं पर पूर्ण रूप से प्रकाश डालने में सर्वथा समर्थ है।

मनुष्य और पशु

दर्शन कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसकी आवश्यकता हमारी इच्छा पर निर्भर है। प्रत्येक मनुष्य, जो कि पशु से श्रेष्ठ होने का दावा करता है, बिना किसी जीवन दर्शन के नहीं रह सकता। पश्चिम के दार्शनिक एलडस हक्सले लिखते हैं : 'तत्वविज्ञान के बिना जीवित रहना असम्भव है। जिन दो वस्तुओं में से किसी एक के चुनने का अधिकार हमें मिला है वह किसी प्रकार के 'दर्शन' और 'नहीं दर्शन' के बीच की बात नहीं; वह तो सर्वदा सद् दर्शन और असद् दर्शन की है।' इसीलिए भारत के मनीषियों ने कहा है कि पशुओं के साथ आहार, निद्रा, भय और मैथुन के विषय में समानता होने पर भी मनुष्य की जो सबसे बड़ी विशेषता है वह है उसका धर्म, उसका विवेक, उसका विचार और उसका दर्शन। विवेकहीन पुरुष पशु के समान है, धर्मेण हीन: पशुभि: समान:। इङ्गलैंड के महान् साहित्यकार शेक्सपियर महोदय अपनी 'हेमलेट' नामी पुस्तक में लिखते हैं—'यदि मनुष्य के जीवन का मुख्य कार्य आहार और निद्रा ही है तो वह क्या है ? एक पशु और कुछ नहीं।' सचमुच जो मनुष्य विद्या और विवेक, ज्ञान एवं शील से रहित होता है वह मनुष्य का रूप धारण करते हुए भी बिना सींग-पूंछ का पशु है—'साक्षात् पशुः पुच्छविषाण हीन:'। दार्शनिक हेगल का कथन:—'केवल पशु ही ऐसे प्राणी हैं जो दार्शनिक नहीं होते', अक्षरशः सत्य है।

विश्व एक भूलभुलैया है। जब तक मनुष्य इसका ठीक-ठीक पता नहीं लगा लेता, तब तक उसको चैन कहाँ ! मनुष्य न केवल राजनीतिक प्राणी है, वरन् वह दार्शनिक एवं धार्मिक जीव भी है। स्वभाव ही से वह आधिभौतिक प्राणी है। वह केवल खाने-पीने, शादी और सन्तान पैदा करने में ही सन्तोष का अनुभव नहीं करता, बल्कि अपने आदि स्थान की खोज में भी है जहाँ से अमर कवि शेली के शब्दों में, वह भूल भटक कर इस नश्वर जगत् में आया है और अब तक वह उस स्थान को लौट नहीं जाता, उसे भूले हुए राही की तरह शान्ति नहीं है। वास्तव में यह ब्रह्माण्ड एक फारसी कवि के शब्दों में एक ऐसी पुस्तक की पाण्डुलिपि के सदृश है जिसके प्रथम और अन्तिम पृष्ठ मानों फट गये हों। सदियों से मानव इन्हीं फटे पृष्ठों की खोज में संलग्न है। अतएव इस अन्तरिम काल में वह प्रश्न किये बिना नहीं रह सकता : आखिर इस जीवन के पीछे कौनसा सत्य छिपा है ?

परिभाषा

दर्शनशास्त्र क्या है ? दार्शनिक अरस्तू के शब्दों में परिभाषा ज्ञान का आदि और अन्त दोनों ही है। परन्तु भारत के दार्शनिक डा० राधाकृष्णन् का कथन ठीक ही है कि दर्शन की भाषा सरल कार्य नहीं। इसमें तरह तरह की समस्याओं का विवेचन किया जाता है। इस संसार में उतनी समस्याएँ हैं जितने अनुभव के पहलू। और उनके परिणाम सभी को मान्य भी नहीं हैं। दर्शनशास्त्र अन्तिम सत्य के स्वरूप को जानने का मानसिक प्रयास है। डा० राधाकृष्णन् का मत है कि 'दर्शन विश्व की समस्याओं को समझने का प्रयत्न है।' यूनान के महान दार्शनिक प्लेटो के अनुसार 'दर्शनशास्त्र ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति का प्रयत्न है।' अरस्तू का कथन है कि 'दर्शन मूल शास्त्रों का विज्ञान है।' जर्मनी के उद्भट तत्ववेत्ता कांट का विचार है कि 'दर्शन ज्ञानात्मक क्रिया की समालोचना और विज्ञान है।' हेगल का कहना है कि 'दर्शनशास्त्र पूर्ण विचार का विज्ञान है।' भारतीय परम्परा के अनुसार जिसके द्वारा शाश्वत सत्य का साक्षात्कार हो वही दर्शनशास्त्र है, 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्' उपर्युक्त परिभाषाओं पर विहंगम दृष्टि डालने से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि दर्शनशास्त्र का उद्देश्य सत्यपूर्ण तत्व की खोज है।' 'आत्मानं विद्धि'—अपने आपको जानना यही उपनिषद् और बाइबिल दोनों का अनुशासन है और यही दर्शनशास्त्र का मूलमन्त्र है।

दर्शन का उद्गम

पश्चिम के महान् दार्शनिक अरस्तू का मत है कि दर्शनशास्त्र का श्रीगणेश आश्चर्य में होता है। भारत के महात्मा बुद्ध ने अपने जीवन के द्वारा यह सिद्ध कर दिखलाया है कि दर्शन का जन्म दुःखमय आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक—में होता है। इन त्रिविध दुःखों का निवारण करना ही सभी दर्शनों का एकमात्र उद्देश्य होना चाहिए। दर्शन कोई मानसिक क्रीड़ा नहीं, वह तो हृदय की पीड़ा है। जिस प्रकार से प्रसव पीड़ा में शिशु का जन्म होता है उसी भाँति दर्शन की उत्पत्ति भी मनोवैज्ञानिक व्यथा में होती है। यह संसार दुःखसुख की आँखमिचौनी है। मनुष्य मृत्यु को जीत कर अमरत्व की प्राप्ति करना चाहता है। जबतक उसको किसी प्रकार का भय है, वह सुखी नहीं हो सकता। इसीलिए वह प्रार्थना करता है—

असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतं गमय ॥

यह प्रार्थना मनुष्य के सीमित और असहाय होने का निष्कपट उद्गार है। इसके द्वारा वह असीम तक पहुंचना चाहता है। ईश्वर प्राप्ति ही हमारा आदर्श है। कवि-दार्शनिक प्रसाद ने ठीक ही कहा है—

जीवन का उद्देश्य नहीं है,
इस शांत भवन में टिक रहना।
पर पहुंचना उस सीमा तक,
जिसके आगे राह नहीं ॥

जब तक हम ईश्वर से बिछुड़े हैं तब तक आनन्द कहाँ ? आत्मा परमात्मा की भाँति पूर्ण नहीं है। पूर्णता के लिए प्रयत्न जीवन है और अपूर्णता मृत्यु। उस पूर्ण की प्राप्ति के प्रयत्न में दर्शन का आविर्भाव होता है।

दर्शन की उपयोगिता

इस भौतिकवादी युग में प्रत्येक वस्तु का मूल्य उसकी आर्थिक उप-

(शेष पृष्ठ १० पर)

फलों के राजा

आम की उपयोगिता

[लेखक—श्री जगदीश्वरदयालसिंह जी बहराइच]

आज कल आम की बहार है, निर्धन धनी सभी इसका रसास्वादन कर रहे हैं, अत. इस की उपयोगिता और गुणों को जान हमें लाभ प्राप्त हो सकता है इसी आशा से यह लेख प्रकाशित किया जारहा है। सम्पादक

भारत फलों का देश है। बसन्त ऋतु का आगमन हुआ कि चारों ओर आम के बौर की मीठी सुगन्ध ने सभों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। बिचारा पक्षी भी ऐसी मनमोहक सुगन्धि से न बच सका और आमों की डाली डाली पर हर्षित होकर कूक उठा। कोयल की कूक से समस्त वातावरण दूना आनंदित हो उठा। बौर खुशी से फूल उठे और छोटी छोटी 'अमियों' ने जन्म लिया। बस यहीं से इन आमों का उपयोग आरम्भ हो गया और अपनी अन्तिम अवस्था तक उपयोगी बना रहा। आइये अब हम यहीं से इसके गुणों व उपयोगों का वर्णन सूक्ष्म रूप में करें —

आरम्भ में फल छोटा होता है जिसमें खटाई का अंश होता है। इस समय इसका उपयोग अधिकतर चटनी बनाने में होता है। थोड़े से हरे आम छीलकर रख लीजिये। फिर पोदीने की साफ पत्तियाँ, नमक, लाल मिर्च, धनिया, नीबू, भुना हुआ सफेद जीरा व हींग सब मसाले डालकर सिल बट्टे से खूब बारीक पीस लीजिये। बस चटनी तैय्यार। खट-मिट्ठी चटनी बनाने के लिये इसी में किशमिश, मुनक्का अथवा शक्कर भी डालते हैं।

कच्चे आमों को छीलकर व काट कर सुखा लेने से आम की खटाई तैय्यार हो जाती है जो कि वर्ष भर खटाई के स्थान पर उपयोग में लाई जाती है। कच्चे आमों का साग अथवा लौंजी बनाने के लिये आमों को धोकर ऊपर का नक्कू निकाल दीजिये और काट कर आठ फाँक कर लें। गुठली निकाल देनी चाहिये। इसे घी या तेल में हींग का छौंक लगा कर डाल दीजिये। जलने न पावे अतः थोड़ा जल डालिये और ढक दीजिये। यह कढ़ाई में बनती है, और स्वाद में आम के अचार की भाँति होती है। गल जाने पर उतार लीजिये। यदि इसमें पानी न रहे तो कुछ दिनों तक रखे रहने पर खराब नहीं होता। यदि मीठी लौंजी बनानी हो तो उपर्युक्त विधि में जब आम गल गया हो तो उसमें पाव में छटाँक के हिसाब से चीनी डाल दीजिये व पानी के सूख जाने पर उतार लीजिये।

इसी दाल को अधिक स्वादिष्ट बनाने के लिये उसमें कच्चे आमों को छीलकर डाल देते हैं। कच्चे आमों का गुडम्बा, कलौंजी अथवा नमकीन मुरब्बा भी अधिक स्वादिष्ट होता है। इसे तैयार करने के लिये कच्चे आम को छीलकर चाकू से गुठली पर से फाँके उतार लीजिये और धो डालिये। इन फाँकों को उबलते हुये पानी में डालकर ढक दीजिये ताकि कुछ गल जावें। फिर निकाल लीजिये। पाव भर आम की फाँकों में तीन छटाँक के हिसाब से गुड़ लेकर कढ़ाई में डाल आग पर रखिये व उसमें एक छटाँक पानी डालकर गुड़ छोड़िये। इसके थोड़ा पकने पर वह गली हुई आम की फाँके तथा नमक उसमें डालिये। जब वह पक जावे तब उसमें थोड़ी पिसी हुई इलायची डालकर उतार लीजिये व ठण्डा कर खाने के काम में लाइये।

कच्चे आमों की सोंठ भी तैय्यार की जाती है। इसके लिये कच्चे आमों को लेकर छील काट कर धोइये और उबालिये। गल जाने पर पानी निकाल कर फेंकिये और फाँकों को सिल बट्टे पर पीसिये। यदि पतली तैय्यार करनी हो तो थोड़ा सा पानी डालिये। थोड़े की चलनी से इसे छान लीजिये जिससे एक सार हो जावे। अब इसमें शक्कर, नमक, भुना पिसा जीरा व लाल या कालीमिर्च डालिये बस तैय्यार आमों का पना भी प्रसिद्ध है। इसके लिये कच्चे आम धोकर उबालिये और रस निकालकर उसमें पानी नमक, काली मिर्च व भुना पिसा जीरा मिलाइये। थोड़ा सा पोदीना बारीक पीसकर मिलाइये व इच्छानुसार शक्कर भी मिलाइये। इसका प्रमुख गुण यह है कि लू लग जाने पर इस पने के सेवन से लाभ होता है। लू के दिनों में नित्य ही इसका सेवन करना चाहिये।

थोड़े समय पश्चात् आम के अन्दर गुठली पर जाली पड़ जाती है किन्तु अभी आम कच्ची दशा में ही होता है। ऐसी दशा में कच्चे आम का अचार व मुरब्बे भी बनते हैं। आम का अचार साधारणतया दो प्रकार का होता है। प्रथम तेल का अचार व द्वितीय बिना तेल का अचार तेल का अचार बनाने के लिये बड़े व अच्छे आम लीजिये। इन्हें धोकर ऊपर का नक्कू छील कर फेंक दीजिये फिर सरौते से काटकर चार चार फाँके प्रत्येक की कर दीजिये। गुठली निकाल कर फेंक दीजिये। पाँच सेर आम के लिये निम्न मसाला कूट कर तैयार कर लीजिए: नमक ढाई पाव, लाल मिर्च ढाई छटाँक, राई ढाई छटाँक हल्दी ढाई छटाँक, धनिया पाँच छटाँक, मेथी का दाना पाँच छटाँक व सौंफ पाँच छटाँक। यह मसाला थोड़े से शुद्ध कड़वे तेल में सान कर कटे आमों में भरिये या फाँकों में मिलाकर अमृतबान में भर दीजिये। चार पाँच दिन धूप में रखिये और फिर उसमे इतना तेल भरिये कि अचार से चार अँगुल ऊपर रहे। महीने बीस दिन में जब तेल कुछ सूख जावे तब और डालिये ताकि सूखा रहने से फफूँद न आवे। अब कच्चे आमों का तेल का अचार तैयार हो गया।

बिना तेल का अचार तैयार करने के लिये निम्न मसाला तैयार कीजिये- पाँच सेर आम के लिये नमक ढाई पाव, लाल मिर्च ढाई छटाँक, हल्दी ढाई छटाँक, राई ढाई छटाँक, धनिया पाँच छटाँक, सौंफ पाँच छटाँक, दाना मेथी पाँच छटाँक, शक्कर सवा सेर। इन सबको महीन पीस लीजिये। इसे सरौते से काटे आमों में मिलाकर अमृतबान मे डाल कर ढक दीजिये, आठ दस रोज धूप व ओस में रक्खा रहने दीजिये। जब बन जावे तब खाने के काम में लाइये। यह अधिक स्वादिष्ट होता है।

कच्चे आम की छिली फाँकों की नमकीन अचारी या खट्टी तैयार करने के लिए कच्चे आम धोकर छीलिये और फिर गुठली पर से फाँके उतार लीजिये। सेर भर गूदे में आध पाव नमक डालकर धूप में रख दीजिये। जब पानी छूट आवे तब दूसरे दिन पानी में से फाँके निकाल कर कपड़े पर धूप में सुखा दीजिये। रात को फिर उसी पानी में डालिये। एक दो दिन यों ही कीजिये। फिर आधी छटाँक पिसी हुई हल्दी व आधी छटाँक लाल मिर्च उसमें मिला दीजिये। उसे हिलाकर, दो तीन दिन और धूप में रखिए। यह खट्टी अचारी तैयार होगी।

कच्चे आम की मीठी अचारी शक्कर की बनाने के लिए कच्चे गूदेदार आम लेकर धोइये और छीलकर फाँके उतार लीजिये, गुठली फेंक दीजिये और सेर भर फाँकों में सेर भर शक्कर और छटाँक भर नमक मिलाकर किसी पत्थर या चीनी की बड़ी कूँडी या चौड़े बर्तन में डालकर धूप में रख दीजिये। आठ दस दिन तक धूप में रक्खा रहने दो, ताकि चाशनी पक जावे। तैयार होने पर आधी छटाँक लाल मिर्च मिलाकर अमृतबान मे डाल दीजिये।

कच्चे आम की मीठी अचारी गुड़ की भी बनती है उपर्युक्त विधिमें शक्कर के स्थान पर बढ़िया गुड़ फाड़ कर डालिये। तैयार होने पर अमृतबान में छान छान कर रखते जाइये।

कच्चे आम के लच्छों की मीठी अचारी बनाने के लिये गूदेदार कच्चे आम लेकर धो लिये और चाकू से छीलकर घीयाकस से कस कर लच्छे बनाकर गुठली फेंक दीजिये। सेर भर लच्छों में सेर भर शक्कर अथवा तीन पाव गुड़ और छटाक भर नमक डाल कर पत्थर या चीनी की कूँडी अथवा पथरी में भरकर धूप में रख दें और ऊपर से एक कपड़ा ढक दीजिये। आठ दस दिन में जब चाशनी पक जावे तब आधी छटाक पिसी लाल-मिर्च मिला दीजिये।

सूखे अमचूर का अचार या गलका बनाने के लिये अमचूर सेर भर बीनकर उबाल लीजिये। गल जाने पर उतार लीजिये व पानी छान दीजिये। थोड़ा सा घी व हींग कढ़ाई में डाल कर आग पर रखिये। हींग भुन जाने पर वह खटाई तीन सेर

(शेष पृष्ठ १२ पर)

स्वास्थ्य-सुधा

शुद्धि की आवश्यकता

[श्री मगन भायी देसायी]

शुद्धि मंत्र का स्वर आज गांधीवाद के आधार स्तम्भ मस्तिष्कों में भी गूंजने लगा है। समय की मांग है केवल 'शुद्धि, और वह ही है समस्त समस्त समस्याओं का हल —सम्पादक

कांग्रेस में आज फिर से शुद्धि की बात जोरों से चलने लगी है। यह चीज उस संस्था की एक विशेषता मानी जायगी। बहुत कम संस्थायें इस तरह अपने पर निगरानी रखती हैं।

कांग्रेस की इस विशेषता का श्रेय गांधी जी को है। १६२० में उन्हों ने स्वराज्य आन्दोलन शुरू किया, तब वे कहने लगे कि राष्ट्र की शक्ति को बढ़ाने के और सगठित करने का मार्ग 'आत्मशुद्धि' है। उन्होंने यह पुकार उठाई कि 'यह आन्दोलन आत्मशुद्धि का आन्दोलन है, क्यों कि हमारे भीतर जो दोष हैं उन्हीं की वजह से विदेशी हुकूमत यहा टिकी हुई है। इसीलिए उन दोषों को दूर करने के लिए सामुदायिक आत्मशुद्धिके कार्यक्रम पर अमल किया जाय।' अस्पृश्यता का पाप दूर करो, स्वदेशी धर्म का पालन न करने से हम लोग भूखों मरते हैं, इसलिए उसका फिर से पालन करो, सरकार की गुलामी की ओर ले जाने वाली शिक्षा का त्याग करो—आदि इस नए कार्यक्रम के बड़े अग थे। इस प्रकार भारत की राजनीतिमें धर्मकी परिभाषा का आत्म शुद्धि शब्द दाखिल हुआ। तब से यह शब्द कम-ज्यादा अन्श में इस संस्था के काम काज में हमेशा दिखाई देता रहता है।

इसका कारण है सत्य और शान्ति या अहिंसा से यदि काम करना हो तो उसका रास्ता आत्मशुद्धि ही है।

आज कांग्रेस अपने तंत्र की शुद्धि की चर्चा करती है उसके तन्त्र में सत्ता का लोभ और पदलालसा गहरे पैठ गये हैं। इसके लिये झूठे सदस्य बनाना चुनाव में झूठा मत दान मिलाना, आपस में दलबन्दी खड़ी करना वगैरह रास्ते अपनाये जाते है। ऐसा लगता है कि इन सबका एक शास्त्र ही, खास करके बड़े शहरों में, अपने आप विकसित हो रहा है। इसके छींटे देर सबेर बाहर भी उड़े बिना नहीं रह सकते।

शुद्धि की आवश्यकता क्या सरकारों को भी नहीं है? मन्त्रीगण स्वीकार की हुई नीति के अनुसार काम करते हैं या नहीं? तथा सरकारी नौकर अपना काम किस तरह से करते हैं? रिश्वतखोरी कैसे बन्द की जाय? —ये प्रश्न भी आत्मशुद्धि के हैं। उस मे भी सरकारी नौकरों के लिए तो आत्मशुद्धि बहुत जरूरी है, क्योंकि अर्वाचीन राज्यपद्धति ऐसी जटिल बनती जा रही है कि राज्य की सच्ची सत्ता सरकारी नौकरों के हाथ में ही होती है। फिर उसमें सत्ता के दोष उत्पन्न होते हैं। हमारे समाज में यह एक बड़ी आफत खड़ी हो गयी है।

और प्रजा को भी आत्मशुद्धि की आवश्यकता है। जो वह रचनात्मक कार्यों द्वारा कर सकती है। परन्तु आज उन कार्यों का स्थान सरकारी रचनात्मक कार्य ले रहे हैं, जिसका संचालन सरकारी नौकर करते हैं। वह भी मानों एक सरकारी विभाग ही बन गया है। इस कारण से प्रजा में आत्मशुद्धि का भाव आगे नहीं बढ़ता और सारा काम कानूनी और राजकारोबारी ढग से चलता है। भूदान आन्दोलन इसमें एक एक नयी छाप डालता है। वह प्रजा में कर्तव्य बुद्धि और आत्मशुद्धि की भावना प्रेरित करके काम करता है।

गांधी जी ने आत्मशुद्धि द्वारा ही कांग्रेस की शक्ति बढ़ाई थी। उस समय सरकारी सत्ता प्रजा के खिलाफ थी, इसलिए सत्ता का लोभ और पद लालसा कांग्रेस में आज के ऐसे व्यापक रोग नहीं बन सकते थे। आज राजनीतिक संस्थाओं सरकारों और प्रजा—तीनों को आत्मशुद्धि के लिए सतत जागृत रहना चाहिए।

कांग्रेस यदि तीनों में आगे हो तो उसकी शुद्धि का आन्दोलन प्रजा सरकारों तथा कांग्रेस तन्त्र—तीनों मोर्चों पर चलना चाहिये।

दर्शन और जीवन

(पृष्ठ ८ का शेष)

योगिता से जाना जाता हैं। यदि हम दर्शन शास्त्र को इस उपयोगिता की कसौटी पर कसें तो शायद ही यह खरा उतरे। इसके अध्ययन से न तो हम टाटा बाटा बिरला ही हो सकते हैं और न जीवन के ऐशोआराम ही को भोग सकते हैं। परन्तु सच्चा सुख धन दौलत पर नहीं निर्भर होता है। वह तो मन और आत्मा के सतोष की वस्तु है। भारत के दार्शनिक सम्राट डा० राधाकृष्णन के शब्दों में मनुष्य का निर्माण ही दर्शन का उद्देश्य है। मनुष्य कोई व्यापार की वस्तु नहीं, वह तो केवल इसका व्यक्त भावना से भोक्ता मात्र है। आत्मा विषय का नाम नहीं, विषयी का द्योतक है। जीवन को सच्चे अर्थ में उपयोगी बनाने से बढ़कर और कौन सी उपयोगिता हो सकती है? किसी वस्तु का मूल्य उसके प्रारम्भिक फल से नहीं बल्कि अंतिम परिणाम से जाना जाता है। दर्शन शास्त्र के मूल्यांकन में अभी मानवता एक अबोध बालक के समान है। इसकी महत्ता को पूर्ण रूप से जानने के लिए इसको अभी सदियाँ लगेंगी।

मनुष्य को अन्ततोगत्वा उस वस्तु से कोई काम नहीं हो सकता जिसकी प्राप्ति से आत्मा का हनन हो। दर्शन का चिंतन करने से तो हम विश्व के सम्राट नहीं बन सकते परन्तु अपनी आत्मा के स्वामी तो अवश्य ही बन सकते हैं। यूनान के महात्मा सुकरात को दर्शन शास्त्र की उपयोगिता पूर्ण-रूप से मालूम थी। इसीलिए उन्होंने दृढ विश्वास से अपने देशवासियों से कहा था। 'मेरे भाइयों! यदि आप लोग मुझ को इस शर्त पर छोड़ने के लिए तैयार हैं कि मैं सत्य की खोज करना बन्द कर दूं तो मैं कहूंगा कि आप लोगों को धन्यवाद है। मैं ईश्वर की आज्ञा पालन करूँगा। जब तक मैं जीवित हूं तब तक दर्शन-शास्त्र से अपना सम्बन्ध नहीं छोड़ूंगा। दर्शन जीवन से भी अमूल्य वस्तु है।'

बृहदारण्यक का यह आख्यान सुप्रसिद्ध है कि जब वृद्धावस्था आने पर दार्शनिक शिरोमणि याज्ञवल्क्य ने अपनी सम्पत्ति का विभाजन दोनों पत्नियों—कात्यायनी और मैत्रेयी—के बीच में कर दिया, तत्पश्चात् विदुषी मैत्रेयी ने याज्ञवल्क्य से पूछा कि क्या मुझ को धन से अमृतत्व की प्राप्ति हो सकेगी? महर्षि ने उत्तर दिया, "धन से अमरत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती—अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन।" तब मैत्रेयी ने कहा, जिससे हम को अमरत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती उसको लेकर मैं क्या करूँगी—येनाहं नामृतास्याम् किमहं तेन कुर्याम्? यह है भारतीय आदर्श! दर्शन शास्त्र का उद्देश्य धन की प्राप्ति नहीं बल्कि अमरत्व मोक्ष की प्राप्ति है। दर्शन की सच्ची उपयोगिता आत्म-ज्ञान में है, जिसके लिए सम्पूर्ण वसुधा के वैभव को भी त्याग देने की शिक्षा दी गयी है, आत्मार्थे पृथ्वीम् त्यजेत्। अर्थशास्त्र के सुप्रसिद्ध रचियता कौटिल्य के अनुसार 'दर्शन शास्त्र सब विद्याओं के लिए दीपक है सब कर्मों के अनुष्ठान का साधन मार्ग और सब धर्मों का आश्रय है।"

प्रदीप सर्वविद्यानामुपाय सर्वकर्मणाम्
आश्रय सर्वधर्माणा शश्वदान्वीक्षिकी।

—(०)—

सभ्यता और संस्कृति

(पृष्ठ ७ का शेष)

हमारे धार्मिक कृत्यों में, यहाँ तक कि हमारे मनोविनोद के साधनों में यह हमारी संस्कृति ही है जो प्रस्फुटित होती रहती है।"

इस सब विवेचन के आधार पर हम यूँ कह सकते हैं कि सभ्यता जब कि शरीर है, संस्कृति आत्मा है। संस्कृति भीतर की वस्तु है, सभ्यता बाहर की चीज है। संस्कृति आध्यात्मिक विकास का नाम है, सभ्यता भौतिक विकास का नाम है। विशाल भवन, आधुनिक यन्त्र तथा जीवनयापन के अन्य नवीनतम साधन-यह सब सभ्यता के विकास के निर्देशक हैं; जब कि सचाई-झूठ, ईमानदारी बेईमानी, सन्तोष-असन्तोष, संयम-असंयम, हिंसा अहिंसा, अपरिग्रह परिग्रह, यह सब संस्कृति के ऊँचे या नीचे विकास के निर्देशक हैं।

इस सम्बन्ध में Mathew Arnold का कथन और भी सजीव है। वह कहता है--"Culture is the study of perfection, the disinterested search for sweetness and lightn and he urges that it consists i 'becoming something rather, than in hauing something, in an inward cóndition of the mind and spirit, not in an out ward set of circumstances while civilization is relatively ma chanical and external and tends constantly to become so."

सभ्यता और संस्कृति के इस तुलनात्मक अनुशीलन में दूसरी बात जो उल्लेखनीय है, वह यह कि सभ्यता से संस्कृति हमेशा सर्वोपरि है। संस्कृति से हमारा अर्थ यहाँ "सुसंस्कृति' से ही जाता है, क्योंकि व्यवहार में निकृष्ट संस्कृति—ऐसी संस्कृति, जो झूठ, बेईमानी, ईर्षा, द्वेष, घृणा आदि पर खड़ी हो-कोई संस्कृति नहीं कहता। सभ्यता से संस्कृति का स्थान ही क्यों ऊँचा है, यह बात एक उदाहरण से स्पष्ट हो सकती है। मान लीजिये, एक व्यक्ति अत्यन्त ही धनवान है, आलीशान कोठी में रहता है! बहुमूल्य पदार्थ खाता है। दो-चार मोटरें, पाँच दस नौकर हैं, रेडियो है, विलासिता के अन्य प्रसाधन मौजूद हैं, परन्तु वह परले दर्जे का झूठा, बेईमान, दुराचारी, व्यभिचारी और शराबी है तो वह सभ्यता के मापदंड (etiquette) से भले ही सभ्य गिना जावे, परन्तु सुसंस्कृत कभी नहीं कहा जा सकता। उसको कोई हृदय में स्थान देने को तैयार नहीं होगा। लोग किसी डर या दबाव के कारण उस का भले ही ऊपरी रूप से आदर करते रहें, किन्तु अन्दर से वे उसके लिये कोई भी सहानुभूति, श्रद्धा या प्रेम नहीं रख सकेंगे। इस के प्रतिकूल एक दूसरा व्यक्ति है। दूर क्यों जाइये, आचार्य विनोबा भावे को ही देखिये। केवल थोड़े से फल तथा दूध पर रहते, नंगे-पाँव पैदल घूमते, लंगोटी बाँधे रहते हैं, न उनके पास कोठी है, न नौकर और न मोटर। फिर भी, भले ही सैद्धान्तिक रूप में किसी का कितना ही मतभेद क्यों न हो, लोगों के हृदय में उनके लिये अपार श्रद्धा, महान प्रेम, तथा अत्यधिक आदर है। यह इस लिये कि वे सुसंस्कृत कहीं अधिक हैं—सभ्यता के पीछे होड़ लगाने वाले व्यक्तियों से कहीं ऊँचे हैं।

जो बात व्यक्तियों पर लागू हो सकती है, वही देश और राष्ट्र पर लागू हो सकती है। निष्कर्ष यह कि देश सुसंस्कृत हो, और सभ्य भी हो, यह तो सभी से आदर्श पर्याप्त होगी। देश सुसंस्कृत हो, परन्तु भौतिक विकास अर्थात सभ्यता में पिछड़ा हुआ हो—दूसरे शब्दों में देश के निवासियों का आत्मिक स्तर ऊँचा उठा हुआ, लोग दूसरों के कल्याण के लिए अपने स्वार्थ को ठुकरा देते हों, बेईमानी, झूठ, दुराचार से दूर रहते हों, परन्तु वे बजाय मोटरों के बैलगाड़ियों में चलते हों, महलों के बजाय झोपड़ों में रहते हों तब भी उस देश की महान् संस्कृति होने के कारण लोगों को उसके सामने अपना सिर झुकाना पड़ेगा। लेकिन सबसे अधिक किसी देश के लिए घातक स्थिति तब होगी, जब वहाँ संस्कृति के तत्त्वों को बिलकुल भुला दिया गया हो, भौतिक विकास ही मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य समझा जाता हो, और मानवीय गुणों की उपेक्षा करके केवल धन को ही जीवन का केन्द्र बिन्दु मान लिया गया हो। कहने का तात्पर्य यह कि एक बार हम सभ्यता को संस्कृति की रक्षा के लिए छोड़ सकते हैं, परन्तु संस्कृति को सभ्यता की रक्षा के लिये त्याग देना हमारे लिए कभी हितकर सिद्ध नहीं होगा। कोई भी अपनी संस्कृति को भुला कर सुख और शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता।

आज भारतवर्ष का जो गौरव, जो मान, जो प्रतिष्ठा संसार में है, वह इसी लिये है कि उसने आदि काल से सभ्यता से संस्कृति को प्रधान माना है और अन्य संस्कृतियों की तुलना में आज भी भारतीय संस्कृति जो लोगों को अन्धकार से प्रकाश में ला रही है, तो इसका मूल कारण यह कि भारत की संस्कृति का आधार ईश्वर-प्रदत्त ज्ञान 'वेद' रहा है। वैदिक संस्कृति ही सच्चे अर्थों में 'मानव संस्कृति' रही है इसीने गिरते हुए को उठाया है, कर्तव्यों का ज्ञान कराकर, निष्काम भाव से कर्म करते हुए जीने का उपदेश दिया है। जो आज भी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आदर्श सामने रखती हुई ऊँचे स्वरों में कहती है-

संगच्छध्वं स वदध्वं स वो मनांसि जानताम्। देवा भाग यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥

समानो मन्त्र समितिः समानी समा न मन. सन. चित्तमेषाम्। समान मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि व। समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥

और देशों की भी संस्कृतियाँ थीं, लेकिन उन्होंने गिरे हुए को उठाना नहीं सीखा था, वे दूसरों को मिटा देना चाहती थीं। स्वयं भी मिट गयीं, आज वे केवल इतिहास की वस्तु हैं। यह वैदिक संस्कृति ही थी, जिसने गिरे हुए को उठाना सिखाया था। उस अबोध बालिका 'शकुन्तला' को जिसे आज की दुनिया नाजायज और हराम का कहकर घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से छोड़ देती मरने के लिए यह वैदिक संस्कृति का ही आदर्श था जिसने महर्षि कण्व को प्रेरित किया उसे जीवन देने के लिए-वह जीवन जिसने आगे चलकर देश को भरत' रूपी जीवन दिया, जिसके नाम को आज तक इस देश का नाम भारतवर्ष सार्थक कर रहा है। वैदिक संस्कृतिने ही पतित को पावन बनाना सिखाया था, सबसे समानता का यथायोग्य धर्मानुसार, प्रीतिपूर्वक व्यवहार करना सिखाया था; इसीलिए आज भी वह अनेकों प्रहार सहकर भी जीवित है, और न केवल देश के लिए, वरन विदेशों तक को प्रेरणा देती है, जीवन देती है। तभी तो आज भी मैक्समूलर ही बाबो कहती है- "If I were asked under what sky the human mind, has most fully developed some of its choices gifts, has most deeply pondered on the greatest problems of life, and has found solutoins of some of them, which well deserve the attention even of those who have studied plato and 'Kant'-I should point toIndia. And if I were to ask myself, from what literature, we here in europe, we who have been nurtured almost exclusiuely on the thoughts of Greeks and Romans, and of one Semitic, ace, the gewish, may draw that corrective which is most wanted in order to make our inner life move perfed, more comprehensive morh universal, in fact more truly human a life, not for t life only, but a transfigured and eternal life again I should point to Incia"

आज भी वर्णाश्रम व्यवस्थित भारतीय समाज के विषय में -Sir George Bird wood कहते है कि "such an ideal social order, we should have held imposs ble of realization, but it continues to exist, and to afford us in the yet living results of its baily operation in India, a proof of the superiority, in so many unsuspected ways, of the hieratic culture of antiquity over the secular joyless in one and selfdestructive modern civilization of the west

अर्थात् एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था जो कि हमारे लिए प्राप्त करना असम्भव सी मानी जाती रही, आज भी भारतवर्ष में जारी रहे और, जिसके चलन के जीते जागते परिणाम आज भी पश्चिम की वर्तमान स्व० संहारकारिणी, अर्थहीन निरपेक्ष तथा आनन्दरहित सभ्यता की तुलना में विश्वासपूर्वक रूप उसका बड़प्पन तथा सर्वोपरिता सिद्ध करते हैं

यह है भारतीय वैदिक संस्कृति की सार्वभौमिकता!

हम कहाँ आज सभ्यता के पीछे दीवाने होकर बहकते जा रहे हैं! आध्यात्मिक सुख और शान्ति छोड़कर पश्चिम के भौतिक वाद की नकल करने जा रहे हैं! हम समझें, अपनी संस्कृति को पहचानें, समझें, उससे प्रेरणा लें, स्वयं भी जीवन को आनन्दमय बनाकर विश्व को शान्ति का जीता जागता उपहार दें यही इस लेख का उद्देश्य और ईश्वर से प्रार्थना है।

आम की उपयोगिता

[पृष्ठ ६ का शेष]

गुड़ व थोड़ा पानी उसमें डालिये। धनिया आधी छटाँक, सौंफ आधी छटाक, दाना मेथी सवा तोला, लाल मिर्च आधी छटाक यह सब मसाला भूनकर कूट लीजिये और अब अमचूर व गुड़ पककर लिपटवाँ हो जाय तब उपर्युक्त मसाला मिलाइये व आग से उतार लीजिये। यह बहुत ही स्वादिष्ट बनता है।

आम का मुरब्बा भी प्रसिद्ध है। कच्चे गूदेदार आम को छीलकर मोटी व बड़ी फाँकें उतार लीजिये। इन्हें थोड़ा सा गोंद दीजिये व थोड़ा सा उबाल लीजिये। दो सेर फाँकों के लिये तीन सेर शकर के हिसाब से चाशनी बनाइये व गाढी होने पर उसमे यह फाँके डालिये। चाशनी पतली हो जायेगी ३ ४ मिनट पकने के बाद फाकें निकाल लीजिये चाशनी पकने दीजिये। गाढ़ी होने पर पुनः फाँके डालिये। ठण्डा होने पर थोड़ी सी केसर घोट कर डालिये, बस मुरब्बा तैय्यार हो गया है।

नौरतन चटनी तैय्यार करने के लिये एक सेर कच्चे आम लेकर धोकर छील कर चाकू से गूदा उतार लीजिये फिर सेंधा, साँभर नमक छटाक-छटाक भर, धनिया १ तोला, बड़ी जायफल, जावित्री व दालचीनी एक एक माशा, पोदीना डेढ़ तोला व अदरक छिलीकटी आधी छटाक डालकर चटनी पीस लीजिये फिर बादाम की मींगी एक तोला पिस्ता छः माशा, किशमिश आधपाव इन सब को पाछकर तनिक घी मे भून लो आधपाव उबले व कटे छुहारे, आध सेर शकर की चाशनी करके सब चीज खूब मिलाइये व उतारकर ठण्डी होने पर अमृतबान मे भर लीजिये।

अब तक हमने कच्चे आम की उपयोगिता का वर्णन किया है अब हम पके आम की उपयोगिता पर प्रकाश डालेंगे। पका आम अधिकतर खाने के काम में आता है। पके समय में कुछ मनुष्य केवल आम पर ही आश्रित रहते हैं इस प्रकार पके आम का प्रमुख उपयोग खाने में ही होता है पक जाने पर आम इतना अधिक पेड़ो से गिरने लगता है कि खाने की आवश्यकता से अधिक हो जाता है। अत बहुत से व्यक्ति आम का रस निकाल कर सुखा लेते है अमरस अथवा अमावट कहते हैं। यह बाजारों में बिकता भी है। यह खाने में अधिक स्वादिष्ट व रुचिकर होता है।

पके आमों की सब्जी भी तैयार की जाती है। इसके लिए पके रसदार आमों का रस निकालिये व गुठली उसी में डाल दीजिए। इसमें शकर व नमक खटास व मिठास के अन्दाज से डालिए। पतीली में घी जीरे का छौंक तैयार कर यह रस उसमे डालिए। थोड़ी लाल मिर्च पानी व हल्दी भी डालिए। पक जाने पर उतार लीजिए व खाने के काम में लाइए।

पके आमों की बर्फ अत्यन्त स्वादिष्ट होती है। मीठा कल्मी आम जैसे बम्बई या दसहरी लेकर छीलकर छोटी २ फाँक कीजिए। सेर भर दूध को तीन चार बार उबाल कर उतार लीजिए व ठण्डा करके पाव भर शकर मिलाइए। अब इसमे आम के टुकड़े डाल कर जमाइए। बस स्वादिष्ट बर्फ तैयार हो गई।

पके आमों की गुठली भी अत्यन्त प्रयोग में आती है। कुछ लोग इसे उबाल कर खाते हैं। भारत के कुछ भागो मे आम की गुठली का आटा पीसा जाता है। इसकी रोटी बनाकर खाई भी जाती है।

अब हम आम के गुणो का वर्णन करेंगे

कच्ची अमिया

कसैली व खट्टी, गर्म होती है। ज्वर के साथ हानि से रुचिकारक, मल रोकने वाली वात, पित्त व कफ वर्धक होती है। रुधिर के विकारों को उत्पन्न करती है। कण्ठ के रोग फोड़े फुंसी आदि हो जाते हैं।

अमचुर

खाने में खट्टा व स्वादिष्ट होता है। कषेला होने के साथ साथ कफ व वात दूर करने के लिए बड़ा लाभकारी होता है।

पका हुआ आम

खाने में सुगन्धित मीठा व मधुर होता है। स्निग्ध, वीर्य वर्धक व बल वर्धक होता है। इसके खाने से सुख मिलता है। वात का नाश होता है। हृदय को शक्ति मिलती है। शरीर का रंग गोरा होता है। अग्नि व कफ वर्धक होता है। इसके खाने से शरीर में मांस व बल बढ़ता है व शरीर की थकावट दूर होती है। पित्त की वृद्धि होती है।

पाल में पका आम

पित्त का नाश करता है। इसमें खटाई का अंश न होने से अत्यन्त मीठा मालूम होता है। स्वादिष्ट, मीठा, बलवर्द्धक, वीर्यवर्धक व खाने में हल्का व शीतल होता है। बहुत शीघ्र पचता है, वात पित्त का नाश व किसी किसी को दस्त लाता है।

आम का निचोड़ा रस

बल वर्धक, भारी वात नाशक व दस्तावर होता है। हृदय को हानिकारक, तृप्तिकारक किन्तु कफ वर्धक होता है। सौन्दर्य व कान्ति प्रदान करता है।

अमावट अथवा अमरस

तृषा शांत होती है। कै को लाभ होता है। वात पित्त में लाभदायक है। कुछ दस्तावर भी होता है।

आम की गुठली

किञ्चित खट्टी कसैली व सौंधी होती है। वमन, अतिसार व हृदय दाह में लाभ कारक है।

आम के दोष, खट्टे आम के खाने से ही होते है। मीठा कभी हानि नहीं करता। मीठा आम नेत्र हितकारी व अधिक गुणकारी होता है। आम खाने के बाद दूध, सोठ या जीरे का जल पी लेने से कोई हानि नही होती।

मधु के साथ आम

राजयक्ष्मा, प्लीहा वात व श्लेष्मा का नाश करता है।

घृत के साथ आम

वात का नाश, अग्नि वर्धक व बलवर्धक होता है।

दूध के साथ आम

वात पित्त का नाश होता है। रूचि करता है व बलवर्धक होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आम का फल छोटी अवस्था से लेकर पकने की अवस्था तक प्रत्येक दशा मे कितना अधिक लाभकारी है। आम के आम व गुठली के दाम' पूर्णतया सत्य है। गुठली भी रोटी के लिये व अनेको पेट रोगों में लाभकारी होती है आम वास्तव में उपयोगी फल है।

विनाश के कगार पर

[पृष्ठ ३ का शेष]

शुद्धि या क्रान्ति के पश्चात् विशाल कर्मक्षेत्र हमें निमन्त्रण दे रहा है। बिलबिलाती व्याकुल आत्माएँ त्राण के लिये आज आर्यसमाज के दिव्य सदेश की बाट देख रही हैं। यह बाट उन्हें कब तक देखनी पडेगी, यही आर्य बन्धुओं से मुझे आज पूछना है।

अधूरा कार्य, बढता हुआ अनाचार, आसुरी प्रवृत्तिया क्यों हमें उठने की प्रेरणा नही देती ! नित्य होते वैदिक संस्कृति पर प्रहार क्यो हमारी निद्रा-भंग नही कर पा रहे हैं ? विरोधी शक्तियों की ललकार और चुनौती हम क्यों स्वीकार नही करते ? क्या आर्य नाम धारी व्यक्तियों का रक्त सर्वथा शीतल हो चुका है या मृत्यु की ओर बढना ही हमें इष्ट है, क्या सोच रहे हैं आज ?

सुना था कि बहन की प्रार्थना भाई ठुकरा नही सकते इस तथ्य की आज मुझे परीक्षा करनी है। मैं सम्पूर्ण आर्य बन्धुओ, से मार्ग परिवर्तन की प्रार्थना करती हुई महर्षि के महान् लक्ष्य को गति देने के लिये पूरा बल लगाने की भिक्षा माग रही हू। छायी निराशा दूर कर नये निर्माण के लिये सभी का आह्वान कर रही हूं। चाहती हू कि विजय से प्रेम कर हार का अस्तित्व तक मिटाने के लिए हम उठें अपनी चाल में वह गति लेकर कि पर्वत और चट्टानें हमारा मार्ग रोक न सकें। तूफान हमें हटा न सकें। हम बढ़ चलें, निरंतर तब तक जब तक कि संसार के प्रत्येक भाग पर वेद की पावन पताका न लहराने लगे।

आशा और विश्वास के साथ विनाश के कगार पर खड़े आर्य समाज को जीवन देने का समय अब आ गया है। देरी का परिणाम शुभ होगा नही, अत आज ही इस दिशा में पूरा बल लगा प्रत्येक सभव पग उठाने का निश्चय कीजिये।

यह न भूलिये कि यह एक बहन का निमन्त्रण है और आर्य, बहन के निमन्त्रण को ठुकराते नही स्वीकार कौन करता है ! इसी की बाट देखती रहूंगी।

आर्य्य महिला मण्डल

नारी और समाज

[लेखिका श्रीमती उर्मिला बी० ए०]

समाज रूपी रथ के चलाने में नर एव नारी नामक दो पहियों का ही सहयोग होता है। पुरुष का स्त्री के बिना अस्तित्व नही है और स्त्री का पुरुष ही अवलम्बन आराधक पथ प्रदर्शक आदि हुआ करते हैं। हमारे समाज में नारियोंके प्रमुख तीन ही रूप दृष्टिगत होते हैं माता,पत्नी एव कन्या, और नारी के इन्ही तीन स्वरूपों पर समाज आरम्भ से अब तक चलता जा रहा है।

समाज में नारी अपने पिता माता के अक में अपना नन्हा सा रूप लेकर सुशोभित करती है, उसका वह छोटा स्वरूप. भोलेपन से अभिभूत जिसमें ईर्ष्या नही द्वेष नही केवल होती है कोमलता एव नन्हें शिशु सी सरलता, किन्तु फिर भी जिस समय कन्या के जन्म का सम्वाद परिवार के सदस्य सुनते हैं माता पिता कन्या की ध्वनि से परिचित होते हैं उनके हृदय में वेदना एव उलझनों का सागर सामने आ जाता है और उनमें वे डूबने उतराने लगते हैं और वे सोचते हैं कि अब उनके समक्ष विषम परिस्थितिया आ गई हैं और कटुता का आवाहन हो चुका है। साथ ही उनके समक्ष कुछ समय के लिये प्रसन्नता का दीपक बुझ जाता है। माता पिता के सामने अपनी गरीब कन्या का भविष्य शिक्षा का भार एव विवाह की उलझने आ जाती हैं, इस के विपरीत पुत्र जन्म दम्पित के जीवन की सफल साधना का द्योतक है। ऐसा भी क्यों हैं, क्या प्रश्न नही के बराबर है? आज कल यदि (श्रेष्ठ) परिवार में उत्पन्न होने के उपरान्त भी आर्य (श्रेष्ठ) परिवार के सदस्य भी उन्हें ठुकराते हैं वे चाहते हैं धन, वैभव एव सुन्दर स्वरूप। यदि माता पिता उससे हीन हैं तो वे समाज में कलकी हैं उपहासित हैं क्योंकि वे अपनी कन्या का हाथ पीला करने में असमर्थ हैं। इसके विपरीत यदि कन्या प्रचलित शिक्षा प्राप्त करके अपने भरण पोषण का साधन कर जीवन निर्वाह करना चाहे और जीवन साथी मिलने तक की प्रतीक्षा करे उस समयभी हमारे ये समाज द्रष्टा, स्रष्टा द्वारा निन्दनीय हैं आज मैत्रेयी, गार्गी बनाने के लिए साधन नही हैं, समय नही, उनको आदर्शों की अमान्यता करनेवालों की कमी नही किन्तु फिर भी बन्दी उनमें एक सुनहली रेखा देखने की कामना करते हैं। क्या ये भारतीय ललनाएं अपनी उन बहनों की सुखी स्मृति भूल सकती हैं जो भारत के साम्राज्य के नाम पर अपना नाम अमर कर गई मुगल काल मे भी लोहा लेने वाली दुर्गावती, चाद बीबी को भूल सकती हैं। रजिया भी मुगल काल की संकीर्णता में सुल्ताना के नाम से विख्यात हुई। नारी का रूप हमको शासिका संरक्षिका, सहयोगिनी एवं सब ही क्षेत्रों में दृष्टिगत होता है किंतु उन नारियो का स्वरूप आज हम समाज में क्या चाहते हैं इसका उत्तर नहीं।

स्वय पर ध्यान न दे आज पत्नी के रूप में नवयुवक रंगीन तितलियों चाहते हैं साथ ही धनाढ्य घर कन्यायें फिर बिरादरी भी होना आवश्यक ही है किंतु ये करते हुए वे अपनी वास्तविकता भूल जाते हैं नारिया उनकी अर्द्धाङ्गिनी हो जाती हैं। पुरुष को नारी की एवं नारी को पुरुष की समाज के कर्मक्षेत्र में उतरने के लिए आवश्यकता होना स्वाभाविक ही है, ऐसे समय में आज पत्नी को पति चाहिए और पत्नी को पति। विदेशी सूट टाई में कसे हुए पाश्चात्य भावनाओं में लिप्त कामनाओं से ग्रसित रग-रेलियों से प्रेरित अठखेलिया करने वाले पति इसके लिए योग्य नही और फिर नारियों की भी अयोग्यता का द्योतक उनकी अतुलित सौंदर्य प्रियता एवं पाश्चात्य पहनावे एव वसन भूषण से आभूषित होकर घूमना है। आज पुरुष स्त्री को सहयोगी होना चाहिए।

आज हमारा देश अपने बचपन से यौवन की ओर पग बढ़ा रहा है क्योंकि स्वतन्त्रता के कुछ ही क्षण बीते हैं ससार में शान्ति का प्रश्न उठने पर भारत के ही मुरझाये मुख पर विश्व अपना दृष्टिपात करता है किंतु क्या कभी हमने इसके लिए कुछ करना चाहा है।

क्या माता निर्माता भवनि का आदश हमारे समक्ष से फिसल जायगा, क्या हम भूल जावेंगे कि नारी ही हमारा निर्माण करती है मा के गर्भ में ही रह कर हम सब कुछ सीखते हैं इसके ही अक में खेलते हैं और वही प्रथम शिक्षिका भी हमारे लिए है फिर क्यों न हमारा समाज मूल को ही सीच कर फल फूल सन्तुष्टि प्राप्ति करे। आज हम पुन अपनी प्राचीन वैदिक सम्कृति अपनाते हुए ही इसका हल कर सकते हैं। हमारे वेद के आदर्श हमारे देश की उन महान आत्माओं के विचार ही हमारा पथ प्रदर्शन कर सकते हैं और आज हम नारी के रूप को फिर से परिष्कृत करते हुए मान्यता देकर राष्ट्र की उन्नति में सहयोगी सुन्दर सन्तान प्राप्त कर सकते हैं। + × × ×

पुस्तक-परिचय

दयानन्दायन

लेखक—स्वर्गीय ठाकुर गदाधर सिंह जी प्रकाशक—डाक्टर सुखावबाहुर सिंह, कैनिङ्ग कौलेज डिस्पेन्सरी, यूनिवर्सिटी लखनऊ मुद्रक—आर्यभास्कर प्रेस, ५ मीराबाई मार्ग, लखनऊ। प्रकाशक और मुद्रक दोनों से प्राप्य। साइज १८×२२-८ कागज बढ़िया १६ पौंड वाला। दो सुन्दर चित्र आर्ट पेपर पर सजिल्द।

पुस्तक के रचयिता स्वर्गीय कवि वर ठाकुर गदाधर सिंह जी हिन्दी के एक छिपे हुए महान् विद्वान् थे। लोकैषणा और वित्तैषणा से यथाशक्ति दूर रहते हुए उन्होंने केवल स्वान्तः सुखाय ही इस महाकाव्य की रचना की थी। ऋषि दयानन्द के प्रति उनके हृदय में सात्विक श्रद्धा का समुद्र उमड़ता था। वही श्रद्धा इस पुस्तक में कविता रूप में प्रकट हुई है।

महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी ने तथा गोस्वामी तुलसीदास जी ने दोहा चौपाई में महाकाव्य लिखने की जिस पद्धति को अपनाया था, ठाकुर गदाधर सिंह जी ने भी उसी प्राचीन पद्धति से ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र इस पुस्तक में वर्णन किया है। भाषा सुव्यवस्थित और प्राञ्जल है। आदि से अन्त तक कहीं भी सरसता क्षीण नहीं होने पाई है। माधुर्य और रोचकता का अद्भुत मिश्रण सर्वत्र विद्यमान है। अलकार यदि स्वयं आगए हैं तो कवि ने उन्हे आने दिया है परन्तु कहीं भी अलकारों के पीछे स्वयं दौड़ने की चेष्टा कवि ने नहीं की है। काव्य का आत्मा तो रस होता है, और रसका उत्तम परिपाक इस पुस्तक में पाठकों को अवश्य उपलब्ध होगा। कई कई स्थलों पर तो कवि की श्रद्धा और भावुकता अपनी चरम सीमा को पहुंच जाती है और उस समय पाठकों को बरबस ही जायसी और तुलसी का स्मरण हो जाता है।

हिन्दी और गणित में उक्त ठाकुर साहब का एक तुच्छशिष्य होने का गौरव इन पंक्तियों के लेखक को भी प्राप्त रहा है। वाहवाही और नाम वरी की इच्छा से बिलकुल पृथक् रहते हुए, धन दौलत के प्रति भी प्राय उपेक्षा का भाव धारण किए हुए, ठाकुर गदाधर सिंह जी ने यह जो महाकाव्य शान्ति और एकाग्रता से लिखा है, उसमें उनके सात्विक जीवन की झाकी बार बार देखने को मिलती है। इन दोहों और चौपाइयों को बनाने में जो अपूर्व आत्मसन्तोष और अनुपम मनः प्रसाद उक्त ठाकुर साहब को प्राप्त होता था, वही उनके लिए सबसे बड़ा उपहार था, उसी को उन्होंने सर्वोपरि पारिश्रमिक समझा था यह वस्तुतः बड़े शोक की बात है कि उनके जीवन काल में यह पुस्तक प्रकाशित न हो सकी, अन्यथा उनके कुछ गिने चुने शिष्यों के समान अन्य भी सहस्रों व्यक्ति उनकी प्रतिभा की सराहना करते तथा उनके जीवन काल मे ही उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते।

दयानन्दायन नाम ही प्रकट करता है कि लेखक ने तुलसी रामायण की भांति ही घर घर में श्रद्धापूर्वक गाये जाने के लिए और पढ़े जाने के लिए इस महाकाव्य का प्रणयन किया था। यह पुस्तक सामान्यतया हिन्दी भाषा भाषियों के लिए तथा विशेषतया आर्यसमाज से सम्बन्ध रखने वालों के लिए उपादेय और संग्रहणीय है। आशा है जनता में इस पुस्तक का आदर होगा।

जनमेजय विद्यालंकार एम. ए.

उत्तर प्रदेश के समस्त आर्य समाजों के लिये स्वीकृत निरीक्षक सूची निम्न प्रकार दी जाती है

न० नाम जिला नाम निरीक्षक महोदय

१. देहरादून—श्री आचार्य बृहस्पति शास्त्री जी
,, संसार चन्द्र जी कदमला चौक देहरादून
२. सहारनपुर—श्री चन्द्रमणि जी वैद्य सहारनपुर
,, बेणीप्रसाद जी चौक बाजार कनखल
३. मुजफ्फरनगर ,, शेरसिंह जी आयुर्वेदाचार्य
,, सीताराम जी मन्त्री उपसभा मुजफ्फर नगर
४. मेरठ—श्री श्यामलाल जी आर्य त० मेरठ बागपत प्रो० रत्नसिंह जी गाजियाबाद
,, रघुनन्दन स्वरूप जी मेरठ त० हापुड़ श्री प्रकाशस्वरूपजी तह० सरधना आदि
५. बुलन्दशहर—श्री अनन्तराम जी अनूपशहर, श्री सत्येन्द्रबन्धु जी आर्य डिठोडा
६. अलीगढ़—श्री रामप्रसाद जी आर्य त० कोल, हाथरस श्री सरदारसिंह जी त० सिकन्दराराऊ
,, प्रो० बाबूलालजी त० अतरौली श्री नाहरसिंह जी त० इगलास तथा खैर
७. मथुरा—श्री कविराज रामबहादुर जी आर्य वैद्य सहमऊ
८. आगरा—श्री मोहनलाल जी आर्य आगरा
९. मैनपुरी—श्री लालाराम जी मैनपुरी
१०. एटा—श्री मथुराप्रसाद जी एटा
११. बरेली—श्री सत्यपाल जी वैद्य श्री बलवीरसहाय जो बरेली
१२. बदायूं—श्री रामचन्द्र जी रि. पो. मा. बदायूं
११. मुरादाबाद—जिला उपसभा मुरादाबाद द्वारा श्री राममोहनजी मंत्री
१४. रामपुर—श्री हरप्रसाद जी धमोरा
१५. बिजनौर—श्री रामस्वरुप जी शेरकोट श्री दिग्विजयसिंहजी बिजहरा
३६. शाहजहांपुर—श्री चोखेलाल सत्यपाल जी शाहजहांपुर
३७, पीलीभीत—श्री रामबहादुर जी पूरनपुर श्री हरिदत्त शर्मा जी
३८. गढ़वाल टेहरी—श्री बनारसीलाल जी नजीबाबाद श्री शान्तिप्रकाश जी सावली गढ़वाल
१९. नैनीताल अल्मोड़ा—श्री उमेशचन्द्र जी स्नातक
२०. झांसी जालौन—श्री विष्णुदेव जी स्नातक मोंठ
२१. बांदा, हमीरपुर, विन्ध्यप्रदेश—श्री आनन्ददेव सिंह जी तथा श्री रामचन्द्र शर्मा जी
२२. इलाहाबाद—श्री रामकिशोरसिंह जी अतरसूया प्रयाग
२३. फतेहपुर—श्री उमाशंकर जी श्री घनश्यामसिंह जी बध
२४. कानपुर—श्री विश्वम्भरनाथ जी तिवारी श्री रामलालजी शर्मा कानपुर
२५. इटावा—श्री ब्र० देवेन्द्र जी जसवन्तनगर
२६. फरूखाबाद—श्री आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री जी सच्चिदानन्द जी आर्य
२७. बनारस—श्री राजितसिंह जी काशी
२८. जौनपुर—श्री रामावतार जी जौनपुर
२९. गाजीपुर—,, सीताराम जी बहरियाबाद
३०. बलिया—श्री सुदर्शन सिंह जी सहतवार
३१. मिर्जापुर—श्री सूर्यबली पांडेय जी जौनपुर
३२. गोरखपुर—,, होतीलाल जी गोरखपुर
३३. देवरिया—,, वीरकिशोर जी घुघली
३४. आजमगढ़—,, अच्युतरनाथ जी आजमगढ़
३५. बस्ती—श्री जगदम सहाय जी बस्ती
३६. फैजाबाद—,, केदारनाथ जी आर्य
३७. बहराइच—,, मथुराप्रसाद जी बहराइच
३८. गोंडा—,, देवकलीप्रसाद जी गोंडा
३९. बाराबंकी—,, रामसजीवनलाल जी आर्य
४०. सुल्तानपुर, प्रतापगढ़—श्री रामकिशोर शास्त्री जी अमेठी
४१. रायबरेली—,, हरप्रसाद जी वानप्रस्थी
४२. लखनऊ—,, रामेश्वर सहाय जी
४३. उन्नाव—,, रामअवतार जी गुप्त उन्नाव
४४. हरदोई—,, चित्रलालप्रस्थी जी श्री अनन्तराम शर्मा सिमरिया
४५. सीतापुर—,, मथुराप्रसाद जी आर्य
४६. लखीमपुर खीरी—श्री यज्ञदत्त शर्माजी गोला
४७. देहली गढ़वाल आ. स.—श्री जयदेवसिंह जी मेरठ

निरीक्षक सूची महिला आर्यसमाज

१. सहारनपुर मुजफ्फरनगर—श्रीमती राजरानीदेवी जी मु. नगर
२. मेरठ बुलन्दशहर—श्रीमती शकुन्तलादेवी जी आर्य सदर मेरठ
३. अलीगढ़-मथुरा—,, दुर्गादेवी जी अलीगढ़
४. आगरा, मनपुरी एटा—श्रीमती हेमलतादेवीजी अलीगढ़
५. बरेली, बदायूं, मुरादाबाद—श्रीमती कृष्णकुमारी जी अलीगढ़
६. बिजनौर, शाहजहांपुर पीलीभीत—श्री कुमारी सत्यभामा जी बरेली
७. इलाहाबाद, गोरखपुर, फैजाबाद बहराइच, गोंडा—श्रीमती मोहनीदेवी जी गोंडा
८. लखनऊ हरदोई टिकार, सीतापुर लखीमपुर—श्रीमती प्रियम्वदादेवी जी हरदोई

कालीचरण आर्य
मंत्री
आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश

पूर्ण बनने के लिए

[पृष्ठ ४ का शेष]

होगा। उसमें देश जाति, लिंग इत्यादि के भेद बाधित न होंगे और सब संगठन परिपूर्ण होगा और उसको व्यवस्थित रखने के लिये दान की भावना भी आवश्यकता है। यदि दान बलिदान और त्याग की भावना न हुई तो संगति करण बनाया नष्ट हो जायेगा। यज्ञ व त्याग और दान की भावना को स्वरक्षित और मर्यादित रहती है। और इसी आधार पर प्रत्येक व्यक्ति अपने मनुष्य जन्म को सफल बनाने के लिये यज्ञ के आधार पर मनुष्य जन्म के उद्देश्य को पूरा कर सकता है। पूरा करने का अर्थ है पूर्ण बनना अर्थात् शारीरिक मानसिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। यज्ञ से यज्ञ भावना और यज्ञ भावना से पूर्ण बनने की विधि निर्माण होती है। और पूर्ण होने की विधि से व्यक्ति पूर्ण बनते हैं और पूर्ण व्यक्तियों का समाज या समुदाय पूर्ण न बनता है। इसी से राष्ट्र पूर्ण बनते है। और इसी से संसार पूर्ण बनता है। न केवल मनुष्यों का संगठन परिपूर्ण होता है। यज्ञ में भावना से मनुष्यों के अन्दर प्राणी मात्र के लिये दया और प्रेम उत्पन्न होती है प्राणी मात्र सुख की नींद सोते हैं। उन्हें मनुष्यों से किसी प्रकार का भय व शंका नहीं रहती है। यज्ञ वेदी, संसार का केन्द्र है अर्थात् इस केन्द्र के आश्रित सारा संसार सुन्दर रूप से व्यवस्थित, मर्यादित परिपूर्ण सर्वांग रूप से उन्नति और हर दृष्टिकोण से नियम और मर्यादा पर आश्रित हो जाता है। यज्ञ एक प्रक्रिया नहीं है। यज्ञ एक सभ्यता है पंच महायज्ञ सारे विश्व को एक सूत्र में बाँध देते हैं ईश्वर उसकी शक्तियाँ और प्राणी मात्र सब एक सूत्र में बँधकर एक आधार पर सब केन्द्रित होकर एक सुन्दर गोलाकार बनाते हैं। और इस सुन्दर परिणाम का स्वरूप है सब का पूर्ण होना। इस भूमिका से यज्ञ का महत्व समझ में आ सकता है। इसी प्रकार यज्ञ की अन्य प्रक्रियायें पूर्ण बनाने में सहायक हैं हम आगामी लेख में उस चिन्तन के मनोवैज्ञानिक महत्व पर प्रकाश डालेंगे।

———

पता—'आर्यमित्र'
१ मीराबाई मार्ग, लखनऊ
फोन—११२
तार—"आर्यमित्र"

आर्यमित्र

रजिस्टर्ड नं० ६०१०
२६ जून, १९५५

सचित्र समाचार

अर्जेन्टाइना के विद्रोहियों की सहायता पर जाता हुआ एक जहाज

एक ऐतिहासिक महत्त्व का स्थान

(बायें) अमेरिकन लेबर फैडरेशन के अध्यक्ष श्री जार्ज मिनी और (दाहिने) श्री आइसन हावर फैडरेशन के एक भवन का शिलान्यास कर रहे हैं।

आणुविक समझौता
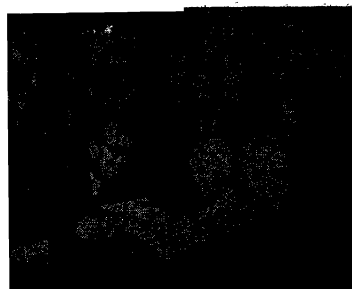
"आणुविक शक्ति" की शान्ति सम्बन्धी समझौते पर हस्ताक्षर करते हुए टर्की के राजदूत श्री फेरिदुन सी० अरकिन और श्री आइजनहावर

बाबूराम "भारती" द्वारा भगवानदीन आर्य भास्कर प्रेस, मीराबाई मार्ग, लखनऊ से मुद्रित तथा प्रकाशित।

सत्यार्थ प्रकाश पाठ संख्या २८ (अष्टम समुल्लास)

प्रकृति

(सुरेशचन्द्र वेदालङ्कार एम० ए० एल० टी० डी० वी० कालेज, गोरखपुर)

ईश्वर और जीव पर विचार हो चुका और हम यह भी देख चुके हैं कि संसार की उत्पत्ति के लिए हमें ईश्वर जीव और प्रकृति इन तीन अनादि पदार्थों को मानना आवश्यक है तथा ये तीनों पदार्थ परस्पर भिन्न भी हैं। अब हम इस विश्व के उपादान कारण प्रकृति पर विचार करेंगे। प्रकृति क्या है ? प्रकृति के अनेक नाम हैं। इसे प्रधान, गुण क्षोभिणी, बहुधानक, प्रसव धर्मिणी आदि नाम से भी पुकारा जाता है। यह प्रकृति संसार के सब पदार्थों का मुख्य मूल कारण है इसलिये इसे प्रधान कहते हैं अर्थात संसार के सभी पदार्थों की उत्पत्ति इसी से हुई है अतः यह प्रधान कहलाती है। सत्व रज, तम इन तीनों गुणों की समता को यह नष्ट करती है इसलिए इसे गुण क्षोभिणी कहते हैं। गुण कर्म रूपी पदार्थ भेद के बीज प्रकृति में है इस लिए इसे बहुधानक कहते हैं। और प्रकृति ही से सब पदार्थ उत्पन्न होते हैं इस लिए प्रकृति को प्रसवधर्मिणी कहते हैं। वेदान्त इसे माया अर्थात् मायिक दिखावा कहते हैं।

प्रश्न यह है कि इस विश्व का निर्माण किस वस्तु से हुआ ? कुछ इसकी उत्पत्ति ब्रह्म से मानते हैं अर्थात् ब्रह्म को ही विश्व का उपादान कारण मानते हैं। और कुछ का विचार है कि शून्य से विश्व निर्माण हुआ। पर तर्क की कसौटी पर कसने से यह दोनों ही विचार ठीक नहीं प्रतीत होते। क्यो ? इस विषय पर हम सृष्ट्युत्पत्ति विषयक अपने अगले लेखों में प्रकाश डालेंगे कि किस प्रकार कारण के गुण कार्य में आते हैं। अतः अब हम यह मान कर कि इस दृश्य सृष्टि की उत्पत्ति शून्यादि से नहीं हुई। क्योंकि जो कुछ भी नहीं है उससे जो 'अस्तित्व में है' वह उत्पन्न नहीं हो सकता। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि सृष्टि किसी वस्तु से उत्पन्न हुई है। जिस समय हम सृष्टि पर अपनी दृष्टि डालते है तो हमें वृक्ष पशु, मनुष्य, पत्थर, सोना, चाँदी, हीरा, जल, वायु इत्यादि अनेक पदार्थ देख पड़ते है और इन सबके रूप तथा गुण भी भिन्न हैं। तो प्रश्न उठता है कि यह भिन्नता या नानात्व आदि में अर्थात् मूल पदार्थ में नहीं है, किन्तु मूल मे सब पदार्थों का द्रव्य एक ही है। आधुनिक रसायन शास्त्रज्ञों ने भिन्न-भिन्न द्रव्योंका पृथक्करण करके पहले ९२ मूल तत्व खोजकर निकाले थे, परन्तु अब परीक्षण। विज्ञान शास्त्रियों ने भी यह निश्चय कर लिया है कि ये ९२ मूल-तत्व एक नहीं परन्तु इनके मूल में भी एक पदार्थ है और उस पदार्थ से ही सूर्य, चन्द्र, तारागण पृथ्वी इत्यादि सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है। जगत् के सब पदार्थों का जो मूल द्रव्य है उसे ही सांख्य शास्त्र में प्रकृति कहते हैं। प्रकृति का अर्थ है 'मूलका' और इसमें जब विकृति आती है तो वही यह विश्व है।

संसार के सभी पदार्थों का मूल द्रव्य एक है तो पत्थर, मिट्टी, पानी, सोना आदि भिन्न भिन्न पदार्थ क्यों दिखाई देते हैं ? यदि प्रकृति में एक ही गुण है तो उस एक गुण से अनेक गुण वाले पदार्थ कैसे उत्पन्न हो सकते हैं ? इसका उत्तर सांख्य शास्त्र वादियों ने जिन्होंने प्रकृति पर पर्याप्त गम्भीर विचार किया है, दिया है कि प्रकृति में तीन प्रकार के गुण हैं सत्व, रज, तम। इन तीनों गुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति है। "सत्व रजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृति."

उनका कहना है कि हम जब किसी पदार्थ को देखते हैं तो हमें उसकी उत्कृष्टावस्था तथा निकृष्टावस्था यह दो अवस्थायें दिखलाई देती हैं। उत्कृष्टावस्था पदार्थ की वह अवस्था है जिसमें वह शुद्ध, निर्मल या पूर्ण होता है और इसके विपरीत जो पदार्थ की अवस्था होती है उसे निकृष्टावस्था कह सकते हैं। इन दोनों अवस्थाओं के अतिरिक्त एक और भी अवस्था यह है कि प्रत्येक पदार्थ निकृष्ट से उत्कृष्ट अवस्था की ओर जाता है। इस प्रकार इन तीन अवस्थाओं में उत्कृष्टावस्था को हम सात्विक, निकृष्टावस्था तामसिक और प्रवर्तकावस्था को राजसिक कह सकते हैं। इन गुणों ही को प्रकृति कहते हैं। इन तीनों गुणों में से प्रत्येक गुण का जोर प्रारम्भ में समान होता है। यह अवस्था सृष्टि के प्रारम्भ में और प्रलय में भी। जब इन तीनों गुणों में विषमता आती है तब रजोगुण के कारण मूल प्रकृति से भिन्न भिन्न पदार्थ होने लगते हैं और सृष्टि का आरम्भ होने लगता है। यह न्यूनाधिकता रजोगुण के कारण होती है। प्रकृति जड़ है अत यह प्रश्न उठाना स्वाभाविक है कि यह कैसे न्यूनाधिकता हुई ? इसका उत्तर यह है कि परमेश्वर निमित्तकारण है और उसके द्वारा प्रकृति के मूल धर्म में यह प्रकृति उत्पन्न होती है। इन तीनों गुणों का लक्षण भी बतलाया गया है।

सत्वगुण का लक्षण ज्ञान है। तमोगुण अज्ञानता का परिचायक है। रजोगुण बुरे या भले का प्रवर्तक है। सत्वगुण रंग लोक में शुभ्र माना जाता है, तमोगुण का काला और रजोगुण का लाल रंग माना जाता है। पशुओं में गाय सत्वगुण युक्त प्राणी मानी जाती है, भैंस तमोगुण युक्त और घोड़ा रजोगुणी। इसलिए प्रकृति—मूल द्रव्य के एक होते हुए भी इन गुणों की भिन्नता से सोना, लोहा, मिट्टी, जल, आकाश मनुष्य का शरीर आदि भिन्न-भिन्न विकार हो जाते हैं। हमें इस प्रकरण में यह बात भी ध्यान रखनी चाहिए कि जब हम किसी पदार्थ को सात्विक, राजसिक या तामसिक कहते हैं तो उससे यह न समझना चाहिए कि दूसरे गुण उसमें नहीं है। परन्तु इसका तात्पर्य यह है कि जिस गुण के नाम से हम पदार्थ का संबोधन कर रहे हैं उस गुण के प्रभाव से दूसरे गुण दब जाते हैं। जैसे हम कहते हैं कि गाय का दूध सात्विक है। इसका मतलब यह नहीं की उस दूध में रजोगुण और तमोगुण हैं ही नहीं। परन्तु उसका मतलब यह है कि सत्वगुण ने उन दोनों गुणों को दबा रखा है। केवल सत्वगुण, केवल रजोगुण और केवल तमोगुण का कोई पदार्थ है ही नहीं। इन तीनों गुणों का रगड़ा-झगड़ा चलता है और जिस पदार्थ की विशेषता हो जाती है उसी नाम से हम उस पदार्थ को पुकारने लगते हैं। इन तीनों गुणों का मनुष्य के शरीर पर भी प्रभाव पड़ता है।

उदाहरण के लिए हम देख सकते हैं कि जब हमारे शरीर में रज और तम गुण पर सत्वगुण की प्रबलता हो जाती है तो अंत:करण में ज्ञान उत्पन्न होता है, सत्य का परिचय होने लगता है और चित्तवृत्ति शान्त हो जाती है।

यदि सत्व के स्थान पर रजोगुण की वृद्धि हो जाती है तो अंत:करण में लोभ जागृत होता है, इच्छा बढ़ने लगती है और वह हमें अनेक कार्मों में प्रवृत्त करती है।

यदि इन दोनों गुणों के स्थान पर तमोगुण का प्राबल्य हो जाता है तब निद्रा, आलस्य, स्मृति-भ्रंश इत्यादि दोष शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं।

इस प्रकार संसार की वस्तुओं में जो भिन्नता दिखाई देती है वह प्रकृति के सत्व, रज और तम इन तीन गुणों की विषमावस्था का ही परिणाम है।

इस लिए प्रकृति क्या है ? इसका यही उत्तर है कि "सत्व रजस्तमसा साम्यावस्था प्रकृति" अर्थात् सत्व रज और तम इन तीन गुणों की समानावस्था प्रकृति है। यह प्रकृति 'अव्यक्त है अर्थात् इन्द्रियों को गोचर न होने वाली है। इस संसार में जिन पदार्थों को हम देखते, सूंघते, चखते या स्पर्श करते हैं उन्हें सांख्य शास्त्र में व्यक्त कहा गया है। व्यक्त का मतलब यह है कि जो पदार्थ स्पष्ट रीति से हमारी इन्द्रियों को गोचर हो सकते हैं वे सब 'व्यक्त' हैं। इनमें से कुछ पदार्थ अपनी आकृति के कारण, कुछ रूपके कारण और कुछ गंध या अन्य गुण के कारण व्यक्त होते हैं। व्यक्त पदार्थों में कुछ स्थूल और कुछ सूक्ष्म हो सकते है। पत्थर, पेड़, पशु, पदार्थ हैं। ये स्थूल भी हैं। मन, बुद्धि, आकाश इत्यादि सूक्ष्म पदार्थ हैं परन्तु ये भी व्यक्त ही माने जाते हैं। व्यक्त एवं अव्यक्त शब्दों का मतलब यह है कि उस वस्तु का प्रत्यक्ष ज्ञान हमें हो सकता है या नहीं। 'इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्न ज्ञानम् प्रत्यक्षम्' के अनुसार पदार्थ का ज्ञान होता है तो वह व्यक्त है। जैसे वायु का स्पर्शेन्द्रिय द्वारा ज्ञान होता है अत: वह व्यक्त है और सब पदार्थों की मूल प्रकृति वायु से भी अत्यन्त सूक्ष्म है और उसका ज्ञान किसी भी इन्द्रिय को नहीं होता अतः वह अव्यक्त है। इस प्रकार त्रिगुणात्मक प्रकृति, अव्यक्त, स्वयं अनादि, एक ही प्रकार की है यह चारों ओर फैली हुई है। आकाश, वायु आदि भेद पीछे से हुए हैं। इस प्रकृति को ही सांख्य शास्त्र ने अक्षर नाम भी दिया है, क्योंकि इसका नाश कभी नहीं होता। प्राकृतिक पदार्थ क्षर हैं।

———

आर्यसमाज के समस्त पत्रों में सबसे अधिक अपने ... आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश का मुख पत्र—

लखनऊ—रविवार ३ जुलाई तदनुसार आषाढ़ शुक्ल १४ सम्वत् २०१२ सौर १७ आषाढ़ दयानन्दाब्द १३० सृष्टि सम्वत् १९७२९४९०५५

वेद प्रचार की समस्या ?

हम राष्ट्र की जनता का ध्यान बढ़ते हुए संकट की ओर निरंतर आकर्षित कर रहे हैं। ईसाई संस्था और अंधविश्वास अज्ञानता मूर्तिपूजा की उलझनों को सुलझाने के प्रकार और आवश्यकता पर भी हम पर्याप्त वि[चार] कर चुके हैं। पर सारी बातों, लक्ष्य है सत्य का, वैदिक भावना का प्रचार। उठने और बढ़ने [के] लिए, और गंभीरता से देखा जाए तो आर्यसमाज की लक्ष्य पूर्ति के लिए भी 'वेद प्रचार' की ओर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है।

वास्तविकता की पृष्ठ भूमि पर देखा जाए तो हमारा यह अंग पर्याप्त दुर्बल है। कारण भले ही कुछ भी रहे हों किन्तु इस तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती कि बुराइयों और अवकाश को देखते हुए हम अत्यन्त सीमित हैं और जो होना चाहिए, वह नहीं हो पा रहा। प्रांत की १०५० समाजों में से कठिनायी से एक चौथायी समाजें ही ऐसी हैं जो वर्ष में केवल उत्सव कर अपने कर्तव्य की इति श्री समझ लेती हैं। साप्ताहिक सत्संग भी केवल लकीर पीटने की भावना से ही प्रायः सपन्न होते हैं और उनका नगर की आर्थिक, सामाजिक, व राजनीतिक स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा। उत्सव भी ३ दिन तक हलचल उत्पन्न करने के अतिरिक्त अन्य कोई प्रभाव डालते हों इसका भी कोई चिन्ह हमें दृष्टिगोचर नहीं हो रहा।

अत आवश्यकता है कि विवाद में न पड़कर स्थिति सुधारने हेतु कुछ प्रभावशाली पग उठाए जाएं, यह पग क्या हो, इसी पर अत्यन्त संक्षेप से आज हम विचार कर रहे हैं। वेद प्रचार के कार्य को गति देने के लिए प्रथम आवश्यकता है, कार्यकर्ताओं की। ऐसे कार्यकर्ताओं की जो विद्वान हों, चरित्रवान, त्यागी, तपस्वी और सर्वस्व होम देने की भावना से भरे हों।

आज भी जो थोड़ा बहुत कार्य होता दिखलायी पड़ रहा है उसका श्रेय भी उपदेशक वर्ग को ही विशेषतः दिया जा सकता है। किन्तु साथ ही यह भी आवश्यकता है कि आगे बढ़ने के लिए हम अपने कार्यकर्ताओं का मान करना सीखें, तथा समय पड़ने पर पूरी श्रद्धा से उनके [आदे]श का पालन किया करें।

जो वास्तव में उपदेशक हों उन्हें ही उपदेशक पद पर विभूषित किया जाए, किन्तु जिसे किया जाए उन्हें नौकर नहीं अपितु नेता माना जाए। कार्यकर्ता और अधिकारी का भेद समाप्त किया जाए, साथ ही जो अधिकारी हों उनके आदेश अनुशासन का पालन अवश्य होना चाहिए।

साथ ही प्रतिनिधि सभा भी वर्तमान वेद प्रचार व्यवस्था में परिवर्तन करे। समस्त प्रांत की समाजों पर शक्ति अनुसार, वेद प्रचार की राशि निश्चित कर दे। समाजों से वर्ष भर तक प्रचार के बदले में फिर प्रत्येक बार धन न मांगा जाए। उत्सव, प्रचार सभी का प्रबंध सभा करे। इसके अतिरिक्त ग्राम प्रचार की ओर विशेष बल दिया जाए। प्रत्येक कार्यकर्ता को जो धन मासिक दिया जाए, वह वेतन रूप में नहीं, अपितु यज्ञ की दक्षिणा समझ कर ही भेंट किया जाए। उपदेशक भी कर्तव्य समझ कर, केवल व्याख्यान देना ही अपना काम न समझें अपितु, अपने क्षेत्र में आर्य समाज आन्दोलन को गति देने का पूरा उत्तरदायित्व भी अनुभव करें। सभी को व्यय-दक्षिणादि सभा कार्यालय से मास की प्रथम तारीख को भेजने का प्रबंध सभा करे।

हम समझें कि वेद प्रचार यज्ञ है, उपदेशक इसका ब्रह्मा है, जनता यजमान है, यज्ञ की सफलता भावों का प्रसार है। प्रचार में व्यापार का प्रकार कभी सफल नहीं हो सकता। केवल धन से भी कोई कार्य कभी सफल नहीं हुआ, इसके लिए आवश्यकता है बलिदान की, अनुशासन की। चिंता की बात यह है कि इन्हीं दोनों का आर्यसमाज में सर्वथा अभाव होता जा रहा है। देखिये, उदाहरण प्रत्यक्ष है। सार्वदेशिक सभा व प्रान्तीय प्रतिनिधि सभा के प्रधान मन्त्री प्रार्थना करते हैं कि २०० समाजें चाहिए जो केवल १०) मासिक दे सकें, समाजों के कानों पर जूं तक नहीं रेंगती। सभा के कार्य को सचालित करने के लिए जो भी आदेश दिए जाते हैं उनका ९५ प्रतिशत पालन नहीं होता। किसी भी बड़े से बड़े अधिकारी का कोई मूल्य नहीं? क्या यह समस्त आ[र्य] जनता के लिए लज्जा की बात नहीं है?

हम नहीं जानते कि वर्तमान प्रकार में चलते रहना क्यों सभी स्वीकार कर रहे हैं, क्यों नहीं हम एक अनुशासित संस्था की भांति एक रूप होकर खड़े होते? क्यों नहीं बैंकों में सुरक्षित धन को वेद प्रचार के लिए लगाने का निश्चय किया जाता? सोचिए!

सोचिए, कि आप जीवन चाहते हैं या मृत्यु! इतना हम स्पष्ट शब्दों में निवेदन कर देना चाहते हैं कि वर्तमान प्रकार और मार्ग मृत्यु की ओर प्रयाण है। हम लक्ष्य से दूर जा रहे हैं और इस की चिन्ता भी तनिक भी, किसी को नहीं है। यही खेद का विषय है।

हम यह कहना चाहते हैं कि यदि मार्ग बदला जाए, वास्तव में मिल कर वेद प्रचार के लिए बल लगाया जाए तो एक वर्ष में प्रांत की काया पलट की जा सकती है। समय की मांग है कि वर्तमान उदासीनता को त्याग हम वह सब कुछ करने की तैयारी करें जिसके लिए आर्य समाज की स्थापना हुयी थी।

जीवन के लिए.......

१०) मासिक देने वाले २०० व्यक्तियों की मांग कई बार की जा चुकी, आज अधिक नहीं कहेंगे, हां इतना निवेदन अवश्य करना चाह रहे हैं कि यदि ७ जुलाई तक २०० व्यक्तियों ने १) के मनिआर्डर भेज दिए तो हम 'आर्यमित्र दैनिक का साइज २२×३६ कर देंगे। उठने, बढ़ने और जीने के लिए क्या आज ही आप १०) का मनिआर्डर नहीं भेज सकते? २०० व्यक्ति ऐसे जो आर्यमित्र चलाना चाहें, एक समय भूखे रहकर भी १०) मासिक दें, केवल दिसम्बर तक फिर देखिए आपका 'मित्र' कितनी उन्नति करता है?

राजकुमारी अमृतकौर

दैनिक मित्र के अंकों में हम विस्तार से राजकुमारी अमृतकौर के [आर्य स]माज पर आक्षेप पूर्ण भाषण की कड़ी आलोचना कर चुके हैं। उन्होंने स्तर से गिर कर आर्य समाज को बदनाम करने का जो घृणित अपराध किया है, उसका प्रायश्चित्त केवल यह है कि या तो वे अपने इस कृत्य के लिए क्षमा याचना करें या उन्हें जनता द्वारा त्याग पत्र देने के लिए विवश किया जाए।

हमारी प्रार्थना पर देश के कोने कोने में राजकुमारी अमृतकौर से त्याग पत्र देने की मांग का आन्दोलन बल पकड़ता जा रहा है किन्तु इतने से ही काम चलेगा नहीं, आर्य समाजियों को बुरा सबक सिखाने वाली और गु[ण्डा] बता कर वे भारत की केन्द्रीय सरकार की मन्त्राणी बनें रहें इसे सहना आर्य समाज के लिए सम्भव नहीं। यह समस्त भारतीयता प्रेमियों के लिए चुनौती है और है हमारा सीधा अपमान।

अत हम राष्ट्र के समस्त शुभ चिन्तकों से राजकुमारी अमृतकौर के त्याग पत्र या क्षमा मांगने का आन्दोलन चलाने की प्रार्थना करते हैं। सभी इस विषय के प्रस्ताव पास कर राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री, सार्वदेशिक सभा व आर्यमित्र कार्यालय में भेजें। नगर-नगर, ग्राम ग्राम में आन्दोलन चलाया जाए जनमत जागृत किया जाए ताकि जहरीली ईसाइयत के दांत डसने से पहले ही तोड़े जा सकें।

भक्ति के प्रकार

लेखक—श्री कालीचरण जी आर्य मंत्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली

अनेक प्रकार और आकार लेकर आस्तिक वर्ग प्रभु का ध्यान करता है, लेख को पढ़ते हुए विचार कीजिये कि आप किस प्रकार की भक्ति कर रहे हैं और क्या वही उचित है। पढ़ने का प्रेरक यह लेख सम्भवतः सच्ची उपासना के मार्ग पर आप को चला सकेगा यही विश्वास है—सम्पादक

भक्त के हृदय में श्रद्धा और विश्वास जितना और जिस प्रकार का है, और जितना तदनुकूल आचरण होता है, भक्त की भक्ति का फल उतना और वैसा ही मिलता है, प्रभु की दया और न्याय उस सीमा को उल्लंघन किए हुए हैं, जिसकी मनुष्य परम ज्ञानी होकर भी कल्पना तक नहीं कर सकता। प्रभु की स्तुति करने वाला, और प्रभु की सत्ता को अस्वीकार करने वाला, दोनों ही अपने कर्म फल में समान

हैं। स्तुति करने वाला जिस कर्म का फल प्राप्त करता है, प्रभु की ओर से नास्तिक को भी उसी प्रकार के कर्म का वैसा ही फल प्राप्त होगा, जैसा कि स्तुति करने वाले को हुआ था। स्तुति करने वाला पाप कर्म के फल से कभी वंचित नहीं हो सकता और नास्तिक किसी शुभ-कर्म के फल से वंचित नहीं रह सकता।

संसार में कदाचित ही कोई मनुष्य होगा जो भक्ति भावना (स्तुति-प्रार्थना और उपासना) से वंचित हो। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी प्रकार की व किसी न किसी व्यक्ति की भक्ति अवश्य करता है। संसार का कोई प्राणी इससे मुक्त नहीं है। प्रत्येक के सामने उसके हृदय में कोई स्तुत्य है, जिसके वह गुण-गान करते थकता नहीं और जिसके सामने वह मस्तिष्क झुकाता है और जिससे अपनी कठिनाइयों को सरल करने की प्रार्थना करता है, अर्थात् संसार के प्रत्येक मनुष्य के सामने कोई है, जिसका वह अनुकरण करता है और अपना पूज्य मानता है।

समस्त संसार में यह समान भावना परिपूर्ण होने पर भी फल समान नहीं। कारण, प्रत्येक हृदय में भक्ति की भावना, भक्ति का उद्देश्य तथा भक्ति की रीति भिन्न है। उसी भिन्नता के कारण परिणाम भी भिन्न और इतने भिन्न कि एक दूसरे से नितान्त विरोधी प्रतीत होते हैं। जहाँ भावना सत्य पर अवलम्बित होती है, सत्य के अनुसार होती है और भावुक को उत्तम फल देने वाली होती है। परन्तु भावना सत्य से परे और सत्य के प्रतिकूल होने से मनुष्य को हितकर होने के स्थान पर अहितकर और दुखित कर देने वाली बन जाती है। और उसही भावना के आधार पर विचार का बनाया हुआ बहुत बड़ा प्रासाद भी क्षण भर में गिर पड़ता है। भावना सत्य और असत्य के अतिरिक्त मनुष्य की अपनी वृत्तियों के आधार पर अनेक प्रकार की होती है, जो भक्त की भक्ति को प्रभावित करती हैं। और उसकी भक्ति उसी प्रकार बन कर फल-दायकी होती है।

देखा जाता है कि एक मनुष्य अपने उपास्य देव की सेवा में उपस्थित होकर पूर्ण रूपेण भक्ति-भाव से प्रेरित होकर अपने उपास्य देव को प्रसन्न करने की समस्त सामग्री लेकर प्रसन्न करने आता है, और प्रार्थना करता है कि हे देव! मुझे आज अपने काम में सफलता प्रदान कीजिये। भक्ति भाव से भरा हुआ हृदय किंचित भी शंकित नहीं होता कि मुझे काम में सफलता प्राप्त नहीं होगी। वह जाता है, और इसलिए जाता है कि एक निरपराधी मनुष्य की गर्दन काट आए, या किसी धनाढ्य पुरुष के घर डाका डालकर उसे क्षति पहुंचाए।

भक्त निर्भीक होकर इस विश्वास पर कि उपास्य देव उसकी सहायता करेगा, जिस समय दूसरे पर प्रहार करता है, पकड़ा जाता है। यह एक प्रकार की भक्ति है।

दूसरे स्थल पर आप देखेंगे कि हाथ में माला बगल में छुरी लिए देश में कितने प्रभु भक्त घूम रहे हैं। प्रातः समय प्रभु भक्ति के लिए मन्दिरों में, गिरजा घर आदि स्थानों में प्रत्यक्ष रूप से समस्त कार्य करते हैं, परन्तु जब पूजा स्थल से बाहर हुए, बगल की छुरी अर्थात् छल और कपट का शस्त्र बे रोक-टोक मनुष्यों के गलों पर चलता है। जिस प्रकार एक व्यभिचारी स्त्री अथवा पुरुष एक दूसरे के सामने बड़े प्रेम का प्रदर्शन करते हैं, परन्तु आँखों से ओझल होते ही पत्नी-व्रत धर्म और पति व्रत धर्म के गले पर छुरी चलाने में प्रसन्न होते हैं और प्रभु से प्रार्थना करते हैं, प्रभु! हमारा कर्म किसी पर प्रकट न हो तथा हमारे आनन्द में कोई कमी न आए,—यह भी एक प्रकार की भक्ति है।

तीसरे प्रकार की भक्ति है, जो हृदय की डाह को तृप्त करने के निमित्त की जाती है। ईश्वर-भक्त की भक्ति आज इस प्रार्थना के साथ उपास्य देव में निमग्न होकर की जा रही है कि मेरे पड़ोसी का चौ-मंजिला मकान आज रात्रि में गिर कर एक ढेर बन जाय अथवा मेरे पड़ोसी का नन्हा बालक किसी रोग से शीघ्र समाप्त हो जाय।

इन प्रकार की भक्तियों में मनुष्य के हृदय की वृत्तियाँ, जो तमोगुण के प्रभाव से प्रभावित हैं, काम कर रही हैं। भक्त नहीं समझता कि इनका परिणाम मुझ पर क्या हो। वह भूल जाता है कि प्रभु का न्याय और दया सारे संसार में समानता से विद्यमान हैं और उसका परिणाम अन्यों के लिए और मेरे लिए न्यायानुसार ही है।

चौथे प्रकार के भक्त हैं जो भक्ति केवल इसलिए करते हैं कि हमारे व्यापार में वृद्धि हो। प्रातः उठते ही माला जपते हैं—प्रभु! भेज दे कोई आँख का अन्धा और गाँठ का पूरा। भेज प्रभु छप्पन करोड़ की चौथाई और उसी पर बड़े बड़े हवाई किले तैयार होते हैं। व्यवसाय में ढीलापन आ जाता है। जो कार्य करने होते हैं नहीं किये जाते। कारण, भक्त की भावनाएं विश्वास है कि उपास्य देव देगा और अवश्य देगा और यहाँ तक कि छप्पर फाड़कर भी देगा।

पाँचवें प्रकार के भक्त की कामना है,-प्रभु, ऐसी कृपा करें कि संसार में विख्यात होकर जिधर जाऊँ उधर मान को प्राप्त होऊँ, ऊँचा स्थान प्राप्त करूँ, अन्य महानुभाव खड़े होकर मेरा सम्मान करें। भक्त के हृदय की भावना भक्त को विश्वास दिलाती है, तेरी कामना पूरी होगी। जिस प्रकार सोमनाथ के मन्दिर पर चढ़ाई के समय बड़े बड़े बहादुरों के होते हुए भी भक्त लोग उपास्य देव की सहायता पर निर्भर रहकर सोमनाथ की रक्षा में तत्पर थे। भक्त कहते थे और कहते हैं,—प्रभु भक्त की प्रार्थना अवश्य सुनते हैं और इसी आशा पर भक्त माला के फेर में ही पड़े रहे।

यदि इस प्रकार की भक्ति करने पर भी प्रभु ने मेरे पापों की ओर दृष्टि रक्खी तो प्रभु की दया ही क्या है। संसार का भक्त निश्चयरूपेण यह विश्वास रखता है। कि 'भगत के वश में है भगवान'।

छठे प्रकार का भक्त कुछ ऊँचा उठकर प्रभु से प्रार्थना करता है, प्रभु मुझे कुछ नहीं चाहिये। मेरा कल्याण हो, मैंने आज तक बहुत पाप किये हैं, मुझे उनसे बचा और मेरे पाप नष्ट कर दो। इस समय भक्त की बुद्धि सात्त्विक है, परन्तु अधम प्रकार की है। जो प्रार्थना करता है कि मुझे पाप के बदले का दुःख भोगना न पड़े। वह भूल जाता है "अवश्यमेव भोक्तव्यं कृत कर्म शुभाशुभम्।"

सातवें प्रकार का भक्त अब और ऊँचा उठकर अपनी भावनाओं को सत्य के निकट लाकर प्रभु से किसी चीज की याचना न करते हुए केवल इसलिए प्रभु भक्ति में रत है कि वह प्रभु का प्यारा बन जाय। वह प्रभु को सर्वोच्च और सबसे बड़ा मान कर प्रभु की भक्ति करता है। उसका संसार से या संसारी मनुष्यों से कम से कम सम्पर्क हो जाता है।

अन्तिम प्रकार का भक्त प्रभु की भक्ति में इसलिए निमग्न है कि वह भक्ति को प्रभु की आज्ञा समझता है। इसके मन में किसी के लिए द्वेष नहीं, धोखा नहीं, ईर्ष्या नहीं। स्वार्थ भावनाओं से परे पदों की लालसा से मुक्त, विचार की पवित्रता भक्ति का उद्देश्य है। किए हुए पापों को भोगने में वह प्रसन्न है। और साथ ही साथ परिवार के कल्याण की भावना से वह परिपूर्ण है। केवल अपनी उन्नति में उन्नति न समझकर दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति समझता है। दूसरों के कल्याण के कल्याण के लिए मन वचन और कर्म से प्रयत्न करता हुआ प्रभु से सबके कल्याण की याचना और प्रार्थना करता है।

भक्त अब इसलिए भक्ति नहीं करता कि मेरी भक्ति प्रभु को प्यारी हो। और नाहीं इसलिए करता

(शेष पृष्ठ १४ पर)

धर्म के पालन में प्रमाद न करें!

(लेखक-श्री वेंकटेश्वर शास्त्री, गुरुकुल घटकेश्वर C. R)

'धर्मान्न प्रमदितव्यम्' यह उप-निषद् का पुनीत वाक्य है। अर्थात् धर्म से कभी प्रमाद मत करो! यह प्रमाद कई प्रकार से हो सकता है। धर्म की जिज्ञासा में, धर्म के धारण और आचरण में, तथा धर्म के प्रचार में। जीवित मनुष्य का लक्षण ही यह है कि उस में जिज्ञासा रहे, जिज्ञासा मरी कि मनुष्य मर गया। विशेष कर धर्म की जिज्ञासा। क्यों कि धर्म के धारण करने से ही मनुष्य यथार्थ में मनुष्य कहलाने का अधि-कारी बनता है।

"आहार निद्रा भय मैथुनंच,
सामान्य मेतद् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो'ह तेषामधिको विशेषो धर्मेण
हीना: पशुभि: समाना: ॥'

अर्थ—आहार निद्रा भय और मैथुन में पशु और मनुष्य में कोई अंतर नहीं है। परन्तु एक धर्म की ही उनमें विशेषता है; जिनमें धर्म न हो वह पशु के समान है। मनु महाराज ने तो यहाँ तक कहा है कि 'धर्म एव हतो हति धर्मो रक्षित रक्षित:।' अर्थात् जो मनुष्य धर्म की हत्या (धर्म विरुद्धाचरण) करता है, उसे धर्म भी मार डालता है। जो धर्म का पालन करता है, उसकी धर्म सब ओर से रक्षा करता है। इसलिए धर्म का पालन मनुष्य के लिये परमावश्यक है।

वेद व्यास के वेदान्त शास्त्र को 'अथातो धर्म जिज्ञासा' से आरम्भ करने से यह स्पष्ट है कि धर्म जिज्ञासा कितनी महत्वपूर्ण है। जब किसी विषय के सम्बन्ध में कुछ परिचय हो, तभी उसके प्रति श्रद्धा होगी, तद-नुकूल आचरण करने को प्रेरणा होगी।

लोक में यह देखा जाता है कि धर्म को जानने वाले अनेकों हैं; परन्तु उस पर चलने वाले बहुत कम। सामान्यत: वे धर्म को धारण करने में प्रमाद करते है। वे यह भूल जाते हैं कि धर्म को धारण करने से ही वह हमारी रक्षा करता है। 'धर्मो धारयते प्रजा:।' कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो अपनी रक्षा नहीं चाहता हो। प्राय: सभी अपनी रक्षा चाहते हैं। जब रक्षा चाहते हैं, तो धर्म के पालन में प्रमाद कभी नहीं करना चाहिये।

अधिकांश जनता धर्म को मानती है, तरह २ से धर्म के विषय में डींगड़ी हुलाती है, परंतु आचरण करने में प्रमाद करती है। जीवन में आचरण का ही प्रभाव अधिक होता है। 'यस्तु क्रियावान् पुरुषस्य विद्वान्'। जो क्रियावान् है, वही विद्वान् है। जिन में आचरण हो, वही देवताओं के प्रीति पात्र है। क्योंकि 'आचार हीनं न पुनंति देव:' आचार विहीन को देवता पवित्र नहीं करते; अर्थात् आचार हीनों पर गुणों का प्रभाव नहीं पड़ता। अत: प्रत्येक को चाहिये कि वह धर्म को जाने, माने और तदनुकूल आचरण करे, तथा अन्यों से कराये।

केवल हमारे अकेले ही धर्म को जानने व मानने तथा आचरण करने से ही काम नहीं चलेगा। ऋषि दयानंद ने 'आर्यसमाज के ९ वें नियम में यह स्पष्ट लिखा है कि "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में संतुष्ट नहीं रहना चाहिये, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।" जब प्रत्येक आर्यसमाजी धर्मानुकूल सत्यासत्य विचार कर आचरण करेगा और संसार से करावेगा, तभी मनु का निम्न कथन सार्थक होगा।

'एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मन:,
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवा:'　　वेंकटेश्वर

यदि प्रमाद वश कोई धर्म का प्रचार व प्रसार न करे तो तज्जन्य दुष्फल का भोग संसार तो करेगा ही परन्तु स्वयं भी बच न सकेगा। इस लिए प्रत्येक विद्वान् का यह कर्तव्य है कि वह संसार में स्वयं धर्म का आचरण और समाजहित के लिये धर्म का प्रचार करें।

अब यहां विचारना चाहिये कि धर्म है क्या वस्तु? जिसकी शास्त्रो में इतनी महत्ता दर्शायी गयी है, और जिस धर्म से मनुष्य पशुता से ऊपर उठकर सच्चा मनुष्य ही नहीं अपितु देवता भी बन सकता है। धर्म की अनेकों परिभाषाये हैं। जिस के आधार पर हम धर्म को पहचान सकते हैं। पहले धर्म का लक्षण जानकर एक भ्रम को दूर करना आवश्यक मालूम पड़ता है। आज संसार में अनको धर्मो की चर्चा है। जैसे हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म जैन बौद्ध वैष्णव शैवादि। प्रश्न यह है कि इन में से हम किसे अपनायें और किसे नहीं। यहां केवल बुद्धि का सहारा लेना होगा। बुद्धि का सहारा लेने से यह ज्ञात होता है कि आज धर्म नाम से प्रसिद्ध ये धर्म नहीं हैं। ये तो केवल मत हैं। अर्थात् किसी मनुष्य विशेष के चलाये हुए हैं। ग्रन्थ विशेष को मानते हैं। उदाहरण के लिए हिंदू धर्म को ही लीजिये, हिंदू धर्म नाम का कोई मत या धर्म न तो शास्त्रों में है, और न ही वेदों में यह केवल अज्ञानता से भारतीयों के गले पड़ा ढोल है; और यह 'कहीं की ईंट कही का रोड़ा भानुमति ने कुनबा जोड़ा' के सामान विदेशी आक्रांताओं से व्यंग में किया हुआ हिंदू शब्द के नाम करण को अपनाये और वेद व्यास के नाम पर बोप देव द्वारा रचित अष्टादश पुराणों को अपने धर्म ग्रन्थ मानते हुए स्वयं हिंदू (चोर डाकू आदि) बनें, और अपना एक अलग संगठन हिंदू धर्म के नाम से प्रसिद्ध कर लिये।

इसलाम तो मुहम्मद साहब का मत है। इसमें वही प्रविष्ट हो सकता है जो मुहम्मद साहब पर ईमान लाते हों, और काबा को मानते हों। अन्यथा वह खुदा को मानने पर भी काफिर ही कहलायेगा। धर्म किसी पीर पैगम्बर को मानने व न मानने का नाम नहीं। धर्म किसी पुस्तक विशेष मे विश्वास रखने का नाम नहीं, धर्म किसी विशेष प्रकार की पूजा पद्धति को अपनाने का नाम नहीं। यह तो अपने अन्त: करण को पवित्रता से सम्बन्धित है। यह नियम का समन्वित पालन ही धर्माचरण है। इन कारणों से इस्लाम धर्म होने का अधिकारी नही है। ईसाइयत क्या है? ईसा और उनके अन्ध श्रद्धालू भक्तो के मूढ़ विश्वासो के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जैन और बौद्धादि मत भी ऐसे ही हैं।

अब पुन: प्रश्न उठता है कि जब ये सारे धर्म न होकर मत ही हैं, तो फिर धर्म क्या है? इसे तो शास्त्र ही बताये। धर्म की परिभाषायें भिन्न-भिन्न आचार्यों ने भिन्न भिन्न की है। परन्तु ये परिभाषायें भिन्न भिन्न होने पर भी भिन्न नही हैं। जैसे वैशेषिक कार कणादि ऋषि ने धर्म की परि भाषा यतोभ्युदये निश्रेयस सिद्धि: स धर्म.' किया। इस परिभाषा में दो लक्ष्य हैं; एक इस संसार में अभ्युदय उन्नति करने का है, दूसरा मोक्ष अर्थात् परलोक में सुख प्राप्ति हो। मनुष्य जीवन की ही यह महत्ता है कि वह इह-पर दोनों लोकों की प्राप्ति करे। अन्य सब परिभाषायें धर्म के पालन में व्यावहारिक रूप की निर्दे-शक हैं।

आर्य शास्त्रों के अनुसार 'चोदना लक्षणार्थो धर्म:' अर्थात् जिससे सत्कर्म करने की प्रेरणा मिले वह धर्म है। अर्थात् वह भावना जो मनुष्य को सदाचार, परोपकार, विद्या वृद्धि आदि की ओर प्रेरित करता है, वह धर्म है। क्योंकि प्रेरणा से ही मनुष्य कुछ कर सकता है और इह-पर लोकों को साध सकता है। अन्यथा 'जगन्मिथ्या' कहते हुए जंगलों में भागते रहने से परलोक तो क्या इह लोक भी नहीं सुधरेगा। 'धारणाद्धर्म इत्यादु: धर्मो धारयंते प्रजा'। यह एक और धर्म की परिभाषा है। इसका अभिप्राय है कि धारण करने से धर्म कहाता है। धर्म प्रजा को धारण करता है।

धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौच मिंद्रिय निग्रह:। धीर्विद्या सत्य मक्रोधो दशक धर्म लक्षणम् ॥ मनु महाराज ने उपर्युक्त श्लोक में धर्म का व्यावहारिक रूप बताया है। इस धर्म के प्रतिपादक ग्रन्थों के सम्बन्ध में मनु महाराज कहते हैं—वेदोऽखिलो धर्म मूलम, वेद प्रति पदितो धर्म, अर्थात् ऋक् यजु साम और अथर्व नाम से लोक में प्रसिद्ध चार वेद ही अखिल धर्म का मूल है और इन वेदों में प्रतिपादित धर्म ही धर्म है। यह धर्म जाना कैसे जा सकता है? बुद्धि से, तर्क से, इसलिए आगे मनु ने कहा— यस्तर्केणानु सन्धत्ते स धर्म' अथात् धर्म वह है जो बुद्धि की कसौटी पर कसा जा सके। धर्माऽधर्म की परीक्षा चार उपायों से होती है। 'वेद स्मृति सदा-चार स्वस्य च प्रियमात्मन:।' ऋषि दयानन्द ने भी धर्म की परिभाषा इस प्रकार की है। पक्षपातरहित न्यायाचरण सत्य भाषणादि युक्त जो ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध है उसको धर्म मानता हूं।

उपरोक्त धर्म की अनेको परिभाषाओं से यही सिद्ध होता है कि संसार में केवल एक ही धर्म है और वह ईश्वरीय ज्ञान वेद धर्म है, यह वाणी कल्याणकारिणी है। कह भी है।

'यथेमां वाच कल्याणी मावदानिजनेभ्य:'

परमेश्वर आगे कहता है

स्तुता मया वरदा वेद माता प्रचोद-यंतां पावमानी द्विजानाम्।

(शेष पृष्ठ १२ पर)

सार्वदेशिक सभा का स्वर्ण जयन्ती महोत्सव

लेखक श्री मदनमोहन जी एम० ए० रिटायर्ड चीफ़ जज लखनऊ

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का जन्म २५ सितम्बर १९०८ ई० को आगरा नगर में हुआ था। उस समय मैं आगरा कालेज में विद्याध्ययन कर रहा था। एम० ए० पास कर चुका था और एल एल० बी० की परीक्षा की तैयारी में लगा था।

आगरा कालेज लिटरेरी सोसाइटी का मन्त्री था। स्व० श्री प०

भगवानदीन जी की अध्यक्षता में सार्वदेशिक सभा की स्थापना, हींग की मंडी, आर्य समाज मन्दिर में हुई। आगरा कालेज लिटरेरी सोसाइटी के मन्त्री के नाते मैंने श्री प० भगवानदीन जी से सोसाइटी में व्याख्यान देने की प्रार्थना की। उन्होंने सोसाइटी की मीटिंग में ईश्वर-स्तुति, प्रार्थना, उपासना के विषय पर विद्वत्ता पूर्ण और भक्तिभाव से भरा व्याख्यान दिया। कालिज के तत्कालीन प्रिन्सिपल स्व० मि० टी० डी० जोन्स मीटिंग के अध्यक्ष थे। कालेज के विद्वान् प्रोफेसर स्व० मि० डी० डब्लू० टी० मेसीगन भी उपस्थित थे। उन्होंने व्याख्यान का भाव बड़े सुन्दर रूप में अंग्रेजी में प्रस्तुत किया।

सार्वदेशिक सभा की उस मीटिंग में स्व० महात्मा मुन्शीराम जी (पश्चात् स्वामी श्रद्धानन्द जी) तथा अन्य गण्यमान्य आर्य नेता सम्मिलित हुए थे।

इसके चार मास पश्चात ही महात्मा मुन्शीरामजी ने अपनी प्रस्तावना मेरे उन पत्रों के सम्बन्ध में लिखी थी जो Arya smaj Apolitical body के नाम से आर्य समाज के समर्थन में गुरुकुल कांगड़ी से प्रकाशित होने वाले वैदिक मैगजीन नामक अंग्रेजी मासिक पत्र में मुद्रित हुए थे, छपे और जो स्व० महात्मा हंसराज जी तथा स्व० प० घासीराम जी को पसन्द आए थे।

अगले वर्ष अर्थात् १९०९ से सार्वदेशिक सभा के अधिवेशन देहली में होने लगे और वहीं उसका मुख्य स्थान नियत हुआ।

१९५८ में सार्वदेशिक सभा को संस्थापित हुए पूरे ५० वर्ष हो जायेंगे। आर्य जगत को चाहिये कि वह अपनी केन्द्रीय सभा की स्वर्ण जयन्ती बड़े समारोह और उत्साह से मनावें और कुछ ऐसे ठोस कार्य करें जिनसे समाज का गौरव तथा प्रभाव सारे जगत में फैल जाए।

स्व० श्री महात्मा नारायण स्वामी जी ने सार्वदेशिक सभा का २७ वर्षीय इतिहास लिखा है। उससे यह बात भली प्रकार विदित हो जाती है कि १९२५ ई० को मथुरा में मनाए गए दयानन्द जन्म शताब्दि महोत्सव ने सार्वदेशिक सभा में जान डाल दी। तब से यह सभा उत्तरोत्तर उन्नति पथ पर अग्रसर है।

यदि हम सार्वदेशिक सभा की स्वर्ण जयन्ती अच्छे परिमाण पर मनावेंगे, तो निश्चय ही उसका कार्य क्षेत्र बहुत उन्नत और व्यापक बन जायेगा।

मिलती। फिर भी हमें निराश न होना चाहिए। सौभाग्य से हमारे मध्य श्री सेठ हंसराज जी मौजूद हैं, उन्हीं के दानवीर नाना स्व० सेठ रघुमलजी प्रदत्त भवन में इस समय हम अपने कार्य करते हैं।

(२) आर्यसमाज हींग की मंडी, आगरा में एक छोटा स्तम्भ अथवा कमरा बनाया जाए, जिस पर सार्वदेशिक सभा की स्थापना तिथि इत्यादि और उन सज्जनों के नाम जिन्होंने उस समय स्थापना में भाग लिया, अंकित किये जाएं और सितम्बर १९५८ में किसी उचित अवसर पर उसका उद्घाटन कराया जाए।

(३) एक Documentary Film तैयार कराया जावे। उसमें महर्षि की जीवनी की विशेष घटनाएं दिखलाई जाएं, उनके टंकारा के गृह एवं मथुरा की विरजानन्द कुटी इत्यादि की झांकी रहे।

सुझाव और सम्मतियाँ

यह महोत्सव देहली नगर में मनाना उपयुक्त होगा। फरवरी मास अर्थात् बसन्त ऋतु इसके लिए उचित रहेगा। इन्हीं दिनों दयानन्द जन्म शताब्दि महोत्सव भी मनाया गया था।

अभी ढाई वर्ष हैं, तब तक बहुत सी तैयारी की जा सकती है—

(१) सबसे अधिक आवश्यकता सभा के लिए एक अच्छे भवन की है। महात्मा नारायण स्वामी जी अपने २७ वर्षीय इतिहास में, बलिदान भवन के सम्बन्ध में लिखते हैं—

"दुःख है कि भवन अपनी महत्ता और आवश्यकता के अनुसार, नहीं बना है" अब तो और भी दिक्कतें बढ़ गई है। नया बाजार में जहाँ सम्प्रति भवन है, काम-काज बहुत बढ़ गया है। वहाँ शोर अधिक रहता है, विचार विमर्श में कठिनाई पड़ती है।

सभा के लिए कोई अच्छा भवन नयी देहली में लिया जाए। स्व० लाला नारायण दत्त जी एवं स्व० लाला ज्ञानचन्द्र जी की इस सम्बन्ध में बड़ी याद आती है। यदि आज वे होते, तो इस कार्य में बड़ी सहायता

प० गुरुदत्त, आर्य मुसाफिर लेखराम, स्व० श्रद्धानन्द, प० भगवानदीन महात्मा हंसराज, डा० लाजपत राय, श्री नारायण स्वामी, प० घासी राम इत्यादि के चित्र दिखाये जावें। परोपकारिणी सभा के प्रथम और मुख्य अधिकारीगण महाराणा सज्जनसिंह, कर्नल प्रतापसिंह, राजाधिराज नाहरसिंह, श्री गोविन्द महादेव रानाडे इत्यादि के चित्र भी रख जांय। आर्य समाज के बड़े बड़े समाज मन्दिर तथा इन्स्टीटियूशन जैसे बम्बई आर्यसमाज गुरुदत्त भवन लाहौर, नारायण स्वामी भवन लखनऊ, डी० ए० वी० कालेज लाहौर और डी० ए० वी० कालेज, कानपुर इत्यादि के चित्र भी रहें।

दयानन्द जन्म शताब्दि मथुरा, दयानन्द निर्वाण अर्ध शताब्दि अजमेर, हैदराबाद सत्याग्रह इत्यादि के दृश्य दिखाए जाये।

(४) इस अवसर पर सार्वदेशिक आर्य संग्रहालय की स्थापना हो, इसमें महर्षि दयानन्द के हस्त लिखित ग्रन्थ, उनके वस्त्र और वस्तुएं रखी जायें। आर्य समाज के हुतात्माओं और नेताओं के चित्र रहें। उनकी हस्त लिपियां और स्मृति सूचक वस्तुएं भी हों।

(५) सम्भव हो तो सार्वदेशिक पत्र साप्ताहिक किया जाए, जो विचार पत्र हो और सारे देश में पहुंच सके।

(६) आर्य समाज का इतिहास जिसे श्री प० इन्द्र जी विद्या वाचस्पति लिख रहे हैं, उस समय तक छपकर जनता के हाथ में होना चाहिये। इस इतिहास का संक्षिप्त विवरण अंग्रेजी में भी प्रकाशित हो, जिससे आर्य भाषा से अपरिचित भाई आर्य समाज की गतिविधि से परिचित हो जाय।

(७) सार्वदेशिक सभा का ५० वर्षीय इतिहास तैयार कराया जाए। इस इतिहास के परिशिष्ट रूप सब प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधि सभाओं के संक्षिप्त इतिहास भी दिखाई जावें। यह इतिहास भी स्वर्ण जयन्ती समारोह तक प्रकाशित हो जाना चाहिए।

कर्मों का जीवन पर प्रभाव

[ले० आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री]

मानव एक चेतनामय सामाजिक एवं आध्यात्मिक प्राणी है। उसकी चेतना में "ज्ञा" और "कृञ्" दोनों धातुओं के तत्व सम्मिलित हैं। जहाँ वह ज्ञाता है वहाँ कर्ता भी है। इसी लिए उस कर्म के क्षेत्र भूत शरीर में ज्ञान और कर्म की साधनभूत दोनों ही प्रकार की इन्द्रियाँ हैं। वह जहाँ ऊंचे विचारों की उड़ान में उड़ता है वहाँ कर्मों के विविध प्रकारों का अर्जन भी करता है। वस्तुतः बात तो ऐसी है कि वह मन से जैसा सोचता है वैसा ही वाणी आदि से व्यवहार में लाता है जैसा व्यवहार में लाता है वैसा ही करता वैसा बनता है।

मानव के निर्माण में उसके निजी कर्मों का महान् हस्त है। परन्तु कर्मों का करने वाला भी वही है। मनुष्य की बुद्धि उसके आन्तरिक गुणों और स्वभाव की दृष्टि से प्रकृति से सम्बन्ध रखते हुए। सात्विक राजस और तामस भेद से तीन प्रकार की होती है। सात्विक बुद्धि का जिस समय मानव के अन्तःकरण पर प्रभाव होता है उस समय ज्ञान की वृत्ति जागृत होती है, जब रजोगुण का प्रभाव होता है तब लोभ का प्राबल्य रहता है। तमोगुण की प्रधानता से प्रमाद, मोह और अज्ञान की वृत्तियां प्रबल होती हैं। इन्हीं तीनों गुणों के बलाबल के अनुसार मनुष्य के कर्म भी तीन प्रकार के होते हैं। सात्विक, राजस और तामस भेद से मानव के कर्मों की भी तीन दशा हैं। मानव जो भी कर्म करता है, इन तीन श्रेणियों में ही वह विभक्त होता है। इन्हीं कर्मों के अनुसार मनुष्य को फल मिलता है।

कर्मों की जातियों के अनुसार फल की भी तीन जातियां हैं और वे हैं—जाति आयु एवं भोग। जैसा मानव का सात्विक, राजस या तामस कर्म होता है उसी के अनुसार उसे जाति आयु और भोग प्राप्त होते हैं। मानव जो भी कर्म करता है वह उसके मन पटल पर संस्कार रूप में उसी प्रकार लिपटा रहता है जैसा कि वस्त्र में रँग लिपटा रहता है। मरण समय में उसका सूक्ष्म शरीर उसके साथ साथ रहता है और उसी में ये कर्म-संस्कार भी लिपटे रहते हैं। उन संस्कारों के अनुसार ही फलों की प्राप्ति होती है। अगर कर्मों का फल इसी जीवन से सम्बन्ध रखता होता तो मानव उनको लिपटा सकता था। परन्तु इसका सम्बन्ध उसके भावी जीवन से भी होता है। भावी जीवन के निर्माण में ये कर्म भी कारण बनते हैं।

इस प्रकार कर्मों की भी तीन अवस्थायें हैं। इस जन्म में भोगा जाने वाला, अगले जन्म में भोगा जाने वाला और इस और उस जन्म दोनों जन्मों में भोगा जाने वाला। शास्त्र की परिभाषा में इन्हीं को दृष्टा जन्मवेदनीय अदृष्टजन्म वेदनीय और दृष्टादृष्ट जन्म वेदनीय कहा जाता है। इस जन्म में भोगे जानेवाले कर्मों का प्रभाव केवल आयु और भोग सम्बंधी होता है। वह जाति एवं जन्म का निर्माण नहीं कर सकता। परन्तु अदृष्ट जन्म में भोगा जाने वाला कर्म जाति और भोग आयु तीनों ही से सम्बन्ध रखता है।

मनुष्य के इस जन्म के कर्मों का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। इस जन्म के कर्मों से वह अपने आयु और भोग को घटा बढ़ा सकता है। परन्तु वह इस जन्म के कर्मों से इस वर्तमान जन्म में अपनी जाति नहीं बदल सकता। जाति कहते ही उसे हैं जो जन्म से मरणपर्यन्त एक-सी बनी रहे। अतः मृत्यु हुए बिना वह बदल नहीं सकती। एक मानव के इस जन्म के कर्म ऐसे हैं कि वह उत्तम सुख का लाभ करे तो वह अपने इस प्रयत्न से ऐसा लाभ प्राप्त कर सकता है। ब्रह्मचर्य आदि के पालन से वह अपनी आयु को बढ़ा सकता है। और इनके न पालने से आयु को कम भी कर सकता है। परन्तु यदि उसके कर्म ऐसे हैं कि उसे पशु आदि की जाति जन्म मिले तो वह इस जीवन में उसे नहीं मिल सकती। वह तो इस जन्म के बाद ही मिल सकेगी। यदि इस जन्म के कर्मों का प्रभाव मानव पर न पड़ता होता सब कुछ उसके पूर्व कर्मों से ही मिलता होता तो खाने पीने की आवश्यकता उसे न पड़ती। इसके बिना ही उसका शरीर पूर्व कर्मानुसार निश्चित आयु तक चलता रहता। परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं है।

वैदिक सिद्धान्त की दृष्टि से यह मानना ही पड़ता है कि मानव को अपने कर्मों का फल मिलता है और अपने अथवा दूसरे के कर्मों से भी उसे सुख दुख प्राप्त होता है। परोपकार आदि करने और बुराई न करने का सिद्धान्त इसी दृष्टिबिन्दु पर आधारित है। शान्ति प्रकरण का यह मन्त्र वाक्य—शन्न सुकृतां सुकृतानि सन्तु—इसी ओर संकेत करता है। अर्थापत्ति से इसका यह भी अर्थ निकलता है कि जहाँ सुकर्मवालों के उत्तम कर्म हमें सुख दाता हैं वहां दुष्कृत वालों के दुष्कर्म हमें कष्ट भी देते हैं। यदि ऐसा न माना जावे तो चोरी, कत्ल आदि अपराधों को फिर अपराध और पाप कहने का कोई कारण नहीं रह जावेगा। परोपकार, घात, भलाई, बुराई आदि फिर सभी पूर्व कर्मों के फलमात्र रह जायेंगे और इनका करने वाला गुणी और दोषी नहीं हो सकेगा। कर्म में नीति शास्त्र का ऊंचा स्थान है। यदि सब कुछ पूर्व कर्मों के फल का ही परिणाम माना जावे और इस जन्म के कर्मों का उस पर कोई प्रभाव न पड़े तो उत्तम मूल्यवाले कर्मों की ह कोई स्थिति नहीं रह जायेगी।

मानव अपने कर्मों से अपने इस जीवन को बनाता और बिगाड़ता है तथा अगले को भी। मोक्ष के दाता कर्म भी तो इसी जन्म में किये जाते हैं। समाज के उत्थान आदि के कर्म का भी इस जीवन में फल होता है। मनुष्य अपने व्यक्तित्व के निर्माण में अपने इस जीवन के कर्मों से सफल हो सकता है वह जिस प्रकार के कर्म करता है वैसा ही यहाँ इस जीवन मे बनता है और वैसा ही अगले जीवन मे भी।

सार्वदेशिक सभा का आदेश

श्री विद्यानन्द विदेह तथा वेदभाष्य की अपील

पिछले दिनों आर्य पत्रों में श्री विद्यानन्द जी विदेह कृत वेद भाष्य की अपील के संबंध में सार्वदेशिक सभा की। १०४ की अन्तरंग का निम्नलिखित निश्चय छपा था।

'विशेष रूप से सभा प्रधान की आज्ञा से प्रस्तुत होकर कि श्री विद्यानंद विदेह द्वारा वेद भाष्य के प्रकाशन के लिए १ लाख रुपये की अपील प्रकाशित हुई है निश्चय हुआ कि सार्वदेशिक सभा इस वेद भाष्य को प्रमाणित नहीं मानती अतः आर्य समाजें एवं आर्य नर नारी इस सम्बन्ध में सचेत रहें और इसके लिए कोई आर्थिक सहायता न दी जाये। यही निर्देश उनके द्वारा छपी हुई अन्य पुस्तकों के सम्बन्ध में माना जावे।'

इस निश्चय का आधार धर्मार्य सभा की अन्तरंग दिनांक ३०।४।५५ का निश्चय था जो निम्न प्रकार है :—

'श्री युत पण्डित विद्यानन्द जी विदेह ने सार्वदेशिक धर्मार्य सभा के २१।६।५४ अधिवेशन के सामने स्वीकार किया कि मेरी दर्शन में गति नहीं और मैं व्याकरण भी पतनी नहीं जानता। ऐसी स्थिति में पण्डित विद्यानन्द जी विदेह ने अपने ऋग्वेद भाष्य के प्रकाशन के लिए आर्य जनता से जो अपील १ लाख रुपये की की है सार्वदेशिक धर्मार्य सभा उसका घोर विरोध करती और सार्वदेशिक सभा से प्रार्थना करती है वह यथोचित कार्यवाही अविलम्ब करे।"

सार्वदेशिक सभा ने धर्मार्य सभा के निश्चयानुसार श्री विदेह जी की निम्नलिखित पुस्तकों के प्रचार, विक्रय और भेंट पर प्रतिबन्ध उस समय तक लगाया हुआ है जब तक कि सार्वदेशिक धर्मार्य सभा द्वारा इन पुस्तकों में सुझाये गये संशोधनों के अनुसार इन्हें संशोधित नहीं किया जाता :—

१—योगे पद्धति २—सत्यनारायण कथा ३—गायत्री

४—आर्यसमाजों का साप्ताहिक अधिवेशन ५—गीताञ्जलि

सार्वदेशिक सभा के इस निश्चय का, कि श्री विदेह जी की अन्य पुस्तकों के सम्बन्ध में यह निर्देश माना जाय, अभिप्राय उपर्युक्त पुस्तकों से है।

कालीचरण आर्य

प्रधान मन्त्री सभा

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली

ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का संरक्षण

[लेखक—श्री प० गाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०]

इस विषय पर कुछ दिन हुये "आर्य मित्र" में मैंने एक लेख दिया था उस लेख से प्रेरित होकर अथवा उसकी आलोचना के रूप में धर्मार्थ सभा के वर्तमान प्रधान मन्त्री श्री विश्वश्रवा जी ने एक लेख दिया है, वह भी ऋषि के ग्रन्थों की रक्षा के लिये चिन्तित हैं। परन्तु मेरा और उनका दृष्टिकोण सर्वथा विपरीत है। अत परिणाम भी विपरीत ही होता है। यह मैं नही कह सकता कि वह व्यक्तिगत रूप से कहते हैं अथवा जो वह कहते हैं वह आर्य जनता की आवाज है। अपने लिये तो मैं कह सकता हू कि न मैं किसी वर्ग का प्रतिनिधि हू न सर्वाधिकारी। मैं वही लिख देता हू जो ऋषि के ग्रन्थों के अध्ययन के बीच में या अध्यापन के उपरान्त मुझे सूझती हैं और जिनको मैं अत्यावश्यक समझता हू ।

श्री आचार्य जी ने एक दो संशोधकों के प्रयासों के एक उदाहरण देकर कुछ परिणाम निकाले हैं, परन्तु इनसे काम नही चलता ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों को पढने वाले जानते हैं कि उनका क्या कठिनाइयाँ पड़ती हैं। जो उनको पढ़ते नही और प्रायः उच्च कोटि के नेता नहीं पढ़ते, उनके लिए कुर्सी पर बैठे ही कुछ नतीजे निकाल बैठना सुगम है वह सिद्धान्तों की अपेक्षा शब्दों और शब्दों की अपेक्षा वैधानिकता पर अधिक बल देते हैं, वह प्रत्यक्ष को अलग रख कर अनुमान को काम में लाते हैं और उस अनुमान को जिस पर गौतम मुनि का लक्षण नहीं बैठता। गौतम कहते हैं 'तत्पूर्वक' अर्थात् 'प्रत्यक्ष पूर्वकम्" वह लोग इसको छोड़कर केवल 'त्रिविध अनुमानम्' ऐसा लगा लेते हैं। उनकी युक्ति यह है:—

स्वामी दयानन्द ऋषि थे

इस लिये उन्होंने जो कुछ लिखा होगा ठीक ही होगा (२) इस लिये जो कुछ उनके नाम से छापा गया वह ठीक ही है—(३) किसी साधारण व्यक्ति के लिये जिसके सामने ऋषि के ग्रन्थ पढने का अवसर या प्रसङ्ग नही आता और जो सनातनियो के समान केवल ग्रन्थ के समक्ष हाथ जोड़ना ही पर्याप्त समझता है। ऐसा करना सुगम है। वह यह भी अभिमान कर सकता है कि मैं स्वामी दयानन्द का इतना भक्त हू कि उनके लेखों को अक्षरश स्वीकार करता हू परन्तु कुछ ऐसे भी हैं। (चाहे दो चार ही हों) जो इन श्रद्धालुओं की कोटि से बाहर हैं आप उनको काफिर कह सकते हैं। उनकी अवहेलना भी कर सकते हैं परन्तु उनके हृदय ऋषि के लिये कृतज्ञ हैं और ऋषि के सिद्धान्तों पर उनको श्रद्धा है। अत अब वह इधर उधर कोई ऐसी भूल पाते हैं जो स्पष्ट है और उसका कारण भी स्पष्ट है तो वह उसको सुधारने के पक्ष में हैं। श्री आचार्य जी उन लोगों के भी विरुद्ध है या टिप्पणी देना चाहते है। श्री आचार्य जी का पक्ष है कि ऋषि के ग्रन्थों मे एक अक्षर की भी अशुद्धि नही और यदि कोई संशोधन करने के लिये कहता है तो चारों ओर से उसको बुरा भला कहा जाता है। आप मुझे अजमेर ले चलना चाहते हैं। मैं वहाँ आकर क्या करूगा। पुस्तकें मेरे पास हैं। अजमेर में कौन सुनेगा

क्या वहाँ पुस्तकों के अध्ययन करने वाले अधिक हैं। और क्या हमने पहले उनके सामने यह प्रश्न नहीं लाये।

अच्छा आप चुप रहिये और किसी को मुह खोलने न दीजिये। क्या आपने सोचा है कि आगे क्या होने वाला है। मुझे संशोधकों का इतना डर नही जितना कीड़ों का। आपके पास कौन सा ताला है कि पुस्तकों को कीड़ों से बचा सके। जब हिन्दी और संस्कृत का अधिक प्रचार होगा तो विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी ऋषि दयानन्द की पुस्तकों की भी तुलनात्मक अनुसंधान करगे। कहीं कहीं आरम्भ हो गया है। यह स्वागत करने की बात है। ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का जितना अनुशीलन हो उतना अच्छा' परन्तु क्या वह उन गल्तियों की उपेक्षा करेंगे? और क्या यह वास्तविक संरक्षण होगा ऋषि के भावों का, यह प्रश्न है जो विधान के अधिकारियो के समक्ष नहीं हैं। परन्तु वह इसको दूर तक आँख से ओझल रख नही सकेंगे। ऋषि दयानन्द उदार विचार के थे। वह आर्य ग्रन्थो में भी अशुद्धियों को स्वीकार करते थे और उनका आदेश भी यही है कि मेरे वचनों को आँखें बन्द करके मत मानो और मेरे लेखकों के लेखों का तो पुछना ही नही है। परन्तु हम ने इस बात की उपेक्षा की, श्री विश्वश्रवा जी को यह बात प्रिय होगी। परन्तु मुझे तो ऋषि के उद्देश्य की पूर्ति मे यह हानि ही प्रतीत होती है।

श्री आचार्य जी के लेख से यह भी प्रकट होता है कि कोई उनकी बात मान नही रहा। इस पर उनको शोक है, खेद है। दुख है, और वेदना है। पर उनको इस बात का दुख नहीं है कि इस नीति ने ऋषि के विचारों के प्रसार में कितनी बाधा डाली पुस्तकों के पन्ने सुरक्षित रहे परन्तु उनको पढ़ना कोई नहीं और पढ़ता इसलिये नहीं क समझ मे नहीं आते। लोग पंडितों पर विश्वास करते हैं और पंडित वर्ग ठीक ठीक कठिनाइयों का पता नहीं होने देता। यह बात पहले मजहबो में भी पाई जाती थी और यही उनके नाश का कारण हो गई। ऋषि दयानन्द ने जनता को इस बात से
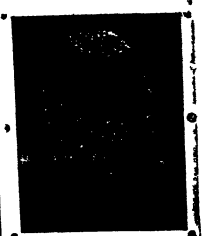
बचाना चाहा। उन्होंने अन्य परम्परा को रोका। यह सिद्धान्त निश्चित किया कि वेद मन्त्रों के कई अर्थ हो सकते हैं जब तथा प्रमाणों का आदर किया जाय। परन्तु हम लकीर के फकीर हो रहे हैं। इस बात में हम उन लोगों के समान हैं जिनका ऋषि ने खण्डन किया है। वैधानिक प्रमाणों के वैधानिक अधिकारियों को तो यह बात विशेषतया सोचने की है। विधान साधन है साध्य नहीं। उसकी प्राप्ति के लिये सार्वजनिक मत परिवर्तन भी होना आवश्यक है। सन्दूक में बन्द कपड़े बहुत दिनों तक मैले होने से बचाये जा सकते हैं, परन्तु ऐसा करने से लाभ क्या? यदि धोबी के पैसे बचाना है तो दरजी और जुलाहे को भी पैसे क्यों दिये जाय। सनातन धर्मियो ने वेद की इसी प्रकार रक्षा की थी परन्तु वह कर न सके। अब सनातनधर्मियों के दृष्टिकोण में तो परिवर्तन दिखाई पड़ रहा है। परन्तु हम पीछे लौट रहे हैं, मैं इस विषय को अधिक खोलना नही चाहता। केवल विचार शीलों के लिये संकेत मात्र लिख रहा हू।

विज्ञान का चमत्कार

भूमि पर रहने वाला मानव स्वच्छंद विचरण का आनन्द लेते हुए।

हमारी जीवन यात्रा

[ले०—श्री प्रेमकुमार 'प्रेमी' सिद्धान्त शास्त्री, गवर्न० हाई स्कूल, आष्टा (भोपाल)]

हम एक यात्री की तरह ही हैं और हमारा जीवन एक अत्यधिक लम्बा सफर है। यह संसार इस यात्रा की लम्बी सड़क है, हमारी मंजिल बहुत ही दूर है जहाँ पहुँचने के लिए हमें मार्ग में कई मोटरें रेलें [शरीर और योनियां] बदलनी पड़ती हैं। कैसे इस यात्रा को पूरा करें यह जानने के लिए पूरा लेख पढ़ डालिए। —संपादक

हम क्या हैं ?

एक आदमी जंगल में अंधाधुन्ध भागा जा रहा हो और आप उससे पूछें कि भाई-मियाँ! आप कौन हैं? वह कहे "मैं यह नहीं जानता' फिर आप पूछें कि आप इस कदर तेजी से किस ओर और क्यों भागे जा रहे हैं? वह फिर भी यही कहे कि "मुझे नहीं मालूम" तो आप उस मनुष्य को क्या समझेंगे?

इसी प्रकार जो अपने अस्तित्व, स्वरूप और सामर्थ्य का ज्ञान प्राप्त किये बिना ही कर्म करके सफलता प्राप्त करना चाहते हैं वे उसी घोड़े की तरह हैं जो अपने मालिक के इशारे पर चलता है। वह तांगे में जुता हुआ है और उसकी आँखों पर दोनों तरफ पट्टा चढ़ा हुआ है। वह भागा जा रहा है पर वह नहीं जानता कि वह क्या है? कहाँ और क्यों जा रहा है?

अतएव हमें यथाशक्ति चिन्तन और अध्ययन द्वारा यह जानने का प्रयत्न करना चाहिये कि हम क्या हैं? फिर यह कि हम क्या कर सकते हैं? और हमें करना क्या चाहिये। इस प्रकार क्रम पूर्वक ज्ञान प्राप्त कर तदनुसार कर्म करते रहकर हम अपना जीवन सफल कर सकते हैं।

हम एक यात्री की तरह ही हैं और हमारा जीवन एक अत्यधिक लम्बा सफर है। यह संसार इस यात्रा की लम्बी सड़क है, हमारी मंजिल बहुत ही दूर है जहाँ पहुँचने के लिए हमें मार्ग में कई मोटरें, रेलें (शरीर और योनियाँ) बदलनी पड़ती है। मोटरों और रेलों में ड्राइवर होते हैं, सहयात्री होते हैं, इन्जिन, भाप, विद्युत आदि वस्तुएँ होती हैं। सहयात्रियोंमें कोई वृद्ध, कोई बड़ा कोई समवयस्क कोई सम-वयस्का तथा कोई छोटे होते हैं। कोई शिक्षित या धनी और कोई अशिक्षित या निर्धन, दुखी सुखी सब तरह के लोग होते हैं। हम इस यात्रा में बड़ों के आदर और श्रद्धा के भाव से मातृवत् और पितृवत्, बराबर की आयु के पुरुषों से मित्र-बन्धु आदिवत् एवं महिलाओं से अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार सम्बन्ध पैदा कर यात्रा अथवा साथ पर्यन्त सम्बन्ध का निर्वाह करते हैं। कभी कभी हम एक ही मोटर या रेल से बहुत लम्बी यात्रा करते हैं और परस्पर सब में पर्याप्त घनिष्ठता, मोह और आत्मीयता का भाव उत्पन्न हो जाता है कि यकायक हमारी उस यात्रा का अन्त आ जाता है। हमें सब साथियों और गाड़ी को छोड़कर स्टेशन तथा गाड़ी बदलनी होती है और फिर वही क्रम—नई गाड़ी, नई यात्रा और नये साथी! ऐसे संयोग-वियोग के अवसर पर मोही, रागी और कोरे भावुक लोग सुख या दुख का अनु-भव करते हैं ज्ञानी और तत्वदर्शी नहीं। क्योंकि वे भलीभांति जानते हैं कि इस यात्रा में ऐसी कितनी ही घटनाएँ होंगी। संयोग होगा वियोग होगा। इसी मिलने बिछुड़ने का नाम ही तो सृष्टि है। और इस परिवर्तन की आवश्यकता को भी वे जानते हैं। अतः उन्हें सब कुछ छोड़ने में कोई क्लेश नहीं होता, उनका लक्ष्य तो मंजिल पर पहुँचना है और वे निरन्तर अपनी मंजिल की प्राप्ति के आनन्द का अनुभव किया करते हैं। यदि वे ऐसे ही सहयात्री बन्धु-बान्धवों के मोहपाश में फँस कर मंजिल से भटक जाएँ तो उन्हें बहुत चक्कर में फँसकर दीर्घकाल के पश्चात् मंजिल मिलेगी।

दृष्टाँत और हम

अब यों समझें कि हम हैं जीवात्मा (यात्री) और यह संसार हमारी यात्रा की सड़क और रेलवे लाइन की तरह है। हमारी मंजिल है परमधाम अर्थात् मोक्ष! इस जन्म मरण (गाड़ियों की अदला-बदली और उससे पैदा होनेवाली परे-शानी) दुख सुख आदि से छूट कर (यात्रा समाप्त कर) अपनी मंजिल प्राप्त कर इष्टदेव परमपिता परमात्मा का प्रत्यक्ष करना तथा आयुष-पर्यन्त मोक्ष सुख का आनन्द प्राप्त करना!

जो गाड़ी—रेल आदि हम बदलते हैं, वे हैं हमारे जन्म जन्मान्तर! प्रत्येक जन्म में हमें नये-नये साथी (यात्री) व माता-पिता, भाई-बहिन, बन्धु-बान्धव आदि मिलते हैं। जिस प्रकार रेल में या मोटर में मिलनेवाले सफरमीनाज हमारे सगे-सम्बन्धी नहीं हैं और जानते हुए भी अज्ञानी जन उनसे बिछुड़ने पर थोड़ा-बहुत दुःखी होता है उसी प्रकार इस संसार के माता-पिता आदि का सम्बन्ध भी सच्चा और स्थायी नहीं है। सच्चा सम्बन्ध तो उसी से है जिसके पास से (हो सकता है) हम कई बार आ चुके हैं और अब पुनः अपनी 'मंजिले-मकसूद' (गन्तव्य स्थान) पर पहुँच कर उससे मिलने की इच्छा से इस यात्रा को पार कर रहे हैं यथा :-

त्वमेव माता च पिता त्वमेव।
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव॥
त्वमेव विद्या द्रविणम् त्वमेव।
त्वमेव सर्वं मम देव देव॥ (गीता)

लेकिन फिर भी हम राग-द्वेषों माया में फँसे हुए व्यक्ति की भांति दुःख सुख का अनुभव करते हुए संसार सागर में गोते खा रहे हैं क्योंकि हमारे पास सद्-ज्ञान (नौका) नहीं है। क्यों कि जो जैसा हो उसे वैसा ही जानना सद्ज्ञान और कहना सत्य कहाता है तथा इसके विप-रीत हठधर्मी अथवा दुराग्रह से वैसा न जानना अज्ञान और न कहना असत्य कहाता है।

कल्पना कीजिये कि आपके छोटे भाई (बालक) ने कुछ काँच के चमकीले टुकड़े (रुपयों की भांति) कुछ बीड़ी के बण्डलों के लेबिल (नोटों की तरह) तथा सिग्रेट के पैकेट व इमली के बीज (आभूषणों की भांति) एकत्र कर डिब्बे में रख छोड़े हैं।

आप उसकी इस नकली सम्पत्ति तथा उसके प्रति उसका ऐसा कट्टर प्रेम देख-कर उसके बालपन और अज्ञान पर हँस पड़ेंगे। जिन वस्तुओं को (ज्ञानी होने के कारण) आप (काँच के टुकड़ों व बण्डलों के लेबिलों का मूल्य समझने के कारण) फिंकवाने की आज्ञा देते हैं छोटा भाई उन्हें प्राणों की भांति प्रेम करता है क्यों कि वह उसकी असलियत न समझ कर उसे ही सच्ची सम्पत्ति समझता है। आपके लिये कुछ भी हो उसके लिये तो वे रुपये पैसे जैसे ही हैं वह इनके लिये रो-रो कर घर भर सकता है।

ऐसे ही हमारा भी राग द्वेष, लोभ मोहादि षडरिपुओं काम क्रोध मद, लोभ, मोह और मत्सर से मोर्चा होता है और जब तक जीत नहीं जाते तब तक इनसे प्रभावित होकर सुखी दुखी हुआ करते हैं।

यात्रा के दौरान में हमें नाना विध सुन्दर और लाभप्रद अनुभव प्राप्त होते हैं मनोरंजन होते हैं। अनेक प्रकार के सुन्दर दृश्य एवं सुखप्रद, और ज्ञान वर्धक वातावरण दृश्यमान होते हैं। साथ ही कुछ दुखद घटनाएं व बीभत्स दृश्यादि एवं क्लेश-कारी बातें भी हुआ करती हैं कितनों ही से मिलन, बिछोह और सम्बन्ध एवं विच्छेद हुआ करते हैं। इस प्रकार कहीं सुख और कहीं दुख देखकर हम यह जान गये हैं कि हमारी यात्रा [संसार] सुखमय दुखमय क्यों हैं?

अब ज्ञानी जन इस क्षणिक संयोग-वियोग, दुःख सुख और मनोरंजन क्लेशा-दिक से प्रभावित न हो निष्काम [अना सक्त] भाव से कर्म करते हुये अपनी "मंजिलेमकसूद" [जीवन लक्ष्य] के विषय में जागरूक और चिंतित रहते हैं और प्रयत्नशील भी। और जो वस्तुतः तत्व ज्ञानी हैं ही नहीं, वे इस क्षणिक संसार [यात्रा] के संयोग-वियोगों, सुख-दुखों और इस बाह्यस्वरूप को स्थायी और सच्चा समझ कर इससे प्रभावित हो सुखी दुखी हुआ करते हैं और जब तक हम यात्रा, इस यात्रा, यात्री और मन्जिल के असली स्वरूप और तत्व को नहीं समझ लेते तब तक दुःखी और गुमराह होकर भटकते रहते हैं। यही संक्षेप में सारों का सार तत्व है।

दूसरे दृष्टान्त के अनुसार यदि हम मोटर या रथ को ही अपना शरीर समझ लें तो फिर हम हुये जीवात्मा [मोटर मालिक] और मोटर हमारा शरीर जोकि हमारी यात्रा को पार करने में प्रत्येक बार [जन्म] सहायक होती है। मोटर का ड्राइवर हमारा मन है इंजिन इन्द्रियाँ [या रथ के घोड़े], पेट्रोल हमारी शक्ति एवं एंजिन से पैदा होने वाली बिजली हमारी बुद्धि है जो कि मोटर चलाने की विद्या रूपी ज्ञान से शुद्ध होती है यथा "बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति'। यह ज्ञान मन के अधिकार में रहता है क्योंकि मन हमारी मोटर (शरीर) का संचालक है। मन [ड्राइवर] को हम जीवात्मा [मोटर मालिक] के वश में होना चाहिये तभी हमारी मोटर सत्पथ पर चलती हुई जीवन लक्ष्य [मंजिले मकसूद] अर्थात् मोक्ष तक पहुँच जाती है और यदि ड्राइवर [मन] स्वेच्छा से हमारी [जीवात्मा की] इच्छा के विपरीत इस मोटर [शरीर] को चलावे तो हम भटक सकते हैं। ड्राइवर [मन] किसी सुन्दर दृश्य [वासना] से मोहित होकर गाड़ी रोककर आनन्द करने लगे तो हमारा जीवन प्रवाह [विकास] रुक जाता है। इससे बचने के लिये हम यम और नियम रूपी ब्रेक और क्लच का सहारा लेकर मोटर की रफ्तार और दिशा को संतुलित कर सकते हैं ताकि कोई दुर्घटना न हो सके। यम [रूपी ब्रेक में ६ पुर्जे] पांच हैं यथा:—

तत्राहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्या परिग्रहा यमः
[योग० सा० सूत्र ३०]

अहिंसा, सत्य, अस्तेय [चोरी न करना]- ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह [लोभ न करना] आदि का पालन यम कहाता है, और नियम [रूपी क्लच में भी पांच पुर्जे] हैं।

शौचसन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर
प्रणिधानानि　　　नियमः॥
[योग० सा० सूत्र ३२]

शौच [पवित्रता], सन्तोष करना, तपस्या करना, स्वाध्याय करना और ईश्वरोपासना करना नियम कहलाता है। ये यम नियम बड़े आवश्यक हैं पर इनका पालन तभी हो सकता है कि जब हमारा जीवात्मा का मन ड्राइवर हमारे वश में हो।

यात्रा पूर्ण करने के दौरान में हमें कई पड़ावों स्टेशन पर मोटर या रेल बदलनी होती है अर्थात् शरीर बदलने पड़ते हैं। एक ही मोटर हमें लन्दन नहीं पहुँचा सकता तो फिर एक ही शरीर हमें मोक्ष तक कैसे पहुँचा सकता है।

इस मोटर या रेल को छोड़ कर दूसरी में जा बैठने पर हमें दुखी नहीं होना चाहिये जैसा कि कहती है.—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्य,
न्यानि संयाति नवानि देही॥ गीता २ २२

अर्थात् जिस प्रकार हम एक जीर्ण वस्त्र को उतार कर दूसरा वस्त्र पहन लेते हैं उसी प्रकार जीवात्मा मृत्यु के समय इस शरीर रूपी वस्त्र को उतार कर दूसरा वस्त्र नया वस्त्र शरीर धारण कर लेता हैं जिस प्रकार हम रेल बदल लेते हैं न?

[शेष पृष्ठ १० पर]

२६ जून से १० जुलाई तक "आर्यमित्र" पक्ष मनाएँ !

देश की समाजें अधिकाधिक सदस्य बनाने में लग जाएँ

१५ दिन में ५००० सदस्य बनाने का निश्चय हो

आर्य भाइयो, ३ माह से आपका दैनिक आर्यमित्र पूरे बल से देश में वदिक विचारधारा प्रसारित करने का यत्न कर रहा है। हम शीघ्र ही इसका साइज आदि बढ़ाना चाह रहे हैं। आवश्यकता केवल यह है कि देश की समस्त आर्यसमाजे २६ जून से १० जुलाई तक 'आर्यमित्र पक्ष' मनाकर अधिकाधिक सख्या में सदस्य बनाने का यत्न करें। सभी की सुविधा के लिए हमने आर्यमित्र के शुल्क में भी इन दिनो के लिए कम कर दी है।

अतः जिन सदस्यों का शुल्क हमें १० जुलाई तक प्राप्त हो जाएगा उनसे २४) वार्षिक के स्थान पर २१),१२) छमाही के स्थान पर ११) रु० और ७) तिमाही के स्थान पर ६) स्वीकार किया जाएगा। किन्तु, ध्यान रहे सुविधा केवल उन्हें प्राप्त होगी, जो अपना धन १० जुलाई तक हमारे कार्यालय में भेज देंगे।

देश में वैदिक विचार धारा प्रसार के लिए इच्छुक जन समुदाय यदि हमारी यह प्रार्थना स्वीकार की तो होगा एक नए युग का अभ्युदय !

देश के स्वर्णिम निर्माण के लिये आलस्य छोड़ें और लगें परे बल से सदस्य बनाने में। प्रत्येक समाज [illegible] न १२ दिनो में केवल दैनिक मित्र के सदस्य बनाने मे लग जाए तो पाँच हजार से भी अधिक सदस्य बन सकते हैं।

२१) में साप्ताहिक भी वर्षभर मिलेगा, उसके ८, नकाल दें तो रहजाते हैं केवल १३)। १३) में ७) की रद्दी आप वर्षभर बाद बेच लेंगे, रह गए ६) केवल। यह टिकट का व्यय मात्र एक पैसा प्रति दिन आप दैनिक मगाने को देंगे। इस एक पैसे से आर्यसमाज का कितना बल बढ़ेगा, इसकी कल्पना भी अभी आप नहीं कर सकते।

अत. आशा उत्साह और भविष्य निर्माण की चाह लिए दैनिक मित्र के सदस्य बनाने में लग जाइए यही प्रार्थना इस समय हमारी आप से है—

—विनीत

पूर्णचंद ऐडवोकेट
प्रधान

कालीचरण आर्य
मन्त्री

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश

आर्यमित्र दैनिक के संचालक

हमने २०० समाजों या व्यक्तियों के [illegible]म चाहे थे जो प्रति माह केवल १०) [illegible]हली जून को भेज सकें। पर मिले हैं अभी [illegible]क केवल ४३ व्यक्ति। १५७ व्यक्ति अभी [illegible]र चाहिए। उन्नति-निर्माण और संघर्ष से [illegible]जय प्राप्त करने के लिए क्या आप केवल [illegible]०) भी नहीं भेज सकते ? उत्तर दीजिए— [illegible]०) पहली तारीख को मनिआर्डर [illegible] कर—

मासिक सहायता देनेवाले दानदाताओं की सूची

- १०) श्री इन्द्रजीतसिंह, गोण्डल रोड, राजकोट
- १०) आ. समाज, सी सी. एफ. क्वार्टर जबलपुर
- ५) मन्त्री, आ. समाज गढ़वा, पालामऊ
- १०) श्री [illegible]प्रसाद भक्त, जी. टी. रोड, पानागढ़
- ५) प्रधान, जि. आर्यसमाज, नाई की मण्डी, आगरा
- १०) मन्त्री, आर्यसमाज, बहराइच
- १०) " " घुघली, गोरखपुर
- १०) " " छिबाई, बुलन्दशहर
- १०) " " माधोपुर, नैनीताल
- १०) आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री, सिविल लाइन बदायूँ
- १०) मन्त्री, आर्यसमाज, बहजोई, मुरादाबाद
- १०) " " आगरा नगर
- १०) " " रायबरेली
- १०) डा. भानुप्रताप बरुआ सागर, झाँसी
- १०) " " रसड़ा, बलिया
- १०) मन्त्री, आर्यसमाज, रुड़की, सहारनपुर
- १०) " " शामली, मुजफ्फरनगर
- १०) " " कैमूर सीमेन्ट वर्क्स, कैमूरा
- १०) " " बम्बई
- १०) " " रामपुर मथुरा
- १०) " " प्रतापगढ़, अवध
- १०) श्री गन्धारामजी, प्रधान, आर्यसमाज, पूरनपुर
- १०) आर्यसमाज, गोरखपुर
- १०) मन्त्री, आर्यसमाज, भिन्गा, बहराइच
- १०) " " फिरोजाबाद
- १०) " " मथुरा

हमारी जीवन यात्रा

(पृष्ठ ९ का शेष)

तो प्रिय पाठक वृन्द ! इस प्रकार हम [illegible] यात्री अपनी यात्रा पूरी कर रहे हैं और [illegible] सभी का लक्ष्य इस संसार-सागर से [illegible] होना है। जिसके पास जितना बल [illegible] ('बर्थेटिकिट') होगा वह वहीं तक जा [illegible]गा। वह शक्ति यम, नियम, आसन, [illegible]णायाम आदि योग के आठ अंगों से [illegible]त की ओर बढ़ाई जा सकती है, केवल [illegible], दृढ़ विश्वास और निरन्तर लगन से [illegible]प्त होना चाहिये।

हम क्या करें ?

इतना सब नक्शा समझने पर हम इस [illegible]र्ष पर पहुँचे कि हमें अनासक्त 'बिना [illegible]क्त—इच्छा के' निष्काम भाव से कर्म करना चाहिये। हम केवल कर्म करने में ही अपना अधिकार समझें फलकी इच्छा न करें यथा —

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्"
[गीता २ ४७]

निष्काम भाव से कर्म करने के लिये वेद कितना सुन्दर संदेश देते हैं

ईशावास्य मिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यांजगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्यस्विद्धनम्॥
[यजुर्वेद ४०-१-]

अर्थात् "ईश्वर से आच्छादित [सर्व व्यापक] इस जगत जंजाल का निष्काम [त्यागकी] भावना से भोग करते हुवे किसी के धन का लालच मत कर"

जो ज्ञानी होते हैं वे कर्म करते हुवे भी कर्मों में लिप्त नहीं होते और जो अज्ञानी हैं वे कर्म करते हुवे भी कर्मों में लिप्त रहते हैं। जैसे कि किसी के यहां शादी हो रही है। उसमें घर के बाहर के सभी व्यक्ति भाग ले रहे हैं, पर थोड़ी सी गहन दृष्टि से यदि देखा जावे तो प्रतीत होगा कि जो भी विवाहोत्सव में भाग लेने आये हैं वे लोग [बाहर वाले] विवाह कार्य में भाग लेते हुए भी उसमें आसक्ति नहीं रखते और वे उसमें पराये पने का भाव रखकर ही अपना [illegible] करते हैं और जो घर के ही व्यक्ति हैं वे शादी में यदि भाग न भी लें तो भी उनको विवाहोत्सव में आसक्ति और सुख का अनुभव होगा क्यों कि वे उस कार्य को अपना ही समझते हैं।

जैसे हम किराये के मकान या होटल में रहते हैं और वहाँ की सब योग्य वस्तुओं का उपभोग करते हैं पर त्याग और पराई भावना से। यह हम खूब जानते हैं कि यह किराये का होटल या बिल्डिंग, यह मोटर [शरीर] यह बाग [संसार] आदि कुछ भी हमारा नहीं है और न हम ही इसके हैं। अतः तेनत्यक्तेन भुंजीथा के अनुसार त्याग की भावना रखकर भोग करना ही सुखद और दुख रहित है। जब हम त्यागमय, निष्काम और इच्छा रहित होकर कार्य करेंगे तो फिर कैसा दुख ? क्योंकि सुख होता है इच्छा पूरी हो जाने से और वह भी थोड़ी देर के लिये, और दुख होता है इच्छा पूरी न होने से, और जब इच्छा ही न हो तो कैसा दुख और कैसा सुख ?

हम ऐसा करें :—

हमें अपनी यात्रा को निष्कंटक बनाने के लिये क्या करना चाहिये उसे उपसंहार या सारांश रूप में लिखते हैं ताकि प्रत्येक पाठक इस लेख का सार

(शेष पृष्ठ १४ पर)

धन्यवाद और एक प्रश्नचिन्ह

(श्री उषर्बुध आर्य लन्दन)

९ मार्च का 'आर्यमित्र' अब लन्दन पहुँचा है। सम्पादक जी को मेरे लेख के प्रकाशन के लिए धन्यवाद। आर्यसमाज सार्वभौम है तथा एक देश को दूसरे में परिवर्तित करने का पक्षपाती नहीं है। यह न तो भारत को इंगलैंड बनाना चाहता है और न इंगलैंड को भारत, अपितु समस्त विश्व को एक मानकर सार्वभौम सत्य का प्रचार करना चाहता है। तथापि कभी २ पत्रकारिता अपने व्रतियों को जनता की भावनाओं को आलोडित करने के लिए बाध्य कर देती है। 'आर्यमित्र' के सम्पादक जी कुशल पत्रकार हैं अत उन्होंने भारतीय जनता के स्वदेश प्रेम को उत्तेजित करने के लिए मेरे लेख का शीर्षक रखा "इंगलैंड भारत बने या भारत इंगलैंड ?"—और जनता फड़क उठी।

सारे भारतवर्ष की आर्य समाजो ने जिस प्रेम से भारतेतर देशों में वैदिक धर्म के प्रचार के इस पग का स्वागत किया है। उससे आर्यसमाज, लन्दन को बहुत प्रोत्साहन मिला है। उक्त लेख पढ़ने के बाद यू० पी०, राजस्थान, बिहार, हैदराबाद आदि सभी प्रान्तों की आर्यसमाजों से सहयोग के पत्र आ रहे हैं। मारिशस के एक आर्य बन्धु श्री मोहनलाल जी मोहित ने आर्य समाज, लन्दन के लिए छोटी साइक्लो स्टाइल मैशीन का मूल्य पैंतीस पाउंड (४५० रु०) देने का वचन दिया है। आर्य बन्धु पूछते हैं:—"अपीलें प्रकाशित कर भेजो। लिखो कि तत्काल कितने धन की आवश्यकता है ?" 'साइक्लो स्टाइल' आ जाने पर तत्काल एक अपील आर्यसमाजो और आर्य पुरुषों को भेजी जायगी। तब तक आर्य-जगत अपने कर्तव्य का निर्णय करे।

इन सभी बन्धुओं को धन्यवाद देते हुए मैं एक भूल सुधार करना चाहता हू। पूर्व लेख के साथ मेरा पते में छापे की कुछ भूल हो गई है। ठीक पता यह है:—

USHAR BUDH ARYA,
C/o The Hindu Association of Europe,
31 (इक्तीस) Polygon Road, London N W. 1. (U K)

आशा है कि अगले मास तक आर्यसमाज, लन्दन अपनी मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ कर देगा, एवं फ्रेंच, जर्मन, इटालियन आदि भाषाओं में कुछ ट्रैक्ट प्रकाशित हो जाएंगे। कठिनाई यह है कि इस समय दक्षिण अफ्रीका, केनिया, वेस्ट इंडीज आदि सभी स्थानो से मुझे आमन्त्रण आ रहे हैं किन्तु मैं चाहता हू कि लन्दन के पश्चात् अब अमेरिका के न्यूयार्क और वाशिंगटन नगरों में आर्यसमाज की स्थापनार्थ यात्रा करूं। यह तब तक संभव नहीं है जब तक कि लन्दन में समाज अपने पैरो पर खड़ा न हो जाय।

यहां समाज को अपने पैरों पर खड़ा करने के लिए अपना भवन होना अत्यावश्यक है। भवन की आमदनी से यहा नियम पूर्वक प्रचारको का आना जाना प्रारम्भ हो जायगा। स्मरण रहे कि लन्दन को पौरस्त्य और पाश्चात्य दार्शनिक मानस के साथ २ यूरोपीय भाषाओं का ज्ञान रखने वाले प्रचारकों की ही आवश्यकता है। अस्तु। भवन के लिए तत्काल एक हजार पाउंड (बीस हजार शिलिंग=लगभग चौदह हजार रुपए) की आवश्यकता है। इतना धन प्रारंभ में डिपाजिट देकर शेष ऋण किश्तों के रूप मे उतारा जा सकता है। यहाँ Building Companies कुछ धन ऋण के रूप मे दे देती हैं।

क्या चौदह दानवीर मिलकर प्रति एक सहस्र रुपया भेज सकेंगे ?—क्या लाखों आर्यों में से चौदह—केवल चौदह व्यक्ति यह उदारता दिखलाएंगे ?

इस कार्य को करने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि प्रत्येक आर्यसमाज तथा प्रतिनिधि सभा अपने यहां 'यूरोप प्रचार सहायता-समिति' का संगठन करे। यह समिति स्थानीय दानवीरों से धन एकत्र कर लन्दन भेजे। रसीद तत्काल भेज दी जायगी। हम प्रतीक्षा में हैं—देखें कितने उत्साही आर्य आगे बढ़ते हैं ? यह है एक प्रश्न चिन्ह।

एक जलता हुआ प्रश्न

आर्यसमाज फिर अग्नि परीक्षा में

ले०—श्री रामबहादुर जी मुख्तार अन्तरङ्ग सदस्य आर्यप्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश

आर्यसमाज पर जब भी कोई संकट आया उसने उसका वीरतापूर्वक मुकाबला किया और सफल हुआ। आर्य जब भी सामूहिक रूप से किसी कठिन से कठिन परीक्षा में पड़े सफलता उनकी चेरी बनी। यूँ तो आर्यसमाज का इतिहास वीरता, धीरता, साहस और समय पर बलिदान देने के उदाहरणों से भरा पड़ा है। परन्तु लेख के लम्बा हो जाने के भय से केवल एक उदाहरण ही आर्य बन्धुओं को जागृत करने के लिए पर्याप्त है। वह है "हैदराबाद सत्याग्रह" आर्यसमाज ने उस समय कौन सा ऐसा बलिदान था जो नहीं किया पिताओं ने पुत्र, स्त्रियों ने पति बलिदान चढ़ाये। लाखों रुपये बात की बात में सत्याग्रह कोष में जमा हो गया। सैकड़ों मील से चलकर अपना काम काज छोड़ कर सत्याग्रही बादलों की तरह हैदराबाद पर छा गये और सफलता का आलिंगन किया।

इस समय की जो परीक्षा आर्यसमाज के सम्मुख है वह पिछली परीक्षाओं से बहुत सरल है। पिछली परीक्षाओं में आर्यों को तन, मन, धन और अपने प्रियजन सभी कुछ भेंट करने पड़े थे। परन्तु इस परीक्षा में तो केवल धन ही वह भी बहुत नहीं थोड़ा देना है। क्या इस परीक्षा में सफल न होंगे। अवश्य होंगे।

यह अग्नि परीक्षा है दैनिक आर्यमित्र को सफलता पूर्वक चलाना। ऐ ! आर्यबन्धुओ केवल थोड़े थोड़े धन के बलिदान से यह नौका भवर से पार हो जायगी, संसार में हमारा मुख उज्ज्वल हो जायगा, मुख पर कालिमा लगने से बच जायगी। दूसरो को हमारा उपहास उड़ाने का अवसर न मिलेगा। इसलिए भाइयो सजग हो जाओ। अपना कर्तव्य अविलम्ब निभाओ। जो जिस से बन पड़े अधिक से अधिक तुरन्त मनीआर्डर द्वारा दैनिक मित्र कार्यालय को भेजना शुरू करो। आर्यमित्र कार्यालय पर मनीआर्डरों द्वारा ऐसे रुपया बरसे कि संसार चकित रह जावे।

भाइयो शंका न कीजिये। मत सोचिये कि कार्य महान है हमारे थोड़े धन से क्या होगा। बूँद बूँद से घड़ा भर जाता है। तो क्या लाखों आर्यसमाजी एक पत्र को जीवित न रख सकेंगे। अवश्य रखेंगे। सभामन्त्री जी की तो केवल १००) आर्यसमाजो या व्यक्तियों से ही दस दस रुपया मासिक की अपील है। यह कार्य इतना आवश्यक है कि हम एक समय का भोजन भले ही त्याग दें तो भी उचित ही है जिसके पास यह दैनिक जाता है और जो इसको पढ़ता है उसको सत पथ पर चलने की प्रेरणा मिलती है। यह मेरा अनुभव है।

बन्धु वर्ग ! समय पर वर्षा होने से ही लाभ है। यही अवसर है जब कि प्रत्येक आर्य धन की वर्षा आर्यमित्र पर करे।

आर्यसमाज के हर छोटे बड़े व्यक्ति चाहे वह सन्यासी हो, वानप्रस्थी हो अथवा गृहस्थी स्त्री हो या पुरुष, विद्यार्थी हो अथवा कारोबारी। प्रत्येक को इस समय अपना यही व्रत बना लेना चाहिये कि वह दैनिक आर्यमित्र की स्वयम् सहायता करेगा और दूसरों को प्रेरित करेगा।

यदि आप चाहते हैं कि वेदों का प्रचार हो, गोहत्या बन्द हो, भ्रष्टाचार, अनाचार, रिश्वत दूर हो। अछूतों की उन्नति, अनाथों की रक्षा हो, राम, कृष्ण, महाराणा प्रताप, शिवाजी के पद-चिन्हों पर देश चले। चोटी और जनेऊ की रक्षा हो तो आर्यमित्र के ग्राहक बनिये, आर्यमित्र को अधिक से अधिक दान तुरन्त दीजिये। यही मेरी विनम्र प्रार्थना है।

पत्रों की प्रतीक्षा है।

मेरे अतिरिक्त पत्र व्यवहार का दूसरा पता यह भी है —

SHRI DHIRENDRA SHASTRI,
154, Tofnell Park Road,
London N. 7. (U.K.)

दक्षिणा-पथ में आर्यसमाज का प्रचार

उत्तर भारत के सन्यासी-विद्वान् तथा सभाओं का उत्तरदायित्व

[लेखक—श्री प० गोपदेव, आन्ध्र]

पाठक गण! यहाँ से दक्षिण पथ से मेरा अभिप्राय, आन्ध्र तामिल, करनाटक और मलयालम् प्रान्तों से है। इस समय इन प्रान्तों में आर्य समाज का प्रचार नहीं है। क्यों नहीं हो रहा, इस बात का उत्तर भारत के आर्य विद्वान् भली भाँति नहीं जानते? मैं अभी २ दो मास उत्तर भारत की यात्रा कर आन्ध्र में पहुँचा हूँ। मेरा घर यहीं हैं। इस यात्रा का उद्देश्य यह था कि मैं समाज के प्रचार की गतिविधि को जान सकूँ। यात्रा के समय कई विद्वान और सामाजिक नेताओं ने मुझसे पूछा, दक्षिण में समाज प्रचार कैसा है? अगर नहीं है, तो क्यों नहीं? मैंने उत्तर दिया कि दक्षिण में समाज का प्रचार नहीं के समान है और ठीक-ठीक प्रचार न होने का उत्तर दायित्व आप ही लोगों पर है। इस उत्तर से कई असन्तुष्ट भी हुए। कई विचारकों ने इसे मान भी लिया। मैं चाहता हू इस लेख से मैं अपने अभिप्राय को कुछ स्पष्ट करूँ।

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द जी महाराज सौराष्ट्र के होने के कारण मेरी सम्मति में उत्तर भारत के थे। आपने समाज की स्थापना उत्तर में की। ऋषि अपने जीवन में दक्षिण नहीं आ सके। उत्तर प्रदेश और पजाब में ही ऋषि का भ्रमण अधिक हुआ। दक्षिण पथ वासियों का दुर्भाग्य है वे ऋषि के दर्शन नहीं कर सके। जैसे, उत्तर भारत वासियों को महर्षि के दर्शन और उपदेश सुनने के अवसर प्राप्त हुए, वैसे दक्षिण पथवासियों को भी मिले होते, तो मैं समझता हूँ दक्षिण भारत वैदिक सिद्धान्तों को अपनाने में अन्य प्रान्तों से किसी तरह भी पिछड़ता नहीं।

महर्षि के पश्चात् समाज वर्ग अन्य प्रदेशों में प्रचारित करने का भार उत्तर भारत के सामाजिक व्यक्तियों तथा समाजों पर पड़ा, इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता। क्योंकि महर्षि के साथ साक्षात् सम्बन्ध विशेषतया इन्हीं लोगों का रहा। उत्तर भारत के अन्य राजपूताना बिहार गुजरात आदि प्रान्तों से कम रहा। अत ऋषि की कार्य करने की शैली, उनके उद्देश्य पंजाब और उत्तर प्रदेश वासियों को पूरे पूरे मालूम थे। परन्तु जिन सामाजिक व्यक्तियों को यह सब मालूम था, उन आर्य नेताओं और विद्वान् सन्यासियों ने अन्य प्रान्तों में जाकर प्रचार करने का कष्ट नहीं किया। अपने प्रान्त में ही समाज को यथा कथञ्चित् जीवित रखने में ही इन महानुभावों का सामर्थ्य चरितार्थ हुआ, यही कहना चाहिए। इसलिए दक्षिणा पथ में समाज का प्रचार क्यों नहीं हुआ? इस प्रश्न का उत्तर क्या हो सकता है, सिवाय इसके कि उत्तर भारतीय सामाजिकों ने दक्षिण में योजनाबद्ध प्रचार नहीं किया। किसी भी नये प्रान्त में समाज का प्रचार अपने आप तो नहीं हो सकता, इतना तो निर्विवाद विषय है। प्रचार किसी के करने पर ही होता है। और यह भी हमें मानना ही पड़ेगा कि यह कार्य इक्के-दुक्के सामान्य वा विशिष्ट व्यक्तियों के किये भी नहीं होता। प्रचारक अच्छे हों और पर्याप्त संख्या में तभी प्रचार स्थायी होगा। अच्छे का अभिप्राय विद्वान्, त्यागी तपस्वी कमठ और 'मिशनरी स्पिरिट' से जीवन में सेवा कार्य करने वाले से हैं। इस तरह के प्रचारक दक्षिणा पथ में नहीं पहुँचे। उत्तर भारत के नेताओं और सभाओं ने इस बात को ठीक तौर पर नहीं जाना। इसलिए दक्षिण में समाज क प्रचार नहीं हुआ।

क्या आर्य सामाजिक क्षेत्र में अच्छे सन्यासी विद्वान् नहीं हैं? क्यों नहीं हैं? परन्तु वे दक्षिण में नहीं आते। यहां प्रचार नहीं करते। दक्षिण में बसते नहीं उत्तर में विद्वान् रहे, दक्षिण में प्रचार हो यह तो हो नहीं सकता। उत्तर भारत के सामाजिक क्षेत्र में बड़े बड़े सन्यासी, विद्वान, त्यागी भी हैं, परन्तु उनकी सारी शक्ति वहाँ के समाज को जीवित रखने के लिए ही काम आयी और आती है। उन्होंने दक्षिण पथ की ओर झांकने का भी प्रयत्न किया अब भी उद्भट विद्वान, सन्यासी कई उत्तर भारत में हैं, परन्तु दक्षिण पथ से वे अपरिचित हैं।

ऐसा क्यों? दक्षिण पथ में वे क्यों नहीं आते? उनको उस प्रान्त से कोई द्वेष है क्या? इन प्रश्नों का उत्तर कौन दे? न्यायत ये प्रश्न उन्हीं से पूछने योग्य हैं, वे ही ठीक ठीक उत्तर आसानी से दे सकते भी हैं, जो समाधान मैं अपनी ओर से यहां लिख दूँगा, वह सम्भव है इनकी दृष्टि में ठीक न हो, क्योंकि मैं दक्षिण पथ का रहनेवाला हूँ। मेरा समाधान यहां पर निर्भर होगा।

मुझे यहां तक मालूम हैं कि हर एक आर्य विद्वान् और सन्यासी चाहता तो है कि समाज विश्व व्यापी बने

कृण्वन्तो विश्वमार्यम, का पाठ करने वाला विद्वान् और सन्यासी समाज के विश्वव्यापी बनाने से क्यों विमुख होगा? आर्य विद्वान् तथा सन्यासी को भीरु भी हम कह नहीं सकते। क्योंकि इन्होंने वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार करते करते समाज वेदी पर अपने प्राणों को भी अर्पण किया। ऐसे उदाहरणों से समाज का इतिहास भरा पड़ा है। फिर भी दक्षिण पथ इनसे अछूता क्यों रहा, प्रश्न वहीं रह गया?

भारत एक विशाल भूखण्ड है। इस बात को हर एक भौगोलिक विद्वान् जानता है। ऐसे भूखण्ड में प्रान्त भेद रहना अनिवार्य है, नदी नाले, जगल और पर्वत एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त की विलक्षणता में विशेष कारण होते हैं, इसलिये उत्तर भारत की अपेक्षा से दक्षिण भारत कई बातों से विलक्षण अवश्य है, यद्यपि उत्तर और दक्षिण भारत वासियों की संस्कृति तथा सभ्यता की पृष्ठ भूमि एक ही है, तथापि भाषा का भेद इन दोनों भूभाग वासियों को एक दूसरे से विशेष रूप से अलग कर देता है। उत्तर भारत में सवत्र हिन्दी भाषा व्यावहारिक रही और अब तो सर्वथा व्यावहारिक बन ही गई है। दक्षिण पथ में आज तक हिन्दी व्यावहारिक भाषा बन नहीं सकी। आन्ध्र, करनाटक, तामिल और मलयालम भी आपस में एक दूसरे की भाषा व्यवहार में नहीं लाते। इनकी भाषायें भिन्न हैं। अत एक वेदी पर इन सबको कुछ कहना कठिन ही नहीं असम्भव है। इस तरह दक्षिण पथ में हिन्दी व्यवहार में न होनेके कारण मैं समझता हूँ उत्तर भारत के आर्य विद्वान तथा सन्यासी इधर आ बसने से झिझकते रहें और सभा सोसाइटियाँ दक्षिणा पथ में कुछ विशेष कार्य नहीं कर सकीं। मैं समझता हूँ इस तर्क में किसी प्रकार हेत्वाभास का स्थान नहीं।

अगर यही बात है तो पाठक कहेंगे कि दक्षिणपथ में समाज के प्रचलित न होने में उत्तर भारतवासियों का क्या दोष है? मैं कहूँगा कि उनका दोष भले ही न हो, परन्तु उन पर उत्तरदायित्व तो है। क्योंकि भाषा भेद को कारण बताकर हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहें तो समाज का प्रचार कैसे होगा? समाज को विश्वव्यापी बनाने का स्वप्न हम क्यों देखें? विश्वभर में हिन्दी भाषा को व्याप्ति होकर प्रचार हो, यह तो असंभव है। न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी। इसलिए कोई भी आर्य विद्वान, सन्यासी, तथा सभा व सोसाइटी भाषा भेद को कारण बताकर अपने उत्तरदायित्व से बरी नहीं हो सकते। इसलिए मैं कहता हूँ कि दक्षिण में समाज का प्रचार नहीं हुआ, इसका उत्तरदाता उत्तर के सन्यासी, विद्वान् तथा सभायें हैं।

[पृष्ठ ५ का शेष]

आयु प्राण प्रजा पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्म वचस मह्य दत्वा व्रजत ब्रह्म लोकम्॥

अर्थात्–हे मनुष्यो! लोगों को उत्तम प्रेरणा देनेवाली, द्विजों को पवित्र करने वाली, उत्तम पदार्थ दिलानेवाली, वेद माता (ज्ञान) को मैंने उपदेश किया है। अब आयु, प्राण, सन्तान, पशु कीर्ति धन, ब्रह्म तेज मुझे समर्पित कर मुक्ति प्राप्त करो।

परमेश्वर की वेद वाणी से हम सदा संयुक्त रहें, उससे कभी विमुख न हों।

स श्रुतेन गमे महि, मा श्रुतेन राधिषि।

ऐसा परम पवित्र धर्म के पालन में प्रमाद नहीं करने हुए हम स्वयं सुखी होंवें और संसार को सुखी बनावें।

सफलता के लिए

आर्य जनता को बधाई !

जो महानुभाव आर्य समाज के मुख्य पत्र आर्यमित्र को पढ़ते हैं; उन्होंने अनुभव किया होगा कि आर्यसमाज का दृष्टिकोण संसार की प्रचलित समस्याओं पर कितना निर्भीक और स्पष्ट नीति का प्रदर्शन करने वाला है। आर्य समाज के सिद्धान्तों का कितनी उत्तमता से प्रचारक प्रसारक और रक्षक है। आर्य मित्र दैनिक और साप्ताहिक, इस समय आर्य समाज की जो सेवा कर रहा है वह सबको भली भांति विदित ही है। नित्य प्रति हजारों हाथों में आने वाला, हजारों नर-नारियों का वैदिक धर्म को सदेश पहुंचाता है और वैदिक धर्म का प्रचार तथा प्रसार कर रहा है। मेरी सम्मति में सभा की यह सेवा यदि किसी प्रशंसा और धन्यवाद की अधिकारी नहीं है तो उपेक्षा से देखने योग्य तो किसी दशा में भी नहीं हो सकती।

आपके दैनिक मित्र ने तीन मास पूरे किए, चौथे मास में पग रखा है। यह सब आपकी ही कृपा का फल है। मैं समस्त भाई और बहिनों का धन्यवाद करता हूं और उन्हें उनके पुरुषार्थ और त्याग पर सफलता के लिए बधाई देता हूं। समस्त भाई बहनों का आभार मानता हूं कि उन्होंने बड़े विशाल हृदय से आर्यमित्र की सहायता की है।

यदि आज आर्यमित्र को दैनिक न किया होता तो साप्ताहिक आर्यमित्र; जो आज पाँच हजार कीसंख्या में छपता है, इतना शीघ्र आगे न बढ़ पाता।

आर्य समाज का मुख्य काम वैदिक धर्म प्रचार है, जिसके मुख्य साधन प्रेस और प्लेटफार्म हैं। प्लेट फार्म तो आर्य समाज के हाथों में पहले ही था और अब भी है, परन्तु प्रेस की जो कमी एक दैनिक पत्र के अभाव में चिरकाल से अनुभव की जा रही थी, आपने अपने पुरुषार्थ से पूरी कर दी है।

मेरे विचार में अब इस शिशु के जीवित रहने में किसी को कोई संदेह नहीं रहनाचाहिए। अब तो यह बल होना चाहिए कि यह अपने पैरों पर खड़ा होकर चलने लगे और तीव्र गति से चलने लगे ताकि वैदिक धर्म की सेवा और अधिक हो सके और उत्तमता से हो सके। यह होगा और अवश्य होगा मेरा ऐसा ही विश्वास है। आपका सहयोग चाहिए। जो अबतक सहयोग आपने दिया है, वह मुझे अत्यन्त प्रोत्साहन देने वाला प्रशसनीय और अनुकरणीय रहा जिसके लिए मैं एक बार पुनः आपको धन्यवाद देता हूं।

अब इन तीन मासों के पश्चात् यह भी विचार सामने आ रहा है कि दैनिक आर्यमित्र का आकार जो इस समय २०×३० है बढ़ाकर २२×३६ कर दिया जाय और मूल्य वही एक आना रहे। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इससे खर्च अधिक हो जायगा। फिर भी आपकी उदारता, त्याग और सेवा भाव के सामने तो यह कुछ मूल्य नहीं रखता।

शिशु जब बड़ा होता है तो वस्त्र तो बडे पहनाने ही होते हैं। मैं आशा करता हूं कि आप समस्त भाई-बहनों भी अपने 'आर्यमित्र' पर कृपा बनी रहेगी।

मैं यह भी जानता हूं कि इन तीन मासों में आर्यमित्र के आपके हाथों तक पहुचने में कहीं कहीं असुविधा रही है। यह भी हो सकता है कि किन्हीं किन्हीं की रुचि के अनुकूल भी न हो, परन्तु आप महानुभावों ने अपनी महानता से हमारी भूलों को असुविधाओं को भुलाकर हर प्रकार से 'मित्र' को अपनाया है। मुझे विश्वास है कि भविष्य में भी इसी प्रकार सभी का सहयोग हमें प्राप्त होता रहेगा।

कालीचरण आर्य
मन्त्री
आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश

(पृष्ठ १० का शेष)

समझकर ठोस रूप से ग्रहण करने में समर्थ हो!

[1] मार्ग में मिलने वाले साथियों से प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथा योग्य सद्व्यवहार करते हुए भी अपनी मंजिल को न भूलें।

[२] सदैव निष्काम भाव से कर्म करने की आदत डालनेका प्रयत्न करें। निस्वार्थ भाव से कर्म करना ही निष्काम कर्म है।

[३] यम-नियम का पालन करने में पूरी २ सतर्कता रखें।

[४] धीरे २ काम क्रोध मद लोभ मोह मत्सर पर विजय पाने का निरन्तर प्रयत्न करते ही रहें।

[५] "स्वाध्यायान्मा प्रमदः के अनुसार स्वाध्याय करने में तनिक भी आलस न करें और घण्टे आध घंटे का समय निकाल कर नियम से अपने धर्मग्रन्थ का, ध्यान और श्रद्धा से अध्ययन कीजिये। आप ऐसा अवश्य कर सकते हैं यदि चाहें तो!

[६] सत्य, विद्या और धर्म की बात ग्रहण करने और असत्य, अविद्या और अधर्म की बात का त्याग करने में कभी संकोच न कर सदैव संहर्ष तत्पर रहें और दूसरों की उन्नति का भी पूरा पूरा ध्यान रखें।

(७) ज्ञानेन्द्रियों से ज्ञान प्राप्त कर कर्मेन्द्रियोंसे तदनुसार कर्म भी करें।

(८) ईश्वर पर अटल विश्वास रख उस जैसे गुण कर्म स्वभाव बनाने का पूरा २ प्रयत्न करें।

(९) अच्छाई में सबके साथ रहें और बुरी बातों में अपने बाप पिता का भी साथ न दें यह जरूरी नहीं कि रवड़ी की लड़की भी रवड़ी ही बने। निर्भीक होकर सत्पथ को पहिचानना चाहिये।

यदि इस लेख पर एकाग्र भाव से बारम्बार विचार कर तदनुसार अपनी कार्य प्रणाली का सुधार कर लें तो 1 माह में ही हम क्या से क्या हो सकते है। और हमारी जीवन यात्रा सरल, सुखद और शांत हो सकती है।

ज्योति की चाह है

अँधेरा बहुत, ज्योति की चाह है।
छिपा सूर्य को खीच—
गहरे तिमिर ने!
नखत जगमगाते
निशा के शिविर में!
मगर दीप इतने नहीं पी सके तम .
बड़ी बेबसी, खो गई राह है।
गुफा कालिमा की
निगलती चराचर
मरण सांस यह
कांपती-सी बराबर!
गगन पर विरह-मालिका तिलमिलाती—
घुटन बढ़ रही, मृत्यु का दाह है!
जगी आंख, सपने
बहुत रंग दिखाते।
खुली आंख सपने
स्वयं टूट जाते।
बुझी कल्पना अब हुई दृष्टि धूमिल—
बड़े रंग, खाका हुआ स्याह है।
अंधेरा बहुत, ज्योति की चाह है।

—कुमारी रमा सिंह

हंसिए नहीं!

रामू [illegible] ने के सिर पर मारकर क्यों तोड़ा?"

"गलती हो गई, पिता जी, पर मेरा इरादा न था।"

"क्या मुन्ने का सिर तोड़ने का?"

"जी नहीं, फूलदान तोड़ने का!"

चित्रकार समालोचक

चित्रकार—मैं अपने इस बढ़िया चित्र को किसी संस्था को देना चाहता हूँ!"

समालोचक—"भाई, इसे अन्धों के स्कूल को दे दीजिये!"

उसी का नतीजा

हरि देर से स्कूल से आया। उसे देख कर माँ ने पूछा—"बेटा, स्कूल बन्द होने के बाद तुम्हें इतनी देर से छुट्टी क्यों मिली?

"माँ, बात यह थी, कि मास्टर ने हम लोगों को आलस्य के नतीजे पर रचना लिखने को कहा था।"

"फिर?"

"कुछ नहीं, मैंने केवल मास्टर के हाथ में कोरा कागज थमा दिया था। यह उसी का नतीजा था।'

पहरेदार

एक बार मेरे पति को कुछ दिनों के लिए बाहर जाना पड़ा। जाते समय उन्होंने अपने पंच वर्षीय पुत्र से कहा, 'सुरेश, अब तुम्हीं सिर्फ घर के एक आदमी हो। अपनी मां का अच्छी तरह ख्याल रखना।'

उस रात पहले तो सुरेश जी सोने के लिए ही तैयार नहीं हुए। परन्तु आखिरकार वह किसी तरह से सोया और मैंने शांति की सांस ली। परन्तु मुझे क्या पता था कि वह अपनी जिम्मेवारी को इतनी गम्भीरता से लेगा।

मेरे कमरे से निकलते ही सुरेश ने कपड़े पहने और खेलने वाली पिस्तौल निकाल कर सारी रात बाहर बैठकर पहरा दिया। जब मैं सुबह सोकर निकली तो क्या देखती हूँ वह पिस्तौल हाथ में लिए दहलीज पर सो गया हुआ है।

जवानी वह है!

—श्री विनोद कानपुर—

युग की धारा के साथ जमाना बहता,
जो दे उसकी गति मोड़, जवानी वह है!
सागर से उठकर बूंद गगन पर छाई,
अपने गौरव के वैभव पर इतराई,
सोचा, टकराकर चूर करूं हिमगिरि को,
पर छिन्न-भिन्न हो स्वयं धरा पर आई;
चट्टानों के आगे दुनिया झुकती है,
जो उन्हें बहा ले जाय, हिमानी वह है।
जानेवाले पद-चिन्ह छोड़ जाते हैं,
गानेवाले भी गीत नए गाते हैं;
मिट जाते हैं पद चिन्ह सलिल-रेखा से,
गीतों के स्वर कब जीवित रह पाते हैं?
है क्रूर समय की रेगिस्तानी आंधी,
जो उससे आगे बढ़े, रवानी वह है!
कहनेवाले ने अपनी बात सुनाई,
सुननेवाले ने सुनी और बिसराई;
कहने-सुनने का यह क्रम बहुत पुराना,
है अधर-श्रवण के बीच भयंकर खाई,
पर युग-युग तक रवि, शशि,तारे,भू-अम्बर—
जिसको दुहराते रहे, कहानी वह है!

प्रहरी!

[कवि—आर्य्य भिक्षु सि० शास्त्री]

अमर भूमि के पावन प्रहरी, पथ यह विकट तुम्हारा है,
बढ़े चलो आंधी के लहरें, किंचित् निकट किनारा है,

तना हुआ जग के वितान पर, आज अविद्या का भ्रम जाल,
झुक पाश से कर दो जग को, छूटे वृद्ध युवा आबाल,
आज ज्वालामुख उलट जाय वह, पलट जाय फिर से पाताल,
जो जग को आंखों में भरते, पेंग रहा नित विष के व्याल,

अपि संस्कृति का द्वार खोल दो, केवल यही सहारा है।
विजय खोल दो तुम अवनी पर, सब जग आर्य्य तुम्हारा है।।

तुम्हें ज्ञान देना संसृति में, जग को कर देना है खास,
अभी धरा पर बढ़ चलना है, कर न सकोगे तुम विश्राम,
जहां सिसक कर सिमट चुका है, वसुधा पर मानव का नाम,
वहां शान्ति सुचिता पहुंचा दें, जहाँ नित्य होते संग्राम,

जागो अभी भारत के नव गण, सब ने तुम्हें पुकारा है।
भेंट चढ़ा दो आत्म भाव की जग ने हाथ पसारा है।।

हिंसा छद्म भरे संस्कृति में, मानव का होता है ह्रास,
मत वादों के काल चक्र में पिसता है जीवन विश्वास,
निकल पड़ो विस्तृत प्राङ्गण में दूर करो दानव अभिमान,
आंधी का सहयोग न हो, या करता हो कोई अपमान,

सँभलो वीरो, दानवता ने आज तुम्हें ललकारा है।
अमर भूमि के पावन प्रहरी, पथ यह विकट तुम्हारा है।।

मिट्टी के तेल से रेडियो चलाइए

अखिल भारतीय रेडियो के गवेषणा विभाग ने अब ऐसा तरीका ढूंढ निकाला है जिसके द्वारा रेडियो मिट्टी के तेल के लैम्प से चलाया जा सकेगा। आशा है कि इस नयी खोज के परिणाम स्वरूप रेडियो का उपयोग बढ़ जायगा और विशेष कर गाँवों में, जहाँ बिजली नहीं है, लोग इस खोज की सहायता से रेडियो सुन सकेंगे।

यह खोज अखिल भारतीय रेडियो के गवेषणा विभाग के श्रीराम यादव ने की है। उन्होंने भौतिक विज्ञान के इस प्रसिद्ध सिद्धान्त का प्रयोग किया है कि यदि दो असम धातुओं के दो जोड़ विभिन्न तापमानों पर रखे जाएं तो एक विद्युत धारा की उत्पत्ति होती है। विद्युत धारा कितनी शक्ति-शालिनी होगी, यह प्रयोग में लाये गये धातुओं की किस्म और दोनों जोड़ों के बीच तापमान के अन्तर पर निर्भर होता है। धातु के इन जोड़ों को वैज्ञानिक भाषा में 'थर्मो-कपल' कहा जाता है।

श्री यादव ने यह 'थर्मो-कपल' सुर्मे के एक मिश्रण [अलाय] और यूरेका के इस्तेमाल से बनाये हैं। इन थर्मो-कपलों से बिजली तैयार करने के लिए जो 'जनरेटर' बनते हैं, वे काफी समय तक काम दे सकते हैं। अनुमान है कि यदि एक रेडियो रोजाना तीन घंटे चलाया जाए, तो इन जेनेरेटरों से बिजली पैदा करने में तीन रुपये मासिक का खर्च बैठेगा।

पाकेट रेडियो

इंजीनियरों ने एक बहुत ही छोटा रेडियो रिसीवर बनाया है जिसको श्रवण सहायक यन्त्र की तरह पहना जा सकता है। डब्ल्यू० एफ० चाड तथा मिस्टर जे० जे० लुम ने इस रेडियो को बनाया है। यह रेडियो निम्नतम संख्या की फ्लैश लाइट बैटरियों से चलता है।

यह रेडियो नागरिक सुरक्षा के कामों के लिए बनाया गया है। इस रेडियो श्रवण सहायक यन्त्र जैसा इयर फोन लगा हुआ है और इसका कुल वजन ८ औंस है। इस रेडियो को कमीज की जेब में आसानी से रख लिया जा सकता है। बिना बैटरी के बदले ही यह रेडियो महीनों तक चल सकता है।

भक्ति के प्रकार

(पृष्ठ ४ का शेष)

कि प्रभु आज्ञा है। अब तो भक्त संसार का उपकार करते-करते इतना अभ्यस्त हो गया है कि संसार को प्रभु का पुत्र मानकर उसकी सेवा करना स्वभाव बन गया है। भक्त अब इसके विपरीत विचार भी नहीं सकता। भक्त की अवस्था वह सब से ऊंची अवस्था है, जब कि वह अपने उपास्य देव प्रभु की भाँति अपने किसी कर्म के फल की इच्छा न रखते हुए स्वभाव से ही दूसरों के कल्याण के लिए ही जीवित है।

आर्यसमाज क्या कर रहा है

[श्री राजेन्द्रशरण बी- ए० [प्रथम वर्ष] 'सद्धान्तरत्न]

आर्य समाज का द्वार सर्वदा से सब मनुष्यों के लिए समान रूप से खुला है। आर्य समाज एक असाम्प्रदायिक सार्वभौम संगठन है प्रत्येक मनुष्य कुछ नियमों के पालन कर लेने के बाद इसका सदस्य बन सकता है इस प्रकार आर्य समाज समाज में साम्प्रदायिकता के भाव को मिटाकर असाम्प्रदायिकता का प्रचार कर रहा है।

आर्य समाज का जन्म ही मनुष्य की सेवा के लिए हुआ है इस हेतु तब से ही आर्य समाज समाज में कुरीतियों को दूर कर रहा है। अन्ध-विश्वास, बाल-विवाह प्रथा को दूर कर रहा है और सत्य का डंका बजा रहा है जैसा कि आर्य समाज के नियमों में भी है कि आर्य समाज झूठे हठ बंधनों को नहीं मानता।

वह समाज में प्रचार कर रहा है कि "ईश्वर सच्चिदानन्द, निराकार, सर्व शक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्व-व्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है उसी की उपासना करनी योग्य है।" इस प्रकार आर्य समाज बतला रहा है कि मनुष्यों को झूठे बहकावे में न आकर स्थिर चित्त एक परमेश्वर की उपासना करनी चाहिये।

आर्य समाज वेद को प्रधानता देता रहा है जैसा कि इसके नियम से स्पष्ट है कि "वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना, सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

आर्यसमाज के आधीन लगभग ४० कालेज समस्त भारत में २५० हाई स्कूल, १०५ अंग्रेजी मिडिल स्कूल प्राइमरी स्कूल एवं १३० रात्रि स्कूल लगभग ६०गुरुकुल १० कन्या गुरुकुल २ कन्या कालेज तथा २ हाई स्कूल इस प्रकार मिलकर लगभग ९०० स्कूल हैं जिनमें लगभग ६६०६० विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं इनमें लगभग ३७८० अध्यापक आर्य समाज की लगभग ३०० संस्कृत पाठशालाएं एवं ७०० कन्या पाठशालाएं भी हैं। आर्य समाज अनाथों की भी रक्षा कर रहा है। आर्य समाज विद्यार्थियों को प्राचीन वैदिक प्रणाली से भी शिक्षा दे रहा है जिससे उच्च शिक्षा तथा भारत की प्राचीनता का ज्ञान हो रहा है।

अछूतोद्धार का कार्य

देश के सभी नेता और विद्वान् अछूतोद्धार के पक्ष में हैं परन्तु सबसे प्रथम आर्य समाज ने ही इस ओर ध्यान दिया और अछूतों को समान अधिकार दिलाने का प्रयत्न किया। स्वामी दयानन्द ने उनको आर्य बनाया और समान अधिकार दिये इसको देख कर और हिन्दुओं ने भी सबक सीखा तभी से आर्य समाज अपना धर्म समझकर आजतक इस कार्य को कर रहा है आर्य समाज ने बतलाया कि अछूतपन हिन्दू धर्म के शुभ मस्तक पर कलंक का टीका है और वह जितनी जल्दी हटाया जा सके अच्छा है उसके बाद में महात्मा गांधी ने भी इस ओर ध्यान दिया और तब से यह एक मुख्य प्रश्न बन गया परन्तु इस कलंक को हटाने का श्रेय सबसे प्रथम महात्मा गांधी को नहीं बल्कि ऋषि दयानन्द का हैं जिन्होंने सबसे प्रथम अज्ञान के अन्धकार में पड़ी हुई हिन्दू जाति के समक्ष इस प्रश्न को ला रक्खा और डंके की चोट पर कह दिया कि

मनुज मनुज सब एक हैं उनमें कोई न भेद
ईश पुत्र सम हैं सभी यही बखाने वेद

आर्यसमाज अछूतोद्धार की ओर प्रयत्न कर रहा है आर्यसमाज ने अपने वार्षिक उत्सवों पर अछूतोद्धार की कान्फ्रेंस संगठित की निरन्तर उत्सवों और सभाओं पर व्याख्यान दिलाये अनेकों पुस्तकें आर्यसमाज ने अछूतोद्धार के महत्व पर छपवाकर वितरण करवाईं अछूत बालकों को विद्यालयों में भर्ती कर संध्या हवन करना सिखलाने का प्रयत्न कर रहा है।

पतितों की शुद्धि

कुछ मनुष्य भूल से, अज्ञान से लालच अथवा प्रलोभन से अपने मार्ग से पतित हो जाते हैं ऐसे पतित जनों को ठीक मार्ग पर लाना ही शुद्धि कहलाती है प्रत्येक नेत्रो वाले का कर्तव्य है कि कुएं में गिरे हुए व्यक्ति को निकाले और उसे ठीक मार्ग पर लावे उससे अन्धे का भला होता है और आँखों वाले को पुण्य होता है इसी प्रकार जो मनुष्य वैदिक धर्म से पतित हो चुके हैं उनको फिर से शुद्ध करके वैदिक धर्म में लाना आर्यसमाज का धर्म है ईश्वर द्वारा रचित वेद में लिखा है जिसमें ऋग्वेद भगवान ने आज्ञा दी है कि 'अवहित' देवा उन्नयथा पुनः 'अर्थात् विद्वान् लोगों तुम पतितों को उठाओ इस सिद्धान्तको आर्यसमाज हृदय में रखकर शुद्धिकरने को हर समय तैयार है और निरंतर कार्य कर रहा है।

विधवाओं की समस्या का कार्य

भारत वर्ष में और विशेषकर हिन्दू जाति में विधवाओं की समस्या बड़ी उग्ररूप धारण कर रही है संसार में महान् दुखों में से विधवापन का दुख स्त्रियों को सबसे भारी है जिस अभागिनी पत्नी का पति मर जाता है उस असहाय अबला पर क्या बीतती है उसको उसके सिवाय और कोई नहीं जान सकता मनुष्य के मरने से उसके भाई और बन्धु को भी दुख होता है परन्तु वह थोड़े समय में मिट जाता है परन्तु स्त्री को जीवन भर उसका रोना रोना पड़ता है आर्य समाज ने इस ओर ध्यान दिया और कहाकि हम इन विधवाओं के साथ अन्याय न होने देंगे इस प्रकार आर्य-समाज इस ओर निरन्तर प्रयत्न कर रहा है आर्य समाज बहुत से विधवा-श्रमों का भी निर्माण कर रहा है।

ईसाई लोग अपने फूटे ढोल को बार बार जोड़कर बजा रहे हैं परन्तु आर्यसमाज सदैव उसमें बड़ा सा छेद कर देता है और दावा कर रहा है कि झूठा ढोल न बजने देंगे तुम भाग जाओ तुम्हारी दाल यहाँ पर न डलेगी यह सच्चा देश आर्य्यावर्त्त है यहां के मनुष्य सच्चाई को मानेंगे वेदों की उपासना करेंगे तुम झूठ का प्रचार मत करो हम तुम्हारा भंडा फोड़ देंगे ऐसे समय में जब सारी हिन्दू जाति सोई हुई है आर्य समाज हिन्दू धर्म की रक्षा कर रहा है और ईसाइयों को चुनौती देता है कि वे आय शास्त्रार्थ करें। न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टि करता है उसी की उपासना करना योग्य है इस प्रकार आर्य समाज बतला रहा है कि मनुष्यों को झूठे बहकावों मे न आकर स्थिर चित्त एक परमेश्वर की उपासना करनी चाहिये।

आर्यसमाज वेद को प्रधानता देता रहा है जैसा कि इसके नियम से स्पष्ट है कि "वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक वेद का पढ़ना पढ़ाना, और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम-धर्म है।

शिक्षा का कार्य

आर्यसमाज के अधीन लगभग ४० कालिज समस्त भारत में २५० हाई स्कूल, १०५ अँग्रेजी मिडिल स्कूल, प्राइमरी स्कूल एवं १३० रात्रि स्कूल लगभग ६०, गुरुकुल १०

इस प्रकार आर्यसमाज समाज में से कुरीतियों को दूर कर रहा है सच्चाई का प्रचार कर रहा है अछूतों तथा विधवाओं की सहायता कर रहा है।

हम सब तथा हिन्दू जाति तथा भारत देश आर्य समाज के ऋणी है।

क्रेमलिन म्यूजियम म

नेहरू जी क्रेमलिन म्यूजियम में भी गय। वहाँ पर एकत्रित जन समुदाय द्वारा उनके वागत का दृश्य।

रूसी बच्चे नेहरू जी के साथ

सोवियत पायोनियर बालसघ बच्च हवाई अड्डु पर 'चचा नहरू' के आगमन पर उनका स्वागत करते हुये।

मास्को में नेहरू जी का स्वागत

चित्र मे मास्को के नागरिक भारत के प्रधान मन्त्री का स्वागत करते दिखाई दे रहे हैं।

बाबूराम 'भारती' द्वारा भगवानदीन आर्य भास्कर प्रेस मीराबाई मार्ग लखनऊ से मुद्रित तथा प्रकाशित।

आर्यसमाज के समस्त पत्रों में सबसे अधिक छपने वाला आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र—

लखनऊ—रविवार १० जुलाई तदनुसार श्रावण कृष्ण ५ सम्वत् २०१२ सौर २६ अषाढ़ दयानन्दाब्द १३० सृष्टि सम्वत् १९७२९४९०५

लखनऊ, रविवार १० जुलाई १९५५

मूल व्याधि !

इस समय संसार में समस्याओं का साम्राज्य छाया हुवा है। सभी कष्टों में डूबे दिन रात चिंता करते हुए अपनी गाड़ी चला रहे हैं किन्तु निरन्तर प्रयत्नों के बाद भी स्थिति सुलझती हुयी प्रतीत नहीं हो रही! इसका कारण भले ही आप कुछ भी सोचें किन्तु तथ्य यह है कि हमने कभी मूल व्याधि को जानने का यत्न ही नहीं किया!

यदि जानने का यत्न भी किया तो जान नहीं पाए, किसी ने अर्थाभाव, किसी ने साधनाभाव और किसी ने ज्ञानाभाव समझा, किन्तु जहां तक हम सोच पाए हैं इन कष्टों का आधार विचार शक्ति का अभाव है।

संसार के राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक या व्यक्तिगत क्षेत्र में आज जो विह्वलता दृष्टिगोचर होती है, या संस्थाओं के आंदोलनों को जो असफलता का मुख देखना पड़ता है या जीवन संग्राम में जब आशा के स्थान पर निराशा बिना आमत्रण के ही सहगामिनी बन जाती है तो उसका एक मात्र कारण विचार शक्ति का अभाव ही होता है।

वैसे इस बात से तो कोई भी असहमत नहीं हो सकता कि विचारों के बल पर संसार संचालित है। विचार जीवन हैं, विचार मृत्यु हैं। मनुष्य की विचार तरंगें उसे स्वर्ग—नरक, सुख दुःख का बोध कराती रहती हैं, विचार लक्ष्य सिद्धि के प्रेरक हैं: जीवन के प्राण हैं, गति हैं और हैं सृष्टि स्थिति के नियन्ता, अतः ऐसे पूर्ण बल की उपेक्षा कर मनुष्य कैसे अपने को पूर्ण अनुभव कर सकता है, यही विचारणीय है।

अशांति की गहन तमिस्रा में जब निराशा के अंधड़ ने सभी कुछ आलोड़ित कर रक्खा हो तब विचार-शक्ति का, चिन्तन का सहारा लेकर हम निरंतर प्रगति पथ पर चलने का विश्वास रख सकते हैं।

इसी को हम स्वाध्याय कह सकते हैं। "स्वाध्यायान्मा प्रमदः" का आदर्श वाक्य आदेश रूप में हमारे कथन की पुष्टि कर रहा है। निरंतर ग्रंथों का अध्ययन 'स्वाध्याय' नहीं है, अपितु स्वाध्याय है मनन-चिंतन—विचार! हम अपने अंतर पर [illegible] रख देखें कि क्या हम इस ओर त[illegible] भी प्रयास करते हैं? क्या प्रतिदिन की समस्याओं के बारे में कभी हम कारण जानने हेतु चिन्तन विचार करते हैं? निष्पक्षता से सोचने पर उत्तर मिलेगा कि नहीं। और वास्तव में यही हमारे जीवन की सबसे बड़ी न्यूनता है।

प्राचीन ऋषि महर्षियों की उन्नति का और अर्वाचीन महापुरुषों के निर्माण का कारण निरंतर चिंतन-मनन और विचार ही रहा है। इसके अभाव में तो हम कुछ भी नहीं कर सकते।

[illegible] यदि उन्नति और निर्माण इष्ट है तो अपने दैनिक जीवन का कुछ भाग चिन्तन-मनन के लिए अवश्य [illegible] एकान्त में बैठ एकाग्रता से, अपना, अपने आस पास की समस्याओं पर विचार कीजिए जीवन में कष्टों के कारण को खोजने का प्रयास कीजिए। और सोचिए कि आप कैसे अपनी समस्याओं को हल कर सकते हैं?

हम आप को विश्वास दिलाते हैं कि यदि आप आधा घंटा भी प्रतिदिन इस के लिए प्रदान करेंगे, तो आप के जीवन में अभिनव ज्ञान-प्रकाश का पदार्पण हो आप के अंतर का अंधकार दूर हो नवीन प्रकाश प्रभा से भर जायगा। मूल व्याधि को जान जब आप उसे हटाने में लगेंगे तो असफलता आप को कभी प्राप्त होगी ही नहीं।

एक माह बीत गया........

एक माह हुए हमने आर्य जगत से कहा था कि यदि हमें प्रति माह १०) मासिक भेजने वाले २०० व्यक्ति मिल जाएं तो हमारा आर्थिक संकट दूर हो सकता है। पर अब तक केवल ५० के लगभग व्यक्तियों या समाजों ने हमारी प्रार्थना को स्वीकार किया है। इनमें से भी बहुत से भाई नियमित रूप से नहीं भेज रहे।

मैं प्रार्थना करता हूं कि जिन्होंने वचन दिया है वे जुलाई का धन तुरन्त भेजें और सारे प्रान्त की समाजों व आर्य भाइयों से आग्रह करता हूं कि तुरन्त यह २०० नाम पूरे करें। सारी समाजों को पत्र भेजे गए, पर बहुत कम ने प्रतिज्ञा पत्र भरकर भेजे.........क्या मैं आशा करूं कि यह कमी शीघ्र दूर की जाएगी।

विनीत—

कालीचरण आर्य,

मंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश।

अब भी निराशा क्यों ?

आज तीन मास से भी अधिक दैनिक को प्रकाशित होते हो गए, वह जिस सफलता से चला है, इसकी स्वयं हमें भी आशा न थी। बहुतों का तो यह भी कहना था कि दैनिक किसी भी अवस्था में ८ दिन से अधिक नहीं चलेगा किन्तु वह चल रहा है और आशा से अधिक सफलता भी प्राप्त कर रहा है, फिर भी एक जलता प्रश्न चिन्ह आज हमें व्यथित कर रहा है कि इतना होने पर भी आज निराशा क्यों ?

दैनिक के चलने से यदि दुःख होना चाहिए था तो पौराणिकों को होता, ईसाइयों मुसलमानों को होता, विरोधी विचार धारा वाले व्यक्तियों को होता जिनके विरुद्ध पूरे बल से यह लगा है। किन्तु हमें यह जान अत्यन्त कष्ट होता है कि कुछ अपने आर्य भाई भी अपने पूरे बल से, दैनिक मित्र का सीधे प्रकार से या घुमा फिरा कर विरोध कर रहे हैं। यह हमारे लिए अत्यन्त लज्जा की बात है। हम जानते हैं कि कैसी परिस्थिति में 'मित्र' निकला, कैसे चल रहा है, और कितनी कठिनाइयाँ मार्ग में पड़ रही हैं पर फिर भी हमें एक ही बात प्रेरणा दे रही है कि "आर्य समाज का गौरव, मान, कार्य आगे बढ़ रहा है।" आर्य समाज की विचारधारा राष्ट्र में फैल रही है।

हम नहीं सोचपाते कि क्या आज हमारा इतना अधिक पतन हो चुका है, कि व्यक्तिगत मत भेदों के कारण हम आर्य समाज की उन्नति के मार्ग में रोड़ा बन कर खड़े हो जाएंगे? संसार को एक झंडे के नीचे लाने वाली संस्था के सदस्यों के लिए ऐसी विचार धारा अपनाना कितनी भयंकर विडम्बना है? हम चाहते हैं कि जो बातें हमारे कानों में पड़ी हैं वह असत्य हों, किन्तु यदि वह सत्य हैं तो इस से बढ़ कर चिन्ता की बात और क्या होगी?

हम ने सभी से प्रार्थना की थी कि पिछली बातें भूल कर, आपस के मतभेद स्वाहा कर, एक हो आर्य समाज के गौरव प्रतीक 'दैनिक आर्यमित्र" को उन्नत करने में हम लगें। यह आर्य समाज के बल गौरव को सहस्र गुना बढ़ा कर लक्ष्य पूर्ति में सहायक होगा, और आज महर्षि के महान संकल्प पूर्ति के लिए अपनी यह प्रार्थना हम पुन: दुहराते हैं! हम चाहते हैं कि पूरा आर्य जगत् अपना पूरा बल दैनिक आर्यमित्र को [illegible] लगा दे! अब प्रश्न यह नहीं है कि "मित्र" चले, अपितु प्रश्न यह है कि

[शेष अगले पृष्ठ पर]

[पिछले पृष्ठ का शेष]

"मित्र उन्नति करे। इस उन्नति के लिए, इसे हिन्दुस्तान, नवभारत टाइम्स से भी अच्छेरूप में निकालने के लिए हम आयजगत् मे सहयोग की प्रार्थना कर रहे हैं।

एक प्रश्न और भी हमारे सामने खडा है। वह है कुछ भाइयों का यह आग्रह कि 'आर्यमित्र' में सहायता के लिए अपीलें न की जाए। क्यों न की जाए का उत्तर यह दिया जाता है कि इस से आर्यसमाज का गौरव घटता है वैसे तो यह तर्क समझ में नही आता क्योंकि सभी संस्थाए, यहा तक की राज्य भी सहायता-दान के लिए अपीलें प्रकाशित करता है, फिर भी यदि हम उन का तर्क स्वीकार कर ही लें तो, इस का अर्थ होता है "मृत्यु"। "मृत्यु" इसलिए कि पास में धन नही। धन प्राप्त करने का दूसरा प्रकार है समाजों में घूम-घूम कर धन एकत्रित करना! किन्तु एकत्रित करने कौन जाए? क्या दो एक व्यक्तियों को छोड़ कर किसी ने भी समाजों में जाने का समय दिया! जाना पडा तो हमें स्वयं, पर क्या निरन्तर बाहर धन संग्रह के लिए घूमना हमारे लिए संभव है? आप सोचिए और बताइए हम क्या करें? यदि १० व्यक्ति आज प्रांत का एक सप्ताह के लिए भ्रमण करें तो धन के ढेर लग जाए, पर कौन जाए, इसका समाधान तो हमारे पास नहीं है।

और रह जाता है हमारे सामने केवल एक मार्ग हम उन्हें पुकारें जो 'आर्यमित्र' चलाना आर्य समाज के गौरव बल को बढाने के लिए आवश्यक समझते हों, और हमें हर्ष है कि जनता ने हमारी प्रार्थना पर ध्यान दिया है। हमारा रोम-रोम उन व्यक्तियों का ऋणी है जिन्होंने हमारी प्रार्थना को स्वीकार किया है।

हम चाहते हैं कि आर्यमित्र उन्नति करे, इस चाह को छोडने के लिए हम तैयार नहीं, भले ही कुछ व्यक्ति इसी कारण हम से रुष्ट भी हो जाए हमें चिन्ता नही, अपनी अयोग्यता भी हम जानते हैं और सदा योग्य व्यक्तियों के प्रति नत मस्तक हैं, फिर भी यदि कोई रुष्ट हो रहे तो उनसे भी हमारी प्रार्थना है कि विरोध करना है तो हमारा निजी रूप में कीजिए, कम से कम 'आर्यमित्र' का विरोध समाप्त हो जाना चाहिए।

साथ ही हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हमारा किसी के भी प्रति पक्षपात नहीं है, हमारी दृष्टि में सभी समान हैं और सब का समान आदर हम सदा करते रहे हैं और रहेंगे। किन्तु जो भी व्यक्ति 'आर्य मित्र' को गिराने का यत्न करेगा हम अपने बल भर जब तक यहा हैं इसे हानि पहुचने से बचाएंगे, इन बातों को न चाहते हुए भी लिखना पड रहा है इस आशय से कि सभी का हृदय निश्छल हो जाए और सभी पूरे बल से हमारे साथी बनें व्यक्तिगत रूप से यदि कोई नाराजगी किसी को हो तो हम उस के लिए ज्ञात अज्ञात सभी से क्षमा चाहते है।

मित्र चल रहा है और चलेगा, इस आशा से इसे अपनाइए। नन्हें बालक का पोषण आशा के साथ होता है किन्तु कौन जानता है कि वह कब समाप्त हो जाए? फिर भी क्या मा-बाप बालक के प्रति उदासीन रह सकते हैं? हम स्वय अपने लिए कितना व्यय करते हैं किन्तु कौन जानता है कि कब हमें यह धरती छोडनी पडे।

"आर्यमित्र" भी बन्द तो होगा ही—जिसका आदि है तो अन्त भी है किन्तु प्रश्न यह है कि वह एक मास में या एक वर्ष में या सौ—हजार—दस हजार लाख—कितने वर्षों में बंद हो। जितनी शक्ति आर्य जनता में होगी, जितना हमारा बल बढता जाएगा उतना ही दीर्घजीवी 'आर्य मित्र' होगा। और जितना भी वह चलेगा उतना ही आर्यसमाज का लाभ होगा। अत: यह शंका कर कि 'मित्र' चल न सकेगा, सहयोग न देना केवल "सहयोग न देने का एक बहाना है!

एक बात यह भी उठा दी जाती है कि "आर्यमित्र" अन्य पत्रों के समकक्ष नही है। ऐसे भाइयों से हमारा निवेदन है कि क्या मां अपने कुरूप, दुर्बल बच्चे को अन्य के सुन्दर बच्चों को देख उपेक्षा करती कही देखी गई है? वह तो यही चाहती है कि मेरा बच्चा भी वैसा ही सुन्दर हृष्ट पुष्ट बन जाय और इस के लिए वह यत्न भी करती है। आर्यजनता मा है, आर्यमित्र है उसका बच्चा। वह जैसा भी है मा का है। उसे हृष्ट पुष्ट बनाना भी मा पर ही निर्भर है। इसलिए आज समय की माग है कि मा बच्चे का पेट भर दे, ताकि बच्चा हृष्ट पुष्ट स्वस्थ होकर मां के सुख का कारण बने!

हम कहना चाहते हैं कि यदि आज हमारे पास पच्चीस हजार रुपया भी हो तो हम एक माह में आर्यमित्र की स्थिति भारत के अन्य प्रतिष्ठित पत्रों से अच्छी बना दें! यह कम से कम दस हजार रुपे इसके -) में ही ८ पृष्ठ हों, फिर देखें कौन ठहरता है आर्य समाज के सामने।

१० जुलाई तक दी जाने वाली सुविधाएं १५ जुलाई तक बढ़ा दी गयी हैं यदि आर्य जनता इस बीच ५००० सदस्य भी पूरे कर दे तो हम आर्यमित्र का साइज २२×३६ का कर देंगे।

छोड़िए निराशा, मिटाइए भेदभाव लगिए निर्माण में और आइए हमारे साथ! आर्यमित्र तो चलेगा ही, वह अच्छी तरह दौडे या रेंगता रहे यह आप के हाथ में है आप क्या सोचते हैं—बताइए।

और बताइए क्रियात्मक रूप में, बनाइए सदस्य और १०) मासिक भेजने वाले कुछ व्यक्ति या समाजें।

हम आशा, विश्वास और भविष्य निर्माण की कामना से महर्षि के अनुयायियों को, स्वय भूखा रहकर भी, आर्यमित्र चलाने का संकल्प धारण करने की प्रार्थना कर रहे हैं।

---

१५ जुलाई तक

आर्यमित्र पक्ष मनाएँ

देश की समस्त आर्य समाजों व आर्यमित्र के शुभ चिंतकों से हमारी सानुरोध प्रार्थना है कि वे १५ जुलाई तक पूरे बल से 'दैनिक आर्यमित्र' के सदस्य बनाने में लगें।

हमने सभी की सुविधा के लिए १५ जुलाई तक आर्यमित्र का सदस्य बनने वालों के लिए मूल्य में कमी घोषित कर दी है। वर्ष भर का २१) छ माह का ११), तीन माह का ६) शुल्क भेज आप सदस्य बन सकते हैं। इसी शुल्क में सदस्यों को साप्ताहिक भी दिया जायगा।

हम चाहते हैं कि आर्य जनता १५ जुलाई तक ५००० सदस्य पूरे करदे, हमारी इस माग के पूरे होते ही हम "आर्य मित्र" का साइज २२×३६ कर देंगे।

यदि आप चाहते हों कि पत्र उन्नति करे तो पूरा बल सदस्य बनाने में लगा दीजिए यही समय की मांग है—

विनीत—

कालीचरण आर्य

मंत्री

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश

रूस से लौटकर

दैनिक 'आर्यमित्र' के लिये पं० अलगूराय जी की शुभकामना

(हमारे संवाददाता से)

आजमगढ़। रूस से लौटने के बाद प्रसिद्ध आर्य नेता प० अलगू राय जी को प्रथम बार जब हमारे संवाददाता ने दैनिक 'आर्यमित्र' दिखाया तो उन्होंने इस की सफलता के लिये निम्न शुभ कामना प्रगट की—

"मुझे आज 'आर्यमित्र' को उसके दैनिक रूप में देखने का सौभाग्य पहले पहल मिला है। विदेश की यात्रा से लौट कर इस प्यारे पत्र को इस अनोखे रूप में देखने से मुझे विशेष प्रसन्नता हुई। विदेश यात्रा तो सुखद थी ही परन्तु यह एक और सुखद वस्तु मेरे सामने आई।

साप्ताहिक आर्यमित्र ने जनता को सत्यपथ दिखाया है। हमें सदा उससे दैवी प्रेरणा प्राप्त हुई है। आज भी वह प्रतिदिन दिव्य संदेश लेकर उभरेगा और भ्रान्ति निवारण करेगा आनन्द प्रकाश फैलायेगा। जहाँ वह निर्भीकतापूर्वक वैदिक सिद्धान्तों का प्रकाश करेगा वहाँ राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक सभी देशी या विदेशीय प्रश्नों पर निर्भीकता के साथ विचार करेगा।

ईश्वर इसे इसके नये रूप में सर्वांग सफलता प्रदान करे। दिन-बढ़े-फूले फले।"

मनोविज्ञान का स्वरूप और उसकी उपयोगिता

[लेखक—श्री शिवमूर्ति जी]

मनुष्य को समझना अत्यन्त कठिन है, बिना समझे किसी से काम लेना उससे भी कठिन। इस कठिनाई को दूर करने के लिए मनुष्य को समझने के प्रकार का नाम ही मनोविज्ञान है मन को जान उसे आवश्यकतानुसार परिवर्तित कब क्या नहीं किया जा सकता इसका निर्णय लेख को पढ़ने के बाद कीजिए। —सम्पादक

प्रत्येक युग की अपनी विशेषता होती है। यह कहा जाता है कि उन्नीसवीं सदी पदार्थ-विज्ञान की सदी थी। इसमें भौतिक विज्ञान की विशेष उन्नति हुई। मनुष्य स्वभाव से ही जिज्ञासु प्राणी है। उसकी ज्ञान-पिपासा बिना सर्वज्ञ हुए कभी भी शांत नहीं हो सकती। वह न केवल इस दृश्य, भौतिक जगत का स्वामी है वरन् अदृश्य, मानसिक संसार का भी अधिपति होना चाहता है। परन्तु इसका ज्ञान बाह्य इन्द्रियों के द्वारा कदापि सम्भव नहीं है। आन्तरिक शक्ति की शरण उसे लेनी पड़ती है। मनुष्य की यह बलवती स्पृहा, मानसिक महत्वाकांक्षा ही मनोविज्ञान को जन्म देने में समर्थ हो सकी है। इसके परिणाम स्वरूप ही हमारी बीसवीं शताब्दी मनोविज्ञान की सदी बन सकी है। मनोविज्ञान आधुनिक युग का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अध्ययन का विषय हो गया है। अतः इस समय समाज के व्यवहार सम्बन्धी कोई भी अध्ययन का ऐसा विषय नहीं जिसमें मनोवैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता न प्रतीत होती हो। साहित्य, कला, दर्शन, धर्म और समाजशास्त्र इत्यादि विषयों की तह में घुसने के लिए मनोविज्ञान की पग पग पर उपस्थिति वांछनीय है।

परिभाषा और तात्पर्य

'मनोविज्ञान' शब्द स्वयं ही अपनी परिभाषा है। मन के विज्ञान को ही मनोविज्ञान कहा जाता है। मन की क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन ही मनोविज्ञान का उद्देश्य है। परन्तु 'मन' का तात्पर्य क्या है, इसका समझना टेढ़ी खीर है। पश्चिम के विद्वान तो अभी हाल तक इसका निर्णय नहीं कर सके थे कि मन और आत्मा में क्या अन्तर है। वे मन ही को सब कुछ, यहां तक कि आत्मा भी, मान बैठे थे। अतएव वे मनोविज्ञान को ही आत्म-विद्या समझते रहे। मनोविज्ञान का अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द 'साइकालोजी' है। यह यूनान भाषा का शब्द है। इसकी उत्पत्ति 'साईके' और 'लोगस' के संयोग से हुई जिसका अर्थ क्रमशः आत्मा और विचार-विमर्श है। अतएव मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय 'आत्मा' माना जाता था। यूरोप के पुराने पंडित मनोविज्ञान को एक स्वतन्त्र विषय नहीं मानते थे। जब तक उनकी यह धारणा रही तब तक मनोविज्ञान ने कोई विशेष उन्नति नहीं की।

इस सदी के आरम्भ में इस दृष्टिकोण में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। अतः मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय आत्मा को न मानकर मन के अनुभवों को ही माना जाने लगा। मनोविज्ञान का क्षेत्र और अधिक ही बढ़ गया। इस परिभाषा के अनुसार मनोविज्ञान मन की क्रियाओं का अध्ययन बन गया। मनोविज्ञान मन की चेतन स्थिति का अध्ययन करता है। मनुष्य जब तक जागृतावस्था में रहता है, उसके मन में विभिन्न प्रकार के विचार प्रकट किया करते हैं। तरह तरह के अनुभव होते रहते हैं। इन्हीं विचारों तथा अनुभूतियों का वैज्ञानिक अध्ययन ही मनोविज्ञान कहलाता है।

मनोविज्ञान का कथन है कि हमारे अनुभव ज्ञान-गम्य हैं। अतएव इन अनुभवों का अध्ययन वैज्ञानिक रूप से किया जा सकता है। हम जिस दृष्टि से बाह्य पदार्थों को वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए देखते हैं, उसी दृष्टि से हम अपने मन की ओर देख सकते हैं। वैज्ञानिक रूप से मन का अध्ययन करने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि मन की अनेक क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त किया जाए और उसके स्वरूप का भली भांति निरूपण किया जाए। इस प्रकार का ज्ञान कठिन अवश्य है परन्तु असम्भव कदापि नहीं। अतः मनोविज्ञान का विषय-विस्तार अवश्यंभावी है।

मनोविज्ञान के विशेषज्ञों के विचार नित्य-प्रति बदल रहे हैं। अब तो मनोविज्ञान न केवल मन की चेतन क्रियाओं का अध्ययन करता है वरन वह मन के उस अन्तर्पट के विषय में भी हमारा ज्ञान बढ़ाने की चेष्टा करता है, जो चेतन मन की पहुँच के बाहर है। हमारी मानसिक क्रियाएं बाह्य क्रियाओं में भी प्रकाशित होती हैं। हम अपने मन की क्रियाओं को अपरोक्ष रूप से जानते हैं और दूसरों की अनुभूति को परोक्ष रूप से। अतएव मनोविज्ञान वह विज्ञान है जो मन की चेतन, अर्द्धचेतन तथा अचेतन क्रियाओं का अध्ययन अपरोक्ष अनुभूति द्वारा तथा मनुष्य की बाह्य क्रियाओं का निरीक्षण द्वारा करता है।

कुछ लोगों को यह विश्वास हो गया है कि भारतवर्ष मनोविज्ञान के क्षेत्र में सब से पीछे है। यह सत्य है कि इस युग में हमारी देन 'न' के बराबर है। परन्तु इसका यह कदापि अर्थ नहीं है कि हम इस विज्ञान से बिल्कुल अनभिज्ञ रहे हैं। हमारे ऋषियों ने इसके महत्व को पहचाना और दर्शन शास्त्र के अन्तर्गत ही इसको स्थान दिया। जिस प्रकार से अब तक पश्चिम के सभी ज्ञान और विज्ञान दर्शन (फिलोस्फी) के आधीन थे उसी प्रकार हमारे यहां भी दर्शन को उच्चतम श्रेणी में रखा गया है। हमारे शास्त्रों में भौतिक शास्त्र को 'अन्नमय-कोष', जीवविज्ञान को 'प्राणमय कोष', मनोविज्ञान को 'मनोमय कोष' तर्कशास्त्र को [विज्ञानमय कोष] तथा दर्शन शास्त्र को 'आनन्दमय कोष' कहा है। गीता अ० ३।४२ में इन्द्रिय, मन, बुद्धि और आत्मा के पारस्परिक भेद का स्पष्टीकरण अत्युत्तमता से किया गया है—

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥

अर्थात—इन्द्रियों को पर अर्थात श्रेष्ठ, बलवान और सूक्ष्म कहते हैं। इन्द्रियों से परे मन है। मन से परे बुद्धि है और जो बुद्धि से भी परे है वह आत्मा है। हमारे वेद, पुराण, स्मृति, रामायण तथा महाभारत और षड्दर्शन—विशेष कर पातञ्जल योग दर्शन—में मनोविज्ञान के बीज प्रच्छन्न रूप में उपस्थित हैं। हमारा परम कर्तव्य है कि उस बीज को मनोविज्ञान रूपी वृक्ष का आधुनिक रूप दें। महायोगी श्री अरविन्द ने तो यह सिद्ध कर दिखलाया कि भारतीय मनोविज्ञान मन की कोई कोरी कल्पना नहीं वरन् जीवन का एक भाग है।

मनोविज्ञान की उपयोगिता

१—आत्मज्ञान में उपयोगिता—

मनुष्य का स्वभाव समझने के लिए मनोविज्ञान का अध्ययन परम आवश्यक है। मनोविज्ञान के अध्ययन द्वारा हम अपने आप तथा दूसरों को समझने लगते हैं। मनुष्य के अध्ययन का सबसे महत्व पूर्ण विषय मनुष्य का स्वभाव ही है। आधुनिक काल में जितना अधिक हमारा ज्ञान बाह्य संसार के विषय में बढ़ गया है, अपने स्वभाव में नहीं बढ़ा है। पदार्थ विज्ञान ने अब तक बाह्य पदार्थों का ज्ञान बढ़ाया है किन्तु आत्मा का ज्ञान नहीं बढ़ाया। आत्मज्ञान के लिए मनोविज्ञान का अध्ययन परम आवश्यक है।

कभी कभी कोई बुरा विचार हमारे मन में बार बार आता है और उसे भुलाने की पूरी चेष्टा करने पर भी हम उसे मन से निकाल नहीं सकते। इस प्रकार की समस्याओं का हल करने के लिए मनोविज्ञान का अध्ययन आवश्यक है।

मनोविज्ञान का अध्ययन नयी बातों को सीखने का सुगम उपाय बताता है। हमारे पढ़ने-लिखने के संस्कार किस तरह स्थायी बनाये जा सकते हैं तथा हम अपने पुराने अनुभव से किस तरह से अधिक लाभ उठा सकते हैं, यह शिक्षा भी हमें मनोविज्ञान से मिलती है।

मनोविज्ञान मन को वश में करने का उपाय बताता है। मन को वश में करने से संसार के कार्य हम सफलता से कर सकते हैं। अपना जीवन सफल बनाने के लिए मन को वश में करना आवश्यक है। मनोविज्ञान यह बताता है कि हम मन से आध्यात्मिक लाभ किस प्रकार उठा सकते हैं।

मनोविज्ञान मनुष्य के चरित्र निर्माण में सहायक होता है। मनोविज्ञान का ज्ञान प्राप्त करके हम उसमें प्र[illegible] वैज्ञानिक मार्ग से चलकर अपना [illegible] सुदृढ़ बना सकते हैं तथा अपने [illegible] पतन से बचा सकते हैं।

२—दूसरों को समझने में उपयोगिता—

मनोविज्ञान का ज्ञान न रहने से हम कितनी ही बार दूसरों से उचित व्यवहार करने में भूल करते हैं। कितने ही लोग अपने किसी काम के हेतु को इतना छिपाये रखते हैं कि उनके साधारण व्यवहार का अर्थ लगाने में हमें धोखा हो जाता है। इस तरह कितने ही सीधे-सादे लोग चालाक लोगों के चंगुल में फँस जाते हैं। कितने ही भोले लोगों का इस के चापलूसों ने नाश कर डाला है। मनुष्य के छिपे हुए हेतु को समझने में मनोविज्ञान बहुत सहायता पहुँचाता है।

मनोविज्ञान का अध्ययन समाज-सुधारक को अपने काम में कुशल बनाता है; राजनीतिज्ञ को व्यवहार में कुशलता सिखाता है। किसी राजनीतिज्ञ का दूसरे राजनीतिज्ञों के मन की अप्रकाशित बात समझना आवश्यक है। प्रत्येक राजनीतिज्ञ अपने मन की बात को गुप्त रखता है और दूसरे के मन की बात को जानने की कोशिश करता है। इसी तरह वह अपने वास्तविक हेतु को जितना अधिक दूसरों से छिपाये रख सकता है, उतना ही चतुर समझा जाता है। इस प्रकार के कार्य करने के लिए मनोविज्ञान का अध्ययन परम आवश्यक है।

मनोविज्ञान का अध्ययन बालकों के लालन पालन और उनकी शिक्षा में बड़ा लाभकारी सिद्ध हुआ है। बाल मनोविज्ञान और शिक्षा मनोविज्ञान की उत्पत्ति तथा प्रचार मनोविज्ञान की मौलिकता को सिद्ध करते हैं। आजकल प्रत्येक शिक्षित माता के लिए बाल मनोविज्ञान का ज्ञान आवश्यक समझा जाता है।

शिक्षा-विज्ञान के विकास में मनोविज्ञान की ही प्रधानता है। शिक्षक जब तक बालक के स्वभाव का अध्ययन भली भांति नहीं करता, उनकी रुचियों को नहीं जानता, तब तक अपने पाठ्य विषय को रोचक नहीं बना सकता। जिस विषय में बालकों की रुचि नहीं होती, वे उस पर ध्यान नहीं लगा सकते। ऐसे विषय को स्मरण करने में उन्हें कठिनाई होती है।

(शेष पृष्ठ ११ पर)

रामाधार का प्रण

[लेखक—श्री रामचन्द्र जी]

उस दिन बी० ए० का परीक्षा-फल घोषित होने वाला था। यूनिवर्सिटी के मैदान में भारी भीड़ जमा थी। कुछ लड़के परीक्षा विभाग के सामने बरामदे में डटे हुए थे। दफ्तर के बंद दरवाजों की खुलने की आहट आते ही बरामदे में खड़े लड़के किवाड़ों के पास जमा हो जाते। परंतु अन्दर से परीक्षाफल के स्थान पर निकलता केवल चपरासी। लड़के उसे ही घेर लेते और परीक्षाफल आने के बारे में प्रश्नों की झड़ी लगा देते।

कुछ लड़के दफ्तर के सामने घास पर बैठे हुए थे—दो, तीन, चार और कहीं कहीं दर्जन की टोलियों में। [illegible] वे तरह तरह की बातें करते [illegible] थे, तथापि उनका ध्यान बरामदे की तरफ लगा हुआ था। ज्यों ज्यों देर हो रही थी, लड़के अधीर होते जा रहे थे। उधर साइकिलों पर और लड़के बरामदे में आते जा रहे थे।

इस हंगामे में एक लड़का अलग बैठा हुआ यह सब देख रहा था। करक्राइट बदन; काले घुंघराले बाल, साधारण सी एक पैंट और कमीज़ पहने, चश्मा लगाये वह एक-ओर एक टक देख रहा था जैसे दूरागत भविष्य अस्पष्ट हो और वह उसे आंखें गड़ा गड़ा कर कुछ न कुछ देख लेना चाहता हो।

'हलो रामाधार शर्मा! आप अकेले यहाँ कैसे बैठे हो?' पीछे से किसी की आवाज आने पर जैसे उसकी तंद्रा टूटी और "हलो हांडा"! कहकर उसने पीछे को मुंह घुमाया।

"सभी लोग तो वहाँ नतीजे की इन्तजार में जमा हैं, और आप यहाँ बैठे बैठे सो रहे हैं," हांडा ने कहा।

"शर्मा जी, अगर ऐसा ही है तब तो हमें घर चला जाना चाहिए और अपने फेल होने की सूचना दे देनी चाहिए।"

"नहीं भाई ऐसी कोई बात नहीं। मैं कौन सा तीरंदाज था। आप तो मुझसे अच्छे चलते थे।"

"वाह वाह शर्मा जी क्या कहने। सारा साल तो जी जान लड़ा दी आपने, और अब यह कहते हो। हम तो प्रोफेसर के बाद आप ही को सबसे योग्य मानते हैं।"

"भाई हांडा, आप भी क्या बहकी बहकी बातें करते हैं।"

"अच्छा छोड़ो इस पुराने पचड़े को। चलो हम भी वहाँ चलें।"

"जब नतीजा निकलना ही है, तब इस तरह वहाँ जाकर भीड़ भड़क्का करने से क्या फायदा? जल्दी करने वालों को देख लेने दो नतीजा। हम [illegible]द ही में देख लेंगे।"

"आप ही इतना सब्र कर सकते हैं, शर्मा जी। आपको सब्र हो भी क्यों न? आप जानते हैं कि जरूर निकल जाऊंगा, अपने पेट में तो उठा-धरी पड़ी है, न जाने क्या हो?" कहकर हांडा बरामदे की ओर चला।

उधर चपरासी ने नतीजे के कागज चिपके हुए बोर्ड को बाहर निकाला। लड़के टूट पड़े, चपरासी के बहुतेरा सम्भालने पर भी बोर्ड गिर गया। एक के ऊपर एक लड़का हो गया। बड़ी मुश्किल से यह बोर्ड और दूसरा बोर्ड बाहर रक्खा जा सका।

हांडा झपट कर बरामदे में जा पहुंचा उसने देखा, रामाधार शर्मा ने इस साल यूनिवर्सिटी में टाप किया था, जल्दी में उसने अपना नतीजा भी देखा। वह भी निकल गया था।

'हलो शर्मा, यू हैव टाप्ड दिस इयर," हांडा वहीं से चिल्लाया और दौड़ रामाधार के पास पहुंचा।

साधना की मां ने पूछा।

"हां बहिन, भगवान की दया हो गयी जो इसकी दिन रात की मेहनत सफल हुई और वह यूनिवर्सिटी में अव्वल रहा, वरना इस विधवा में इतनी ताकत कहाँ थी" रामाधार की माँ बोली।

"बड़ा अच्छा, बड़ा अच्छा। ईश्वर इसे इसी तरह आगे बढ़ाए। मैं कहती थी न, मेहनत कभी बेकार नहीं जाती। रात को अलवार के दफ्तर में आँखें फोड़ना और दिन भर पढ़ना। कितनी मेहनत की है रामू ने। भगवान सब देखता है। उसके यहाँ देर है, अन्धेर नहीं," साधना की माँ ने कहा।

'तुम्हारी साधना भी तो कम मेहनत नहीं करती। वह भी तो इस साल अपनी कक्षा में अव्वल रही थी।'

'बहिन यह सब भी तुम्हारे रामू

कहानी-कुञ्ज

की कृपा है। पिछली भैयादूज पर जब से साधना ने रामू को टीका किया था, तभी से रामू उसे छोटी बहिन मानने लगा है। वही इसे जब तब कुछ बता देता था,' कह कर साधना की माँ ने साधना को देखने को गरदन घुमायी। साधना गायब थी और उधर रामाधार को बधाई देकर वह उसे मिठाई खाने को झगड़ रही थी।

'अगले साल साधना किस कक्षा में जाएगी?' रामाधार की माँ ने पूछा।'

'जाएगी तो नवीं में'....

'फिर', रामाधार की माँ ने पूछा।

'फिर क्या, मैं अब आगे उसके खर्चा न उठा पाऊंगी। आपतो जानती ही हैं, मैं भी आपकी तरह विधवा ठहरी।' और एक दीर्घ निश्वास उसके मुंह से निकल गया।

'नहीं बहन, साधना को जरूर पढ़ाओ,' रामाधार की माँ ने अनुरोध किया। 'क्यों री साधना, तेरी माँ क्या कहती हैं मैं अब न पढ़ सकूंगी?'

'बधाई है शर्मा जी, इस साल आप सर्व प्रथम रहे हैं, आप की संगत से मैं भी तर गया,' ग्रोवर ने आकर कहा।

"शुक्रिया, आपको भी बधाई है। भगवान ने लाज रखली।' और दूसरे क्षण वह जैसे परम पिता की असीम कृपा पर झुका हुआ था।

फिर तो चारों ओर से लड़कों ने घेर लिया। बधाइयों का ताँता बंधा था। अधिकाधिक बधाइयों से वह अधिकाधिक नम्र होता जा रहा था-फल भार से झुके वृक्ष की भाँति।

× × ×

"माँ मैं पास हो गया। भगवान की दया से यूनीवर्सिटी में मेरा पहला नम्बर रहा," कहता रामाधार घर में घुसते अपनी माँ के पैर छूने दौड़ पड़ा।

"उस भगवान की बड़ी बांहे है बेटा। ईश्वर इसी तरह तुम्हें आगे भी बढ़ाए" माँ ने उसके सिर पर स्नेह हाथ रखकर कहा।

वह पैर छूकर सीधा ही हुआ था कि पड़ोस की लड़की साधना और उसकी माँ आ गयीं।

"लल्ला पास हो तो गया",

प्रसन्न साधना का चेहरा [illegible] उदास हो गया। धीरे से बोली—'हाँ अम्मा जी क्या करें, खर्च ही नहीं जुड़ता।

रामाधार अपनी माँ को अम्मा कहता था, इसलिए साधना भी उन्हें अम्मा कहती और साधना की माँ को रामाधार साधना की भाँति अम्मा कहता।

रामाधार के जैसे किसी ने सिर में हथौड़ा मार दिया। कक्षा में सर्व प्रथम आने वाली लड़की साधना नहीं पढ़ सकती क्योंकि खर्च नहीं। यही विचार उसको दंश की तरह चुभने लगा।

'नहीं अम्मा जी, साधना अवश्य पढ़ेगी' कुछ क्षणका मौन भंग करके रामाधार ने कहा। मुझे इस वर्ष वजीफा मिलेगा। मेरा खर्च नौकरी से चल ही जाता है और यह वर्ष का आयगा साधना के खर्च में। दो ही साल की तो बात है। यदि साधना दो साल पढ़ गयी तो वह जरूर इतने अच्छे अंकों से पास होगी कि इसे भी वजीफा मिल जाए। फिर इसका खर्च खुद चलने लगेगा।'

'न बेटा, मैं तुम पर इसका बोझ नहीं डालना चाहती,' साधना की माँ ने कहा।

'अम्मा जी साधना अब आपकी बेटी ही नहीं है, मेरी छोटी बहिन भी है। आप इस मामले में दखल न दे सकेंगी,' रामाधार के स्वर में दृढ़ता थी।

और साधना की आँखें चमक उठी थीं।

(३)

'बधाई है, भाई रामाधार शर्मा,' दफ्तर में प्रवेश करते ही एक साथी ने कहा।

'धन्यवाद भैया जी' कहकर उसने अपने से हाथ मिलाया और स्थान पर आकर बैठ गया।

बारी बारी से सभी साथियों ने उसे बधाई दी।

'इस पर आप भी हस्ताक्षर कर दीजिए,' एक साथी ने रामाधार के सामने कागज रखा। रामाधार के साथियों ने विश्वविद्यालय में उसके सर्वप्रथम आने के उपलक्ष में एक दावत का आयोजन किया था, उसका यह निमन्त्रण पत्र था। दावत में प्रबन्ध सम्पादक, सम्पादक और और अन्य सभी निमन्त्रित थे।

क्यों बात तूफान बना दिया है; आखिर मैं पास हो गया, तो कौन सी आफत आ गयी। मैं तो इस सब तमाशे के पक्ष में नहीं हूं।'

'आप की राय इस समय कोई,

(शेष पृष्ठ ११ पर)

धर्म और उसकी रूपरेखा

[ले०—श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०]

यदि धर्म शब्द की व्युत्पत्ति पर ध्यान दिया जाय तो धर्म क्या है इसके जानने में कठिनाई नहीं होती। यदि यह सब कुछ धर्म है जिसके द्वारा प्राणी का कल्याण संभव है तो प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक भावना और प्रत्येक ज्ञान जो जीव के विकास का साधक है धर्म है और जो बाधक है वह अधर्म है, परन्तु धर्म के सर्वत्र यही अर्थ नहीं लिये गये। और आज तो धर्म के पक्षपाती और विरोधी दोनों ही बिना सोचे समझे धर्मशब्द का प्रयोग करते हैं, अतः जब धर्म का ही निश्चय न हो तो उसकी रूप रेखा कैसे बनाई जाय?

जलाना आग का धर्म है, यहाँ धर्म का अर्थ गुण है जो गुणी में सर्वदा रहता है। वह आग नहीं जो जला नहीं सकती। परन्तु इस भौतिक धर्म में सर्वतंत्र सिद्धांत बनाने में कठिनाई होती है। दिया सलाई में आग है परन्तु उसको जलाती नहीं। जठर में जठराग्नि है परन्तु जठराग्नि से कोई जठर जलते तो नहीं देखा। सिवाय उन रोगियों के जो पेट की जलन से चिल्लाते रहते हैं।

स्त्रियों में मासिक धर्म होता है। यहाँ धर्म का क्या अर्थ है। यह दूसरा धर्म है जो ऊपर के अर्थ से भिन्न है।

वनपातियों के यहाँ एक धर्म खाता होता है, यहाँ धर्म का अर्थ केवल दान है। दान धर्म का अंग है परन्तु केवल अंग मात्र धर्म के अन्य अंग भी हैं जो दान से इतर हैं।

लोग धर्मशाला बनवाते हैं, यहाँ धर्म का क्या अर्थ है? यह कुछ-कुछ धर्म खाते से मिलता जुलता है।

सार्वदेशिक सभा में धर्मार्य सभा है, यहाँ धर्म का क्या अर्थ है? वही नहीं जो ऊपर वर्णन किया गया। उस से भिन्न है। अर्थात् वह सभा आर्य समाज के सैद्धान्तिक झगड़ों के विषय में सार्वदेशिक सभा की नीति के अनुसार अपनी व्यवस्था दे। केवल इतना ही अधिक नहीं। आर्य समाज वैदिक धर्मी है, यहाँ धर्म का क्या अर्थ? वह विस्तृत अर्थ नहीं जो ऊपर वर्णन हुआ। अपितु एक संकुचित अर्थ अर्थात् वह सिद्धान्त जो वेदों से पुष्ट होते हैं, अन्यथा 'धर्म' के साथ 'वैदिक' विशेषण लगाने की क्या आवश्यकता थी? यहां 'वैदिक' विशेषण इस लिये लगाया गया कि इसलाम, ईसाइयत, बौद्ध, जैन आदि से इसको 'विशिष्ट' किया जा सके।

आज कल के भारत सरकार के विधान को कोई धर्म निरपेक्ष राज कहते हैं। कोई अधर्मी राज्य, कोई धर्म विरोधी राज्य यह सब धर्मशब्द का अर्थ न समझ कर करते हैं। यहाँ इस का केवल यह अर्थ है कि किसी व्यक्ति के नैतिक अधिकार या कर्तव्य उसके धार्मिक सिद्धान्तों की दृष्टि में रखकर निश्चित न हो सकेंगे।

श्री कणाद मुनि ने धर्म के विशाल अर्थ किये हैं, जिनको आर्य समाज में प्रायः सभी कहा करते हैं।

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः सधर्मः
(वैशेषिक दर्शन १।१।२)

इसका प्रायः यह अर्थ किया जाता है कि जिससे लोक और परलोक दोनों की सिद्धि हो वह धर्म है, यहाँ 'यतः' शब्द की विवेचना नहीं की गई। यतः जिससे, किससे? किस कर्म से? या किस ज्ञान से? अथवा किस भावना से? और न यह बताया गया कि 'अभ्युदय' और 'निःश्रेयस' का परस्पर क्या सम्बन्ध है, क्या जिस से केवल लोक की सिद्धि हो वह आधा धर्म है या नहीं।

मेरी समझ में इसका अर्थ कुछ भिन्न है। अभ्युदय और निःश्रेयस साध्य साधक का सम्बन्ध है, यही सम्बन्ध मार्ग का और प्राप्य स्थान का होता है। मार्ग वह है जिस पर चलकर निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच सके। इस लिये अभ्युदय और निःश्रेयस में अंश अंशी का सम्बन्ध नहीं है। यदि किसी सीढ़ी में पचास डन्डे हैं तो पचीस डंडे पर चढ़ने मात्र से छत पर चढ़ने का आधा काम नहीं हो सकता। पचास डंडों पर पहुंच कर भी छत न मिले यह संभव है, अतः धर्म वह ज्ञान कर्म और उपासना का सम्मिश्रण है जिससे लौकिक उन्नति करते हुये निःश्रेयस की प्राप्ति में सहायता मिल सके। बिना अभ्युदय के निःश्रेयस तो प्राप्त हो ही नहीं सकता। बिना सीढ़ियों पर चढ़े छत पर कैसे पहुंच सकते हैं? हाँ यह तो संभव है कि सीढ़ियों पर चढ़ें भी और छत पर फिर भी न पहुंचें, अतः यह आवश्यक नहीं कि अभ्युदय से निःश्रेयस सिद्ध होगा ही, यही भूल है जो लोगों को धोखे में रख रही है।

हमने ऊपर मार्ग का दृष्टान्त दिया है। मार्ग पर विचार कीजिये। मार्ग का प्रत्येक अंश मंजिल पर पहुंचाने में साधक है। इसी लिये वह मार्ग है। परन्तु इसी मार्ग पर चल कर हम मंजिल से दूर भी रह सकते हैं। कैसे? इसी मार्ग पर बाय में चक्कर काटते रहें। कभी अन्त तक न पहुंचे। कोल्हू के बैलके समान। अथवा चालीस सीढ़ियों पर चलने के पश्चात् मुंह मोड़कर चलना आरम्भ कर दें। कभी मंजिल पर न पहुंच सकेंगे और हमारा यह चलना न तो अभ्युदय में गिना जायगा न निःश्रेयस में। इस लिये इसको धर्म कहना भी अन्याय ही होगा।

यदि हम इस बात को समझ पावें तो धर्म का रूप रेखा बन सकती है, और उस रूप रेखा के अन्तर्गत अन्य ज्ञातव्य बातों का भी सुगमता से निश्चय हो सकता है। परन्तु है यह टेढ़ी खीर इसका समझना कठिन है। इस लिये जिन को धर्म कहते हैं वह धर्म सभा में नहीं, जिनको धार्मिक संस्था में कहते हैं वह धार्मिक संस्थायें नहीं, जिनको 'धर्मात्मा' कहते हैं वह धर्मात्मा नहीं, धर्म धर्म सब चिल्लाते हैं परन्तु सभी किसी न किसी अंश में व्यवहार रूप में मतान्ध बने हुये हैं।

मनुस्मृति में धर्म के दो स्थानों पर भिन्न भिन्न लक्षण किये गये। उनका अन्ततोगत्वा आशय एक ही है। पहले दश लक्षण धृति, क्षमा आदि हैं जिनमें ऋषि दयानन्द ने एक और जोड़ कर ११ कर दिये हैं। संस्कार विधि के नरक्रम प्रकरण में 'अहिंसा' को पहले वर्णन करके दस और आगे गिनाये हैं। इससे मौलिक रूपरेखा में भेद नहीं पड़ता। दूसरे स्थान पर श्रुति, स्मृति आदि चार लक्षण बताये हैं। वह भी ऊपर दिये हुये दस या ग्यारह से मेल खाते हैं, बात नहीं है। भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न रूप से वर्णित है। सत्यार्थ प्रकाश में धर्मों की तुलना करते हुये भी ऋषि ने वही बात दुहराई है। अर्थात् रूपरेखा पर बल दिया है। आन्तरिक आकृति पर नहीं, कहावत है कि हड्डियां सुरक्षित रहें भी तो मांस और रक्त तो फिर भी बन जायगा। तात्पर्य यह है कि यदि रूपरेखा पर बल दिया गया तो छोटी छोटी बातें भेद और वैमनस्य का कारण नहीं बन सकतीं। आज कल वह मनुष्य भी धर्मात्मा समझ लिया जाता है जो धर्म की रक्षा के लिये झूठ बोलता है या मन्दिर बनवाने के लिये चोरी करता है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि रक्त या मांस की रक्षा के लिये हड्डी को तोड़ दो। यह क्यों होता है। धर्म और धार्मिक संस्था में भेद है। प्रत्येक धार्मिक संस्था धर्म नहीं है। संस्था वाले संस्था की रक्षा के लिये धर्म से विपरीत आचरण कर सकते हैं। एक भूमि को मसजिद गिरा कर मंदिर (चाहे वह आर्य समाज का मन्दिर हो क्यों न हो) बनाने के लिये चालें चली जा सकती हैं या बेईमानी की जा सकती है। और यह अभिमान किया जा सकता है कि धर्म की रक्षा के लिये ऐसा किया गया। जब हम ऐसा करते हैं तो धर्म की कसौटी से हटकर हम 'मत' की कोटि में आ जाते हैं।

आर्य समाजियों को भी इस विषय में सतर्क रहने की आवश्यकता है। प्रायः आर्य समाजी कहा करता है कि वैदिक ही धर्म है अन्य सब मतान्तर हैं। ऐसा कहने वाला धर्म की रूपरेखा को नहीं समझता। मैं

(शेष अगले पृष्ठ पर)

अब चरण किसकी प्रतीक्षा!

लक्ष्य है, पथ है सदृष है, अब चरण किसकी प्रतीक्षा!

है नहीं पाथेय कुछ भी, साथ कोई भी न सहचर,
रच रही, है राह पगध्वनि, और गति है श्वास का स्वर,
मौन जीवन की समीक्षा!
लक्ष्य है..........

गगन एकाकी, अकेले चांद सूरज भू अकेली,
पूर्ण प्रति सत्ता, स्वयं ही पूर्ति, सीमा है पहेली,
अब मनुजता की परीक्षा!
लक्ष्य है..........

है प्रतीक्षा ही यहां पर हार की असफल कहानी,
है अकेलापन स्वयं जय और जागृति की निशानी,
मत नियति से माँग भिक्षा!
लक्ष्य है..........

—विद्यावती मिश्र

गुरु पूर्णिमा

(लेखक—आचार्य श्री नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ कुलपति महाविद्यालय ज्वालापुर)

गुरु पूर्णिमा आती और जाती भी। इसकी भी अनन्त काल की परम्परा है। इस बात को बहुत कम लोग जानते होंगे कि हमने पहले अंग्रेजी की शिक्षा-दीक्षा की पश्चात् संस्कृत शिक्षा की गोद में आये और पले। लालित-पालित-पोषित परिवर्द्धित होकर संस्कृत साहित्य अथवा वैदिक-साहित्य-सागर में गोते लगाकर बहुमूल्य रत्नों को प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न किया।

जब हम पढ़ते पढ़ते अंगरेजी छोड़ कर संस्कृत में आये तब एक पाठशाला में पहुँचे। वहां हमने एक विचित्र ही बात अवश्य देखा। तब तो हम ताजे बाबू थे,

बाबू के वेश में। हमको देख कर संस्कृत के छात्रों ने एक दम हमको घेर लिया और पूछने लगे

छात्र बाबूजी, आप कैसे आए ?

मैं—यहां संस्कृत पढ़ने के लिए।

छात्र . ओ हो, संस्कृत पढ़ने के लिए ?

मैं.. हाँ, संस्कृत पढ़ने के लिए।

छात्र—क्या क्या पढ़ियेगा ?

मैं—महाभाष्य, दर्शन पढ़ेंगे।

छात्र—(मेरा वेष देखकर) आप क्या संस्कृत पढ़ेंगे। आप पढ़ न सकेंगे।

बस सारी पाठशाला में हल्ला हो गया कि कोई बाबू महाभाष्य पढ़ने के लिए आया है। छात्रगण हमारी हँसी दिल्लगी करने लगे।

पहिले ही दिन जब गुरु के पास गये तो हमने देखा कि छात्रगण गुरु जी के पैर छू रहे हैं। हम को तो वह पैर छूने की विधि अच्छी नहीं लगी। हमने गुरु जी को दूर से ही नमस्ते की। जब सब छात्र गुरु जी के चरण छूवें और मैं अकेला ही दूर से नमस्ते करूँ, कुछ अच्छा नहीं लगता था। गुरु जी, बेचारे कुछ नहीं कहते थे। किन्तु छात्र-वृन्द में इस बात की बड़ी चर्चा रहती रही।

हम अंगरेजी ढंग में पले थे। वहां बड़े से बड़े मास्टर को, प्रिन्सिपल को "गुड मार्निंग" किया और बस। पर संस्कृत पाठशाला का वातावरण ही भि

छात्रों की टीका-टिप्पणी से बचने के लिए हमने एक युक्ति निकाली कि जब गुरु जी अकेले हों तब जाकर उनके चरण छू लिये जावें जिससे कोई न जान सके कि इसने भी चरण छूये। मेरी इस विचित्र दशा पर हमारे गुरु जी मुस्करा जाते और बेचारे कुछ भी नहीं कहते थे किन्तु ताड़ गये कि थोड़े दिन में यह ठीक हो जावेगा और अच्छा शिष्य बनेगा। संस्कृत के छात्र अपने आवास स्थान को स्वयं झाड़ू लगाकर स्वच्छ करते थे अपनी थाली बर्तन को स्वयं धो डालते थे। अपने हाथ से पानी खींचकर स्नान करते थे। अंगरेजी का दिमाग इन बातों को अच्छा नहीं समझता था—किन्तु धीरे-धीरे अज्ञान दूर होता गया और मैं भी संस्कृत छात्रों की तरह स्वावलम्बी बन गया।

वैसे तो संस्कृत विद्या हमारे वंश परम्परा की विद्या थी, और संस्कार भी थे ही। हमने संस्कृत विद्या को ग्रहण करना प्रारम्भ किया और १८९८ में अंगरेजी छोड़ी थी और १९०२ में ही "शास्त्री" (पंजाब) बन गये। अंगरेजी जानने के कारण हमको डिप्लोमा भी मिला। उस समय हमको जो हर्ष हुआ हम वर्णन नहीं कर सकते। शास्त्री बनने के पूर्व हमने लश्कर ग्वालियर में भी रहे थे। महामहोपाध्याय रघुपति शास्त्री, श्री विद्यापति शास्त्री, श्री निशापति शास्त्री आदि से संस्कृत साहित्य का विधि पूर्वक अध्ययन किया था। पश्चात् काशी में रह कर श्री पं० परमेश्वरी दत्त व्याकरण न्यायाचार्य से न्यायवाद, महामहोपाध्याय श्री अम्बादास शास्त्री से व्युत्पत्तिवाद, शक्तिवाद, रस गंगाधर आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया। १९०५ १९०७, नदिया भी रहे, कलकत्ते में स्व० आचार्य सत्यव्रत सामश्रमी फेलो एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल से वेदाध्ययन किया। वहीं कलकत्ते में वेदतीर्थ हुए ऋग्वेद में। हम प्रथम ही परीक्षार्थी थे जिसने ऋग्वेद में परीक्षा दी थी। इस प्रकार हमने संस्कृत की शिक्षा दीक्षा समाप्त की।

हम कोई अपना इतिहास लिखने नहीं बैठे हैं, केवल गुरुओं के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट कर रहे हैं। वे बड़े बड़भागी समझिए जिनको अच्छे, सच्चे गुरु मिल जाते हैं। मुझे भी यह सौभाग्य प्राप्त हुआ, अंगरेजी की शिक्षा दीक्षा के समय में भी बड़े दयालु गुरु मिले थे। श्री रजनीकान्त एम०ए०, श्री बी० घोष बी.ए, श्री सेन एम०ए०, श्री कृपा राम एम०ए०, किस किस का नाम लूँ—जब मैं पूने में पढ़ता था, नूतन मराठी विद्यालय में (जो अब परशुराम भाऊ कालेज बन गया है) तब के हमारे सुपरिन्टेन्डेन्ट श्री कुलकर्णी, श्री सप्रू आदि गुरु भी याद आते हैं। बाल्यावस्था के अनेक गुरु भी याद आ रहे हैं जिनकी आकृतियाँ तो आँखों के सामने आ रही हैं पर नाम याद नहीं आ रहे हैं—उन सब का मैं कृतज्ञ हूँ। मेरा यह सौभाग्य रहा कि मेरे गुरु पंजाबी रहे, उत्तर प्रदेश के रहे महाराष्ट्रीय रहे, इसलिए अन्य छात्रों की अपेक्षा मैं बहुत लाभ में रहा—मुझे सब प्रकार का सब देश का अनुभव रहा,

जब हमने अंगरेजी छोड़ी तब हमको बड़ा दुःख हुआ कि अब हमारा क्या बनेगा किंतु संस्कृत विद्या के अध्ययन के पश्चात् हमारा अज्ञान दूर हुआ और हम समझ रहे हैं कि अंगरेजी का छूटना अच्छा ही रहा। नहीं तो वैसे बी० ए० होते, एम० ए० होते, डाक्टर होते, कदाचित इन्जीनियर भी हो सकते थे किंतु संस्कृत विद्या का यह अनुपम आनन्द हम किस प्रकार लूट सकते थे।

हमारे संस्कृत विद्या के गुरुओं की शुभ नामावली सुनिये—

(१) स्व० श्री गुरुवर काशीनाथ शास्त्री (बलिया) (गुरूणां गुरु)

(२) स्व० श्री गुरुवर हरनाम दत्त जी भाष्याचार्य (गुरु-राजस्थान (गुरूणां गुरुः)

(३) स्व० श्री शुद्ध बोध तीर्थ—व्याकरण गुरु

(४) स्व० श्री नारायण सिंह जी सिंह (डीग—भरतपुर दर्शन उपनिषद् गुरु)

(५) स्व० श्री पं० परमेश्वरी दत्त षट् शास्त्री (काशी) न्याय गुरु।

(६) स्व० श्री प० रामारत्न झा (काशी)-ज्योतिष गुरु।

(७) स्व० महामहोपाध्याय श्री गंगादत्त शास्त्री (काशी) रसगंगाधर आदि साहित्य-शास्त्र के गुरु।

(८) स्व० श्री सत्यव्रत सामश्रमी (कलकत्ता) वेद गुरुः।

इन सब गुरुओं के हम कृतज्ञ हैं और और भक्ति भाव पूर्वक स्मरण करते हैं। हम जो कुछ बन सके हैं, इन्हीं गुरुओं की कृपा से बने हैं।

अंग्रेजी स्कूलों कालेजों में गुरु शिष्य भाव तो सर्वथा निःशेष हो गया है। हां संस्कृत के गुरुओं में तब उनकी शिष्य परम्पराओं में वह शिष्य भाव चला आ रहा था किन्तु यहाँ भी कालचक्र के परिवर्तन से, संस्कृत की परम्परा का कोई रक्षक राज्य सिर पर नहीं रहा, इसलिए गुरु शिष्य भाव का ह्रास हो रहा है। जब गुरुओं का ही ह्रास हो रहा है तब शिष्य गण किस प्रकार सुरक्षित रह सकेंगे।

मैं देख रहा हूँ कि पिछले साठ वर्षों में संस्कृत गुरु और संस्कृत शिक्षार्थियों की दशायें बड़ा ह्रास हो गया है।

पहिले मुगल-यवन काल में भी, अंग्रेजी राज्य में भी, निष्काम धर्म समझ कर, केवल कर्तव्य बुद्धि से, पुण्य समझकर, परम्परा समझ कर संस्कृत विद्या की रक्षार्थ प्राणपण से संनद्ध रहते थे।

अब तो संस्कृत विद्वानों की संख्या घटती जा रही है इन विद्वानों के पुत्र, शिष्य स्वयं संस्कृत छोड़कर पेट पूजा के प्रश्न पर चिन्तित हो रहे हैं। भारतवर्ष को स्वतन्त्रता मिलने के पश्चात्, और विभाजन के पश्चात् ऐसी परिस्थिति बदली है कि संस्कृत विद्या जातीसी दिखलायी पड़ रही है, पर विश्वास जावेगी नहीं फिर जागेगी फिर उठेगी। संस्कृत के बिना भारत अपनी सभ्यता, संस्कृति को जीवित नहीं रख सकता। उन पण्डित परम्परा, विद्वत्कुलों के हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं जिन्होंने अब तक वंश परम्परा द्वारा संस्कृत साहित्य, वैदिक साहित्य, दर्शन साहित्य आदि की अंशतः रक्षा की। पर उनकी पीढ़ियों की दुर्दशा, उपेक्षा देखकर चित्त उद्विग्न हो जाता है-

और आर्य समाज में ?

तो गुरुकुल प्रणाली का उद्धार हो चला था। और आशा बंध रही थी कि प्राचीन शिक्षा दीक्षा का पुनरुद्धार होगा। पर यह भी दुराशा मात्र रही। वे तो समय के साथ ही पलटा दे गये। कहाँ चले थे वेद शास्त्रों का उद्धार करने और कहां जा फँस रहे हैं सांसारिक प्रलोभनों में। कुछ न लिखना ही अच्छा।

भगवान् हमें सुबुद्धि देवें कि हम अपने कर्तव्य को समझें। कोरे अवसरवादी न बनें। न जाने यह अवसरवादिता हमको कहाँ ले जावगी।

आर्य समाज में भी अब वैसे गुरु नहीं रहे। जब गुरु ही नहीं रहे तो गुरुओं की विद्या कहाँ, गुरु शिष्य परम्परा कहाँ—ऐसा प्रतीत हो रहा है आर्य समाज के गुरु महर्षि दयानन्द की विद्या, बुद्धि वैभव, उनका सन्देश, उनकी अभिलाषा उनके साथ ही गयी, क्या लिखें, आर्य समाज में गुरुओं का उपहास हो रहा है, यह मरने की, बात है। × ×

[पिछले पेज का शेष]

र्म बड़ा समय तक धर्म है जब तक सका अनुयायी धर्म की रूप रेखा का मान रखता है। और जब वह अपनी ज्ञा से हट जाता है तो वह मो वान्ध है और आर्य समाज को मत वान्तर के गढ़े में ला गिराता है। दिक धर्म के शुद्ध धर्म रहन का रूप तो इतना ही है कि इस में लिक रूपरेखाओं पर बल दिया जाता अवान्तर बातों पर नहीं। परन्तु यह न तो मनोवृत्ति और व्यवहार का। केवल कथन मात्र का नहीं। यदि र्य समाजी भी आर्य समाज के ठन, आर्य समाज की आयदाद र्य समाज की संस्था की सत्ता लय अनी मन हथकण्डों का व र रहा है जिसको अन्य सब लोग करते। आर्य समाज भी एक मत हो है। और वह विशेषता का दावे-नहीं रहता।

कम्यूनिज्म ही क्यों ?

[श्री पं० शांति प्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी ३६।१४ राजपूताना बाजार

अमृतसर आर्य समाजों की केन्द्रीय सभा ने एक बार देश की राजनैतिक संस्थाओं को एक अनोखे शास्त्रार्थ का चैलेंज दिया जिसका विषय था कि 'धार्मिक आर्थिक तथा राजनैतिक दृष्टि से संसार भर में केवल वैदिक धर्म तथा आर्य समाज का प्रोग्राम ही सर्वांग पूर्ण तथा ग्राह्य है, इस विषय पर शास्त्रार्थ के लिये कांग्रेस, सोशलिस्ट पार्टी, अकाली दल तथा कम्युनिस्टों को आह्वान किया गया। किन्तु यह चैलेंज केवल कम्युनिस्टों ने ही स्वीकार किया। संसार की वर्तमान परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए ही यह चैलेंज दिया गया था। अतः शास्त्रार्थ सुनने के लिये जनता का कोई पारावार न था। कम्यूनिस्टों की ओर से कुछ एक प्रोफेसरों ने इस शास्त्रार्थ में भाग लिया तथा आर्य समाज की ओर से मुझे बुलाया गया प्रारंभ का तथा अन्त का भाषण मेरा था। मैंने प्रारंभिक भाषण में उपरिलिखित विषय पर आर्य समाज तथा वैदिक धर्म का दृष्टिकोण रखा।

वेद के एक ही मंत्र में यह संपूर्ण विषय भली भाँति दर्शाया गया है कि संसार की राजनीति धार्मिक तथा आर्थिक समस्याओं का सुलझाव केवल आर्य समाज के पास है। वेद का आदेश है कि

इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः कृण्वन्तोविश्वमार्यम् अपघ्नन्तोऽराव्णः ॥ ऋग्वेद ॥

हे शुभ गुण स्वभाव युक्त श्रेष्ठ मनुष्यो! तुम संसार भर में भले तथा छल कपट रहित मनुष्यों का अखंड चक्रवर्ती राज्य स्थापित करो और इस राजनैतिक अपूर्व क्रान्ति के द्वारा तुम विश्व भर में धार्मिक क्रान्ति उत्पन्न करके समस्त संसार के मानव समूह को आर्य बनाओ तथा स्वार्थ अज्ञानता तथा निष्कर्मण्यता और कृत्रिम बटवारे के सिस्टम का नाश कर दो। यह इस मंत्र के भावार्थ है। इस प्रकार की विश्व विजय का इस प्रकार का विश्व भर को एक सूत्र में पिरो देने वाला अनोखा नाद वेद के अतिरिक्त और किसी मतमतान्तर अथवा किसी महा पुरुष ने नहीं गुंजाया। महर्षि दयानन्द ने वेद भाष्य में एक स्थान पर लिखा ही है कि:—

"समस्त संसार भर के मनुष्यों के जनहित तथा विश्व हित के हेतु प्रयोजन सिद्ध करने चाहियें। प्रथम तो यह कि समस्त शुभ विद्याएं पढ़ कर सर्वत्र उन शुभ विद्याओं का प्रचार तथा प्रसार करना, जिससे यह समस्त विश्व एक जैसी भावनाओं वाला हो जाय। पुनः दूसरा प्रयोजन सिद्ध किया जाय, वह यह कि धार्मिक लोगों के महाचक्रवर्ती राज्य को अच्छी प्रकार प्राप्त करना।

राजनीति का प्रथम गुर यह है कि वह सरल हो और धर्मात्मा लोगों के हाथ में उसकी बागडोर हो, यह राजनीति पक्षपातादि दोषों से सर्वथा शून्य हो। इसका मोटो हो समस्त संसार के प्राणीमात्र को यथा शक्ति अधिक से अधिक सुखों से युक्त करना तथा तीन प्रकार के दुःखों का भरपूर यत्न के साथ अन्त करना। यह राजनीति छल कपट तथा माया और लोभादि दोषों से सर्वथा रहित हो। इसके लिये संसार भर के अच्छे लोगों को संगठित होकर बहुत बड़े महाप्रयत्न करने की आवश्यकता है। आज संसार भर के चोरों तथा ठगो का पारस्परिक संगठन तो है। पर भले लोगों का नहीं। अफीम का व्यापार प्रायः चोरी से होता है। इसमें पाक, भारत तथा चीनादि देशों के चोर अफीम के व्यापारी कितनी बड़ी चतुरता तथा संगठन के साथ अपनी २ सरकारों की आँखों में धूल डालकर एक से दूसरे तथा तीसरे देश में चोरी से अफीम पहुंचाने में सफलता प्राप्त करते हैं। इनके इस महासंगठन को देखकर बुद्धि चक्कर खा जाती है। इसी प्रकार सिनेमा शराब, तथा दुराचार करनेवाले लोगों के संगठन को देखा जाय तो ऐसा प्रतीत है कि इन लोगों ने देश विशेष की सीमाओं का प्रश्न ही समाप्त कर दिया है। परन्तु जब किसी अच्छी बात का प्रश्न आता है, तो संसार भर की फूट तथा ईर्ष्या द्वेष अपनी संपूर्ण शक्ति के साथ सामने आ जाते हैं। इसका एकमात्र कारण यह है कि आज के संसार की राजनीति मायावी तथा छली कपटी दूसरों का रक्तशोषण करनेवाले लोगों के हाथ में प्रायः आई हुई है। इसीलिये यह लोग अपने स्वार्थों के कारण संसारको एक नहीं होने देते और न ही संसार का हित चाहने वाले लोगों के हाथ में यह लोग शक्ति आने देना चाहते हैं।

अतः वेद ने दूसरा प्रोग्राम यह रखा कि संसार भर के लोगों को आर्यत्व के सूत्र में सुगठित किया जाय। वेद में सम्प्रदायवाद का तीव्र तर विरोध स्थान २ पर किया गया है। धर्म तथा सम्प्रदाय आदि में आकाश पाताल का अन्तर है। धर्म के अर्थ धारण करने के हैं। जिन नियमों से संसार भर के प्राणी मात्र को जीवन हो सके। ईर्ष्या द्वेष और कलह तथा लड़ाई झगड़ों और युद्धों से विरति हो उनका नाम ही धर्म है। धर्म एक व्यापक वस्तु है। जिसमें अविद्यान्धकार अन्याय तथा असमान बटवारे को दूर कर सकने की क्षमता है तथा यथार्थ ज्ञान द्वारा न्याय की व्यवस्था का स्थिर करके समान विभाजन की योग्यता है उसी का वेद में वर्ण धर्म के नाम से प्रख्यात किया गया है। उसी प्रकार मनुष्य को अपनी शतवर्षीय अथवा इससे अधिक आयु किस प्रकार चार भागोंमें विभक्त करके व्यतीत करनी चाहिये इसका नाम वैदिक शास्त्रों में आश्रम धर्म से प्रसिद्ध है। संसार भर के हित साधन में समर्थ नियमों का नाम ही धर्म है तथा भिन्न स्वार्थों अथवा अल्पज्ञ समूह को इच्छा पूर्ति करने वाले अव्यापक और पक्षपातादि दोषों से युक्त स्वार्थ परायण नियमों का नाम ही संप्रदाय मत, पन्थ और मजहब है।

व्यापक तथा जनहित और प्राणी मात्र की शुभ कामनाओं के पूरक नियमों के मानने वाले लोगों को वेद ने आर्य शब्द वाची माना है। इतर लोगों का नाम राक्षस दस्यु आदि रखा है। आर्य शब्द के अर्थ श्रेष्ठ प्रभु के नियमों के पालक तथा रक्षक के हैं। प्रभु का मुख्य नियम यज्ञ तथा निष्काम परोपकार है। यज्ञ कर्ता, परोपकार रत लोगों का नाम आर्य है। वेद का आदेश है कि हमारी आयु यज्ञ मय हो, हमारा एक २ प्राण यज्ञमय हो, हमारी आँखें और हमारे कान यज्ञमय हों, हमारे शरीर का अंग प्रत्यंग यज्ञमय हो। हम प्रजा पति परमेश्वर की सच्ची प्रजा बनें तथा विश्वहित-साधक देवजनों के सहयोग से हम सच्चा, सुख तथा सच्ची शान्ति प्राप्त करने वाले बनें।

हमारी राजनीतिका सार धार्मिक अखण्ड महा चक्रवर्ती राज्य स्थापना करना है। हमारी सामाजिक व्यवस्था का सूत्र परस्त्रियों को माता के समान व्यवहार करना, पराधिकार तथा पर धन को लोष्ठ समान समझना और सर्व प्राणी में आत्मवत् व्यवहार करना ही है।

अब रही वैदिक अर्थ-व्यवस्था, इसका [illegible] पहिले दो सुधारों के साथ सम्बन्ध है, यदि राजनीति तथा सामाजिक [illegible] ठीक है। तो अर्थ व्यवस्था के ठीक हो जाने में कोई सन्देह अवशिष्ट नहीं रहता।

इसी लिये वेद में चक्रवर्ती राज्य के सब से बड़े घटक प्रधान का चुनाव जब होता है तो संसार की समस्त प्रजाएं घोषणा करती हैं कि हम ऐसे महाशक्ति शाली पुरुष का इस चुनाव में आह्वान करते हैं जो इस समस्त भूमि की उत्पादन शक्ति बढ़ा कर सब सारी सामग्री तथा भूमिका के चित्रविचित्र पदार्थों का विभाजन समुचित रीति से कर सके कि जिससे किसी भी प्राणी के साथ पक्षपात न होने पाये। ऐसे महान पद पर अवस्थित प्रधान राजपुरुष को वेदने इन्द्र कहा है। उसकी दृष्टि सब पर समान होनी चाहिये। तभी राजनैतिक दृष्टिकोण से अर्थ व्यवस्था ठीक हो सकेगी अन्यथा नहीं।

वेद के शब्दों में चक्रवर्ती राजा इन्द्र कहता है कि मैं विधान द्वारा ऐसा प्रबन्ध करता हूं कि अपनी भिन्न भिन्न शक्तियों का दान करने वाले हर प्राणी को उसका अपना-अपना भाग मिलता चला जाय, भूमि, गो, दुग्ध, औषध, विद्या, आदि की सुविधाएं सब को यथाकर्म प्राप्त होती जायं, यह आर्यों के अखण्ड चक्रवर्ती राज्य की विशेषता है। यथाकर्म, यथा पुरुषार्थ तथा आवश्यक पदार्थों की प्राप्तिकराना, ही वैदिक राजनीति की मुख्यता है. केवल समानता के नाद गुँजाने से संसार समान नहीं हो सकता अन्यथा दोनों हाथों की कार्य शक्ति समान होनी चाहिये थी। हाथों की अंगुलियां बराबर होनी उचित थीं और सब के शरीरादि सभी घटक एक समान होने उचित थे, किन्तु संसार में ऐसा कभी नहीं देखा गया और न कभी देखा जायगा, अतः वैदिक साम्यवाद व्यावहारिक तथा पारमार्थिक, इहलोक तथा परलोक के बनाने वाला है। और वर्तमान साम्यवाद अव्यवहारिक होने होने के अतिरिक्त धर्म तथा परलोक को भी बिगाड़ने वाला है। अतः प्रश्न स्वाभाविक है कि वैदिक पूर्ण प्रोग्राम के होते हुए कम्यूनिज्म ही क्यों ?

सामाजिक रीति से भी समाज की व्यवस्था आर्योचित हो जाने पर अर्थ नीति में बड़ी भारी क्रान्ति की सम्भावना है। जैसा कि अति प्राचीन आर्य काल में सामाजिक व्यवस्था

(शेष पृष्ठ १४ पर)

क्या आर्यसमाज जीवित है ?

(लेखक—श्री वेदव्रत वेदोपदेशक वेदकुटीर शेरकोट)

कई वर्षों से आर्यमित्र को दैनिक करने का प्रश्न आर्य जगत के सामने उपस्थित था। जो इस वर्ष आर्य समाज स्थापना दिवस के अवसर पर कार्य रूप में परिणत भी हो गया। आर्यमित्र दैनिक रूप में प्रकाशित हुआ और बड़ी धूम-धाम के साथ, बड़ी आशाओं और उमंगों के साथ, किन्तु वह सभी आशाएं और उमंगें समय बीतते शिथिलावस्था को प्राप्त होती जाती हैं। कारण, स्पष्ट है कि सभा के कार्य कर्ताओं और सम्पादक जी ने जिस बल पर, जिस शक्ति के भरोसे पर दैनिक मित्र का प्रकाशन आरम्भ किया था वह बल, वह शक्ति, वह पौरुष आज उनकी आँखों के आगे से लुप्त होता जा रहा है। उन्होंने सोचा था, जब दैनिक मित्र आर्यों के हाथों में पहुंचेगा तो प्रत्येक आर्य मस्ती में झूम उठेगा, उसका मन मयूर नाच उठेगा और वह अपने मित्र के लिए सर्वस्व होमने को प्रस्तुत हो जायगा, किन्तु अब जब आर्य मित्र को दैनिक रूप में प्रकाशित होते लगभग दो मास बीत गये तब ? तब क्या कहें, तब तो यही कहते बनता है कि आर्य समाज आज जीवित नहीं है।

उपरोक्त शब्द सुनने में कटु अवश्य प्रतीत होते हैं परन्तु वास्तविकता यही है, अन्यथा उस संस्था की शक्ति का क्या ठिकाना जिसके सामने हैदराबाद की निजाम शाही को घुटने टेकने पड़े हों, जिसके सामने सिन्ध की मतान्ध मुसलिम लीगी सरकार ने मुँह की खाई हो और जिसके सामने समस्त संसार के अन्ध विश्वास, गुरुडम छुआ छूत आदि कुरीतियों को नत-मस्तक होना पड़ा हो एक दैनिक को चलाने में भी समर्थ न हो सके। तब केवल मात्र यही है कि उसमें से जीवन के लक्षण शनैः शनैः पलायन कर चुके हैं।

एक बार सम्राट अकबर ने अपने मन्त्री बीरबल से अपनी प्रजा की ईमानदारी की भूरि भूरि प्रशंसा की। बीरबल ने कहा परीक्षा होनी चाहिए। अन्ततः एक हौज बनवा कर घोषणा कर दी गई कि आज रात्रि में तमाम नगर निवासी नये हौज में एक एक लोटा दूध डाल दें। प्रातः काल जब सम्राट तथा बीरबल दोनों हौज पर पहुँचे तो हौज को दूध के स्थान पर जल से भरा पाया। सम्राट स्तम्भित रह गया और बीरबल से इसका कारण पूछा, बीरबल ने उत्तर दिया—सभी नगर वासियों ने सोचा होगा कि मेरे एक लोटे जल का क्या पता चलेगा और तो सब दूध डालेंगे ही। बात सम्राट के समझ में आगई।

पिछले दिनों मेरी जिला बिजनौर की दो प्रमुख समाजों से पृथक २ बातें हुईं।

मैं— क्या इस वर्ष उत्सव नहीं कर रहे हैं यदि नहीं तो इस वर्ष के उत्सव पर व्यय होने वाली राशि दैनिक आर्य मित्र को भेज दीजिये।

वह— उत्सव तो अवश्य करना है।

मैं— इस वर्ष उत्सव न सही, मित्र चल जाय यही अच्छा है।

वह— मित्र चलना ही चाहिए यह बात तो आप की अति उत्तम है किन्तु उत्सव भी तो करना ही है।

मैं उत्सव को मैं मना नहीं करता किन्तु यदि उत्सव एक बार रोक कर भी आर्य मित्र को जीवित रक्खा जाय तो अच्छा है।

वह— मित्र को तो अनेक धनी मिल सकते हैं यह हमारे ही बल पर थोड़े ही निकला है।

मैं— जब आर्य समाजें ही जिनका यह पत्र है धन नहीं देंगी तो निजी जेब से कौन धन देने लगे।

वह— दो दो समाजों की ही तो मांग है देश में तो सहस्रों की संख्या में समाजें हैं आर्य मित्र का कार्य तो चल ही जायगा।

कहिए है न सम्राट अकबरके हौज वाली बात। दूध आए तो कहाँ से। जब सभी जल का लोटा छोड़ने वाले हैं। मैं तो इसी परिणाम पर पहुंचा हूं कि प्रत्येक आर्य और आर्यसमाज के कार्य कर्त्ताओं का यही दृष्टिकोण है। दूसरे शब्दों में यदि कहा जाय तो अनुचित न होगा कि आर्यों में से कर्तव्य समाप्त हो चुका है। केवल बातें बनाना शेष है। बातों से नहीं करने से होते हैं। जिन व्यक्तियों, संस्थाओं में कार्य शक्ति न रहे, जिन का कर्तृत्व समाप्त हो जाए यदि कोई उन्हें भी जीवित कहे तो यह उसकी भूल ही होगी। कर्तृत्व का ही दूसरा नाम धर्म है। अग्नि का धर्म है जलाना, जब वह अपना धर्म छोड़ देती है तो राख हो जाती है, मर जाती है। व्यक्ति हो या सन्यासी जब अपना छोड़ देती है तो वह मुर्दा हो जाती है, यही दशा आज आर्यसमाज की है। कोई माने अथवा न माने पर सत्य को अधिक काल तक छिपाया नहीं जा सकता। शीघ्र या देर से वह प्रकट हो ही जाता है।

आर्य समाज के जीवन का प्रश्न आर्य मित्र के जीवन से सम्बन्धित है। आर्य मित्र जीता है तो आर्य-समाज जीता है। या आर्य मित्र मरता है तो आर्य समाज मरता है। 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के नाद को गुंजानेवालो पहले आपत्व को जीवित रखने का तो प्रयत्न करो, यह मर रहा है, यदि आर्यत्व मर गया तो विश्व को क्या बाँटोगे। आह, गुरुवर दयानन्द की प्रसादी आज तू आर्य कहाने वालो के सामने दम तोड़ रही है और आर्यत्वाभिमानी मुंह बाए तेरी ओर देख रहे, जा, महा मानव की धरोहर जा किन्तु उस महा मानव से, उस वेदोद्धारक देव दयानन्द से उसीके शिष्यो द्वारा अपनी होने वाली दुर्गति को इन शब्दो मे कह देना कि 'देव आज तेरा आर्य समाज मर चुका है।

कहानी....

(पृष्ठ ६ का शेष)

नहीं चाहता। आप इस पर सिर्फ दस्तखत कर दीजिए।

और उसे उसपर चुपचाप दस्तखत कर देने पड़े।

'शर्मा जी, विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम आकर आपने तो हमारे पत्र का नाम उज्ज्वल कर दिया,' बधाई देने के उपरान्त दावत की मेज पर बैठते हुए सपादक जी बोले।

'सब आपकी कृपा है,' रामाधार बोला।

'नहीं भाई आपकी मेहनत का ही यह फल है।' सम्पादक जी ने कहा।

'यदि आपने मुझे यहां सेवा करने का अवसर न दिया होता तो मैं पढ़ाई का खर्च कैसे पूरा कर पाता ? न जाने कितने अभागे ऐसे होंगे, जो मुझसे भी अधिक मेहनत कर सकते हैं, लेकिन खर्च के अभाव में शिक्षा नहीं पा सकते।

'हां, आपका यह कहना तो सोलह आने सच है। यदि देश में कुछ ऐसे काम हों, जहाँ विद्यार्थी स्कूल या कालेज के समय के अतिरिक्त काम कर सकें तो न जाने कितने रत्न सामने आ सकते हैं। आपने तीन साल से लगातार रात की ड्यूटी की और दिन में पढ़ा। यह बहुत अधिक भार था—सम्पादक जी ने कहा।

'देश में ऐसे कालेज भी तो नहीं जो शाम को भी चलें। सिर्फ दिल्ली में कैंप कालेज है। देखिए इसकी सहायता से कितनों ने उच्च शिक्षा प्राप्त करने की आकांक्षा पूरी कर ली' प्रबन्ध सम्पादक महोदय ने अपनी राय जाहिर की।

'विदेशों में तो ऐसे बहुत काम हैं, जहाँ छात्र दो, तीन या चार घण्टे काम करके अपनी पढ़ाई का खर्च निकाल लेते हैं। इन धन्धों में छात्रों को प्राथमिकता दी जाती है। वहाँ इस प्रकार के स्वावलम्बी छात्र इस पर गर्व अनुभव करते है और समाज भी ऐसे छात्रों को आदर की दृष्टि से देखता है। हमारे यहाँ ऐसी बात नहीं और न ऐसे स्वावलम्बी छात्रों को कुछ सुविधाएं मिलती हैं। सरकार को चाहिये कि वह इस दिशा में कुछ न कुछ अवश्य करे', सम्पादक जी अपना मत व्यक्त करते बोले।

'क्यों न हम अपने पत्र में इस आशय का एक आन्दोलन छेड़ें। शर्मा जी आप क्यों न एक अग्रलेख लिखकर इसका श्रीगणेश कीजिये' प्रबन्ध सम्पादक ने कहा।

दावत में एकत्र सभी ने एक मत से इसका समर्थन किया।

× × ×

दो वर्ष बाद।

रामाधार शर्मा एम० ए० में फिर सर्वप्रथम आया और सायना हाई स्कूल में।

मनोविज्ञान....

(पृष्ठ ५ का शेष)

यदि अरुचिकर विषय याद भी हो जाए तो बालक ऐसे विषय को शीघ्रता से भूल जाता है।

भिन्न-भिन्न प्रकार के बालकों की रुचि भी अलग-अलग होती है। इसी तरह बालकों की बुद्धि में भी भेद होता है। शिक्षा को उपयोगी बनाने के लिए पाठक को बालकों की रुचियों का अध्ययन करना तथा उनके बुद्धि भेद का पता चलाना आवश्यक है। जो पढ़ाई एक बालक के लिए लाभकारी हो वही दूसरे को हानि-कारक सिद्ध हो सकती है। मनोविज्ञान के ज्ञान के अभाव में सभी बालकों को एक साथ बैठाकर एकसी शिक्षा दी जाती है। इस प्रकार बालकगण शिक्षा से उतना लाभ नहीं उठाते जितना उनके स्वभाव के अध्ययन के पश्चात दी गयी शिक्षा से उठाते हैं। शिक्षा वैज्ञानिक रूसों का यह मत अब सर्वमान्य है कि शिक्षक को न सिर्फ अपने पाठ्य विषय को ही जानना चाहिये किन्तु बालक को भी भली भांति पहचानना चाहिये। बालक की जीवन की अनेक समस्यायें मनोविज्ञान के अध्ययन से सुलझायी जा सकती हैं। कितने ही बालक उद्दण्ड होते हैं और कितने ही अन्यमनस्क ! इन कारणों

[शेष पृष्ठ १४ पर]

राजकुमारी अमृतकौर त्याग-पत्र दें !

यह सम्पादकीय लेख २० जून के आर्य मित्र में प्रकाशित हुआ था। लेख के प्रकाशित होते ही देश भर में हलचल मच गयी है और आज सम्पूर्ण राष्ट्र एक स्वर से हमारी मांग का समर्थन कर रहा है लेख को दुबारा प्रकाशित करने का आग्रह करते बहुत से पत्र हमें प्राप्त हुए हैं, बहुत से स्थानों पर इसे विज्ञापन के रूप में छपा कर बाँटा गया है, अतः पाठकों के अनुरोध पर यह सम्पादकीय पुनः प्रकाशित किया जा रहा है।

—सम्पादक

आज डाक से हमें राजकुमारी अमृतकौर द्वारा २७ अप्रैल को बाघू में दिये भाषण की मूल प्रति पढ़ने को मिली, इस भाषण का वृत्त हमें पहले भी देखने को मिला था और उसकी आलोचना भी हमने की थी किन्तु आज पूरी लिपि पढ़कर हमें अत्यन्त आश्चर्य हुआ। हम स्वप्न में भी कल्पना न कर सकते थे कि भारत सरकार की एक उत्तरदायी अधिकारिणी महिला इस प्रकार की असत्य साम्प्रदायिक मनोवृत्ति का परिचय देने का साहस करेगी ?

आप ने कहा १ आर्यसमाजी बुरे सबक सिखाते हैं। २ आर्यसमाजियों की क्या मजाल जो तुम्हारे (ईसाइयों) के ऊपर अत्याचार करें ! ३ गुंडेलोग मसीह धर्म पर नहीं, बल्कि अपने धर्म पर अत्याचार करते हैं। ४ जैसे भी हो यह कलंक मिटाया जाए ! सारे भाषण का सार इन्हीं ४ बातो मे आ गया है। कहा तो उन्होंने बहुत कुछ है और सारा ही विष भरा है पर हम केवल इन वाक्यों के आधार पर देश की समस्त आर्य जनता की ओर से मॉग करते है कि राजकुमारी अमृतकौर त्याग-पत्र दें या क्षमा मागें।

राजकुमारी जी ने पहली बात यह कही कि आर्यसमाजी बुरे सबक सिखाते हैं। हम पूछना चाहते है कि वे कृपा कर बताएं कि वे बुरे सबक कौन से हैं ? क्या यह कहना कि गुमराह व्यक्ति पर ईमान न लाओ, पाप है, या विदेशी पादरियों के चन्द चाँदी के टुकड़ो में न बिको अपराध है, क्या कहते हैं आर्य समाजी ? यह बताने की कृपा राजकुमारी महोदया ने क्यों नहीं की ! क्या विदेशो अज्ञानी, धर्म के नाम पर कुटिल राजनीति के प्रचारकों के हाथ भारत की गौरवगरिमा को बेच दिया जाय। आखिर इच्छा क्या है उनकी ? झूठ, पाखण्ड अनाचार, विश्वासघात के आधार पर खड़े ईसाई मत की आलोचना न की जाए या अमेरिका-इंग्लैंड के बल पर नया ईसाईस्थान बनाने की चालों का भंडाफोड़ न किया जाय ? यदि विदेशों से आकर पादरियो को भ्रम जाल फैलाने का अधिकार है तो क्या आर्यसमाज को भारत की गौरव गरिमा स्वतंत्रता को अक्षुण्ण बनाए रखने का भी अधिकार नहीं ? अमृतकौर महोदया नहीं जानतीं कि आर्यसमाज सत्य न्याय और मानवता का प्रसारक है, जानें भी कहां से, उन के ईसाईमत में सारी बुराइयों का भंडार जो भरा पड़ा है, और जो जैसा होता है उसे सभी वैसे ही प्रतीत भी होते हैं। वे यह भूल जाती हैं कि आर्यसमाज जिस विचारधारा का प्रचार करता है उस की आधार शिला व्यक्ति का सच्चा झूठा जीवन चरित्र नहीं अपितु केवल सत्य है। वह ईश्वर की उपासना सिखाता है, ईश्वर के नकली बेटों की नहीं और यदि यह भी बुरा सबक है तो हम राजकुमारी महोदया से स्पष्ट शब्दों में डंके की चोट कहना चाहते हैं कि उनकी और पं० नेहरू की धमकियाँ हमें झुका नहीं सकतीं। हम यह बुरा सबक [अमृतकौर के शब्दों में] देते ही रहेंगे !

दूसरी विशेष आपत्ति हमें राजकुमारी के इन शब्दों पर है कि 'गुंडे लोग मसीह धर्म पर नहीं, बल्कि अपने धर्म पर ही अत्याचार करते हैं। "इन शब्दों में कितनी दूषित मनोवृति छिपी है यह कहने की बात नहीं। छिपे रूप में राजकुमारी अमृतकौर ने समस्त आर्य जगत पर यह ओछी चोट की है। हम राजकुमारी महोदया के इन शब्दों की तीव्र शब्दों में निन्दा करते है।

इन शब्दो को कहकर राजकुमारी जी ने भारत की राष्ट्रीयता का, राम कृष्ण ऋषि मुनियों का घोर अपमान किया है, यह सात्विकता, मानवता तथा नैतिकता पर करारी चोट है, इस अपमान के कड़वे घूंट को हम आज पीने के लिए तैयार नहीं।

हम अपनी आंखों भारत की स्वतंत्रता को मिटते, गौरव को लुटते देखने के लिए उद्यत नहीं, इसलिये हम चाहते हैं कि संपूर्ण देश में यह मांगे की जांय कि राजकुमारी अमृतकौर स्वास्थ्य मंत्रिणी पद से त्याग पत्र दें या क्षमा मागें। इस आन्दोलन को तेजी से चलाया जाय, प्रस्ताव पास कर गृहमंत्री, प्रधान-मन्त्री, सार्वदेशिक सभा, आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यालयों में भेजा जाए।

हम देश के समस्त आर्य संस्कृति प्रेमियों को इस अपमान का प्रतिकार लेने के लिए तैयार होने का आह्वान करते है, सोने का समय बीत चुका, ईसाई मत ने सत्य को ललकारा है, हम सत्य धर्म के उपासक असत्य और अज्ञान को बढ़ते देख अब मौन नहीं रह सकते, अतः आवश्यकता है कि पूरे बल से देश भर में ईसाइयों के जालों को छिन्न भिन्न करने का प्रण किया जाय।

सत्य की पताका कभी झुकेगी नहीं। 'सत्यमेव जयते' भारत राष्ट्र का राष्ट्रीय नारा है। इसी को मूर्तरूप देने, समस्त सम्प्रदायों को नष्ट करने का हमारा प्रण है इससे डिगना है देश द्रोह।

गम्भीरता और न्याय की दृष्टि से देखा जाय तो इस वक्तव्य को देकर स्वास्थ्य मंत्रिणी ने गम्भीर अपराध किया है, जिसका दण्ड उन्हें मिलना ही चाहिये। हम भारत को विदेशी पादरियों के जालों में फंसाने के प्रयत्नो को राष्ट्र द्रोह समझते हैं। राष्ट्र द्रोह कैसे और क्यों, हम सहन करें, यह हमारी समझ में नहीं आता, आप क्या सोचते हैं ?... ... ...

वेद में इतिहास....

[पृष्ठ १५ का शेष]

पुस्तक में किये अर्थ पर है। पाठक मूल वास्तविक मन्त्र के अर्थों से वञ्चित न हों इसलिये हमने इसी मन्त्र पर अपनी पुस्तक में जो लिखा है उसको उद्धृत करते हैं।

(पृ० ९२ ९३)

वेदमन्त्र—दण्डा इवेद् गोअजनास आसन् परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः। अभवच्च पुर एता वसिष्ठ आदित् तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥ ऋ० ७।३३।६॥

श्री प० जी का अर्थ (गोअजनास दण्डाइव) गौओं के चलाने वाले दण्डों के समान (भरता परिच्छिन्ना अर्भकास आसन्) भरत लोग छोटे और अल्प थे। (तृत्सूनां पुरः एता वसिष्ठः अभवत्) उन तृत्सुओं, भरतों का वसिष्ठ पुरोहित हुआ। (आत् इत् तृत्सूनां विशः अप्रथन्त) तबसे भरतों की प्रजा बढ़ने लगी।" इन अर्थों में भी 'भरताः' 'तृत्सूनाम्', 'वसिष्ठः' इन पदों के शब्दार्थ नहीं दिये हैं और भूयकालिक अर्थ किया गया है। जिससे ये ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम मानलिये प्रतीत होते हैं। कोई विद्वान भी इन अर्थों को पक्षपात रहित अर्थ नहीं मान सकता। साफ साफ यह ऐतिहासिक पक्ष का अर्थ प० जी ने किया है। इस पर जो विशेष विवरण आपने लिखा है, पाठक उसको भी देखें—

(१) (गोअजनास) गौओं के चलाने के लिये जिस प्रकार डंडे छोटे से बारीक से निर्बलसे होते हैं, (२) वैसे ही भरत लोग परिच्छिन्न अल्पसे प्रदेश मे रहने वाले वा शक्ति हीन थे। (३) भरतो ने वसिष्ठ का अपना पुरोहित बनाया, नेता बनाया (४) तबसे भरत लोग बढ़ने लगे, उनका राज्य बढ़ने लगा।"

समीक्षा

श्री प० जी की इन चार टिप्पणियों से भी स्पष्ट कि भरत लोग तृत्सु थे, वसिष्ठ उनका पुरोहित था। इतना सब मान कर इसका टिप्पणी' में ही पण्डित जी अपनी दूसरी करवट (*turn*) लेते हैं।

'तृत्सु' और 'भरत' ये नाम एक ही के हैं भरत जो भरण पोषण हो कर बढ़ना चाहते हैं, वे भरत हैं। तृत्सु (तृट्-सु) तृषा से युक्त, अपनी उन्नतिकी प्यास सदा जिनको लगी रहती है। अपनी उन्नति के लिये जो सदा तृषित से रहते हैं, उनका अगुआ नेता 'वसिष्ठ' होता है। तात्पर्य इति वसिष्ठ जो उत्तम रीति से प्रजाओं का निवास कराता है। प्रजाकी उन्नति करने के लिये जो करना आवश्यक है वह ज्ञान जिसके पास है वह 'वसिष्ठ' है इस विवरण से स्पष्ट है कि पण्डित जी शब्दों के मूल अर्थ जानते हैं, परन्तु जानते हुए भी वे वेदमन्त्र के प्रधान मुख्यार्थ में उन शब्दों के उन अर्थों को नहीं देना चाहते। इस में उनकी क्या दुरभिसन्धि है इसको वे ही जान सकते हैं? फिर आगे लिखते हैं—"ऐसा पुरोहित भरत लोगों ने किया। तब से वे [विश. अप्रथन्त] प्रजाजन, भारतीय लोग बढ़ने लगे फैलने लगे।

उपसंहार में श्री प० जी अपने ऐतिहासिक रंग में फिर रंग गये हैं। फिर आगे आप लिखते हैं—"यहाँ तृत्सु प्यासे, 'भरताः' भरण करने वाले, और 'वसिष्ठ' निवासक इन शब्दों के श्लेष अर्थ को जानने से मुख्य उपदेश का ज्ञान हो सकता है।"

इस लेख से भी पण्डित जी का लिखने का यह मतलब है कि यदि वेद के मन्त्र से आपको मुख्य उपदेश [Main Moral] का ज्ञान करना है तो आप इन शब्दों के श्लिष्ट अर्थ लेवें। नहीं लेना हो तो वह इतिहास बना बनाया है। अर्थात् श्री प० जी के अपने मत में ऐतिहासिक व्यक्ति परक अर्थ वेद का मुख्यार्थ है और उसमें से शब्दश्लेष से उपदेश-ज्ञान निकलता है। तब वेद भी रामायण, महाभारत, और तुलसी रामायण के समान भरतों, तृत्सुओं, वसिष्ठ, उर्वशी, पुरुरवा आदि की पौराणिक कथाओं को बतलाता है, उन नामों के शब्दार्थों से श्लेष से दूसरा अर्थ भी निकल सकता है। यह तो सादी की लोमड़ी और नौशेरवाँ की कहानी के समान वेद की रचना हुई। इसी बात की हमने "क्या वेद में इतिहास है?" पुस्तक के ९२ और ९३ पृष्ठों में आलोचना की है। अगले लेख में हम उस बात को और भी स्पष्ट करेंगे जो प० जी ने राम की कथा सी लिख कर स्पष्ट किया है। * *

[पृष्ठ १० का शेष]

कम्यूनिज्म ही क्यों ?

ठीक होने पर अर्थ पर भी इसका अपूर्व प्रभाव था इसकी साक्षी उपनिषद् के एक अति प्रसिद्ध वचन से मिलती है, कि चक्रवर्ती राज्य का अधिष्ठाता अश्व पति जो महाराज अपने राज्यका वर्णन करते हुए ऋषि महर्षियों को कहते हैं कि मेरे समस्त राज्य में कोई चोर तथा दूसरे के अधिकार लेने की लालसा वाला कोई नहीं। न कोई कजूस मक्खी चूस तथा चोर बाजार और मिलावट करने वाला छोटा व्यापारी है। न कोई शराबी तथा नशे बाज है। और न कोई अनग्निहोत्री है और न कोई ऐसा मनुष्य है जो पंचमहायज्ञों का अनुष्ठान प्रति दिन न करता हो, न कोई मूर्ख तथा अपढ़ है और न कोई दुराचारी पुरुष है। जब कोई दुराचारी पुरुष नहीं तो दुराचारिणी की कहाँ से हो सकती है।

यह है आदर्श वैदिक आर्य राज्य की घोषणा। जिस की रचना तथा संचालन करोड़ो वर्षों तक संसार में रही है। आओ हम सब सभी भेद भाव मिटाकर इस वैदिक आर्यराज्य के विश्वभर में स्थापित करने का प्रयास करें कि संसार भर के दुःखों कष्टों, युद्धों महायुद्धों का ह्रास तथा सुखों और सच्चे धर्म का प्रसार हो।

अनेक वेद मन्त्र द्वारा एतत्सम्बन्धी सुनाये गये कम्यूनिस्ट भाइयों की हर शंका का युक्ति युक्त समाधान किया गया। जिस पर कम्यूनिस्ट वक्ताओं ने आर्य समाज के प्रोग्राम की भूरि भूरि प्रशंसा की। * *

मनोविज्ञान........

[पृष्ठ ५ का शेष]

का पता उनके जीवन के ऊपरी अध्ययन से नहीं चलता। इसके लिये उनके मन का पूर्ण अध्ययन करना आवश्यक है।

२—स्वास्थ्य—लाभमें उपयोगिता—

मनोविज्ञान का अध्ययन स्वास्थ्य लाभ करने में बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है। जन- साधारण में यह बात एक मैत्री-भावना का अभ्यास स्वास्थ्य वर्द्धक और आरोग्यदायक होता है। इसके प्रतिकूल जिन विचारों से मानसिक क्षोभ होता है वे स्वास्थ्य विनाशक होते हैं।

मनोविज्ञान की आधुनिक खोजों ने मनुष्य के विचार और स्वास्थ्य के सम्बन्ध पर एक नया प्रकाश डाला है। मनुष्य की बहुत-सी अतृप्त इच्छाएं तथा कलुषित भावनाएं मानसिक अथवा शारीरिक रोग के रूप में प्रकट होती हैं। चित-विश्लेषक चिकित्सकों ने कई ऐसे रोगों का पता लगाया है जिनकी उत्पत्ति का कारण मानसिक है और जिन्हें मानसिक चिकित्सा के द्वारा ही हटाया जा सकता है। हिस्टीरिया, हठीलापन, उन्माद, अनिद्रा, सोते समय बकवाद करना, आत्म घात की प्रवृत्ति आदि अनेक ऐसे मानसिक रोग हैं जो किसी प्रकार की शारीरिक चिकित्सा के द्वारा नहीं हटाये जा सकते। ऐसे मानसिक रोग हटाने के लिए मानसिक चिकित्सा की आवश्यकता होती है। अनेक शारीरिक रोगों का कारण भी मानसिक होता है। कभी कभी साधारण शारीरिक संवेगपूर्ण भावना के दमन से उत्पन्न हो जाते हैं। लकवा, मिर्गी कोष्टबद्धता, मधु मेह दमा आदि साधारण रोगों का कभी कभी मानसिक कारण पाया जाता है। कितने ही शारीरिक रोग बहानेबाजी के रोग होते हैं। मन इन रोगों की उत्पत्ति किसी अप्रिय कर्तव्य से बचने के लिए करता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि हमारे वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन का ऐसा कोई पहलू नहीं जिसमें मनोविज्ञान की आवश्यकता न हो। +

कब्ज की बीमारी से बचें

[पृष्ठ २ का शेष]

से उसकी रगड़ से रक्त आने लगता हो इसमें भी यह चूर्ण सेवन करना फायदा करता है।

क्षय अन्य बीमारियों में जुलाब देना मना है। उधर यदि विजातीय मल दोष दूर न हो तो शरीर क्रिया अधिक दूषित बनती है। ऐसी स्थिति में जुलाब की क्षमता न हो ऐसी सहज, सरल व मारक शक्ति पैदा करने लिये उपरोक्त चूर्ण लेना चाहिए। क्षय के बीमार के लिए ईसबगोल और मौरेठी पथ्य हैं। उनके अनुपान के साथ हर्रे होने से भी लाभदायी सिद्ध होती है।

गर्भिणी का कब्ज

गर्भिणी के कब्ज में धक्का देकर मल बाहर करने वाली औषधियों को नहीं दिया जा सकता। किन्तु उपरोक्त चूर्ण बिना किसी हिचक दिया जा सकता है और उससे निश्चय ही लाभ होता है।

—कब्ज के कारण जो दिन दिन सूखते जाते हो, शरीर काला पड़ता जाता हो, रक्त की गरमी बढ़ती जाती हो, और अनेका बार आशंका उठती हो कि शायद मुझे हलका सा ताप बना रहता है, साथ ही वजन बराबर घटता जाता हो ऐसे बीमारों को नियम से यह चूर्ण लेने से अवश्य ही रोग से मुक्ति मिलती है।

ध्यान रहे कि स्निग्धता के कारण ईसबगोल वात शमन करता है, मौरेठी कफ की शक्ति बढ़ाती है और हर्रे पित्त शमन शक्ति देती है इस प्रकार यह चूर्ण त्रिदोष क्षय बीमारियों में अमोघ लाभकारी सिद्ध होती है। औषधि अत्यन्त सरल व सस्ती होने के साथ ही किसी भी अवस्था में हानि नहीं पहुंचाती अतः इसके सेवन से अवश्य ही लाभ उठाइये। * *

16-7-55

दो गीत

★

जीवन बीत रहा है सब का,
पर जीवन का ज्ञान नहीं है।

ज्ञान नहीं है लक्ष्य इष्ट का,
ज्ञात नहीं कर्तव्य महान ॥
आज मनुज का अन्तर जल कर
बना हुआ है क्यों शमशान ?

हंस हंस कर रोते हैं सारे,
पास मधुर मुसकान नहीं है।

अन्तर पीड़ा पूर्ण सभी का,
छलक रही लेकिन मादकता।
जरा जीर्ण सा जर्जर मानव,
सोच न पाता अपनी लघुता,

पर प्रभुता के मद-मत्सर में,
मिटा रहा निर्माण यहीं है।

यह विनाश का चक्र रुद्ध हो,
शुद्ध बने अन्तर की वाणी।
ज्योतित पथ का आमन्त्रण पा,
थिरक उठे वीणा कल्याणी ॥

जिसके कंपन निर्देशक हो,
कह पाए अभिमान नहीं है।

★

अमर कल्पना की पलक में सजोए,
सजी जा रही है ये बासी कहानी।

नहीं ज्ञात यह, अन्त कैसा कहां है,
कहां क्षब्ध वीणा के स्वर टूटते हैं,
मनुज की व्यथा का कहां मूल उद्गम,
विजय में किसी के क्यों स्वर झूमते हैं,

निशा के अधर में बसी उदास कैसी,
सिसकती चली जा रही है रवानी ॥

मिटाना जिसे था, बढे जा रहे वे,
उठाना जिन्हें था गले जा रहे हैं।
निराशा की चक्की में पिसकर उषा के,
सजे स्वर्ण मोती ढले जा रहे हैं।

सृजन है अधूरा महानाश छाया,
कठिन बन गयी चार घड़ियां बितानी।

अभय मन्त्र जीवन पढ़ा है अधूरा,
नयी भावनाएं कहां से पधारें ?
बनी जा रही सत्य भाषा पुरानी,
विजय के लिए मार्ग कैसे विचारें ?

पलों में, युगों की बिटी साधनाएं,
विजय में रहे 'शेष कैसे निशानी ॥

★ [भारतेन्द्र] ★

वैदिक प्रार्थना

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु। प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ अथर्व० १९।६२।१

हे भगवन् ! मुझे विद्वानों का प्यारा बना, मुझे राजाओं [शासकों, वीर पुरुषों] का प्यारा बना, मुझे सब देखने वालों [प्राणियों] का और शूद्रों और वैश्यों [प्रजा] का प्यारा बना।

इस अंक के आकर्षण

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह सदा समाज रहना चाहता है। एकांगीपन से वह सैकड़ों मील दूर रहता है और भरसक यही प्रयत्न करता है कि हम समाज में मिल-जुल कर रहे। एक मानव प्राणी के लिये समाज का क्या स्थान है? समाज का कितना महत्व है? इसे आज का प्रत्येक व्यक्ति सरलता से समझ सकता है। केवल समझता ही नहीं बल्कि वह अच्छी तरह से जानता है कि बिना सामाजिक सहयोग के उसका जीवन कभी भी व्यवस्थित और सुलमय नहीं हो सकता। हम देखते हैं कि समाज से हमारा इतना गहरा सम्बन्ध है कि इसके बिना हम सरलता से आगे नहीं बढ़ सकते। समाज के यथार्थ लाभों का प्रयोग नहीं कर सकते। अपने जीवन का एक आदर्श सामाजिक जीवन के रूप में कभी भी परिवर्तित नहीं कर सकते। अब देखना है हमें समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य को, समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व को, जिसकी सहायता से हम सामाजिक जीवन धारा को सुचारु संचालन के साथ प्रवाहित कर सकेंगे और अपने समाज के निर्माण में तभी हम सुरत एक आदर्श की स्थापना कर सकेंगे जो दूसरों के लिये सदा अनुकरणीय रहेगा।

समाज का आदर्श रूप आज हमारे सामने नहीं है क्योंकि हम भ्रष्टाचार में फंसे हैं। हमने अपने आदर्श चरित्रों को खो दिया है। प्राचीन युग में समाज के अन्तर्गत सदाचार का जो स्थान था उसी स्थान को आज भ्रष्टाचार ने ग्रहण कर रक्खा है। हमारे चरित्र भ्रष्ट हो गये हैं। हमने अपने अस्तित्व को खो दिया है। आचार विचार के निर्णय में भ्रष्टता का आधिपत्य स्थापित हो गया है। फलतः समाज का आदर्श रूप हमारे सामने विद्यमान नहीं है। हम भ्रष्ट हो गये हैं और आज हमारे विचार भी शुद्ध नहीं है। हम समाज में एक दूसरे पर विश्वास नहीं करते। हमने अपने प्राचीनतम भारतीयता के गुणों का परित्याग कर दिया है। परिणामतः आज का समाज दूषित वातावरण से निर्मित केन्द्र के चारों ओर तीव्र गति से परिक्रमा कर रहा है। समाज के इस दूषित चक्कर में कितने पिस आ रहे हैं, इसका सरलता से अनुमान लगाया जा सकता है। भ्रष्टाचार ने समाज में प्रवेश करके हमें ऐसे पथ का पथिक बनाया है जिसका अनुगमन कर हम एक दिन अवश्य अवनति के उस महान् गर्त्त में समाज के साथ गिरेंगे जहाँ से निकलना मुश्किल ही नहीं वरन असम्भव है।

भारतीय समाज का महान उत्तरदायित्व

समाज और भ्रष्टाचार

[श्री ज्योतिभूषण जी चेतगंज बनारस]

भ्रष्टाचार ने हमारे सामाजिक रूपरेखा में आमूल परिवर्तन किया है। हमारे विचार व सामाजिक गतिविधि को बदल दिया है। समाज का निर्माण हमारे आचार विचार पर निर्भर रहता है। हमारे आचार-विचार व व्यवहार ही समाज को अच्छे व बुरे पथों की ओर उन्मुख करते हैं। सदाचार से समाज बनता है और भ्रष्टाचार से समाज बिगड़ता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भ्रष्टाचार का समाज पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। भ्रष्टाचार से व्यक्ति भी प्रभावित होता है। भ्रष्टाचार प्रकृति के व्यक्ति समाज में घृणा की दृष्टि से देखे जाते हैं। उनके विचार कभी भी अच्छे नहीं होते। भ्रष्टता उनके विचारों व व्यवहारों की अपनी विशेषता हो जाती है। उनका साथ करने से धीरे धीरे समाज में भ्रष्टाचार बढ़ता है और ऐसे व्यक्तियों की संख्या

भी निरन्तर बढ़ती जाती है जो भ्रष्ट होने के फलस्वरूप समाज की दृष्टि से निन्दा के विषय बने रहते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि भ्रष्टाचार का प्रभाव समाज पर सामूहिक रूप से पड़ने के साथ साथ एकाकी रूप में मनुष्य पर भी पड़ता है। भ्रष्टाचार का आधिपत्य हो जाने से समाज और व्यक्ति दोनों की निरन्तर अवनति होती जाती है, इसीलिये भ्रष्टाचार सामाजिक दृष्टिकोण से घृणा की वस्तु कही जाती है। भ्रष्टाचार के फलस्वरूप देश व राष्ट्र की सामूहिक प्रगति रुक जाती है। देश का नैतिक पतन होने लगता है। विश्व के प्रगतिशील एवं उन्नतिशील राष्ट्रों के साथ उन देशों की गणना नहीं की जाती जिनके साम्राज्य में भ्रष्टाचार का आधिपत्य रहता है। किसी देश के अवनति के विभिन्न कारणों में भ्रष्टाचार भी एक प्रधान कारण माना जाता है। भ्रष्टाचार से उस देश की प्रगति निश्चित रूप से रुक जाती है और देश अवनति पथ की ओर प्रेरित हो जाती है। सारांशतः यह कहा जा सकता है कि भ्रष्टाचार का प्रभाव समाज, व्यक्ति और राष्ट्र तीनों पर समान रूप से पड़ता है।

आज मानव समाज में भ्रष्टाचार का प्रत्यक्ष दर्शन हम नाना प्रकार के विविध रूपों में कर सकते हैं। अश्लील नारी चित्रों का भव्य प्रदर्शन, वेश्यावृत्ति का अनुपम आगरण, मांस भक्षण की अधिकता, मदिरा का आम प्रयोग, चोरी की वृद्धि, मानवीय चारित्रिक पतन की सीमा आदि सभी भ्रष्टाचार के विभिन्न रूप हैं जिनके कुप्रभावों से आज का समाज पूर्णतः प्रभावित हो रहा है। नारी-चित्रों का प्रदर्शन कितनी अश्लीलता के साथ किया जाता है, इसका अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है। नारी जाति को वासना का एकमात्र साधन समझ लिया गया है। आज का समाज नारी का उपयोग उसके वास्तविक अस्तित्व की अनुपस्थिति में कर रहा है। नारी चित्रों का अश्लील प्रदर्शन विज्ञापन का साधन बनाया गया है और लोगों को किसी ओर आकर्षित करने का एकमात्र उपाय भी इसी को बनाया गया है। समाज के प्रति नारी जाति के वास्तविक अस्तित्व को हम भूल गये हैं। भारतीय परम्परा के इतिहास में नारी जाति का जो प्राधान्य था वह आज हम भूल गये हैं और वास्तव में यही एकमात्र कारण है कि नारी चित्रों का प्रयोग महान अश्लीलता के साथ एक भ्रष्टाचार के रूप में किया जा रहा है। वेश्यावृत्ति हमारे सामाजिक भ्रष्टाचार का दूसरा उदाहरण है। भारतीय समाज का आज शायद ही ऐसा कोई नगर होगा जहाँ वेश्या गमन का कार्यक्रम आम रूप में न होता हो। शहरों को छोड़िये, भारत के बड़े २ कस्बों व गाँवों में भी वेश्याओं का बोलबाला स्थापित होने लगा है। आज के समाज में माँस खाने वालों की संख्या भी अधिक है। माँस भक्षियों की प्रचुरता ने सामाजिक वातावरण को दूषित बना दिया है। माँस-सेवन के परिणामस्वरूप उनके विचार भ्रष्ट हो गये हैं। सभी गन्दे और अश्लील कार्यों में खूब दिलचस्पी रखते हैं। मदिरा का सेवन भी आज बेधड़के रूप से किया जा रहा है। मदिरा पीने के फलस्वरूप उनके विचार कभी भी शुद्ध नहीं रहते। समाज कभी भी शुद्धता की ओर कदम नहीं बढ़ाता है। चोरी की कुप्रथायें आज भी समाज में पूर्णरूप से प्रभाव स्थापित किये हैं। चारित्रिक पतन अपनी उच्चतम सीमा को पहुंच रहा है।

भ्रष्टाचार एक सामाजिक हानि है। भ्रष्ट विचारों के फलस्वरूप मानवीय जीवन की वास्तविक वास्तविकता पूर्णतः मिट जाती है। हिन्दी की एक प्रसिद्ध कहावत है कि सदाचार ही जीवन है 'भ्रष्टाचार के आगे इस कथन की सत्यता पर सन्देह होने लगता है। अंग्रेजी में भी एक कहावत है कि यदि चरित्र खोया तो मानो सब कुछ खो दिया।' इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार-विचार और चरित्र से जीवन का गहरा सम्बन्ध है। जीवन की रूपरेखा ही आचार-विचार और चरित्र के मानदण्ड पर तैयार होता है। भ्रष्टाचार के रहते हुये हम समाज को आदर्श रूप कभी भी प्रदान नहीं कर सकते क्योंकि भ्रष्टाचार समाज की प्रगति में क्रियात्मक रूप से बाधा पहुंचाता है। आज भारतीय मानव समाज को एक आदर्श पथ का पथिक बनाने के लिये इस बात की अत्यन्त और नितान्त आवश्यकता है कि हम भ्रष्टाचार को समाज से पृथक रक्खें और जहाँ तक हो सके सक्रिय रूप से यह प्रयत्न करें कि सामाजिक वातावरण से भ्रष्टाचार का समूल निराकरण हो क्योंकि तभी हम भारतीय समाज को आदर्श का विशेषण प्रदान करने में सफल हो सकेंगे।

अब हमें यह सोचना है कि भ्रष्टाचार की समस्या को किस प्रकार हल किया जाय? किस प्रकार हम भ्रष्टाचार को समाज से पृथक करें? किस प्रकार हम भ्रष्टाचार से समाज को बचावें? आज हमारे सामने इस प्रकार की कई समस्यायें उत्पन्न हैं जिनका हल करना हमारे देश की सामाजिक प्रगति के लिये आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य है। इसके लिये सर्वप्रथम हमें एक सामाजिक आन्दोलन का शुभारम्भ करना होगा क्योंकि आन्दोलन के बिना समाज से भ्रष्टाचार का निराकरण मुश्किल नहीं बल्कि असम्भव है। हमें सामूहिक रूप से एकत्रित होकर संगठन के साथ जोरदार शब्दों में इस बात का नारा बुलन्द करना होगा कि भ्रष्टाचार

[शेष पृष्ठ १५ पर]

आर्यसमाज के समस्त पत्रों में सबसे अधिक छपने वाला आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र—

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम्

आर्य-मित्र

वर्ष ५७ | अंक २३

लखनऊ—रविवार १७ जुलाई तदनुसार श्रावण कृष्ण १२ सम्वत् २०१२ सौर १ श्रावण दयानन्दाब्द १३० सृष्टि सम्वत् १९७२९४९०५५

लखनऊ रविवार १७ जुलाई १९५५

श्रावणी का पर्व

३ अगस्त को रक्षा-बन्धन है, श्रावणी है, वेद प्रचार सप्ताह का आरम्भ है। श्रावणी के दिन से हम यज्ञ आरम्भ करते हैं अपनी और समाज की पवित्रता के लिए। हम इस दिन आत्म निरीक्षण भी करते हैं और सोचते हैं आगे बढ़ने का प्रकार। किन्तु हम अनुभव यह कर रहे हैं कि जिस उत्साह से यह पर्व मनाया जाना चाहिए उसका सर्वथा अभाव होता जा रहा है। जितना अपूर्व बल को प्राप्त करने और लक्ष्य सिद्धि हेतु इस दिन का प्रयोजन किया जाता रहा है वह भी हम विस्मृत करते जा रहे हैं।

किन्तु इस बार इस सप्ताह का आयोजन पूरे बल से किया जाए यह हमारी इच्छा है। देश की समस्त समाजें अभी से यह निश्चय करें कि इस सप्ताह में हम अपनी पूरी शक्ति से अपने क्षेत्र में वैदिक भावनाओं का प्रचार करेंगे और यह भी यत्न करेंगे कि अधिकाधिक नगर निवासी यह जान जाएं कि वेद क्या कहता है और आर्यसमाज क्या है? इस सप्ताह द्वारा वैदिक भावनाओं को, और आर्यसमाज को नया बल प्रदान करने की प्रतिज्ञा हम सभी मिल कर करें यह समय की माग है।

विश्व की बदलती परिस्थितियों में यह परमावश्यक है कि हम प्रत्येक प्रकार की गति विधि पर वैदिक विचार धारा की छाप अंकित कर दें। राजनैतिक सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण को बदलने के लिए हमारी विचार धारा का प्रभावशाली प्रकार से प्रसार होना परमावश्यक है।

महर्षि दयानन्द ने जिस महान लक्ष्य की सिद्धि के लिए आर्य समाज की स्थापना की थी वह अभी अधूरा है, यह अधूरा-पूरा हो, इस के लिए भी प्रभाव शाली पग उठाने और अपने पूरे बल से निरंतर आगे आगे बढ़ने की आवश्यकता है। इस आवश्यकता पूर्ति हेतु निश्चय करने का अवसर श्रावणी से अधिक उपयुक्त और कौन सा हो सकता है?

अत हमारा आग्रह है कि समाजें इस बार यह सप्ताह नवीन प्रकार से मनाए।

प्रथम श्रावणी के दिन समाजों में यज्ञ किया जाए, यज्ञ वेदी पर आर्य भाई सकल्प लें कि वे अपने किसी न किसी दुर्गुण या दुर्व्यसन का त्याग अवश्य करेंगे। इस दिन हैदराबाद बलिदान दिवस भी पड़ता है अत उस दिन की पावन स्मृति में हार्दिक श्रद्धाजलि भी हम अर्पित करें। पश्चात रात्रि को **वेद ज्ञान की विशेषताएँ** विषय पर नगर के किसी सार्वजनिक स्थान पर व्याख्यान का प्रबन्ध भी करें। व्याख्यान के लिए नगर में घोषणा भली प्रकार होनी चाहिए।

४—अगस्त। यह पूरा दिन आर्य समाज के नए सदस्य बनाने में और आर्य समाज के नियम वितरित करने में लगाया जाए। रात्रि को 'आर्य समाज क्या चाहता है?' विषय पर व्याख्यान का प्रबन्ध किया जाए।

५—अगस्त। यह सारा दिन वैदिक साहित्य के प्रचार में लगाया जाए और रात्रि में 'विश्व का महान तम ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश' विषय पर व्याख्यान कराया जाए।

६—अगस्त। इस दिन नगर भर में ईसाई षड्यन्त्रों के विरुद्ध आंदोलन किया जाए। रात्रि में 'ईसाईमत और प्रचार का विरोध क्यों?' विषय पर व्याख्यान का आयोजन किया जाए।

७—अगस्त। इस दिन नगर में पुन आर्यसमाज के सदस्य बनाने का आन्दोलन किया जाए और 'ईश्वरोपासना का सही प्रकार' विषय पर रात्रि में व्याख्यान का प्रबन्ध किया जाए।

८ अगस्त का दिन भारत की राजनीति में अत्यंत महत्त्व रखता है। अत इस दिन रात्रि के "वैदिक राजनीति" पर प्रभावशाली व्याख्यान कराए जाए। और भारत में वैदिक साम्राज्य की स्थापना के लिए वाता वरण तैयार किया जाए।

९ अगस्त के दिन "कम्यूनिज्म" विषय पर व्याख्यान का प्रबन्ध किया जाए और अपने कम्यूनिस्ट भाइयों को इस दिन विशेष रूप से आमन्त्रित किया जाए।

१० अगस्त को 'नास्तिकवाद व भौतिकवाद' पर आलोचनात्मक व्याख्यानों का प्रबंध किया जाए।

११ अगस्त को जन्माष्टमी है। यह दिन इस वेद प्रचार सप्ताह का अंतिम दिन होगा। सभी आर्य भाइयों को इस दिन समाज मंदिर में एकत्रित होकर सप्ताह के यज्ञ की पूर्णाहुति में भाग लेना चाहिए और योगीराज कृष्ण के सबंध में आर्य समाज की विचारधारा को प्रसारित करना चाहिए।

यह छोटा सा कार्यक्रम आर्य जनता के सामने हम रखते हुए यह आशा कर रहे हैं कि यह आगामी वेद प्रचार सप्ताह देश में एक नयी कांति-ज्योति और आशा भर देगा अधिक कुछ न लिखते हुए हम आर्य जनता से निद्रा त्याग जागृत हो, वह सब कुछ करने की प्रार्थना कर रहे हैं जिसे करने के लिए आर्य समाज की स्थापना की गई थी।

आर्यमित्र दैनिक के लिए

दैनिक मित्र के सदस्य बनने और बनाने के लिए जितनी प्रेरणा सम्भव थी हम कर चुके, इससे अधिक कुछ कहने के लिए शब्द नहीं जिन जिन ने हमारी प्रार्थना पर सहयोग दिया हम उनके अत्यंत आभारी हैं। जिन्होंने किसी भी कारण सहयोग देना उचित नहीं समझा हम उन का भी हृदय से आभार प्रकट करते हैं। आर्यमित्र जनता का है, सभा का है, सभी का इस की वृद्धि में गौरव है। अत जो यह समझते हों कि इस के प्रकाशन से आर्यसमाज का गौरव बढ़ रहा है वे हमें पूर्ण सहयोग दें। यही प्रार्थना इस समय हम कर सकते हैं।

हम जानते हैं कि आज जीवन सिसक रहा है, यह भी जानते हैं कि दयानन्द ऋषि का नाम लेते हुए भी उनके मार्ग को बुरी तरह भुलाया जा रहा है पर कुछ तपोधन हम में ऐसे भी हैं जिन के प्रताप से ऋषि द्वारा प्रदीप्त ज्योति जगमगा रही है। दैनिक मित्र का प्रकाशन भी परम श्रद्धेय कर्मठ सेनानी श्री कालीचरण जी आर्य के उत्साह और लगन का परिणाम है। सभा के उपप्रधान श्री प० महेंद्रप्रताप जी शास्त्री प्रिंसीपल डी० ए० वी० कालेज लखनऊ का अमूल्य सहयोग भी 'मित्र' की गति को प्रेरणा दे रहा है। जो भी इस में अच्छाइयां हैं उन का श्रेय इन दोनों को विशेषतया दिया जा सकता है या और दिया जा सकता है उन सहयोगियों को जिन्होंने हमारी प्रार्थना पर धन की सहायता की या कर रहे हैं।

उभरती विपक्षी शक्तियों को हम आर्यमित्र के बल पर ललकार चुके हैं। ईश्वर के बल पर आर्य जनता के भरोसे हमारी नाव बढ़ी जा रही है। हम स्वयं कुछ नहीं, आर्य जनता की आवाज हैं। हम अपना नहीं, आर्य समाज का जीवन चाहते हैं। हम 'आर्यमित्र' को उठाना भी इसी उद्देश्य से चाह रहे हैं। हमारी माग ऋषि के महान लक्ष्य की पूर्ति हित है। काश सभी हमारी भावनाओं को समझ पाते

जीवन जल रहा है प्राण मिट रहे हैं, और सिसक रही हैं आज वैदिक भावनाएं जो इन की परवाह न कर कभी किसी भी नाम पर इनकी ओर से उदासीन हैं, उन्हें हम क्या कहें? श्वास श्वास में वैदिक स्वर सुनने के इच्छुक जन समुदाय को वैदिक ज्योति प्रसार हेतु हम निमन्त्रण दे रहे हैं।

सत्यार्थ प्रकाश पाठ संख्या २६ अष्टम समुल्लास)

सृष्टि का अध्यक्ष

(श्री सु रेशचन्द्र वेदालकार एम० ए० एल० टी०, डी० ए० वी० कालेज गोरखपुर)

ऋग्वेद के १० वें मण्डल के १२६ वें सूक्त का ७ वा मन्त्र है —

इय विसृष्टि यत आ बभूव यदि वा दधे यदि वा न । यो अस्याध्यक्ष परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ।

अर्थात् हे अग [मनुष्य] जिससे यह विसृष्टि अर्थात् विविध रूपों वाली सृष्टि प्रकाशित हुई है। क्या आपने कभी सृष्टि के विविध रूप नहीं देखे । वह देखिए प्रात काल का समय है। आकाश अभी तारों की मीठी मीठी फुलझड़ियों से जगमग है । सरसो और मटर के खेतों से एक अजीब मीठी मादक सोंधी सुगन्ध उठ रही है। ऊष रानी के लिए पूर्वी क्षितिज रग मच सजाया जा रहा है। और सृष्टि के सौन्दर्य की प्रतिमा ऊषा एक मीठी मीठा मादक मुस्कान के साथ धीरे धीरे उतर रही है। वह देखो उसकी नरगिस-सी अलसारी आँखें अरे वह तो पैरों में मेंहदी, हाथों में महावर, ललाट पर कुकुम की बिंदी और लाल रेशमी साड़ी पहने वह कौन सी सुन्दरी फिर नव वधू बना है। सृष्टि का विसृष्टि का सुन्दरतम रूप यही तो है।

अरे अनुष्यो फूल की पखुड़ियो में तितली के पखो मे, पवन के झकारों में, झरनों के झर झर शब्द में, विस्तृत आकाश में अधकार का रूप धारण कर अपनी गर्जना से संसार में भय और भयकरता का सृजन करता हुआ मेघ दिखाई देता है यह भी उस सृष्टि का दूसरा रूप है। इन रूपों का प्रकाशक कौन है ? क्या कभी आपने विचार। है । इन सबका प्रकाशक भगवान है। सन्ध्या में भी तो कहा है-

उदुत्य जातवेदस देव वहन्ति केतव दृशे विश्वाय सूर्यम् ।

अर्थात् [त्य] उस [जातवेदसम्] सब पदार्थों में विद्यमान और उनका उत्पन्न करने वाले [सूर्य] प्रकाशक [देव] देव को [केतव] पताकाए उद्वहन्ति बनाती व पहुचाती हैं । [विश्वाय] सबको [दृशे] ज्ञान प्रदान करने के लिए ।

नदी, पहाड़, सूर्य, नक्षत्र, चन्द्रमा और तार, य असख्य जीव, प्राणी, पशु सब सृष्टि क रूप है इसीलिए इस विसृष्टि कहा गया है। यह जिससे पैदा हुई है उसी उत्पादक की इच्छा है कि वह इस धारण करे या प्रलय कर। पुराणो मे ब्रह्म, विष्णु और महेश इन तीन देवताओं का नाम आया । और सनातनी भाइ इनका वास्तविक भाव न समझकर इनको अलग अलग देवता मानकर पूजन लगे। वास्तव में एक ही परमेश्वर के ये तीनों गुण हैं। वह प्रभु क्योंकि विश्व की उत्पत्ति करता है अत उसे ब्रह्मा कहते हैं और ससार का पालक धारक और पोषक है इसलिए उसकी विष्णु नाम से उपासना की जाती है और क्योंकि वह इस विश्व का सहार भी करता है, अत उसे महेश नाम से या रुद्र नाम से याद किया जाता है। एक ही प्रभु की तीन शक्तियों के कारण जो तीनो नाम उन्हे दिए गए उन्हें मानने से मूर्ति पूजा आदि चल पड़ी।

परमेश्वर धारक और नाशक दोनो है इसका अनुभव हम प्रत्यक्ष रूप से करते हैं। यद्यपि हम अभिमानवश इस सत्य को प्राय. स्वीकार नहीं करते । हमें शिवाजी के जीवन की एक छोटी सी घटना ध्यान में आती है कि एक बार शिवाजी ने अपनी सेना, हाथी, घोड़े सैनिक और नौकर एव अपने आश्रित जनों पर दृष्टि डाली तो उनके दिल में अभिमान की भावना का उदय हुआ और उन्होने सोचा कि मैं कितना महान् हूँ, कितना शक्तिशाली हू कि इतने प्राणी मेरे द्वारा जीविका प्राप्त कर रहे हैं। यदि मैं चाहू तो ये प्राणी अब भी न जी सकेंगे। इस अभिमान भावना के जनक समर्थ गुरु रामदास ने जब शिवाजी मे देखे तो उन्होने सोचा कि मनुष्य में जब यह अभिमान आया तो उसका नाश भी निश्चित है। अत शिवाजी को बचाना चाहिए। उन्होंने एक दिन शिवाजी को बुलाकर एक पत्थर तुड़वाने को कहा और जब वह पत्थर तोड़ा गया तो उसमे से एक मेंढक निकला। गुरुजी ने शिवाजी से पूछा कि शिवाजी इसको कौन भोजन देता है। इस पत्थर के नीचे जहा न दाना, न पानी है वहा इसका पालक और धारक कौन है ? शिवाजी सब बात समझ गए और अपने को जो धारक पालक समझ बैठे थे उसके लिए उन्होंने क्षमा माँगी। प्रह्लाद के जीवन की यह घटना तो प्रसिद्ध ही है कि एक बार कुम्हार के जलते आँवा में से जीवित निकले बिल्ली के बच्चे को देखकर उसे परमात्मा की सत्ता का बोध हुआ और वह परमात्मा का भक्त बन गया। इसलिए मनुष्य को इस सृष्टि का धारक और नाशक उस प्रभु को ही समझना चाहिए। इससे हमारी अहं भावना का नाश होगा ।

इसीलिए तो सन्ध्या में अघमर्षण मन्त्रों में सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। विश्व रचना का चित्र उपस्थित करने के साथ ही साथ प्रलय का चित्र भी प्रभु ही बनाता है। जिस समय इस विशाल ब्रह्माण्ड का निर्माण करने वाला विराट् प्रभु प्रलय का महाताण्डव करता है, धरती काप उठती है आसमान मे चमकने वाले सूर्य, चाँद और सितारे टूट पड़ते हैं। ऊँचे खड़े पहाड़ों का कण कण चकनाचूर हो जाता है। विशाल सागर की बूँद बूँद सूख कर आसमान में विलीन हो जाती है। धरती का कण कण अलग होकर न जाने कहाँ उड़ जाता है।

उस विराट् आलोचन में,
मह ताप बुद बुद से जगते।
प्रखर प्रलय पावस में जगमग,
ज्योतिरिंगणों से जगते।

प्रलय की अन्धरात्री में पड़े हुए निराश मनुष्य के मुख से निकल ही पड़ता है.—

किसका था भ्रू-भग प्रलय सा
जिसमें ये सब सूर्यादि विकल रहे
अरे ! प्रकृति के शक्ति चिह्न ये
फिर भी कितने निबल रहे ।

और अभिमानी जीव सोचने लगता है —

देव न थे हम और न ये हैं
ये सब परिवर्तन के पुतले
हाँ कि गर्व-रथ में तुरंग सा
जितना जो चाहे जुतले।

इसलिए इस मन्त्र द्वारा सृष्टि का अध्यक्ष प्रभु का स्वीकार किया गया है और बताया गया है कि जिस व्यापक में यह सब जगत् उत्पन्न, स्थिति और प्रलय को प्राप्त होता है सो परमात्मा है। उसको तू जान, दूसरे को सृष्टिकर्ता मत मान और जब हम इस साध्य प्रभु के अनुभवात्मक ज्ञान का प्रत्यक्ष कर लेते है तो हमें मोक्ष प्राप्त हो जाता है। इसीलिए कहा है 'यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति' के अनुसार सर्वत्र भगवान् का दर्शन ही जीवन का ध्येय है ।

आर्यमित्र और आर्य जनता

आर्य जनता ने "दैनिक मित्र" के सचालन में जो अपूर्व सहयोग दिया है मैं उस की पहले कल्पना भी न कर पाता था। इसी का यह परिणाम है कि ३॥ मास में ही आर्यमित्र ने दैनिक पत्रों में अपना प्रमुख स्थान बना लिया है। यह दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति कर रहा है

मैंने प्रार्थना की थी कि यदि २०० व्यक्ति ऐसे मिल जाए जो प्रति माह १०) मासिक मात्र हमें भेज सकें तो दैनिक की आर्थिक दृष्टि से स्थिति सुदृढ़ हो जाए, पर अभी तक भी यह २०० नाम पूरे नही हो सके । कुछ समाजें, गोरखपुर, पूरनपुर आदि ने तो ४०) २५) मासिक तक भेजना आरभ किया है। इन का कितना धन्यवाद किया जाए ? पर क्या और समाजें केवल १०) मासिक भी भेजना आरभ नही कर सकती ?

साथ ही सदस्य बनानेके लिए मूल्यमें दी गयी कमी वेद प्रचार सप्ताह के उपलक्ष्य में १५ अगस्त तक बढ़ाई जाती है। मैं देश की समस्त आर्य समाजो से सानुरोध निवेदन करता हू कि वे पूरी शक्ति से 'आर्यमित्र' दैनिक के सदस्य बनाने में लग जाए । क्या इतना विशाल आर्य समाज का सगठन केवल ५००० सदस्य भी बना कर नही दे सकता ? अब तो सोचना छोड़िए और लगिए काम में, यह सभी से विनम्र प्रार्थना है ।

—कालीचरण आर्य मन्त्री सभा

उत्तर प्रदेश में आर्य समाज की स्थिति

[लेखक—श्री प० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय, एम ए]

विद्वान लेखक ने जो भी लिखा है भले ही वह बहुतों को खटके पर खटकने के स्थान पर यदि हम आत्म निरीक्षण करेंगे तो लेखक का उद्देश्य सफल हो जाएगा। —सम्पादक

कुछ समय हुये कि मेरे मित्र श्री आचार्य विश्वश्रवा जी ने 'उत्तर प्रदेशीय विभूतियाँ' शीर्षक लेख लिखा था। उस में मेरा नाम भी था। श्री आचार्य जी के हृदय में मेरे लिये विशेष प्रेम है उसी की प्रेरणा का फल है कि उन्होंने मुझे 'विभूतियों' में परिगणित कर दिया। यह व्यक्तिगत बात है अतः मैं इस की मीमांसा न करूंगा। परन्तु मैं उत्तर प्रदेश का हूं इसी में पला, इसी में आर्य समाज की प्रेरणा प्राप्त की और इसी में कार्य करना सीखा। अतः मेरी अपने प्रदेश के लिये भक्ति होनी चाहिये। प्रान्तीय सतुलन कार्य अच्छी बात तो नहीं है और विशेष कर उन लोगों के लिये जो आर्य समाज को एक ऊंचे स्थान से देखना चाहते हैं, परन्तु घर की ओर देखना स्वाभाविक ही है, घर के दुःखों की ओर नहीं इस से अभिमान उत्पन्न होता है। निर्बलताओं की ओर जिस से देश की उन्नति के साथ समस्त राष्ट्र की उन्नति हो सके।

भारतवर्ष में उत्तर प्रदेश सब से बड़ा प्रान्त है। इस में आर्यसमाजों की संख्या सब से अधिक है। ऋषि दयानन्द के आरम्भक कार्य क्षेत्र का सूत्रपात यहीं से हुआ। आर्य समाज ने इस प्रदेश में किन विभूतियों को उत्पन्न किया यह वैयक्तिक बात है। परन्तु मैं यह कहने में संकोच नहीं करता कि हमारे विशालकाय प्रदेश में आर्य सामाजिक जीवन उस स्तर पर नहीं है जिस पर होना चाहिये। यहाँ संगठन और कर्मण्यता की अत्यन्त न्यूनता है। दानशीलता का तो अत्यन्त अभाव है, मैं प्रान्तिक सतुलन करना नहीं चाहता। परन्तु मैं देखता हूं कि हमारा पश्चिमी पड़ोसी पंजाब कई बातों में पिछड़ने पर भी आर्य समाज के जीवन की दृष्टि से हम से आगे है अभी शेरकोट के एक महोदय ने एक लेख लिखा है कि क्या आर्य समाज में जीवन है? मैं चित्र के अनिष्ट पक्ष को आशिरा लोकि के सोय जनता के सामने रखना नहीं चाहता। परन्तु नेताओं के ध्यान को बलपूर्वक आकर्षित करने के हेतु मैं यह कहूंगा कि उत्तर प्रदेशीय आर्य समाज अत्यन्त शिथिल और दोषी है। और इस दोष में जनता का उतना ही उत्तर दायित्व है जितना नेताओं का। रोग के प्रमाण यह हैं:—

(१) हमारी संस्थायें पंजाब की संस्थाओं से बहुत पीछे हैं। वह चलती हैं, तब लिखिये हैं।

(२) हमारे दान की मात्रा बहुत कम है। जहां जहां पंजाबी आकर बस गये हैं वहाँ का दान के अनुपात कुछ बढ़ गया है परन्तु हमारे कारण नहीं।

(३) हमारे कई सम्पन्न जिले हमारी केन्द्रीय सभा से कुछ भी सहानुभूति नहीं रखते। उनके लिये उत्तर प्रदेश की कोई अपनी संस्था है ही नहीं। वह बाह्य प्रेरणा से प्रेरित होते हैं।

(४) हमारे अपने लोग ही अपना दामन खींचा करते हैं यह मैंने इस समय अनुभव किया जब मैं प्रधान पद में सभा भवन के लिये धन एकत्रित करने में लगा हुआ था। उस समाजों ने कहा कि हमारा प्रान्त शीघ्र विभाजित होनेवाला है। हम को सभा भवन से कोई प्रेम नहीं। मैं उन गन्दी हुई बातों को उखाड़ना नहीं चाहता। परन्तु आर्य मित्र आदि के समक्ष वही कठिनाइयां हैं जो मूर्तरूप से समक्ष आ रही हैं जो रोग है वह तो कभी न कभी सामने आयेगा ही।

उत्तर प्रदेश के रहने वाले कई व्यक्तियों ने अन्यत्र बहुत अच्छी कीर्ति प्राप्त की। जैसे महात्मा नारायण स्वामी जी परन्तु अपने प्रदेश में उन सब की अवस्था साधारण रही। यदि मैं एक एक करके गिनाने लगूं तो इस से ईर्षा उत्पन्न होगी। परन्तु यह परीक्षित बात है कि उत्तरप्रदेश की

समय सभा पर १८ हजार कर्जा था। मैंने चार वर्ष की लगातार दौड़ धूप से बड़ी कठिनता से २५ हजार इकट्ठा किया। यदि पंजाब होता तो ऐसे शुभ काम के लिये एक सप्ताह में ही पचास सहस्र आजाता। कई स्थानों पर मैं आया तो मुझे खेद से जान पड़ा कि मेरे कुछ मित्रों ने पहले से ही पत्र भेज दिये थे कि श्री प्रधान जी आते हैं। अच्छा स्वागत करना, जुलूस निकालना, फूलों की माला डालना, परन्तु अमुक अत्यन्त अल्प राशि से अधिक न देना। इसका परिणाम यह निकला कि जहाँ से हजार मिल सकता था वहाँ कठिनता से सौ मिला। एक स्थान पर एक भारी थैली भेंट की गई उस में पन्द्रह रुपयेके पैसे थे। जुलूस में 'प्रान्तपति' के जयघोषों से आकाश गूंज उठा। कहीं के भाई दूसरा से पत्रों को छिपा लेते थे कहीं के खुल जाते थे। कहीं इधर उधर से सुन लेते थे। उस समय मैंने निश्चय कर लिया था कि इस बार ऋण चुकता होने पर फिर 'आत्मपरिस्थ' का नाम न लूंगा। और अब तक साहस नहीं किया। कई समाजों के आश्रय पर आप कोई काम उठा नहीं सकते। यही कारण है कि जब कोई अधिकारी बन जाता है तो उस को काम चलाने में बड़ी कठिनाई होती है। यों तो कई बातों में हमारा प्रदेश किसी से पीछे नहीं है। एक है बातें बनाना, इन को मौलिक बातों का ज्ञान बहुत कम है। यह किसी आन्दोलन के पीछे लग सकते हैं। आर्य समाज को भिन्न भिन्न संस्थाओं में से एक भी ऐसी नहीं जिसका सूत्रपात इन्होंने किया हो या यदि किसी का अनुकरण किया हो तो उसे अच्छी तरह चलाया हो। हां यह इच्छा अवश्य रहती है कि समस्त विश्व का बोझ अपने सिर पर ले लेवें। हमारी सभा में प्रतिनिधित्व के अनुपात का बाहुल्य है। लगभग १००० समाज हैं और ६० प्रतिनिधि। अर्थात प्रत्येक १६ समाजों का एक सरक्षक है। परन्तु इस सरक्षक का वास्तविक अर्थ क्या? दो चार व्यक्तियों को छोड़कर शेष को यही नहीं मालूम कि कौन क्या है या हमको क्या काम करना है। ऊपरी आडम्बर इतना है कि वास्तविक कार्य के लिये समय ही नहीं मिलता। हां, यदि किसी के विरुद्ध कोई प्रस्ताव पास करना हो तो न न्याय का विचार करेंगे न नीति का। हर समाज प्रस्ताव की झड़ी लगा देता है। एक रुपये में आठ लिफाफ आते हैं। एक दो सरकार को भेज दिये, एक दो समाजों को और एक दो पत्रों को। और समझ लिया कि हमारी फूंक से पहाड़ उड़ गया। दुर्भाग्य से जो काम हमने उठाये उन सबके लिये यही कहना उपयुक्त होगा —कि

जिस डुगाल पर नजर डाली वह कम्बख्त हो गया। आर्य समाज का बौद्धिक स्तर बहुत नीचा है। यह बात तो समस्त देश पर लागू होती है। विशेषज्ञों की बहुत कमी है। यह प्रदेश की निर्बलता नहीं है अपितु आर्य समाज की ही है। यह क्यों है इस के कारणों पर विचार करना है। अभी तात्कालिक प्रश्न है दैनिक आर्य मित्र का। कभी कभी लोगों की टीका टिप्पणियां मेरे कान में आती रहती हैं। इन को सुन कर मुझे खेद होता है कि हमारे बीच में बेसमझी का आधिक्य है। उन्होंने कभी यह नहीं सोचा कि अमुक कार्य के लिये कितनी सामग्री चाहिये। मैं कभी कभी ऐसी चीजें लिख देता हूं जिस से लोग नाराज हो जाते हैं। क्योंकि तो नहीं लिखता परन्तु ९ १० बार आवश्यकता समझता हूं तो एक बार चेतावनी दे देता हूं परन्तु मैंने अधिकतर तो यह देखा है कि जिन का इन बातों की ओर ध्यान देना चाहिये वह सो रहे होते हैं। जब कोई विपत्ति आ पड़ती है तो लीपा पोती कर लिया जाता है। जिन को नेता बनने का शौक है [और मैं जानता हूं कि ऐसे महोदयों की कमी नहीं है] उन को बौद्धिक रीति को अपनाना पड़ेगा अन्यथा यह कागज का महल दूर तक चल नहीं सकेगा। हम में भावुकता ही भावुकता है। शेखचिल्लियों की भी सन्तानें हैं। सर्व साधारण भी अपने नेताओं से यश मांगते हैं। और यही बात इस में फल जाती है। मेरा आशय यह है कि उतना ही कहो जितना कर सको। नहीं कर सकते हो तो ठहर जाओ। शायद भविष्य में कुछ संचय का सामग्री उपलब्ध हो सके।

आवश्यक सूचना

साप्ताहिक का अगला अंक स्वाध्याय अंक ही होगा, पाठक कृपया नोट कर लें।

'ऋषि दयानन्द सरस्वती जी के ग्रन्थों में अनुचित हस्ताक्षेप'

[लेखक—आचार्य विश्वश्रवाः प्रधान मन्त्री सार्वदेशिक धर्मार्य सभा देहली]

आर्यमित्र ता० २२ मई ५२ के अङ्क में श्री प० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय का एक लेख स्वामीजी के ग्रन्थों में संशोधन के सम्बन्ध में छपा था उस के उत्तर में मेरा लेख आर्यमित्र ता० ९ जून ५२ के अङ्क में प्रकाशित हुआ जिसमें मैंने ऋषि के ग्रन्थों में संशोधन करने वालों की लीलाएं दिखाई थी। अब पुनः उपाध्याय जी का एक लेख आर्यमित्र के ३ जुलाई के अङ्क में प्रकाशित हुआ है जिस लेख में सब बातें स्वयं ही प्रकट हो गई।

(अशुद्धियाँ किसकी है)

ऋषि दयानन्द सरस्वती जी के ग्रन्थों में जो तथाकथित अशुद्धियों की चर्चा चलाई जाती है वे अशुद्धियां किसकी हैं

१—अशुद्धियां प्रेस की हैं?

२—अशुद्धियाँ लेखकों की हैं?

३—अशुद्धियाँ ऋषि से ही हुई हैं?

(प्रेस की अशुद्धियाँ)

यदि प्रेस की अशुद्धियों की चर्चा की जाती है तो प्रेस की अशुद्धियाँ तो कहने वालों की छपी पुस्तकों में भी हैं। प्रथम उनकी चर्चा करो। प्रेस की अशुद्धियां छपे हुए वेदों और वेदों की शाखाओं के जर्मन संस्करणों में भी है संसार के समस्त ग्रन्थों में प्रेस की हैं फिर यह कोलाहल क्यों।

(अशुद्धियां लेखकों की हैं?)

यदि अशुद्धियाँ लेखकों की हैं तो कौन सी बातें ऋषि के ग्रन्थों में लेखकों की हैं और कौन सी बातें ऋषि की है समस्त ऋषि ग्रन्थराशि सन्दिग्ध अप्रामाणिक हो जायगा। क्या स्वामी जी लेखकों से लिखवा कर स्वयं नहीं देखते थे। क्या प्रूफ देकर स्वयं संशोधन नहीं करते थे। लेखक से लिखवाकर देख लेने में अथवा स्वयं लिखने में कुछ अन्तर नहीं पड़ता। यह लेखक का प्रोपेगण्डा व्यर्थ का उठाया हुआ है। इस के अन्दर रहस्य कुछ और ही है।

(अशुद्धियाँ ऋषि की हैं?)

यदि अशुद्धियां ऋषि की हैं तो स्पष्ट कहिये और साहस करके ऋषि के शिष्यों के सामने आइए। ऋषि के काल में भी पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न आदि ऋषि के ग्रन्थों में अशुद्धियां निकालने वाले पैदा हुए थे और उन को ऋषि ने उत्तर दिये थे प्रेस की अशुद्धियां और लेखकों की अशुद्धियाँ तो बहाना मात्र वस्तुतः सब के अन्तरतम अशुद्धियां हैं प्रेस और लेखकों का नाम ले लेकर संशोधन कर डालना चाहते हैं। आर्य जनता के डर से ऋषि की अशुद्धियां हैं ऐसा कोई कहने का साहस नहीं करता। परन्तु हृदय की बात छिपी नहीं रहती।

उपाध्याय जी लिखते हैं कि—

"ऋषि दयानन्द उदार विचार के थे। अपने ग्रन्थों में भी अशुद्धियों को स्वीकार करते थे और उन का आदेश भी यही है कि मेरे वचनों को भी आंख बन्द करके मत मानो।"

(आर्यमित्र ता० ३ जुलाई ५२ पृष्ठ ८)

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि उपाध्याय जी ऋषि की ही अशुद्धियां ठीक करना चाहते हैं। यह प्रेस और लेखक का तो बहाना है। मैं स्पष्ट कह देता हूँ आप ऋषि की बातों को आँखें बन्द करके मत मानिये। आप आँखें खोल कर खण्डन कीजिये और मैं आँखें खोल कर उत्तर दूंगा। मेरी बात समस्त आर्य जगत मानता है केवल कुछ पण्डित अनार्ष ग्रन्थ व्यासी गड़बड़ करते हैं जिन की चिकित्सा मेरे पास है। ऋषि के ग्रन्थों में लगभग पांच हजार संशोधन कर डाले गये हैं यह प्याला भर चुका है अब सहन नहीं किया जा सकता।

अच्छा होता उपाध्याय जी अपने उन संशोधक साथियों की ओर से उत्तर देते जिन के किये संशोधनों की लीलाएं मैंने पिछले लेख में दिखाई थीं और उस बेहूदा टिप्पणी का नमूना दिखाया था जो "योधि" रूप पर वैदिक यन्त्रालय अजमेर ने टिप्पणी दी है। क्या ऐसी ही टिप्पणी देकर नग्न नृत्य करना है। यदि है किसी का साहस तो उत्तर दे कि ऋषि के वेद भाष्य पर यह टिप्पणी बेहूदा नहीं है। क्या यह समझ लिया गया है कि ऋषि के ग्रन्थ अनाथ हैं। जिसकी जो इच्छा हो पाठ शोध लो। जो मन पर आवे टिप्पणी दे डालो।

(सार्वदेशिक सभा क्या चाहती है)

अब मैं इस सम्बन्ध में सार्वदेशिक सभा का मत लिखता हूँ। सार्वदेशिक आर्य महासम्मेलन हैदराबाद में इस सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पास हुआ जो सार्वदेशिक की अन्तरंग सभा ने अक्षरशः स्वीकार किया तदनुसार सार्वदेशिक सभा का दृष्टिकोण यह है कि-

1—ऋषि दयानन्द सरस्वती जी के ग्रन्थ यदि अनेक स्थानों से छपें तो भी सर्वत्र एक जैसे छपें। यह न हो कि वैदिक यन्त्रालय के छापे में कुछ हो, आर्य साहित्य मण्डल वाले के पाठ कुछ हों सार्वदेशिक जिम देख वाले कुछ छापें। यह एक ऐसी बात है जिस को प्रत्येक आर्य को स्वीकार कर लेनी चाहिये।

२—इस का उपाय यह है कि एक स्थान पर बैठ कर सब इकट्ठे विचार कर जो जिस जिस बात पर विचार करना हो और जो सामूहिक निर्णय हो उस को सब स्वीकार कर लें और वैसा ही करें।

3—सार्वदेशिकसभा ही एक ऐसा संगठन हो सकता है जहां बैठकर विचार किया जा सकता है। सार्वदेशिकसभा की धर्मार्यसभा में इस वर्ष उन सब व्यक्तियों को रखा गया है जो इस सम्बन्धमें विचार करने की योग्यता रखते हैं। इसमें परोपकारिणी सभा के भी चार पांच व्यक्ति हैं, रामलाल कपूर, ट्रस्ट अमृतसर से सम्बन्ध रखने वाले सब विद्वान उस में हैं तथा अन्य भी उच्च कोटि के विद्वान भी उस में हैं। वहां कोई एक व्यक्ति तो निर्णय करने वाला है नहीं। और जो कोई ऐसा अपने आप को विद्वान समझता हो कि वे सब विद्वान भी जो ठीक समझेंगे वह भी मैं नहीं मानूंगा तो उस व्यक्ति को आर्यसमाज के संगठन से पृथक हो जाना छोड़ दें। अब वह और कार्य करे। संस्कृत प्रचार का आजकल बहुत कार्य हो रहा है वहां कौड़ी भी जल्दी मिल जायगी। यहां आर्य समाज में कुछ नहीं रखा है। मैं तो इस बात को स्वीकार करता हूँ कि जो सामूहिक संगठन विद्वानों का निर्णय करेगा मैं हस्ताक्षर कर दूंगा व्यक्तिगत रूप से सहमत न होने पर भी और प्रथम तो मुझे यह निश्चय है कि जब सब मिलकर बैठेंगे तो वही निश्चय होगा जो ठीक है। अतः संशोधन करने वालों को मैं अब निमन्त्रण देता हूँ कि वे संशोधनों की लिस्ट सार्वदेशिकसभा को भेजें। मैं वे उदाहरण सार्वदेशिकधर्मार्यसभा में निर्णयार्थ रखूं बिना उदाहरणों के शुष्क विवाद व्यर्थ हैं।

उपाध्याय जी को यह सन्देह अपने हृदय से निकाल देना चाहिये कि ऋषि के ग्रन्थ उनके ही पढ़े हैं और सब कुर्सी पर हिलते रहे हैं। विश्वविद्यालयों के छात्रों की योग्यता मैं जानता हूँ। इन एम० ए० परीक्षा में पढ़ने वालों और पी० एच० डी० के थीसिस लिखने वालों को कई वर्ष डी० ए० वी० कालिज लाहौर में रहकर पुस्तकें खोलकर पढ़ना सिखाया है जिनको यह भी पता नहीं कि संस्कृत साहित्य में कितना ग्रन्थ है और कहाँ कहां क्या क्या विद्यमान है।

वे दो दो पुस्तकें पढ़कर पण्डित बनने वाले भ्वादि शब्द को 'भीञ् प्रापणे' धातु का बना ऋषि का अशुद्ध समझते हैं। एक वाक्यपाठ को हाथ में उठाकर धातु-स्खलित बनने वाला 'अस समापने' मानता है "... समापने" नहीं मानता है ... सर्वे ... का समाधान ... ... का अशुद्ध प्रतीत होता है इन विश्वविद्यालयों के अज्ञानियों के डर से हम ऋषि के सत्यग्रन्थों को बदल दें। इन के पढ़े असत्य ग्रन्थों की हम पालिश क्या देंगे और उन्हें सत्य विद्या सिखावेंगे। क्योंकि इन विश्वविद्यालयों के छात्रों ने स्वयं अशुद्ध पढ़ रखा है अतः हमारा शुद्ध उन्हें अशुद्ध प्रतीत होता है अतः उनकी प्रशंसा लेने के लिये हम अपना शुद्ध अशुद्ध कर दें विचित्र तर्क है। एक निराला हेतु पूज्य उपाध्याय जी ने यह दिया है कि सनातनधर्मियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन दिखाई दे रहा है परन्तु हम पीछे लौट रहे हैं। श्रीमान् जी! सनातनधर्मियों की बातें गलत थीं हमारी सच्चाई थी वे अपने में परिवर्तन कर रहे हैं ठीक है। तो क्या इसका अर्थ यह है कि हम अपनी सचाई में भी परिवर्तन करें यह हेत्वाभास कुछ जंचा नहीं।

उपाध्याय जी लिखते हैं कि सन्दूक में बन्द रखने से कपड़े मैले होने से तो बचाये जा सकते हैं पर लाभ क्या। मैं इस सम्बन्ध में यह कहना चाहता हूँ कि कपड़ों को खूब पहनिये और संशोधन करने वाले धूलियों के पंजे पर मैले भी करें इन चोली [illegible] मत करिये और चोली को लहंगा ... लंगोटा मत बना दीजिये। अब यह बात चलेगी नहीं क्योंकि कोई अपने साथ के जाने पर ऋषि के बहुत से शिष्य ऐसे पैदा हो गये हैं जिन्होंने समस्त उपलब्ध वैदिक वाङ्मय देख लिया है और जो चैलेंज दे सकते हैं कि कोई ऋषि के ग्रन्थों में अंगुली से छूकर दे ख ले। ×

शुद्धि-आन्दोलन में सफलता कैसे मिले

[लेखक—श्री प्रोफेसर श्री भूदेव शर्मा, एम. ए., क्राइस्ट चर्च कालेज, कानपुर]

विश्व को एक मार्ग पर लाने के लिए, शांति स्थापना और सुखो की वर्षा के लिए एक मात्र मार्ग है 'शुद्धि'! शुद्धि यज्ञ है, धर्म है, लक्ष्य है, किन्तु यह पूर्ण कैसे हो, इसी पर विचार करते हुए प्रसिद्ध विद्वान् और आर्य समाज के पुरान विचारक लेखक ने कुछ सुझाव दिए हैं पाठक देखें कि उन का कर्तव्य उन्हें क्या प्रेरणा करता है। —सम्पादक

आर्य समाज द्वारा फिर से शुद्धि आन्दोलन छेड़ने की घोषणा से आर्य-संसार में एक हर्ष, उत्साह एवं चेतना की लहर सी दौड़ गई है। हम चाहते हैं कि यह उत्साह अक्षुण्ण बना रहे और अबकी बार हमें इस दिशा में अभूतपूर्व सफलता मिले। हमारा इस दिशा का पिछला अनुभव कुछ विशेष उत्साहवर्धक नहीं रहा है। हमारे आन्दोलन से हमें लाभ कम और हमारे विरोधी विशेष लाभान्वित एवं सतर्क होकर लाखों को अपने धर्म में दीक्षित करने में समर्थ होते रहे हैं। यही कारण है कि आज ५० वर्षों में समूचे भारत में इनकी करोड़ों की संख्या बढ़ गई है। हम दो चार माह में कहीं दस पाँच की शुद्धि कर पाते हैं और समाचार पत्रों में उसकी ऐसी दुन्दुभी पीटते हैं मानो हमने क्या कुछ असाधारण काम कर लिया लेकिन दूसरी तरफ वे नित्य सैकड़ों और हजारों का अनायास ही अपने धर्म में दीक्षित करते सदा के लिए अपना भी जाते हैं और कानोंकान किसी को पता भी नहीं चलता। इस लिए आर्य जनता से हमारा अनुरोध है कि हम इस बार एक उपसमिति द्वारा दूसरे धर्मावलम्बियों के प्रकार व प्रचार का ध्यान से अध्ययन कराएँ और उसकी रिपोर्ट के आधार पर इस दिशा में अग्रसर हों। हम चाहे आज किसी का शुद्ध न भी कर पाएँ पर यदि हम नित्य विधर्मी होने की गति को ही अवरुद्ध कर पाए तो हमारी एक बड़ी भारी सफलता होगी। यह सत्य है कि विधर्मी होने से रोकने के लिए आज जितना सुनहरा अवसर है उतना कभी नहीं था। आप विश्वास रखें कि यदि हम इतना भी कर पाए तो जितने विधर्मी हो गए हैं वे स्वयं एक दिन हममें मिल जायंगे और हमारे अंग बन जायेंगे। अतीत में ऐसा हुआ है और भविष्य में भी अवश्य होगा। इतिहास साक्षी है कि शंकराचार्य के शंखनाद की ध्वनि से ही बौद्ध धर्म की कमर टूट गई थी और यहीं उत्पन्न होकर भी, यहीं उसके मानने वाले अंगुलियों पर गिनने लायक ही रह गए थे। आवश्यकता केवल उत्साह, लगन तथा सोच समझकर कार्य सम्पादन करने की क्षमता की है।

आर्य बन्धुओं के विचारार्थ हम कुछ बातें नीचे लिख रहे हैं आशा है दूसरे अनुभवी आर्य विद्वान भी कुछ प्रकाश डालेंगे—

१—सबसे पहले आवश्यकता इस बात की है कि हम सिद्धान्त की दृढ़ता के साथ अपने व्यवहार में उग्रता छोड़ कर अत्यन्त विनम्रता से काम लें। हमारी वाणी और कर्मों में हम जितना एवं उग्रता का जितना अभाव होगा उतना ही हम दूसरे के मन को अपने वश में कर सकेंगे और कट्टर से कट्टर विरोधी को भी अपने अनुकूल बना सकेंगे। इसके लिए हमें महात्मा गाँधी की नीति का अनुसरण करना चाहिए। वे आजीवन सिद्धान्त में कभी झुके नहीं और व्यवहार में कभी कटुता या द्वेष आने नहीं दी। हम शास्त्रार्थ करें; कटु से कटु आलोचना करें लेकिन ताल ठोककर नहीं बल्कि शान्त भाव से, प्रेम से, आनन्द वृष्टि करने की मुद्रा में। जब कटुता व उग्रता की आवश्यकता थी हमने उससे काम लिया, अब जब कि समस्त जनमत हमारे अनुकूल है, हमारी सरकार भी करोड़ों रूपयों की सहायता अछूतों के स्तर को ऊपर उठाने के लिए कर रही है तो फिर उग्रता की आवश्यकता ही क्या? अब तो केवल शान्त-मुद्रा में अगुवा बनकर प्रेरणा देने का व पथ प्रदर्शक बनने की आवश्यकता है।

२—दूसरे यदि हो सके तो शुद्धि शब्द का प्रयोग न करके, उसकी जगह संस्कार शब्द का प्रयोग करना अधिक लाभदायक सिद्ध होगा। यौगिक अर्थ ठीक रखते हुए भी इसके रूढ़ि अर्थ में कुछ ऐसी तीव्रता एवं कटुता आ गई है कि विधर्मी तो लाल कपड़े को देख कर बैल के समान भड़कते ही हैं, अपने हिन्दू भाई भी शुद्ध हुए लोगों को और इस आन्दोलन को कुछ पृथक भाव से देखने के आदी हो गए हैं। हमने देखा है कि सन् २२ व २३ में अलीगढ़ जिले में कुछ गाँव ही शुद्धि वालों के पुकारे जाने लगे थे, उनमें शुद्ध होनेवाले और उनका साथ देने वाले सभी अलग छाँट दिए गए थे। हालांकि सभी समाज व धर्मों में प्रायश्चित व संस्कार का चलन है और उसी प्रकार हमारे हिन्दु धर्म में भी प्राचीन काल से है परन्तु जहाँ शुद्धि का नाम आया कि क्या पाकिस्तान और क्या अमेरिका यहां तक कि समूचे मुस्लिम व ईसाई संसार में एक तूफान सा उठ खड़ा होता है और हमारी सरकार के सामने भी एक विचित्र उलझन व समस्या उठ खड़ी होती है।

दूसरे इस काम के लिए शुद्ध शब्द शास्त्रीय भी नहीं है। वैदिक साहित्य में जहाँ तक हमें ध्यान है इस अर्थ में शुद्धि शब्द का कहीं प्रयोग नहीं है। "जन्मना जायते शूद्र. संस्काराद् द्विज उच्यते, इस उद्धरण में भी संस्कार शब्द का ही प्रयोग है शुद्धि का नहीं। मनुष्य और उसके समाज के सुधार के सभी प्रयत्नों को हमारे यहाँ १६ संस्कारों से ही अभिहित किया गया है। "कृण्वन्तो विश्वमार्यम् वेद वाक्य में भी विश्व को आर्य करना अथवा बनाने का ही आदेश है शुद्धि का नहीं। वस्तुतः देखा जाय तो मनुष्य कभी कोई अशुद्ध नहीं होता उसका तो उत्तरोत्तर संस्कार एवं विकास ही होता है। जब आर्य बन्धु किसी ऐसे विधर्मी को यह सुझाएंगे कि हम तुम्हारा केवल संस्कार कर रहे हैं, तो न तो उसे कुछ अनोखापन प्रतीत होगा और न दूसरे नागरिकों को शुद्ध वालों के गाँव मानने की भूल करने का अवसर मिलेगा।

३—तीसरे हम शुद्ध का काम अपने साधु व संन्यासियों के सुपुर्द करना चाहिये, यह काम वे जितनी तत्परता व सहूलियत से कर सकते हैं उतना साधारण गृहस्थ नहीं यदि ध्यान से देखें तो विधर्मियों में भी यह काम मिशनरियों व सूफी फकीरों व दरवेशों के हाथ में ही रहा है और अब भी है। हमारे यहाँ आर्य सन्यासियों की कमी है और जो हैं वे सिवाय शाँति पाठ करने के और किसी काम के नहीं। हमें आर्य विद्वानों एवं उपदेशकों की एक ऐसी संस्था या समिति बनानी चाहिए जो मथुरा, अयोध्या, हरद्वार आदि तीर्थ स्थानों में रहने वाले हजारों सन्यासियों में यह प्रेरणा करे कि वे इस दिशा में कुछ सक्रिय काम करें। यदि हमने ऐसा किया तो समूचे भारत में लाखों कार्यकर्ता हमें मिल जायंगे और जो काम हम पचासों वर्ष में नहीं कर पाए हैं वह वर्षों में हो जायगा। हमने अपने सन्यासियों को भी कुछ अलग सा ही कर रखा है, उनके खिलाने पिलाने का भार हिंदूसमाज अपने ऊपर वहन करता है लेकिन उनसे कुछ काम नहीं लेता। हमारे गुरुकुल इन तीर्थ स्थानों में बीसों वर्षों से संचालित है लेकिन वहाँ अब च्यवनप्राश बनाने के लिए आँवलों के बाग तो लगाए जा रहे हैं, च्यवनप्राश पैदा करने की ओर तनिक भी ध्यान नहीं है। यदि इन गुरुकुलों के संचालक व कार्यकर्ता विरोध के स्थान पर इन सन्यासियों, महन्तों व पंडो तक का सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न करें तो लाखों आदमी विधर्मी होने से बच जाँय और लाखों विधर्मी फिर हिंदू धर्म में दीक्षित हो जायं। आवश्यकता केवल नकेल घुमाने की है।

४—चौथे हजारों हिंदू अनजाने में ही मुसलमान व ईसाई बन जाते हैं। यह सभी जानते हैं कि खाते पीते, पढ़े लिखे तथा व्यवस्थित हिंदु परिवारों में ईसाई-मुसलमान बनने की न प्रवृत्ति रही है और न है। यदि बनते भी हैं तो हजारों में एक। असल में विधर्मी बनने वालों में अधिक संख्या अछूत, गरीब व भिखारी आदि की है। इनके विधर्मी होने के दो कारण हैं। एक तो हमारे गरीब से गरीब भिखारी तक में ईसाई-मुसलमानों से असहयोग एवं मार काट करने की भावना है और वह प्रारम्भ में इनके हाथ की छुई वस्तु ग्रहण करने और खाने से परहेज करता है परन्तु जब पेट की ज्वाला से उनके हाथ का भोजन किसी भी लाचारी में ग्रहण करने के लिए विवश होता है तो वह तुरन्त अपने को पतित व दीन समझने लगता है। दूसरी तरफ हमने देखा है कि इस दुर्बलता या अन्ध विश्वास का विधर्मी जान या अनजान में पूरा लाभ उठाते हैं। प्रायः विधर्मी परिवार हमारे भिखारियों को पैसा या आटा आदि न देकर रोटी भात आदि

[शेष पृष्ठ १० पर]

आर्यसमाज ध्यान दे ?

समय की माँग

[वेदव्रत वेदोपदेशक वेद कुटीर शेरकोट]

जिला नैनीताल शिवालिक पर्वत की उपत्यका में जिसे तराई के नाम से पुकारा जाता है इस बार मुझे जाने का अवसर मिला। मेरे एक मुसलमान मित्र जो इस क्षेत्र में वन विभाग में फारेस्ट गार्ड हैं गत दो वर्षों से मुझे वेद प्रचार के लिये इस क्षेत्र में बुलाते रहे। उनकी प्रेरणा के फलस्वरूप ही इसी १७ जून को वह दिन आ आया जब मैं उनके पास पहुंचा। मुझे जाने में कुछ विलंब हुआ जिससे अधिक भ्रमण करने का अवसर प्राप्त न हो सका, कारण कि १५ जून से इधर वर्षा प्रारम्भ हो जाती है और जिस दिन मैं वहाँ पहुंचा उस दिन से लेकर अब तक लौटा अर्थात् १७ जून से २१ जून तक नित्यप्रति वर्षा होती रही जिसके कारण विशेष सफलता न मिल सकी। जिस समय वर्षा बन्द रहती थी उस समय सभी लोग खेतों पर होते थे क्योंकि वर्षा हो जाने से धान की बुआई और भूमि की जुताई प्रारम्भ हो गई है।

यद्यपि उपरोक्त कारणों से कोई विशेष कार्य नहीं हो सका किन्तु फिर भी मुझे कई गाँवों में जाने और वहाँ के लोगों से मिलने तथा परिस्थितियों को समझने का अवसर अवश्य प्राप्त हुआ। बिछुआ, कुआँखेड़ा और पिपलिया इन तीन ग्रामों में कुछ लोगों से एक मुसलमान मित्र श्री तैमूर खाँ की कृपा से विशेष बातें भी कर सका। कुआँखेड़ा में २० जून की रात्रि को एक भाषण भी श्री कर्णसिंह जी आर्य के निवास स्थान पर हुआ।

श्री कर्णसिंह जी आर्य इस क्षेत्र के प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। आप जिला बोर्ड नैनीताल के सदस्य भी हैं और ऋषि दयानन्द जी महाराज के अनन्य भक्त भी। दोनों समय संध्या और नित्य प्रातः अग्निहोत्र आपकी दिनचर्या में सम्मिलित है। आपका १५ वर्षीय पुत्र ब्रह्मचारी वीरेन्द्र महाविद्यालय ज्वालापुर में विद्याध्ययन कर रहा है। आपके प्रयत्न से ही उस क्षेत्र में उत्कृष्ट माघ के दशहरे के अवसर पर होने वाले एक मेले में आर्यसमाज का प्रचार भी हो जाता है। कुछ लोगों को आपने यज्ञोपवीत धारी भी बना दिया है। आप आर्यमित्र दैनिक के ग्राहक भी हैं जिससे कुछ लोगों को पढ़ने का अवसर प्राप्त हो ही जाता है।

इस क्षेत्र के निवासी थारू नाम से पुकारे जाते हैं और यह क्षेत्र थरुवाट कहलाता है। पूछने पर यह लोग स्वयं को महाराणा प्रताप के वंशज बतलाते हैं। इन लोगों का कहना है कि सम्राट अकबर से युद्ध के समय हमारे पूर्वज मेवाड़ छोड़ कर इधर आ बसे थे। श्रद्धेय महाशय कर्णसिंह जी आर्य भी इसी वर्ग में से हैं। यह बहुत बड़ा क्षेत्र है और इस क्षेत्र में येही लोग बसे हैं, हाँ, कहीं कहीं पंजाबियों ने आकर अपने फार्म बना लिये हैं और खेती प्रारम्भ कर दी है। शिक्षा का यहाँ अभाव ही है। कुछ लोग केवल साक्षर मिलते हैं। जूनियर हाईस्कूल पास भी बहुत कम व्यक्ति मिलेंगे। जहाँ स्कूल खुल गये हैं कक्षाओं में कठिनता से ५-५ सात सात विद्यार्थी ही होते हैं। अशिक्षा के कारण अन्धविश्वास की जड़ें जमी हुई हैं। मांस का तो अत्यधिक प्रचार है ही, मद्य पान भी ये लोग खूब करते हैं। जड़ता इतनी है कि घर पर आये किसी व्यक्ति से यह लोग इतना भी नहीं पूछना जानते कि कहाँ से आये हो, क्या काम है। सरकार भी इन लोगों को उठाने के लिये प्रयत्नशील है किन्तु अभी सफलता के लक्षण प्रतीत नहीं हो रहे। यदि हमने इधर कार्य प्रारम्भ कर दिया तो सफलता निश्चित है और औषधि वितरण के लिये सरकार से भी सहायता प्राप्त की जा सकती है तथा विद्यार्थियों को नायक जाति के विद्यार्थियों की भाँति प्रतिनिधि सभा स्वयं भी छात्रवृत्तियाँ दे और सरकार से भी दिलाने के लिए प्रयत्न करे।

वेद का प्रचार इस क्षेत्र में भाषणों से नहीं सेवाओं से ही होगा। आठ आठ, दस दस मील के अन्तर पर केन्द्र स्थापित कर बीमारों में औषधि वितरण द्वारा तथा रोगियों की सेवा सुश्रूषा कर के ही इन लोगों को अपनी ओर आकृष्ट किया जा सकता है। समय समय पर ट्रैक्ट भी पढ़ेलिखे लोगों में वितरित किये जा सकते हैं तथा मेलों व बाजारों में प्रचारकार्य भी किया जा सकता है। परन्तु प्रमुखता सेवाकार्य को ही देनी होगी। औषधि वितरण आदि कार्यों के लिये उच्चकोटि के पण्डितों की आवश्यकता नहीं है यह कार्य तो ऐसे वानप्रस्थी तथा संन्यासियों द्वारा कराया जा सकता है जिन लोगों के पास उच्चकोटि के प्रमाण-पत्र तो होते नहीं किन्तु कार्य करने की धुन और योग्यता दोनों होती हैं और ऐसे लोग या तो ग्रामों में घूम-घूम कर अथवा किन्हीं आश्रमों में रहकर जीवन यापन करते हैं, और आर्य समाज में ऐसे लोगों का अभाव भी नहीं है। इतनी बात अवश्य है कि प्रारम्भ में प्रतिनिधि सभा को इस कार्य को करने वालों का व्यय भार अवश्य वहन करना होगा किन्तु समय के पश्चात् इस भार से सभा मुक्त हो जायगी, कम से कम जब तक इन लोगों में इतनी श्रद्धा और बुद्धि न उत्पन्न हो जाय कि यह ऐसे कार्य कर्ताओं का सत्कार करने लग जाँय सभा को ही व्यय करना पड़ेगा।

श्रद्धेय महाशय कर्णसिंह जी ने यह भी बतलाया कि यह लोग सरकार और कथाओं को भी कराने को तैयार हैं किन्तु कार्यकर्ताओं के अभाव में कुछ नहीं हो पा रहा। सत्कार्यों आदि के द्वारा इन लोगों में वैदिक विचार धारा को भरा जा सकता है। अभी तक तो पहाड़ी पण्डित यहाँ आते हैं जो इन लोगों से पर्याप्त धन प्राप्त कर ले जाते हैं तथा जन्म के आधार पर इन्हें नीच समझ कर इनसे घृणा करते हैं।

एक बात अच्छी है अभी तक ईसाइयों की यहाँ पहुंच नहीं है यदि उनके मिशनरी इधर पहुंच जाते हैं तो फिर कार्य करने में अधिक धन और शक्ति लगानी पड़ेगी। अतः आर्य प्रतिनिधि सभा ऐसे त्यागी और परिश्रमी वानप्रस्थी तथा संन्यासी कार्यकर्ताओं से सम्पर्क स्थापित करे कि जिससे थोड़े से ही व्यय में केन्द्र का संचालन किया जा सके।

प्रश्न शेष रह जाता है केन्द्रों के लिये स्थानों का, जो यह विशेष चिंता का विषय नहीं है, एक केन्द्र के लिये तो पीलीभीत-टनकपुर रोड पर खटीमा ग्राम के पास जहाँ रेलवे स्टेशन भी है, स्वयं महाशय कर्णसिंह जी ही अपनी भूमि में स्थान देने को तैयार हैं। वहीं पर फूस की झोपड़ी बना कर कार्य किया जा सकता है। दूसरा स्थान उनके ग्राम में भी उनका एक बाग है वहाँ भी केन्द्र बनाया जा सकता है और फिर धीरे-धीरे अनेक स्थान केन्द्र बनाने के लिये प्राप्त किये जा सकते हैं। बात केवल इतनी सी है कि यह केन्द्र अस्थायी होंगे, सो हमें कौन जायदाद स्थापित करनी है हमें तो ठहरने तथा कार्य करने को स्थान चाहिये। कालान्तर में स्थायी स्थान भी मिल सकते हैं। यदि उपरोक्त प्रकार कार्य प्रारम्भ किया गया तो सफलता सम्भव है। इस कार्य के लिये स्वयं मैं भी सभा की सेवा के लिये कुछ समय दे सकूँगा।

आर्यसमाज के विद्रोही

[ले०—भवानीलाल 'भारतीय', एम ए सिद्धान्त वाचस्पति, सरदार पुरा, जोधपुर]

यह कहा जाता है कि ऋषि दयानन्द ने संन्यासग्रहण कर अपने माता पिता को घोर कष्ट में डाल दिया। उनके माता पिता को अपनी होनहार सन्तान को इस प्रकार वैराग्य धारण कर परिव्राजक बन जाना कितना कष्टदायक सिद्ध हुआ होगा इसको कोई भुक्तभोगी ही जान सकता है। उस दुखी हृदय वाले दम्पत्ति के मन से मूलशंकर के प्रति कोई शुभाशीष नहीं निकली होगी। स्वामी दयानन्द को अपने जीवन में जो अच्छे शिष्य नहीं मिले और जो मिले भी उन्होंने स्वामी जी के साथ विश्वास घात ही किया, इसका कारण शायद उनके सन्तप्त हृदय माता पिता की दुख भरी आहें ही रही हों।

पं० भीमसेन जो ग्रन्थों में अपने आप को महर्षि दयानन्द का शिष्य लिखने में गौरवान्वित समझते थे अन्त में पौराणिक दल में जा मिले। अन्य शिष्यों की भी यही दशा हुई। मुन्शी इन्द्रमणि मुरादाबादी सर्व लोक में जाकर महर्षि के विरुद्ध हो गये। थियोसोफी मत के प्रवर्तक कर्नल आलकाट और मैडम ब्लैवेट्स्की भी अपने हृदय के कलुष को छिपा नहीं सके और उनका भी आर्यसमाज से सम्बन्ध टूट गया। शिष्यों की बात तो दूर रही स्वामी जी के वैदिक प्रेस के प्रबन्धकगण भी पहले दर्जे के स्वार्थी और कृतघ्न निकले। हरिश्चन्द्र चिन्तामणि और मुन्शी बख्तावर सिंह का कार्य असन्तोषपूर्ण होने पर ही उन्हें प्रेस के व्यवस्थापक पद से पृथक किया गया।

यह विद्रोह की परम्परा अब तक चली है और चलती जा रही है। स्वामी दयानन्द के अवसान के पश्चात् आत्मा राम और उनके ईश्वरानन्द जैसे एक समय के आर्य संन्यासी आर्यसमाज के कट्टर विरोधी बन गये। राय बहादुर मूलराज और लाला लाजपतराय जैसे आर्यसमाज के सभासदों ने ऋषि के सिद्धान्त और सम्प्रदाय का विवाद चलाया और पृथक दल की स्थापना हुई। अखिलानन्द और विश्वबन्धु शास्त्री जैसे विद्वान सैद्धान्तिक विरोध होने पर आर्यसमाज से पृथक हो गये। अखिलानन्द तो ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के कट्टर शत्रु ही सिद्ध हुए। इस सूची को और भी आगे बढ़ाया जा सकता है।

मैं प्रस्तुत लेख में आर्य समाज के इन दो प्रमुख विद्रोहियों की चर्चा करना

[शेष पृष्ठ १० पर]

आर्यमित्र के सम्बन्ध में दो आर्य विद्वानों के विचार

[लेखक—श्री बिहारी लाल जी शास्त्री]

जब मैंने आर्यमित्र कार्यालय को देखा। श्री सम्पादक जी से बातचीत हुई। माननीया श्री राजकुमारी अमृत कौर जी के विरोध में आर्यमित्र के लेख पढ़े।

इन सबसे मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि दैनिक आर्यमित्र की अत्यन्त आवश्यकता है। काम चल पड़ा है। जिसे असम्भव समझा जाता था वह सम्भव हो गया है। ऐसे समय यदि आर्य भाइयों ने ढील दिखलाई तो एक बहुत बड़ी भूल होगी। ऐसी भूल कि जिसका प्रायश्चित न हो सकेगा।

समस्या धन की है। परन्तु व्यर्थ की बातस संस्थाओं में आर्यसमाज का सहस्रों रुपया व्यय हो रहा है। शक्ति निरविवेक जा रही है और आये दिन पार्टी बाजी चलती रहती है। इससे धर्म प्रचार को कोई लाभ नहीं होता। पर आर्य मित्र के द्वारा सहस्रों जनों पर ऋषि का स्थायी प्रभाव पड़ता है। दूर-दूर तक ऋषि का संदेश पहुंचता है। अन्य लोग लाखों रुपया व्यय करके अपनी अपनी संस्थाओं का जनता में प्रचार करते हैं पर हम हैं जो प्रचार की दृष्टि में रुपये की ओर देखते हैं। इस प्रान्त में लाखों की संख्या में आर्य लोग रहते हैं। सभासद भी सहस्रों हैं। यदि एक एक रुपया वार्षिक भी दें तो आर्यमित्र का घाटा पूरा हो सकता है। सम्पादक श्री ज्ञानिवार जी जान से पत्र की सेवा में जुटे हैं। इन्द्र जोश है। लगन है पर हम में आज उत्साह नहीं दिखाई देता।

कुछ भाई ऐसा सोचते हैं कि हमें दैनिक निकलने की आशा न थी। अतः हमें आशा को सफल बनाने के लिये ही विरोध करते रहना चाहिये। कुछ कहते हैं कि और दैनिक इससे अच्छे निकलते हैं। पर हमें यह सोचना चाहिये कि हमारी आलस्यमयी आशा निराशा दूर हो गयी तो यह तो अच्छा ही हुआ और अन्य दैनिकों की तुलना में अभी से गरीब के बच्चे को रखना कहां तक ठीक होगा। यह पत्र जैसा कुछ भी है आखिर है तो हमारा। हमें उत्साह के साथ इसका पालन पोषण करना चाहिये। किसी दिन यह पत्र ही और अधिक उन्नत हो सकता है।

आर्य भाइयों ने सदा लोकोत्तर कार्य किये हैं। और प्रारम्भ करते कभी पग पीछे नहीं हटाया आज वे क्यों सुस्ती दिखा रहे हैं। यह समय आन्दोलन का है। जनान्दोलन के द्वारा झूठ सच बन जाता है और सत्य घुन घुन कर रोता रहता है। ऐसे समय में जनता में अपने सत्य विचारों का प्रसार करने के लिये पत्र से बढ़कर और कोई साधन नहीं है। बड़े बड़े आर्य नेताओं के वक्तव्य और सेवायें कुएं में पड़ी रह जाती हैं। अन्य पत्र हमारे कार्य की विज्ञप्ति करना पाप समझ रहे हैं और यह युग है विज्ञापन का युग है। दैनिक पत्र के द्वारा हमारी आवाज जनता में पहुंच रही है हमारी सेवाओं का विज्ञापन होता है। हमारे नेताओं के विचार जनता में पहुंचते हैं इससे बढ़कर प्रसन्नता की क्या बात हो सकती है। उत्तरप्रदेश में आर्यसमाज की सेवायें बहुत हैं। पर सब छिपी पड़ी हैं। आर्यमित्र ही है जो आर्यसमाज की सेवाओं को विचार धारा को जनता में पहुंचा रहा है। अतः आर्य भाइयों को सारी शक्ति से दैनिक का संचालन जारी रखना चाहिये। फिर ऐसा संयोग नहीं मिलेगा। ऐसा सम्पादक जिसमें आशा है उत्साह, त्याग और तप हाथ आना कठिन है। केवल धनाभाव से मित्र बन्द हो गया तो हमारे लिये लज्जा की बात होगी श्रावणी का पुण्य पर्व आ रहा है इस अवसर पर दै० मित्र की दृष्टि से यदि हम इकट्ठी करें और पच्चीस सहस्र रुपया इकट्ठा कर डालें तो मित्र चिर जीवी बन जायेगा। और आर्यसमाज की विचार धारा के प्रसार में शक्ति आ जावेगी। मेरे उपदेशक प्रचारक बन्धुओं एवम् सन्यासियों तथा नेताओं को ध्यान रखना चाहिये कि हमारे व्याख्यानों को स्थिर करके जनता तक पहुंचाने में आर्यमित्र बहुत बड़ी शक्ति रखता है। और इससे हमारा भी सम्मान है। आर्यसमाज से सघर्ष की भावनाओं के छेड़े रहते हैं ऐसे समय पर दैनिक से बड़ी सहायता मिलती है। देश में पाखंड और मिथ्या विश्वास बढ़ रहे हैं। इनका उन्मूलन करने के लिये व्याख्यानों से भी अधिक काम पत्र कर सकता है। अतः वेद प्रचारके प्रेमियों को सजग होकर पूरी शक्तिसे काम करना चाहिये यह समय चूकने का नहीं है।

[आचार्य श्री द्विजन्द्रनाथ शास्त्री मेरठ]

जिस प्रकार चातक स्वातिनक्षत्र जलबिन्दु की आशा में अपनी रट लगाये रहता है ठीक उसी तरह से आर्य जनता भी दैनिक आर्यमित्र के लिये अपना अविरत रट लगाये हुई थी, अतः "यत्र कुरुते तत्र तेन लभ्य" इस मनोवैज्ञानिक अटल नियम के अनुसार दैनिक आर्यमित्र निकल ही गया। और

अच्छा निकला साधनों तथा स्थिति को ध्यान में रखते हुए यह मुक्त कण्ठ से कहा जा सकता है बहुत अच्छा एवं प्रशंसा योग्य निकला! सम्पादक प्रवर श्री भारतेन्द्र जी तथा उत्साही एवं उद्योगशील श्री कालीचरण जी मन्त्री महोदय के सतत परिश्रम का ही यह फल है जिसके लिये प्रकृत दोनों ही आर्य जनता के धन्यवाद के पात्र हैं। आर्य जनता भी बड़े प्रेम तथा श्रद्धा से और अपना कर्तव्य समझ कर सब प्रकार की सहायता दे रही है। और भविष्य में सर्वात्मना देने को तत्पर है। ऐसी स्थिति में दैनिक का—

भविष्य प्रशस्त होगा ही नहीं किन्तु उज्ज्वल है इस कथनमें कोई अयुक्ति नहीं जहां तक तत्परता, प्रबन्ध तथा सम्पादन का सम्बन्ध है वह अत्यन्त परिश्रम व सावधानी से किया जा रहा है यह स्वयं मैंने प्रत्यक्ष देखा है। हां यह स्पष्ट है, कि दैनिक पत्र के लिये जो साधन होने चाहिये थे। वे अभी तक अप्राप्त नहीं हैं। कारण-तो स्पष्ट है, वह है धनाभाव। यदि केवल आर्य समाजें व आर्य जनता ही, उत्साह व उदारता से काम लें इस अभाव की पूर्ति हो जाना कुछ कठिन नहीं है।

यह कितने आश्चर्य की बात है कि आर्य समाज जैसी प्रायः अर्द्ध व्यापिनी संस्था का अब तक एक भी दैनिक पत्र नहीं था। इस युग में किसी भी सुधारवादिनी संस्था का दैनिक पत्र का न होना कितने दुर्भाग्य की बात है। आर्य समाज जैसी वृहत् संस्था जो संसारभर में अपने सिद्धान्त एवं विचार धारा को फैलाना चाहती है वह अपना एक भी दैनिक पत्र न रखती हो? कितने आश्चर्य की बात है। वास्तव में यह एक स्वर्ण अवसर मिला है कि जो उत्तरप्रदेशीय प्रतिनिधि सभा ने दैनिक पत्र निकाला है। अब इसको अनुप्राणित कर तेजस्वी व ओजस्वी बनाना आर्य जनता का कार्य है।

'कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्' के व्रत को लेकर यदि आर्य बन्धु प्राणपण से, लग जायेंगे तो अनायास ही दैनिक आर्य मित्र एक सफल तथा दीर्घजीवी पत्र बन सकता है। आशा है आर्य गण "अङ्गीकृत सुकृतिन परिपालयन्ति" के अनुसार अपने आरम्भ किये हुए कार्य को सर्वात्मना निभायेंगे।

[पृष्ठ ८ का शेष]

आर्यसमाज के विद्रोही

चाहता हूँ जो वर्तमान समय में अत्यधिक रूप आन्दोलन चला कर आर्य समाज के कार्य में बाधक हो रहे हैं वे हैं पं० श्री पाद दामोदर सातवलेकर और श्री विद्यानन्द विदेह। सातवलेकर जी के पुराने इतिहास से सभी परिचित हैं। देवतावाद को लेकर उनका जो सैद्धान्तिक विरोध आर्यसमाज से रहा वह आज एक कहानी बन गया है। परन्तु तब सातवलेकर जी प्रच्छन्न पौराणिक थे और आज वे अपने यथार्थ रूप में आ गये हैं। अब वे स्पष्ट रूप से पौराणिक सिद्धान्तों को मानने लगे हैं यह उनके मासिक वैदिक धर्म और उनके द्वारा लिखे गए ग्रन्थों से विदित हो जाता है।

मध्य भारत के 'एक भूतपूर्व आर्य' श्री नाथूलाल जी के सहयोग से इन्होंने सर्वप्रथम महर्षि के दार्शनिक सिद्धान्त त्रैतवाद पर प्रहार किया और यह सिद्ध करने का निष्फल प्रयत्न किया कि ऋषि दयानन्द त्रैतवादी नहीं अपितु एकत्ववादी थे नाथूलाल जी के विषय में तो धर्मार्य सभा ने घोषणा कर दी और उनकी पुस्तक को अमान्य ठहरा दिया परन्तु अब समय आ गया है कि सातवलेकरजी के विरुद्ध भी निर्णय अवश्य और शीघ्र किया जाय। वाल्मीकि रामायण की भूमिका में सातवलेकरजी ने मूर्तिपूजा आदि अनेक अवैदिक सिद्धान्तों का बलपूर्वक प्रतिपादन किया है। "वेदों में इतिहास" को लेकर उनका आर्य समाज के सम्मान्य विद्वान पं० जयदेव जी विद्यालंकार से जो विवाद चल रहा है, वह तो सबको विदित है ही। ऐसी स्थिति में सातवलेकरजी के सम्बन्ध में निर्णय करने का अब समय आ गया है।

यही हाल श्री विद्यानन्द विदेह का है। उनके ग्रन्थों के विषय में धर्मार्यसभा का निर्णय जनता के समक्ष आ चुका है। श्री विद्यानन्द ने धर्मार्यसभा के सम्मुख यह स्वीकार किया था कि जब तक उन के ग्रन्थों में उचित संशोधन नहीं हो जायगा तब तक उन ग्रन्थों का प्रचार और विक्रय बन्द रहेगा। परन्तु इस निर्णय पर श्री विद्यानन्द ने कभी अमल नहीं किया। इस निर्णय के तुरन्त बाद ही वे अफ्रीका चले गये और वहाँ अपनी धाक जमाने लगे। आश्चर्य तो यह है कि ऐसे विद्रोहियों को आर्यसमाजें ही प्रश्रय देती हैं, वे ही उनका सम्मान करती हैं, कथायें कराती हैं और धन देती हैं। दक्षिण अफ्रीका की समाजें इसका मूर्त उदाहरण हैं। जो व्यक्ति आर्य समाज की सर्वोपरि संस्था सार्वदेशिक सभा की आज्ञाओं की स्पष्ट अवहेलना करता है और अनुशासन भंग करने का अपराधी ठहरता है, उसके लिये आर्य समाज की वेदी पर कोई स्थान नहीं होना चाहिये। परन्तु आज भी समाजें उन्हें आमन्त्रित करती हैं, आर्य विद्वान् उनके साधना शिविरों में जाते हैं, यहाँ तक कि उनके वेदभाष्य को अमान्य घोषित कर देने पर भी सार्वदेशिक सभा के ही भूतपूर्व प्रधान पं० गंगाप्रसाद जी, रिटायर्ड जज उसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं यह अनुशासन की विडम्बना का जीता जागता उदाहरण है।

धर्मार्य का निर्णय हो जाने पर भी श्री विद्यानन्द विदेह के रवैये में किंचित् भी परिवर्तन नहीं हुआ है। उनके सविता पत्र में आज भी अनेक आर्यसिद्धान्त सिद्धान्त विरुद्ध और अहंभावपूर्ण बातें निकलती रहती हैं। अभी हाल ही में श्री विदेह ने गीता भाष्य में हाथ लगाया है। जब उनसे यह कहा गया कि गीता में अनेक प्रक्षेप हैं तो उन्होंने इसे नम्रतापूर्वक स्वीकार करने की अपेक्षा सार्वदेशिक प्रकाशन द्वारा प्रकाशित महर्षि दयानन्द के जीवन चरित्र से यह प्रमाणित करने का प्रयास किया कि गीता पूर्णत प्रमाणिक और प्रक्षेपरहित है। यहाँ विदेहजी ने चालाकी से काम लिया है। महर्षि ने यह अवश्य कहा था कि सम्पूर्ण गीता ग्रन्थ प्रक्षेप नहीं है। उसमें अनेक बातें वैदिक सिद्धान्त के अनुकूल हैं और अवतारवाद आदि से सम्बन्धित अनेक श्लोक प्रक्षिप्त भी हैं। परन्तु श्री विदेह जी का यह दावा है कि गीता प्रत्येक का श्लोक वेदानुकूल है। हम देखते हैं कि वे अपना यह दावा कैसे सिद्ध करते हैं।

उपरोक्त शब्दों से पाठकों को विदित होगा कि किस प्रकार लोग दयानन्द के सिद्धान्तों के विरुद्ध होकर भी आर्यसमाज के क्षेत्र में अपना प्रभाव कायम रखना चाहते है। आर्यसमाजों और आर्यपुरुषों को इनसे सावधान रहना चाहिये। जब तक वे स्पष्टरूप से आर्यसिद्धान्तों की सत्यता को स्वीकार न करें तब तक उनके प्रचार आदि में सहयोग देना हानिकर है।

आज इस लेख को यहीं समाप्त करके हम अपने दूसरे आर्य बन्धुओं से प्रार्थना करते हैं कि वे भी इस दिशा में अपने विचार एवं सुझाव समाचारपत्रों द्वारा प्रकट करें। हो सके तो साप्ताहिक अधिवेशनों में इस लेख को दूसरे बन्धुओं को सुनाएं और इसी आधार पर कोई समुचित योजना बनाएँ।

[पृष्ठ ७ का शेष]

शुद्धि आन्दोलन....

ही देते हैं और उसके साथ साथ गोश्त आदि भी खिला कर दे देते हैं। परिणाम यह होता है कि लाचार हिंदू भिखारी स्वयं ही अपने को ईसाई या मुसलमान समझने लगता है और बाद में बड़ा कट्टर हो जाता है। इसलिए हमें अपने ऐसे अंगो को यह भी समझाना होगा कि आपत्काल का कोई खान पान किसी को धर्म छोड़ने के लिए विवश नहीं करता। फिर हमें उनकी शशक वृत्ति छुड़ाकर उन्हें यह भी बता देना चाहिए कि भगवान का नाम लेकर आत्मरक्षा के लिए यदि वे लोग भी तो अपने को गिरा हुआ न समझें। दूसरे शब्दों में वे अपने को अब शिकार न बना कर स्वयं शिकारी बनने का प्रयत्न करें। वैसे यह भावना पढ़े लिखे लोगों में तो आ ही गई है, अब कोई पढ़ा लिखा हिंदू किसी मुसलमान व ईसाई भाई के साथ अपने खाने पीने से अपने को विधर्मी नहीं बना देता। यही बात हमें दूसरे तबकों में भी स्थापित करनी है।

नारी के विकास के लिए !

युग युगान्तर से पड़ी हुई दासता की बेड़ियाँ तोड़कर आज हम स्वतन्त्रता के वातावरण में श्वास ले रहे हैं। आज हमारा यह देश, हमारा यह समाज स्वतन्त्र है और इसकी गति विधि विकास की ओर है—किन्तु जहां तक मातृजाति, व्यवहार में कही जानेवाली स्त्री-जाति के विकास और निर्माण का प्रश्न है, हम मूक हैं! गतिहीन और निष्प्राण हैं!! क्या मातृ-जाति की हीनता, पूर्णता और अभिवृद्धि की जनक होगी—यह प्रश्न है ?

जब किसी देश में परतन्त्रता का अन्त होता है तो वहाँ के दूरदर्शी लोग पारतन्त्र्य के परिपोषक साहित्य का भी अन्त कर दिया करते हैं। हमारे देश से परतन्त्रता तो महापुरुषों के बलिदानों से चली गई है किन्तु पारतन्त्र्य का प्रतिरूप साहित्य नष्ट नहीं हुआ है।

हमारे शिक्षा केन्द्रों में चाहे वे प्राथमिक हों या स्नातकोत्तर शिक्षण केन्द्र हों, इनमें सभ्यता और संस्कृति से विहीन साहित्य की ही साधना होती है। आज भी इनकी पाठ्यपद्धति भारतीय आदर्शों के अनुरूप कुछ नहीं सिखा रही हैं। वस्तुतः उसकी दिशा अभारतीय है।

भारतीय दर्शनों में स्त्री को कामधेनु का सा सम्मान दिया गया है। यद्यपि शरीर निर्माण और क्रिया कलाप की दृष्टि से विश्व की समस्त स्त्रियाँ एक समान हैं तथापि भारतीय संस्कृति में देश, काल, पात्र और उद्देश्यापेक्षि कल्पनाओं का एक सुन्दर चित्र चित्रित किया गया है। वह एक ही स्त्री में कौशिल्या का सा मातृत्व, मदालसा का सा पाण्डित्य, सुमता का सा आत्मविश्वास, सुकन्या का सा सतित्व, देवहूति का सा पुत्रित्व एवं अनसूया का सा सम्पूर्ण देखना चाहता है। वह देखना चाहता है गार्गी का सा नैष्ठिक ब्रह्मचर्य, अनुसूया का सा सफल गार्हस्थ्य, मीरा की सी भक्ति, लक्ष्मी बाई का सा बलिदान।.....इन आदर्शमयी विभूतियों के सामने कामधेनु भी नगण्य है! फीकी है!! निस्तेज है!!!

आज जब एक बालिका किसी शिक्षा केन्द्र में शिक्षा प्राप्त करने के लिये जाती है तो इनकी दासवृत्ति और अभारतीयता पाठ्य ग्रन्थों के स्वरूप में उसके सामने आती है। विनाश का कुत्सित निर्माण के रूप में बालिका के रोम-रोम में रमा जाता है। उषःकाल में उठना, व्यायाम करना, अपने कार्य को अपने दायित्व पर ही निपटाना, ईश उपासना और स्वाध्याय करना, घर के सामूहिक कार्यों में हाथ बटाना तथा शरीर प्रसाधन एवं व्यवहार में सादगी होना आदि समुचित शक्ति से उसका जीवन विहीन हो जाता है। ऐसी बहुयें परिवार के लिये समाज के लिये तथा नगर या ग्राम के लिये बोझ सी हो जाती हैं। परिवार के लोग सुन्दर वैवाहिक सम्बन्ध मिलने के लोभ में उनके इस तथा कथित निर्माण को सहते हैं—कामना और अनुशासन के लोग उसकी इस वृत्ति को ईर्ष्या से देखते हैं। किन्तु किसी में यह साहस नहीं कि सभ्यता के इस धूमिल आवरण को हटा देवें, फाड़ देवें, या जला देवें!!

यह साहस हो भी तो कैसे? हमारे नवयुवक भाई जिन्हें कल एक अच्छी गृहस्थी का दायित्व अपने कन्धों पर लेना है—ऐसा नहीं चाहते। उनकी कल्पना है कि उनकी होनेवाली जीवन संगिनी नरगिस की भांति दुबली पतली गीता बालि की तरह चंचल, मंगेशकर की तरह मीठी और कामिनी कौशल के समान ईर्ष्यालु हों। उन्हें अपनी पत्नि में देवबाला का सा अल्हड़पन, मीना कुमारी का सा सौकुमार्य तथा मधुबाला का सा अर्धनग्नपन चाहिये। किन्तु ये सम्पूर्ण आदर्श केवल चलचित्रों के ही आदर्श हैं। इनके आधार पर न गृहस्थी की नींव रख सकती है और न ही सुखमय दाम्पत्य जीवन ही बिताया जा सकता है। उक्त आदर्श से अनुप्राणित दृष्टांत देश या समाज के लिये भी कुछ कर सकते हैं—इसका तो प्रश्न ही नहीं आता।

जिस देश में स्वतन्त्रता के वर्षों का एक दशक पूरा होने चला हो, वहां स्त्रियों के शारीरिक-मानसिक और बौद्धिक विकास के उपयोगी केन्द्रों का अभाव, विकास और विकास की योजनाओं को एक चुनौती है। इस प्रकार के सामूहिक प्रशिक्षण केन्द्रों के अभाव में ही स्त्री के सभ्य स्वरूप नष्ट हो कर वह केवल विलासिता की प्रतिमूर्ति मात्र रह गई है। ऊंची एड़ी के जूते, लिपेस्टिक, हैण्ड-बैग, हेयर ड्रेसर और पाउडर के अनावश्यक उपयोग तथा वस्त्रों के अर्थ में अर्धनग्नता स्त्रियों के स्वाभिमान को एक गहरी ठोकर है, स्वतन्त्र देश की स्त्रियों के नाम यह एक अभिशाप है। हमें इस स्थिति को बदलना है और हमें अपने सम्मान की रक्षा स्वयं करनी है। पर मुखापेक्षी निर्माण और विकास आज तक किसी वर्ग का न हुआ ही है और न होना सम्भव ही है।

देश विशेष की अपनी सभ्यता और अपनी संस्कृति में निर्माण और विकास के उद्देश्यापेक्षी सूत्रों का वह व्यवहारिक स्वरूप रहता है जिसके दिग्दर्शन से निस्संदेह सामूहिक निर्माण और विकास का कार्य होता रहता है। हमें भारतीय संस्कृति और सभ्यता मूलक शिक्षण केन्द्रों का उद्घाटन करना है। प्रातःस्मरणीय महर्षि दयानन्द ने आज के बहुत पहले आर्यसमाज की स्थापना इससे भी बहुत आगे बढ़ कर की थी। उनकी इस संस्था ने देश वासियों को जीवन के आदर्श-स्रोतों की ओर जिस गति से प्रेरित किया वह किसी से छिपा नहीं है। आज भी इस पवित्र प्रतिष्ठान के द्वारा कोटि कोटि परिवारों को दिव्य जीवन की दिशा आलोकित होती है। जिन्हें इस संस्था से सम्पर्क स्थापित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है वे यदि सच्चे अर्थ में इसके अनुयायी हैं तो इसके माध्यम से अपना और अपने सहयोगियों का सर्व तो मुखी विकास कर सकते हैं। उन्हें यदि कुछ करना है तो इस लोकोपकारिणी संस्था की शाखाओं का विकास मात्र करना है जिसके साथ साथ उनका भी विकास होता चले तभी कल्याण सम्भव है।

हमारे प्रधान मन्त्री यूरोप की आठ राजधानियों में अतिथि रहकर फिर स्वदेश वापस आ गये। कुछ लोगों ने उनकी इस यात्रा को दिग्विजय के समान कहा है।

—इस विषय में पंडित जी का जितना भी गुणगान किया जाय, थोड़ा है। कसर केवल इतनी ही है कि मनुष्य पहले अपने घर में दिया जलाकर तब बाहर की खबर लेता है, परन्तु हमारे पंडित जी बाहर के प्रकाश से ही घर के अन्धकार को दूर करने की चेष्टा करते हैं।

× × ×

पंडित नेहरू के शुभागमन के उपलक्ष में पञ्जाब सरकार ने पञ्जाबी रक्षा सम्बन्धी नारों पर से प्रतिबन्ध उठा दिया है।

—यह तो वैसे ही हुआ कि खुशी के मारे चोरी पर से प्रतिबन्ध उठा लिया जाय, और चोरों को चोरी करने की खुली छूट दे दी जाय। अपने राम चाहते हैं कि पंडित नेहरू स्वयं इस पर विचार करें, क्योंकि उन्हीं के नाम में यह सब हो रहा है।

× × ×

अन्त में पाकिस्तान सरकार ने सीमान्त गाँधी के ऊपर से सारे बन्धन हटा ही लिये।

—परन्तु उनकी लाल कुर्ती वाली संस्था अब भी अनियमित घोषित है। उस संस्था के बिना खान अब्दुल गफ्फार खाँ वैसे ही हैं जैसे बिना घोड़े का सवार अथवा बिना सींग का सांड़, जिसे छुट्टा खोल देने में भी कोई डर नहीं है।

× × ×

भारतीय संसद के सदस्य श्री राजाराम शास्त्री ने कहा है कि कानपुर हड़ताल के सम्बन्ध में मुझे आशा भी है और निराशा है।

—चक्की के इन दो पाटों के बीच मजदूर कबतक पिसते रहें, जरा यह तो बताइये। आशा और निराशा की इस फाँसी से तो यही अच्छा है कि लोग उन्हें बिलकुल ही उनके भाग्य पर छोड़ दें।

× × ×

एक मन्दिर में लघुशंका कर देने पर भगवान के तथा कथित 'भक्तों' ने एक लड़के और उसकी बहन को कुँयें में लटका दिया। उन बच्चों में से एक मर गया, दूसरा अधमरा हो गया।

—भगवान को उनके भक्त लोग पतित पावन कहते हैं। परन्तु जब वे ऐसी छोटी छोटी बातों से अपावन हो जाते हैं, तो उनका नाम बदल देना चाहिये। रह गये धर्म के ठेकेदार पुजारी लोग, तो उनका तो सारा काम ही पाखंड पर आधारित है। वे स्वयं चाहे जितना गन्दा काम करें, परन्तु दूसरे ऐसा न करने पावें, इसके लिये वे बगुलों की भाँति ध्यान लगाये ही रहते हैं।

× × ×

अमेरीका में "कान्फीडेन्शल" नामक एक पत्र का सम्पादक गुप्त रूप से किसी कम्युनिस्ट को पकड़ने गया था। समाचार पत्रों ने इस घटना को इतना महत्व दे डाला कि उक्त सम्पादक महोदय का सारा कार्यक्रम ही व्यर्थ हो गया।

—वह कम्युनिस्ट सम्पादक महोदय से भी चढ़ निकला जब वह अमरीका ऐसे देश में भी न पकड़ा जा सका, तो यह समझना चाहिये कि उसके पीछे कोई बहुत बड़ी शक्ति है। और ऐसे ऐसे सत्तर सम्पादक भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

× × ×

'ऋषिवर दयानन्द सरस्वती जी के ग्रन्थों की एकता के लिये सभी उत्सुक'

हैदराबाद आर्य महा सम्मेलन में एक प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास हुआ था। जिस को सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की अंतरग नेभी स्वीकार किया है। कि हमारा विधान यह आर्य महासम्मेलन में कोई भी प्रस्ताव पास हो जावे परन्तु जब तक सार्वदेशिक की अन्तरंग सभा उस प्रस्ताव को स्वीकार न करे तब तक उस का उत्तरदायित्व सार्वदेशिक पर नहीं होता अत. यह प्रस्ताव सार्वदेशिक की अन्तरङ्ग ने भी गम्भीरता पूर्वक विचार करके सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया है।

वह प्रस्ताव यह है—

'प्रस्ताव'

"ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों की रजिस्ट्री कराई थी कि अन्य कोई उनके ग्रथों को न छापे। सरकारी नियम के अनुसार ४० वर्ष में यह अधिकार समाप्त हो जाता है इस कारण अनेक प्रकाशक ऋषि के ग्रन्थों को प्रकाशित कर रहे हैं। उन सब के द्वारा प्रकाशित ऋषि के ग्रन्थों में बड़ी विभिन्नता हो चली है अतः यह सम्मेलन परोपकारिणी सभा तथा अन्य समाव प्रकाशकों से साग्रह निवेदन करती है कि ऋषि के ग्रन्थ जैसे ऋषि के समय में प्रकाशित हुए थे तदनुसार ही प्रकाशित हों। यदि ऋषि के ग्रन्थों में कोई स्थल उन्हें प्रेसादि की अशुद्धि के कारण सन्देहात्मक प्रतीत होते हों तो उन को वे सार्वदेशिक सभा के पास विचारार्थ भेजकर निर्णय करावें जिस से आर्ष ग्रन्थों मे एकता रहे।

साथ ही प्रकाशकों से यह भी निवेदन है कि ऋषि के ग्रथों में वे अपना या अपने ग्रथों का नोटिस न छापें जिस से ऋषि के ग्रथों की पवित्रता सुरक्षित रहे"

सार्वदेशिक सभा ने यह प्रस्ताव वैदिक यंत्रालय अजमेर, रामलाल कपूर ट्रस्ट अमृतसर, गोविंदराम हासानन्द देहली, सार्वदेशिक लिमिटेड देहली आदि ऋषि के ग्रथों के सब प्रकाशको को भेजा और सब के ही आशाजनक उत्तर आये हैं। रामलाल कपूर ट्रस्ट ने लिखा है कि हम अपने सब ट्रस्टियों को यह प्रस्ताव भेज रहे हैं। अभी परोपकारिणी सभा से एक पत्र मेरे पास आया है कि हमने एक कमेटी इस सम्बंध में बनादी है इसी प्रकार सब ही ऋषि के ग्रथों की एकता के लिये उत्सुक हैं। जो भी त्यागी जी के ग्रंथों को छापना चाहता है उस के सामने कुछ कठिनाइयाँ आती हैं उन का समाधान प्रत्येक व्यक्ति स्वय करता है जिस के समक्ष मे आता है वैसा हितदृष्टि से करता है। ऋषि के ग्रन्थों की बदनामी कोई भी नहीं चाहता। पर अपनी अपनी योग्यता के अनुसार सब पृथक् पृथक् ठीक करते हैं अतः परिणाम पृथक् पृथक् होना स्वाभाविक है अत ऋषि के ग्रन्थों में एकता नहीं रही अत मैं कहता हूं कि सब मिल कर विचारों और एक सा निर्णय करके सर्वत्र ग्रथ एक से छपें।

(बहुश्रुत का ग्रन्थ अल्पश्रुत ठीक नहीं कर सकता है)

इस समय आर्य समाज में कोई निरुक्त का विशेषज्ञ है, कोई मीमांसा का, और किसी को व्याकरण अच्छा आता है, और कोई अलकार का पण्डित है इत्यादि पर ऋषिवर सर्व शास्त्र विशेषज्ञ थे। जो कोई विद्वान् ऋषि के ग्रन्थों को ठीक करने बैठता है तब वह जिस विषय का विशेषज्ञ है उस विषय को ठीक समझ लेगा; अन्य विषयोंके नहीं क्योंकि वह पण्डित स्वयं अधूरा है अत ऋषि की बात को समझता स्वयं नहीं और अपने अज्ञान से शुद्ध को अशुद्ध समझता है और अशुद्ध कर डालता है। आर्य समाज के सब विशेषज्ञ पण्डित एक साथ बैठें तब ऋषि के सब ग्रन्थ ठीक हों जावेंगे। कुछ बातें ऐसी हैं जिनके विशेषज्ञ आर्य जगत् में एक मात्र श्री पं० भगवद्दत्त जी बी० ए० रिसर्च स्कालर ही हैं उन के बिना हम सब ही अधूरे हैं अत मेरी यह प्रार्थना है कि हम सब पण्डित एकत्र मिलकर बैठें तब पूर्ण हैं अन्यथा सब अधूरे हैं। शोभा इसी बात में है कि सब ऋषि भक्त विद्वान् सार्वदेशिक सभा और परोपकारिणी सभा के महत्त्व को बढ़ाते हुए एक स्थान पर बैठें और सब स्थलों पर विचार करें अपने अपने को सर्वज्ञ न समझें। सार्वदेशिक धर्मार्य सभा ने ऐसे सब पण्डितों को इस वर्ष रखा है जो इस विषय को समझते हैं और सार्वदेशिक सभा आर्य जगत् की सर्वशिरोमणि संस्था है आर्य जगत् का विश्वास उस के साथ है। आर्य जनता ऋषि के उस स्थान के छपे ग्रन्थ को कभी भी नहीं खरीदेगी यदि कोई भी प्रकाशक संस्था सार्वदेशिक के नियन्त्रण को तोड़ेगी और उस के विरुद्ध विवश होकर सार्वदेशिक सभा को कुछ करना पड़ा।

श्री पूज्य स्वामी वेदानन्दतीर्थ जी की सेवा में एक पत्रः—

स्थूलाक्षर सत्यार्थ प्रकाश मुद्रण से पूर्व

श्री पूज्यतीर्थ पादेषु सप्रश्रयं प्रणतय !

श्री पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी सरस्वती ने स्थूलाक्षर सत्यार्थप्रकाश मुद्रण का जो कार्य उठाया था उनके स्वर्गवास के कारण वह कार्य आपके हाथ में है। यह स्थूलाक्षर सत्यार्थप्रकाश मुद्रण का कार्य बार बार नहीं होगा। ऋषि के ग्रन्थ अनेक स्थानों से छपते हैं उनमे कुछ न कुछ भेद रहता है। सार्वदेशिक सभा ने हैदराबाद आर्य महासम्मेलन के प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए ऋषि के ग्रन्थों के सब प्रकाशकों से प्रार्थना की है कि सब मिलकर इस बात का यत्न करें कि ऋषि के ग्रन्थों में एकता रहे।

आप इस समय सत्यार्थप्रकाश का सम्पादन कर चुके हैं अत. वे समस्त स्थल इस समय आपकी निगाह में होंगे जो कि सत्यार्थप्रकाश में विचारणीय निर्णेतव्य हैं। आप सर्वशास्त्रपारगत हैं हम लोगों की अपेक्षा सन्यासी होने के नाते भी आप ऋषि की स्थिति को अधिक समझ सकते हैं। यह सब कुछ होते हुए भी सबके साथ विचार और कर लेना व्यावहारिक प्रतीत होता है। सार्वदेशिक धर्मार्य सभा के आप भी अन्तरंग सदस्य हैं। सार्वदेशिक धर्मार्य सभा में परोपकारिणीसभा रामलाल कपूर ट्रस्ट आदि सब प्रकाशकों के विद्वान् विद्यमान हैं। धर्मार्य-सभा की मीटिंग जब आप कहें तत्क्षण बुला ली जावेगी सत्यार्थप्रकाश के समस्त विचारणीय स्थलों को सब के साथ मिलकर दुहरालें यह श्रेय आप को ही प्रथमबार होगा। सब विद्वानों के साथ सब स्थलों पर एकबार विचार होकर अन्तिम निश्चय हो जावे। आपकी प्रेस कापी तैयार है आप छापें अन्य भी जो कोई भी सत्यार्थ-प्रकाश को छापे सब उसी प्रकार आगे से छापें इसमें आर्यसमाज का गौरव होगा ऋषि का यश स्थिर रहेगा—ऋषि के ग्रन्थो में एकता रहेगी। अब विचारणीय स्थलों पर चाहे निश्चय वही हो जो आप ने किया है पर सब विद्वानों की निगाह से वे स्थल एक बार निकल जावे और सब सहमत हो जावे तो वे सब प्रकाशकों के विद्वान अपने यहां से भी सत्यार्थप्रकाश मुद्रण का कार्य वैसा ही करेंगे। कोई भी मनुष्य सर्वज्ञ नहीं है अत यह भी सम्भव है कि सब विद्वानों के मिलकर बैठने पर कोई उचित सुझाव आपको भी दिया जा सके साधारण विद्वानों से आप बहुत ऊंचे उठे हुए हैं आप उदार हैं आप में अहम्मन्यता और अभिमान भी नहीं है। अतः मैं आप से छोटा होता हुआ प्रार्थना कर रहा हूं इसे आप बुरा न मानेंगे। स्थूलाक्षर सत्यार्थ प्रकाश का मुद्रण तब तक न करेंगे जब तक सब विद्वानों के साथ धर्मार्यसभा में बैठकर परस्पर विचार न कर लेंगे।

[लि०—आचार्य विश्वश्रवा, प्रधान मन्त्री सार्वदेसिक धर्मार्य सभा, देहली]

आर्य समाजमेव शरणं गच्छ सर्व भावेन मानव !

[लेखक—श्री वैंकटेश्वर शास्त्री, गुरुकुल घटकेश्वर सी० आर०]

जो उन्नति करना चाहें तो आर्य समाज के साथ मिलकर उसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिये नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा।

ये हैं इस युग के महान सुधारक ऋषि दयानन्द सरस्वती महाराज के शब्द। इस प्रकार लिखने का आशय स्वामी जी के शब्दों में ही पढ़िये। वे लिखते हैं कि "जैसा आर्यसमाज आर्यावर्त देश की उन्नति का कारण है, वैसा दूसरा नहीं हो सकता" स्वामी जी महाराज उपरोक्त शब्द संसार के सामने दर्शाकर रखे हैं कि लोग इन्हें पढ़ें, मनन करें, और आचरण भी करें। अन्य जन इसपर आचरण किये या नहीं इस विवेचना में जाने से पूर्व हमें यह देखना है कि ऋषि के अनुयायी, आर्य समाज के नेता व कार्यकर्ता इन वाक्यों पर कहां तक आचरण किये हैं, अब कहां तक कर रहे हैं, और आगे कहाँ तक करेंगे।

कोई माने या न माने परन्तु सच बात यह है कि आज आर्य समाज में ६९ प्रतिशत ऐसे महानुभाव हैं जो किसी न किसी (आर्य समाज से भिन्न) संस्था के सदस्य, कार्यकर्ता या अधिकारी के रूप में कार्य कर रहे हैं। विशुद्ध आर्य समाज से भिन्न संस्थाओं के सदस्य न हों —गोघृत के समान विरले ही पाये जाते हैं। आर्य समाजियों में एक जनसंघी है तो दूसरा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघी है और तीसरा महासभाई है। यहाँ तक कि शैवी आर्य समाजी वैष्णव आर्य समाजी और सनातन धर्मी [पुराण पंथी] आर्यसमाजी भी हैं भगवान ऐसा न करें कि कोई शाक्तिय व वाममार्गी आर्यसमाजी भी हमारे मध्य में विराजमान हों [Sympathy] दिखाने वाले एवं साम्यवादी विचारक आर्य समाजी भी कम नहीं हैं। कॉंग्रेसी छाप आर्य समाजी तो आज के आर्य समाज के कर्ता धर्ता और सब कुछ वे ही हैं।

आर्यसमाज की स्थापना दिवस [सं० १९२३] से लेकर आज तक के ८० वर्षीय दीर्घकाल में भारत का ऐसा कौन सा आन्दोलन होगा जिसे आर्य समाजियों ने आरम्भ न किया हो अथवा जिसका संरक्षण आर्यों की छत्रछाया में नहीं हुआ हो।

सर्व प्रथम स्वराज्य शब्द को ही लीजिये। आज स्वराज्य का नाम सुनते ही प्रत्येक को गाँधी जवाहर और कांग्रेस ही स्मरण हो आयेगा। किंतु बहुत कम जन यह जानते हैं कि अंग्रेज शासन के मध्य काल में, ब्रिटिश राजसत्ता के क्रूर नीतिक चालों के सम्मुख पश्चिमी जातियों का दमनचक्र पूर्वीजनों पर निरन्तर उग्र रूप से चलते समय निर्भीकता से निडरता से, अदम्य उत्साह एवं अतुलनीय साहस के साथ स्वराज्य का नारा लगाने वाला एक लंगोट बन्द सन्यासी था। जिन्होंने आर्य समाज की स्थापना की, वेदों का पुनरुद्धार किया संसार का उपकार करना अपना कर्तव्य एव आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य बताया। वह थे सत्य युग प्रवर्तक आदित्य ब्रह्मचारी जगद्गुरु ऋषि दयानन्द सरस्वती जी महाराज।

स्वराज्य के सम्बन्ध में स्वामी जी महाराज लिखते है कि "कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत मतान्तरों के आग्रह रहित अपने और पराये पक्ष पात शून्यता पर माता-पिता के समान कृपा न्याय एवं दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।

स्वामी जी के इस लेख के समय न कांग्रेस की स्थापना हुई थी न गाँधी जी ही होश सभाले थे, वे उस समय केवल ६ ७ वर्ष के अबोध बालक थे। दयानन्द से प्रेरणा पाकर ही लोकमान्य तिलक ने कहा था "Freedom is our birth Right" स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। गाँधी जी जब कॉंग्रेस के सूत्र धार बने तब सारा देश जागृत हुआ। स्व० श्रद्धानन्द जी महाराज, लाला लाजपत राय आदि अनेकों आर्य नेता कॉंग्रेस मे भाग लिये। परिणाम यह हुआ कि उनकी देखा देखी अन्यान्य आर्य समाजी भी धड़ाधड़ उसी सेना में भर्ती हो गये जो हमें आज के ये (गोवध बंद न होना, वैदिक संस्कृति के अङ्गों पर कुठाराघात करने वाला विवाह विच्छेद विधायक पारित होना इत्यादि कर्मों से पूर्ण) दिन दिखा रही है।

जिस प्रकार हर हिटलर की फासिस्ट शक्ति को रशिया की युवा जनता ने अपना सर्वस्व न्योछावर कर चकनाचूर किया था ठीक उसी प्रकार "The Sun never set in the Britishempire' अर्थात् "ब्रिटिश साम्राज्य में कदापि सूर्य अस्त न होगा।" कहते हुए शेखी बघारने वाले गोरांग प्रभुओं की सारी शेखी को यदि कोई धूल में मिलाने वाले थे तो वह केवल आर्य समाजी ही थे, उनका सगठन ही था; और उनका समयोचित नीति ही थी। स्वराज्य की प्राप्ति हुई परंतु आर्यसमाजियों की क्या स्थिति 'Position' है? यदि बुरा न माने तो मैं स्पष्ट कहूं गाँव के बेगारियों के समान है। चाहे भले ही हम उस सेवा का नाम निष्काम सेवा रखलें। आप कॉंग्रेस में स्थित अधिकाँश आर्य समाजियों की स्थिति भीष्म पितामह के समान है। न मोह वश वे कॉंग्रेस को छोड़ते हैं, न कर्तव्यवश होकर अधर्म व अनीति का विरोध ही करते हैं। हिंदू महासभा जनसंघ आदियों में स्थित आर्य बंधुओंकी स्थितिकी उपमा ही नहीं मिलती वे बेचारे अपने अस्तित्व ही खो बैठे हैं।

सामाजिक व साहित्यिक क्षेत्र में आर्य समाजियों की सेवायें अनिर्वचनीय हैं। आर्य भाषा हिंदी को आधुनिक रूप देने का प्रधान श्रेय यदि किसी को है तो वह केवल आर्यसमाज को एवं आर्य समाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द को है। जिन्होने अपनी मातृ भाषा गुजराती होते हुए सम्पूर्ण देश को एक सूत्र में पिरोने के लिये अपने प्रचार का माध्यम आर्य भाषा हिंदी को बनाया। अपने समस्त ग्रंथ एवं वेद भाष्य तक हिंदी में किया। स्वामी जी के पश्चात् आर्य विद्वान् एवं आर्य संस्थायें—गुरुकुल आदि विद्या केन्द्र—हिंदी की महान सेवायें कीं। परन्तु दुर्भाग्य है कि आज हिंदी प्रचार संस्थायें भी हमारे अधीन नहीं हैं। किसी ने ठीक ही कहा है—"लड़े सिपाही नाम सरदार का।"

अछूतोद्धार में आर्य समाज का जो पात्र है वह अपूर्व है। उसने जन्म गत जाति गत भेदों को मिटाने के लिये वर्ण व्यवस्था का प्रचार किया। गुण कर्म स्वभावनुसार ही वर्ण मानने की आदर्श शिक्षा देकर भारत माता के मस्तक से अछूतेपन के कलंक के टीके को सदा के लिये मिटाने का यत्न किया। परतु बापू ने——उनका उद्देश्य अछूतपन का मिटाने का ही था——हरिजन नामकरण की नव्य सृष्टि करके एक ऐसी भारी भूल की। इस भूल का क्या परिणाम होगा। आनेवाला समय ही बतलायेगा। अस्तु आर्य समाज के अनथक प्रयत्नों का ही शुभ परिणाम है कि २८ अप्रैल को भारतीय संसद ने अस्पृश्यता (अपराध) विधेयक पारित किया।

महिलोद्धार को लीजिये। पुराण पन्थियों ने तो 'स्त्री शूद्रौ नाधीयताम्' की व्यवस्था दी थी। इस प्रकार की व्यवस्था से विद्या के शत्रुओं ने उन्हें ज्ञानार्जन से वञ्चित रखा। बड़े २ धर्माचार्यों तकने स्त्री के प्रति कठोरता ही दिखायी। शंकराचार्य जैसे दिग्गज विद्वान ने भी स्त्री को 'नरकस्य द्वार' कहा। स्त्रीयों के प्रति अधिक उदार कहे जाने वाले बुद्ध भी जब स्त्री को भिक्षुणी बनाने की बात आई, तो उन्होंने बहुत आनाकानी की, यहां तक कि स्त्री को अदर्शन (नहीं देखना) कहा। आचार्य विष्णु शर्मा ने कौन सा ऐसा शब्द छोड़ दिया जो स्त्री की निंदा के लिये प्रयोग न किया हो। "भिय को नाम कोपितम् न तृप्यति पुंसां नाम लोभना। स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि"। आदि २।

जब कट्टर पंथी पौराणिक पण्डितों ने 'स्त्री शूद्रौ नाधीयताम्, न स्त्री स्वातन्त्र्य मर्हति', कहकर स्त्री जाति की अवहेलना कर रहे थे। ऐसे समय मातृशक्ति के परम भक्त महर्षि दयानंद ने इसे पोप लीला बतायी। वे पुराण पंथियों द्वारा स्त्री शिक्षा के विरुद्ध दिये जाने वाली थोथी दलीलों को धज्जी धज्जी उड़ा दिये। 'ब्रह्मचर्येण कन्या युवान विंदते पतिम्, इम मंत्रं पत्नी पठेत्' आदि उदाहरण देकर स्त्री जाति को पढ़ाने का अधिकार दिलाया। और उनके उत्थान में पूर्ण सहयोग दिया। ऋषि के पाखण्ड खण्डनी वाले भक्तों ने स्त्री जाति का महोन्नत गौरव शिखर पर चढ़ाया। इसी का परिणाम है कि आज स्त्री जाति की दशा सुधर गयी। परतु आर्य समाज के इन सत्प्रयत्नों का बहुत कम लोग जानते हैं।

संस्कृत एवं संस्कृति की तो आर्य समाज ही एक मात्र प्रतिनिधि संस्था है। उन धर्म के ठेकेदारों ने यहाँ तक लिख मारा कि "ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य किसी वर्ण को गीर्वाण वाणी पढ़ने का अधिकार नहीं है। जो पढ़ेगा वह प्रत्यवाय भाजन होगा"। आर्य समाज ने ही बिना भेद भाव के सब को संस्कृत एवं संस्कृति में दीक्षित किया। आज देश में सहस्रों नर नारी शास्त्री व आचार्य की उपाधियाँ ली हैं। वेद वेदांग के उद्भट विद्वान ब्राह्मणेतरों मे पाये जाते हैं। यह सब ऋषि की अनुपम कृपा है। परंतु आज आर्य समाज इस क्षेत्र में भी पिछड़ रहा है।

[शेष पृष्ठ १४ पर]

पौराणिकों के साथ शास्त्रार्थ में आर्यसमाज की अपूर्व विजय

हार खाकर मुंह छिपाए सभी सनातनी पंडित भाग निकले

थोथी दलील देने वाले पंडित गाली गलौज पर उतर आये

भाड़े पर आए कुछ व्यक्तियों ने पत्थर फेंके : पुलिस का हस्तक्षेप

फर्रुखाबाद की २५ हजार जनता द्वारा पौराणिकों की निन्दा एवं आर्यसमाज की प्रशंसा

[विशेषप्रतिनिनिधि द्वारा]

फर्रुखाबाद, १३ जुलाई। सत्य की विजय होती ही है। इसे कोई रोक नहीं सकता। परसों ११ जुलाई को यहाँ पर आर्यसमाज तथा सनातनी पंडितों के बीच एक विराट शास्त्रार्थ का आयोजन हुआ था। सभा में लगभग २५ हजार जनता उपस्थित थी। बताया जाता है कि सनातनी पंडित आर्यसमाज के विद्वानों के साथ थोड़ी देर भी नहीं टिक सके और जब वे हारने लगे तो गाली गलौज पर उतर आये। उपस्थित जनता पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा।

दोनों ओर से शास्त्रार्थ करने वाले पंडितों के बैठने के लिए दो मंच बनाए गये थे जिन पर दोनों पक्ष के विद्वान बैठे थे। सबसे पहले दोनों पक्ष के पंडितों में इस बात पर विवाद हुआ कि शास्त्रार्थ किस भाषा में हो? आर्यसमाजी चाहते थे कि शास्त्रार्थ संस्कृत में हो पर सनातनी पंडित इसे टालना चाहते थे अन्त में वे जनता द्वारा हस्तक्षेप करने पर तैयार हुए। जब शास्त्रार्थ शुरू हुआ तो जनता ने "आर्यसमाज का जय हो" के नारे लगाए।

पौराणिक पंडित बेचारे शास्त्रार्थ तो क्या करते, संस्कृत के श्लोकों को रट कर आये थे जिन्हें बिना आवश्यकता के ही बोलने लगे आर्यसमाजी पंडितों ने कहा—व्यर्थ की बातें बोलने से क्या लाभ? आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थ करने वालों में से शास्त्रार्थ महारथी श्री अमरसिंह जी, श्री आचार्य बृहस्पति जी शास्त्री, श्री पं० कालीचरण जी थे तथा पौराणिकों की ओर से श्री स्वामी अखिलानन्द जी, श्री स्वामी ब्रह्मभिक्षु जी तथा श्री पं० शिवशर्मा आदि थे। आर्यसमाज के विद्वान श्री पं० बृहस्पति जी शास्त्री ने जब धारा प्रवाह संस्कृत बोलना प्रारम्भ किया तो पौराणिक पंडितों की हवाइयाँ उड़ने लगीं। श्री स्वामी अखिलानन्द जी कुछ देर तक ठहरे जरूर पर अन्त में वे भी थोड़ी दलील देते देते रुक गये। श्री पं० अमरसिंह जी द्वारा प्रस्तुत तर्क का उत्तर तो कोई दे ही नहीं सका। शास्त्रार्थ का विषय था "सत्यार्थ प्रकाश तथा पुराण।"

खेद की बात है कि हार खाने पर ठीक एक विद्वान के जैसा विपक्षी की बात मान लेने के विपरीत वे गाली गलौज पर उतर आये। यहाँ तक कि उनके द्वारा भाड़े पर लाए गए कुछ व्यक्तियों ने सभास्थल में ईंट पत्थर भी फेंके, जिससे पुलिस को हस्तक्षेप करना पड़ा। उपस्थित जनता ने आर्य समाज, स्वामी दयानन्द तथा वैदिक धर्म की जय जयकार की तथा पौराणिक पंडितों को उनकी हार पर लज्जित किया।

शास्त्रार्थ में जनता पहले तो बड़े मन से भाग ले रही थी और दोनों पक्ष की बातें सुन रही थी पर पौराणिकों की हठधर्मी, अश्लील शब्द गाली गलौज, दुर्व्यवहार तथा ओछी बुद्धि के कारण जब जनता ने स्वयं उनका विरोध किया, तो वे बस भागते नजर आये। आर्यसमाज की नींव फर्रुखाबाद के आसपास में तो सदा के लिए दृढ़ तथा मजबूत हो गई पर बेचारे पौराणिकों की मिट्टी पलीद हो गई। उपस्थित जनता के हृदय पर आर्यसमाज का सिक्का जम गया और पाखण्डी, पोपपंथी पौराणिक पंडितों की स्थिति जनता की दृष्टि में नगण्य हो गई।

चाहे कुछ भी हो। शास्त्रार्थ में यह अभद्र उदाहरण प्रस्तुत करके सनातनियों ने बहुत बड़ी भूल की। जनता समझ गयी कि ये बिलकुल पोपपंथी असत्य पर आधारित मतावलम्बी पंडित हैं।

[पृष्ठ १३ का शेष]

अन्य बातों को छोड़िये। वेद को ही लीजिये। जिसकी भित्ति पर आर्य समाज खड़ा है। ऋषि ने आर्यसमाज के ३रा नियम इसी के समर्थन में बनाया। "वेद का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है"। इस आधार स्वरूप के लिये भी आर्य समाज परमुखापेक्षी बना है। यदि यह कहें तो अत्युक्ति न होगी कि वर्तमान समय में विधिवत वेद वेदांगों की शिक्षा देने वाली एक भी आर्यसमाज की संस्था नहीं है।

कहाँ तक गिनाये एक नहीं दो नहीं प्रायः हमारे सारे कार्य ऐसे ही चल रहे। परन्तु प्रश्न यह है कि ऐसा कब तक चलेगा? ऋषि का निमन्त्रण है सब को आर्य-समाज के साथ मिल कर काम करने का। किन्तु शोक है कि स्वयं ऋषि के अनुयायी अन्य संस्थाओं में जा जाकर कार्य कर रहे हैं।

---

१५ अगस्त तक

आर्यमित्र पक्ष मनाएँ

देश की समस्त आर्य समाजों व आर्यमित्र के शुभ चिंतकों से हमारी सानुरोध प्रार्थना है कि वे १५ अगस्त तक पूरे बल से दैनिक 'आर्यमित्र' के सदस्य बनाने में लगें।

हमने सभी की सुविधा के लिए १५ अगस्त तक आर्यमित्र का सदस्य बनने वालों के लिए मूल्य में कमी घोषित कर दी है। वर्ष भर का २१) छ माह का ११), तीन माह का ६) शुल्क भेज आप सदस्य बन सकते हैं। इसी शुल्क में सदस्यों को साप्ताहिक भी दिया जायगा।

हम चाहते हैं कि आर्य जनता १५ अगस्त तक ५००० सदस्य पूरे करदे, हमारी इस माग के पूरे होते ही हम 'आर्य मित्र" का साइज २२×१६ कर देंगे।

यदि आप चाहते हो कि पत्र उन्नति करे तो पूरा बल सदस्य बनाने में लगा दीजिए यही समय की माग है—

विनीत—
कालीचरण आर्य
मन्त्री
आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश

समाज और भ्रष्टाचार

[पृष्ठ २ का शेष]

से भ्रष्टाचार दूर हो', 'भ्रष्टाचार एक सामाजिक हानि है।' इस आन्दोलन में हमें समाज के प्रत्येक नर-नारी के सक्रिय सहयोग की बहुत सख्त आवश्यकता है क्योंकि सामाजिक सहयोग के प्राप्त न होने पर आन्दोलन कभी भी सफल नहीं हो सकता। इसका परिणाम यह होगा कि हम समाज से भ्रष्टाचार को दूर नहीं कर सकेंगे और समाज मे आदर्श की स्थापना न हो सकेगी। इस प्रकार कहने का तात्पर्य यह है कि समाज से भ्रष्टाचार को हटाने के लिये हमें सब से पहला कदम आन्दोलन के रूप में आगे बढ़ाना होगा। इसमें समाज के प्रत्येक व्यक्ति का कदम एक साथ बढ़ने की सख्त आवश्यकता है। समाज सेवकों और सामाजिक नेताओं को अपने अपूर्व साहस, बल और परिश्रम के साथ आन्दोलन के आगे आना होगा और भ्रष्टाचार निराकरण के इस आन्दोलन को बल प्रदान करके उस की अद्भुत सफलता का शुभकामना करना होगा। भारतीय नवयुवकों और विद्यार्थियों का सक्रिय सहयोग इस आन्दोलन की सफलता का परिचायक है। इसलिये नवयुवक विद्यार्थियों को तो इस पावन कार्य में सबसे आगे रहना चाहिए और इसकी सफलता में तन मन धन सब कुछ अर्पित करने के लिये सदैव प्रस्तुत रहना चाहिये। तभी हम भ्रष्टाचार से रहित एक आदर्श समाज का दर्शन कर सकेंगे।

समाज से भ्रष्टाचार को दूर करने के लिये हमें क्रियात्मक उपायों के माध्यम से आगे बढ़ना होगा। इसके लिये भारत के प्रत्येक गाव व नगर में भ्रष्टाचार-निरोध समितियाँ की स्थापना करनी होगी जिसका प्रधान उद्देश्य सामाजिक वातावरण से भ्रष्टाचार को दूर करना होगा। सभी समितियों का यह परम पावन कर्त्तव्य होगा कि अपने अपने क्षेत्र से भ्रष्टाचार का निराकरण जल्द से करें। टोलियां बना बना करके अपने क्षेत्र के प्रत्येक घरों तक जाना होगा और प्रत्येक नर-नारी से मिलना होगा और उन्हें समाज के आदर्श वास्तविकता से परिचित कराना होगा। समाज का यथार्थ और वास्तविक विवेचन उन्हें समझाना होगा और उन्हें यह भी दिखाना होगा कि भ्रष्टाचार के कारण हमारा पावन भारतीय समाज अब क्या रह गया ? भ्रष्टाचार के कारण भारतीय आज समाज मानवीय पतन की किस सीमा तक पहुंचा हुआ है क्योंकि इतना होने पर ही समाज के प्रत्येक व्यक्ति की आँख खुलेगी और तभी वह पूर्णतया यह समझ सकेगा कि वास्तव में भ्रष्टाचार से समाज को क्या हानि हो रही है ? इस कार्य में नारी सहयोग की भी बहुत जरूरत है। भारतीय महिला समाज को भी इस पवित्र समाज सुधार के कार्य मे अपनी प्राचीनतम विशेषताओं के साथ आगे आना होगा और प्रत्येक भ्रष्टाचारियों से मिलकर उनसे प्रश्न करना होगा कि तुम नारी का उपयोग भ्रष्टाचार के रूप में क्यों कर रहे हो ? भारतीयता की महानता उन्हे बतानी होगी। भारतीय नारियों का आदर्श एवं उनका व्यक्तित्व तथा समाज में क्या स्थान है ? यह बताना होगा। इस कार्य को सफल बनाना भारतीय महिला-वर्ग का एक महान् उत्तरदायित्व है। प्रत्येक भारतीय नारी का यह परम पावन कर्त्तव्य है कि समाज से भ्रष्टाचार को दूर करने में जहा तक हो सके, सक्रियता के साथ सहयोग प्रदान करे, भ्रष्टाचार का जो रूप नारी-जाति से सम्बन्धित है, उसे समाज से पृथक करने का अथवा दूर करने का वास्तविक उत्तरदायित्व वास्तव में हमारे भारतीय महिला वर्ग पर ही है।

समाज को सुचारु रूप से संचालित करने के लिये हमें सामाजिक नियमों को बनाना होगा जिससे हम समाज के अन्तर्गत भ्रष्टाचार के कार्यों पर प्रतिबन्ध लगा सके। सामाजिक नियमों का पालन हमें अपना पावन कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व समझना होगा। समाज में अश्लील नारी चित्रों के भव्य प्रदर्शन पर रोक होनी चाहिये। यदि समाज में इस कार्य को नारी वर्ग द्वारा सम्पन्न कराने का प्रयत्न किया जाय तो मैं समझता हू कि हमें अधिक सफलता मिल सकेगी। भारत की प्रत्येक महिला का कर्त्तव्य है कि अश्लील नारी चित्रों के प्रदर्शन को रोकने के कार्य को अपने हाथों में ले और भरसक इस पर रोक लगाने का सक्रिय प्रयत्न करे। हम लोग भी उन्हें अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करने के साथ साथ उनकी सफलता की अद्भुत शुभकामना करेंगे और प्रतिदिन हम परमपिता परमेश्वर से यही वन्दना करेंगे कि हमारा नारी समाज अश्लील चित्रों के प्रदर्शन को रोकने का कार्य जो अपने हाथों में लिया है और उस पर पर्याप्त रोक लगाने का बोझा उठाया है, उसमें उसे सराहनीय सफलता प्राप्त हो।

वेश्यावृत्ति का जो अनुपम जागरण हम, आज समाज मे देख रहे हैं, उसे भी दूर करने का उत्तरदायित्व वास्तव में हमारे भारतीय महिला वर्ग पर ही है। इसके लिये यह जरूरी है कि वेश्याओ का उपयोग किसी दूसरे रचनात्मक कार्यो मे किया जाय जिससे उनका जीविकोपार्जन होता रहे क्योकि तभी वे अपने वेश्यागमन के कार्य-क्रम को स्थगित कर सकेंगी। इस प्रकार वेश्याओं को कार्य प्रदान करने की समस्या हमारे सामने आती है। इसमें भारतीय सरकार के सहयोग की आवश्यकता है। हमारा भारतीय मानव समाज और विशेष रूप से महिला वर्ग अपने वर्तमान सरकार से यह माग करता है कि वह वेश्यावृत्ति के प्रसार में सक्रिय रूप से कानूनन बाधा पहुंचावे और वेश्याओं के जीविकोपार्जन की समुचित व्यवस्था करके समाज से भ्रष्टाचार के भीषण रूप वेश्यावृत्ति को दूर करने में सक्रिय रूप से सफल सहयोग प्रदान करे।

सामाजिक भ्रष्टाचार को दूर करने के लिये यह जरूरी है कि मद्यपान और मांस भक्षण पर प्रतिबन्ध लगे। इसके लिये समाज के नर वर्ग को विशेष रूप से आगे आना होगा और समाज के उन प्रत्येक व्यक्तियों के सामने मद्यपान और मॉस भक्षण के गुण दोषों का स्पष्टीकरण करना होगा, जो मद्यपान और मॉस-सेवन के कार्यक्रम में भाग लेते हैं। मदिरा और मॉस के प्राप्ति स्थानो को हमें तोड़ना होगा और इस व्यवसाय मे लगे हुये व्यक्तियों को हमे उन्हे दूसरे कामों मे लगाना होगा जिससे उनका जीविकोपार्जन समुचित रूप से हो सके। शराब पीने वालों और मॉस खाने वालों की संख्या कम होने से समाज का एक दूषित वातावरण, जो आज हमारे सामने विद्यमान है एक उज्ज्वलमय वातावरण में शीघ्र परिवर्तित हो जायगा। इस तरह हमे इस बात का प्रयत्न करना चाहिये कि भ्रष्टाचार के विभिन्न रूपों का समाज से शीघ्र से शीघ्र निराकरण हो सके।

राष्ट्र और समाज का प्रशसनीय सुनहला भविष्य तभी क्रियात्मक रूप मे परिणित हो सकेगा जब हम समाज से भ्रष्टाचार के समस्त रूपो का निराकरण करने में सफल हो सकेंगे। इसके लिये हमे सामूहिक रूप से अपने सामूहिक और सामाजिक शक्तियों के साथ आगे बढना चाहिये और समाज के प्रत्येक नर नारी को आगे आकर भ्रष्टाचार निवारण के कार्य तभी हम अपने राष्ट्र और समाज मे आदर्श की स्थापना कर सकेंगे। अब मुझे आशा ही नहीं वरन् दृढ विश्वास है कि देश का सारा समाज अपने सामूहिक और सगठित शक्तियो के साथ समाज से भ्रष्टाचार को दूर करने में क्रियात्मक रूप से कार्य करेगा जिसके फलस्वरूप हम थोड़े समय में ही अपने राष्ट्र और समाज का दर्शन एक आदर्श रूप में कर सकेंगे।

लखनऊ १७ जुलाई १९५५ — आर्य्यमित्र — रजिस्टर्ड नं० ९० ६०

आप कौन सा दैनिक-पत्र पढ़ेंगे?

क्यों..................?

इसलिए कि—

१—भारत भर में यह ही ऐसा दैनिक है जो किसी राजनैतिक पक्षपात में न पड़ निष्पक्ष भाव प्रकट करता है।

२—यह राम-कृष्ण की महान् वैदिक संस्कृति को संसार भर में प्रसारित करने का लक्ष्य लेकर चल रहा है।

३—यह भ्रष्टाचार ईसाइयों के षड़यन्त्रों और गो-वध को समाप्त करने का प्रण लेकर चल रहा है।

४—यह ही एकमात्र ऐसा दैनिक-पत्र है जिसमें सिनेमाके अश्लील तथा मादक द्रव्यों के विज्ञापन देकर किसी भी मूल्य पर प्रकाशित नहीं होते।

५—सम्प्रदायवाद, नास्तिकवाद, भौतिकवाद, कम्यूनिज्म व अन्ध-विश्वासों के उन्मूलन का लक्ष्य इसकी प्रेरणा है और यह चाहता है कि सम्पूर्ण धरती के मनुष्य एक ईश्वर का पुत्र होने नाते भाई-भाई के समान रह, मानवता के, सत्य के, न्याय के उपासक बनें—यदि आप इन पाँच लक्ष्यों से सहमत हों तो—

आज ही अपने हाकर से एक आना देकर माँगे या हमें लिखें—

व्यवस्थापक—आर्य मित्र लखनऊ।

वार्षिक २४)। — ६ माह १३)। — ३ माह ७)

बाबूराम 'भारती' द्वारा भगवानदीन आर्यभास्कर प्रेस, ९, मीराबाई मार्ग, लखनऊ से मुद्रित तथा प्रकाशित

अबला नारी सबला नारी !

अबला नारी सबला नारी, विधि की पहली रचना नारी।
फिर क्यों न कहूँ यह महा शक्ति, या महाप्रलय की चिनगारी ॥

कल्याणमयी अनुरागमयी, मानों ममता की परिभाषा।
मानव तो मानव ही ठहरा, सुरगण की स्वर्णिम अभिलाषा ॥
जीवन भर स्नेह दान करती, रखती कब बदले में आशा।
देती दुलार की सघन छांह, पढ़ते ही नैनों की भाषा ॥

मन में अर्पण की चाह संजोती आई त्यागमयी नारी।
अबला नारी सबला नारी विधि की पहली रचना नारी ॥

मन में पीड़ा का झरना हो पर जिह्वा पर परिहास सदा।
उर में वेदना अपार रहे पर अधरों पर मृदुहास सदा ॥
पीती दुःख-गरल जगत भर का देती सुख का आभास सदा।
पर पाया जीवन में इसने युग युग से है उपहास सदा।

तुम कहते अन्धकार इसको पर यह मानस की उजियारी।
अबला नारी सबला नारी विधि की पहली रचना नारी ॥

इसके नूपुर औ कंकण में तलवारों की झनकार छिपी।
इसकी वाणी के मृदु स्वर में हुंकार छिपी फुंकार छिपी ॥
ज्यों रत्नजटित औ स्वर्णखचित म्यानों में नग्न कटार छिपी।
फूलों में जैसे शूलों की होती है तीखी मार छिपी ॥

इसमें अमृत भी हाला भी कैसी अद्भुत यह रतनारी।
अबला नारी सबला नारी विधि की पहली रचना नारी ॥

रणस्थल में इसको देखा बन काल शत्रु पर टूट पड़ी।
नैना जैसे दो अंगारे मानों कालिका सजीव खड़ी ॥
यह युद्धप्रिया जब बांध कवच खींचे लगाम अरि ओर बढ़ी।
बिजली सी द्रुतगति भर कर में काटती चली सिर ज्यों ककड़ी

बन रही शरभ, बन गया सिंह जब उछल चढ़ी विप्लवकारी।
अबला नारी सबला नारी विधि की पहली रचना नारी ॥

छाया तेजोमय मधुर हास्य ललनाओं के सुन्दर मुख पर।
आई जब प्राणों की बारी निकला मुख से जयघोष अमर।
नभ लगी चूमने ज्वालाएं अद्भुत जौहर बन का जौहर।
पहना दी प्रियतम को माला काटा निज हाथों से जिन सर ॥

स्वर्णिम पत्रों पर कथा अमर अंकित उज्ज्वल अति ही न्यारी
अबला नारी सबला नारी विधि की पहली रचना नारी ॥

(सुश्री कुमारी सुभाषिणी कानपुर)

वैदिक प्रार्थना

... अग्ने ... वाजस्य गोमत ईशानः।
... अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥

... ज्ञानधन के अधिष्ठाता, बल के ... अग्ने! हमें महान् सम्यग्ज्ञान ...

इस अंक के आकर्षण

वेद में इतिहासाभास मानने वालों का तर्क

(श्री प० जयदेव जी शर्मा विद्यालङ्कार यजुर्वेद भाष्यकार)

आर्यमित्र के गत अङ्कों में पाठकों ने हमारे अनेक लेख पढ़कर भली भाँति जान लिया होगा कि वेदों में इतिहास मानने वाले विद्वान किस २ प्रकार की छल पूर्ण स्थापनाएं करके अपने स्वार्थ साधन में लगे रहते हैं।

वे अपने ग्रन्थों में खुल्लम खुल्ला वेदों में इतिहास मान लेते हैं। जब उनकी आलोचना होती है तब अपना इतिहासवाद पाठकों की आंखों से ओझल करने के लिये नई २ स्थापनाएं गढ़कर लम्बी २ व्याख्याएं प्रस्तुत करते हैं।

"क्या वेदों में इतिहास है?" इस पुस्तक की समालोचना में श्री प० सातवलेकर जी, विद्यावयोवृद्ध पण्डित एवं सम्पादक वैदिक धर्म ने 'वेद में इतिहास सदृश वर्णन' मानने का प्रयास कई पृष्ठों की समालोचना (वैदिक धर्म अप्रैल अङ्क) में किया है। वेदों में इतिहास कथा के सदृश वर्णन मानना ही 'इतिहासाभास' मानना है। इस 'इतिहासाभासवाद' के समर्थन में प० जी ने तीन प्रकार की स्थापनाएं की हैं। एक तो यह कि वेद में इतिहास कथा के समान वर्णन है, दूसरी स्थापना यह कि भारत के वैदिक मन्त्रों में और इतिहास पुराणों में 'शाश्वत इतिहास' है। (पृष्ठ ११५ वैदिक धर्म अप्रैल अङ्क १९५५) तीसरी बात यह है कि— यदि कोई कहेगा कि केवल इतिहास ही वेद में है तो यह असत्य है, वैसा ही केवल आध्यात्मिक ज्ञान ही है, ऐसा कोई कहे तो यह पूर्ण सत्य नहीं है।" (वैदिक धर्म वही अङ्क पृ० ११४ स्तम्भ १) आगे लिखते हैं—'केवल दुराग्रही लोग कहते हैं कि ऐतिहासिकों का निराकार खण्डन करते हैं। ऐसी बात वस्तुतः नहीं है। वेद के वचन ही ऐसी व्यवस्था से रचे गये हैं कि जो अनेक विविध अर्थों को धारण कर सकें इस कारण क्या वेद में इतिहास है? यह प्रश्न निरर्थक है।' "एक एक मन्त्र अनेक अर्थ बताता है।"

इन सब उद्धरणों में प० जी के मन के भाव बाहर आ गये हैं। और वे एक दूसरे के विपरीत भी हैं। जब इतिहास कथा के सदृश वर्णन मानें तो स्पष्ट है कि इतिहास का आभास मात्र होता है, इतिहास है नहीं।

परन्तु साथ ही कहना कि— "वैदिक मन्त्रों और इतिहास पुराणों में शाश्वत इतिहास है" इसका अभिप्राय यह हुआ कि वेद की रचना महाभारत, रामायण और १८ पुराणों उपपुराणों के समान है। सब में 'शाश्वत इतिहास" है तब वेद की क्या विशेषता है? कुछ नहीं। यह दुर्दशा वेदों की इतिहासवादी महा पण्डितों ने कर डाली है। इस शाश्वत इतिहास' की मृग मरीचिका ने इतिहास की ऐसी दुर्दशा की है कि रामायण और महाभारत के ग्रन्थों को भी योरोपीयनों की दृष्टि में इतिहास पद से गिरा दिया है। वे उनको कल्पित व्यक्तियों की मिथ्या कथावाद का पोटला कहकर उसके तथ्य इतिहास का मूल्य भी नष्ट कर देते हैं। वे उन इतिहासों में अध्यापन अलङ्कारों की काल्पनिक रचना करके उनकी वास्तविक ऐतिहासिक सभ्यता को मिटा डालते हैं। उनकी दृष्टि में राजा युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, दुर्योधन और महाभारत युद्ध ये अतथ्य काल्पनिक बातें हो जाती हैं।

और यही छाप बड़े शिक्षित समुदाय के मस्तिष्क पर भी पड़ी है। महात्मा गाँधी के गीता बोध को पढ़िये। उन्होंने उसमें महाभारत की सत्य ऐतिहासिकता पर सन्देह प्रकट किया है। इस शाश्वत इतिहास की दुविधा में पड़कर वैदिक मन्त्रों में इतिहास मान लिया। उनका वेदत्व नष्ट किया। और इतिहास पुराणों में शाश्वत इतिहास मान कर उनका भी इतिहास नष्ट किया।

श्री प० सातवलेकर जी ने भी अपने लेखों में इसी बात पर बल दिया है। शिक्षाप्रद उपदेश मात्र निकाल लेना ही यदि 'शाश्वत इतिहास का बड़ा लक्षण है तो पञ्चतन्त्र, हितोपदेश की कथाएं, ईसोप फेबल्स की कथाएं, और अरेबियन नाइट के सहस्र रजनी चरित्र, और शेख सादी के बनाये 'बोस्तां', गुलिस्तां की कथाओं ने क्या अपराध किया है कि उनमें शाश्वत इतिहास क्यों न माना जाय? स्वयं इतिहास कथा की ही रचना क्यों न मानी जाय?

फिर 'तोता मैना' की कथाएँ, शुक-बहत्तरी कथाएं साढ़े तीन यार की कथाएं, और लेम्ब्स की शेक्सपीयर की 'टेल्स' और तुलसी रामायण और वर्तमान युग के उपन्यास सम्राट श्री प्रेमचन्द की रची कथाओं, गल्पों और उपन्यासों ने क्या अपराध किया है कि उनको वेद के तुल्य न माना जाय? क्या उनमें इतिहास कथा के समान रचना नहीं है, क्या उनमें उपदेश प्रारूप से शाश्वत इतिहास नहीं निकलता?

श्री प० जी को यह सब बातें कहने का साहस तभी हुआ है जब उन्होंने अपने चित्त में यह धारणा करली है कि वेद ईश्वरीय रचना नहीं है। वह भी रामायण महाभारत पुराण उपपुराणों के समान ऋषियों की रचना है। हमारे कथन पर विश्वास न हो तो उक्त प० जी के ऋषि दर्शनों को उठाकर देख लीजिये। उनमें गौतम, मेधातिथि वसिष्ठ आदि नामों को वेद मन्त्रों में व्यक्ति वाचक माना है। उसके आधार पर वेद के सूक्तों का आगे पीछे रचे जाने का तर्क भी किया है।

अब इस इतिहासाभास वाद की पुष्टि में श्री प० जी ने राम कथा को दृष्टान्त रूप में दिया है। जैसे— प्रार्थना—हे राम मेरा संरक्षण करने की कृपा करो। आज्ञा हे राम मेरी रक्षा कर। विधि—राम मेरा संरक्षण करे। इतिहास—राम ने मेरा संरक्षण किया। निमन्त्रण हे राम तुम को मैं अपने संरक्षण के लिये बुलाता हूं। निषेध—हे राम मेरी सुरक्षा न हो ऐसा तुम कुछ भी न करो। प्रशंसा राम सबका उत्तम संरक्षण सदा करता रहता है। आश्चर्य, रामने कैसी उत्तम रीति से हमारा संरक्षण किया। प्रश्न क्या तू हमारी रक्षा करेगा? इस तरह भाषा के विविध प्रकार के वर्णन करने के प्रकार हैं। इनको देखने से पता लगता है इनमें इतिहास के समान [illegible] यह भी एक प्रकार है।

उस का भाव इतना ही है कि राम संरक्षक है, मानवों का संरक्षण करता है, तो रामने करना है।

"वेद में ये सब प्रकार के वाक्य भेद हैं और अनेक देवताओं के वर्णनों में ये सब आते हैं।"

इतना लिखने के अनन्तर श्री प० जी के मन में जो घरा है वह भी बाहर आ गया है। आप लिखते हैं— इतिहास अथवा कथा यह कहने का, उपदेश देने का समझाने का भाषा प्रकार है। इतिहास के रूप में जहाँ वर्णन होता है वहां भूत काल के प्रयोग होते हैं। इन्द्र वृत्र के वर्णन के मन्त्र देखिये। जैसे इतिहास हुए, वैसे ही ये वर्णन है देखिये

'इन्द्र के लिये त्वष्टा ने फौलाद का वज्र बनादिया। उसकी धारा तीक्ष्ण की। इन्द्र ने वृत्र असुर पर प्रहार किया। वृत्र की माता आ गई। वह वृत्रके ऊपर पड़ी। और अपने वस्त्रों से वृत्रको ढाँपलिया। इन्द्रने वज्र से वृत्र इतिहास टुकड़े कर दिये। (वै० धर्म अप्रैल अङ्क पृ० ११०)

समीक्षा—पहले तो पं० जी ने राम के सम्बन्ध में वाक्य लिखे उसमें इतिहास भी माना। यदि वह राम दशरथ का बेटा राम ऐतिहासिक व्यक्ति है तो उसको लक्ष्य करके प्रार्थना आज्ञा, विधि, निमन्त्रण, निषेध, प्रशंसा, आश्चर्य प्रश्न जैसे प० जी ने दिखलाए हैं बन नहीं सकते हैं। वह दशरथ का बेटा राम इस समय है ही नहीं, उसकी पुकार लगाना उस पर आज्ञा, आदि चलाना शून्य आकाश में मुक्के लगाने के समान है।

यदि राम शब्द किसी नित्य सब ईश्वर का वाचक है तब उसमें इतिहास की बात नहीं है। वह त्रिकाल में एक समान है। उसके कार्यों में भी जब मनुष्य अपनी अनन्य बातें जोड़ने लगता है तब उसमें भूत काल का प्रयोग भी करने लगता है। जैसा बाइबल में यहूदियों का खुदा अनेकबार यहूदियों के लिये लड़ाइयाँ लड़ता है किसी को जिलाता किसी को डराता है, बाईबल में उन किस्सों को लिखते हुए खुदा को एक अच्छा [illegible] लड़ाका बना लिया है। इसी प्रकार प० जी ने 'राम' नामकी [illegible] वाक्य रचना की है। वैसे ही [illegible] रचना वेद में मान कर इतिहास [illegible] दी है। आपने [illegible] भी यह [illegible] दिया है कि—

(शेष पृष्ठ [illegible] पर)

प्राणों की आहुति दे कर भी आर्य-समाज यदि आर्यसमाज बन जाए तो दानवता का दमन और मानवता का कल्याण संभव हो सकता है। मूर्ति पूजा, गुरुडम, साम्प्रदायिकता, अंध विश्वास, युद्ध, नर संहार और अशांति के कारणों की समाप्ति की जा सकती है। युग में क्रांति कर नव युग की स्थापना की जा सकती है....पर यदि 'प्राण' आएं तब तो! 'प्राण' ज्ञान की उस प्रथम किरण के साथ लौट सकते हैं जिस किरण के द्वारा आरम्भ में आर्यसमाज ने प्रकाश पाया था। यह समस्या अपनी नहीं, युग की है। मानवता के जीवन या मरण की है। उत्थान या पतन की है, हमारी चाह पर जीवन और मरण दोनों टिके हैं, बहुत सोचने पर भी समझ नहीं आता कि हम क्यों मृत्यु को आमन्त्रण दे रहे हैं?

हमारी मृत्यु में संसार की मृत्यु और जीवन में जीवन छिपा है। शाश्वत वैदिक विचार धारा का पावन जयघोष अशांत पीड़ित विश्व को जीवन की दिशा प्रदान करेगा, यह विश्वास आज हमें आर्यसमाज को झकझोरने की प्रेरणा कर रहा है। नेताओ, अधिकारियों, विद्वानों से हमारा प्रश्न है कि क्या वर्तमान प्रकार मृत्यु का नहीं है! यदि है तो इस मृत्यु मार्ग को त्यागने का उपक्रम क्यों नहीं किया जाता? क्यों नहीं "सत्य"-"ज्ञान" की किरणों के आलोक से अपना—संसार का अन्धकार दूर करने की चेष्टा की जाती।

आत्मा में, अंतर में, यदि तनिक भी ज्योति शेष है तो उठिये, दयानन्द के दिव्य सन्देश को देश-देशान्तर में प्रसारित करने के लिये सर्वस्व होम कर भी निरन्तर आगे बढ़ने का प्रण कीजिए। क्षण भंगुर जीवन के प्रलोभनों में न फँस शाश्वत आनन्द की प्राप्ति के लिये, गति-प्रकार बदलिये। जो करना है कीजिए, सफलता यदि सत्य साथ है तो मिलेगी ही....यह अटल विश्वास क्या आप को प्रेरित नहीं कर सकता?

'प्राण' इसलिये नहीं, कि जो आर्य-समाज के प्राण हैं उनमें प्राण नहीं। अपनी सत्ता को खोकर हम समाज की, राष्ट्र की, विश्व की, सत्ता को समाप्त कर रहे हैं—यह समाप्ति, आरम्भ की ओर परिवर्तित की जाए, हम अपने को, समाज को, राष्ट्र और विश्व को सतयुग की स्थापना के लिए नया मोड़ दें और करें इस के लिए 'आर्यसमाज में पुन प्राण प्रतिष्ठा' यही आज हमारे अन्तर की पुकार है ...

विद्यानन्द विदेह और वेद भाष्य?

२ वर्ष बीत गए, जब सबसे पहले हमने श्री विद्यानन्द 'विदेह' जी के बारे में लेखनी उठायी थी! बड़ा शोर मचा, लोगो की आखें खुलीं और विदेह जी का सच्चा रूप सामने आ गया। बाद में सार्वदेशिक सभा की बैठक हुयी, धर्मार्य सभा की हुयी और सब ने एक स्वर से निश्चय किया कि विदेह जी का साहित्य दोष पूर्ण है। वैदिक सिद्धान्तों के विपरीत है, अतः उस को मान्यता न दी जाए!

विदेह जी ने स्वयं २९-१-५३ के धर्मार्य सभा के अधिवेशन में स्वीकार किया था कि "मेरी दर्शन में गति नहीं, मैं संस्कृत भी उतनी नहीं जानता।" किन्तु फिर भी वे वेदभाष्य के लिए निरंतर एक लाख की अपील प्रकाशित कर रहे हैं। धर्मार्य सभा आर्य जनता से इस अपील पर धन न देने का आग्रह कर चुकी है। पर समझ नहीं आता कि बहुत से आर्य व आर्य समाजें अनुशासन भंग करते हुए विदेह जी के चक्कर में क्यों आ रहे हैं?

हम संभवतः विदेह जी के बारे में कुछ न लिखते, पर अभी अगस्त ५५ के सविता के अंक को देखकर, बाध्य हो हमें लेखनी उठानी पड़ी! इस अंक के संपादक भी स्वयं विदेह जी हैं और आश्चर्य यह है कि पूरा अंक विदेह जी की स्तुति से भरा पड़ा है। मुख पृष्ठ पर 'विदेह' अन्दर 'विदेह' पृष्ठ-पृष्ठ पर विदेह। स्पष्ट होता है कि विदेह जी अपना नया मत चलाने की तैयारी में हैं।

महर्षि दयानन्द के भक्त कान खोल कर सुन लें, अच्छी तरह पढ़ लें, आज भारत में वेदों का एक उद्धारक उत्पन्न हो गया है, जिसे दर्शनों का ज्ञान नहीं, संस्कृत आती नहीं, पर जो लाखों रुपया मांग कर वेद भाष्य करने की घोषणा कर रहा है।

क्या यह सभी कुछ जनता की श्रद्धा का अनुचित लाभ उठाने का कुत्सित षड्यन्त्र नहीं है? घर भर के सदस्यों का मिल कर एक संस्थान खड़ा कर, अपने संपादन में आत्म प्रशंसा के गीत गाकर गुरुडम प्रचार द्वारा लाखों रुपया व्यक्तिगत लाभ के लिए लगा देना क्या नैतिक अपराध नहीं है?

हम आर्य जनता को सावधान करते हुए कहना चाहते हैं कि वह विदेह जी के प्रपंच से सावधान रहे! विदेह जी को दिया हुआ एक-एक पैसा आर्य समाज की जड़ें खोखली करने में व्यय होगा, यह सभी को समझ लेना चाहिए।

जिन आर्य विद्वानों की छोटी-छोटी सम्मतियां विदेह जी ने अपनी प्रशंसा में छापी हैं वह भी केवल धोखा देने का प्रयास है। हम ने स्वयं कई आर्य विद्वानों से बात की है सभी एक स्वर से विदेह—साहित्य को वैदिक विचारधारा के विरुद्ध मानते हैं।

कैसी विडंबना है कि जो व्यक्ति संस्कृत का—दर्शन—व्याकरण का ज्ञान नहीं रखता वह अपने को वेदमूर्ति घोषित करने का साहस करता है। क्या सोचें हम?

कुछ भी हो यह स्पष्ट है कि विदेह जी स्वार्थ साधना के लिए आर्य समाज की जड़ों पर कुल्हाड़ी चला रहे हैं। क्या आर्य जनता इसे पसंद करती है? यदि नहीं तो हमारी प्रार्थना है कि आर्यसमाज की वेदी से विदेह जी का बहिष्कार किया जाए, जब तक कि वे अपने पुराने साहित्य को अवैदिक घोषित न कर दें।

हम विदेह जी की सद्बुद्धि के लिए परमात्मा से प्रार्थना करते हैं और साथ ही यह नम्र निवेदन भी कि यदि वेदोद्धार की इच्छा है तो किसी विद्वान गुरू के (जैसे पूज्य स्वामी आत्मानन्द जी, पूज्य स्वामी ध्रुवानन्द जी, आचार्य श्री नरदेव जी शास्त्री, आदि) चरणों में बैठकर कुछ पढ़ें, सीखें और तब दयानन्द महर्षि के सच्चे शिष्य बनकर वेद ज्ञान का प्रसार करें। वेद भाष्य के नाम पर धन बटोरने की कुचेष्टा तो प्रत्येक दृष्टि से अनैतिक अपराध है।

जो होना आवश्यक है?

इस समय चल रही गतिविधि के बीच एक अत्यन्त आवश्यक बात की ओर हम आर्य समाज के कर्णधारों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। यह आवश्यक बात साहित्य प्रकाशन की है। हमारे विचार में १-४ अच्छे विद्वानों को बिठाकर वैदिक विचारधारा प्रसार के लिए कुछ गंभीर साहित्य का निर्माण आरम्भ करा देना चाहिए।

रूसी भाषा में, फ्रेंच में, इंगलिश, बंगला, हिन्दी, और दक्षिण प्रदेश की भाषाओं में, कुछ गम्भीर विद्वत्ता पूर्ण ग्रन्थों की रचना होनी चाहिए।

इस के साथ ही यह भी परमावश्यक है कि जहां इन में विचार धारा अपनी हो, वहां 'प्रकार' आधुनिकतम हो! हमें यह न भूलना चाहिए कि हमारा उद्देश्य विचारों की क्रांति है जो बिना सबल साहित्य के किसी भी अवस्था में पूरा न हो सकेगा। इस विषय में पृथक्-पृथक् बल न लगा कर केवल सार्वदेशिक सभा के तत्वावधान में यह कार्य आरम्भ होना चाहिए।

आज तक हम इस ओर से उदासीन रहे हैं। पर इस प्रकार तो गाड़ी अधिक न चल सकेगी। जीना है तो गहरी नींद, या तंद्रा को त्यागना ही होगा। क्या हम आशा करें कि अन्य आर्य विद्वान् भी इस विषय में अपनी लेखनी उठाएंगे।

समाजों के सत्संग!

हम साप्ताहिक सत्संगों को सुरुचि-पूर्ण बनाने की ओर कई बार आर्य जनता का ध्यान आकर्षित कर चुके हैं। इस विषय में अधिक बल देने का कारण यह है कि हमारे विचार में आर्यसमाज को गति देने के लिए पहला पग 'सत्संग-सुधार' ही हो सकता है। जहाँ-जहां भी आर्य समाजें स्थापित हैं वहां-वहां सत्संग नियमित व प्रभावशाली रूप में होने लग जाएं तो हमारी गति में पर्याप्त बल आ सकता है। जब किसी भी छोटे से छोटे ग्राम के मन्दिर में-मस्जिद में पूजा के समय पर्याप्त भीड़ प्रतिदिन आ सकती है तब कौन सी ऐसी रुकावट है कि वह भीड़ आर्य समाज के साप्ताहिक अधिवेशन 'सत्संग' में नहीं आ सकती?

आवश्यकता केवल सत्संग को आध्यात्मिक प्रेरणा स्थल का रूप देने की है। केवल कामकाजी अधिवेशन न बना श्रद्धा व प्रेरणा के साथ हम कार्यक्रम बनाएँ। जो आवे वह कुछ लेकर जावे, यही हमारी चाह है। आप अपने नगर में हमारी चाह पूरी कर दिखाइये, फिर स्वयं अनुभव कीजियेगा कि कितना बल आप का बढ़ा है? ज्ञान भंडार को छितराने के लिये सत्संग का आयोजन कीजिये, जीवन के रहस्य जिन्हें जानने को मानव-अंतर आतुर है, उसे बताइए आप। आकर्षण कितना बढ़ता है तब, यह जानने के लिए प्रयास का

अन्तरंगाधिवेशन की सूचना

समस्त अन्तरंग सभासदों को सूचित किया जाता है कि आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश की अन्तरंग सभा का साधारण अधिवेशन दिनांक ४ सितम्बर १९५५ दिन रविवार तदनुसार आश्विन कृ० १ सं० २०१२ वि० को समय प्रातःकाल १० बजे स्थान आर्यसमाज मन्दिर (मेस्टन रोड) कानपुर में आरम्भ होगा। यदि कार्य समाप्त न हुआ तो बैठक ५ सितम्बर को भी हो सकेगी।

कृपया ठीक समय पर पधारने का कष्ट उठावें। —सभा मंत्री

आर्यमित्र का शुल्क

दैनिक + साप्ताहिक

एक वर्ष का	—	२४)
६ माह का	—	१३)
३ माह का	—	७)
एक प्रति का	—	-)

साप्ताहिक का शुल्क

एक वर्ष का	—	८)
६ माह का	—	४॥)
३ माह का	—	२॥)
एक प्रति का	—	=)

आरम्भ आप कल से ही कर दें। भविष्य निर्माण के लिये यह परमावश्यक है।

हम कहां हैं?

बहुत से पत्र हमारे पास इस आशय के आते हैं जिन में प्रश्न पूछा होता है कि इस समय "आर्यमित्र" की क्या स्थिति है? नहीं सोच पा रहे कि इस प्रश्न का उत्तर हम क्या दें! केवल यही कहा जा सकता है कि हम ने आज से ९ मास पूर्व जिस स्थिति में आरम्भ किया था वहां से पर्याप्त आगे बढ़ सके हैं। यह बढ़ना और भी अधिक तेजी में हो सकता था यदि कुछ अनावश्यक व्यवधान मार्ग का रोड़ा न बन जाते! व्यवधान हट गये तो 'मित्र' सूर्य की भांति भुवन भर में प्रकाश प्रसारित करने में सफल होगा, विश्वास है, और यदि व्यवधान रहा ही तो—बहुत संभव है हमारा बल कुछ विशेष परिणाम न ला सके। आर्य समाज के, विश्व के और मानवता के कल्याण के लिये इन व्यवधानों की समाप्ति हेतु, हम परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

वचन निभाइए!

१०) मासिक भेजने का प्रतिज्ञा पत्र ७० के लगभग व्यक्तियों व समाजों ने भरकर भेजा था किंतु इन में से बहुत कम नियमित धन भेज रहे हैं। हमारा निवेदन है कि कुछ भी हो हमें वचन तो निभाना ही चाहिए।

क्या हम आशा करें कि सभी भाई इन पंक्तियों को पढ़ कर पिछला धन अविलम्ब भेज देंगे और भविष्य में भी नियमित रूप से भेजने की कृपा करते रहेंगे।

अनुशासन के विरोधी तत्व

[ले०—श्री प्रोफेसर [illegible] शर्मा एम. ए. [illegible] कालेज [illegible]]

[illegible]
के सभी प्रमुख [illegible] हैं। अभी भी [illegible] कि सुभाष के वे भावी कर्णधार [illegible] बनकर देश का मस्तक उज्ज्वल एवं [illegible] दुर्गुणों पर लगे इन कलंक के कारणों को जानने में भी असमर्थ हैं। हमारी समझ में अभी तक इस समस्या का न तो ठीक २ निदान हो पाया है और न कुछ समुचित चिकित्सा ही स्थिर हो पाई है। हाँ वे सिरे पैर के सुझाव अवश्य जब-तब समाचार पत्रों में प्रकाशित होते रहते हैं, गम्भीरता पूर्वक इस समस्या पर अभी तक बहुत ही कम विचार हो पाया है।

कुछ लोग छात्रों को ही सर्वथा दोषी ठहराते हैं और कुछ महानुभावों की दृष्टि में इस सब कुफ्फल का उत्तरदायित्व अध्यापकों पर ही है। उधर हमारी सरकार का ध्यान भी कारणों की जानकारी प्राप्त करने की तरफ कम तथा रोकथाम की तरफ ही अधिक है। इसकी रोकथाम के लिए भी वे दण्ड व्यवस्था पर विशेष निर्भर रहते प्रतीत हो रहे हैं। वे भूल जाते हैं कि ब्रिटिश जमाने में उनमें से अधिकांश स्वयं छात्र रहे हैं और इन्हीं उद्दण्ड तत्वों की सहायता से वे बहुत कुछ विदेशी सत्ता को देश से निर्वासित करने में समर्थ हुए थे। व यह भी जानते हैं कि ब्रिटिश सत्ता के भयंकर से भयंकर [illegible] अस्त्र इनके उद्दण्डपन को—उस समय की चेतना को—रोकने एवं शमन करने में कुण्ठित ही सिद्ध हुए थे। हम नहीं समझते वे ही आज नेता होकर और देश का शासन सूत्र हस्तगत करके किस प्रकार दमन पर विश्वास करने लगे हैं। हम दमन के विरुद्ध नहीं, लेकिन इसी को एक मात्र आधार भी नहीं मानते। दण्ड को तो प्राचीन प्राचीन राजनीति में दूसरे साधनों के पोषक रूप में अथवा अन्तिम अस्त्र रूप में ही स्वीकार किया गया है। हमारी समझ में अभी परिस्थिति इतनी नहीं बिगड़ी है, जिसे ला इलाज समझा जाय और उसके लिए दमन को ही परम आवश्यक समझा जाय। हमारा तो ऐसा विश्वास है कि यदि कुछ धैर्य एवं समझदारी से काम लिया जाय तो हमारे छात्र न केवल अनुशासित होकर अच्छे नागरिक बन सकते हैं वरन् उनका यह चैतन्य ठीक दिशा [illegible] देश के [illegible] के लिए विशेष उपयोगी तक सिद्ध हो सकता है। आवश्यकता [illegible] की है—[illegible] अपने निवास की है।

वस्तुत यदि ध्यान से देखा जाय तो यह समस्या इतनी भयावह नहीं जितनी कि यह समझी या समझाई जाती है। [illegible] मान लेना चाहिए कि इस अनुशासन शिथिलता में एक खास वर्ग के छात्रों का ही हाथ है। अधिकांश छात्र आज भी बड़े अनुशासन प्रिय एवं शिष्ट हैं। इसी तरह यह भी मान लेना चाहिए कि हमारे ऋषि-मुनियों के इस भारत देश के अधिकांश अध्यापक अब भी इतने गिरे हुए नहीं हैं कि वे अपने ही छात्रों को भड़काएँ अथवा गुमराह करें।

ऊपर हमने छात्रों के जिस अनुशासनहीन व शरारती वर्ग का जिक्र किया है, उसमें भी ७५ प्रतिशत ऐसे हैं जो दूसरों के प्रभाव से खरबूजे

को देखकर खरबूजों के रंग बदलने वाली कहावत को चरितार्थ कर रहे हैं। यदि इनके बीच मिलजुल कर कुछ ऐसा रचनात्मक कार्य किया जाय जिससे ये शरारती लड़कों से पृथक होकर उनसे उपेक्षा भर करने लगें—अपनी नैतिक सहानुभूति देना बन्द कर दें, तो हमारा विश्वास है कि [illegible] स्वयं ही सुलझ जायें। इस सम्बन्ध में हम फिर कभी स्वतंत्र लेख रूप में लिखेंगे। शेष बचे २५ फी सदी, ऐसे छात्रों में १० प्रतिशत वे हैं जो देश की विभिन्न राजनैतिक पार्टियों के कर्णधारों के सम्पर्क में आने से अपरिपक्वावस्था में ही पेशा [illegible] के शिकार हो चुके हैं। जिनका मन अपनी पाठ्य पुस्तकों में कम तथा राजनैतिक दाव पेच व बारीकियों में अधिक लगता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद काँग्रेस व काँग्रेसी सरकार के दूसरी—दूसरी समस्याओं में उलझे रहने के कारण दूसरी राजनैतिक पार्टियों को दूर दिशा में कार्य करने का खुला क्षेत्र मिल जाने से, इस वर्ग के अधिकांश छात्रों की अपनी व काँग्रेस से विशेष सहानुभूति नहीं रह गई। इस दिशा में जितनी जल्दी कोई ठोस कदम उठाया जाय उतना ही अच्छा है, अधिक विलम्ब से स्थिति और भी काबू से बाहर होकर बिगड़ जाने की सम्भावना है।

शेष बचे १५ प्रतिशत, इस में दस प्रतिशत ऐसे छात्रों की संख्या है, जिनके माता पिता राज्य के अधिकारी पूँजीपति अथवा हाल में ऐश्वर्य प्राप्त नए [illegible] हैं। ऐसे छात्र अपने घरेलू वातावरण में चारों तरफ प्रभुत्व, ऐश्वर्य एवं चाटुकारिता का दौर दौरा एवं बोल बाला पाते हैं। उसी उद्दण्डवृत्ति का प्रदर्शन वे स्कूल कालेज में भी करते हैं। प्रभुत्व एवं सम्पन्नता की धाक ऐसे लड़कों की दूसरे साधारण छात्रों पर रहती ही है, प्रयत्न इनका अध्यापकों तक को रौब में लाने का रहता है। कालेज इनके लिए शिक्षा के स्थान न होकर मन बहलाव एवं सैर सपाटे की जगह ही विशेष होती हैं। इस वर्ग के छात्रों की ताक छोटी पेशावाले छात्रों को विशेष रहती है, क्योंकि इनकी आर्थिक सहायता तथा नैतिक सहानुभूति से कभी भी कोई हुड़दंग आसानी से संचालित किया जा सकता है। अपने अनुभव में आए हुए अनेक उदाहरणों में से केवल एक उदाहरण हम पाठकों की जानकारी के लिए दे रहे हैं। एक दिन कालेज में अपने एक पुराने मित्र बड़े तपाक से मिले और बोले कि भाई तुमको नहीं मालूम कि आपका लड़का भी यहीं अमुक कक्षा में पढ़ता है, जरा उसका ध्यान रखना। हमने सौजन्यवश लड़के का नाम आदि नोट कर लिया और दूसरे दिन उस कक्षा में जाकर पता लगाया तो हजरत क्लास भर में उद्दण्ड, लापरवाह और हफ्ते में एक दो दिन ही उपस्थित होने वाले निकले। चार पाँच महीने बाद फिर वे ही हमारे मित्र घबड़ाए हुए परेशानी की मुद्रा में मिले। पूछने पर पता चला कि साहबजादे फीस दूर महीने बराबर ले जाते हैं, लेकिन कालेज में पाई भी जमा करने की आवश्यकता नहीं समझी और [illegible] पार्टी का फल भोगने के लिए वे पाँच महीने की कालेज फीस स्वयं जमा करने आए हैं।

पाठक स्वयं सोचें ऐसे बेलगाम बदनवकेलों को कोई अध्यापक कैसे बाँध सकता है, और इनका बेढंगी चाल को कैसे सुधार सकता है लेकिन हम से यदि आप पूछें तो हम लड़के को अधिक दोषी नहीं समझते और सारा उत्तरदायित्व लड़के के घरेलू वातावरण पर ही डालते हैं। हमारे इस निष्कर्ष पर पहुँचने का कारण यह है कि हम अपने मित्र की पारिवारिक स्थिति से परिचित हैं। हमारे मित्रने खिचड़ीअवस्था में दूसरी शादी की, जिससे पुत्र रत्न प्राप्त हुए और उच्च अधिकारी होने के नाते प्रभुत्व और ऐश्वर्य भी घर में है। इसके म चाटुकार नौकर चाकरों की कमी नहीं। रुपया छप्पर फाड़कर कहीं से आ ही टपकता है। पाठक स्वयं सोचें ऐसे नौनिहाल कहाँ जो कुछ भी कर गुजरें थोड़ा है। शरारत से डरें और दण्ड मागें भोले छात्र और अब पढ़े जाय बेचारे अध्यापक। जिनका प्रभाव साहबजादे के घर के चपरासी से भी कम है और जिसका वेतन उनके घर से मल मूत्र उठाने वाले भंगी से भी न्यून है। बापजान को अपने सैर सपाटे एवं चुहलबाजी से एक क्षण का भी फुरसत नहीं। अपने नौनिहाल की भी कुछ स्वयं देखभाल करें। कालेज में दस बीस रुपया महीना फीस देकर वे समझते हैं कि बस उनका उत्तरदायित्व समाप्त हो गया। इस दिशा में भी हम सुझाव किसी स्वतन्त्र लेख में देंगे।

अब शेष बचे पाँच प्रतिशत। इस वर्ग में वे छात्र हैं जो स्वभावतः अपराधवृत्ति के या ऐसे परिवारों से आते हैं जिनका पेशा ही अपराध करना और अपराध करके पैसा पैदा करना है। परिस्थितिवश जिनका अब सभ्य एवं सुशिक्षित बनने को चाह है। सुधार की इच्छा रखते हुए भी संस्कारवश जो अपराधवृत्ति (Criminal Tendency) उन में [illegible] मूल है वह जरा सी उत्तेजना पर भड़क उठता है। [illegible] यही वर्ग ताड़ना एवं दण्ड का पात्र है और सत्र छोड़े से अपेक्षित प्रयत्न एवं शान्त उपायों से सुधर सकते हैं।

संक्षेप में हमने इस छोटे से लेख में कुछ अनुशासन विरोधी तत्वों का दिग्दर्शन केवल इस भावना से कराया है कि अपनी सरकार इस दिशा में

(शेष पृष्ठ ११)

शंका समाधान

श्री आचार्य विश्वश्रवा जी से

साप्ताहिक आर्यमित्र के ता० १७ जुलाई १९५५ के अङ्क में सम्माननीय आचार्य श्री विश्वश्रवा जी का "ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में अनुचित हस्तक्षेप' शीर्षक वाला लेख पढ़कर मुझे अपने हृदय में महती प्रसन्नता हुई। मैंने माननीय आचार्य जी के अनेक लेख पढ़े व सुने हैं। जिनके आधार पर मैं कह सकता हूं कि श्री आचार्य जी एक सुविद्वान्, दृढ़ वैदिक धर्मी और अनन्य ऋषि भक्त हैं।

आचार्य जी ने इस लेख में जो विचार दर्शाया है कि ऋषि दयानन्द जी महाराज के सभी ग्रन्थ एकमतसे एक ही पाठ के अनुसार सब प्रकाशक प्रकाशित किया करें और सन्दिग्ध स्थलों पर समस्त ऋषिभक्त विद्वान् मिलकर निष्पक्ष होकर विचार करें और तदनन्तर जो निर्णय हो जाय तदनुसार ही वे स्थल प्रकाशित हों—बड़ा अत्युत्तम विचार है। मैं इस कार्य को उतना ही आवश्यक समझता हूं जितना कि ऋषि ग्रन्थों के प्रचार कार्य को।

इस समस्त लेख को एक बारगी पढ़ जाने पर हृदय में सहसा आशा लता खिल उठती है कि—भारत में अब भी ऐसे भद्र जन हैं जो अपने आवास से इस भूतल को पावन बना रहे हैं जिनसे ऋषिग्रन्थों के विषय में किये गये आक्षेपों के समुचित उत्तर पाकर माहश जनों के हृदय का अज्ञान हट सकता है और ऋषि पर आक्षेप करने वालों का मुंह भी बन्द हो सकता है। इसी सदाशय को हृदय में रखकर, सविनय जिज्ञासु भाव से श्री श्रद्धेय आचार्य जी के समक्ष मैं उदाहरणार्थ दो एक सन्दिग्ध स्थल उपस्थित कर रहा हूं जो मुझे स्वयं अशुद्ध प्रतीत होते हैं और अनेक बार विचारने पर भी जिनका समाधान अभी नहीं पा सका हूं। इन दो एक बातों का यदि आचार्य जी युक्तियुक्त [सिद्धिपूर्वक] समाधान [आर्यमित्र द्वारा] करने की कृपा करेंगे तो मुझे बड़ी शान्ति मिलेगी और पुनः अन्य शङ्काओं को भी पूज्य जी से समाहित कराकर कृतकृत्य हो जाऊंगा और आजीवन आपका कृतज्ञ रहूंगा। इस प्रकार के समाधान से जनता का भ्रम भी दूर होजायगा—

१—आख्यातिक में—स्वतन्त्र "भू" धातु में "आहिभुवोरीट् प्रतिषेधः" इस अस् स्थानीय भू धातु सम्बन्धित वार्तिक के द्वारा ईट् का प्रतिषेध किया गया। वह किस प्रकार सिद्ध होता है। अपने भाष्याध्ययन काल में "निर्णय सागर" प्रेस से मुद्रित नवाह्निक में, इसी वार्तिक पर "श्री शिवदत्त जी दाधिमथ" द्वारा लिखित उपहास भरी "दयानन्दस्वामिनस्तु स्वयमविगत भाष्यार्था एव ये——" इत्यादि टिप्पणी देखकर मैं बहुत दुःखी हुआ, पर करता क्या, पुनः २ विचारने पर भी स्वतन्त्र "भू" धातु में इस वार्तिक द्वारा निषेध एक भूल ही मालूम हुई। इसके साथ यह भी देखना चाहिये कि उपर्युक्त वार्तिक महाभाष्य में पूर्व पक्ष में आयोजित है जिसका आगे चलकर खण्डन भी कर दिया गया है।

२—सत्यार्थप्रकाश प्रथम समुल्लास में "न्यायकारी" शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए ऋषिवर लिखते हैं कि "[णीञ् प्रापणे] इस धातु से न्याय शब्द सिद्ध होता है।" इस विषय में मैंने सर्वत्र देखा है कि सभी धातुवृत्तिकार और काशिकाकारादि सूत्र वृत्तिकार "नि उपसर्ग पूर्वक "इण्" गतौ धातु से ही न्याय शब्द को साधते हैं।" कहीं भी "णीञ्" धातु से न्याय सिद्ध होता है इस प्रकार का प्रमाण नहीं मिलता। पाणिनीय सूत्र भी यही बतलाता है (परिन्योर्नीणोर्द्यूताभ्रेषयोः अ० ३ ३।।)।

३—"अष्टाध्यायी भाष्य" में इकोगुणवृद्धी सूत्र का उदाहरण 'औपगव' दिया गया है। यह उदाहरण इस परिभाषा सूत्र का किस प्रकार सिद्ध होगा। गुण करने के लिये 'औगुण' वहाँ पर स्पष्ट मसञ्ज्ञक 'ह' रूप स्थानीय निर्दिष्ट है और आदि वृद्धि के लिये 'अचोऽञ्णिति······तद्धितेष्वचामादेः' वहाँ भी स्पष्ट 'अचामादेरच.' अच् रूप स्थानी निर्दिष्ट है फिर वहाँ इस परिभाषा सूत्र की योजना कैसे होगी? एवं ऐसा होने पर यह उदाहरण असंगत [illegible]

आर्य जनता सावधान !!

[लेखक—स्वामी वेदानन्द जी, अध्यक्ष, विरजानन्द वैदिक संस्थान, पो० खेड़ाखुर्द, देहली प्रदेश]

आर्यमित्र के किसी विगत अङ्क में श्री आचार्य विश्वश्रवा जी का एक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसमें उन्होंने आदेश किया है कि ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थ केवल अजमेर के वैदिक यन्त्रालय के मुद्रित ही पढ़ने चाहियें, अन्यत्र मुद्रित व प्रकाशित ऋषिग्रन्थ अप्रमाण हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पण्डित जी वैदिक प्रेस के प्रकाशित ग्रन्थों को भली प्रकार देखते ही नहीं, अन्यथा ऐसा आग्रह वे आर्य जनता से कभी न करते। मैं आजकल सत्यार्थ प्रकाश के सटिप्पण स्थूलाक्षर वृहदाकार संस्करण के प्रकाशन कार्य में लगा हुआ हूं। अब तक सत्यार्थ प्रकाश के अजमेर वैदिक यन्त्रालय ने तीस संस्करण निकाले हैं। मैं दुर्भाग्य से टिप्पणियाँ लिखने के लिए अन्तिम तीसवें संस्करण को ले बैठा हूं। प्रथम समुल्लास के प्रथम पृष्ठ की नीचे से दूसरी पंक्ति का पहला शब्द 'वेदादि' देख कर मेरा माथा ठनका। प्रकरण के विचार से, और सत्यार्थ प्रकाश के कई बार के पाठ से मुझे वह पद अशुद्ध लगा। यहाँ 'देवादि' शब्द चाहिये। मेरे पास प्रथम, द्वितीय, तृतीय, अष्टम, नवम, दशम, एकादश, सत्रहवाँ अठारवाँ, उन्नीसवाँ तथा इकीसवां इन ग्यारह संस्करणों के अतिरिक्त शेष उन्नीस संस्करण हैं (इन ग्यारह संस्करणों की मुझे आवश्यकता है, क्या कोई सज्जन देने की कृपा करेंगे।) मैंने इन उन्नीसों तथा अन्य प्रकाशकों के संस्करण एवं बंगला, गुजराती, मराठी सिंधी, अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच तथा उर्दू अनुवादोंके साथ मिलान किया। सब में 'देवादि' पाया। अब बताइये, वैदिक यन्त्रालय की मुद्रणाओं को कैसे प्रामाणिक ठहराया जावे? ऐसे कितने ही स्थल हैं. (मैंने सब की सूची तैयार करली है।) पहले पृष्ठ में दिये मन्त्र के अन्त की तीसरी 'शान्ति' शान्ति है। इन सब से बढ़ कर वैदिक यन्त्रालय ने २१७ पृष्ठ पर लीला की है। उस पृष्ठ की २१वीं पंक्ति से आगे की एक समूची पंक्ति प्रेस प्रेत खा ही गये हैं वह पंक्ति यह है—'सदा परोपकार में प्रवृत्त हो, कोई दुर्गुण जिसमें न हो। विद्वान्, सत्योपदेश से सब का परोपकार करे।' अनर्थ की चरमसीमा बारहवें समुल्लास में की गई है। वहाँ षष्ठीशतक की प्राकृत गाथें प्रायः अशुद्ध छापी गई हैं। बारहवें समुल्लास-सम्बन्धी यह अपराध इस लिए भी अक्षम्य है कि 'प्रकरण-रत्नाकर' ग्रन्थ वहीं यन्त्रालय में विद्यमान है। उससे मिलाकर पाठ शुद्ध किया जा सकता है। किन्तु इस के लिए कष्ट कौन करे? लाहौर में रहते हुए मैंने यह ग्रन्थ अजमेर के वैदिक यन्त्रालय से मगाकर अपना सत्यार्थ प्रकाश शुद्ध किया था। उस के साथ ही प्रेस को लिखा था कि यदि आप चाहें, तो मैं इन अशुद्धियों की तालिका बना कर भेज दूं। किन्तु उन्होंने कोई उत्तर देना उचित न समझा। उसके कई वर्षों के पश्चात् महाविद्वान् स्वामी अनुभवानन्द जी से इस विषय पर चर्चा चली उन्होंने कहा—'वेदानन्द जी! तुम भोले हो, नये हो! मैंने पूरी सूची बनाकर भेजी, किन्तु उसका कोई उपयोग नहीं किया गया।'

पं० विश्वश्रवा जी इस घोटाले को न जानते हों, ऐसी बात नहीं है। कई बार इस विषय में उनकी मुझ से बातचीत हुई है, और वे सदा दुःख प्रकट करते रहे हैं। फिर क्यों वे वैदिक यन्त्रालय के मुद्रित ग्रन्थों के लिए आग्रह करते हैं?

[continuation of preceding column] लगता है'।

इन तीन सन्दिग्ध स्थलों का श्रीमान् आचार्य जी युक्तियुक्त समाधान करके अवश्य मेरे और जनता के भ्रम को दूर करेंगे ऐसा मेरा हार्दिक निवेदन है। यह बड़े दुःख और निराशा की बात होगी यदि आचार्य जी इनको समाहित न करेंगे।

अन्त में पुनः इसी आशा से इस निवेदन को समाप्त करता हूं कि श्री आचार्य जी इन संदिग्ध स्थलों का समाधान अवश्यमेव 'आर्यमित्र' में साप्ताहिक प्रकाशित करेंगे।

पति पत्नी के विषय में—

पौरस्त्य और पाश्चात्य आदर्श

हमारे सिर पर पाश्चात्यों का डेढ़ सौ से अधिक वर्ष तक शासन रहा और उन्हीं की दी हुई शिक्षा-दीक्षा का प्रभाव यह हो गया है कि पुरुष वर्ग तो पाश्चात्य सभ्यता के प्रवाह में बह ही गया था, अब सुशिक्षित स्त्री वर्ग भी बह रहा है और पुरुषों के बराबरी का दावा कर रहा है और प्रत्येक अंश में उनके सम-समानता का राग गा रहा है—

इन दोनों में कौन श्रेष्ठ

पति या पत्नी ?

पहले तो यह प्रश्न ही मूर्खता पूर्ण है—हमारी सभ्यता और संस्कृति के अनुसार इन दोनों में न कोई किसी से श्रेष्ठ है और न कोई किसी से हीन। कोई परस्पर स्पर्द्धा की बात थोड़े है जो इस प्रकार के ज्येष्ठत्व और श्रेष्ठत्व का प्रश्न उठाया जाय। ये दोनों परस्पर के पूरक हैं। अथवा परस्पर की न्यूनता का पूर्ण करने वाले सहचर हैं। दोनों दोनों के साथ मिलकर पूर्ण पुरुष अथवा स्त्री हो जाते हैं।

यह होने पर भी

यह तो मानना ही पड़ेगा किन्हीं परम्परागत नैसर्गिक कारणोंसे पत्नी को ही आधार की आवश्यकता रहती ही है, और इसका प्रभाव जीवन-व्यवहार की प्रत्येक घटना में स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ता है। पाश्चात्य देशों की स्त्रियों को पतियों की जितनी आवश्यकता है उससे अधिक आवश्यकता पतियों को स्त्रियों की रहती है। हमारे यहां कमाने वाला, घर के खर्च चलाने वाला पति ही रहता है और पत्नी अर्थोत्पादन में असमर्थ-सी बनी रहती है और इसीलिए पत्नी प्रायः पति पर ही अवलम्बित रहती है—अथवा उसको अवलम्बित रहना पड़ता है, इसी अवलम्बनात्मक स्थिति को देखकर वर्तमान युग का पति अपना बड़प्पन जनाता रहता है, अपनी शेखी बघारता रहता है। "हम जब पैसे कमा कर लाते हैं तब पत्नी को हमारी मर्जी के अनुसार चलना ही चाहिए" ऐसे उसके मिजाज बन चले हैं। समझदार पति मन की इस बात को छुपा सकते हैं पर असली सत्य प्रकट हुए बिना नहीं रहता। वह कभी कभी पत्नी के दोष स्पष्ट रूप में प्रकट करने में अपना बड़प्पन समझ बैठता है। किन्तु बेचारी पत्नी, मानसिक दुर्बलता के कारण हो, शालीनता के कारण हो, अथवा कोई अन्य कारण हो, वह ऐसी धृष्ट नहीं बनती जो पति के दोष स्पष्ट रूप में प्रकट कर सके।

पति चाहे कैसा भी हो, पत्नी को उसकी बात माननी ही चाहिये, उसके मेल में रहना ही चाहिये चाहे उसका मन माने अथवा न माने ऐसी एक मनोवृत्ति बन चली है। क्योंकि पति को छोड़कर उसका अन्य रक्षक रहता ही नहीं; - दिखलाई भी नहीं पड़ता। कभी-कभी पत्नी जब अपने मायके के लोगों से पति की शिकायत करती है तो मायकेके लोग भी उससे न राज हो जाते हैं ? स्त्री जाये कहाँ। किससे कहे और करे क्या ? मन मसोस कर रह जाती है पति का त्याग करने की इच्छा रहने पर भी—कानून के पक्ष ऐसा कराने की सम्भावना रहने पर भी, व्यवहार में इस प्रकार का संबंध विच्छेद अशक्य बन जाता है—ऐसी परिस्थिति में पत्नी पति की आज्ञानुसार अथवा आज्ञानुसार न बरतें तो उसका हित कहाँ तक सम्भव है यह विचारणीय है।

> भारतीय सम्कृति में स्त्रियो सहधर्मिणी हैं—अर्द्धाङ्गिनए है—कितना बड़ा महत्व दिया गया है स्त्रियों को ! अर्थात् स्त्री के बिना पुरुष पूर्ण नही हैं, पुरुष के बिना स्त्री पूर्ण नही है—इतनी तुल्यता तो ससार के किसी भी राष्ट्र के स्त्री पुरुषों को नही दी गई है—किसी अन्य धर्म मे स्त्रियों को इतना महत्व दिया गया है। —लेखक

विज्ञ पति अपनी पत्नी को उचित स्थान और मान देकर जीवन व्यवहार में उसकी महत्ता को स्वीकार करते हैं सही। पर जहाँ केवल पुरुष ही कमा सकते हैं वहाँ स्त्रियों को हीन होकर पति की मर्जी संभालनी पड़ती है यह भी सही है। कठिन परीक्षा के समय यह इस प्रकार के सम्बन्ध टिक नहीं सकते। अथवा उसका टिकना असम्भव हो जाता है।

बेकारी, घर की हीनदशा बढ़ी कि पतिका भाव भी बढ़ जाता है और पति यदि विज्ञ न हो अज्ञ हो, तो वह अपनी बेसमझी से पत्नी की हीनता को बारबार जतलाये बिना नहीं रहता पुरुषों को उचित है कि इस प्रकार की परिस्थिति का लाभ उठाकर अपना बड़प्पन और पत्नी के छुटपन को जतलाने की कुटेव (बुरास्वभाव छोड़ देवे और स्त्रियों को उचित मान सम्मान और महत्व देना ही इष्ट है—

हम देखते हैं कि स्वभावतः पति स्वैरगति और अनुत्तरदायी रहते हैं और पत्नी पतिनिष्ठि और प्रत्येक परिस्थिति में सन्तोष रखकर बर्तने वाली होती है—पति को जितनी पत्नी की आवश्यकता रहती है पत्नी को विशेष अधिक आवश्यकता रहती है पति की, यह तो व्यवहारः स्पष्ट है।

अमरीका जेसे देश में भी पति की नैसर्गिक धींगाधींगी का देखकर पत्नी को ही समझ से काम लेना पड़ता है। हमारे देश में तो ऐसी स्थिति न हो तो आश्चर्य समझिए, जितना पिछड़ा हुआ देश उतना ही पुरुषों का अधिक मिजाज-घमण्ड ! और उतनी ही अधिक स्त्रियों की पराधीनता, परावलम्बता ! इच्छा विरुद्ध कष्ट सहिष्णुता ! ! धर्म भाव के कारण सहती रहती है सब कुछ इसलिए इस परिस्थिति को ध्यान में रखकर शिक्षित स्त्रियां जो सम समानता की बात उठा कर, हल्ला करने लगी है, मर्यादा के बाहर जाने लगी है, यह बात न तो उचित है और न शोभावत ही है।

हमारे यहां पति की मान-मर्यादा रखना, उसको सन्तुष्ट रखने का प्रयत्न करना यह पत्नियो का धर्म ही माना गया है। पति की इच्छानुसार उसकी आज्ञा में रहना, उसको देव मानकर उसकी अखण्ड-सेवा करना यह पतिव्रता का लक्षण समझा गया है—किन्तु प्रत्येक पत्नी को अब भी वर्तमान समय मे भी पति के साथ वैसा ही बर्तना चाहिए, ऐसा कौन कहेगा ? शिक्षित स्त्रियों को तो यह बात पसन्द ही नहीं और ऐसे भी पति मिलेंगे जो पत्नी को गुलामों की तरह रखना पसन्द नहीं करेंगे।

सुसंस्कृत पति, पत्नी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व को मानने के लिए तैयार है। अज्ञ (मूढ़) पतियों की बात निराली रहती है।

परिणाम एक ही है

पाश्चात्य देशों में पत्नियों में पति की इच्छानुसार बर्तना चाहिए इस व्यावहारिक तत्वज्ञान का प्रचार किया जाता है और हमारे भारत में माना जाता है कि पत्नी अपना कर्तव्य समझकर पति की इच्छानुसार चले, रहे बरते—ऐसा न करने से हानि होती है—इसी प्रकार परिणाम की दृष्टि से दोनों—पुराना और नया तत्वज्ञान समीप समीप आ रहे हैं।

ब्रिटिश और अमरीकन मासिकों में कौटुम्बिक जीवन सम्बन्धी जो लेख आ रहे हैं उनको पढ़ कर ऐसा प्रतीत होता है कोई पतियों की ओर झुकते हैं कोई पत्नियों की ओर झुकते हैं—पत्नी पति को सन्तुष्ट रखने के लिए क्या क्या करे इसका पाठ चलता रहता है। आश्चर्य है कि पति के लिए इस प्रकार के पाठ कम दिये जारहे है कि वह पत्नी को सन्तुष्ट रखने के लिए क्या क्या करे ? भारत की आजकल की शिक्षित स्त्रियें सम समानता का आक्रोश करती रहती है, हम पुरुषों से किस बात में कम हैं, इत्यादि और उधर पाश्चात्य देशों में पत्नी को ही पति की इच्छानुसार बरतने का उपदेश दिया जा रहा है—आश्चर्य ही है। इन मासिकों के लेखों का तात्पर्य यह है कि यदि पति-पत्नी की परस्पर बात न बने तो पत्नी को ही चाहिए कि वह पति के साथ सहमत होने का प्रयत्न करे। इधर भारत में शिक्षित स्त्रियाँ चाहने लगी हैं कि पति को ही पत्नी के सामने झुकना चाहिए। सारांश पाश्चात्य देश के पुरुष स्त्रियों को भारतीय आदर्श पर लाना चाहते है और भारतीय शिक्षित स्त्रियाँ पाश्चात्य स्त्रियाँ बनना चाहती हैं।

स्त्री-पुरुषों के समान—अधिकार मानने वाले पाश्चात्य देशों में तो स्त्रियों को विनम्र होकर पति की इच्छानुसार बर्तने का मन्त्र बतलाया जा रहा है, यह है तो आश्चर्य ही। पाश्चात्य देशों में विवाह के पूर्व का जीवन कैसा ही हो पर विवाह-बन्धन के पश्चात् पति पत्नी परस्पर एक दूसरे को संभालने का यत्न करते देखे जाते हैं—वे वैवाहिक जीवन में एक दूसरे को अकेले छोड़ने के लिए तैयार नहीं होते—यदि आपस में न बने तो पति-पत्नी को अथवा पत्नी पति को छोड़ कर अलग हो सकती है

(शेष पृष्ठ १० पर)

सत्यार्थ-प्रकाश पाठ संख्या ३२ (अष्टम समुल्लास)

ब्रह्माण्ड का वंशवृक्ष

[लेखक—श्री सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम०ए० एल टी० डी० वी० कालेज गोरखपुर]

प्रस्तुत लेखमाला द्वारा सत्यार्थ प्रकाश के गूढ़ तत्वों को समझाने का सफल प्रयास विद्वान लेखक द्वारा किया जा रहा है। इस लेख में भी ब्रह्मांड के विशाल रूप की एक झलक पाठक पढ़ें और जानें ईश्वर की महान् सत्ता को।

—लेखक

ऋग्वेद में सृष्टि की उपमा यज्ञ से दी गई है और कहा गया है "इस यज्ञ के लिए आवश्यक सामग्री, घृत, समिधा इत्यादि प्रथम कहाँ से आई? अथवा घर का दृष्टांत लेकर प्रश्न किया गया है कि मूल एवं निर्मूल से नेत्रों को प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाली आकाश पृथ्वी के इस भाव प्रासाद को बनाने के लिए लकड़ी (मूल प्रकृति) कहां मिली? (कि स्विद्वनं क उस वृक्ष आ स यतो द्यावा पृथिवी निष्ठतक्षुः। इसका उत्तर भी दिया गया है और कहा गया है कि उस अनिर्वाच्य, अकेले एक ब्रह्म ही के मन में सृष्टि निर्माण करने का 'काम' किसी तरह उत्पन्न हुआ और वस्त्र के धागों के समान या सूर्य प्रकाश के समान उसी की शाखायें चारों ओर ऊपर नीचे फैलाईं और इस ब्रह्मांड वंश का निर्माण हुआ। अर्थात् आकाश पृथ्वी का यह सुन्दर प्रासाद निर्मित हुआ। 'सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेयेति' इस प्रकार परमेश्वर की इच्छा का फल यह हुआ कि जिस प्रकार एक मशीन में गति देने पर सारा कार्य होने लगता है वैसे ही यह प्रकृति भी विकृति में आई और उसका फैलाव हो गया। यह विस्तार किस क्रम से हुआ यह हम अपने पिछले लेखों में बता चुके हैं कि पहले केवल प्रकृति ही अव्यक्त रूप में थी। उसके बाद किस प्रकार जल आदि बने। सांख्य शास्त्र में भी लिखा है कि :—

> सत्त्व रजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान्
> महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात् पंच तन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं
> पञ्चतन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः।
> सांख्य २२० [अ० १। सू० ६१]

स्वामी जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश में इसकी व्याख्या की है "(सत्त्व) शुद्ध (रज) मध्य तमः (जाड्य) अर्थात् जड़ता तीन वस्तु मिलकर जो एक संघात है उसका नाम प्रकृति है। उससे महत्तत्व बुद्धि अहंकार, उससे पाँच तन्मात्रा सूक्ष्म भूत और दश इन्द्रियां तथा ग्यारहवाँ मन पांच तन्मात्राओं से पृथिव्यादि पाँच भूत ये चौबीस और पच्चीसवां पुरुष अर्थात् जीव और परमेश्वर है। इसमें से प्रकृति अविकारिणी और महत्तत्व अहंकार तथा पाँच सूक्ष्म भूत प्रकृति का कार्य और इन्द्रियां मन तथा स्थूल भूतों का कारण है। पुरुष न किसी की प्रकृति का उपादान कारण और न किसी का कार्य है।"

यहां इस सूत्र की जरा स्पष्ट व्याख्या कर देना आवश्यक है।

प्रकृति के विकास के सांख्य का जो क्रम है यह गुणोत्कर्ष या गुण परिणामवाद भी कहलाता है। जब हम किसी कार्य को प्रारम्भ करना चाहते हैं तो सबसे पहले हमारे मन में काम करने की बुद्धि या इच्छा उत्पन्न होती है। प्रकृति में भी अपना विकास करने से पूर्व इस व्यवसायात्मिक बुद्धि उत्पन्न होती है। परन्तु अब यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि मनुष्य तो चेतन प्राणी है अतः उसमें बुद्धि का होना संभव है पर जड़ प्रकृति में भी हो सकती है? वास्तव में यह बुद्धि पुरुष के संयोग से प्रकृति में होने वाले चेतन्य के कारण हुआ करती है। तभी तो कहा है कि 'सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेयेति' अर्थात सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा ने इच्छा की कि मैं बहुत होऊँ? तभी तो प्रकृति की मशीन स्टार्ट हुई और यह विश्व बना।

इस प्रकार प्रकृति में पहले बुद्धि गुण का प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार कार्य से पहले मनुष्य को होने वाली बुद्धि और प्रकृति को होने वाली बुद्धि दोनों मूल में एक ही श्रेणी की है। इस बुद्धि को ही 'महत् ज्ञान मति, आसुरी, प्रज्ञा, ख्याति' आदि अन्य नामों से भी कहते हैं।" बुद्धि मनीषा मति धिषणा आशा आदि हैं कितने नाम।" सांख्यकार ने इस बुद्धि को ही महत् नाम से कहा है। यह नाम बुद्धि की श्रेष्ठता अथवा जब प्रकृति महानता की ओर वृद्धि की ओर या विकास की ओर अग्रसर होने लगती है इसलिए दिया गया प्रतीत होता है। प्रकृति सत्व, रज और तम इन तीन गुणों के समानावस्था से भिन्न अवस्था में परिवर्तित होकर विकास का परिणाम ही बुद्धिगुण भी है। यद्यपि यह तीन गुण अर्थात् सत्व, रज और तम देखने में तीन ही प्रतीत होते हैं तथापि विचार दृष्टि से प्रगट हो जाता है कि इनके मिश्रण में प्रत्येक गुण का परिणाम अनन्त रीति से भिन्न भिन्न हुआ करता है और इसी लिये इन तीनों में से प्रत्येक गुण के अनन्त भिन्न परिणाम से उत्पन्न होने वाली बुद्धि के प्रकार भी अनन्त हो सकते हैं। इसी गुणोत्कर्ष के कारण इसे महत् कहा गया है।

बुद्धि की या महत् की उत्पत्ति होने पर भी सृष्टि में विविधता या नानात्व नहीं आता बुद्धि के बाद जब तक यह पृथकता या विभिन्नता नहीं उत्पन्न होती तब तक एक प्रकृति के अनेक पदार्थ होना सम्भव नहीं। बुद्धि से आगे उत्पन्न होने वाली इस पृथकता के गुण को ही अहंकार कहा जाता है। पृथकता के बोधक में अगर तू शब्द हो और मैं तू का अर्थ ही अहंकार है। यह ठीक है कि मनुष्य के अन्दर उत्पन्न होने वाले अहंकार का हमें ज्ञान रहता है पर इस प्रारम्भिक अहंकार का ज्ञान न होने से यह अस्वयंवेद्य अहंकार कहा जा सकता। पर है यह भी उसी श्रेणी का। इसी अहंकार के कारण पेड़, पत्थर, पानी आदि की भिन्नता मनुष्यादि से होती है। यह ठीक है कि मनुष्य के समान चेतन न होने से मैं तू यह कर यह वृक्षादि अपनी पृथकता किसी से नहीं कह सकते।

इस अहंकार को ही तेजस्, अभिमान भूतादि और धातु भी कहते हैं। यह अहंकार बुद्धि का ही एक अंग है अतः बुद्धि के बाद ही प्रकृति के इस गुण अहंकार का विकास हुआ। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि प्रकृति (मूल में) अव्यक्त थी और जब उसमें विकृति हुई बुद्धि (महत) आदि की उत्पत्ति प्रारंभ हुई तब से वह व्यक्त होगई। व्यक्त का यह मतलब नहीं कि वह दिखाई देने लगी। साम्यावस्था में रहने वाली प्रकृति अव्यक्त कहलाती है। इस प्रकृति के सत्व, रज और तम इन तीन गुणों की न्यूनाधिकता के कारण जो अनेक पदार्थ हमारी इन्द्रियों को दिखाई देते हैं, जिन्हें हम देखते, सुनते, सूंघते, चखते या स्पर्श करते हैं वे सब पदार्थ व्यक्त हैं। व्यक्त पदार्थों में पत्थर पेड़ आदि स्थूल व्यक्त पदार्थ हैं और मन, बुद्धि, आकाश इत्यादि सूक्ष्म व्यक्त पदार्थ हैं। इस प्रकार प्रकृति को अव्यक्त माना जाता है और शेष को व्यक्त। प्रकृति का ज्ञान इन्द्रियों को नहीं होता अर्थों का होता है। इस प्रकार यह अहंकार बुद्धि के बाद उत्पन्न हुआ और यह एक व्यक्त पदार्थ है।

दूसरी बात यह भी ध्यान रखनी चाहिए कि प्रकृति के तीन गुण सत्व, रज और तम का मेल अनन्त अनुपातों में हो सकता है अतः सात्विक राजस और तामस भेदों से (अनन्त अनुपातों के मिश्रण से) बुद्धि के समान अहंकार भी अनन्त प्रकार का हो जाता है और अहंकार के बाद के गुण भी अनन्त प्रकार के होंगे इस प्रकार प्रकृति से बुद्धि और अहंकार की उत्पत्ति हुई। एकता से विविधता हुई और यह विश्व निर्माण प्रारंभ हुआ। ×××

अनोखी बात

(लेखक—श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय)

श्री आचार्य विश्वश्रवा जी प्रायः अनोखी बात लिख देते हैं 'अनोखी' इस लिये कि मेरी समझ में नहीं आतीं। मैं अपनी समझ से अपनी बात को इस लिये बोलता हूं कि अभी जनता ने मुझे उस कोटि में नहीं रखा जिस में मनुष्य के विचार सर्वथा अविरल सर्वमान्य हो जाते हैं। मैं ऐसा मानता हूं कि जिस बात को मैं नहीं समझ सका वह बहुत से लोगों की भी समझ में न आती होगी।

मैं किसी व्यक्ति के विषय में नहीं लिखता। परन्तु दुर्भाग्य या सौभाग्य से जब कभी आर्य समाज के हित में लेखनी उठाता हूं तो श्री आचार्य जी समक्ष आ जाते हैं। और कुछ विनोद प्रिय लोगों ने तो एक गलत (सर्वथा गलत) धारणा बना रक्खी है कि मैं और श्री आचार्य जी सहज विरोधी हैं। १७ जुलाई का साप्ताहिक आर्य मित्र मेरे समक्ष है वह मेरे ही लेख की आलोचना है, मैं उस पर कुछ न लिखता यदि मनोवृत्ति का भेद न होता। यह मनोवृत्ति विशेषतया विचारणीय है क्योंकि आर्य समाज का भविष्य इस पर निर्भर है इस मनोवृत्ति के कटुफल उस समय अधिक भयावह सिद्ध होंगे जब संसार में न मैं रहूंगा और न आचार्य जी! हो तु समनागतम्! प्रश्न सीधा यह है कि ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का शोधा जाय या नहीं। "अनुचित हस्तक्षेप" का प्रश्न नहीं है। प्रश्न "हस्तक्षेप का है। प्रत्येक कारण दो प्रकार का हो सकता है 'अनुचित और 'उचित' अनुचित के सभी विराध में होंगे। 'उचित' के पक्ष में सभी को होना चाहिये। अत यदि कभी किसी ने अनुचित हस्तक्षेप किया और ऐसे होना सम्भव है तो उसका समर्थन कोई नहीं कर सकता। परन्तु क्या यह सम्भव नहीं है कि 'उचित हस्तक्षेप' आवश्यक हो जाय क्या आप सब को एक लाठी से हाँकना चाहते हैं।

श्री विश्वश्रवा जी का पक्ष यह है—

[१] ऋषि दयानन्द ऋषि थे। अत उनके ग्रन्थों में भूल का अनुमान भी जिन्न और इयक्रम है।

[२] उनके लेखकों से भी भूल नहीं हो सकती क्योंकि ऋषि सब स्वयं देखते और स्वयं संशोधन करते थे।

[३] छापे की भी नहीं हो सकती। और यदि हो भी तो सभी ग्रन्थों में हो सकती है और फिर 'कोलाहल' क्यों?

पहले तीसरी बात को लीजिये 'कोलाहल' इस लिये है कि मुझ जैसे साधारण लेखकों की पुस्तकों में भूलें रह जाय तो लोग स्वयं ही सुधार लेते हैं और उनका स्थायी प्रभाव भी नहीं पड़ता कोई उनकी अनुचित नकल करने का प्रयास भी नहीं करता परन्तु क्या आप ऋषि के ग्रन्थों को भी उसी कोटि में गिनते हैं, 'कोलाहल' बहुत कड़ा शब्द है। शायद आचार्य जी इस 'को० उनके गोले के समान नर्म या बर्फ के समान मृदु समझते हैं। परन्तु मैं इतना कहूंगा कि आप सरीखे पण्डित वर्ग की उपेक्षा ने को मनसा, वाचा कर्मणा अपना प्रतिनिधि ही नहीं सर्वाधिकारी चुन लिया है और ऐसा भी प्रतीत होता है कि अतीत काल में यदि किसी का उनसे मतभेद हो भी गया। कोई अशुद्धियाँ दिखाई दीं तो उसने कान पकड़ के श्री आचार्य जी से क्षमा याचना कर ली और जो कोई मुस्कराये कोई भूल दिखाते हैं वह विद्वानों की मण्डली से बाहर हैं और उनको शंका करने का भी अधिकार नहीं है। श्री आचार्य जी बहुत ऊँचे स्थान से बोलते हैं, आर्य मित्र के पाठकों को यह जानकर बड़ा गर्व हुआ होगा कि श्री आचार्य जी से बहुत से अनुसंधान करने वाले (रिसर्च स्कालरों) को किताबों के पन्ने लौटना सिखा दिया। इस विषय पर चुप रहना ही पर्याप्त है। विद्वद्वति विनयम्।

ऋषि के ग्रन्थों में संशोधन हो, न हो, हो तो कैसे हो, इस पर कुछ विद्वानों में विवाद उठ खड़ा हुआ है। हमारा निवेदन यह है कि सभी पक्ष सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से प्रेम पूर्वक बात को सुलझाने के लिए विचार प्रकट करें। इस बार आचार्य श्री विश्वश्रवा जी के लेख का उत्तर श्री प० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय द्वारा दिया जा रहा है। हम इस विषय में मौन रहते हुए भी पाठकों को अपना मत स्वतन्त्रता से बना लेने का आग्रह करते हैं। —सम्पादक

और भूलों का पुन उसी प्रकार का प्रकाश मुझ जैसे दुर्बल मस्तिष्कों में विना अवश्य उत्पन्न करता है। जो भूलें पहले संस्करणों में सुगमता से खोजी जा सकती थीं उनपर पुनः पुनः प्रकाशन से सीमेंट कूट दी गई है और आपके 'संगठन' ने कोई प्रयत्न नहीं किया। सिवाय संसार को चैलेंज देने के, या आवाज को दबाने के। आप 'संशोधकों' को निमन्त्रण देते हैं। मैं आपके समस्त संगठन को निमन्त्रित करता हूं कि वह इस काम को हाथ में लें। और या तो यह घोषणा कर दें कि समस्त विद्वानों ने बैठ कर जाँच की और किसी प्रकार की अशुद्धि नहीं मिली। या यह घोषणा कर दें कि अमुक अशुद्धियां पाई गयीं और उनको ठीक कर दिया गया। श्री आचार्य जी के लेखों से ऐसा प्रकट हुआ करता है कि आचार्य जी से बड़ा विद्वान कोई है ही नहीं और उनके संगठन के भीतर जितने विद्वान हैं उन्होंने श्री आचार्य जी

लेखकों की अशुद्धियाँ सम्भव हैं या नहीं इसके लिये इतना ही कहना पर्याप्त है कि ऋषि के जीवन में जो ग्रन्थ छपे उनकी भूलों को स्वयं ऋषि ने ज्ञात होने पर पत्रों में घोषित कर दिया। जो उनके पश्चात् छपे उनका क्या हाल रहा होगा? अभी एक ताजी बात बताऊं एक विद्वान् ने [ज्ञात नहीं कि आचार्य जी के अपने मण्डल में वह हैं या नहीं] मुझे लिखा है कि श्री स्वामी जी महाराज ने विपक्षी मत की आलोचना करते हुये जो 'अर्थ' दिया है वह उस श्लोक का अनुवाद नहीं है जो 'अर्थ' के ऊपर दिया गया है। मुझे यह बात पहले कभी नहीं सूझी। जिस पुस्तक से वह श्लोक लिया गया है मैंने कभी इसका मिलान नहीं किया था अब जो मिलान किया तो शंका ठीक जची प्रतीत ऐसा होता है कि ऋषिवर ने अर्थ तो ठीक किया परन्तु जिस श्लोक का यह अर्थ है वह श्लोक दूसरा है और लेखक ने उस श्लोक के स्थान में दूसरा श्लोक नकल कर दिया। वह श्लोक जिसका अर्थ दिया गया है उस नकल किये हुये श्लोक के कुछ ऊपर है। अब मैं पूछता हूं कि उसको सुधारा जाय या नहीं। यदि सुधरते हैं तो श्री आचार्य जी के 'अनुचित हस्तक्षेप' के कुठार का भय है यदि नहीं सुधारते तो अशुद्ध अर्थ करने का दोष ऋषि के सिर रहता है, और विपक्षियों को यह कहने का अवसर मिलता है कि ऋषि दयानन्द मन माना अर्थ कर देते थे। कहिये भविष्य के लिये क्या हितकर होगा? प्रश्न यह नहीं है कि कौन ग्रन्थों को पढ़ता है और कौन करसी ही हिलाता है। मैं मान लूं कि आचार्य जी सब से अधिक पढ़े हैं। तो क्या मैं आशा रक्खूं कि स्वयं वे ही ऐसी सूची तैयार करके सार्वदेशिक सभा में पेश कर दें जिनमें संशोधन की आवश्यकता है। कभी कभी श्री आचार्य जी उन पुरानी बातों को दुहरा देते हैं जिन पर उनके जन्म से पूर्व ही मीमांसा हो चुकी है जैसे 'न्याय' शब्द की व्युत्पत्ति। यह कहाँ का 'न्याय' है कि यदि एक शंका निर्मूल सिद्ध हुई तो सभी शंकाएं भी निर्मूल सिद्ध होंगी।

अब रहा यह प्रश्न कि यदि कोई ऐसा मानता है कि ऋषि दयानन्द से भूल होना अस्वाभाविक या असम्भव नहीं है तो वह ऋषि दयानन्द का भक्त या शिष्य या अनुगामी रह सकता है या नहीं यदि सिद्धान्त को दृष्टि में रक्खा जाय तो स्वयं ऋषि दयानन्द अपने को स्वतः प्रमाण की कोटि में नहीं रखते। आप शंका पर विचार न करके जनता को भड़काना चाहते हैं, इसको कहते हैं वास्तविक कोलाहल ऋषि दयानन्द ने मतमतान्तर वालों को इस विषय में पर्याप्त रीति से डाटा है। ऋषि दयानन्द की शिक्षा है कि सत्य को ग्रहण करो श्री आचार्य जी अपने मत के विरुद्ध भी संगठित सम्मानित बात पर हस्ताक्षर करने को उद्यत हैं और यही उनकी आर्य समाजियों के प्रति शिक्षा है। अर्थात् आचार्य जी के मतानुसार वैयक्तिक मत अब के लिये आर्य समाज में कोई

(शेष पृष्ठ १० पर)

पौरस्त्य और पाश्चात्य आदर्श

(पृष्ठ ७ का शेष)

उनको ऐसी छुट्टी है। वहाँ की स्त्रियों को नौकरी आदि करके सुख से रहने की छुट्टी रहती है इसीलिए वहा की स्त्रिये स्वाभिमानी वृत्ति धारण कर स्वाभिमान की भाषा बोल सकती है। ऐसी दशा रहते भी उधर के अखबार पत्नियों को पतियों को किस प्रकार सन्तुष्ट रखने का प्रयत्न करना चाहिए—इत्यादि विषयोंकी खूब चर्चा करते रहते हैं यह क्या, इसलिए कि वहाँ की पुरुष वहाँ के स्त्रियों की अमर्यादित, उच्छृङ्खल वृत्ति से तंग आ रहे हैं।

हमारे यहाँ, भारत में, चाहे कितनी ही हीन स्थिति हो गई हो—और यह हीन स्थिति एक सहस्र वर्ष के परदास्य, परचक्र, पराधीनताजन्य हीनता के कारण है—तथापि हमारे धर्म प्रधान देश में स्त्रियों ने ही धर्म को अधिकतर सभाल रक्खा है—पुरुष तो विदेशी शिक्षा-दीक्षा के प्रवाह में बह गये—और सुशिक्षित स्त्रिये भी बह चली हैं परन्तु सामान्यत. स्त्री वर्ग धार्मिक प्रवृत्ति का वर्ग रहा है इसलिए यहाँ की आर्थिक हीनता के कारण हीन कुटुम्बों में भी कौटुम्बिक सुख अधिक है। पाश्चात्यों के अर्थबहुल कुटुम्बों में कौटुम्बिक सुख न्यून है।

मान लीजिए कि राष्ट्र में स्त्री और पुरुषों को सम समान हक मिल गये और पुरुषों की तरह स्त्रियें भी उत्तर दायित्व के काम सभालने लगीं, हिमालय के उच्च शिखर पर भी चढने का प्रयत्न करने लगी—घर के बाहर के उद्योगों में वे पुरुषों के साथ स्पर्द्धा करने लगीं तो भी पुरुष और पुरुषों में स्वाभाविक अन्तर रहता ही है—रहेगा ही।

बड़ा भेद यह है

बड़ा भेद यह है पाश्चात्य—विवाह बन्धन भौतिकता के आधार पर स्थित हैं और भारतीय विवाह बन्धन में आध्यात्मिकता का पुट रहता है, यह बड़ा भारी भेद है। पाश्चात्यों की तरह विवाह बन्धन कोई ठेके की बात नहीं है। न ही विवाह बन्धन केवल कामवासना की तृप्ति के लिए है। पाश्चात्यों के विवाह बन्धन जब चाहे समाप्त किये जा सकते हैं। भारतीय जन्मजन्मान्तरों के संस्कारों का भी बन्धन सम्मिलित रहते हैं—ऐसा विश्वास रहता है और चलता आया है, जो कुछ हो सुशिक्षित भारत केवल ऊपरी दृष्टि रखकर पाश्चात्यों का अन्धानुकरण में दिखलायी दे रहा है। यह दुर्भाग्य की बात है।

भोला जा रहा है मनु के इस वाक्य को

कि—

न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति

अर्थात् स्त्री स्वतन्त्रता के योग्य नहीं है—पर इसका अर्थ यह थोड़े ही है कि स्त्रियों को गुलाम बनाकर रक्खो, प्रत्येक दशा में। स्वभावतः स्त्रियें रक्षा योग्य हैं—इसलिए स्त्रि. की रक्षा का भार बाल्य, कुमार, यौवन और वार्द्धक्य इन चार दशाओं में बाँटा गया है—बस इतना ही तात्पर्य है—भगवान् ने एक को (पुरुष) कठोर रक्षा करने योग्य और एक को कोमल रक्षा योग्य बनाया है। एक का रक्षक एक को रक्ष्य बनाया है दोनों अपने कर्मानुसार स्त्री पुरुष बने हैं। भिन्न भिन्न प्रयोजना के लिए फिर भी दोनों अभिन्न हैं—यही तो भगवान् का चमत्कार है।

भारतीय संस्कृति में स्त्रियें सह धर्मिणी हैं—अर्द्धाङ्गिनि है—कितना बड़ा महत्व दिया गया है स्त्रियों को। अर्थात् स्त्री के बिना पुरुष पूर्ण नहीं हैं, पुरुष के बिना स्त्री पूर्ण नहीं है—इतनी तुल्यता तो संसार के किसी भी राष्ट्र के स्त्री पुरुषों को नहीं दी गई है। न किसी अन्य धर्म में स्त्रियों का इतना महत्व दिया गया है।

यह और बात है कि काल चक्र के परिवर्तन के कारण सिर पर स्व सभ्यता अथवा संस्कृति के रक्षक पोषक आर्य पद्धति के राज्य के न रहने के कारण, विदेशी जाति के साथ संसर्ग में आने के कारण भारत का ढचर ही बिगड़ गया है, बदल गया है फिर भी भारतीय सभ्यता और संस्कृतिने जिन परिस्थितियोंमें भी अपना अस्तित्व बनाया रक्खा है यह भारत तथा संसार के लिए सौभाग्य की बात है—

अब हम प्राप्त स्वतन्त्रता का उपयोग उसी सभ्यता और संस्कृति के उद्धार के लिए करेंगे तो हम पुन पूर्वजों की प्रतिष्ठा और मर्यादा की रक्षा करने में समर्थ होंगे, इसमें संदेह नहीं—ईश्वर करे ऐसा ही हो।

भारत के वित्त मन्त्री

श्री देशमुख चिन्तामणि

अनोखी बात

स्थान नहीं। उनके पास केवल एक इलाज है। 'आर्य समाज के संगठन से अलग हो जाओ' आर्य समाज छोड़दो। और यदि न छोड़े तो क्या किया जाय? उनको समाज से निकाल देना चाहिये। यही अन्य मतावलम्बी भी करते रहे। यही आप करेंगे। "हर्गिज़ आदर काफ़िर गर्दद" और मतों में और आप में इतना भेद है। उन मतों ने तो इस बात को उस समय अपनाया जब उनका प्रभाव विश्वव्यापी हो गया और उनके युगके अनुकूल था। आप इस सिद्धांत की ऐसे समय में घोषणा कर रहे है जब आपका बल अत्यन्त अल्प है और युग की मनोवृत्ति सर्वथा विरुद्ध है। यदि आपने समाज से 'विचार स्वातन्त्र्य' भी छीन लिया तो आर्य समाज में शेष क्या रह जायगा और लोग उस की क्या प्रतिष्ठा करेंगे? यह गंभीर प्रश्न है जिसकी ओर श्री आचार्य जी का ध्यान ही नहीं जाता। यह तो जगत् प्रसिद्ध बात है कि श्री आचार्य जी धर्मार्य सभा के प्रधान मंत्री हैं। इस के लिये बधाई। परन्तु चिंता यह है कि क्या धर्मार्य सभा केवल चीर फाड़ ही करेगी या सांस्थानिक चिकित्सा भी करेगी। मैं इस विषय में श्रीमती सार्वदेशिक सभा का ध्यान आकर्षित कर चुका हूं। निवेदन कर दिया है 'कोलाहल' नहीं मचाया। धर्मार्य सभा के सदस्यों की संख्या कई दर्जन है। आचार्य जी का दावा है कि वह सब आपके स्वर में स्वर मिला देते हैं क्या इन से यह निवेदन करना "अनुचित हस्ताक्षेप" होगा कि वह ऋग्वेद के वेद भाष्य को अध्ययन के लिये बाँट लें। और जहां जहां अशुद्ध, या अस्पष्ट, या असंगत या ईषदस्पष्ट दिखाई दे उसको इतना स्पष्ट करादें कि मुझ जैसे अल्प-मति को समझने में सुगमता हो जाय। संगठित रूप से हाथ उठाने के स्थान में तो संगठित रूपसे अध्ययन कराना अधिक उपयोगी होगा।

लैटिन अमेरिका में कैथोलिक धर्मों को खतरा

रोम के पोप को भारी चिंता

[लेखक श्री पं० शिवदयालु जी सेठ]

अमेरिका के कैथालिक धर्म की गम्भीर और निरन्तर बढ़ने वाली समस्याओं ने कंपा देने वाली चिन्ता से घेर लिया है। पोप ने इस परिस्थिति का कारण वहां प्रचारकों की भारी न्यूनता का होना बताया है। पोप योजना बना रहे हैं कि लेटिन अमेरिका में दूसरे देशों से प्रचारक भेजे जावें।

आप लिखते हैं कि अमेरिका में धर्म के शत्रु निरन्तर उस पर आक्रमण कर रहे हैं जिनकी रोक थाम के लिये अधिकाधिक जागरूक रहना चाहिये।

आपके मत में सबसे अधिक खतरनाक शत्रु फ्रीमेसन वालों के भाव, प्रोटेस्टेन्टों का प्रोपेगन्डा, उपे क्षावृत्ति, झूठे धर्म तथा आत्माओं को भुलावे के भाव हैं।

इसके अतिरिक्त वह उल्टी विचार धारायें जो न्याय और जन सुधार के नाम से जनता में फैलाई जा रही हैं जिनके कारण कैथालिक मत के मौलिक सिद्धान्तों का विरोध बढ़ रहा है। इत्यादि।

माननीय पोप महोदय संसार में फैलते हुए बुद्धिवाद एवं मानववाद का किन्हीं भी शब्दों में विरोध करें किन्तु इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस प्रकाश के युग में धर्म को अन्धविश्वासी एवं तर्क शून्य मान्यताओं की पक में अब अधिक काल तक फसे रहने नहीं दिया जा सकता। जहां मनुष्य विवेक से काम लेना आरम्भ कर देता है और सत्य की खोज करने की चाह उसमें पैदा हो जाती है तो उसे फिर कैथालिकों के अन्धविश्वास और अनर्गल बातें सन्तोष कदापि नहीं दे सकतीं। पोप को चिन्ता कहीं साम्यवादी देशों की है तो कहीं चीन और वियतनाम की कहीं फ्रांस की है तो कहीं लेटिन अमेरिका की। किन्तु उन्हें यह पता नहीं कि अब एशिया और अफ्रीका की आत्माएं भी जाग चुकी हैं और करोड़ों अरबों रुपया तथा लाखों उसके प्रचारक उस आत्मा को अधिक अन्धकार में नहीं रख सकते।

अमेरिका में स्वामी विवेकानन्द का विजय और महात्मा अन्ध-

विश्वासों की जड़ों पर कुल्हाड़ा चला रहे हैं इन को वह भले ही झूठे धर्मों के नाम से पुकारें किन्तु उनके इस फतवे का प्रभाव अब प्रबुद्ध आत्माओं पर नहीं पड़ता।

भारत में कैथालिकों का प्रचार पूर्ण वेग के साथ आज पोप कर रहे हैं और करोड़ों रुपया और सहस्रों विदेशी प्रचारक निरन्तर इस प्रकार में झोंक रहे हैं किन्तु अब स्वतन्त्र एवं सजग भारत इस सब प्रयास को निष्फल कर भारत की प्राचीन सभ्यता के पावन आलोक में प्रगति करेगा और भारत के कैथालिकों को भी एक दिन विवश होकर अन्ध विश्वासों, मतान्धता एवं तर्क शून्य मान्यताओं को तिलांजली देनी होगी।

आर्यमित्र के समस्त एजेंटों से

इन पंक्तियों द्वारा आर्यमित्र के समस्त एजेंटों से प्रार्थना है कि वे जुलाई तक का धन अविलंब भेज कृतार्थ करें। जो सज्जन इनको पढ़ तुरन्त धन देंगे हम उनके अत्यन्त आभारी होंगे।

—व्यवस्थापक "आर्यमित्र" लखनऊ

भारत के कर्णधार

श्री पं० जवाहरलाल नेहरू

नव-युवकों से—

[लेखिका—श्रीमती सावित्री रस्तोगी 'साहित्य रत्न']

अतुल चेतना को हृदय में संजोए—
चली आ रही है तुम्हारी जवानी
चढ़ी आ रही है तुम्हारी जवानी॥

(१)

पड़ा है अजब कुछ महाकाल ऐसा,
कि जीवन के सब स्रोत रूखे पड़े हैं।
न कर्तव्य की चाह है आज हमको,
विनय शीलता से विमुख हो गये हैं।
न है स्नेह बन्धन, न है लोक रंजन,
न है आत्म चिन्तन, न है मान वर्द्धन।
न है आज दिल में सफाई किसी के,
न है आज सौजन्यता को निमन्त्रण।
न सुविचार हैं शुद्ध आचार है न,
सत्य व्यवहार हो क्यों? सरलता नहीं है।
भला कैसे फिर प्रेम की शुभ्र बाती,
हृदय में हमारे उरलता नहीं है।
न है निष्कपट भावनाओं से अर्चन,
न हैं कर्म—रत, सत्य—भाषण नहीं हैं,
इसी से जगत वत्सले मातृ-भूमि के—
चरणों में अर्पित सुवन्दन नहीं है।
तो मानव की ऐसी दशा को सम्भालो,
अगर चाहते हो मनुज की रवानी।
अतुल चेतना को हृदय में सञोए.
चली आ रही है तुम्हारी जवानी॥

(२)

करो घोषणा क्रान्ति के दूत हो तुम,
अनाचार की भित्ति जड़ से हिलादो,
करो विश्व व्यापी महानाद ऐसा—
कि आकाश से इस जमीं को मिलादो।
कि हो शक्ति सञ्चय तुमुल इस धरा पर,
बिखरती हुई भावनाएँ सिमट कर।
'बने आप वरदान" पथ में तुम्हारे,
प्रकाशित करे रश्मिया पथ निरन्तर।
[illegible] य भी अगर सामने आ खड़ो हो,
[illegible] आंधियाँ तम की छाएँ घटाएँ।
अगर बिजलियां भी गिरें टूट ऊपर,
तो फिर भी तुम्हारे अधर मुस्कराएँ।
रहे एक ही प्रश्न मन में तुम्हारे—
कि "जीवन का उद्देश्य क्या, ध्येय क्या है'
रहे एक ही प्रश्न मन में तुम्हारे,
कि "मानव को निश्रेय, क्या श्रेय क्या है"
तुम्हारे चरण डगमगाएँ न मग में,
न भूलो कभी साधना की कहानी।
अतुल चेतना को हृदय में सञोए,
चली आ रही है तुम्हारी जवानी॥

वेद और ईसाई मत

लेखक—श्री [illegible] जी शर्मा]

ईसाई मत में एक भगवान की उपासना नहीं, ईसाई लोग प्रायः अपनी प्रार्थनाएं तक ईसा मसीह से ही करते हैं। ईसाईमत में मनुष्य और भगवान के बीच ईसा मसीह हैं दार्शनिक ज्ञानी ईसाई तक भी चाहे ईसामसीह का व्यक्तित्व मानते हों पर वे ईसाईमत के भगवान की पूजा से संतुष्ट नहीं। ईसाइयो का एक वर्ग तो स्पष्ट मूर्ति पूजक है और दूसरा चाहे देखने में मूर्ति पूजक नहीं प्रतीत होता पर उसमें भी परमात्मा से सीधा सम्बन्ध नहीं। ईसाइयों की पूजा का विधान विज्ञान के अनुकूल नहीं। ईसाइयों ने बहुत कुछ बौद्धमत से लिया है और वास्तव मे धर्म के आदि स्रोत नाम पुस्तक में तो यह सिद्ध कर दिया गया है कि हजरत मूसा की शिक्षामें यदि बौद्धमत की छूट दी जाय तो ईसाइयतका क्या रूप बनता है? इसमें करुणाकार बौद्ध-मत का है और भित्ति यहूदियो के प्राचान मत की है। कोई वैज्ञानिक ईसाइयत के सिद्धान्त मानने के लिए तैय्यार नहीं। इसमें वास्तव मे दर्शन है हा नहीं। पाश्चात्य दर्शन यूनानी लोगो के दर्शन से आरम्भ होता है ईसाइयो के प्रवर्तक सन्तापाल आदि दार्शनिक न थे। ईसाइयों के मत मे बुद्धिको प्रवेश नहीं। अन्धविश्वास पर ही बल है। जो कहा गया है उस पर ही विश्वास करना होता है। ऐसा थोथा मत जो न तो बुद्धिवाद की कसौटी पर कसा जाय और न उसमे दार्शनिक विश्लेषण हो उसे समझदार व्यक्ति के लिए स्वीकार करना बहुत ही कठिन है।

स्वामी दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश के बाद तथा आर्य समाज से शास्त्रार्थों के परिणाम से प्रभावित होकर लोगो ने अपने उन विचारों के लिए जो मनुष्य की बुद्धि स्वीकार नहीं कर सकता नए नए हेतु दिये है। ईसाई मत मे कुछ प्रामाणिक बातें है ही नहीं सारा मत ईसा के व्यक्तित्व पर ही निर्भर है। जो मत किसी व्यक्ति विशेष पर ही निर्भर है वह सर्वमान्य नहीं हो सकता वह तो केवल उसका निजीमत है, वह धर्म नही कहा जा सकता।

ईसाइयत के विपरीत वेद विहित धर्म विश्वभर के मानव के लिए है और वेद के ही आधार पर ऋषि दयानन्द का स्थापित किया हुआ आर्य समाज भी वेद में श्रद्धा रखने वाले मनुष्यों का संगठन है। आर्य वह है जिसमें आर्य [भगवान्] के पास होने के कारण श्रेष्ठत्व है। आर्यों का सगठन आर्य समाज है वह किसी देश विशेष या वर्ग विशेष की संस्था नहीं वह तो विश्वभर के वेद में विश्वास रखने वाले आस्तिक जनों का मानवो के उद्धार के हेतु सार्वभौम आन्दोलन है। आर्यसमाज सभी मानवों का है, जिनमें वेद में श्रद्धा है। वेद में सत् ज्ञान है, वेद ही सभी मनुष्यो की धर्म पुस्तक है वेद विश्वभर के मानवों की सम्पत्ति है वेद पर सारे मनुष्यो का पूर्ण अधिकार है। वेद में पूर्ण सत्य कहा गया है जो सनातन है जो सदा से रही है।

वेद सत् ज्ञान है, वेद में मनुष्यों के हितो की सभी शिक्षा है। वेद से मनुष्यों में, आपस में, समाज एक होगा सब मे मेल होगा विचारो मे समन्वय होगा। वेद का धर्म प्रेम धर्म है वेद में किसी से द्वेष नहीं वेद सब का मगल चाहता है वेद मे एक अन्तर्यामी प्रेममय हृदय विहारी प्रभु की उपासना है और आपस म मिलकर सर्वहित के यज्ञ रूप शुभ कार्य करने का विधान है। वेद के प्रकाश में सबमत मतान्तरों का मर्म दिखाई दे गया है इसलिए सभी मे हलचल है विशेषतः ईसाइयत मे तो एक ईश्वर की उपासना तक नहीं। केवल वहाँ पूजा है एक व्यक्ति की जिसका व्यक्तित्व चाहे जैसा पवित्र और ऊँचा हो वह भगवान का स्थान नहीं लेसकता। वेद भगवान के सामने ईसाईमत की शिक्षा की भारत मे आवश्यकता ही नहीं वेद प्रेम और सौहार्द की शिक्षा दे रहा है।

अनुशासन के विरोधी तत्व

(पृष्ठ ५ का शेष)

कुछ ठोस एव रचनात्मक पग उठा सके। जब पुलिस सुधार के लिये आदर्श थाने और कैदियों के सुधार के लिये आदर्श जेलें बन रही हैं तो कोई कारण नहीं कि अपने [illegible] आन्दोलनों के लिए कोई रचनात्मक एवं [illegible] व्यवहार में न लाया जाय। यह अवश्य है कि इसमें पहले कुछ लाख रुपये व्यय करने होंगे और अनुभवी विद्वानों का सहयोग लेना होगा परन्तु अन्त में बहुत ही शुभ एवं कल्याणकारी फल उपलब्ध होने से [illegible] का कीड़ा न रहेगा। [illegible] कि शहर में [illegible] आग [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] बीच बैठे देखते रहते हैं। उन्हें तो आवश्यकता ही नहीं कि मानसिक ज्वाला भौतिक अग्नि से कहीं अधिक घातक एवं भयंकर होती है। एक बार लगने एवं प्रबल होने पर उसका बुझाना तथा वश में होना संभव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है। × × ×

आज देश की अवस्था बद से बदतर होती जारही है। दुराचार के बढ़ने की सीमा नहीं रही। कहां तक कहा जाय जिस दुराचार को असम्भव समझा जाता था वह अपवाद रूप में ही नहीं रहा किन्तु पर्याप्त बढ़ गया है और यहां तक कि अब तो दुराचार में भी दुराचार होने लगे हैं। दुराचार करने पर दुराचार नहीं माना जाने लगा। और करने

वाले को करते हुये यह गर्व होता है कि हमने अमुक कार्य किया है, कौन है जो इसको दुराचार कहता है? दुराचार की अधिकता व केवल अधिक होने तक सीमित है [illegible] प्रकार भेद से भी अधिक हो रही है। अब से २० साल पूर्व जो दुराचार सुनाई नहीं देते थे वे अब हो रहे हैं। देश में समय समय पर सुधारकों ने जन्म लेकर सुधारने का यत्न भी किया और अब भी अनेक सुधारक सुधार करने पर लगे हुये हैं। अनेकों संस्थाएं इस ओर अपना बल और धन लगा रही हैं। तो भी यह [illegible] पौधे की भांति दिन प्रति दिन बढ़ रहा है जो जितना काटा जाता है उतना ही अधिक बढ़ता है।

प्रश्न उपस्थित होता है—दुराचार कहां से आया? दुनियां में इसकी उत्पत्ति कहाँ से हुई? और किस प्रकार? इसका उत्तर अनेक प्रकार हमारे सामने आता है कुछ लोग मनुष्य तो अपने धार्मिक विचारों के प्रतिबन्ध से विवश होकर यह कहते हुये सुनाई देते हैं कि इस दुनियाँ के पैदा करने वाले ने ही इसको जन्म दिया है। सृष्टि उत्पत्ति के समय ही उस सत्ता को जन्म दिया जिसने इन्सान को बहका कर पाप में प्रवृत्त किया और उनके विचारानुसार अब भी मनुष्य समाज को बहका कर वही पाप कराता है और जब तक सृष्टि रहेगी कराता रहेगा। मगर फिर भी वह निर्दोष मनुष्य क्यों उस प्रभु से दण्डित

एक विचारोत्तेजक लेख—

आदि गुरू कौन ?

लेखक—प्रसिद्ध विधायक व आर्य नेता श्री कालीचरण जी आर्य
—प्रधान मंत्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली—

होता है? जब कि वे स्वेच्छा से किसी प्रकार का कोई दुराचार नहीं करते?

विचारशील मनुष्य इस पर जब गम्भीरता से विचार करते हैं और वह अपने धर्मग्रन्थों को देखते हैं तो वह इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है अच्छा करें या बुरा करें या कुछ न करें।

कर्म करने की स्वतन्त्रता के कारण ही वह अपने अच्छे और बुरे कार्यों का फल भोगता है जिसमें वह परतन्त्र है। अतः मनुष्य अल्पज्ञ है अतः कर्म करने में कभी कभी अपनी अल्पज्ञता से और कभी कभी इन्द्रिय-दोष से दुराचार की ओर प्रवृत्त हो जाता है और वही संसार में दुराचार का मुख्य कारण है

कारण से कार्य की उत्पत्ति होती

और इन्द्रिय दोषों से मुक्त होकर संसार में विचर सकता है यतः मनुष्य अल्पज्ञ है अतः उसके कर्म करने का क्षेत्र भी सीमित है। जितनी दूर तक और जितना उसको काम करना है उतना ही काम वह करता है, कर सकता है और कर लेता है। हमारे शास्त्रों ने बतलाया है कि मनुष्य अपने पुरुषार्थ से ज्ञान उपलब्ध कर सकता है और जितना जितना ज्ञान वह प्राप्त करता जाता है—उतनी ही उतनी उसकी अल्पज्ञता कम होती जाती है। और वह किसी सर्वज्ञ शक्ति के निकट होता जाता है। मनुष्य को सर्वज्ञ होने की आवश्यकता नहीं, जब उसकी शक्ति सीमित है उसका क्षेत्र सीमित है उसका लक्ष्य और उद्देश्य सीमित है उसी के अनुसार अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के

> "ज्ञान का प्रसारक कौन? उसे किसने दिया? हमें किस से मिला? वह कभी घटता क्यों नहीं? देने वाले के पास भी बढ़ता जाता है। एक साथ हजारों को मिलता है, फिर भी कहीं कमी नहीं? 'ज्ञान' की यह विशेषता क्यों? इन प्रश्नों का उत्तर प्रसिद्ध आर्य नेता के इस विचार पूर्ण लेख में पढ़ आदि गुरु के चरणों में नत मस्तक हो अगाध प्रेरणा स्रोत का परिचय पा कल्याण की ओर प्रयाण का प्रयत्न कीजिए?
>
> —सम्पादक

है यह निर्विवाद रूप से सिद्धान्त का रूप धारण कर चुका है। प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या कोई अवस्था ऐसी हो सकती है कि मनुष्य कभी पाप न करे। क्या मनुष्य की यह अल्पज्ञता कभी सर्वज्ञता में परिवर्तित हो सकती है? क्या उसकी अल्पशक्ति सर्वशक्ति में बदल सकती है? और क्या कभी मनुष्य के इन्द्रिय दोष सर्वथा दूर हो सकते हैं' जिससे कि वह पाप में प्रवृत्त न हो? उत्तर यही होगा कि मनुष्य कभी सर्वज्ञ नहीं हो सकता और न सर्वशक्तिमान हो सकता है, हाँ—इन्द्रिय दोष से मुक्त अवश्य हो सकता है—कारण मनुष्य स्वभाव से अल्पज्ञ है और अल्पशक्ति वाला है परन्तु स्वभाव से इन्द्रिय दोष वाला नहीं। इसलिये स्वाभाविक गुण कभी दूर नहीं हो सकता और नैमित्तिक गुण कभी स्वभाविक नहीं बन सकता इसलिए अल्पज्ञ और अल्पशक्ति वाला जीवात्मा सर्वदा और सर्वस्थानों में अल्पज्ञ और अल्प शक्ति वाला ही रहेगा।

निमित्त ज्ञान भी उतना ही उसके लिए पर्याप्त है, वह प्राप्त कर सकता है और कर लेता है। अपनी शक्ति, अपनी सीमा के अनुसार ज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात् तदनुकूल आचरण से अपने इष्ट की प्राप्ति करता है और इस प्रकार मनुष्य अल्पज्ञ होते हुए भी पाप से दूर रह सकता है और इतिहास में ऐसे मनुष्य हैं जो पाप से दूर रहे।

हम पाप से दूर रहने की प्रभु से प्रार्थना भी करते हैं और संसार का प्रत्येक मनुष्य पाप से दूर रहने की इच्छा भी रखता है। इसलिए भी पाप से पृथक रहना मनुष्य के लिए सम्भव है और प्रत्येक को इससे दूर रहने का प्रयत्न भी करना चाहिए।

प्रश्न यह है कि ज्ञान या अज्ञान जिससे मनुष्य अल्पज्ञ कहलाता है और जिसका प्रभाव उसकी शक्ति पर विशेष रूप से पड़ता है और जो उसको पाप में प्रवृत्त कराने में कारण है और जिसके कारण ही

उसमें इन्द्रिय दोष उत्पन्न होता है—वह क्या वस्तु है? क्या वह कोई ऐसी वस्तु है कि जो बाजार में बिकती हो और जनसाधारण, जिसको जी चाहे क्रय कर ज्ञानी बन जाये? क्या वह संसार के प्रत्येक प्राणी के लिए समानता से प्राप्तव्य है? क्या वह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में परिवर्तित हो सकती है और परिवर्तनशील है। क्या वह द्रव्य है या गुण? यह प्रश्न हैं—जिन पर प्रत्येक विचारक को विचार करना आवश्यक है। इन के जानने के पश्चात् ही वह उससे लाभ उठा सकता है।

देखा जाता है कि एक गुरु अपने शिष्य को ज्ञान देकर ज्ञानी बनाता है जिससे यह प्रतीत होता है कि ज्ञान एक से दूसरे में जाता है और वह एक से दूसरे को मिल सकता है जिस प्रकार अन्य वस्तुएं अधिक धन रखने वाले को अधिक और सुगमता से प्राप्त हो जाती हैं इसी प्रकार यह भी अधिक योग्य गुरुओं से अधिक और सुगमता से मिल जाता है। परन्तु समस्त मनुष्यों को समानता से प्राप्तव्य है—ऐसा नहीं देखा जाता। जिस मनुष्य के पास प्राप्त करने के जितने साधन हैं वह उतना ही प्राप्त कर सकता है जिस प्रकार अन्य वस्तुएं धन के न्यूनाधिक होने से—न्यूनाधिक प्राप्त होती है उसी प्रकार ज्ञान भी मनुष्य में प्राप्त करने की जितनी शक्ति और क्षमता होनी है और जितने साधन होते हैं उसी के अनुसार मनुष्य को प्राप्त होता है। परन्तु इसमें अर्थात् ज्ञान में और संसार के भौतिक पदार्थों में बड़ा अन्तर है।

वस्तु देने वाला जितनी देता है उतनी अपने पास से कम कर देता है और दूसरे के पास बढ़ा देता है लेकिन ज्ञान के लिये यह बात नहीं? देने वाला जितना देता है, लेने वाला कभी कभी उससे अधिक प्राप्त करता है। लेने वाले के पास बढ़ जाती है परन्तु देने वाले के पास देने पर भी कोई कमी नहीं होती। यह इसकी बहुत बड़ी विचित्रता है। इससे भी अधिक विचित्रता और है और वह यह कि देने वाला एक ही व्यक्ति को एक ही समय में जो वस्तु दे रहा है उसी समय उस वस्तु को हजारों और लाखों आदमी भी बगैर किसी विशेष प्रयत्न के प्राप्त कर लेते हैं और देने वाले का ज्ञान फिर भी कम नहीं होता।

यद्यपि यह सत्य है लेकिन समझ

(शेष अगले पृष्ठ पर)

(पिछले पृष्ठ का शेष)

में नहीं आता कि किस प्रकार ऐसा होता है। यह चमत्कार ही है कि वस्तु हजारों में वितरित हो गई परन्तु उसमें से कमी कुछ नहीं हुई। कारण स्पष्ट है कि "ज्ञान" द्रव्य नहीं है अन्यथा ऐसा न हो सकता। "ज्ञान" गुण है। प्रश्न उपस्थित होता है—कि अगर ज्ञान गुण है तो किसका ? देने वाले का या लेने वाले का ? लेने वाले का इसलिये नहीं कि अगर उसका है तो लेने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। अतः मानना पड़ेगा कि देने वाले का ही हो सकता है। अब अगर देने वाले का है तो स्वाभाविक है या नैमित्तिक ? अगर स्वाभाविक है—तो परिवर्तन कैसा ? देने वालो के पास से पृथक किस प्रकार होता है ? आप कहेंगे कि जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश और उष्णता सूर्य में रहती है और बाहर लाखों मील दूर तक भी जाती है ? जिस प्रकार बर्फ की ठण्डक—बर्फ में भी रहती है और बाहर भी जाती है इसी प्रकार ज्ञान भी देने वाले से लेने वाले तक आता है और एक ही समय में दोनों के पास भी रहता है। यहाँ प्रश्न होता है कि सूर्य के प्रकाश और ज्ञान मे अन्तर है। सूर्य के प्रकाश और उष्णता को धारण करने वाले आकाश वायु, अपने अन्दर वह गुण रखते है कि सूर्य के प्रकाश को धारण करके दूर तक पहुचा दे क्योकि आकाश मे सभी परमाणु उपस्थित हैं—परन्तु ज्ञान तत्व को धारण करने का गुण तो आकाश में, वायु में, अग्नि म नहीं है। ज्ञान तो केवल चैतन्य शक्ति में ही रहता है और वह ही उसको धारण कर सकता है। अत इस प्रकार देने वाले और लेने वाले के मध्य जो आकाश और काल है उसमे रहा। और किस प्रकार उसने धारण करके देने वाले के पास से लेने वाले के पास तक पहुचा दिया ? यह समस्या है इसका हल करना आवश्यक है—यह तो होता है, कि शीतल जल को गरम करते हैं और वह गरम हो जाता है। अग्नि के सूक्ष्म परमाणु जल म अपने गुण उष्णता सहित प्रवेश कर उसको गरम कर देते ह। अग्नि के परमाणु जल में न हों या न जाय और जल गरम हो जावे यह असम्भव है परतु गुरु का चैतन्य आत्मा शिष्य के चैतन्य आत्मा में प्रवेश नहीं करता और चैतन्य का गुण 'ज्ञान' दूसरे तक आता है—यह उलझन ज्यो की त्यों है।

जिस प्रकार समस्त आकाश मे वायु, जल अग्नि, पृथ्वी के परमाणु विद्यमान होने से हर एक जड पदार्थ के गुण समस्त ससार में सुगमता से परिवर्तित हो जाते हैं—जैसे एक स्थान से दूसरे स्थान तक, उष्णता, ठण्डक पहुच जाती है। इसी तरह मानना पड़ेगा कि ज्ञान' देने वाले गुरु का भी स्वाभाविक नहीं है—उनके पास भी लेने वाले की तरह किसी गुरु से आया है और वह भी कभी किसी के शिष्य थे।

'ज्ञान' निस्सन्देह चैतन्य का ही गुण है और ऐसी सत्ता का है जो समस्त ब्रह्माण्ड में व्यापक है—उसी तो भौतिक पदार्थों के गुणों की तरह परमात्मा के संसार में व्यापक होने से 'ज्ञान' भी एक से दूसरे में सुगमता से चला जाता है उसको धारण करने वाला परमात्मा सर्वत्र और सर्व-व्यापक है—उस ही का वह स्वाभाविक गुण है—उसी ही के व्यापकत्व से परिवर्तित होता रहता है। वही 'पिता' अपने ज्ञान को गुरु की प्रेरणा और पुरुषार्थ से शिष्य के हृदय में जागृत कर देता है। अतः जो शक्ति गुरु के हृदय में व्यापक है वही शक्ति शिष्य के भी हृदय में व्यापक है और वही दोनो के बीच आकाश और बादल में भी व्यापक है और उसी शीत का ज्ञान स्वाभाविक गुण है। अत कोई आपत्ति नही कि ज्ञान एक से दूसरे में जाता रहे, आता रहे और सर्वत्र बना भी रहे। कहीं और अधिक होने की आवश्यकता नहीं। चूकि परम पिता परमात्मा का ज्ञान अपार है इसीलिए हजारो और लाखों के हृदयो में भी एक ही समय में प्रभु के व्यापक होने से प्रभाव होता है।

पुन प्रश्न होता है कि सबके हृदयो मे यह प्रभाव समानता से क्यों नहीं होता ? कहीं कही तो बहुत बडा अन्तर प्रतीत होता है और यहाँ तक कि विपरीत प्रभाव तक भी हो जाता है। उसका कारण है और वह यह कि जिसने प्रभु के गुणो से जितनी समी पता प्राप्त की है उसको उतनी ही जल्दी और अधिक ज्ञान की उपलब्धि होती है। जिस प्रकार जो जितना अग्नि के निकट होगा वह उतना ही अधिक उष्णता का अनुभव करेगा और उससे प्रभावित होगा। जिसने प्रभु की समीपता प्राप्त नहीं की उसके हृदय में प्रभु के ज्ञान के विपरीत उल्टे ज्ञान का प्रभाव होगा जो ससार में विषमता का एक बहुत बड़ा कारण ह।

ससार में सभी प्राणियों के साधन समान नहीं हैं—इसी कारण साधन के भिन्न होने से साधन मे भी अर्थात 'ज्ञान' में भी बड़ा अन्तर है। मनुष्य में ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति है और कर्म करने की शक्ति है। मनुष्य अपनी इस शक्ति के पूर्व जन्म के अपने कर्मानुसार की शक्ति के अनुसार इस जन्म में ज्ञान को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है और इस जन्म में उस शक्ति को अपने पुरुषार्थ और वातावरण से विकसित करता है। यदि अवसर प्राप्त हो जाता है तो वह शक्ति विकास को प्राप्त हो जाती है। अन्यथा दबी हुई रहती है। अवसर पडने पर ही पता चलता है कि उसमे कितनी शक्ति है और कितनी नहीं।

यदि हम किसी चैतन्य शक्ति को जो ससार में व्यापक है, जो सर्व शक्ति मान, और नित्य है न माने तो दुनियाँ की शक्ति और दुनियाँ का मस्तिष्क भी इस समस्या को सुलझा नहीं सकता कि दुनियाँ में 'ज्ञान' कहाँ से आया ? किस प्रकार एक से दूसरे में जाता है क्यो कि 'ज्ञान' स्वाभाविक रीति से किसी मनुष्य मे भी नहीं है। प्रत्येक मनुष्य ही अपने माता पिता, गुरु और आचार्य से प्राप्त करता है। ससार के प्रारम्भ में अगर प्राथमिक सृष्टि के मनुष्यों को 'ज्ञान' का प्राप्त होना आवश्यक है। पश्चात के ससार मे उत्तरोत्तर मनुष्य एक दूसर स ज्ञान प्राप्त करता है और इस प्रकार मनुष्य संसार में 'ज्ञान' देन का साधन बनता चला जा रहा है। यदि आज संसार का मनुष्य जानने का प्रयत्न कर ले अपने 'प्रभु'- आदि गुरु को पहचान ले। ससार के आरम्भ मे दिये हुए उपदेश से लाभ उठाने का यत्न कर तो उसकी अल्पज्ञता उस सीमा तक दूर हो सकती है और उसके इन्द्रिय दोष सर्वथा नष्ट हो सकते हैं जो संसार में दुराचार और दुष्टाचार के कारण बने हुए है। दुष्टाचार को दूर करने के लिए यह एक साधन है—काम में लाने से सफलता प्राप्ति होगी और देश का कल्याण होगा। × × ×

उन्नति के लिए—

वेद पढ़िए !

(लेखक—आचार्य श्री विश्वश्रवा जी प्रधान मन्त्री सार्वदेशिक धर्मार्य सभा देहली)

परमपिता परमात्मा ने सूर्यचन्द्र आदि के समान वेद मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए रचे हैं। अतः प्रत्येक को वेद पढ़ने का अधिकार है। संस्कृत भाषा में वेदों के शब्दों का अन्य अर्थ में व्यवहार चल पड़ने से वेद के पठन पाठन न रहने से वेद दुरूह से हो गये हैं। वेदों को किसी को मत पढ़ाओ, इस प्रचार से भी वेद पीछे रह गये।

आरम्भ में वेद सरल भी [illegible] और

कठिन भी, जैसे प्रभु का रचा जल सरल भी है और कठिन भी। प्रत्येक व्यक्ति जल का प्रयोग करता है यदि जल कठिन होता तो हम लोग उसका उपयोग में कैसे लाते? और जल में क्या [illegible] है इसे वैज्ञानिक भी जान रहे हैं। इसी प्रकार वेदों के मन्त्र इतने सरल हैं कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी ज्ञान पिपासा उनसे बुझा सकता है और वेद कठिन भी हैं कि ऋषि लोग भी समाधि में बैठ कर मन्त्रार्थ साक्षात्कार करते रहे।

जो व्यक्ति वेद पढ़ना चाहता है उसको महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेद भाष्य प्रारम्भ से पढ़ना चाहिए। पहले भावार्थ पर दृष्टि डाले फिर पदार्थ को पढ़े। यदि कठिन प्रतीत होता हो तो उसको बार बार पढ़ता ही रहे समय में आना प्रारम्भ हो जायगा। यह आवश्यक नहीं आपको समझ में सब ही आ जावे जितना आ जावे उतना ही समझ लीजिये। यदि सब समझ में नहीं आता तो जो आता है वह भी न पढ़े, यह उचित नहीं है। पढ़ते पढ़ते एक दिन ऐसा होगा कि आप के समझ में सब वेद आ जाता है। ऐसा नहीं है।

यदि आप स्वामी जी का वेद भाष्य ध्यान से पढ़ेंगे तो आपको ऐसे अनेक सिद्धान्तों का ज्ञान होगा जो सिद्धान्त ऋषि ने सत्यार्थ प्रकाश आदि में भी नहीं लिखे हैं। ऋषि का वेद भाष्य न पढ़कर इधर उधर के भाष्यों को पढ़कर व्यक्ति वृथा वंचित होता है और ऋषि की देन से वह शून्य रह जाता है।

ऋषि का वेद भाष्य कठिन है, हाँ कठिन है तो क्या आप वेदों का खोते हुए पढ़ना चाहते हैं। यदि गौ माता के दुग्ध का घृत कठिन है तो आपकी इच्छा है तो वनस्पति घी खाइये वह सस्ता भी मिलता है पर गो घृत के गुण वनस्पति घृत में नहीं हो सकते। यदि आपको ऋषि का भाष्य कठिन लगता है तो पण्डितों का भाष्य पढ़िये पर वह लाभ तो न होगा। और यह नहीं कहा जा सकता कि पण्डित का किया जो वेद मन्त्र का अर्थ आप पढ़ रहे हैं वह पण्डित की बातें अपनी ओर से पढ़ रहे हैं या वेद पढ़ रहे हैं।

आप प्रतिदिन मूल वेद का पाठ करना आरम्भ कर दीजिये। कुछ समय तक पाठ करते करते आपको मन्त्र कण्ठस्थ हो जायगे और उनका अर्थ भी आपको आने लगेगा। अनुभव करके देखिये।

ऋषि ने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में लिखा है कि जो व्यक्ति अर्थ सहित वेद को पढ़ता और तदनुकूल आचरण करता है वह अत्यन्त उत्तम है परन्तु जो व्यक्ति अर्थ रहित भी वेद को पढ़ता रहता है वह भी उत्तम है। यदि आप अत्यन्त उत्तम नहीं बन सकते तो उत्तम तो बन जाइये।

यदि आपके हृदय में वेद पढ़ने की इच्छा है तो इतने बड़े महान् कार्य के लिए किसी गुरु के चरणों में बैठकर कुछ सीखने की अभिलाषा आपके हृदय में क्यों नहीं उत्पन्न होती? क्या आपके हृदय में वेदों के लिए यही आदर है कि अरे वेद! घर बैठे बिना किसी से पढ़े आ सकता है तू आ जा तो आजा अन्यथा मुझे तेरे सीखने के लिए परिश्रम करने का अवकाश नहीं है। क्या यही वेद भक्ति है? आपने जो कुछ पढ़ा वह सब गुरुओं से पढ़ा। जो परीक्षा पास की गुरुओं से पढ़कर। जो विद्या सीखी गुरुओं से पढ़कर और वेद इतना व्यर्थ का है कि यह वैसे ही आवे तो आ जाय अन्यथा न सही।

अरे अभागो! तुम्हारे किसी पुण्योदय से ही यह विचार भी पैदा हुआ है कि वेद पढ़ो, अन्यथा सहस्रों को तो यह भी पता नहीं कि वेद भी कोई वस्तु है। इस पुण्योदय से लाभ उठाओ अन्यथा कहीं फिर उन्हीं योनियों में न चले जाओ जहां वेद का नाम भी न लिया जाता होगा। परमर्षि महर्षि दयानन्द सरस्वती के पुण्य प्रताप से आज हम और आप सहस्रों वर्षों के बाद यह जान सके कि वेद हैं और उन्हें हम भी पढ़ सकते हैं इससे पूर्व यह प्रश्न ही संसार में नहीं था कि वेद पढ़ो मत चूको समय निकालो। नित्यप्रति प्रातःकाल की बेला में चाहे पन्द्रह मिनट ही पढ़ो पर रोज पढ़ो अनध्याय न करो। कल्याण होगा विश्वास रखो।

वेद में इतिहास

(पृष्ठ २ का शेष)

'इतिहास के रूपमें जहाँ वर्णन होता है वहां भूत काल के प्रयोग होते हैं।" इन्द्र वृत्र का वर्णन देखिये। जैसे इतिहास हुए हैं, वैसे ये वर्णन हैं।"

यही एक बड़ा विचार विन्दु है जो श्री प० जी महोदय को भ्रम में डाले हुए है। हमने अपनी पुस्तक क्या वेद में इतिहास है? के प्रथम २४ पृष्ठों में इसी बात पर प्रकाश डाला है कि क्या वेद में भूत काल का प्रयोग है भी? सायण, महीधर उव्वट स्कन्द स्वामी भरत वैंकट माधव सभी भाष्य कारों के भाष्यों से उद्धरण दिखाये जा सकते हैं जिनमें उन्होंने लौकिक भूतकालिकलकारों के धातु प्रयोगों के अर्थ भूतकाल के नहीं किये हैं माने हैं, और पण्डित जी उनको जबरदस्ती भूतकाल के प्रयोग मानने पर अड़े हुए हैं।

स्वयं पण्डित जी ने भी क्या चाल चली है। पहले उनका भूतकालिक अर्थ कर दिया। टिप्पणी में भी भूत कालिक अर्थ उड़ा दिया। इसका मतलब? कि इतिहास मानने वाला भी खुश हो जाय। और जिसको इतिहास नहीं मानना वह भी खुश हो जाय। यह ताशबाज मदारी के हाथ का सफाई है एक पत्ते के दो रंग दिखा दे। इसी से [illegible] जी के लिये यह कहना ठीक है कि वेदार्थ करने में—आप—गंगा गये तो गंगादास जमना गये तो जमनादास हैं। आपने [illegible] संहिता में व्याकरणों को ठोकर मार दी। पाणिनि को धक्का लगा दिया। उसके वृत्तिकारों को देश निकाला दे दिया। आप केवल धातु सम्बन्ध के प्रयोगों को भूतकालिक माने बैठे हैं। अब इस हठ धर्मिता के रोग का क्या इलाज किया जाय? जब आपकी दृष्टि ही दूषित है तब आप चाहे शेष से कितने ही अर्थ मानें वे असंगत और एक दूसरे के विरोधी सिद्ध होंगे। पण्डित जी का आग्रह है कि पहले मानो कि यह इतिहास की कथा के समान है, इसका भूतकालिक अर्थ करो। तब उसमें से उसका भावार्थ निकालो या उस शब्द का दूसरा अर्थ करो। और तब उस भूतकालिक क्रिया का दूसरा अर्थ पकड़ो। इस प्रकार उलट पलट कर पाठक को सदा चक्कर में डाले रहो। कभी कहो, इसमें नित्य इतिहास वैदिक ऋषियों ने पुराणों के समान रचा है। कभी कहो कि सारा इतिहास नहीं अर्थात् कुछ इतिहास है कभी कहो इतिहास का सा वर्णन है अर्थात् इतिहास है नहीं इतिहास मात्र है। कभी कहो वेद के वचन ऐसी व्यवस्था से रचे गये हैं कि अनेक विध अर्थों का धारण कर सकें। इस तरह वेदों में इतिहास है? यह प्रश्न निरर्थक? अर्थात् अनेक अर्थ होने से वेद के वाक्यों में इतिहास भी है। फिर कहा यदि कोई कहेगा कि केवल इतिहास ही वेद में है तो असत्य है अर्थात् इतिहास भी है [illegible]। फिर कहो [illegible] अध्यात्म ज्ञान ही है ऐसा कोई कहे तो भी यह पूर्ण सत्य नहीं अर्थात् मैं राजाओं का दान [illegible] और राजा [illegible] स्तुत रखी [illegible] फिर कहिये— [illegible] से लोग कहते हैं कि [illegible] का निराकार [illegible] करते हैं। अर्थात् निराकार स्वयं इतिहास मानते हैं [illegible] श्री पण्डित जी की समस्त [illegible] रचनाएं [illegible] लिखी गई [illegible] पण्डित से वेद में इतिहास [illegible] [illegible] पारम्परिक [illegible] गया है। [illegible] पण्डित जी इतिहास की सत्ता की घोषणा नहीं करते। [illegible] प्रकार के पैंतरे चलते हैं।

हम पण्डित जी के अनेक [illegible] और मन्तव्यों का दिग्दर्शन करा

(शेष पृष्ठ १६ पर)

पता:—'आर्यमित्र'
५ मीराबाई मार्ग, लखनऊ
फोन—१९१
तार—"आर्यमित्र

आर्यमित्र

रजिस्टर्ड नं० ६० एल
२८ अगस्त, १९५५

उपासना किसकी ?

[लेखक—श्री ब्रह्म स्वरूप जी एम० ए० ऐडवोकेट, मेरठ]

ईश्वरोपासना क्यों करें, किस की, कैसे करें ? इससे क्या लाभ करें तो कहा, यह जानना प्रत्येक प्रभु भक्त के लिए आवश्यक है। पाठक पढ़ें और मनन करें, और फिर करें प्रयत्न।

अपने अन्तिम लक्ष्य तक पहुंचने का, तभी कल्याण सम्भव है।

संसार के समस्त मत मतान्तर इस बात में एक मत हैं कि मानव को ईश्वर भक्ति करना आवश्यक है। चाहे एकेश्वर वादी हो अथवा बहु ईश्वर वादी, या केवल ईश्वर को मानते हों अथवा ईश्वर के अतिरिक्त अन्यों का भी अस्तित्व मानते हों। यही नहीं हमारे जैनी भाई भी जो ईश्वर को कर्ता नहीं मानते किन्तु कर्म को फल दाता मानते हैं वह कार्य की तथा ईश्वरत्व प्राप्त आत्माओं की भक्ति में विश्वास करते हैं नितान्त नास्तिक भी प्रकृति, (नेचर) की क्रियात्मक उपासना करने की आवश्यकता प्रतीत करते हैं।

किंतु इस सब में केवल एक ही कारण पर भिन्न मत हैं कि "ईश्वर या सर्व शक्तिमान सामर्थ्य का रूप क्या है"। जो उस शक्ति का जो रूप समझता है वह उसी विश्वास के अनुकूल सर्व शक्तिमान शक्ति की उपासना, स्तुति, प्रार्थना अथवा भक्ति करता है तथा करना बतलाता है। अब यह आवश्यक है कि उस शक्ति का स्वरूप क्या है ? इस पर विचार किया जाय।

ईश्वर का स्वरूप निर्णय

१— जो ईश्वर को अकेला तथा स्थान विशेष (चौथे या सातवें आस्मान) पर स्थित मानते हैं—

इस विश्वास के अनुसार ईश्वर की भक्ति, उपासना, स्तुति या प्रार्थना की सूचना उस प्रभु तक क्यों कर पहुंच सकती है ? उस प्रभु से हमारा सम्पर्क कैसे स्थापित होगा ? प्रलय काल में कहाँ वह बैठेगा और कहाँ कहाँ व्यक्ति ठहरेंगे। ये सब समस्यायें अनिर्णीत रह जाती हैं इनके साथ एक और कठिन प्रश्न भी आगे आता है। इस ऐसे ईश्वर ने एक शैतान भी भूत से बना दिया है। वह शैतान उसकी सृष्टि में उसके भक्तों को बहकाता फिरता है। किस अपने ही बनाये उस व्यक्ति (शैतान) को वश में करने की अथवा दण्ड देने की सामर्थ्य आज तक उस ईश्वर को प्राप्त नहीं हुई है। वरन् केवल अपने भक्तों को उससे बचाने की चिन्ता ही में वह ऐसे चिन्तित रहता है जैसे किसी बस्ती में डाकुओं के गिरोह के आने को अनायास सूचना पर भोले ग्राम वासियों की अवस्था हो जाती है। ईश्वर के इस स्वरूप में यह स्पष्ट पता नहीं चलता कि वह शरीरी है या अशरीरी अथवा साकार है या निराकार एक स्थानीय अथवा समय २ पर द्वन्द करने वाला होने से जो उसके शरीरी और साकार होने का आभास मिलता है किन्तु उसके लिये बने मंदिर से (मस्जिद तथा गिरजाघरों में उसकी कोई मूर्ति न पाकर विचारों में उस प्रभु के शरीरी होने के विरुद्ध विप्लव हो उठता है। वास्तव में यही कहना होगा कि इन विचारों के पोषक अपने ईश्वर के स्पष्ट स्वरूप को बता सकने में असमर्थ हैं।

२— जो ईश्वर का अस्तित्व ही नहीं मानते ऐसे महानुभाव भी प्रकृति (नेचर) का अध्ययन तथा उसका उपयोग और सदाचार ही का पालन अपना कर्तव्य मानते हैं। ये प्रकृति को मानव से ऊँची शक्ति मानते हैं और उस शक्ति के बल के आगे अपना सिर धुनते हैं। उनमें भी कोई उस शक्ति का पूरा रूप बताने में असमर्थ है। इन्हीं में हमारे जैन तथा बौद्ध भी आ जाते हैं। वह कर्म वासना के आधीन जन्म मरण का बन्धन तथा संसार से मुक्ति उनके त्याग में मानते हैं। किन्तु जिन व्यक्तियों ने अपने विचार के अनुसार अपना निर्वाण प्राप्त किया है उनकी तथा उपासना करते हैं। अब प्रश्न रह जाता है कि उन निर्वाण प्राप्त व्यक्तियों की आत्माओं ने स्थान करके निर्वाण प्राप्त किया या शरीरों से। यदि शरीरों से तो ऐसा वह भी नहीं मानते। शरीर तो सब के देखते नष्ट हो जाता है। उन निर्वाण हुए आत्माओं का और आकार की कोई मूर्ति नहीं। फिर अपने मन्दिरों में उपासना तथा पूजा किस चीज की होती है ?

३— जो ईश्वर को साकार तथा निराकार और अवतारी मानते हैं—

इनके विश्वास के अनुसार ईश्वर साकार (सगुण) तथा निराकार (निर्गुण) दोनों हैं। किन्तु प्रश्न है कि दोनों बातें एक साथ परस्पर विरोधी होने से एक स्थान में ठहर नहीं सकती, साथ ही साकार वस्तु सावयव तथा शरीरी होती है। और निराकार द्रव्य कदापि सावयव हो नहीं सकती। इतना ही नहीं गो स्वामी तुलसी दास जी के कथनानुसार भी साकार (सगुण) की उपासना करने वाला कभी मोक्ष नहीं पाता—

"सगुणोपासक मोक्ष न लहहीं।"

इस कारण भी संसार के जन्म मरण से मोक्ष चाहने वाले को साकार उपासना का त्याग ऐसे ही आवश्यक है जैसे अपामार्ग को रोग मुक्ति प्राप्त करने के लिये [illegible] त्याग।

४—एक विचार और भी चलता है। वह यह कि बिना मूर्ति के ध्यान क्योंकर लग सकता है। "निराकार और निर्गुण ईश्वर कैसे हो ?" यह वाक्य साधारण रूप से बड़ा आकर्षक प्रतीत होता है। किन्तु तनिक विचारते ही कपोल कल्पित की भाँति लोप हो जाता है, तनिक मेरे साथ विचार कीजियेगा—आपने यह लेख अब तक पढ़ा। और आप जो पढ़ रहे हैं, किन्तु पढ़ते समय कितने बार ध्यान आया कि अक्षरों का आकार रंग कैसा है ? अथवा कागज जिस पे अक्षर छपे हैं वह कैसा और किस रंग का है ? अथवा अक्षरों व शब्दों के बीच दूरी कैसी और कितनी २ है ? अर्थात् आपने इन शरीरी या सावयव वस्तुओं का कोई भी ध्यान न करके केवल उन भावों को लिया है जो आपके मस्तिष्क में इन अक्षरों या शब्दों से उठे हैं।

इतना ही नहीं। यह जो कुछ विचार और भाव आप पर हुए वे पहुंचे हैं, किन्तु कल्पना कीजिये कि आप दो मित्र बातें कर रहे हैं, अथवा कहानी सुना रहे हैं। उस समय आपके आकार व [illegible] को आपके सामने चित्र रूप से नहीं होते। [illegible] कदापि यह संभव न होगा कि जीभ से शब्द किस २ आकार के मुख से निकल रहे हैं व उनका किसने पर क्या रूप बनेगा। आप दो केवल उन भावों से प्रभावित होंगे जो उस कथनोपकथन से आपके मस्तिष्क में उत्पन्न होंगे। और इसी प्रकार जब आप ध्यान पूर्वक स्वयम् किसी समस्या पर विचार कर रहे होंगे तब भी यही अवस्था होगी।

इन सब से सिद्ध हुआ कि हमारे लिये कदापि कोई भाव, विचार, मनन आदि के लिए किसी मूर्त रूप की आवश्यकता नहीं है।

५—इस सबसे स्पष्ट है कि ईश्वर का रूप साकार नहीं है। वह एक देशीय नहीं है। वह सर्व शक्ति मान है। इस प्रकार हम उसे सर्व व्यापक और निराकार ही मान सकते हैं। और उसी की उपासना करना हमारा कर्तव्य है। साथ ही उपरोक्त से यह भी स्पष्ट हो गया कि निराकार की उपासना आत्मा का स्वभाव है। आत्मा को विचार तथा मनन व ध्यान के लिये मूर्ति की आवश्यकता कदापि नहीं है। निराकार की उपासना ही सच्ची ज्ञान पूर्वक उपासना है। जिसमें सर्व व्यापक अपने आत्मा में भी स्थित प्रभु से निकटता की अनुभूति करना बिना [illegible] के ही हो सकता है। इसके लिये न मंदिर मस्जिद गिरजा आदि ही की [illegible] आवश्यक है न कोई [illegible] केवल मनन और ध्यान [illegible] सम्बन्ध तथा विचार [illegible]—

हृदय के आकार में स्थित [illegible] प्रभु का अनुभूति किसी जगह भी [illegible] सकते हैं। ×   ×

दिया है। आगे पाठक वेदानुशीलकों का कर्त्तव्य है कि वे वेद को किस प्रकार का मान। हमारा आलोचना में कटुता अवश्य आई होगी। परन्तु हमारा ध्येय कटुता लाना नहीं था। प्रत्युत सिद्धान्त तत्व का स्पष्टीकरण ही हमारा ध्येय था। श्री प० जी वयो वृद्ध हैं विद्यावृद्ध हैं। हमारे वन्दनीय हैं, पूज्य हैं। उनको नमस्कार करते हैं।

[बाबूराम 'भारती' द्वारा [illegible] प्रेस [illegible] ५, मीराबाई मार्ग लखनऊ से मुद्रित तथा प्रकाशित

युग द्रष्टा महर्षि !

(१)

मानवता की दिव्य साधना और ज्ञान की रेखा,
तुमने दोनों को ही जीवन की भाषा में देखा,
आत्मा के उत्थान हृदय के विकसित जीवन क्रम को,
परखा अटल याग से नापा तुमने दृढ़ संयम को,
कबसे सोच रहा मेरा कवि तुमको दे क्या संज्ञा,
युग के द्रष्टा गति के स्रष्टा और मुक्ति में मज्ञा॥

धर्म सत्य से विमल संयमय हो बनता अविनाशी,
धर्म-रत्न के लिये मनुजता सीप सदा ही प्यासी
धर्म, एक साधना स्वार्थ पर जन मंगल की जय है
भेद भाव से ऊपर सच्चा आर्य-धर्म निर्भय है
दया और आनन्द समन्वय कितना मंगलदायी।
जीवन का आदर्श स्वर्ग के वैभव से सुखदायी॥

वेदों के निष्कर्ष सार को तुमने सहज बनाया,
तुमने पावन आर्य धर्म को आस्था से अपनाया,
मौन आदि ग्रन्थों को तुमने नव-युग की वाणी दी,
भाष्य, अर्थ संदर्भ, चेतना, भाषा कल्याणी दी,
दिव्य अतीत हुए पर तुमने लिख दी अमर कहानी।
जिसको युग-युग दोहरायेगी मानवता कल्याणी॥

आज पुनः युग आया तुमको देने को आमन्त्रण,
कोटि-कोटि कंठों ने फिर से किया आज अभिनन्दन,
आओगे तुम नहीं किंतु यह है विश्वास हमारा
सर्व सिद्धि तक पहुँचा देगा पावन पथ तुम्हारा,
मेरे इष्ट महर्षि कल्पना के यह विहग चितेरे।
श्री-पद तक पहुंचा देंगे भाव सुमन ये मेरे॥

मुझे न बाँधो

पाप पुण्य के दृढ़ बंधन से मुझे न बाँधो !

मिट्टी तो माध्यम कारण का और कर्म का
पथ पर चाकर शूल फूल कब मिल पाता है,
जड़ चेतन उपकरण सहायक बन जाते हैं
वृक्ष बीज का प्रतिफल है निश्चित नाता है
अब यह सब कुछ ज्ञात मुझे मुझको रहने दो
भावी के अप्रिय चिंतन से मुझे न बाँधो !

मैं वह ही करती जो कुछ अच्छा लगता है
मेरे अनुभव ने जिसको स्वीकार किया है
इसी कसौटी पर मैं सब कुछ कस लेती हूँ
मेरे मन ने इसको अंगीकार किया है
अच्छे लगने को ही मेरी रुचि रहने दो
व्यर्थ स्वर्ग के आकर्षण से मुझे न बाँधो !

मैंने केवल बुरा उन्हीं कर्मों को समझा
जिनको करने के पहले कर रुक जाता है
करने के उपरान्त स्वयं ही मेरा मस्तक
आत्म ग्लानि की आशंका से झुक जाता है
मत-वादों के खँडहर पर की मीनारों के
रागहीन निस्सार रुदन से मुझे न बाँधो !

बँधी हुई मैं स्वयं मनुजता के सूत्रों से
जो मेरी पशुता को बंदी कर लेते हैं
कालिदास की सरल उक्तियाँ कई गीत में
एक अनूप मर्म सहज ही भर देते हैं,
इस जग को भूला गलियों में भरमाने दो
पर दर्शनों के सूनेपन से मुझे न बाँधो !

विद्यावती मिश्र, लखनऊ

वैदिक प्रार्थना

ओ३म् आ याह्यद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिब ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ [illegible]
हे [illegible] के पालक ! ज्ञानेन्द्रियों के [illegible] ! [illegible] सोमरस के अधिष्ठाता, [illegible], [illegible] सुख और शान्ति के लिये इस रस का [illegible]॥

इस अंक के आकर्षण

सत्यार्थप्रकाश पाठ संख्या २३ अष्टम समुल्लास

ब्रह्माण्ड का वंश वृक्ष २

(सुरेशचन्द्र वेदालंकार, एम० ए० एल० टी० डी० बी० कालेज, गोरखपुर)

सत्व, रज और तम की साम्यावस्था प्रकृति से बुद्धि और अहंकार की उत्पत्ति हुई और इस प्रकार एकता से विविधता हुई। इस प्रकार जब अहंकार से मूल प्रकृति में विविध पदार्थों के निर्माण की शक्ति आ जाती है तब इस सृष्टि के विकास की दो शाखायें या श्रेणियाँ हो जाती हैं। एक शाखा को हम सेन्द्रिय शाखा कह सकते हैं और दूसरी को निरिन्द्रिय शाखा कह सकते हैं। निरिन्द्रिय वस्तुओं की अपेक्षा सेन्द्रिय वस्तुएं श्रेष्ठ हैं इसलिए इन्द्रिय शक्ति को सत्व गुण प्रधान कहते हैं और निरिन्द्रिय को तमोगुण प्रधान। इस प्रकार अहंकार के बाद जब सृष्टि का विकास होने लगता है तब एक बार तमोगुण का उत्कर्ष होता है और दूसरी बार सतो गुण का और इन्हीं के आधार पर सेन्द्रिय तथा निरिन्द्रिय सृष्टि की उत्पत्ति होती है। जिस समय सत्व गुण का उत्कर्ष होता है तब एक ओर पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियां और एक मन अर्थात् मूल भूत इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं। परन्तु जब तमोगुण का उत्कर्ष होता है तब निरिन्द्रिय सृष्टि की मूलभूत पंचतन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध की तन्मात्रा से अर्थात् बिना मिश्रण हुए प्रत्येक गुण के भिन्न भिन्न अति सूक्ष्म मूल स्वरूप—निरिन्द्रिय सृष्टि के मूल तत्व हैं और मन सहित ग्यारह इन्द्रियां सेन्द्रिय सृष्टि के बीज हैं। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि तन्मात्राओं से क्या तात्पर्य है। तन्मात्रा का यदि सरल भाषा में हम अर्थ करें तो इसका अर्थ होगा निरा (केवल)। सृष्टि के जितने भी पदार्थ हैं उनका ज्ञान हमें पाँच ज्ञानेन्द्रियों से ही होता है और इन ज्ञानेन्द्रियों में भी कोई ज्ञानेन्द्रिय ऐसी नहीं जो दूसरी ज्ञानेन्द्रिय के कार्य कर सके। अर्थात् नाक देख नहीं सकती, आँख छू नहीं सकती, कान सूंघ नहीं सकता त्वचा सुन नहीं सकती, जिह्वा से शब्द ज्ञान नहीं हो सकता। इस प्रकार पाँच ज्ञानेन्द्रियों के लिए पाँच ही गुण हो सकते हैं। छठी ज्ञानेन्द्रिय न होने से हमारे पास कोई दूसरा साधन नहीं, जिससे किसी दूसरे गुण का ज्ञान प्राप्त कर सकें। हाँ, इतना अवश्य है कि इन पाँच गुणों के अनेक भेद हो सकते हैं, छोटा, मोटा, नीला, पीला, खट्टा मीठा आदि। और सृष्टि में केवल शब्द, स्पर्श, रूप, रस या गंध के पृथक् पृथक् यानी दूसरे गुणों के मिश्रण रहित पदार्थ हमें दिखाई न देते हों पर मूल प्रकृति में 'निरा शब्द' निरा स्पर्श, निरा गंध, निरा रस और निरा रूप है। इसको दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि शब्द तन्मात्र (निरा स्पर्श तन्मात्र, रूप तन्मात्र), रस तन्मात्र और गन्धतन्मात्र हैं।

इसी प्रकार अहंकार से सत्वगुण की अधिकता से जो सेन्द्रिय सृष्टि बनती है अर्थात् पाँच ज्ञानेन्द्रियां, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और एक मन की उत्पत्ति होती है तब भी स्थूल इन्द्रियों की उत्पत्ति नहीं होती पर सूक्ष्म इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। अर्थात् अहंकार से पाँच सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रियां, पाँच सूक्ष्म कर्मेन्द्रियां और मन के ग्यारह भिन्न भिन्न गुण (शक्ति) सब के सब एक साथ स्वतन्त्र होकर मूल प्रकृति में उत्पन्न होते हैं और उससे स्थूल सेन्द्रिय सृष्टि होती है।

इनमें से मन ज्ञानेन्द्रियों के साथ संकल्प और विकल्प करके ज्ञानेन्द्रियों से ग्रहण किए गए संस्कारों को निर्णयार्थ बुद्धि के सामने उपस्थित करता है और बुद्धि जिस बात का निर्णय करती है। उस निर्णय को कर्मेन्द्रियों के द्वारा पूरा करना मन का ही काम है।

और पंचतन्मात्राओं से स्थूल पंच भूत का निर्माण होता है। यह है सांख्यों के अनुसार ब्रह्मांड का वंश वृक्ष जिसका स्वामी जी ने भी उल्लेख किया है। सरलता से इस विषय को समझने के लिए हम एक वंश वृक्ष भी नीचे दे देते है।

प्रकृति
- महान् अथवा बुद्धि
  - अहंकार
    - सात्विक सृष्टि या सूक्ष्म इन्द्रियां
      - पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ
      - पाँच कर्मेन्द्रियाँ
      - मन
    - निरिन्द्रिय सृष्टि
      - पंचतन्मात्राएं (सूक्ष्म)
        - पंच महाभूत (स्थूल)

इनमें से प्रकृति अव्यक्त है, शेष सब व्यक्त। दिक् और काल आकाश के अन्दर गिने जाते हैं। पुरुष जो पच्चीसवाँ तत्व है वह न किसी की विकृति है और न प्रकृति है।

इस प्रकार मूल अव्यक्त प्रकृति से सृष्टि के सब सजीव और निर्जीव व्यक्त पदार्थ क्रमशः उत्पन्न हुए। और जब सृष्टि के संहार का समय आ पहुंचता है तब सृष्टि रचना का जो गुण परिणाम क्रम बतलाया गया है ठीक उसके विरुद्ध क्रम से सब पदार्थ मूल प्रकृति में लीन हो जाते हैं।

मानवता का उपहास न कर

[श्री विद्याभास्कर शास्त्री, बरेली]

वसुधा के कण कण में तेरा न्याय कला का चित्र चमकता।
सर सरिता की धाराओं में तेरा चारु चरित्र चमकता॥
विश्व विजयिनी सत्य पताका नभ मण्डल में झूम रही थी।
हिमगिरि के उत्तुङ्ग शिखर को तेरी प्रतिभा चूम रही थी॥
आलस में पड़ करके प्रहरी! निज गौरव का नाश न कर।
युग युग के हे! निर्माता, तू मानवता का उपहास न कर॥

(२)

भूल गया क्यों, हल्दी घाटी की घटना की अमर कहानी।
भूल गया क्यों, वीर शिवा को, भूला क्यों झाँसी की रानी।
भूल गया क्यों, अपनी मस्ती, सोम सुधा के पावन प्याले।
भूल गया क्यों, अपनी वाणी के स्वर अपने राग निराले॥
सत्य अहिंसा का हे पुजारी! एटम बम की आस न कर।
युग युग के हे निर्माता! तू मानवता का उपहास न कर॥

(३)

ऊषा की लाली अरुणिमा को हे वीर! आज चेतन कर दे।
आज कलाधर की ज्योत्स्ना में अपनी ज्योति सुधा भर दे॥
अम्बर के अगणित तारों को अपने गौरव गान सुना दे।
सागर के सरल तरंगों को अपने वैभव, बलिदान सुना दे॥
विश्व विभूषित, सम्मानित, अपना दूषित इतिहास न कर।
युग युग के हे निर्माता तू मानवता का उपहास न कर॥

(४)

एक बार फिर से हे गायक! साम गान मस्ती में गा दे।
उपनिषदों का तत्व बता दे, गीता का सन्देश सुना दे॥
अग्नि बाण से सकल विश्व का आर्य वीर! सब पाप जला दे।
दानवता के दलन हेतु वह चक्र सुदर्शन आज चला दे॥
वैदिक दल के पथिक निराले! वेद ज्ञान का ह्रास न कर।
युग युग के हे निर्माता तू मानवता का उपहास न कर॥

(५)

अपना देश उजड़ता देखा, अपनी खाली झोली देखी।
विधवाओं की आहें देखीं, दुखियों की भी होली देखी॥
अपनी सूखी अन्तड़ियों को अपना माँस उबलते देखा।
क्या देखेगा और बता तू धू धू जग को जलते देखा॥
अपना घर तू आप जला अब गैरों का विश्वास न कर।
युग युग के हे निर्माता तू मानवता का उपहास न कर॥

(६)

आज स्वतन्त्र है तेरी नगरी तेरा उपवन तेरी गलियाँ।
विकसित फिर भी आज नहीं क्यों! वन के सुमन २ की कलियाँ॥
जन जन के मन मन्दिर में अब दीप खुशी के क्यों ना जलते।
ऊँचे ऊँचे महलों वालों के अब भी दिल क्यों न पिघलते॥
विप्लव का उठ बिगुल बजा अब 'भास्कर' अधिक विलास न कर।
युग युग के हे निर्माता तू मानवता का उपहास न कर॥

आर्यसमाज के समस्त पत्रों में सबसे अधिक छपने वाला आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

आर्य-मित्र

वर्ष ५७ — अंक २९

लखनऊ—रविवार ४ सितम्बर तदनुसार द्वि० भाद्रपद कृष्ण २ सम्वत् २०१२ सौर १८ भाद्रपद दयानन्दाब्द १३० सृष्टिसम्वत् १९७२९४९०

संपादकीय

आप चाहते क्या हैं ?

गत सप्ताह हमने लिखा था कि [illegible] की सब से बड़ी आवश्यकता आर्य समाज में प्राण प्रतिष्ठा की है ! सभी ने हमारे विचार से सहमति प्रकट की है किन्तु आगे बढ़ने के लिए निश्चित प्रकार अभी अस्पष्ट है और आज हमारा प्रश्न है कि आप चाहते क्या हैं ?

आर्य समाज के प्रत्येक सदस्य से, अधिकारी से, विद्वान्, नेता और माननीय सन्यासी से, हम यह जानना चाहते हैं कि वे वर्तमान स्थिति में इच्छा क्या रखते हैं ? क्या सभी ने मिल कर आर्य समाज को समाप्त करने की ही ठान ली है, क्या हमारे पास कोई कार्य-क्रम शेष नहीं रह गया है ? क्या हमारा बल और समय वास्तव में आर्य भावनाओं के प्रचार के लिए लग रहा है ? दीजिए सच्चाई के साथ हमारे प्रश्नों का उत्तर !

बताइए कितने अधिवेशनों में प्रचार कार्य को गति देने पर विचार होता है ? अंतरंग सभा हो या साधारण अधिवेशन, सभी का क्षेत्र केवल चुनाव और कागजी कार्यवाही तक ही सीमित है। क्या अपने क्षेत्र में वैदिक विचारधारा प्रसार के लिए कभी कोई योजना-कार्यक्रम बनता है ? क्या कोई भी कुछ आगे बढ़ने की सोच रहा है ? चारों ओर छाए विरोधी विचारों को समाप्त करने में क्या हम असफल हैं ? इस में दोष हमारा है या हमारे सिद्धांतों का ? इन प्रश्नों का उत्तर कौन सोचे ? किसी को समय ही कहाँ है।

हमें अत्यन्त निश्चित रूप में कहना है कि आज हमारा सारा बल केवल लकीर पीटने में लग रहा है, हम आपस में झगड़ने एक दूसरे पर कीचड़ उछालने और गद्दियों पर चिपटे रहने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर रहे ! हमारी शक्ति शून्य में विलीन हो रही है। और हम अपने स्वार्थों के लिए महर्षि दयानन्द के महान् लक्ष्य को स्वयं अपने हाथों कुचल रहे हैं। हम जानते हैं कि हमसे पूछने वाला कोई नहीं, हम पर अंकुश कोई नहीं, आर्य जनता है, वह भी बिचारी मत ही मत सुनने के सिवाय और कर ही क्या सकती है ? उसे चुनाव के अवसर पर संतुष्ट कर लेना ही पर्याप्त है। और कभी-कभी कार्य की असफलता का दोष उसके सिर मढ़ देना भी उसे ठंडा कर देने के लिए [illegible] रहता है।

किन्तु क्या यह स्थिति आर्य समाज के लिए कल्याण कर है ? क्या महर्षि के अनुयायी महान् दयानन्द के लक्ष्य को इस तरह समाप्त होते देखना सहन कर सकेंगे ? जिस ज्योति को दीप्त रखने के लिए शहीदों ने रक्त दिया था, क्या वह ज्योति स्वार्थ, पद-लोलुपता की आंधी से बुझने दी जाएगी ? सोचें समझें और विचार करें कि क्या होना चाहिए ? यह तो निश्चित है, सब सम्मत है कि जो हो रहा है वह उचित नहीं, आगे बढ़ाने वाला नहीं। किन्तु मार्ग क्या हो ? इसी पर आकर सब रुक जाते हैं -

हमारा निवेदन है कि महर्षि के लक्ष्य को आगे बढ़ाने और युग परिवर्तन के लिए आर्य समाज में क्रांति की आवश्यकता है। वर्तमान कार्य प्रणाली के होते हुए किसी भी सूक्ष्म [illegible] नहीं रहा जा सकता ! [illegible] दोनों से ओत प्रोत व्यवहार से हम काम नहीं चला सकते ! आर्य समाज को गति देने के लिए आवश्यकता ऐसे वीरों की है जो मिट सकें, जल सकें समाप्त हो सकें, इसलिए कि आर्य समाज की ज्योति दूर-दूर तक फैले ! कार्य में केवल अड़ंगे लगाने वाले व्यक्ति किसी भी मूल्य पर अधिकारी न बनाये जाने चाहिए ! अधिकारी और कार्यकर्त्ता का भेद समाप्त हो जाना चाहिये ! सब उपदेशक, विद्वान्, कार्यकर्त्ता मिल कर बैठें, एकत्रित हों, निश्चित रूप से एक वर्ष का कार्यक्रम बनाया जाए, जो उस कार्यक्रम को पूरा करने का व्रत ले, सर्वस्व की आहुति देकर भी जो आगे-आगे बढ़ने की कामना लिये हो, उसे प्रधान बनाएं, मंत्री बनाएं, संचालक बनाएं। जो काम न कर सके, त्याग न कर सके, वह भले ही कितना भी महान् क्यों न हो, उसे कोई अधिकार देना अपनी जड़ों पर कुल्हाड़ी मारना है।

हमें यह कभी न भूलना चाहिये कि आर्य समाज वह धार्मिक संस्था है जिस का उद्देश्य संसार में वैदिक व्यवस्था स्थापित करना है, वैदिक व्यवस्था में मूल्य त्याग का है—वहां निष्क्रिय के लिए कोई स्थान नहीं है। जो भी त्यागी हो, ज्ञानी हो, आदर्श हो (कर्म से) सभी का मस्तक उसके चरणों में झुका रहना चाहिये। आर्य समाज से सम्बन्धित सभी व्यक्ति समान हैं। जिसका कर्तव्य अधिक है उसका मान अधिक है इस आधार पर प्रेम से, सहयोग से एक साथ चलने की भावना से, कार्य चलाया जा सकता है।

कार्य-योजनाएं असफल रहेंगी जब तक कि हमारी मनोवृत्ति में यह आधारित परिवर्तन न हो जाएगा। इसके बाद तो एक वर्ष में प्रान्त का, क्या देश का काया पलट किया जा सकता है। अभी तो हमें अपनी शक्ति का ज्ञान ही नहीं हुआ। हम भूल गये कि हमारे पास वह सत्य बल है जिस की कभी हार नहीं होती। साथ ही हम में आत्म-लघुता की भावना भी घर कर गयी, हमारी महत्वाकांक्षाएं, हमारा महान् लक्ष्य—सभी कुछ विस्मृत हो गया, रह गयी केवल आत्म प्रशंसा, आत्मवंचना और इसका परिणाम भी जो होना चाहिये था वही हो रहा है।

हमारे इस लेख को पढ़ कर संभव है बहुत से हमारे मान्य व्यक्ति रुष्ट हो जाएं, किन्तु हमारा नम्र निवेदन है कि यह सभी कुछ हम किसी पर आक्षेप या आलोचना के भाव से नहीं लिख रहे हमारी चाह केवल आर्य समाज की लक्ष्य पूर्ति है। हम सभी से पूछते हैं कि बताइए क्या आज के मार्ग से लक्ष्य पूर्ति हो सकेगी ? यदि नहीं तो क्या हम अपनी जिद से आर्य समाज को गिराने में भी न हिचकिचाएंगे? सोचिए, एकान्त में बैठकर सोचिए और [illegible] कि क्या आप ठीक मार्ग पर हैं ?

प्रश्न अत्यन्त स्पष्ट [illegible] है कि आप चाहते क्या हैं ? आर्य समाज [illegible] हो आप या लक्ष्य की ओर अग्रसर हों ? यदि आप चाहते हो कि लक्ष्य की ओर बढ़ें, तो बताइये, कि क्या वह आज बढ़ पा रहा है. यदि नहीं तो बताएं कि कैसे बढ़ सकता है ? वह जैसे भी बढ़े वही मार्ग अपनाना चाहिए केवल यही हमारी चाह है, मांग है। यदि आप हमारी इस चाह से सहमत हों तो रुष्ट

मनुष्य

है वही मनुष्य सत्य विश्व मान ले, जो परोपकार को स्वधर्म जान ले।

जो कि मजु मौन मनन धर्म का धनी-सुदीन दु:ख दलन को प्रदीन अग्रणी
जो पुनीत प्रीति का पराग ले गुनी, बांट दे विचार क्रांति का विमान ले।

छल प्रपंच पङ्क में प्रवेश नहिं करे, विनाश दस्यु दुष्ट का सदा किया करे,
अधर्म औ अनीति से कभी नहीं डरे अन्याय के विरुद्ध शुद्ध युद्ध ठान ले।

भले अनाथ गुण रहित जो असक्त हो, दीन हीन हो मलीन जग विरक्त हो
किन्तु सत्य से प्रपूर्ण धर्म युक्त हो, सुजान की सहाय मूल मंत्र मान ले।

भले सनाथ गुण सहित जो सशक्त हो-नृपाल चक्रवर्त्ति के समान शक्त हो
किन्तु जो असत्य औ अधर्म युक्त हो समूल नाश के लिए सुठान ठान ले।

प्रताप पुण्य शील का न रथ कभी रुके, सुकर्म कीर्ति-केतु नहीं रंच भी झुके
अनीति अन्धकार में न नीति-रवि लुके स्व धारणा-समाधि में सुधार ध्यान ले।

हो प्रशस्य याकि निन्द्य दिगदिगन्त में रहे स्वगेह सम्पदा कि वन वनान्त में
मृत्यु आज आ रही कि युग-युगान्त में सुन्याय-पन्थ से न चरण हार मान ले।

रहे उदार भाव की समोद अर्चना-समस्त व्यर्थ सिद्ध की सगर्व वर्जना
करे महर्षि सिन्धु के समक्ष गर्जना-मनोज्ञ मातृ भूमि आज प्राण त्राण ले।

...रत्या नहीं और यदि सहमत न ...र फिर रुष्ट हो जाएं तो हमें किसी की भी रुष्टता का डर नहीं। हमारा कर्तव्य कहता है कि किसी भी मूल्य पर महर्षि द्वारा आरम्भ किया कार्य रुकना न चाहिए। जो इस कार्य के समर्थक होते हुए भी कार्य सिद्धि में व्यवधान बन रहे हैं वे कर रहे हैं महान अपराध, जिसकी किसी अन्य से तुलना नहीं, यह हमारा स्पष्ट निवेदन है।

आज समय निष्क्रिय होकर बैठने का नहीं, अपितु शक्ति के साथ विश्व की सारी व्यवस्थाओं में आमूल चूल परिवर्तन का है। देरी, मृत्यु को निमन्त्रण है इसलिए हमारी प्रार्थना है कि अपने राष्ट्र और विश्व के कल्याण के लिए हम सत्य ज्ञान त्याग और साहस का बल लेकर उठें-चलें ताकि संसार के हर मन पर मन्दिर मस्जिद और गिर्जाघर पर ओ३म् की पावन पताका लहर-लहर लहराये! यह महर्षि का लक्ष्य था और हमारी चाह है ··किन्तु आप क्या चाहते हैं······यह आप जानें॥

दैनिक मित्र के बारे में

२८ मार्च से दैनिक आरम्भ हुआ था, इस बात को पांच माह से भी अधिक बीत गए, वह चला, चल रहा है और तनिक से भी परिवर्तन से वह और भी अच्छी प्रकार चल सकता है। ४ सितम्बर को कानपुर में आर्यप्रतिनिधि सभा की अंतरंग सभा हो रही है। दैनिक के सम्बन्ध में भी इस दिन विचार होगा····· हम तो अपने मान्य अंतरंग सदस्यों से यह कहना चाहते हैं कि वे इसे और भी अच्छे रूपमें चलाने का यत्न करें।

अपनी अल्प सामर्थ्य और शक्ति से जो थोड़ा बहुत बन पड़ा, इसके लिए हमने यत्न किया, किन्तु अपनी दुर्बलताओं का हमें ज्ञान है, अब योग्य हाथों द्वारा, योग्यता पूर्वक मित्र की उन्नति होनी चाहिए। जो भी सफलता अब तक मिली है सच्चाई, ईमानदारी से उसका श्रेय यदि किसी व्यक्ति को दिया जा सकता है तो वे हैं प्रांत के प्रधान मन्त्री, श्री कालीचरण जी आय हमें अत्यन्त समीप से उन्हें देखने का अवसर मिला और उसी आधार पर हम बिना संकोच कह सकते हैं कि आर्य समाज की इतनी लगन, इतनी ऊँची भावनाएं, और स्वार्थ त्याग का इतना उदात्त आदर्श १-२ को छोड़ हमें कहीं भी तो नहीं मिला।

हम कुछ भी कर सकने में असमर्थ थे यदि उनका हार्दिक सहयोग हमें प्राप्त न होता। हमने अनुभव किया कि उन्हें कार्य की चिन्ता है, शुभ परिणाम की इच्छा है और भावना है कि जैसेभी हो महर्षि का लक्ष्य पूरा हो। कभी पक्षपात नहीं, भेद भाव नहीं, काम-काम और काम, यह उनके जीवन का मूल मंत्र है।

व्यक्ति जब अपने को समष्टि में खपा देता है तो समाज ऊंचा उठता है। दोष निकालना, कीचड़ उछालना और किसी को गिराना आसान है पर काम करना, कुछ कर दिखाना अत्यन्त कठिन है। पहले दैनिक निकालना असंभव दीखता था ··वह निकला, चल रहा है··चल सकता है परशर्त केवल एक·· यदि आपने सहयोग नहीं भी दे सकते तो कम से कम रुकावट भी न डालें कैसे भी चले, कोई भी चलाए, हर्ष होगा और हम इसकी उन्नति के लिए पूर्ण सहयोग देते रहेंगे! हमारी चाह केवल एक है जो पहले भी हमने व्यक्त की थी जिस पर हम से कुछ माननीय व्यक्ति रुष्ट भी हो गए थे, किन्तु आज हम अपनी चाह पुनः दुहराना चाहते हैं कि जैसे भी हो प्रत्येक मूल्य पर 'दैनिक मित्र चलना ही चाहिए। किसी के भी सम्पादन या संरक्षण में चले इससे हमें मतलब नहीं, यह सभा जाने, पर चलना चाहिये और अच्छे रूप में चलना चाहिये।

परमात्मा करे कि कानपुर में बैठकर प्रान्तभर के प्रतिनिधि प्रेम और सहयोग से मिलकर दैनिक की उन्नति-विस्तार और प्रगति के लिये यत्न करें दैनिक का चलना आर्य समाज के जीवन का प्रतीक है और बन्द होना···मृत्यु का! जीवन सभी चाहेंगे ··यही विश्वास है।

विदेह जी पर प्रतिबन्ध

२८-८-५५ को सार्वदेशिक की अंतरङ्ग सभा ने श्री विद्यानन्द जी विदेह के लिये आर्य समाज की वेदी बन्द कर दी है। और जनता को आदेश दिया है कि वह किसी भी प्रकार का सहयोग उन्हें न दे। गत सप्ताह हम विस्तार से विदेह जी के बारे में लिख चुके हैं। सार्वदेशिक सभा ने यह प्रतिबन्ध लगा वास्तव में एक भयंकर संकट से समय रहते सावधान हो जाने का स्तुत्य कार्य किया है!

अब जनता का यह कर्तव्य है कि वह अनुशासन का पालन करती हुयी विदेह जी का पूर्ण बहिष्कार करे। हमें यह दुःख है कि श्री विदेह जी ने स्वार्थ को छोड़ना उचित न समझा··अतः आर्यसमाज को विवश हो उन्हें छोड़ने का निश्चय करना पड़ा।

परमात्मा करे कि वह दिन शीघ्र आए जब विदेह जी सच्चे हृदयसे अपनी भूलों पर पश्चाताप कर महर्षि के सच्चे शिष्य के रूप में त्याग भावना से आर्य समाज में आएं, हम प्रतीक्षा करते रहेंगे।

आर्य वीर दल की स्थापना

आजयह प्रश्न सभी उठाते हैं कि नवयुवकों का आर्यसमाज के प्रति आकर्षण निरन्तर कम हो रहा है। इसका क्या उपाय? उपाय तो प्रायः सभी जानते हैं किन्तु उसे रचनात्मक रूप देने के लिये कोई तैयार नहीं। वह उपाय है आर्य वीर दल की स्थापना, प्रसार। हमने जहां भी आर्यवीर दल को चलते हुये पाया है वहीं पर नया रक्त-जीवन और उत्साह दिखायी पड़ा है। यदि हमारा अनुमान ठीक माना जाय तो हम कह सकते हैं कि अबतक हजारों युवकोंको आर्य धर्म में दीक्षित करने का श्रेय आर्यवीर दल आंदोलन को है। यह आंदोलन युवकों को धर्म की ओर आकर्षित करने का, उनमें बौद्धिक द्वारा मानवता व निर्बल की रक्षा के भाव भरने का सफल-साधन सिद्ध हुआ है।

हमारी इच्छा है कि प्रत्येक उस स्थान में जहां आर्यसमाज स्थापित है आर्यवीर दल की स्थापना अविलम्ब कर दी जाये, आगामी दीपमाला से पहले भारत का कोई समाज ऐसा न होना चाहिये जहाँ आर्यवीरदल न हो। किन्तु साथ ही यह और भी आवश्यक है कि आर्यसभायें इसे संरक्षण पोषण और पूरा सहयोग प्रदान करें— वे यह समझें कि यह हमारा विभाग जहां सच्चे क्षात्र धर्म की भावना प्रसारित करेगा, वहां यह युवकों के जीवन में एक नयामोड़ भी उपस्थित कर देगा।

इसलिए हम सोचें कि भारतके भावी निर्माता नव युवक, जिन पर राष्ट्र का उत्थान—पतन निर्भर है, यदि वैदिक विचारधारा के समर्थक बन जाएंगे, तो हमें कितना बल प्राप्त हो जाएगा और हम बढ़ सकेंगे आगे····लक्ष्य की ओर।

ईसाइयों का इलाज

लंबे समय से ईसाईमिश्नरियों की गति विधि चर्चा का विषय बनी हुयी हैं। अभी हाल ही में हुए नागा प्रदेश के उपद्रवों में भी इन्हीं विदेशी मिश्नरियों के षड्यंत्र का हाथ पाया गया है। इनकी सरगर्मियां तेजी के साथ बढ़ रही हैं और अत्यंत खेद की बात है कि जितनी तेजी से यह बढ़ रहे हैं उतनी ही तेजी से हम शिथिल होते जा रहे हैं।

देश के एक छोर से दूसरी ओर तक इनका जाल छाया हुआ है। धन-जन-त्याग के सहारे यह निरन्तर सफलता प्राप्त करते आ रहे हैं और इनकी चालों के घातक परिणाम भी अब स्पष्ट होते जा रहे हैं। पर हम ऐसी गहरी निद्रा में सोए हैं कि नींद अभी तक खुलने में नहीं आती। पर क्या इस निद्रा का परिणाम भी कभी हम सोचते हैं? पहली भूलों का परिणाम हम पाकिस्तान के रूप में प्रत्यक्ष देख चुके, फिर भी पहले ही मार्ग पर चलते जाना क्या बुद्धि मानी है? आवश्यक यह है कि सारा देश इस संकट के तूफान को अनुभव करे और तब कर यत्न इसे रोकने व इसे समाप्त करने का! विधर्मी असत्य पर आधारित भारत में आकर सफलता प्राप्त कर लें और हम निरंतर पीछे हटते जाएं, इससे अधिक लज्जा की बात हमारे लिए और क्या हो सकती है। हमारी इच्छा है कि आने वाले दिनों में ईसाईमत के विरुद्ध तीव्र आन्दोलन चलाया जाए। किन्तु इससे पहले संपूर्ण देश में अपने कार्यकर्ताओं का दृढ़ संगठन बनाना होगा। समय की मांग को ठुकरा कर हम जीवित न रह सकेंगे यह सभी को हृदयङ्गम कर लेना चाहिए। × ×

महर्षि!

आदि मनुज से सुन्दर तम तुम,
आदि प्राण से, सुन्दर प्राण।
तुम मानव थे, युग मानव था,
मानवता के ही अभिमान!
तुम अद्भुत थे, शाश्वत कवि की,
मंजुल। वीणा के मधुगान।
तुममें झाँक रहा था साधक;
सतयुग का अभिनव प्राकृत।
बीच भंवर जग नाव पड़ी थी,
तुम ही खेव सके पतवार!
हे युग स्रष्टा! हे युग द्रष्टा!
हे युग गौरव! युग आधार!

राकेश 'साहित्यरत्न'

उच्च आदर्श

पूना, ३१ अगस्त। ज्ञात हुआ है कि श्री मती माला बाई फड़के जो सर्वदलीय गोवा विमोचन समिति की ओर से गोवा में सत्याग्रह करने गई थी, लौट आई है और यत्र तत्र कीर्तन द्वारा १०००) रुपया प्राप्त करके गोवा सत्याग्रह के लिये समिति को दान कर दिया है।

स्मरण रहे कि इसी प्रकार से सुधा बाई जोशी ने भी किया था जो इन दिनों पञ्जिम जेल में हैं। उन्होंने भी गोवा में सत्याग्रह किया जिन्हें बाद में पुर्तगालियों ने छोड़ दिया। वह एक प्रसिद्ध कीर्तन कार हैं और धर्म में उनकी बहुत आस्था है।

एक ओर तो ऐसी महिलायें हैं और दूसरी ओर कुछ पुरुष भी हैं जो नित्य अन्याय, चोरी शोषण तथा अनर्थ करते हुये मानवता पर लम्बे चौड़े भाषण दिया करते हैं। ईश्वर की सृष्टि की यही विचित्रता है।

क्या यही मजदूरोंका राज्य है?

[ले०—श्री आचार्य नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ सदस्य विधान सभा]

मध्यवर्ती समिति के काम

इस समिति का काम है कि—

(१) कायदे कानून बनाना।

(२) उनको चलाना।

(३) सब्य प्रबन्ध करना।

जब समस्त अधिकार मध्यवर्ती समिति के हाथ में हैं तब सुप्रीम सोवियेट किस रोग की औषधि है यह समझना कठिन है।

(१) सरकारी भत्ते खाकर अधि वेशनो में उपस्थित रहना।

(२) इधर उधर सैर सपाटे लगाना

(३) मौजें कूटना।

यही तो काम रह जाता है। हाँ दिखावे के लिए भिन्न भिन्न पक्ष के लेबल लगाने वालों को इने गिने लोगों को, बोलने की अनुज्ञा मिल जाती है।

यह भी एक तमाशा है

सोवियेट घटना के सदृश सुप्रीम सोवियेट के भी चेम्बर्स (सभाएँ) हैं। उनमें से 'सोवियेट ऑफ यूनियन' के ७०८ सदस्य होते हैं। और 'सोवियेट ऑफ नेरानेलिटीज" के ६३९ सदस्य रहते हैं। इनके वर्ष भर में दो ही अधिवेशन होते हैं। नियमों से यह सुस्पष्ट है किन्तु यह देखते आश्चर्य होता है कि अब तक इतने वर्षों में इनके केवल दो ही अधिवेशन हुए।

युद्धोत्तर काल में जो अधिवेशन हुए वे सात ही दिन में समाप्त हुए, सब से छोटा अधिवेशन हुआ १५ मार्च १९५४ ने जो कि १ घण्टे और सात मिनिटो में ही समाप्त हुआ पिछले दश वर्ष की जाँच पड़ताल से तो यह ज्ञात होता है कि इतनी बड़ी अवधि में रशियन लेजिस्लेटिव एसेम्बली में केवल पचास दिन ही काम हुआ। किन्तु इतनी कम अवधि में प्रस्तावों और निश्चयों की संख्या कम से कम तीन चार गुणा तो होगी ही और आश्चर्य यह कि सब प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुए।

नियम के अनुसार "सुप्रीम सोवियेट" के दो चेम्बर्स के प्रतिनिधि अपने अपने प्रदेश के वोटरों द्वारा चुने जाने चाहिएँ पर देखने से ज्ञात होता है कि ये चुनाव कोरे तमाशा ही होते हैं।

उम्मेदवार खड़े करने का चाहे किसी पक्ष का उम्मीदवार क्यो न हो ठेका कम्यूनिस्ट पक्ष के हाथ में ही रहता है।

उम्मेदवारों की एक ही फेहरिस्त तैयार की जाती है।

सच्चा अधिकारी किसके हाथ में है ?

अब यह देखिए कि सुप्रीम सोवियेट का अधिवेशन किस प्रकार शुरू होता है। प्रारम्भ में प्रत्येक चेम्बर का अध्यक्ष एजेंडा तैयार करता है किन्तु उस एजेंडा (विषय सूची) में केवल तीन ही विषय रहते हैं—

(१) परराष्ट्रीय नीति निर्धारण।

(२) प्रेसीडियम के आदेशों को अनुमति देना।

(३) राष्ट्रीय अथवा स्थानिक एजेंडों (अर्थ संकल्पों) का मञ्जूर करना।

लोग समझते होंगे कि रशिया जैसे विस्तृत देश में जिसमें अनेक अपने ही राष्ट्रों के पेचीदा प्रश्नों की उलझने भी रहती हैं वाद विवाद बहुत दिनो तक चलते रहते होंगे। अन्य देशो के राष्ट्रों में बजटादि के वाद-विवाद में महीनो लग जाते हैं पर रशिया में सब कुछ विचित्र ही विचित्र देखियेगा।

१९५३ में

बजट का अधिवेशन पाँच दिन में ही समाप्त हुआ। और ठीक ही है सरल भी है। जब मतभेद नहीं, वाद विवाद नहीं, पक्षोपपक्ष नहीं, वहां तो ये पांच दिन भी अधिक हैं।

संघटना के नियमानुसार सुप्रीम सोवियेट को बहुत अधिकार प्राप्त हैं। सुप्रीम सोवियेट का प्रेसीडियम, मिनिस्टर्स काउन्सिल, बनाने का उसी का अधिकार है, वही सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों और प्रासीक्यूट जनरल को नियत करता है। अन्य राष्ट्र के साथ की गयी सन्धियों को मंजूरी देना अथवा ना मंजूर करना, इसी सुप्रीम सोवियेट का काम है। युद्ध की घोषणा करना, सुलह करना, राष्ट्रीय बजट को स्वीकार अथवा अस्वीकार करना, कर लगाना घटाना, बढाना, कृषि-नियोजन, आरोग्य शिक्षण, आदि आदि सभी बड़े महत्व के अधिकार इसी के हैं। यह सब कुछ होते हुए भी सुप्रीम सोवियेट द्वारा प्रस्थापित "प्रेसिडियम" ही समस्त अधिकारों को हथियाये हुए हैं।

प्रेसीडियम

प्रेसीडियम में केवल ३३ सदस्य रहते हैं।

१ चेयर मैन।

२ सेक्रटरी।

१६ वाइस चेयर मैन।

१६ प्रत्येक रिपब्लिक का एक एक प्रतिनिधि

१४ सहायक मेम्बर (इनकी गिनती ही किस में है ?)

यह सब कुछ कागज में ही लिखा रहता है पर व्यवहार सब विपरीत ही रहता है। सच देखा जाय तो सेण्ट्रल कमेटी ही प्रेसीडियम के सदस्यों का निर्वाचन करती है। सुप्रीम सोवियेट देखती की देखती रह जाती है। प्रेसीडियम जो करती है उस पर केवल सुप्रीम सोवियेट की मोहर लग जाती है बस! करना धरना कुछ नहीं।

अब तक सुप्रीम कोर्ट ने पचासों बार सुप्रीम सोवियेट की परवाह न करके नियमों का भी उल्लंघन कर मनमाना वर्ताव किया है। १९४९ के आस पास सुप्रीम सोवियेट के चुनाव होने वाले थे। उस समय प्रेसीडियम ने वोटरो की वोट देने के लिए आयु मर्यादा बढ़ाने का निश्चय किया और सुप्रीम सोवियेट को पूछे बिना ही वैसा कानून बना डाला और उस पर अमल भी शुरू हुआ।

सोवियेटस विधान के १४६ वी धारा में कहा गया है कि संविधान में कोई दुरुस्ती अथवा परिवर्तन करना हो तो ऐसा अधिकार केवल सुप्रीम सोवियेट को ही है। केवल शर्त यह है चेम्बर्स के दो तिहाई सभासदो की राय उसके साथ हो। परन्तु

१९४० में क्या हुआ

सुप्रीम सोवियेट ने सोवियेट संविधान की ११९ वीं धारा के अनुसार समस्त रशिया में ७ घण्टे का दिन (मजदूर किसानो के काम का) मानने का आदेश दिया और ७ तक इस आदेश का पालन होने के पश्चात् प्रेसीडियम ने घोषणा की कि आठ घण्टे का दिन माना जाय और कई वर्ष तक उस पर भी अमल होने के पश्चात सुप्रीम सोवियेट की मन्जूरी के लिए ऊपर कागज पत्र भेजे गये। अन्धेर खाते का अच्छा खासा नमूना है।

किन्तु प्रेसीडियम रूपी बकरी के कान जिसके हाथ मे रहते हैं वह है कम्युनिस्ट पक्ष की सेण्ट्रल कमेटी। वही प्रेसीडियम के कान जैसे चाहे मरोड़ सकती है।

१९३९ में

कम्यूनिस्ट पक्ष की अठारह वी कॉंग्रेस ने तीसरी पंचवर्षीय योजना को मंजूर किया और इस विषय मे सुप्रीम सोवियट अथवा प्रेसीडियम को पूछा तक नहीं—अच्छी धाँधली रही।

इन सब बातों से पता चलता है कि 'किसान मजदूर राज' का नारा लगा कर संसार को भ्रम मे डालने वाला रूस किस प्रकार की तान शाही बरत रहा है। जब खुलम खुल्ला तानाशाही चलानी ठहरी तब यह संविधान, ये चुनाव ये विविध सभ एँ, ये धारा सभाए इनका क्या अर्थ ? कोरे नाटक ही समझिए।

इसका उत्तर [illegible] ने ही १९५० में दिया था [illegible] आप का कहते हो वो [illegible] है। परन्तु संसार का मत [illegible] कोइ वस्तु है हां उसी ढंग की [illegible] उन वाले बिना काम भी [illegible] चलता उस पुरानी बूढी अन्धी खास के अत्या चारों को कब तक सहाज ना। 'मतलब साम्राज्य वाद से प्रवीन होना है।

हमारा भारत वर्ष का संविधान पाश्चात्य विविध प्रजातन्त्र प्रणालियों का 'सत' सार है। इसलिए हम भी 'किसानों के राज' की बात करते रहते हैं। पर नारा कोई लगाइये संसार का अनुभव बतला रहा है—इतिहास बतला रहा है कि संसार मे सदा—सभी प्रकार की परिस्थितियों मे बुद्धिजीवियों ने अनेक खेल, अनेक रूपम, अनकढङ्ग से खेले हे और खेलते चले आये हैं। यदा—कदा किसानो मजदूरों मे से कोई बुद्धिशाली उठा, आगे बढा, सत्ताारूढ होकर शासन करने लगा, तो उसको बुद्धि का ही खेल समझना चाहिए वह किसी अंश मे भी किसान मजदूरो का राज नहीं हो सकता, न ही माना जा सकता है। संसार में सब प्रणालियो [illegible], राष्ट्रों मे चाहे नारे कुछ हो [illegible] ब्रेन ट्रस्ट अर्थात् किन्ही [illegible] के बुद्धि का खेल ही [illegible] रहता है और लोग पीछे हो लेते हैं ?

हमने पाश्चात्य ढग का प्रजातन्त्र अपनाया है सही, अपना संविधान बनाया है सही [illegible] वयस्क (बालिग) मताधिकार द्वारा अधिकार प्राप्त [illegible] तो भी हमारे इस बडे प्रजातन्त्र मे भी ब्रेन ट्रस्ट ही तो काम कर रहा है। नियमानुसार चुनाव होते है, ऊपर असम्बली, विधान परिषद्, लोक सभा राज्य परिषदो मे प्रतिनिधि जाते है, सरकार बनती है, विधान बनते हैं [illegible] कुछ होता है सही तो भी [illegible] बुद्धिमान् लोग अनुभव [illegible] है कि ऊपर के उच्चकोटि के बुद्धि [illegible] नेता चाल न करें, मार्गदर्शन न करायें तो यह प्रजातन्त्र का खेल थोडे दिनों का ही खेल रह जायगा।

क्यों कि

अभी हमारे देश के वोटरो में स्वतन्त्र रूप में निर्भय होकर स्वमत

[शेष पृष्ठ १२ पर]

छात्रों में अनुशासनहीनता के कारण

गुरुकुल प्रणाली ही एकमात्र हल

[लेखक—श्री गोपालशरण 'विद्यार्थी' एम० ए० बरेली]

विगत काफी समय से छात्रों की बढ़ती हुई अनुशासनहीनता के विषय में सरकार से जनता से, तथा अध्यापकों से सुनने को मिलता रहता है। इस प्रकार के समाचार आना भी अब कोई नई बात नहीं, कि आज अमुक अध्यापक के प्रति छात्रों ने दुर्व्यवहार किया; कोई भी समाचार पत्र हो या पत्रिका, छात्रों के विषय में यह रोना आपको यदा कदा देखने को मिल ही जावेगा। केवल इतना ही नहीं, कुछ लोग तो छात्रों की इस अनुशासनहीनता को राष्ट्र की प्रमुख समस्याओं में गिनने लगे हैं।

एक और उल्लेखनीय बात, और वह यह, कि इस सम्बन्ध में सरकार, जनता तथा अध्यापक तीनों का दृष्टिकोण एक दूसरे के प्रतिकूल बैठता है। कोई किसी को दोष देता है, और कोई किसी को। कौन ठीक है, कौन नहीं, इसका विश्लेषण करने की कभी आवश्यकता ही नहीं समझी गई। अनेक लेख हमारे समक्ष आ चुके हैं परन्तु शायद ही कहीं सिवाय समस्या की गम्भीरता को दर्शाने के अतिरिक्त इसके कारणों तथा सम्भावित हलों पर प्रकाश डाला गया हो।

यह एक मोटी सी बात है, कि जब तक विद्यार्थी के अन्दर अध्यापक के प्रति आदर तथा श्रद्धा का भाव नहीं होगा, तब तक अनुशासन में रहने की भावना उसमें नहीं आ सकेगी। अब हमें यह देखना है, कि वह कौन सी बातें हैं जो विद्यार्थी के अध्यापक के प्रति आदर तथा श्रद्धा के भाव लाने के बीच में बाधक बन खड़ी होती हैं। गम्भीरता से दृष्टिपात करने पर हम ४ कारण प्रमुख इसके मूल में पायेंगे —

(१) शिक्षा प्रणाली का दोषपूर्ण होना।

(२) विद्यार्थियों के लिये विशेष रूप से बनाये जाने वाले चित्रों के अभाव में गन्दे चलचित्रों द्वारा विद्यार्थियों में उद्दण्डता का प्रचार।

(३) अध्यापकों की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय होना।

(४) राज्य द्वारा शिक्षा के राष्ट्रीयकरण न होना।

किस प्रकार यह कारण विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता पैदा करते हैं, इसका स्पष्टीकरण कराना हमारे इस लेख का प्रमुख उद्देश्य है।

पहले पहला कारण ही ले लीजिये। यदि ध्यानपूर्वक देखा जावे, तो हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली, जिसमें लेशमात्र भी भारतीयपन नहीं है, इतनी दोषपूर्ण है, कि विद्यार्थियों को आरम्भ से ही अनुशासन-हीनता का पाठ पढ़ाती है। एक छोटी सी ही बात लीजिये। हमारी भारतीय प्रणाली या गुरु शिष्य परम्परा में गुरु के स्थान का महत्व दिखाने के लिए यह नियम था, कि गुरु को सर्वथा बैठने के लिये ऊँचा आसन दिया जाता था, और विद्यार्थी उसके स्थान से नीचे बैठते थे। छोटे से छोटा बालक भी जब अपने गुरु के आश्रम में प्रविष्ट होता, तो इतनी सी बात सहज से ही उसकी बुद्धि में आ जाती थी, कि गुरु का स्थान उस से ऊँचा है, उसका उसको आदर करना है। यह एक मनोवैज्ञानिक चीज है। यूँ तो मानवता की दृष्टि से सब मनुष्य बराबर हैं, परन्तु लोक व्यवहार में मनुष्य किस व्यक्ति को अपने से अधिक सम्मान दे, इसके लिये, उसके गुण, स्थान तथा पद आदि ही देखा जाता है। आज के अंग्रेजी स्कूलों में आप को देखने को मिलेगा कि अध्यापक का स्थान केवल फर्श है, जबकि विद्यार्थी का स्थान पीछे की ओर ऊँची होती जाने वाली कुर्सियां। जब कि अध्यापक को पूरे पीरियड केवल खड़े होकर पढ़ाने की आज्ञा है, विद्यार्थियों को यह छूट है, कि वह आराम से डटे रहें। तभी तो आज का विद्यार्थी अध्यापक को अध्यापक नहीं गिनता। वह उसको एक नौकर से कम नहीं समझता, जिसको कि उसने फीस देकर इस लिये खरीद लिया है, कि वह पीरियड भर उनकी सेवा में खड़े होकर वह कार्य करता रहे, जिस के लिये कि उन्होंने फीस दे रखी है। ऐसी परिस्थितयों में कहा से आयेगी विद्यार्थियों में अनुशासन की भावना? हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों ने इस तथ्य को समझा था, तभी तो न केवल धर्म शास्त्रों में, वरन यथार्थ में भी गुरु को ऊँचे स्थान पर बैठा कर प्रारम्भ से ही शिष्यों में इस बात का ज्ञान करा देना आवश्यक समझा था कि गुरु का स्थान अत्यन्त ही पवित्र है, ऊँचा है, आदरणीय है, शिष्य का स्थान गुरु के चरणों में है, नीचे है। गुरु को दिया हुआ धन सेवा कार्य की फीस नहीं, विद्या ग्रहण करने की दक्षिणा है।

इसी प्रकार, केवल इतना ही नहीं, शिष्यों के ऊपर गुरुओं को पूर्ण अधिकार होता था। विद्यार्थी की किस गलती पर क्या दंड उसको दिया जावे या न दिया जावे, इस का एक मात्र अधिकार गुरु को ही था न राज्य इस में हस्तक्षेप कर सकता था, और न बालक के माता पिता ही। है कोई ऐसा अधिकार आज अध्यापकों के पास? विद्यार्थी पाठ याद करके नहीं लाता, मारना तो दूर रहा, वर्तमान प्राप्त आदेशों के अनुसार अध्यापक उससे यह तक नहीं कह सकता कि "बेन्च पर खड़े हो जाओ।" इन परिस्थितियों में कहाँ आ सकती है वह गुरु भक्ति, जो विद्यार्थी दयानन्द में गुरु विरजानन्द के प्रति थी। गुरु द्वारा डंडा मारे जाने पर भी विद्यार्थी दयानन्द बोला था—"गुरु जी आप कमजोर हैं, आपके चोट तो नहीं लगी।" आज के विद्यार्थी आपस में लड़ें भले गालियाँ एक दूसरे को दें, कार्य न कर लावें, कोई बात नहीं—प्रधान अध्यापक अर्थ दण्ड भले ही डाल दे, परन्तु अध्यापक को यह अधिकार नहीं कि वह उनसे ताड़नायुक्त शब्दों में उनकी लानत मलामत कर सके। कहा जाता है, समझा बुझा कर छात्र को सही रास्ते पर लाइये। कुछ अंशों तक तो यह चीज ठीक है, किन्तु एकमात्र औषधि का काम दे सके ऐसा नहीं। देखिए महर्षि दयानन्द ने भी सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में इस विषय में लिखा है कि "उन्हीं के संतान विद्वान्, सभ्य और सुशिक्षित होते हैं, जो पढ़ाने वाले सन्तानों का लाड़न कभी नहीं करते, किंतु ताड़ना ही करते रहते हैं। इसमें व्याकरण महाभाष्य का प्रमाण है—

सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः। लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः। अ० ८।१।८

अर्थ—जो माता पिता और आचार्य सन्तान और शिष्यों का ताड़न करते हैं वे जानों अपने सन्तान और शिष्यों को अपने हाथ से अमृत पिला रहे हैं और जो सन्तानों व शिष्यों का लाड़न करते हैं, वे अपने सन्तानों और शिष्यों को विष पिलाकर नष्टभ्रष्ट कर देते हैं। क्योंकि लाड़न से सन्तान और शिष्य दोषयुक्त तथा ताड़न से गुणयुक्त होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अध्यापक लोगों को भी ईर्ष्या द्वेष से ताड़न न करना चाहिये ऊपर से भय प्रदान तथा भीतर की कृपादृष्टि रखनी चाहिये। अतः जब तक उपर्युक्त परिस्थितियों का निर्माण नहीं किया जाता, अनुशासनहीनता की समस्या कदापि हल नहीं हो सकती।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में एक अभाव यह है, कि विद्यार्थी अध्यापक के अधिक सम्पर्क में नहीं रहता। माना सरकार ने इस सम्पर्क को बढ़ाने की कोशिश की है, किन्तु क्रियात्मक रूप में असफलता के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं लगा है। यह तो तभी सम्भव हो सकता है, जबकि विद्यार्थी और अध्यापक एक ही स्थान पर रहते हों। हजारों ट्यूटर और गार्जियनशिप" की स्कीमों को कार्यान्वित कर देने से यह समस्या हल नहीं हो सकती। दूसरी ओर हाल यह है, कि बालक को किसी स्कूल में प्रविष्ट करा कर अपने कर्तव्यों की इतिश्री समझ लेते हैं, और सारा उत्तरदायित्व अध्यापकों पर लाद देते हैं। बहुत सी बुरी बातें, जैसे चोरी ६० प्रतिशत स्थितियों में बालक परिवार में ही सीखता है। माता-पिता को समझना चाहिये कि उनका परिवार ही बच्चे की प्रारम्भिक पाठशाला है। जो बातें अध्यापक स्कूल में नहीं सिखा सकते हैं। वे ही माता पिता परिवार में सहज ही में बच्चों को सिखा सकते हैं। स्कूल में प्रविष्ट करा देने के बाद भी माता पिता को यह देखते रहना चाहिये, कि बालक क्या करता है। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि यदि प्रत्येक माता पिता अपने बच्चों पर और उनकी गतिविधि पर सदा कड़ी निगाह रखें, तो अनुशासनहीनता की

[शेष-पृष्ठ १४ पर]

श्री विद्यानन्द विदेह जी के विषय में!

आर्य सिद्धान्तों के विरुद्ध दिए भाषणों के कारण कुछ वर्षों पहिले आचार्य विद्यानन्द विदेह पर आपके साप्ताहिक पत्र 'आर्यमित्र' में बहुत टीका टिप्पणी हुई थी। उस पर धर्मार्य सभा की देहली में बैठक हुई। जिसमें कि स्वयं आचार्य विद्यानन्द विदेह भी उपस्थित थे। धर्मार्य सभा की उस बैठक में विदेह जी ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया तथा आगे ऐसा न करने का आश्वासन दिलाया था। साथ ही सार्वदेशिक सभा अपनी विज्ञप्तियों द्वारा सम्पूर्ण समाजों तथा आर्यजनों को इस बार में सूचित कर दिया।

इसके कुछ दिनों ही बाद विदेह जी ने अपने वेद भाष्य का प्रकाशन करने के लिये एक लाख रुपयों की माँग आर्य समाजों व आर्यजनों के सम्मुख उपस्थित की। इस पर ता० १० मई सन् १९५५ ई० के सोमवार के 'आर्यमित्र' में श्री कालीचरण जी आर्य मंत्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली ने विज्ञप्ति द्वारा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली का निर्णय प्रसारित किया है। 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा इस वेद भाष्य को प्रामाणिक नहीं मानती अतः आर्यसमाजें एवं आर्य नरनारी इस सम्बन्ध में सचेत रहें। और इसके लिए कोई आर्थिक सहायता न दी जावे। यही निर्देश उनके द्वारा छपी हुई अन्य पुस्तकों के सम्बन्ध में माना जाय"

इसके बाद एक समस्या कल दिन शुक्रवार १६ अगस्त को 'सविता संस्थान योजनाक' के सामने उपस्थित होने पर खड़ी हो गयी है। जिसमें कि आर्य विद्वानों तथा सम्पूर्ण आर्य पत्रों में आचार्य विदेह "सविता" तथा विदेह जी द्वारा निकाली हुई सम्पूर्ण पुस्तकों की प्रशंसा की है। इतना ही नहीं वरन् सार्वदेशिक धर्मार्य सभा देहली के अनेक सदस्यों जिनमें कि उपप्रधान श्रीयुत पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार प्रभात आश्रम बरेली तथा प्रधानमन्त्री श्रीयुत आचार्य विश्वश्रवा जी वेदमन्दिर बरेली भी सम्मिलित हैं। जो प्रशंसा धर्मार्यसभा के अन्तरंग सदस्यों द्वारा की गई है वह निम्न लिखित है।

"श्री विदेह जी सर्व साधारण में वेद को सुगम तथा लोक प्रिय बनाने का सराहनीय कार्य कर रहे हैं" श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार उपप्रधान सार्वदेशिक धर्मार्य सभा देहली "मैं आपके इस सदुद्योग की हृदय से सफलता चाहता हूं।" आचार्य पं० प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति गुरुकुल काँगड़ी, अन्तरंग सदस्य सार्वदेशिक धर्मार्य सभा देहली। 'विदेह जी ने राजपूताना में वेद संस्थान की स्थापना करके इस प्रदेश में वेद के स्वाध्याय को सचमुच उत्तेजना दी है।" स्वामी वेदानन्द जी अध्यक्ष विरजानन्द वैदिक संस्थान, छोटा खेड़ा देहली। अन्तरंग सदस्य सार्वदेशिक धर्मार्य सभा देहली। 'जिस प्रकार श्री विदेह सविता के द्वारा वेद मन्त्रों के अर्थ व व्याख्या करते हैं यदि उसी उत्तम रीति से सम्पूर्ण वेदों के अर्थ हो जाय तो बड़ा भारी कार्य हो जायगा। आर्य समाज के लिए इससे बड़ा दूसरा काम नहीं है' पं० गङ्गाप्रसाद एम० ए० एम० आर० ए० एस०, पूर्व प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा।

इतना ही नहीं वरन् सार्वदेशिक धर्मार्य सभा देहली के एक अन्तरङ्ग सदस्य, श्रीयुत पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक व्यवस्थापक वेदवाणी राम लाल कपूर ट्रस्ट बनारस, विदेह द्वारा स्थापित वेद संस्थान के भी अन्तरङ्ग सदस्य हैं यह बड़ी अनुचित बात है कि जिस बात के लिए धर्मार्य सभा ने अपनी विज्ञप्ति द्वारा सचेत किया था उसी के विरुद्ध सभा के अन्तरङ्ग सदस्य ही नहीं, वरन् पदाधिकारी भी उसका समर्थन करते हैं इतना ही नहीं वरन् कोई २ उसके अन्तरङ्ग सदस्य भी बन जाते हैं।

साथ ही सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा के अनुशासन को ताक में रखकर आर्यजगत् के धुरन्धर विद्वान्, सन्यासी, महोपदेशक और आर्य जगत के सम्पूर्ण पत्र, जिनमें कि सार्वदेशिक देहली और आर्यमित्र, लखनऊ भी शामिल हैं विदेह जी के कार्य उनकी योजना, 'सविता' मासिक पत्र और उनकी लिखित ग्रन्थों की प्रशंसा करते हैं और हार्दिक सहयोग भी प्रदान करते हैं।

उपर्युक्त वाक्य लिखने का साहस हम सविता के अगस्त ५९ के संस्थान योजनांक के आधार पर कर रहे हैं। विस्तार भय से सम्पूर्ण व्याख्या तथा उन व्यक्तियों के नाम नहीं लिख पा रहे हैं जो इस बारे में पूर्ण विवरण प्राप्त करना चाहें, वे अगस्त ५९ के सविता के संस्थान योजनांक को धीरज सहित अध्ययन करें।

ये जो सम्मतियों के उद्धरण हमने दिये हैं। सत्य हैं या नहीं? अगर असत्य हैं तो इसका स्पष्टीकरण अविलम्ब हो जाना चाहिये। जिससे कि आर्य जनता भ्रम में न पड़े। अगर ये सत्य हैं तो यह बतलाइये कि आर्य समाज के इस सङ्गठन का महत्व क्या है? आर्यसमाज में इतनी अनुशासन हीनता क्या है? और भविष्य में इसका क्या परिणाम निकलेगा।

अतः हम माँग करते हैं कि श्री कालीचरण जी आर्य मंत्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली तथा आचार्य विश्वश्रवा जी प्रधान मंत्री सार्वदेशिक धर्मार्य सभा देहली इस बात का शीघ्रातिशीघ्र स्पष्टीकरण करें।

——

हजरत मुहम्मद से पहले

एक समय था जब इस्लाम के प्रचार के पहले अरब में आर्य धर्म और भारतीय सभ्यता का बोलबाला था। भारत को वहाँ के लोग आदर और भक्ति की दृष्टि से देखते थे। अरब नाम भी भारतीयों का ही दिया हुआ है। वैदिक भाषा में "अर्व शब्द अश्व के लिये आया है। सब लोग जानते हैं कि अरब देश के "अर्व (घोड़े) प्रसिद्ध हैं। भारतीयों ने घोड़ों के देश का नाम ही अर्व रख दिया था कालान्तर में बिगड़ कर "अरब" बन गया। प्राचीन काल में भारत से अनेक साधु सन्यासी तथा विद्वान् अरब देश में जाकर आर्यधर्म अर्थात् भारतीय संस्कृति का प्रचार करते थे और वहाँ उनका बड़ा सम्मान होता था। ऐसे ही कुछ विद्वान् और साधू सन्यासी सम्राट विक्रमादित्य के काल में भी वहाँ से धर्म के प्रचार के लिये वहाँ भेजे गये थे। इसी बात का उल्लेख निम्नलिखित अरबी पद्य में किया गया है। पाठक इन पद्यों से देखेंगे कि आर्य धर्म तथा भारतीय सभ्यता का कितना सम्मान तथा आदर उन दिनों अरब देश में था। कहते हैं कि मक्का का प्रसिद्ध काबा भी पहले एक शिव मन्दिर था और महादेव की मूर्ति वहाँ स्थापित थी। अरब लोग उसकी पूजा और उपासना बड़ी भक्ति और श्रद्धा के साथ करते थे। इस्लाम की स्थापना के बाद वह इस्लाम का प्रधान केन्द्र बन गया। वह अरबी पद्य और उसका अनुवाद नीचे दिया जाता है —

इत्तरशफाई सनतुल विक्रमतुन,
फहलमीन करीमुन यर्तफीहा वयोवसस।
बिहिल्ला हायसीमिन एलामोतब
बूवसस।
बिहिल्लाहा यूही कैद मिन होवा य
फखरू।
फजल आसारी नहनाहो आरिम
बजेहलीन
युरीदुन बिआबिन वजनबिनयखतरू।
यह सब दुन्या कनातेफ नतफी
बिजहलीन,
अतदरी बिलला मसीरतुन फकेफ
तसबहू।
कउन्नी एजा माजकरलहूदा वलहूदा,
अशमीमान, बुरकन कद तौलु हो
वतस्तरू।
बिहिल्लाहा यकजी बैननावलं कुल्ले
अमरना,
फहेया जाउना बिल अमर विक्रमतुन

अर्थात्—वे लोग धन्य हैं जो विक्रम के राज्यकाल में उत्पन्न हुए, जो बड़े दानी धर्मात्मा और प्रजा पालक था। परन्तु उस समय हमारा अरब ईश्वर का भूल कर विषयों में लिप्त था। छल कपट को ही लोगों ने सबसे बड़ा गुण मान रखा था। हमारे तमाम देश (अरब) में अविद्या ने अंधकार फैला रखा था। जैसे बकरी का बच्चा भेड़िये के पंजे में फंस कर छटपटाता है छूट नहीं सकता, ऐसे ही हम मूर्खता के पंजे में फंसे हुए थे। संसार के व्यवहार को अज्ञान के कारण हम भूल चुके थे, चारों ओर अमावस्या की रात्रि की तरह अन्धकार फैला हुआ था, परन्तु अब जो विद्या का प्रातःकाल न देख रहा था उसका प्रकाश दिखाई देता है वह उसी धर्मात्मा राजा की कृपा है। जिसने हम लोगों को भी अपनी दया दृष्टि से वंचित नहीं किया और पवित्र धर्म का सन्देश देकर अपना ज्ञान और विद्वान् को भेजा जो हमारे देश में सूर्य की तरह चमके।

(शेष पृष्ठ ८५ पर)

ऋषिराज के जीवन के अविस्मरणीय क्षण

(लेखक—श्री भगवत शरण जी बी० ए० (कानपुर))

आर्यसमाज स्थापना दिवस के अवसर पर लोक कल्याणकारी, समाजोद्धारक, राष्ट्र निर्माता तथा वेद ज्ञान प्रचारक प्रातः स्मरणीय जगद्गुरु महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के दिव्य जीवन के अद्भुत संस्मरणों से आर्यजनता और जन साधारण अपने जीवन के लिए अनुपम प्रेरणाएं प्राप्त कर सकता है।

आर्य समाज के संस्थापक तथा प्रवर्तक ऋषि दयानन्द के जीवन की मुख्य घटनाओं से यद्यपि आर्य बन्धु पूर्णरूपेण परिचित हैं, फिर भी इन घटनाओं में इतनी प्रेरणात्मक शक्ति विद्यमान है कि इनके पुनः पुनः स्मरण करने से सर्व साधारण के जीवन साफल्य के लिए मार्ग दर्शन हो सकता है। मुझे तो ऋषिराज के जीवन के कुछ संस्मरण ऐसे प्रतीत होते हैं जिनका स्मरण करते ही एक बार हृदय पवित्र हो जाता है, उनके त्याग और बलिदान पर सहज स्नेहपूर्ण प्रसन्नता और कृतज्ञता के दो आंसू कण नेत्रों से ढुलक जाते हैं, मन के सन्ताप भस्मीभूत हो जाते हैं और हृदय में राष्ट्र कल्याण भावनाओं के उद्रेक के साथ अकस्मात् मुंह से "स्वामी दयानन्द की जय" निकल पड़ती है।

मोक्ष मार्ग का अन्वेषक.—

सम्वत् १८५६ की बात है। दैवयोग से अकस्मात् उनकी छोटी भगिनी मृत्यु देव का शिकार बनकर पंचतत्व को प्राप्त कर गयी। सर्वत्र हाहाकार मच गया। चतुर्दिक शोक, पीड़ा, दर्द भरी बेचैनी और रुदन का साम्राज्य छा गया। पिता शोकाकुल, माता रोते रोते मरणासन्न, इष्ट मित्र सभी दुःख दुःख सरिता में डूब रहे थे पर नन्हें बालक दयानन्द समीपवर्ती स्थान से खड़े अश्रु विहीन क्षोभपूर्ण आश्चर्य भरे नेत्रों से मोक्ष मार्ग का चिन्तन करने लगे। मृत्यु-व्याधि की औषधि प्राप्त करने को बेचैन हो उठे और जीवन का यह लघुक्षण उनका मार्ग दर्शन बन गया।

पर द्रव्येषु लोष्ठवत् —

लाखों रुपयों की सम्पत्ति की लालच देकर जब ओखीमठ के महन्त ने ब्रह्मचारी दयानन्द को अपना चेला बनाना चाहा तो स्वामी दयानन्द ने उन्हें बताया कि मेरे पिता की सम्पत्ति आपकी पूंजी से कई गुणा अधिक जिसे आपने अज्ञान और अन्याय का प्रचार-प्रसार करके कपट और पाखण्ड द्वारा अर्जित किया है। ऋषिवर इसी तरह अनेक बार "पर द्रव्येषु लोष्ठवत्" का आदर्श अपना कर अपने कर्त्तव्य मार्ग से अडिग रहे।

"जीवन का चरम पुरुषार्थ परोपकार है"

सांसारिक मोहमाया और क्लेशों से अत्यन्त क्षुब्ध होकर एक समय ऋषि दयानन्द अलकापुरी के पहाड़ पर इस विचार से गये कि अपने शरीर को बर्फ में गला कर संसार के कष्टों से मुक्त हो जाँय। तत्क्षण उन्हें ज्ञान का भान हुआ कि आत्महत्या पुरुषार्थ नहीं है अपितु ज्ञान प्राप्त करके निःस्वार्थ परोपकार करना पुरुषार्थ है और आपत्तियों से घबड़ाना कायरता है।

दयानन्द की गुरु-भक्ति —

अपने आचार्य स्वामी विरजानन्द सरस्वती के स्नान, ध्यान तथा पान के लिए नित्यप्रति नियमपूर्वक घोर आँधी और तूफान में भी स्वामी जी यमुना जल लाया करते थे। साधु स्वभाव, सरल प्रकृति, आदेश पालक, सेवक दयानन्द अपने गुरुदेव के पूर्ण कृपा पात्र थे। आज का विद्यार्थी वर्ग उस अद्भुत शिष्य की असाधारण गुरु भक्ति से प्रेरणा प्राप्त कर सकता है।

अपूर्व उदारता:—

एक समय जब एक ब्राह्मण ने छल से स्वामी जी का प्राणान्त करने के हेतु पान में उन्हें विष दे दिया तो शीघ्र ही उन्हें ज्ञात हो गया कि इसमें विष है। स्वामी जी के भक्त तहसीलदार ने जब अपराधी को पकड़वा कर बन्दीगृह में डाल दिया तो स्वामी जी ने कहा कि "मैं संसार के मनुष्यों को बंधवाने नहीं आया हूं बल्कि छुड़वाने आया हूं यदि दुष्ट अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता तो मैं अपनी श्रेष्ठता का परित्याग क्यों करूं। इस प्रकार की घटनाएं स्वामी जी के जीवन में कई बार हुईं।

ब्रह्मचर्य बल का प्रदर्शन

ब्रह्मचर्य की महिमा से यद्यपि यह संसार पूर्णरूपेण परिचित है, तो भी एक समय एक राजा ने ब्रह्मचारी दयानन्द के ब्रह्मचर्य पर सन्देह प्रकट करते हुए उन्हें एक दिन ब्रह्मचर्य बल दिखाने को कहा। कुछ व्यक्ति के द्वारा एक दिवस राजा जी चार बलिष्ठ घोड़ों से खींचे जाने वाली अपनी बग्घी पर बैठ कर सड़क की ओर से कहीं जा रहे थे। कोचवान तीव्र गति से बग्घी को चला रहा था। पीछे से ऋषि आ गये और अपने एक हाथ से बग्घी का एक पिछला पहिया पकड़ कर भूमि पर खड़े जमा दी। कोचवान के बार बार चाबुक मारने पर तथा चारों घोड़ों की पूरी शक्ति लगाने पर भी जब बग्घी टस से मस नहीं हुई तो राजा जी ने स्वयं उतरकर देखा ऋषि दयानन्द एक हाथ से पहिया पकड़े हैं। शीघ्र ही ब्रह्मचारी के चरणों पर गिर कर राजा ने क्षमा याचना करते हुए कहा— 'क्षमा कीजिए महाराज, ब्रह्मचर्य का बल मैं देख चुका। आज कल के लघु जीवी व लघुकाय नवयुवक जिनके पूर्वजों ने समस्त विश्व को कभी 'जीवेम् शरदः शतम्' का पाठ पढ़ाया था, यदि इस घटना से ब्रह्मचर्य पालन का व्रत लेवें तो अवश्यमेव यह राष्ट्र एक सौ वर्ष आगे हो जायगा।

महान् दयानन्द

विधर्मियों के द्वारा पत्थरों की बौछार ऋषि ने सहन की, अपने व्याख्यान पंडाल में आग लगाये जाने पर भी अविचल रहे, जूतियों का हार गले में डाले जाने पर क्रोधान्ध नहीं बने, शरीर पर सर्प फेंके जाने पर भी धर्म से विचलित नहीं हुए, करोड़ों की सम्पत्ति देख कर भी लोभ पाश में नहीं बंधे, महीनों अन्न जल त्याग कर भी स्वस्थ रहे। इस प्रकार स्वामी जी के जीवन में अनेकानेक कठिनाइयाँ एक ही साथ आती रहीं फिर भी महान दयानन्द महान ही रहे।

जाट का मोटा सोटा

गंगा माता और देवताओं का विरोध करने के कारण एक जाट क्रोध से लाल आंखें किये अपना मोटा सोटा लेकर स्वामी जी को मारने के लिए उपस्थित हुआ और पूछा कि बताओ शरीर के किस अंग पर प्रहार करके तुम्हारा प्राणान्त कर दूं। स्वामी जी ने अपने सिर की ओर संकेत करते हुए कहा कि समस्त विचारों का केन्द्र सिर है, तुम इसी पर प्रहार करके मेरा प्राणान्त कर दो। ऋषि यह कह कर भी पूर्ण गम्भीर और शान्त रहे। उनके दिव्य ललाट से तेज की आभा फूट रही थी। उनकी आँखों से ज्ञान और पवित्रता

[शेष अगले पृष्ठ पर]

हे देवों के देव !

(श्री छोटेलाल वासिष्ठ मधुकर सहारनपुर)

हे देवों के देव तुम्हें मैं कैसे आज मनाऊं ?

हृदय भक्ति कुछ पास नहीं है,
जिसको देकर तुम्हें रिझा लूं,
मुख में केवल नाम तुम्हारा
तृष्णा उर में तुम्हें बसा लूं,

लिए मिलन की अभिलाषा गुणगान तुम्हारा गाऊं

अमा निशा सा जीवन मेरा
हर पग पर हूं ठोकर खाता
नयन सीप से लेकर मोती
दर्शन हित नित तुम्हें चढ़ाता

बिन मेरी स्वच्छ बने हो कैसे तुम तक आऊं

मेरा है विश्वास तुम्ही पर
सुन ओ दुनियाँ के रखवाले।
मन का पंछी भटक रहा है
छलक रहे नयनों के प्याले

इस अधीर व्याकुल मन को अब कैसे धीर बँधाऊँ ?

सभाओं की सूचनाएं

उपदेश विभाग की सूचना

प्रादेशीय समाजों को सूचित किया जाता है कि श्री पं० कौरावसिंह जी उपदेशक एवं श्री पं० ब्रजकृष्ण जी प्रचारक सभा ने अपने-अपने पद से त्याग-पत्र दे दिये हैं जो स्वीकार कर लिये गये हैं।

उन्हें सभा प्राप्तव्य धन न दिया जावे।

उपदेश विभाग की सूचना

आर्य समाजों के संचालकों को सूचित किया जाता है कि श्रीमती जगधात्री देवी जी धर्मोपदेशिका एटा निवासिनी प्रचारार्थ जिला एटा, इटावा, मैनपुरी अलीगढ़, मथुरा में पहुँच रही हैं, आप के पहुँचने पर प्रचार करावें और वेद प्रचार में सहायता प्रदान करें। विशेष कर देहातों में प्रचार की व्यवस्था की जावे।

उपदेश विभाग की सूचना

वेद प्रचार-सप्ताह समाप्त हो गया। समाप्त्य उपदेशक, प्रचारक महानुभावों से निवेदन है कि अपने अपने क्षेत्र में वैदिक धर्म का प्रचार करते रहने की कृपा कर और सभा प्राप्तव्य धन वेद प्रचार, सूदकोटि, सन् १९५४ का प्राप्तव्य दशांश, चार आना फन्ड, शुद्धि का प्राप्त कर सकते हैं। सभा कार्यालय से प्राप्तव्य-धन की सूची मंगालें और अपने-अपने पते की सूचना दें, जिस से भेजने में सुविधा हो।

मन्त्री
कालीचरण आर्य

हजरत मुहम्मद के पहले

(पृष्ठ ७ का शेष)

थे। जिन महापुरुषों की कृपा से हमने भुलाये हुए ईश्वर और उसके पवित्र ज्ञान को जाना और सत्पथ-गामी हुए वे लोग प्रभु जिनके की आज्ञा से हमारे देश में शिक्षा और धर्म के प्रचार के लिये आये थे।

ऊपर लिखे हुए अरबी पद्य लबीद बिन अख्तब बिनतोई नामक एक प्रसिद्ध अरबी कवि के रचे हुए हैं जो हजरत मोहम्मद साहेब के पहले अरब में हुए थे।

पुत्रदा

(शर्तिया पुत्र उत्पन्न करने की दवा)

साधारण स्त्रियों के पुत्रदा से पुत्र होवेगा ही, परन्तु जो बाँझ अथवा जिन्हें अरसे से रजस्वला होना बन्द हो गया हो, उनको भी शर्तिया पुत्र उत्पन्न होगा। हजारों ने पुत्रदा सेवन कर पुत्र पाया है, आज तक किसी को भी हतास नहीं होना पड़ा। यदि आपको पुत्र की इच्छा हो, तो एक बार परीक्षा कर अवश्य देखिए। पुत्र न पाने पर दाम वापिस, चाहे प्रतिज्ञा पत्र लिखवा लीजिए। मूल्य ५) फुल कोर्स १५)

पी० डी० दुबाल एन्ड को०
पो० बेगूसराय जि० मुंगेर (बिहार)

सफल मनुष्य

—अपनी गलतियों को भूल जाता है परन्तु उनके कारणों को नहीं भूलता।

—अपने प्रथम विचारक होकर ही सन्तुष्ट नहीं होता परन्तु सबसे प्रथम कार्यरूपमें परिणित कर सन्तुष्ट होता है।

—वह आज के स्वप्नों को मृगतृष्णा नहीं बनाता।

इतना आश्चर्य

—मध्य एशिया में भेड़ों की पूछें पाँच पाँच सेर की होती है। जब उन्हे बेचने के लिए ले जाया जाता है तो उनकी पूछे गाड़ी पर रख दी जाती है।

—इंगलैंड के बिजली घर मे एक बड़ी सुराही है। इसमें १० लाख टन पानी प्रति घंटे तैयार किया जाता है।

—सन् १८८० ई० में मकाम आइम नामक की लड़की सिर नीचे और पैर ऊपर करके चलती थी।

—कोलिफोर्निया में कुमारी मिकिन नाम की लड़की इतनी मोटी है कि उसका वजन ७ मन ३ सेर है।

—मोर अपने भोजन की सुगन्धि ९ मील से भी अधिक दूरी से प्राप्त कर लेता है।

समुद्र के पानी में २६ प्रतिशत साधारण नमक होता है।

ध्रुवतारे से जो प्रकाश आता है उस १,८६,००० मील प्रति सेकेण्ड के वेग से चलते हुए पृथ्वी पर पहुचने में ४७ वर्ष लगते हैं। यदि आज ध्रुवतारा नष्ट हो जाए तो वह न रहते हुए भी ४७ वर्ष तक दिखाई पड़ता रहेगा।

ऋषिराज के जीवन....

(पिछले पृष्ठ का शेष)

की ज्योति निकल रही थी। ऋषि की बातें सुनकर जाट तत्काल ही श्री चरणों में गिर पड़ा और अविरल अश्रु प्रवाहित करता हुआ अपराध क्षमा करने की प्रार्थना करने लगा। स्वामी जी ने उसे क्षमा दान देते हुए कहा—'जाओ, ईश्वर तुम्हें सत्यज्ञान प्रदान करें।'

कृपाण के दो टुकड़े

अपनी वीरता पर अभिमान रखने वाले कर्ण सिंह एक बार अत्यधिक क्रुद्ध हो कर आँखों से अरुण रक्त उगलते हुए हाथों में तेज नगी तलवार लेकर जब ऋषि दयानन्द पर वार करने के लिए सम्मुख उपस्थित हुए तो ऋषि का तेज स्वरूप देखते ही उनका क्रोध विलीन हो गया और भय प्रकम्पित हाथ से तलवार गिर पड़ी जमीन पर। ऋषि ने शीघ्र ही उस तलवार को उठा कर दोनों हाथों से पकड़ कर दो टूक कर दिये। शीघ्र ही कर्ण सिंह लज्जित पराजित होकर अपना सा मुह लिये वापस चला गया। वीर होतो ऐसा जो वस्तुत वीरता रखने पर भी अभिमान से ग्रस्त नहीं हो और जब आवश्यकता आ पड़े तो अपनी वीरता से समस्त संसार को चकाचौंध कर दे। स्वामी जी की जीवन आज के कार्य विहीन अव्यावहारिक केवल कथनी करने वाले व्यक्तियों के लिए एक उज्वल आदर्श है।

ऋषिवर का त्याग तथा परोपकार

मरण शय्या पर पड़े पड़े ऋषि ने कहा था कि मेरे प्राणान्त होने के पश्चात् मेरे शव को विधि पूर्वक वैदिक रीत्यानुसार भस्मी भूत करके मेरे शव की राख को किसी गरीब किसान के खेत में फेक देना जिससे उसकी फसल में कुछ वृद्धि हो सके। ओह, ऐसा महान परोपकार ऐसी ऊँची उदारता इतना विस्तृत दृष्टिकोण साधारण मनुष्य तो ऐसी बातो का कल्पना भी नहीं कर सकते। वस्तुत स्वामीजी का जीवन साधारण मनुष्यो को ऊँचा उठाकर असाधारण बनाने वाला है।

धन्य हो ऋषि, तू ने आर्य समाज की स्थापना करके संसार का बहुत बड़ा उपकार किया है, तभी न आज देश-देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में आर्य समाज का वह ज्ञान प्रसार करने वाला ओ३म् ध्वज फहरा रहा है।

महर्षि स्वामी दयानन्द
का
प्रामाणिक जीवन चरित्र

ऋषि के अनन्य भक्त स्व० श्री बाबू देवेन्द्रनाथ जी मुखोपाध्याय द्वारा संग्रहित तथा आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध नेता बाबू घासीरामजी एम० ए० एल० एल० बी० द्वारा अनूदित दो भागों में अनेक घटना पूर्ण चित्रों से युक्त मू० ६) प्रति भाग।

२. दयानन्द वाणी—ले० रमेशचन्द्र शास्त्री मू० १॥)

३. महाभारत शिक्षा-सुधा—ले० स्वामी ब्रह्ममुनि जी
महाभारत की उत्तमोत्तम शिक्षाओं का विशद एवं मार्मिक विवेचन तथा आर्य सिद्धांतों का प्रतिपादन। सुन्दर तथा रंगीन गेटअप। मू. १॥)

४, जीवन की नींव—ले० सम्पूर्णनाथ शुक्ल 'सेवक'
मनुष्य के चरित्र की पवित्रता का उत्थान, तथा त्याग का जीवन बनाने के जिन साधनों की आवश्यकता होती है, लेखक ने पूर्ण रूप से इसमें समझाया है। भूमिका लेखक—महा-आनन्द स्वामी जी सरस्वती। मू० २)

५. सत्संग यज्ञविधि—ले० धर्मेन्द्र शिवहरे। मू० ।-)
पारिवारिक सत्संग में यज्ञ के लिये, यज्ञ कुण्ड, हवन सामग्री, यज्ञ-पात्र, की परिभाषा व संख्या, हवन, शान्तिपाठ के मंत्रों के शब्दार्थ दिये गये हैं।

६. धार्मिक शिक्षा—ले० डा० सूर्यदेव जी शर्मा, साहित्यालंकार एम० ए० (प्रेस)

आर्य बालक बालिकाओं के पढ़ाने के लिए कक्षा से१० तक के लिये बहुत ही उत्तम पुस्तकें हैं। १० भाग में पूर्ण हैं। प्रत्येक आर्य स्कूल में पढ़ाने योग्य है। मू० १० भाग का ५) है।

वेद, महर्षि के समस्त ग्रंथ व अन्य आर्य ग्रंथों का बृहद सूचीपत्र मुफ्त मंगावें।

प्रकाशक—**आर्य साहित्य मण्डल लि०**
श्रीनगर रोड, अजमेर

पावन तीर्थ स्थान
कन्या- गुरुकुल- महाविद्यालय हाथरस
का- रजत-जयन्ती-महोत्सव

हाथरस (डाक से) कन्या गुरुकुल हाथरस का रजत जयन्ती महोत्सव २० अक्तूबर से २१ अक्तूबर ५५ तक समारोह पूर्वक मनाया जायगा। समस्त जनता इससे भलीभाँति परिचित हो चुकी है। गु. कु. में जयन्ती की तैयारियाँ तत्परता से प्रारम्भ हो चुकी हैं। जयंती के उपलक्ष में बनाई गई २ लाख रुपये की अपीलको पूर्ण करने के लिए हमने रक्षा-बन्धन के पुनीत पर्व पर लगभग समस्त समाजों में अपने प्रस्तावित नोटों की कुछ संख्या भेजी थी। अब तक की प्रगति के अनुसार हम अनुभव करते हैं कि समाज हमारी इस योजना का स्वागत कर रही है। काफी समाजों ने भेजे गये नोटों की अल्प राशि ११) और १०) पूर्ण करके भेज दिया है हम उनका हार्दिक धन्यवाद करते हैं। और आशा करते हैं, कि सभी समाजें हमारी सहयोगी बनेगी। १०) और ११) की अल्पराशि किसी भी समाज के लिए कठिन काम नहीं। प्रायः न्यूनतम संख्या २० या २५ होती है, इस अल्पराशि से संस्था को इन समाजों का भारी सहयोग प्राप्त होगा। जयन्ती के शुभावसर पर हम समस्त जनता को सादर आमन्त्रित करते हैं।

लज्जावती देवी
मुख्याधिष्ठात्री

लक्ष्मणधारा
घर का डाक्टर

इसकी चन्द बूंदें लेने से हैजा, कै, दस्त, पेटदर्द, जी-मिचलाना, पेचिस, खट्टी-डकारें, बदहजमी, पेट फूलना, कफ, खाँसी, जुकाम आदि दूर होते हैं और लगाने से चोट, मोच, सूजन, फोड़ा-फुन्सी, बातदर्द, सिरदर्द, कानदर्द, दाँतदर्द, भिड़ मक्खी आदि के काटे के दर्द दूर करने में संसार की अनुपम महौषधि। हर जगह मिलता है।

कीमत बड़ी शीशी २।।), छोटी शीशी ।।।)

रूप विलास कम्पनी, कानपुर

स्टाकिस्ट—माताबदल पसारी अमीनाबाद,लखनऊ

सफेद कोढ़ के दाग

हजारों के नष्ट हुए और सैकड़ों के प्रशंसा-पत्र मिल चुके हैं। दवा का मूल्य ५) रुपये, डाक व्यय १)। अधिक विवरण मुफ्त मंगा कर देखिये।

वैद्य के० आर० बोरकर
मु० पो० मगरूलपीर, जिला अकोला (मध्य प्रदेश)

दैनिक तथा साप्ताहिक आर्यमित्र में विज्ञापन दे लाभ उठाइये

आवश्यकता

मेरे मित्र के लिये जिनकी आयु ३० वर्ष के करीब है मैट्रिक पास है तथा व्यवसायी है मासिक आय २००) है के लिये गृहकार्य मे दक्ष विदुषी पढ़ी लिखी कन्या की जिनकी आयु २० वर्ष तक हो आवश्यकता है शादी जाति बन्धन तोड़ कर कि जावेगी निचे लिखे पते से पत्र व्यवहार करे।

न० २-१ श्री छगनलाल महात्मा
RAJPUR राजपुर (बड़वान)
पो० राजपुर

आर्यमित्र का शुल्क
दैनिक + साप्ताहिक

एक वर्ष का	—	२४)
६ माह का	—	१३)
३ माह का	—	७)
एक प्रति का	—	-)

साप्ताहिक का शुल्क

एक वर्ष का	—	८)
६ माह का	—	४।।)
३ माह का	—	२।।)
एक प्रति का	—	=)

ग्राम जीवन

ग्रामीण युवकों का भविष्य अँधेरे में

[ले०—श्री प्रेमनारायण अग्रवाल एम. ए.]

८९ प्रतिशत भारत की आबादी गाँवों में रहती है। शहर की संख्या १००-१५० के करीब है जिनकी आबादी एक लाख से ऊपर है। १०-२० लाख की आबादी वाले भारत में १०-१२ शहर ही निकलेंगे।

सामूहिक विकास योजनायें, पञ्चवर्षीययोजनायें और सरकार का उनकी तरफ विशेष ध्यान देने पर भी ग्रामीण युवकों का भविष्य अन्धेरे में है। यह भावना गाँव वालों में विशेष कर उनमें जो पढ़े लिखे होने पर भी गांव में ही रहते हैं, दिन पर दिन भयंकर रूप धारण करती जा रही है वह गाँव वाले जो अब शहरों में रहते हैं चाहे नौकरी में या व्यापार में इस बात के महत्व का अनुभव करने लगे हैं। वह अपने नाते रिश्तेदारों को गाव छोड़ने की सच्ची सलाह बिना किसी सोच विचार कर निष्कपट भावना से देते हैं।

अगर आपका जन्म गाँव में हुआ है, वहीं बड़े हुए है या शहरों में उच्च शिक्षा प्राप्त करके भी अगर आप गाँव में ही रहते हैं तो आपका भविष्य अन्धेरे में है। वहां न कोई नौकरी और न कारोबार वहाँ रहकर आपको भरपेट भोजन मुश्किल से मिलेगा। अगर आपके पास पुश्तैनी जमीन है, जायदाद है तो भले ही आराम से खा पी लें और रह लें पर आगे तरक्की करने का मार्ग बन्द है न आप रुपया अधिक कमा सकते हैं न सार्वजनिक जीवन में आगे बढ़ सकते हैं और न अपने बच्चों का जीवन या भविष्य सुधार सकते हे।

अगर आप गरीब आदमी हैं तब तो आप कुछ भी नहीं कर सकते अगर किसी प्रकार दोनों वक्त रूखी-सूखी रोटी मिल जाये तो इसे ही बहुत समझें अगर आप मध्यम वर्ग की आर्थिक श्रेणी के पुरुष हैं तब भी आपका भविष्य विशेप अच्छा नहीं कहा जा सकता। हां आप बहुत कोशिश करेंगे, बहुत पैर फटफटायेंगे तो शायद कुछ हो जाय अन्यथा आपकी उन्नति का मार्ग बन्द है और भविष्य अन्धेरे में है।

अगर आपका मार्गप्रदर्शन ठीक नहीं है तो आप गाँव मे रहकर खूब मालदार होने पर भी कुछ नहीं कर सकते मार्ग निर्दर्शन प्रत्येक मनुष्य की सफलता के लिये नितान्त आवश्यक नहीं है मार्ग निर्दशन करने वालों का गाँव मे सर्वथा अभाव होता है, न उनके मित्र रिश्तेदार आदि इस प्रकार के होते है जो उनको मार्ग बता सके कि वह अपने जीवन में सफल होने के लिये किन किन आवश्यक बातों को सीखें समझें या पढ़ें या क्या करें।

इनके विपरीत शहर में सब बातें हैं; वहां गरीब होकर भी पढ़ सकते हैं ठीक मार्ग निर्दशन पा सकते हैं और अगर न भी पावें तो स्वय भी ढूंढ सकते हैं पर गांव में यह सब असम्भव है शहरों में इन सबकी सुविधायें हैं वह सब मिलती हैं, गांवों में उनका अभाव है। चाहे कितना ढूंढिये वहां कुछ भी न मिलेगी। जो जितना बड़ा शहर है उसमें उतनी ही अधिक गुंजाइश है, वहां उतनी ही अधिक सुविधायें व अवसर हैं बड़े शहरों में ज्यादा छोटों में कम परन्तु गाँव की तरह अभाव वहाँ नहीं होता। शहरों में परिश्रमी हिम्मतबाज, चतुर व्यक्तियों के लिये भारी अवसर है पर गांव में उसके लिये कुछ नहीं, वहां के इने गिने आदमियों को प्रत्येक बच्चा जानता है।

ग्राम्य जीवन बीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध में नरक तुल्य है, जहां कूपमण्डूक बने रहने के सिवाय और कोई अवसर नहीं। अन्य किसी भी क्षेत्र मे आगे नहीं बढ़ सकते हमें तो गांव में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं मिला जो गांव में रहकर ही बड़ा हुआ हो चाहे सार्वजनिक जीवन से या आर्थिक दृष्टि से और न शहर से गाव में रहने कोई आता है अगर गाँव में कोई अच्छाई होती तो कुछ न कुछ लोग वहाँ जाते। शहर वाले कहते है कि गाँव में सुख है, शान्त है, खाने पीने की चीजों का आराम है, रहने की सुविधा है और अनेक सीधे और परोक्षरूप वाले लाभ हैं पर हमने ऐसा कोई नहीं देखा जो शहर से गाव में जाकर रहने लगा हो। बुढ़ापे तक में आराम से जीवन को बिताने वहाँ कोई नहीं जाता गांव वाले भी शहरों में नौकरी से पेन्शन पाने पर ही मकान बनाते हैं, वहाँ की ही भीड़ भाड़ में रहना पसन्द करते है वहाँ वह भी गांव की तरफ नहीं देखते वरन अपनी बाप-दादों की जमीन जायदाद को बेचकर शहर में ही अपना प्रधान कार्यक्षेत्र बनाते हैं।

इस प्रवृत्ति का कारण है कि शहरो में आकर वह सब प्रकार की तरक्की पाते हैं और इसके लिये अथाह अवसर देखते है। इनमे चारो तरफ अवसर ही अवसर दिखाई पड़ते है और सौ सैकड़ो में एक दोषी हाथ आ जाये तो उसका काम बन जाता है। उसकी समस्या और दिक्कतें हल हो जाती हैं शहरो मे आकर अनेक गाँव वालो ने विभिन्न दिशाओ मे तरक्की की है नौकरियो में जिनमें प्राइवेट व सरकारी दोनो प्रकार की शामिल हैं, उन्होंने अच्छी सफलता पाई है। व्यापार मे भी शहर मे आकर उन्होंने अपने जीवन के चन्द वर्षों मे ही लाखों करोड़ो कमाये ह वह अगर विना पैसे के पहुचे थे शहरो में तो अब दस बीस सालो मे लाखो के आदमी बन गये यह सुविधायें गाँव मे कहा है।

अगर इन गाँवो की अर्थव्यवस्था न बदलेंगे अगर हम उनको आगे बढ़ाने के लिये प्रयत्नशील न होंगे, अगर हम ग्रामीण युवको के लिये सफार के सभी अवसरो का रास्ता न खोलेंगे तो गाँव उजड़ जायेंगे,

(शेष अगले पृष्ठ पर)

जी चाहता है!

(स्व० कविवर "प्रणव" शास्त्री, फीरोजाबाद)

ऋषि ने बजाई थी जो वेद वंशी उसे फिर बजाने को जी चाहता है।
राष्ट्र अर्चना के लिए दिव्य दीपक सुवेदी सजाने को जी चाहता है॥

युग ने नया आज अँगड़ाई लेकर सहसा ही उठने की अब ठान ली है
फिर भी अचेतन हो चेतन पड़े हैं, दिवस को जिन्होने निशा मान ली है
चतुर चेतना की चुनौती सुनाकर उनके जगाने को जी चाहता है॥१॥

दलित दीन दासत्व की चक्कियो में दैत्यो से दिन दिन दले जा रहे हैं
मत मजहबों में सहस्रों सरल शुचि मनुज ही मनुज से छले जा रहे हैं
दयान्वित द्रवित भाव उमड़े हृदय से इनके बचाने को जी चाहता है।२।

लिए मन में कपकति का मिथ्या बहाना ये रूढ़ा के दीपक यहाँ पर जले हैं
कुटिल जाल से आर्य जीवन फंसाने को ईसा के चेले यहाँ पर चले हैं
इन्हे तर्क तीरों से घायल बनाकर सदा को भगाने को जी चाहता है।३।

असहाय होकर अनेकों विवश हो संशय में अब भी भटक रहे हैं
नहीं मार्ग मंजुल मिला मुक्ति का है भ्रमो में बिचारे भटक रहे हैं
सदियो से बिछुड़े हुए बन्धुओं को गले से लगाने को जी चाहता है।४।

कहीं पर सहस्रों धवल धेनु सुन्दर अनमोल प्यारी कटी जा रही हैं
शासन के कानो पै जूं तक न रेंगी आर्यों की छाती फटी जा रही हैं
"प्रणव" आज बलिदान की पुण्य वेला मे, जौहर दिखाने को जी चाहता है।५।

ऋषि के लगाये हुए कल्प तरु की जड़ें भी रसातल में गड़ ही गई हैं
लिए विश्व बन्धुत्व की भावनाएं शाखा सहस्रों भी बढ़ ही गई हैं
छाया सुखद, शान्त, शीतल, घनी में, जग के बिठाने को जी चाहता है।६।

न पावे प्रगति प्रेय केवल, चिरन्तन सुखद श्रेय का इस समय कोष होवे
दयानन्द की इस महा पुण्य भू में न भौतिक विचारो का जय घोष होवे
त्रय ताप-तमसा मिटे विश्व की ही मशालें जलाने को जी चाहता है।७।

आर्यसमाज के नियम

एक आलोचनात्मक दृष्टि

कोई भी समझदार व्यक्ति जिस के अन्दर सत्य की जिज्ञासा उदय हुई है वह आर्य समाज के नियमो को पढ़के उनका मनन कर के उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। आर्य समाज के नियमो का यदि मनन किया जाय और उनके अनुसार जीवन चर्या बनाई जाय तो मनुष्य की स्थिति अवश्य सुधरेगी ये नियम मनुष्य का संयत जीवन बनाने में अवश्य सहायक होंगे।

सभी सुपठित और सुशिक्षित जन यह स्वीकार करते हैं कि परमात्मा एक है और निराकार है। मूर्ति पूजा करने वालों की भी अब उस प्रकार की पूजा में आस्था नहीं रही। मैं तो आर्य-समाज के नियमों को मानव चरित्र निर्माण में इतना उपयोगी समझता हूं कि यदि ये नियम नगरों में तथा ग्रामों में जगह-जगह मोटे अक्षरों में लगाए जांय तो रास्ते जाते जो भी इन्हे पढ़ेंगे उनका अवश्य कल्याण होगा। सभी आस्तिक जन एक ही ईश्वर को मानते हैं और सभी उसी एक की उपासना करनी बताते हैं। दूसरे नियम का पहले नियम के साथ मिलाकर पाठ करने से मनुष्य में आस्तिक भावना अवश्य जागृत होती है। भगवान में विश्वास का होना उसके अस्तित्व में श्रद्धा होनी कोई छोटी बात नहीं। इसके साथ ही यदि मानव यह जानले कि वह भक्त वत्सल भगवान सदा हमारे साथ हैं और वही प्रभु जो हमारे अन्दर है वही सबके अन्दर है और हम सभी उसी महान सत्ता मे वास कर रहे हैं तो मनुष्य सब मे प्रेम करेगा किसी से भी द्वेष नहीं करेगा।

ऋषि दयानन्द तत्वदर्शी क्रान्त दर्शी या उसने भूले हुए विश्व के मनुष्यो को वेद के सत्य ज्ञान की ओर आकर्षित किया है। वेद में सम्प्रदाय है ही नहीं ये मत मतान्तर और सम्प्रदाय सब अल्पकाल के हैं वेद अत्यन्त प्राचीन है वेद से प्राचीन कोई भी धर्म ग्रन्थ नहीं। वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद में ज्ञान विज्ञान सभी कहा गया है। वेद अनुसार वैयक्तिक पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन मधुर और सुन्दर बनता है।

भला सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में किसे इन्कार हो सकता है और सब चाहेंगे कि सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए। अन्य मत प्रायः अन्ध विश्वास और परम्परा पर अवलम्बित हैं। वे बुद्धि और विज्ञान की कसौटी पर पूरे नहीं उतरते। अन्यमतों में जो अंश सत्यका है वह माननीय है पर जो मिथ्याचार है अथवा देश विशेष की परम्परा पर निर्धारित है उसे कौन समझदार मनुष्य सारे मनुष्यों के लिए उपयोगी समझेगा। अन्य मतों में लोगों को जान बूझकर अन्धकार में रखा जा रहा है। ज्ञानके प्रकाश में तो सत्य असत्य, ऋत और अनृत का निर्णय हो ही जाता है।

संसार का उपकार करना जिस संगठन का उद्देश्य हो उसमें संकीर्णता हो ही नहीं सकती। सभी अपनी शारीरिक आध्यात्मिक और सामाजिक उन्नति चाहते हैं सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना सभी सुसंस्कृत व्यक्ति चाहते हैं और मरसक निभाते भी हैं अविद्या का नाश आवश्यक है मिथ्याचार का नाश होना ही चाहिये। क्या अनृत झूठ पाखंड को फैलने दिया जाय। अन्यमतों को देखो तो सही क्या उनमें पूर्ण सत्य है? वैसा उत्तम नियम है कि प्रत्येक को अपनी ही प्रभाव में सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए। समाज के संगठन और व्यक्ति तथा समाजमें सामञ्जस्य और समन्वय के लिए यह आवश्यक है कि सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में परतंत्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र रहें यदि ऐसा नियम न हो तो मानव समाज की उन्नति रुक जाय और उसमें उच्छृंखलता आ जाय। संयत जीवन से ही व्यक्ति का विकास होता है और समाज उन्नत होता है। संभवतः यह आर्य समाज के नियमों का विवरण है जो सर्वमान्य है।

(५ में पृष्ठ का शेष)

गाँव वालोंमें भयानक असन्तोष उत्पन्न होगा और देश की हालत खराब जायेगी गाँवों में स्कूल कालिजों के खुलने से वहाँ शिक्षा का प्रचार हो रहा है वहां उन्हें अपने सीमित दायरे का पता भी चल रहा है। देश की वर्तमान अवस्था में शिक्षित ग्रामीणों की हालत हरिजनों से कम नहीं है क्योंकि वहाँ योग्य होते हुए भी सरकारी नौकरियों में नहीं आ सकते। व्यापार आगे नहीं बढ़ा सकते उनके लिए चारों तरफ ही रास्ता बन्द है। हमें खेद है कि योजना कमीशन ने हमारे नेताओं ने अनेक योजनायें उनके लिये बनाई हैं पर उनकी इन मूल बातों की तरफ अभी तक बिलकुल ध्यान नहीं गया है इस ओर बिना ध्यान दिये हम देश में असन्तोष की लहर को घटा नहीं सकेंगे।

क्या यही मजदूरों का राज्य है?

[पृष्ठ ६ का शेष]

प्रयोग करने की बात नहीं आयी है। दबाव में आते हैं, प्रवाह में बह जाते हैं, स्वार्थ का ध्यान रखकर मत देते हैं, लोभ में फंसकर धर्म का अनर्थ कर देते हैं, भय से आक्रान्त हैं—अज्ञान के कारण यथार्थ कर्तव्य नहीं जानते हैं—

व्यक्ति को देखते हैं, राष्ट्रहित का कम ध्यान रखते हैं—जैसे भिन्न भिन्न अतिभिन्न सांप्रदायिक समुदाय के वोटों के आधार पर प्रतिनिधि जाता है नेता लोग भी जनता के सम्मुख नाना प्रकार के विचार रखते हैं, ठीक कौन कहता है इसको जनता क्या जानती है जनता तो तत्व को जान भी नहीं पाती, देखा देखी उठती है, खड़ी होती है उमड़ती है और फिर ठण्डी पड़ जाती है विदुर ने ठीक ही कहा है कि—

गतानुगतिको लोकः
न लोकः पारमार्थिकः॥

जनता तो आगे जाने वाले के पीछे हो लेती है। कम सोचती है कि कहां चले क्यों चले, परिणाम क्या होगा इत्यादि विदुरने यह भी कहा है कि जनता जिसको देखती है कि यह पूजित है उसी की पूजा करने लगती है।

वस्तुतः वही राज्यप्रणाली श्रेष्ठ और सुखकर है जिसमें सब प्रकार के लोग, सब वर्गों के लोग आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें। किसी वर्ग विशिष्ठ की पोषक राज्य प्रणाली न तो वांछनीय है और न ही वह स्थायी हो सकती है।

तत्व यह है कि स्वतन्त्र भारत किसी के अन्धानुकरण में न फँस कर अपनी भूमिमे अपनी सभ्यता-संस्कृति के अनुरूप ही शासन प्रणाली चलाये तभी भारत का तथा भारत द्वारा संसार का कल्याण सध सकता है।

छात्रों में अनुशासन-हीनता

(पृष्ठ ६ का शेष)

भावी समस्या तो तुरन्त हल हो सकती है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली का एक बड़ा दोष तथा अनुशासन हीनता का कारण यह भी है कि 'धार्मिक शिक्षा' का इसमें नितान्त अभाव है। कालिजों और विश्वविद्यालयों में भी यह बात अनुभव में आई है, कि 'दर्शन', 'संस्कृत', 'मनोविज्ञान' 'साहित्य' आदि विषयों को लिए हुए विद्यार्थी कहीं अधिक अनुशासन में होते हैं, और शायद सबसे अधिक अनुशासन हीनता का आरम्भ 'राजनीति' पढ़ने वाले विद्यार्थियों से होता है। बात विषय भेद की नहीं, तथ्य वास्तव में यह है कि 'दर्शन' 'संस्कृत' तथा 'साहित्य' का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को किसी न किसी रूप में धार्मिक शिक्षा का आभास मिल जाता है। हमारी समझ में, कोई कारण नहीं कि यदि 'मनु' द्वारा प्रतिपादित धर्म के दस लक्षण तथा 'यम' और नियमों का ज्ञान विद्यार्थी को प्रारम्भ से ही करा दिया जावे, तो वह स्वयं ही बुरे तथा घृणित कार्यों से बचने का यत्न करेगा। किन्तु खेद है कि आजकल की प्रचलित शिक्षा प्रणाली 'सेकुलर' गवर्नमेण्ट की भाँति 'सेकुलर' हो गई है, फिर विद्यार्थी भी क्यों न सेकुलर बनेगा।

अनुशासन-हीनता का दूसरा प्रमुख कारण है गन्दे 'चलचित्र' वास्तव में देखा जावे तो तथ्य यह है कि 'चल-चित्र' विद्यार्थियों के शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक विकास में अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकते हैं। परन्तु प्रश्न तो यह है कि वे हों भी तो उच्च कोटि के—उनका आदर्श ऊँचा हो। विद्यार्थियों के लिए फिल्में जो बनाई जावें वे सर्व साधारण को दिखाई जाने वाली फिल्मों से सर्वथा भिन्न होनी चाहिए विदेशों में तो ऐसी प्रणाली है। परन्तु अपने भारतवर्ष में वही 'लव फारमूला' तथा 'मार धाड़ और ४२० की फिल्में बनती है, जिन्हें युवा भी देखते हैं तथा बच्चे भी। फिर क्यों न उनके मस्तिष्क पर उनका वैसा ही दुष्प्रभाव पड़ेगा।

तीसरा मूल कारण है—अध्यापक की निर्धनता। कल कारखाने में कार्य करने वाला मजदूर तो ३) या ४) प्रति दिन के हिसाब से पा सकता, परन्तु उस कारखाने में जहां व्यक्तियों का निर्माण होता है, चारित्र्य का निर्माण होता है, निर्माण कर्ता को ॥) २) रोज भी नहीं मिल पाता। इन्हीं कालिज और विश्वविद्यालयों की ... ... लीजिये। बच्चे का निर्माण, और इसमें अनुशासन की ... में, और प्रारम्भिक तथा माध्यमिक स्कूलों में जो दशा अध्यापकों की इस देश में है, वह शायद ही किसी सभ्य देश में हो। परम्परा तो यह थी, कि पहिले शिष्य पढ़ने के लिये 'गुरु कुल' में जाया करता था, अब अपनी आर्थिक अवस्था से तंग आकर स्वयं गुरु 'शिष्य कुल' अर्थात् विद्यार्थी को उसके ही घर पर अपने पेट की खातिर पढ़ाने जाना पड़ता है, फिर क्यों छात्र अध्यापक को अच्छा-खासा अपना नौकर न समझे? छात्र की एक साधारण सी 'ना' से जब अध्यापक की आजीविका को धक्का लग सकता है, तो फिर अध्यापक को भी छात्र की 'हां' में 'हां' कहने में खैर समझनी पड़ती है। ऐसी दशा में छात्रों में अनुशासन की भावना कहां से आ सकती है, क्योंकि जिस को वास्तव में छात्रों पर शासन करना था, वह विवशता से अपने पेट की उन का दास बन जाता है। अतः जब तक प्रारम्भिक तथा माध्यमिक स्कूलों के अध्यापकों की आर्थिक दशा को सुधारा नहीं जाता है उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं बढ़ाई जाती, तब तक यह आशा करना कि वे छात्रों को अनुशासन में ला सकेंगे, नितान्त असम्भव है।

चौथा मूल कारण—राज्य द्वारा शिक्षा का राष्ट्रीय न होना। साधारणतया जनता का अनुभव इस समय यह है कि राजकीय विद्यालयों में छात्र अधिक अनुशासन में रहते हैं। किन्तु वास्तविक बात यह है कि राजकीय विद्यालय विद्यार्थियों की संख्या के अधिक मुहताज नहीं होते। इसके विपरीत प्राइवेट संस्थायें विद्यार्थियों की संख्या पर चलती हैं। यदि किसी संस्था को विद्यार्थी पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं तब तो संस्था की आर्थिक स्थिति ठीक रहती है, वरना यदि कहीं संख्या नहीं बढ़ी तो ऐसे विद्यालयों के लिये एक समस्या आ खड़ी होती है। यही समस्या आज भारत के गुरुकुलों के भी सामने है। विद्यार्थियों की संख्या बढ़ाने के लिये अनेकों ऐसे स्कूलों को अनुचित प्रलोभन देने पड़ते हैं, और फिर कहीं अधिक नाम कटा कर संस्था छोड़ कर चले न जावें, इसके लिये बहुधा स्कूल अधिकारियों को उनकी अनुशासनहीनता को खून के घूंट पीकर सहना पड़ता है। अनेकों स्थानों पर विद्यार्थियों द्वारा अपमानित होकर भी पुनः उन्हीं विद्यार्थियों से उसी विद्यालय में नाम प्रविष्ट कराने की प्रार्थना करते हुये अध्यापकों और अधिकारियों को हमने देखा है। इन सब दशाओं में विद्यार्थियों में, अनुशासन-हीनता, उच्छृंखलता, उद्दंड अनुचित साधनों का प्रयोग कर पास होने की प्रवृति न आवे तो और क्या हो।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि अनुशासन बनाये रखने के लिये काफी हद तक अध्यापक समाज भी उत्तर दायी है। अध्यापकों को भी विद्वान, परिश्रमी, सच्चरित्र होना चाहिये। उनका जीवन एक आदर्श तथा अनुकरणीय जीवन हो। परन्तु इस से भी कहीं अधिक यह आवश्यक है कि ऐसा वातावरण हो, जिस में अध्यापक अपना आदर्श निभा सकें। किसी भूखे को कोई यह उपदेश करे कि देख, चोरी कर खाना बुरी बात है, और उसके लिये खाना जुटाने के साधनों का अवसर भी न प्रदान करे, तो कब तक यह भूखा अपने आदर्श पर टिका रहेगा। यही हालत आज अध्यापकों की है। १५०) के बजाय ८५) पाने वाले और १२०) के बजाय ७५) पाने वाले कब तक सच्चाई और ईमानदारी के साथ अपना निर्वाह कर सकते हैं, यह एक सोचने की चीज है, और यही एक प्रमुख कारण है कि आज एक आदर्शवादी व्यक्ति को शिक्षण व्यवसाय की ओर कोई लगाव नहीं रह गया है। समस्यायें हल हो, तो हो कैसे?

इसी लिये हम अन्त में कहना चाहते हैं कि वर्तमान अध्यापक की स्थिति और शिक्षा प्रणाली, जिसके अन्दर रह कर न तो अध्यापक और न छात्र किसी भी मतलब का नहीं रह पाता उसमें परिवर्तन करना अनिवार्य है। स्वतन्त्र भारत में यदि भावी नागरिकों को चरित्रवान, धार्मिक आस्तिक, और श्रेष्ठ बनाना है, तो गुरुकुल प्रणाली (अर्थात एक प्रकार का Residental Education System) अपनानी पड़ेगी, शिक्षक और शिष्य जहाँ साथ साथ रह सकें, ताकि छात्रों की गतिविधि पर पूरी नजर रखी जा सके। समस्त विद्यार्थियों का रहन सहन एक सा हो—उसमें गरीब-अमीर का भेद भाव छूत और अछूत का भेद भाव, बड़े और छोटे का भेद भाव न हो। समस्त विद्यार्थियों के लिये शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य हो। मातृ भाषा उसका माध्यम हो ब्रह्मचर्य पालन उसका आवश्यक अंग और धार्मिक शिक्षा उसका मूल आधार हो। शिक्षण संस्थायें राज्य द्वारा संचालित हों किन्तु राष्ट्रीयकरण शिक्षा के नियन्त्रण के उद्देश्य से न हो, केवल इस लिये हो कि शिक्षा निःशुल्क हो सके साथ ही अध्यापकों की आर्थिक स्थिति उठ सके। विद्यार्थियों के लिये अच्छे, शिक्षाप्रद चल चित्रों का निर्माण हो जो उनको विद्यालयों में ही दिखाये जा सकें। छात्रों के संघ बनें, इसलिये तथा अध्यापकों की कमाई चुकायें, अपितु इसलिये कि वे विद्यालयों में एक सुन्दर साहित्यिक कलापूर्ण वातावरण प्रस्तुत कर सकें। जब ऐसी परिस्थितियाँ बन जावेंगी, तब अनुशासन हीनता की [illegible] स्वतः हो जावेगी।

[पृष्ठ १५ का शेष]

उसकी भूरि भूरि प्रशंसा करके बैठ रहे हैं क्या उसमें त्रुटियां नहीं रह गईं। किन्तु व्याख्या की अनु त्रुटियों के कारण पंच महा यज्ञ विधि में आपने परिवर्तन या परिवर्धन कर दिया, ऐसा मान कर यदि मैं भी आपके विरुद्ध लेख लिख दूं तो क्या आप इसे उचित समझेंगे।

आपने अपने लेख में परोपकारिणी सभा द्वारा पंच महा यज्ञ विधि के नये संस्करण पर भी आक्षेप किया है। किन्तु आक्षेप का कोई ठोस आधार न मिलने के कारण केवल इतना ही लिख कर रह गये कि—वही दशा वैदिक यन्त्रालय की "पंच महा यज्ञ विधि" के नये संस्करण की है। श्री पंडित जी आपने कम से कम दो चार स्थल तो ऐसे दिखाए होते, जहाँ इससे पूर्व छपे चौदहवें संस्करण की अपेक्षा नये संस्करण के मूल ग्रन्थ में कुछ परिवर्तन या परिवर्धन न किया गया हो। अब भी मैं आपसे साग्रह अनुरोध करता हूं कि आप आर्य मित्र में ही वैदिक यन्त्रालय द्वारा प्रकाशित पंच महा यज्ञ विधि के नये संस्करण में इससे पूर्व के चौदहवे संस्करण की अपेक्षा मूल में कहां कहाँ बढ़ाया या घटाया गया है। अर्थात् आपके लेखानुसार परिवर्तन या परिवर्धन किया गया है। लेख द्वारा प्रकाश डालने की कृपा करें।

आपके लेख तथा हमारे उत्तर को पढ़ कर आर्य जनता स्वयं इस बात का निर्णय कर लेगी कि आपके पंच महा यज्ञ विधि के नये संस्करण पर किये गये आक्षेपों में कहाँ तक सत्यता है। रहा यह कि म० कृष्ण जी ने आपके बताने पर यह कह दिया कि पंच महा यज्ञ विधि के इस नये संस्करण को आग लगा देनी चाहिये। अव्वल तो मैं ऐसा मान नहीं सकता कि ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त म० कृष्ण जी ऋषि के पवित्र ग्रन्थ के सम्बन्ध में ऐसा कहेंगे। और यदि आपने अपने वाक् चातुर्य से उन्हें उलटा सीधा समझा दिया हो, और उन्होंने अपने सरल स्वभाव से यह समझ कर कि एक आर्य पंडित कभी असत्य नहीं बोल सकता, आपकी बात पर विश्वास करके ऐसा कह भी दिया हो तो इसमें कुछ भी आश्चर्य की बात नहीं।

क्या परोपकारिणी सभा ऋषिके ग्रंथोंमें परिवर्तनकर रही है ?

(लेखक—आचार्य श्री भद्रसेन जी अजमेर)

ता० ६ जून के "आर्य मित्र" में श्री पं० विश्वश्रवा जी ने "ऋषि के ग्रन्थों में परिवर्तन परिवर्धन और संशोधन" नामक एक लेख लिखा है। जिसमें उन्होंने जहाँ अन्य संस्थाओं पर यह दोषारोपण किया है कि वे ऋषि के ग्रन्थों में परिवर्तन आदि करने लग पड़ी हैं, वहाँ परोपकारिणी सभा पर भी यह दोष लगाया है कि वह भी ऋषि के ग्रन्थो में परिवर्तन आदि करने लगी है। उदाहरण रूप मे उन्होने परोपकारिणी सभा द्वारा मुद्रित ऋग्वेद भाष्य के प्रथम खंड तथा पंच महायज्ञ विधि के नये संस्करणो का उल्लेख किया है। अतः इन दोनों संस्करणों का संशोधन मेरे द्वारा हुआ है, अतः श्री पं० विश्वश्रवा जी के भ्रान्ति पूर्ण लेख का उत्तर देना मेरा कर्तव्य हो जाता है।

श्री प० विश्वश्रवा जी न ऋग्वेद भाष्य के प्रथम खड मे ही मेरी एक टिप्पणी पर आक्षेप किया है और साथ में यह भी लिखा है कि मैंने उपर्युक्त भाष्य में से चार सौ अशुद्धियाँ निकाल कर श्री हरविलास जी शारदा मन्त्री परोपकारिणी सभा के पास भेजी थीं। श्री पं० विश्वश्रवाजी द्वारा भेजी वे अशुद्धियाँ कैसी थीं इसका स्पष्टीकरण मैंने परोपकारिणी सभा को दिये अपने उत्तर में भली प्रकार से कर दिया था। अब सर्व प्रथम हम उन अशुद्धियो का कुछ दिग्दर्शन पाठकों को भी कराना चाहते हैं। उन अशुद्धियो में कम्पोज या छपने की थोड़ी असावधानी से रही मात्रा बिन्दु, विराम अक्षर आदि की अशुद्धियो की भरमार तो है, किन्तु सबसे आश्चर्यजनक अशुद्धियां वे हैं कि ऋषि के भाष्य के जिन पदों में मैंने कोइ विशेष अशुद्धि न समझ कर उनका सशोधन न कर उन्हे वैसे ही रहने दिया, किन्तु अपने को ऋषि का अनन्य भक्त कहने वाले, और ऋषि के ग्रन्थों मे एक भी अशुद्धि न मानने वाले प० विश्वश्रवा जी ने उनको भी अशुद्ध मान कर मेरे द्वारा उन पदों का परिवर्तन न करने के कारण उनकी भी अशुद्धियों में गिनती कर दी। पं० विश्वश्रवा जी की भेजी अशुद्धियो में ऐसी एक नहीं, दो नहीं, प्रत्युत ऐसी लगभग पचास अशुद्धिया हैं, जहां कि उन्होंने ऋषि के लिखे शुद्ध पदों को भी अशुद्ध ठहराया है। और चूंकि मैंने उन्हें ऋषि की अशुद्धि न समझ कर उनका संशोधन नहीं किया इस लिये ऋषि के ग्रन्थों में परिवर्तन के घोर विरोधी श्री पं० विश्वश्रवा जी ने इसे मेरा घोर अपराध समझ कर उन्हें भी मेरी अशुद्धियों के रूप में प्रकट किया है। उदाहरणार्थ—ऋषि ने कई स्थानों पर अनुस्वार को परसवर्णनकार आदि नहीं किया। अर्थात् मन्त्र, यन्त्र, आदि पदो में अनुस्वार को नकार न कर मंत्र यंत्र, आदि ऐसा लिखा है ऐसे पचासों स्थल हैं जहाँ ऋषि ने अनुस्वार ही रहने दिया है, नकार आदि नहीं किया। इतना ही नहीं प्रत्युत जिन मन्त्र, यन्त्र, आदि पदो को मेरी संशोधित ऋग्वेद भाष्य की नई आवृत्ति में श्री पं० विश्वश्रवा जी ने अशुद्ध माना है, वहाँ भी हस्त लिखित प्रति में तथा इससे पूर्व छपी प्रतियों में अनुस्वार ही है, परसवर्ण नकार आदि नहीं। अब मैं श्री पं० विश्वश्रवा जी से पूछना चाहता हूं कि ऋषि के हस्त लिखित ग्रन्थों के अनुसार ऋषि के ग्रन्थों का विद्वानो द्वारा संशोधन कराने वाली परोपकारिणी सभा ऋषि के ग्रन्थों में परिवर्तन कर रही है, या आप ऋषि के ह० लि० तथा मुद्रित पचासों पाठों को भी अशुद्ध मान कर उनमे परिवर्तन करना चाहते हैं।

दूसरा—मैं श्री प० विश्वश्रवा जी से पूछना चाहता हूं कि उन्होने ऋग्वेद भाष्य के नये संस्करण में से किस आधार पर अशुद्धियाँ निकाली हैं, हस्त लिखित प्रति के आधार पर या इससे पूर्व मुद्रित संस्करण के आधार पर अथवा अपनी बुद्धि से। यदि अपनी बुद्धि से हो, इसमें क्या प्रमाण है कि हस्त लिखित तथा पूर्व मुद्रित संस्करण के अनुसार वे अशुद्धिया भी हैं या नहीं। और यदि हस्त लिखित या पूर्व संस्करण के आधार से, तो प्रथम तो आपके पास हस्त लिखित प्रति है ही नहीं और यदि मान भी लिया जाये कि आपने हस्त लिखित प्रति तथा पूर्व मुद्रित संस्करण के अनुसार ही अशुद्धियाँ निकाली हैं तो उसमें लिखे मन्त्र, यन्त्र, आदि पचासों पदों को ऋषि के ग्रन्थों में एक भी अशुद्धि न मानने वाले आपने अशुद्ध क्यों ठहराया, क्या इसमें ऋषि ग्रन्थों के हित की अपेक्षा किसी प्रामाणिक संस्था को बदनाम करने या किसी व्यक्ति से बदला चुकाने का भाव तो छिपा नहीं है ?

श्री पं० विश्वश्रवा जी ने ऋग्वेद भाष्य के नये संस्करण में दी मेरी 'लोटो रूप तुलुक्' इस टिप्पणी पर आक्षेप किया है, और लिखा है कि एक लघु कौमुदी पढ़ा लिखा भी समझता है कि बुध् धातु को लुङ् लकार में चिण् होकर "बोधि" रूप बनाता है, इत्यादि। इस सम्बन्ध में मैं इतना ही लिखना चाहता हूं कि ऋषि दयानन्द ने जहाँ जहाँ भी "बोधि" शब्द का अर्थ किया है वहां प्रायः लोट लकार का ही अर्थ किया है लुङ् लकार का तो कहीं भी नहीं और वह भी लोट लकार के मध्यम पुरुष के एक वचन परक, इस स्थल पर भी मुख्य-तया लोट् लकार तथा उसके मध्यम पुरुष के एक वचन परक अर्थ ही है। अब मैं लघु कौमुदी के विद्यार्थी से नहीं, प्रत्युत व्याकरण के धुरन्धर विद्वान् श्री आचार्य विश्वश्रवा जी से पूछना चाहता हूं कि क्या लुङ् लकार के मध्यम पुरुष के एक वचन में "बोधि" रूप ही बनेगा। सम्भवतः श्री पं० विश्वश्रवा जी कहेगें कि पुरुष व्यत्यय करने पर काम चल जायेगा। प्रथम तो ऋषि दयानन्द ने प्राय. सभी स्थलों में 'बोधि' पद का लोट लकार के मध्यम पुरुष परक अर्थ करने पर कहीं भी पुरुष व्यत्यय नहीं लिखा। अन्यथा जहाँ उन्होने "लोडर्थे लङर्थे वालुङ् अडभावश्च' लिखा था, वहाँ 'पुरुष व्यत्ययोपि" ऐसा भी लिख देते। और तो क्या सर्वत्र प्रायः "बोधि" पद का लोडर्थ परक अर्थ करने पर भी 'लोडर्थे लुङ' ऐसा भी केवल इसी स्थल को छोड़ कर अन्यत्र कहीं भी नहीं लिखा। इससे यह भी सिद्ध होता है कि महर्षि दयानन्द 'बोधि' पद को न केवल लुङ् लकार का [illegible] लोट् लकार का रूप भी मानते हैं। अब रहा यह कि 'बोधि' रूप लोट् लकार का कैसे बन सकता है। लेख विस्तार भय से इसके उत्तर में मैं इतना ही लिखना उचित समझता हूं कि जिस दिन श्री पं० विश्वश्रवा जी 'बोधि' रूप को लुङ लकार के मध्यम पुरुष के एक वचन के बिना व्यत्यय आदि के किये सिद्ध कर देगें उस दिन मैं भी 'बोधि' पद को लोट् लकार का रूप सिद्ध करके दिखा दूंगा। हाँ इतना मैं अवश्य मानता हूं कि इस टिप्पणी को 'लोटो रूपं न तुलुङ्' ऐसा न लिख कर 'लोट य पीदं रूपं सम्भवति' ऐसा न लिख देता तो अच्छा था। इसी लिये मेरे कहने पर श्रीमती परोपकारिणी सभा ने आज से डेढ़ वर्ष पूर्व 'लोटय पीदं रूप सम्भवति" ऐसी चिट पर टिप्पणी लगवा दी है। और यह बात मैंने श्री प० विश्वश्रवा जी को आज से तीन चार मास पूर्व धारा नगर में कह भी दी थी। जिसके उत्तर में श्री पं० विश्वश्रवा जी ने कहा था, मेरे पास जो प्रति आई है उसमें तो ऐसी चिट नहीं लगी हुई, मैंने कहा हो सकता है चिट लगाने वाला कुछ प्रतियों में चिट लगाना भूल गया हो अथवा उस पर से चिट उतार दी गई हो। श्री पं० जी को चाहिये था कि मेरी इस टिप्पणी पर टीका टिप्पणी करने से पूर्व परोपकारिणी सभा के मन्त्री से पत्र द्वारा पूछ लेते कि क्या आप ने इस प्रकार की चिट लगाई है। यदि वहां से नकारात्मक उत्तर आता तो वह लेख लिखने का कष्ट करते। किंतु यहाँ तो लेख लिखने का उद्देश्य ही दूसरा था। यदि ऐसा नहीं तो जहाँ इस टिप्पणी को देख कर श्री प० विश्वश्रवा जी कुपित हो गये, वहाँ ऋग्वेद भाष्य के इस नये संस्करण मे मैंने अन्य पचासो टिप्पणियो द्वारा भाष्य दिये आर्ष ग्रन्थो के पत्रो सहित उदाहरणों के पते ढूंढ कर दे दिये हैं, पतों को शुद्ध किया है। भाष्य मे कम्पोजीटरों की गल्ती से छूट गये पाठों को पूरा किया है। व्याकरण के अस्पष्ट स्थलो को स्पष्ट किया है, निरुक्त व्याकरण आदि के अशुद्ध पाठो को मूल ग्रन्थो के आधार पर शुद्ध किया है। जहाँ ऋषि ने व्याकरण के कार्य तो लिखे है किन्तु उनके विधायक सूत्रो का निर्देश नही किया वहाँ वहाँ पाठकों की सुविधा के लिए उन सूत्रो तथा उनके पतो को भी टिप्पणी में दे दिया गया है। श्री प० विश्वश्रवा जी इस शुभ प्रयास के लिये परोपकारिणी तथा मुझे धन्यवाद भी देते। इतना ही नहीं भाष्य में दी पचासों टिप्पणियों मे से यदि एक दो में कुछ भूल भी रह गई हो तो मनुष्य अल्पज्ञ है, उससे भूल होना सम्भव है, ऐसा समझ कर उन्हें शुद्ध भाव से बताना चाहिये था।

मैं आपसे ही पूछना चाहता हूं कि आपने जो पंच महा यज्ञों के संबंध में पुस्तक लिखी है, जिसे कि आप अपने व्याख्यानो में ऋषि दयानन्द जी की "पंच महा यज्ञ विधि" की प्रामाणिक व्याख्या कह कर और

(शेष पृष्ठ १४पर)

पताः—'आर्यमित्र'
५ मीराबाई मार्ग, लखनऊ
फोन—११३
तार—'आर्यमित्र'

आर्यमित्र

रजिस्टर्ड नं० ६० ए०
४ सितम्बर, १९५५

भारत के प्रधान मंत्री पं० नेहरू की विदेश यात्रा के कुछ प्रभावशाली चित्र

युगोस्लाविया की पार्लियामेन्ट को संबोधित करते हुए, प्रधानमंत्री नेहरू

आर्यप्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के मुख्य उपप्रधान

राजकुमार रणंजयसिंह
आप आर्यमित्र की उन्नति के लिए पूरे बल से यत्नशील हैं

मार्शल टीटो के साथ संयुक्त घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर करते हुये।

पोलैंड के प्रधान मन्त्री से गम्भीर वार्ता करते हुए।

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के दो अन्तरंग सदस्य

[illegible]

[illegible]

श्री विद्यानन्द जी विदेह का बहिष्कार हो

वैदिक सिद्धान्तों के विरोधी के लिए आर्यसमाज में स्थान नहीं

विदेह जी को धन देना, उनके व्याख्यान कराना, या किसी भी प्रकार से उनका समर्थन करना आर्यसमाज की जड़ों पर कुल्हाड़ी चलाना है

लम्बे समय से श्री विद्यानन्द जी 'विदेह' अजमेर निवासी के कार्य आर्य पुरुषों की चिन्ता का कारण बने हुए थे। उनकी पुस्तकें, उनके भाषण, उनका सम्मान आर्य जनता के धन से पोषित होकर भी आर्य समाज की आधारित बातों को नष्ट भ्रष्ट करने में लगा हुआ था। समय-समय पर आर्य पत्रों ने, विद्वानों ने इस ओर सभा का ध्यान आकर्षित किया। परिणाम स्वरूप धर्मार्य सभा में यह विषय उपस्थित हुआ। विदेह जी को कई बार समझाने का भी यत्न किया गया पर परिणाम कुछ भी न निकला, उन्होंने लिखित क्षमा तक मांगी और भूलें लिखित स्वीकार की पर उनकी उल्टी गतिविधि बढ़ती ही गयी, वेद भाष्य के लिये अपीलें निकलती रहीं और अगस्त का एक विशेषांक भी विदेह जी के सम्पादन में प्रकाशित हुआ जिसमें विदेह स्तुति के अतिरिक्त कुछ और न था। कई आर्य पत्रों व विद्वानों की सम्मतियां भी तोड़ मरोड़ कर और पुरानी प्रकाशित की गयीं, अपने को वेद मूर्ति आदि घोषित किया गया।

इस प्रकार स्थिति धीरे-धीरे असह्य होती गई और अनुभव किया गया कि अब जरा सी भी ढील आर्य समाज के लिये भयंकर हानिप्रद सिद्ध होगी। अतः सोच विचार कर धर्मार्य सभा ने २७-८-५५ को एक प्रस्ताव पास किया और उसी के आधार पर सार्वदेशिक सभा ने २८ अगस्त को निश्चय कर आर्य जनता को आदेश दिया कि आर्य समाज से विदेह जी का बहिष्कार किया जाए! उनके ग्रंथ पुस्तकालय में न रखे जांय और न उन्हें किसी प्रकार की सहायता दी जाय!

अतः अनुशासन और कर्तव्य के नाते सम्पूर्ण आर्य जगत का कर्तव्य है कि वह विदेह जी का पूर्ण बहिष्कार करे। उन को सहयोग देना जहां सार्वदेशिक सभा की आज्ञा का उल्लंघन होगा वहां होगा वैदिक सिद्धान्तों पर प्रबल कुठाराघात भी! इसलिये इस ओर अत्यधिक ध्यान देने के लिये मैं आर्य जनता से प्रार्थना करता हूँ।

कालीचरण आर्य
प्रधान मन्त्री—सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि
सभा देहली

वैदिक प्रार्थना।

ओ३म् जिह्वा मे भद्र वाङ् महो मनो मन्युः स्वराड् ... मोदाः प्रमोदा अंगुलीरङ्गानि मित्रंमे सहः

मेरी जिह्वा कल्याणभाषिणी हो। वक्तृता महा ... हो, मेरा प्रताप स्वप्रकाशमान हो। मेरी ... तथा अंगप्रत्यङ्ग मोद एवं प्रमोदरूप हों। ... मेरा मित्र हो।

इस अंक के आकर्षण

आर्यसमाज और वेद प्रचार

[श्री रामजी प्रसाद जी कोषाध्यक्ष आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश]

आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज के नियम तथा उद्देश्य लिखते हुये वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म बतलाया है, इस कार्य के लिये विगत ७८ वर्षों में आर्यसमाज ने क्या किया और उसका परिणाम क्या रहा, अर्थात जनसाधारण की इस वेदप्रचार योजना के प्रति क्या प्रतिक्रिया रही, साधारणतया आर्यसमाज के क्षेत्र में इस कार्य के लिए स्थान स्थान पर आर्य समाज मन्दिर स्थापित हुए, गुरुकुल तथा दयानन्द कालिज खुले, वैदिक साहित्य प्रकाशनार्थ यत्र तत्र मुद्रणालय स्थापित किए गए इस सब के परिणामस्वरूप आर्यजगत में मन्त्री प्रधानो की एक लम्बी सेना तैयार हुई, उपदेशकों तथा प्रचारकों की संख्या में असाधारण वृद्धि हुई और उनके साथ ही दयानन्द कालिज से निकले, साधारणतया आर्यसिद्धान्त से अनभिज्ञ, विश्वविद्यालय के नवयुवक स्नातकों के बेकारी की समस्या पैदा हुई, अनेक पत्र पत्रिकाओं के प्रकाशन आरम्भ हुए, छोटी मोटी बड़ी संख्या में पुस्तक छपीं तथा पृथक पृथक भाषाओं में वेदों के अनुवाद प्रकाशन का कार्य हुआ, परन्तु पाठ शुद्धि, प्रकाशन शुद्धि तथा आर्य सिद्धान्त प्रतिपादनमें बल देने के स्थान पर अधिकांश में व्यापारिक प्रतिस्पर्धा, आपसी छिद्रान्वेषण और मनमाने विचार पुष्टि का कार्य हुआ।

जनसाधारण में इस वेदप्रचार की क्या प्रतिक्रिया हुई, वेदप्रचार के नाम आर्यसमाजों में उसके मन्त्री प्रधान के नाम से प्रकाशित सूचना पर होने वाले वार्षिक उत्सव पर जनता को प्रसन्न करनेवाले भजनो तथा देश की कुरीतियोंके कारण होने वाले परिणामो .. बेकारी, बेरोजगारी, अशिक्षा और अस्वस्थता में सरकार तथा समकालीन दलों के कार्यों का ऊहापोह करनेवाले व्याख्यान, जिनमें साधारणतया आर्य सिद्धान्तों के प्रतिपादन की गन्ध भी नहीं होती, जनता अपना मनोरंजन ही करती है ऐसा प्रतीत होता है, इस तीन दिन के धूमधाम मे ही वेद प्रचार मंडल का प्रत्येक दल अपनी सफलता अथवा असफलता आंकता है, इसके पश्चात, वर्ष के ३६२ दिन उसके विश्राम के दिन हुआ करते हैं, रही बात साप्ताहिक अधिवेशनो की जहाँ चुनाव चर्चा गरम होती है, गिनकर बेरह की पूर्ति कर ली जाती है, अन्यथा समयाभाव के कारण उपस्थित न हो सका, कभी अकस्मात, अधिवेशन में भेंट होने पर स्पष्ट कर देना ही पर्याप्त समझा जाता है, नि सन्देह इन तीन कार्य के दिनों में मन्त्री प्रधान तथा उनके विश्वासपात्र आर्य अथवा सहायक सदस्यों सरगर्मी देखते ही बनती है, एक बड़ी धनराशि धुरन्धर विद्वानों तथा ओजस्वी व्याख्यान दाताओं के मार्गव्यय तथा सम्मान में व्यय होती है, पडाल की सजावट, आतिथ्य सत्कार तथा नवीनतम यन्त्रों की सहायता से जनसाधारणको सूचित करने में भी कम व्यय नहींहोना, इस तीन दिन की घोर वाणी वर्षा से कुछ बीज पड़ जाते हैं और कुछ उसके बाद के ३६२ दिन मे सूख के जल जाते है, परिणाम यह होता है कि उपज तो दूर रही, अर्थात, नये सदस्यो की तो बात ही क्या, कुछ पुराने भी थककर बैठ जाते है,

हम अब वेदप्रचार मडल के दूसरे दल उपदेशक तथा प्रचारक वर्ग पर दृष्टिपात करेंगे, यह वर्ग दो भागो मे विभक्त है, (अ) स्वतन्त्र और (ब) सभाओं अथवा समाजों के अधीनस्थ, दोनों ही प्रकार के लोगो के समक्ष साधारणतया वेदप्रचार से पहले परिवार पालन की समस्या और जो अपने स्थान पर स्वाभाविक भी है, कुछ थोड़े से ब्रह्मचारियों, वानप्रस्थियों तथा सन्यासियो को छोड़कर शेष बड़ी संख्या में गृहस्थ प्रचारकों के समक्ष नि सन्देह एक बड़ी विकट समस्या उस समय उपस्थित हो जाती है, जब एक ही समय में वेदप्रचार और परिवार संरक्षण का प्रश्न उपस्थित हो जाता है, तब इच्छा अथवा अनिच्छा से प्रसन्नता अथवा विवशता से, शीघ्रता अथवा विलम्ब से उन्हें पहले को छोड़कर दूसरे की ओर बढ़ देना पड़ता है, उदाहरणार्थ, किसी सुदूर ग्राम में स्थित आर्थिक दृष्टि से तृतीय श्रेणी के समाज का उत्सव और किसी बड़े वैभवशाली नगर के किसी उद्योगपति सेठ के पुत्र का विवाहोत्सव, वेद प्रचार की महत्ता, आवश्यकता और उपयोगिता दूसरे की अपेक्षा पहले से अधिक है, परन्तु आर्थिक दृष्टिकोण से परिवार पालन की भावना से ओतप्रोत अथवा पारिवारिक आर्थिक संकट से ग्रस्त प्रचारक को अन्ततोगत्वा दूसरे को ही वेद प्रचार के लिए स्वीकार करना पड़ता है और पहले के पास पत्र लिखता है दुःख है कि व्यस्त रहने के कारण नहीं आ सकता, इस पर यदि सूक्ष्मता से विचार किया जाए, तो ज्ञात होगा कि बहुत कुछ अंशों में प्रचारक निर्दोष है, दोष इसमें किसी का है, तो केवल उस पद्धति का है, जिस में इस वर्ग को वेद प्रचार जैसे महत्वपूर्ण कार्य का उत्तरदायित्व संभालने को कहा या अवसर दिया गया। अब रही बात इनके प्रचार और उस से उत्पन्न होने वाले प्रभाव की। इस सम्बन्ध में अंग्रेजी लोकोक्ति उद्धृत की जा सकती है "व्हाट एव्हर यू वान्ट टू बि सो बी", अर्थात् आप जो अन्यों से चाहते हैं, उसे स्वयं करने का पहले अपना स्वभाव बनाइये, अन्यथा आपकी इच्छाएं निरर्थक होंगी। और आप असफल होंगे। प्रचारक की स्थिति गृहस्थ से भी दयनीय होती है, गृहस्थ साधारणतया एक स्थान पर के कोने कोने का चक्कर लगाने तथा मंच पर सफल अभिनय करने का अथक परिश्रम करने के पश्चात् भी कठिनाई से और कभी कभी केवल जीवन निर्वाह भर पैसे मिल जाते हैं और इसी से वह इस जीवन से बाहर नहीं तो अन्तर में इतना हताश और उदासीन रहता है कि अपने पुत्र पुत्रियों को भूलकर भी इस मार्ग का पथिक बनने नहीं देना चाहता। इसीलिए मंच पर से गरज असंख्य नर नारियों के समक्ष अपने २ बच्चों को शिक्षार्थ वेदप्रचार की दृष्टि से गुरुकुलों में भेजने की बात कहने वाला प्रचारक अपने ही बालक और बालिकाओं को कालिज तथा विश्वविद्यालय मे भेजता है। यही दशा उसके अन्य उपदेशों की प्राय रहती है। इसका ही यह परिणाम है कि थोड़े से कर्मठ तपस्वी और चरित्र के धनी प्रचारको को छोड़कर के शेष सभी के उपदेशों का प्रभाव जनता में नहीं के बराबर होता है। इसके साथ ही हम दयानन्द कालिजों से—जिनके सृजन, निर्माण और संचालन में हमने अपना बहुत कुछ लुटा दिया और जो आज यदि सत्य

कहा जाए तो कटु और अप्रिय हो सकता है, आर्यजगत् के दलबन्दी प्रिय महानुभावो के आकर्षण के एक मात्र स्थल रह गए हैं, जिसके फलस्वरूप आपसी मनमुटाव, घृणा, द्वेष तथा अपनी अपनी मनाने के मिथ्या अभिमान से जनित गुटबन्दी हमारे बीच पैदा हो गई है, और जो वेद प्रचार के कामो में लगने वाली शक्ति को क्षीण कर रहा है, पर विचार करेंगे।

वहाँ के पढ़ने वाले विद्यार्थी, पढ़ाने वाले आचार्यगण तथा स्नातकों को देखकर अत्यन्त दुःख और आश्चर्य होता है कि जिस संस्था का निर्माण वेदप्रचार के लिए युवको को तैयार करने के लिए किया गया हो, वहाँ कुछ को छोड़कर शेष सभी राजकीय अथवा अर्द्ध राजकीय कार्यालयों के लिए लिपिक रंगरूट तैयार हो रहे हैं, जो देश में बेकारी की बढ़ती हुई अग्नि में एक और आहुति बन गए हैं। उससे भी अधिक आश्चर्य तब होता है, जब हम यहाँ के स्नातको को यह कहते सुनते हैं—जब देश में पेट भरने की समस्या उपस्थित हो, तब यज्ञ में घी का व्यय का क्या औचित्य हो सकता है। दूसरे आर्य समाज के पास कोई प्रोग्राम नहीं रहा, जिसको लेकर वह आगे बढ़े। तृतीय, आज की समस्या धर्म की नहीं, धन की और उसके उचित तथा न्याययुक्त विभाजन की है, इत्यादि।

आर्यजगत् में आज पत्र पत्रिकाओं की संख्या कम नहीं है। उन्हीं पत्रो में वेद प्रचार का कार्य होना बतलाया जाता है और इसके ही आधार पर देश के गणमान्य आर्य व्यक्तियों तथा विदेशों में वैदिक सिद्धांत पोषक उद्योगपतियों से सहायता प्राप्त की जाती है। परन्तु क्या हम साहस पूर्वक यह कह सकते हैं कि इसमें देश, समाज तथा जनता के हितार्थ वेदों में बताए मार्ग का प्रदर्शन

(शेष पृष्ठ १५ पर देखिए)

सुझाव और सम्मतियाँ

दर्शन और जीवन

[लेखक—श्री [illegible]]

जीवन के हर पथ में उठते प्रश्नों के बीच गुत्थियां सुलझाने का नाम 'दर्शन' है। 'दर्शन' और जीवन का अभिन्न सम्बन्ध जीवन की साधकता है। क्यों, क्या और कैसे लक्ष्य का ज्ञान करा उधर बढ़ने और वहां पहुँचने की प्रेरणा देता है जहां पहुँचने का आरम्भ मनुष्य जन्म से होता। विशेष जानने के लिए लेख पढ़िए। —सम्पादक

दर्शन का क्षेत्र बहुत व्यापक है सम्भव का कोई ऐसा विषय नहीं जो दर्शन शास्त्र से अछूता न हुआ हो। सभी विज्ञानों के अन्तिम तथ्य दर्शन शास्त्र के विवेच्य विषय होते हैं। विज्ञान की आधार शिलाओं का अन्वेषण दर्शन शास्त्र द्वारा होता है। दर्शन शास्त्र के आत्मीय सहकारी तर्क शास्त्र के (विशेषकर आगमनात्मक तर्क शास्त्र को अंग्रेजी में Inductive logic कहते हैं) ज्ञान बिना वैज्ञानिक अन्वेषक भी अपने परीक्षणों में सफल नहीं होता। जहां जहाँ विवेचना और ज्ञान का क्षेत्र है वहां वहाँ दर्शन का अधिकार है 'जहाँ जहाँ पादशाही तहां दावा शिवराज का', दर्शन शास्त्र स्वयं अपने को भी शासित करता है। दर्शन शास्त्र की उपयोगिता पर विचार करना भी दर्शन शास्त्र का विषय है।

दर्शन शास्त्र वैज्ञानिक का ही पथ प्रदर्शन नहीं करता है वरन् साधारण मनुष्यों में वैज्ञानिक मनोवृति को भी उत्पन्न करता है। वैज्ञानिक केवल वही नहीं है जो प्रयोगशाला में बैठ कर प्रयोग नलिकाओं में रसायनिक पदार्थों का उलट फेर करता रहता है वरन् समाज शास्त्र, अर्थ शास्त्र, राजनीति शास्त्र, गणित शास्त्र सभी में वैज्ञानिक पद्धति से काम लिया जाता है। दैनिक जीवन में भी हम वैज्ञानिक पद्धति की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। जीवन में न्याय परायण और सन्तुलित मन का वह मनुष्य कहा जाता है जो तर्क से काम लेता है और पक्ष विपक्ष के दोनों ही पक्षों को बराबर महत्व देता है। वैज्ञानिक को अपने पक्ष की पुष्टि के उदाहरणों का जितना ध्यान रखना पड़ता है उससे अधिक वह विपरीत उदाहरणों को महत्व देता है। एक भी विपरीत उदाहरण के उपस्थित हो जाने पर जब तक वह उसकी व्याख्या न करले वैज्ञानिक को चैन नहीं पड़ती। कभी कभी तो व्याख्या न होने पर उसको अपना प्रिय से प्रिय विचार धारा को गाल जाना पड़ जाता पड़ता है।

हमारे कितने अन्ध विश्वास विपरीत उदाहरणों की उपेक्षा पर निर्भर रहते हैं। यूनान में एक देवता के मन्दिर में उन लोगों के चित्र टंगे हुए थे जो उस देवता की मन्नत मानने के कारण जहाज में डूबने से बच गये थे। एक मनुष्य ने वहां के पुजारी से प्रश्न किया कि क्या तुम्हारे पास उन लोगों के भी चित्र हैं जो मन्नत मानने पर भी डूब गये।

परीक्षण बुद्धि प्रत्येक विचारशील मनुष्य का एक आवश्यक गुण है तुलसीदास जी ने भी कम से कम बहराइच की जात (यात्रा) करने वालों के सम्बन्ध में इस परीक्षात्मक बुद्धि से काम लिया है, आज यदि कम आवें कम बहराइच जाय, इस परीक्षा बुद्धि का हम को प्रत्येक कार्य में उपयोग करना चाहिए। यद्यपि हम को यह मानना पड़ेगा कि सब जगह परीक्षण बुद्धि से काम लेने का अवसर नहीं होता और यदि हम तत्कालिक निर्णय न करें तो दीर्घ सूत्रता के दोष के शिकार बन जावें किन्तु जिन बातों में जल्दी नहीं है। और वे हमारे नित्य व्यवहार की वस्तुयें हैं उनमें परीक्षण बुद्धि से काम न लेना अकर्मण्यता है। वैज्ञानिक परीक्षक किसी प्रयोग की सफलता मात्र से सन्तुष्ट नहीं होता। जब तक वह कार्य कारण सम्बन्ध की स्थापना न कर ले वह अपने प्रयोग को पूर्ण नहीं कर लेता। बहुत से अन्ध विश्वास तो केवल नामों के सहारे चलते हैं आँखों के रोहुओं के रोहू मछली के दाँत गले में बाँध दिये जाते हैं। जो चीज न दिखाई जाय न लगाई उसका रोग के शमन से क्या? मोती भूने में अनबिंधे मोती कुछ सार्थकता रखता है क्योंकि वह चून की चीज है और उसमें कैलशियम भी होता है। परीक्षा बुद्धि में हमको केवल यही नहीं देखना पड़ता है कि अमुक प्रयोग से हमको सफलता हुई या नहीं वरन् यह भी कि उसकी सफलता में अन्य कोई सहायक कारण तो नहीं है और विफलता में कोई बाधक कारण तो नहीं उपस्थित हो गया। इन बातों पर यह भी हमको सहज में न दौड़ जाना चाहिये। यदि कोई कहे कि जब जहाज डूबता है। तब हमको जहाज के कप्तान की ही बात माननी पड़ती है। उस समय जहाज के बैठने वालों को नहीं लिया जाता है। इसलिए प्रजातन्त्र राज्य नहीं चल सकता है। या तो यन्त्र ही चल सकता है या तानाशाही आधिपत्य। डूबते हुए जहाज और राजशासन की समानता नहीं हो सकती उस समय विवेचन का समय नहीं होता है, और न सबको न सभासद का वैज्ञानिक जानकारी होती है। राजशासन में व्यवस्थापक सभाओं के सदस्य राजनीति का ज्ञान रखते हैं और उनका राज्य के साथ सम्बन्ध, यात्रियों और जहाज के सम्बन्ध की अपेक्षा अधिक स्थायी होता है। जाति पाँति को जन्मजात मानने वाले कहा करते हैं पढ़े लिखे शूद्र से अपढ़ ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं क्योंकि गायों की ठलुआ गाय आदरणीय है। यह युक्ति हिन्दुओं पर ही ही प्रभाव डाल सकती है उनके संस्कार ऐसे बन हुए हैं। इस युक्ति में भी एक प्रकार का जातिवाद छिपा हुआ है जातिवाद के सहारे ही जातिवाद का पोषण तर्कशास्त्र सम्मत नहीं कहा जा सकता।

दार्शनिक किसी प्रयोग की विफलता से विचलित नहीं होता। वह बिना विफलता के कारणों की पूरी जांच किये अपना निर्णय नहीं देता। वह बिना पूरी छान बीन किये अपने के अनुकूल निष्कर्षों पर दौड़ नहीं जाता। वह धीर और सन्तुलित मन का होता है। न तो वह अपने लिए किसी वाद विशेष का भूत खड़ा कर लेता है और न वह उद्धत और प्रमत्त की भांति दूसरे वादों का तिरस्कार करता है। वह विचार स्वातन्त्र्य का पुजारी होता है उस के लिए सब वादों में तथ्य रहता है। जैन दर्शन ने तो सप्त भंगी न्याय प्रचार कर बहुत कुछ मतभेद का शमन कर दिया है। दृष्टि कोण भेद से हम एक बात को सत्य मान सकते हैं, और दूसरे दृष्टि कोण से उसे असत्य कहना होगा हमको उससे लड़ने की आवश्यकता नहीं वरन् उसके दृष्टि कोण को समझने की आवश्यकता है। व्यावहारिक दृष्टि कोण यह मेज जिस पर मैं लिख रहा हूं वही है जो कल थी किन्तु दार्शनिक और वैज्ञानिक दृष्टि कोण से उसके परमाणुओं में बहुत कुछ अन्तर हो गया। मेरा शरीर भी वह नहीं है जो कल था फिर भी मैं अपने वही समझता हूं जो कल था।

[illegible] में भी [illegible] अन्तर्राष्ट्रीय [illegible] दर्शन [illegible] है।

[illegible] इसको [illegible] देता है जिसके कारण हम दूसरे के सुख दुःख और सुखी से गैर-सुखी की [illegible] स्थिति में [illegible] अपने सुख दुःख के रूप में देखते हैं। इस आत्मौपम्य दृष्टि के अभाव के कारण ही दुनिया में इतना सर्वत्र कलह कलुष और मार काट है। हम अपने दोषों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं और दूसरे के दोषों को अणुवीक्षण यन्त्र से बढ़ा चढ़ा कर देखते हैं। साम्प्रदायिक झगड़ों के मूल में भी ऐसी आत्मौपम्य दृष्टि का अभाव है। हम अपने दोषों को न स्वीकार कर सारे दोषों का भार दूसरों पर रखने को तैयार हो जाते हैं। हम अपने को तथा अपने लोगों को दूध का धोया समझते हैं और दूसरों को पाप पंक में आपाद मस्तक निमग्न रखते हैं। दूसरों को दोषी बनाने में हमारा कितना हाथ है, इसको हम कभी अपने से नहीं पूछते। समत्व बुद्धि जितनी निजी सम्बन्धों में आवश्यक है उतनी ही अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में। दूसरे देशों के सम्बन्ध में हम अपने-पराये की बुद्धि से ऊपर नहीं उठ सके हैं। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का सिद्धान्त यदि व्यवहार में आ जाय तो संसार स्वर्ग बनने में देर लगेगी।

'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के सिद्धान्त को व्यवहार में लाने से पूर्व हम को वह दृष्टि उत्पन्न करनी पड़ेगी किन्तु वह बिना दार्शनिक अध्यापन और मनन के नहीं प्राप्त हो सकती। एकात्मवाद की उर्वरा भूमि पर ही परोपकार और अन्तर्राष्ट्रीय न्याय की भावना पनप सकती है।

हमारे दार्शनिक विचारों का हमारी सामाजिक संस्थाओं पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए हम भारतीय सम्मिलित कुटुम्ब और यूरोप की विभाजित कुटुम्ब प्रथा को लें। भारत वर्ष में [illegible] के प्राधान्य के कारण सम्मिलित परिवार को महत्व मिला है। यूरोप में अनेकवाद के और व्यक्ति वाद के कारण विभाजित कुटुम्ब का अधिक प्रचलन रहा है। पाश्चात्य प्रभाव से हमारे यहाँ व्यक्ति वाद बढ़ता जा रहा है। तभी तलाक आदि के प्रश्नों पर विचार होने लगा है। [illegible]

(शेष पृष्ठ १६ पर)

'न्याय' शब्द की व्युत्पत्ति और ऋषि दयानन्द

[लेखक श्री पं० गङ्गाप्रसाद ज उपाध्याय, एम० ए०]

एक सज्जन ने २८ अगस्त ५५ के आर्य मित्र में कुछ शकायें की हैं। उनमें एक शका यह है कि ऋषि दयानन्द ने न्याय' शब्द णीञ् प्रापणे' धातु से सिद्ध किया है अन्य विद्वान् इस को 'नि' उपसर्ग पूर्वक इण् गतौ से सिद्ध करते हैं। मैं व्याकरण का सुविज्ञ नहीं हू अत व्याकरण की शकाओं का समाधान करने का अपने को अधिकारी नहीं समझता। तथापि यह शका बहुत वर्ष हुये कानपुर आर्य समाज के उत्सव पर शका समाधान के समय एक आर्य युवक ने की थी और उन्होंने मुझसे भेंट करके यह कहा कि यदि ऋषि दयानन्द की पुस्तकों में ऐसी अशुद्धिया हैं तो आर्य समाजी कैसे रह सकता हू, शका समाधान मैं ही कर रहा था। परन्तु कई सस्कृत के विद्वान् मच पर थे। मैंने उन्हीं से इसके समाधान की प्रार्थना कर दी। मुझे स्मरण नहीं कि उन्होंने उस समय क्या समाधान किया। परन्तु जब उस युवक मित्र न मुझ से उपर्युक्त बात कही तो मैंने स्पष्ट कहा कि किसी एक बात से सिद्धान्त तोडे नहीं जा सकते सिद्धान्त तो सिद्धान्त हैं वह किसी एक व्यक्ति की एक व्याख्या मात्र से निश्चित नहीं किये जा सकते चाहे वह व्यक्ति कितना ही उत्तम क्यो न हो' ऋषि दयानन्द ने यह कहीं नहीं कहा कि मुझसे भूल नहीं हो सकती'। या मेरे लिखे को आखें बन्द करके मान लो। ऋषि दयानन्द के उपदेशों की यही तो विशेषता है कि 'अस्माकं यानि यानि सुचरितानि तानि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि यहा सुचरितानि के अन्तर गत 'व्याख्यानानि' भी आ जाते हैं।

परन्तु एक बात मैं कहूगा। ऋषि की बातो का निर्णय करने मे जल्दी या आवेश से काम नहीं लेना चाहिये। ऋषि बहुत सी ऐसी बातें जानते थे जिनका हमको ज्ञान नहीं है या केवल अधूरा है। 'न्याय शब्द के विषय में भी मुझे ऐसा ही प्रतीत होता है। पाणिनि मुनि का व्याकरण वैदिक काल के व्याकरणों मे सबसे पिछला है। उससे पूर्व बहुत से वैयाकरण हो चुके है। उनके व्याकरण हम को प्राप्त नहीं हैं परन्तु नाम तो बहुत सो के ज्ञात हैं उन्होंने किस शब्द को किस धातु से और किन नियमों द्वारा सिद्ध किया यह एक मौलिक प्रश्न है। "न्याय' शब्द तो इन व्याकरणों और वैयाकरणों से बहुत पुराना है। यह ठीक है कि 'इण्' गतौ और "नि" उपसर्ग से न्याय' शब्द सुगमता से बन सकता है। परन्तु यदि ठीक ठीक अर्थ न द तो हमको इस की व्युत्पत्ति के लिये अगली खोज करनी पडेगी। मैंने अपने अगरजी सत्यर्थ प्रकाश (Light of Truth) में इस शब्द पर जो टिप्पणी दी है उसे यहा उद्धृत करता हू। (देखो Light of Truth I Para 34, Page 3०)

(१) काशिका ने अष्टाध्यायी III. 3 १२२ वें सूत्र (अध्यायन्या योद्याव सहाराधारा वापाश्च) की व्याख्या करते हुये 'अध्याय' आदि के साथ 'न्याय' को भी निपातन माना है, और लिखा है

"नीयतेऽनेनेति न्याय

यहाँ स्पष्ट दीखता है कि काशिकाकार के मन मे 'णीय प्रापणे धातु ही रही होगी जिसमे नीयत' शब्द का प्रयाग किया गया। कुछ लोगो का यह भी कहना है कि नीयते= नि+ईयते। परन्तु यदि ऐसा होता तो पाणिनि जी जो अलग सूत्र लिखने की क्या आवश्यकता होती। और यदि काशिकाकार का ऐसा ही अभीष्ट होता तो वह 'नि उपसर्ग को अलग स्पष्ट कर देते

श्र मेजरवसु न कौमुदी का अगरजी में एक बडा भाष्य किया है। उसमें वह लिखते हैं

All these words are derived from roots which end in vowels Mos अधि+इ+घञ= अध्याय a chapter or book (bt that in which they read) नी—न्याय logic, justice (bt नियन्ति अनेन that by which men are led)।

यहाँ 'नी' स्पष्टतया दिया है। 'नी' शब्द का अग्रेजी पर्याय है 'lead। इसका past participle 'led बनाया है। इससे ज्ञात है कि ग्रन्थकार के मस्तिष्क में 'नी' शब्द ही रहा होगा। परन्तु आगे चलिये,

(२) 'किरातार्जुनीय के अध्याय १२ श्लाक १७ की टीका करते हुये प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ लिखते हैं—

'नीयतेऽनेनेति न्यायो नियामक प्रमाण तम्।

इससे सिद्ध होता है कि प्राचीन विद्वान लोग 'न्याय' शब्द को 'इण् गतौ' से नहीं सिद्ध करते थे।

(३) न्याय कुसुमाञ्जलि में तो और भी स्पष्ट कर दिया —

'नीयते प्राप्यते विवक्षितार्थ सिद्धि रनेनति न्याय।

यहा नीयते का अर्थ 'प्राप्यते किया है जो णीञ् प्रापणे से ही बनता है।

(४ नय और 'न्याय' का क्या परस्पर सम्बन्ध है इसका स्पष्टीकरण मनुस्मृति के ८।२६२ श्लोक में इगित किया गया है।

एतैर्लिङ्गैर्नयेत् सीमाम्।

यहाँ सीमा सम्बन्धी झगडा का न्याय कैसे करो उसका उल्लेख करते हुये स्मृतिकार ने 'नयेत का शब्द प्रयुक्त किया है जिसका अर्थ हुआ न्याय कुर्यात्।

इन प्रमाणो से स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द का मस्तिष्क कितनी दूर तक पहुचता है।

यदि कोई ऋषिवर से साक्षात् शका करता तो वह क्या उत्तर देते यह ज्ञात नहीं, परन्तु इतना स्पष्ट है कि पूर्व विद्वान् 'न्याय को णीञ् प्रापणे से ही सम्बद्ध करते रहे हैं।

इस शका के समाधान से श्री आचार्य विश्वश्रवा जी का वह पक्ष तो सिद्ध नहीं होता कि ऋषि के ग्रन्थों में किसी अशुद्ध की सभावना ही नहीं है, अथवा किसी अशुद्धि के निकलने या उसके शोधन से आर्य समाज की भित्ति उखड कर नीचे आ गिरेगी। यह दो प्रश्न सर्वथा अलग अलग हैं।

भारतीय छात्र अमरीका रवाना

अमेरिकी सरकार से छात्रवृत्ति पाने वाले १ भारतीय छात्रों का एक २१ जून को बम्बई से अमरीका १ वर्ष के लिए अध्ययनार्थ रवाना हो गया।

डा० बाक्याबेला के साथ कुछ छात्र

आर्य्य महिला मण्डल

भारतीय बहनों से निवेदन

[लेखिका—श्रीमती ओमप्यारी देवी, पूरनपुर)

आज हमारी बहिनें अधिकार प्राप्ति की होड़ में हैं। पुरुषों की तरह नौकरी करने, बाजारों में अधनग्न ढंग के कपड़े पहिन कर सौदा खरीदने, सिनेमा, थियेटरों में सम्मिलित होने आदि यहाँ तक कि तलाक से के आ विवाह तक कानून का समर्थन करने तक में हमें अब संकोच नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि बीच के काल में जो हमारी गिरावट हो गई थी उससे हमारी बहिनें महर्षि दयानन्द की कृपा से सजग हो गई और विद्या प्राप्ति की ओर हमारा पग जिस तत्परता से उठ रहा है वह सराहनीय है। परन्तु इसके साथ ही जो पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव हमारे ऊपर पड़ रहा है वह शोचनीय है। इस लेख में मैं उन सब बातों पर विचार नहीं कर सकूंगी जो पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के कारण हम में प्रवेश कर चुकी हैं। और जो धीरे २ हमारी सभ्यता, हमारे बच्चों के मस्तिष्क और हमारे परिवारों की उन्नति में बाधक हैं परन्तु मेरे इस लेख का अभिप्राय यह है कि हमारी बहिनें जहाँ अधिकार प्राप्ति की होड़ में हैं और बड़े २ प्लेट फार्म बनाकर अपने अधिकारों की मांग करती हैं (अधिकार प्राप्त करना बुरी बात नहीं यदि वे हमारी वैदिक मर्यादाओं के प्रतिकूल न हों) परन्तु इस बात पर कभी ध्यान नहीं गया कि स्त्री जाति में जो अपमानजनक कुप्रथायें हैं उनका किस प्रकार अन्त हो। स्त्री जाति का जो नित नये ढंग से अपमान पुरुष समाज द्वारा होता है उसे कैसे दूर कराया जाये।

अन्त में इस लेख द्वारा अपने समस्त बहिनों से प्रार्थना करती हूँ कि वे इन कलंकों को दूर करने का प्रयत्न करें। यदि पढ़ी लिखी बहिनें संगठित रूप से प्रयत्न करें तो शीघ्र सुधार सम्भव है।

स्त्री जाति में अपमानजनक कुप्रथायें

(१) स्त्री जाति अशिक्षित है कि इस जाति में से कुछ बहिनें बड़े शहर और नगरों में वेश्या बनकर अत्यन्त घृणित और कलंक कारक उपायों से जीविकोपार्जन करती हैं। क्या आज तक किसी भी समाज या सभा ने इस कलंक को दूर करने की आवाज उठाई ?

(२) आज सिनेमा अभिनेत्री बन कर अपने अभिनय को करने के लिये सम्मुख पर पुरुषों से आलिंगन, स्पर्श आदि संकोच तक नहीं करती। ये ऐसे हैं जो हमारी सभ्यता और मर्यादाओं के सर्वथा विपरीत है। कहां हमारा आदर्श यह था कि पर पुरुष का स्पर्श धोखे में भी पाप समझा जाता था वहाँ केवल मनो रंजन के लिए हमारी बहुत सी पढ़ी लिखी बहिनें ऐसा करते नहीं लजातीं।

स्त्री जाति का चित्र द्वारा इस से अपमान

(१) स्त्रियों के अश्लील, अधनग्न आदि चित्र बनाकर विज्ञापन किये जाते हैं। यहाँ तक कि मादक द्रव्यों के प्रचार में भी ऐसे चित्र काम में लाये जाते हैं

(२) बीड़ी सिगरेट खेल तमाशे वाले स्त्रियों का भेष बनाकर अश्लील ढंग के प्रदर्शन अपने व्यापार की वृद्धि के लिये, हाट, बाजार मेले आदि स्थानों पर करते फिरते हैं।

(३) कुछ दुकानदार विशेष कर पान वाले, हजामत बनाने वाले, रेस्टोरेन्ट वाले आदि अपनी दुकानों पर स्त्रियों के अश्लील चित्र लटका रखते हैं।

यह उपरोक्त प्रकार की कुप्रथायें स्त्री जाति को कलंकित करने वाली हैं। इन को समाप्त करने के लिये मेरी बहिनों की ओर से प्रबल आंदोलन होने चाहिये। महिलाओं की जितनी सभायें या सुसाइटियाँ हैं वे प्रस्ताव पास करके जनता और सरकार से अनुरोध करें तथा टोलियाँ बनाकर सम्बन्धित व्यक्तियों को चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष समझाने का प्रयत्न कर कि वेश्यावृत्ति त्यागें, सिनेमा की अभिनेत्री न बनें अश्लील चित्रों वाले विज्ञापन न छपें बल्कि नारी को माध्यम ही न बनायें स्त्रियों के रूप धारण कर अश्लील प्रदर्शन न करें, दुकानों आदि में स्त्रियों के अश्लील चित्र न लटकायें। कुछ समय तक इस प्रकार कार्य करने पर सत्याग्रह भी किया जावे। ऐसा यदि यथेष्ट सफलता न मिले तो मेरा विनम्र सुझाव है।

अमरीका में रूसी कृषकों का एक दल

सोवियत रूस के कृषक प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य (बेंच पर बैठे हुए बांये से)—श्री रिचार्ड १ अलेक्जिव ५ वरस केविस (बीच में खड़े हुए) दल के नेता तथा सोवियत कृषि मन्त्री। यह दल ६ सप्ताह के दौरे पर अमरीका पहुंचा है।

अमेरिका के राष्ट्रपति आइजन हावर

एक प्रसन्न मुद्रा में भाषण करते हुए

शंका समाधान

श्री कालीचरण जी आर्य से

[श्री जयदत्त शर्मा,]

भाद्र शुक्ल १० संवत् २०१२ वि० रविवार तदनुसार दि० २८-८-५५ के साप्ताहिक 'आर्यमित्र' में प्रकाशित पूज्य प्रधान मंत्री (सार्वदेशिक सभा) का 'आदि गुरु कौन' इति शीर्षकात्मक लेख पढ़ा। लेख के द्वितीय परिच्छेद में आपने प्रश्न उठाया है। दुराचार कहाँ से आया, दुनिया में इसकी उत्पत्ति कहाँ से हुई और किस प्रकार इति और पूर्व पक्ष की बहुत से मनुष्य यह कहते हुए सुनाई देते हैं कि इस दुनियाँ को पैदा करने वाले ने ही इसकी, बुराई को जन्म दिया है सृष्टि उत्पत्ति के समय ही उस सत्ता को जन्म दिया जिसने इन्सान को बहका कर पाप में प्रवृत्त किया और उनके विचारानुसार अब भी मनुष्य समाज को बहका कर वही पाप कराता है इति, को अमान्य ठहरा और उसकी उपेक्षा करके अपने प्रश्न का समाधान इन शब्दों में किया है—विचार शील मनुष्य इस पर जब गम्भीरता से विचार करते है और वह अपने कर्मों को देखते है तो वह इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र हैं अच्छा करें, बुरा करें या कुछ न करें। इति

उपर्युक्त शंका के इस समाधान को पढ़ने ही मुझे झटिति उन दो मन्त्रों की स्मृति हो आयी जो मेरे अधृष्ट थे। मन्त्र ये हैं अहं विवच प्रथिवामुत ग्राम हमस्तरजनय सप्त सकम् अहं ... यदु...गमह देवा परि ... च विशाल अथर्व ६६१२ ... आतिरत्रविनिऋति कुना नुपुरुषदमति राद्धि समृद्धिरव्यृद्धर्मतिरु ... अथर्व १०२१। और जिनके आधार पर मेरा यह विश्वास एवं धारणा थी कि सत्य और अनृत अथवा भलाई और बुराई का जन्मदाता ईश्वर ही है। अपनी उक्त धारणा की पुष्टि में इस अनुमान से भी करता था कि जिस प्रकार एक ही लता में जायमान सुन्दर फूलों एवं तीक्ष्ण कांटों का निर्माता आमलतादि सम आयुष्करी सुखदायिनी और ... प्रायः तिनी औषधियों का निर्माता और ... सकलार्थसाधक तथा सर्पदृ ... आदि सम जीवमारक जन्तुओं का निर्माता वही एक ईश्वर है उसी प्रकार भलाई व बुराई भी होना ईश्वर की देन है।

मेरा यह अनुमान उपयुक्त या तर्क संगत हो अथवा न हो किन्तु मन्त्रद्वय आर्य 'सत्य' राद्धि, समृद्धि ... तथा मति की भांति अनृत, ... निऋति और अमति का कर्ता एक ही है, और वह इस प्रकार प्रथम मन्त्र अहं पद कर्ता के प्रयोग में अर्थ विस्पष्ट है और द्वितीय मन्त्र में कृत। अनिकर्तुं प्रकृति इति पञ्चम्यन्त पद से मति और अमति का मूल, जन ... निःसंदेह एक ही है और वह है केवल ईश्वर।

अब वक्तव्य यह है कि चूंकि वेद मन्त्र सूर्य प्रकाशवत् स्वतः प्रमाण है "अपूर्वेऽपिता वाचस्ता वदन्ति यथाय्थम्" इत्यादि द्वारा और भी दृढ़ विश्वास वेद मन्त्रों के अपौरुषेयत्व और याथातथ्य में हमारा है, अतः मन्त्रों में दोष नहीं आ सकता कि वे अनुपयुक्त व अनर्गल है, वरन् विपरीत इसके उन्हीं के आधार पर हमारे सब सिद्धान्त आधारित होने पर ही मान्य हैं। रही मन्त्रार्थ की बात, सो ही शङ्का में विशेष और प्रधान वस्तु होता है सो उपर्युक्त मन्त्रद्वय का जो अर्थ मैं समझा वह मैंने लिख दिया किन्तु वही मवल्लिखित उस बात के प्रतिकूल पड़ता है कि 'स्वयं मनुष्य ही भले बुरे का कर्ता है' इति। यदि इन मन्त्रों को श्रीचरणों अथवा अन्य वैदिक विद्वानों की दृष्टि में यही अर्थ होता है कि सत्य और अनृत, बुराई और भलाई का जन्मदाता ईश्वर ही है तो आमुख का यह कहना कि 'भलाई ईश्वर की दी हुई है और बुराई मनुष्य का अपना खासी हुई वस्तु है' इति, कहाँ तक उपयुक्त होगा?

अब यदि मैं मन्त्रार्थ ठीक नहीं समझ पाया हूं अथवा इनका अर्थ कुछ दूसरा ही होता हो और पूर्वोक्त स्वकल्पितानुमान भी असंगत व भ्रामक हो तो क्या मैं यह आशा नहीं कर सकता कि पूज्य मन्त्री जी इन्हीं मन्त्रों के अर्थ को सुस्पष्ट करते हुए तथा अपनी उक्ति को अन्य किन्हीं मन्त्रों द्वारा पुष्ट एवं प्रमाणित करते हुए संशयी जन के इस संशय का निवारण करने का कष्ट करेंगे? इति। श्रीमान् जी से मेरा निवेदन है और यह विश्वास है कि वे अग्रिम आर्य मित्र के किसी अंक में इसी संशयास्पद विषय का समाधान करके प्रार्थी के एवं अन्य पाठक जनों के एतद् विषयक संशयशूल को निर्मूल करने की अवश्यमेव कृपा करेंगे।

जबलपुर की गन कैरिज फैक्टरी में रेलगाड़ी के पहियों का निर्माण हो रहा है।
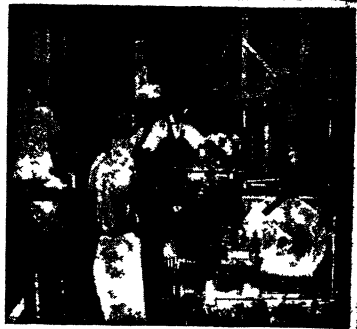
पेट की खराबी

[पृष्ठ १५ का शेष]

नलियों के छिद्र भी प्रायः बन्द हो जाते हैं। यह अवस्था अत्यन्त हानिकारक होती है। ऐसी दशा में ऐनीमा आदि अन्य उपयुक्त चिकित्साएं शीघ्र करनी चाहियें।

भोजन जो मिलाकर न खाना चाहिए।

[१] रोटी व ताजे फलों का रस। [२] अनाज ताजे फलों के रस के साथ। [३] नारंगी या सन्तरा सेव के साथ। [४] अखरोट व मूंगफली पनीर या जैतून के तेल के साथ। [५] दूध व ... करी एक साथ, दूध व अमरूद या दूध व मट्ठा। [६] फल व तरकारी, खरबूजा व दूध, आम व शरबत। [७] तेल की वस्तुयें फलों के साथ और चावल के साथ तरबूज आदि।

मूल सिद्धान्त—[१] स्टार्च व प्रोटीन वाले भोजन एक साथ न खाने चाहिये।

[२] स्टार्च व अम्ल उत्पादक भोजन एक साथ न खाने चाहिये।

भोजन जो मिलाकर खाना चाहिये।

[१] सेव व केला, केला व दूध, दूध व अखरोट। [२] दूध व रोटी, चावल व दूध। [३] पनीर व रोटी। [४] रोटी छिलके वाली दाल के साथ या रोटी व तरकारी। [५] बिना पालिश का चावल दही या दाल के साथ। [६] अखरोट व मूंगफली, किशमिश व सलाद फलों के साथ। [७] गाजर या टमाटर रसदार या सूखे फलों के साथ।

जीवन और दर्शन

(पृष्ठ ९ का शेष)

जीवन के आवश्यक कार्यों में बुद्धि और ... के साहित्य स्थान मिलना आवश्यक है। वर्तमान युग में हमारा आधिकांश साहित्य बुद्धिवाद से प्रभावित है। यद्यपि भौतिक वाद और तर्क वाद पाश्चात्य देशों की ही देन नहीं है। तथापि पाश्चात्य प्रभावों ने इन वादों को विशेष बल दिया है।

भारतीय जन्मान्तर वाद तथा मोक्ष जैसे आदि और 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' के आध्यात्मिक प्रभावों के कारण हमारे यहां अहिंसा वृत्ति का प्राधान्य रहा है जन्मान्तर वाद से धर्म में भी प्रवृत्ति अधिक बढ़ती है। यह जीवन ही हमारी सत्ता का अन्त नहीं है। जन्मान्तर वाद को न मानने का स्वाभाविक परिणाम चार्वाक के 'ऋण कृत्वा घृतं पिबेत् भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः' वाले सिद्धांत का जन्म होता है।(हमारे यहाँ के चार्वाक भी सात्विक बुद्धि के थे, उन्होंने घृतं पिबेत् ही कहा सुरां पिबेत नहीं कहा) जन्मान्तर वाद से ज्ञान की उन्नति के लिए भी प्रोत्साहन मिलता है। यदि शरीर के साथ हमारी सत्ता का अन्त होना है तो ज्ञानोपार्जन से क्या लाभ? जन्मान्तर वाद कम से कम यह बतलाता है कि यदि वैयक्तिक स्मृति नहीं भी रहती है तो संस्कार अवश्य बन जाते हैं। आज कल के लोग ज्ञान की धारा के सामूहिक प्रभाव में विश्वास करते हैं। मेरा ज्ञान यदि मुझ को लाभ दयाक नहीं होता तो दूसरे को लाभदयाक होगा किन्तु बहुत सा ज्ञान अप्रकाशित रह जाता है, उसके लिये जन्मान्तर वाद ही संतोष देता है।

दर्शन के ही अन्तर्गत मनोविज्ञान आता है। उसकी उपयोगिता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्वीकृत है। शिक्षा-शास्त्र, आरोग्य-शास्त्र चिकित्सा शास्त्र, व्यापार राजनीति, राज्य शासन दण्ड विधान तथा दैनिक व्यवहार, सभी मे मनोविज्ञान का आश्रय लेना पड़ता है। मनोविज्ञान के आधार पर ही बालकों का बुद्धि परीक्षण होता है और उनकी शारीरिक आयु का न ख्याल कर उनकी बौद्धिक आयु के आधार पर उनको शिक्षा दी जाती है। शिक्षा शास्त्री ध्वनियों के विश्लेषण, बालकों के एन्द्रिय और मानसिक विकास तथा सिद्धान्तों के ... कराने में मनोविज्ञान का प्रयोग करते हैं। मनोविज्ञान ही हमको स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले जाता है और शिक्षा में दण्ड की अपेक्षा समझाने-बुझाने के महत्व को अधिक करता है। असाधारण और समस्यात्मक बालकों का सुधार मनोविज्ञान के सहारे ही किया जाता है।

साहित्य शास्त्र में काव्य के आधार स्तम्भ, अनुभूति, कल्पना, भावना और बुद्धि मनोविज्ञान के ही विषय हैं। पाठकों की मनोवृत्ति के ज्ञान के बिना ... को प्रेय बनाना सहज कार्य नहीं है। साहित्य यदि जीवन की आलोचना है तो मनोविज्ञान जीवन के विश्लेषण की रसायन शाला है। मनोविश्लेषण तो आजकल के उपन्यास साहित्य का प्रमुख अंग बन गया है।

मनोविश्लेषण चिकित्सा शास्त्र का भी जीवन प्राण है। मन का प्रभाव शरीर पर पड़ता है और शरीर की विकृतियाँ मन की कुण्ठाओं और ग्रन्थियों पर अवलम्बित रहती हैं। मानसिक रोगों की चिकित्सा तो बिना मनोविश्लेषण के चल ही नहीं सकती है किन्तु अन्य रोगों में भी रोगी की दशा की उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

व्यापार में जनता की आवश्यकताओं का प्रधान उत्पादन के लिए धन-संग्रह और जन संगठन, वितरण के लिए विज्ञापन और ग्राहक पटाने की कला, वस्तुओं को आकर्षक बनाने के ढंग ये सब मनोविज्ञान के ही विषय हैं।

राजनीति और राज्य शासन में बहुत कुछ मनुष्यों के हृदय परिवर्तन में भावनाओं के ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। जो लोग मनोविज्ञान के अच्छे पंडित नहीं होते हैं। वे प्रायः लड़ाई मोल ले लेते हैं और अपने कार्य मे सफल नहीं रहते हैं। दण्ड शास्त्र भी अपराधी के सुधार में तभी सहायक हो सकता है जब हम अभियुक्त की मनोवृत्ति को अच्छी तरह समझ लें। तभी हम उसके साथ सुधार करने वाली सहानुभूति से काम ले सकते हैं। वह दण्ड शास्त्र जो केवल भौतिक दण्ड और अपराधी को भौतिक सीमाओं में घेरे रखना ही जानता है अपने उद्देश्य मे विफल रहता है।

दैनिक जीवन के व्यवहार मे पद-पद पर मनोविज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। जो लोग अपने साथ-व्यवहार करनेवाले के मनोगत भावों को जानते हैं वे ही उनसे कार्य साधन मे सफल हो सकते हैं। भय, क्रोध, दया आदि मनोवेगों की जानकारी उनके बाह्य अभिव्यञ्जकों द्वारा प्राप्त कर लेने पर मनुष्य को अवसरानुकूल काम करने की क्षमता मनोविज्ञान से ही आती है। अवसर की गाली भी अच्छी लगती है और बिना अवसर की प्रशंसा भी असह्य होती है। खुशामद से ... मद अवश्य होती है। किन्तु खुशामद भी बिना मनोवृत्तियों के अध्ययन के नहीं आती है। खुशामद भी एक कला है जो मनोविज्ञान पर आश्रित है।

दर्शन की उपयोगिता तभी मालूम पड़ती है जब हम दार्शनिक दृष्टि से संसार में प्रवेश करते हैं और उससे हम नित्य के जीवन की समस्याओं को हल करते हैं। दर्शन शास्त्र हमारे दृष्टिकोण के निर्माण मे सहायक होता है। हमारा आशावादी या निराशावादी होना भी हमारे दार्शनिक सिद्धान्तों पर निर्भर रहता है। आशावादी को सावन के अन्धे की भांति सब हरा ही हरा दीखता है। और वह जीवन में उत्साह और धैर्य से काम करता है। निराशावादी मे जीवन शक्ति का ह्रास हो जाता है। उसे किसी काम के करने मे उत्साह नहीं रहता है और वह जीवन में खिन्न रहता है इसलिए हम जीवन में दर्शन शास्त्र की उपेक्षा नहीं कर सकते। केवल "अति सर्वत्र वर्जयेत्" का हमको हमेशा ध्यान रखना चाहिए।

उत्तर प्रदेशीय विधानसभा द्वारा

गो-वध-निवारण विधेयक स्वीकार

प्रायः सभी संशोधन अस्वीकृत

रेल स्टेशन होटल आदि, पर बंद डिब्बों में विक्रय पर प्रतिबन्ध नहीं

लखनऊ ९ सितम्बर। प्रवर समिति द्वारा प्रस्तावित और गो संवर्धन जाँच समिति की सिफारिश पर राज्य द्वारा प्रस्तुत गो वध निवारण विधेयक कल विधान सभा द्वारा स्वीकार हो गया।

इस विधेयक के द्वारा गो वध के अपराधी को २ वर्ष का कठोर कारावास व एक सहस्र आर्थिक दंड दिया जा सकेगा।

भारत के स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् से ही जनता में गो वध समाप्त करने के लिए राज्य द्वारा विधेयक बनाने की मांग बल पकड़ती जा रही थी। अनेक स्थानों पर इसके लिए प्रदर्शन सत्याग्रह आदि भी किए गए।

गत वर्ष आर्यसमाज के महामान्य नेता स्व० स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी सरस्वती ने भी उत्तर प्रदेश में जनमत जागृत करने के लिए प्रांत का दौरा किया। आर्य प्रांतीय सभा उत्तर प्रदेश के मुख्य उपप्रधान राजकुमार रणञ्जयसिंह जी सदस्य विधान सभा ने १२ दिसम्बर १९५२ को अपना उत्तर प्रदेश गो वध संरक्षण विधेयक विधान सभा में रखा था जिस पर तत्कालीन मुख्य मन्त्री श्री पंत जी ने गो संवर्धन जाँच समिति स्थापित की थी जिसने एक मत से गो वध पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाने की सिफारिश की। इसी के परिणाम स्वरूप राज्य ने यह विधेयक प्रस्तुत किया और कल स्वीकार में।

महाविद्यालय ज्वालापुर के कुलपति आचार्य श्री नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ ने भी गत वर्ष एक विज्ञप्ति प्रकाशित कर प्रभावशाली वातावरण तैयार करने में महत्वपूर्ण भाग लिया। यहाँ यह स्मरण रखना आवश्यक है कि बृटिश शासन में सर्वप्रथम महान् सुधारक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने गो रक्षा के लिये मांग की थी उसके पश्चात् महात्मा गांधी ने भी घोषित किया था कि मैं गो रक्षा के प्रश्न को स्वराज्य से भी अधिक महत्वपूर्ण मानता हूँ।

यह अत्यंत सौभाग्य का विषय है कि आज पुनः ४०० वर्षों के पश्चात् राम कृष्ण ऋषि मुनियों की पावन भूमि में गो वध बन्द हुआ।

देखें वह दिन कब आता है जब सम्पूर्ण भारत में गोहत्या का नृशंस अमानवीय कृत्य अवैध घोषित कर दिया जायगा। हम उत्तर प्रदेशीय सरकार को इस विधेयक के स्वीकार करने पर बधाई देते हैं। काश कि इस बिल में कुछ संशोधन भी स्वीकार कर लिये जाते?

२ अक्तूबर शराब विरोधी दिवस के रूप में मनाएँ

शराब की दूकानों के सम्मुख प्रदर्शन आवश्यक

जनता से पीना छोड़ने और राज्य से अविलम्ब प्रतिबंध लगाने की मांग, सबल रूप में कीजाय

सार्वदेशिक सभा के प्रधान मन्त्री श्री कालीचरण जी आर्य का राष्ट्र से आग्रह

दिल्ली ८ सितम्बर। राष्ट्र में बढ़ती हुई चरित्रहीनता और नैतिक पतन पर चिन्ता प्रकट करते हुये विश्व की समस्त आर्यसमाजों की प्रतिनिधि संस्था सार्वदेशिक सभा के प्रधानमन्त्री श्री कालीचरण जी आर्य ने २ अक्तूबर का दिन शराब विरोधी दिवस के रूप में मनाने का आग्रह राष्ट्रवासियों से किया।

आपने कहा २ अक्टूबर गांधीजी की जन्म तिथि है। सारा देश इस दिन को गंभीरता से मनाता है। वर्तमान राज्य भी अपने को गांधीजी का अनुयायी घोषित करता है किन्तु यह खेद की बात है कि आज भी देश में शराब की खुली बिक्री होती है। गांधीवादी सरकारें इसके ठेके देती हैं और शराब पी पीकर जनता का शारीरिक मानसिक चारित्रिक पतन होता जा रहा है। क्या यह हम सभी राष्ट्रवासियों के लिए लज्जा का विषय नहीं है?

इस कलंक को दूर करने के लिए माननीय प्रधानमन्त्री महोदय ने समस्त राष्ट्र प्रेमियों का आह्वान करते हुए कहा हमने बृटिश शासन में शराब की दूकानों के सम्मुख कई बार सत्याग्रह किया था और यह सभी हुआ था कांग्रेस के नेतृत्व में, गांधीजी के निर्देशन में। किंतु आज देश में कांग्रेसी शासन होते हुए भी शराब चल रही है, और देश डूब रहा है।'

आपने कहा हमारी इच्छा है कि देश अब इसे और सहन न करे, अभी से पूरे बल के साथ साथ २ अक्टूबर के दिन को शराबबंदी दिवस के रूप में मनाने की तैयारियाँ की जाएं।

स्वयं सेवकों की भर्ती आरंभ कर दी जावे और देश के कोने-कोने में फैला आर्यसमाज का विशाल संगठन इस आंदोलन का नेतृत्व करे। प्रत्येक शराब गृह के सम्मुख २ अक्टूबर को प्रदर्शन किये जाएँ। "शराब पीना छोड़ दो शराब की बिक्री बंद हो" यह दो नारे लगाये जायँ। प्रत्येक अवस्था में प्रदर्शनकारी शाँत और अहिंसक रहें और प्रेम से सभी के हृदय परिवर्तन का यत्न किया जाए।

आंदोलन की आवश्यकता पर बल देते हुए सभी राष्ट्रोन्नति के इच्छुक सज्जनों से सहयोग की प्रार्थना करते हुए आपने राष्ट्र के चारित्रिक निर्माण के लिये शराब और नशों की समाप्ति को आवश्यक बताया और आशा प्रकट की कि जनता पूर्ण उत्साह से इस आंदोलन को सफल बनायेगी।

विदेह जी दर्प-दम्भ छोड़ें !

सार्वदेशिक द्वारा बहिष्कार का निर्णय उचित है

प्रसिद्ध आर्य विद्वान् आचार्य नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ की सम्मति

श्री ध्यानन्द विदेह जी के विषय में सार्वदेशिक सभा ने जो निर्णय दिया है वह उचित ही। श्री विदेह जी दम्भ दर्प छोड़कर समाज को हित बुद्धि का ध्यान रखकर बरतेंगे तो इसमें उन्हीं का कल्याण है।

आचार्य नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ
कुलपति महाविद्यालय ज्वालापुर

स्वास्थ्य-सुधा

पैट की खराबी व कब्ज का रोग

आज कल कब्ज व बदहज्मी से बचना चाहिये

[श्री जगदीश्वर दयाल सिंह जी]

यह निर्विवाद सत्य है कि संसार के समस्त रोगों की जननी कोष्ठ बद्धता है। पेट में मल संचित हो जाने पर ही रक्त दूषित होता है और अनेकानेक रोग उत्पन्न होते हैं। कब्ज रोग से कौन बचा है? उत्तर में कहना होगा कोई नहीं। क्योंकि कब्ज से वही बचा है जिसे दिन में दो बार शौच साफ हो जाता है। मल रंग में काला गंधहीन, व बंधा हुआ होना चाहिये। यों तो कब्ज का सर्व प्रमुख कारण हमारा अस्वाभाविक जीवन है जिसमें विशेषत हमारा अनियमित व अप्राकृतिक भोजन ही सम्मिलित है।

भोजन में रूखडे भोजन की कमी:—

पेट में पौष्टिक पदार्थ के साथ २ न पचने वाले अर्थात् रूखड पदार्थ — फुजला भी जरूर जाने चाहिये। इससे भोजन को फिसलने में सहायता मिलती है। गेहूं की चापड़, शाकों व फलों के छिलके पत्तियों के रग रेशे व छाल तथा बीज आदि का पेट में उद्दीपक भोजन का कार्य होता है। हमें ध्यान देना चाहिये कि हम इनसे परहेज करते हैं? मैदा जैसी वस्तुएं पेट में चिपक कर कब्ज पैदा करती हैं।

भोजन में जीवन तत्वों की कमी:—

अप्राकृतिक रूप से तैयार किये गये भोजन में इनका सर्वथा अभाव है। आग पर पकाये भोजन में इनकी कमी हो जाती है। इसका फल कब्ज हो जाता है। डा० विलियम ल्योनार्ड का कहना है कि हमारी २६ फीट लम्बी आँतों को भाजी से खूब सींचना चाहिये। अन्यथा कब्ज रहेगा।

भोजन सम्बन्धी अन्य भूलें:—

बेमेल का भोजन, भूख से अधिक खाना, बासी भोजन करना व अन्य कारणों से भी कब्ज हो जाया करता है।

थकावट में भोजन:—

शारीरिक अथवा मानसिक परिश्रम के ठीक पीछे भोजन करने से कब्ज हो जाता है। अत कुछ विश्राम कर भोजन करना चाहिये।

भोजन के पश्चात् शारीरिक अथवा मानसिक परिश्रम:—

यह गल्ती हम सभी करते है। विद्यार्थी भोजन कर स्कूल, राज वर्ग दफ्तर व मजदूर पेशा मेहनत करने जाते हैं। हमें जानना चाहिये कि मानसिक परिश्रम के समय रक्त को मस्तिष्क व शारीरिक परिश्रम के समय माँस पेशियों में आवश्यकता होती है। यदि भोजन के पश्चात् इन्हें अपनाया जावेगा तो रक्त को भोजन पचाने में सहायता बन्द कर इधर उधर भागना होगा। फल यह होगा कि भोजन बिना पचे सड़ा करेगा व कब्ज होगा।

पेट के व्यायाम की कमी

टट्टी साफ लाने के लिये पेट के स्नायु व पेशियों का दृढ होना जरूरी है। इसके लिये कुछ खास पेट के व्यायाम करने चाहिये। केवल हाथ पैर हिलाने से काम नहीं चलता। जब तक पेट मजबूत नहीं है टट्टी होने में देर लगेगी। ऐसी दशा में भोजन पचने पर भी बाहर नहीं निकलता।

प्राकृतिक नियमोल्लंघन

अक्सर लोग टट्टी या पेशाब की हाजत को रोक लेने में अपनी बहादुरी समझते हैं। वे प्राकृतिक माँग को पूरा नहीं करते। पर उन्हें स्मरण रखना चाहिये कि कुछ समय तक ऐसा करते रहने से शरीर का भीतरी यन्त्र काम करना छोड़ देता है और हम रोगी बनना पड़ता है।

पेट का पुराना संचित मल

यदि बहुत काल से मल सड़कर शरीर की नलियों में सूख जाता है तो नया मल भी नहीं निकल पाता और

(शेष पृष्ठ १२ पर)

आर्यसमाज और वेदप्रचार

[पृष्ठ २ से आगे]

अपनी पत्र पत्रिकाओं में संतोष जनक रूप से किया है। वैदिक साहित्य के प्रकाशन का कार्य, वेदों का विभिन्न भाषाओं में आर्ष प्रणीत शैली पर अनुवाद का कार्य, आर्ष ग्रन्थों (दर्शन, उपनिषद्, इत्यादि) के सस्ते, सुलभ प्रकाशन का कार्य, राजनीति, अर्थ शास्त्र तथा विश्वविद्यालय में पढाए जाने वाले अन्य विषयों के लिए पुस्तकों का प्रकाशन का कार्य इत्यादि, भिन्न भिन्न गति विधि और आधार पर प्रकाशन आरम्भ किए जाने के कारण पूर्णतया सफल नहीं रहा है, यही कारण है कि प्रकाशन के इतने बड़े कार्य के पश्चात् भी देश के ही अनेक नर नारी आर्य समाज के सम्बन्ध में विभिन्न भ्रान्ति पूर्ण धारणाएं बना रखे हैं, जिनका निराकरण करना हमारा आज का सबसे बड़ा और आवश्यक कार्यक्रम होना चाहिए।

वेद प्रचार का कार्य वास्तव में नैष्ठिक ब्रह्मचारियों, तपस्वी वानप्रस्थियों तथा उदार सन्यासियों का है, बौद्ध भिक्षुओं की भाँति अपना सर्वस्व त्याग कृण्वन्तो विश्वमार्यम् की भावना से ओतप्रोत कर्मठ त्यागवीरों की आज आर्य समाज की सबसे बड़ी माग है, आज से तीन दशक वर्ष पूर्व आर्य समाज में जीवन था आर्य समाजों और आर्य सभासदों की संख्या कम थी, परन्तु इस अल्प संख्या में प्रतिशत अधिक था आर्यों और कर्मठ कार्यकर्ताओं का। आज की स्थिति सर्वथा विपरीत है, आर्यसमाज और आर्य सभासदों की संख्या में तो अत्यधिक वृद्धि हुई है, परन्तु दुःख है कि उसमें न्यूनतम प्रतिशत है आर्यों और कर्मठ कार्य कर्ताओं की

वेद प्रचार चुने हुए भजनों, धाराप्रवाह व्याख्यानों, पुरुष तथा स्त्री समाजों की स्थापना, विभिन्न प्रकार के पत्र पत्रिकाओं तथा पुस्तकों के प्रकाशन का ही नाम नहीं है वरन् इनकी सहायता से देश तथा विदेश में इकाई स्वरूप और अन्त में सामूहिक रूप से आदर्श वैदिक ग्रामों तथा नगरों की स्थापना से है इस ग्राम की स्वच्छता, यहाँ के लोगों के स्वास्थ्य का संरक्षण, ग्राम में रहने वाले बालक बालिकाओं, युवक युवतियों, प्रौढ़ माता पिताओं के व्यवहारिक शिक्षा का प्रबन्ध ग्राम प्रबन्ध के लिए प्रवृत्त प्रभृति आर्य स्त्री पुरुषों द्वारा संचालित ग्राम सभा की स्थापना, जो अन्तर के उपद्रवों और बाहर के आक्रमणों से ग्राम वासियों की रक्षा तथा सुख की सम्पूर्ण व्यवस्था करे सहकारिता के आधार पर ग्राम की सामुहिक आवश्यकताओं की पूर्ति की उचित व्यवस्था तथा गुण, कर्म, स्वभावानुसार सभी वयस्क स्त्री पुरुषों के जीवन निर्वाह की व्यवस्था इत्यादि ही इस आदर्श वैदिक ग्राम के मुख्य कार्य होंगे, आज देश के प्रधान मन्त्री देश में अमरीका माडल पर आदर्श ग्रामों की स्थापना का स्वप्न देख रहे हैं, यहीं नहीं, वरन् उन्होंने उत्तर प्रदेश के कुछ जिलों के ग्रामों में इस प्रकार के नियोजित ग्रामों की स्थापना कार्य के लिए सैकड़ों व्यक्तियों की नियुक्ति भी कर दी है, जो अपना डेरा अपने अपने क्षेत्रों में डाल चुके हैं आर्य समाज अब भी चुप है। पता नहीं इसने कितने वर्षों के मौन व्रत ले रखे है, क्या इसका व्रत सम्पूर्ण देश में विदेशी माडल पर ग्रामों की स्थापना का कार्य पूर्णतया सम्पादित हो जाने पर ही टूटेगा, नहीं, नहीं, कदापि नहीं हम आज और अभी इस पवित्र कार्य में लग जाना चाहिए, भारत की आत्मा ग्रामों में है। विश्ववन्द्य बापू के इस कथन के अनुसार यदि हमें वास्तव में सम्पूर्ण देश में पुन वैदिक राज्य स्थापित करना है, लोगों को वेदों की शरण में लाना है, प्यारे ऋषि के स्वप्न को पूरा करना है, तो आइये, यहीं से आरम्भ करें आज हमारा जयघोष वेदों की ओर लौटो के साथ ग्राम की ओर चलने का भी होना चाहिए।

इसके लिए हमें दो प्रकार से कार्य करना है पहला सामूहिक रूप में और दूसरा इकाई रूप में। सामूहिक रूप से हमारा अर्थ सम्पूर्ण देश को दृष्टि में रखकर और इकाई रूप से तात्पर्य है, किसी जिले में एक क्षेत्र को चुनकर पहले प्रकार के कार्य के लिए वीतराग, विद्वान तथा उदार सन्यासियों की आवश्यकता है, जिनके नेतृत्व में एक वेद प्रचार मण्डल देश के एक स्थान से चलकर सारे देश में भ्रमण करता हुआ जन सम्पर्क स्थापित कर, वेद प्रतिपादित दिनचर्या का चित्र जनता के सम्मुख रखे आर्य समाज का शुद्धस्वरूप लोगों के समक्ष उपस्थित कर, राष्ट्र निर्माण के सेवा कार्य। न वैदिक ग्रन्थों का वितरण कर तथा उपस्थित आर्य पुरुषों एवं महिलाओं को इकाई रूप में अपने अपने क्षेत्र में आदर्श वैदिक ग्राम स्थापना का कार्य आरम्भ कर देने की प्रेरणा दें। इस प्रकार के कार्य के लिए तपस्वी वानप्रस्थी अथवा पारिवारिक चिन्ता से मुक्त कर्मठ कार्यकर्ताओं की बहुत बड़ी संख्या में आवश्यकता है, इन्हें एक एक ग्राम को अपना अपना कार्य क्षेत्र बनाना होगा। ×

पताः—'आर्यमित्र'
५ मीराबाई मार्ग, लखनऊ
फोन—१९१
तार—'आर्यमित्र

आर्यमित्र

रजिस्टर्ड नं० ६० ए०
११ सितम्बर, १९५५

आर्यमित्र का शुल्क

दैनिक + साप्ताहिक

एक वर्ष का	—	२४)
६ माह का	—	१३)
३ माह का	—	७)
एक प्रति का	—	-)

साप्ताहिक का शुल्क

एक वर्ष का	—	८)
६ माह का	—	४॥)
३ माह का	—	२॥)
एक प्रति का	—	=)

बाबूराम "भारती" द्वारा [illegible] आर्य भास्कर प्रेस, मीराबाई मार्ग लखनऊ से मुद्रित तथा प्रकाशित

परमेश्वर द्वारा महर्षि वायु के हृदय में प्रकाशित

यजुर्वेद का पहला मन्त्र

(आचार्य—श्री वीरेन्द्र शास्त्री एम० ए० काव्यतीर्थ, फतेहगढ़)

ओ३म् इषे त्वोर्जे त्वा, वायव स्थ, देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण, आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं। प्रजावती रनमीवा अयक्ष्मा, मा वस्तेन ईशत माघशंसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर, यजमानस्य पशून् पाहि।

पदच्छेद और अन्वय (७ वाक्य)

१—इषे त्वा, ऊर्जे त्वा, भागम् (आश्रयाय:)।

२—वायव: स्थ: देव: सविता व: श्रेष्ठतमाय कर्मणे आर्पयतु।

३—आप्यायध्वम्।

४—अघ्न्या: इन्द्राय प्रजावती: अनमीवा: अयक्ष्मा:।

५—व: स्तेन: मा ईशत, अघशंस: मा (ईशत)।

६—अस्मिन् गोपतौ बह्वी: ध्रुवा:स्यात

७—यजमानस्य पशून् पाहि।

आध्यात्मिक अर्थ

१. इषे अन्न और ज्ञान के लिये, ऊर्क पराक्रम और उत्तम रस (आनन्द) के लिये, सेवन करने योग्य तथा ज्ञान के भण्डार सविता परमेश्वर का आश्रय लो।

२. जो वायु (प्राण अन्तःकरण तथा इन्द्रियाँ) हैं उनको, देव (सुखदाता तथा विद्याओं का प्रकाशक) सविता (जगत् का उत्पन्न करने वाला) परमात्मा तुम सब मनुष्यों के अत्यन्त श्रेष्ठ कर्मों के लिये, अच्छी प्रकार प्राप्त करावे।

३. तुम सब वृद्धि को प्राप्त होओ।

४. न मारने योग्य इन्द्रियां परम ऐश्वर्य के लिये, शुभ गुणों से युक्त रोग रहित हों तथा यक्ष्मा आदि राज रोग उत्पन्न करने वाले विषयों से पृथक रहें।

५. उन पर चोर पापियों (काम, क्रोध, मोह, लोभ, आदि) का अधिकार न हो। कोई चोर और पापी न हो।

६. इन्द्रियों के स्वामी और रक्षक इस श्रेष्ठ पुरुष के पास सभी इन्द्रियां निश्चल हों।

७. हे परमेश्वर, आप धार्मिक भक्त पुरुष के पशुओं (शोभा, सम्पत्ति, पशु तथा सन्तानो) की रक्षा कीजिये।

आधियाज्ञिक अर्थ

१. अन्न और उत्तम रस के लिये सेवन करने योग्य सविता अग्नि (यज्ञ की अग्नि, शरीर की अग्नि और समाज के अग्रणी नेता) का हम आश्रय लें।

२. जो वायुयें हैं उनको प्रकाशक भौतिक अग्नि अत्यन्त श्रेष्ठ कर्म यज्ञ के लिये अच्छे प्रकार प्रयुक्त करे। प्राण आदि वायुओं को शरीर की शक्ति उत्पादक अग्नि श्वास करने में प्रयुक्त करे। तथा प्राप्ति के साधक गति शील मनुष्यों को सविता प्रेरक नेता श्रेष्ठतम कर्म (स्वराज्य, धर्म स्थापना आदि) के लिये प्रेरित करे।

३. सब ओर से सब प्रकार की वृद्धि हो।

४. परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये अहिंसनीय गौएँ अनेक बछड़े-बछड़ियों वाली रोग रहित तथा क्षय रोग से मुक्त हों।

अपने स्वामी जीवात्मा के लिए इन्द्रियाँ रोग रहित हों। अपने स्वामी सभापति तथा सेनापति के लिये उसके अनुयायी बहुसंख्यक तथा हृष्ट पुष्ट यक्ष्मा रोग से मुक्त हों।

५. उन गौओं को चोर और पापी न मारने पावें, न छीन पावें। गुप्त मानसिक रोग और पाप का मनुष्य की इन्द्रियों पर प्रभाव न हो। सैनिकों तथा प्रजाओं में चोर और पापी न हों।

गौओं के रक्षक के पास स्थिर रूप से अनेक गौयें रहें। पुष्ट मनुष्य की इन्द्रियाँ दृढ़ हों। पृथिवी के स्वामी और रक्षक नेता की प्रजा अपने नियमों पर दृढ़ हो।

७. ऐसे यज्ञ (दान और होम) करने वाले के पशुओं सन्तानों तथा सम्पत्ति की रक्षा यह भौतिक यज्ञ की अग्नि किया करती है।

इन्द्रियों को नियम में रखने वाले वीर पुरुष ही अपने शरीर की शोभा सम्पत्ति की रक्षा शरीर की अग्नि सम रख कर कर सकते हैं।

संगठन करने वाले नेता के ही पशुओं, प्रजा तथा सम्पत्ति की रक्षा हो सकती है।

आधिदैविक अर्थ

१. अग्नि और ओषधियों तथा फलों के रस के लिये सेवनीय सविता सूर्य का हम आश्रय लें।

२. वह सब वस्तुओं का उत्पादक और प्रेरक सूर्य अन्तरिक्ष में स्थित अनेक प्रकार की (वर्षा आदि की) वायुओं को, अच्छे कामों के करने के लिये, हम से संयुक्त करता है।

३. उससे हम वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

४. वह सूर्य, ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए, जीवात्मा को अनेक प्रजायुक्त और यक्ष्मा आदि रोगरहित पृथवी आदि लोकों में सुख साधनों से संयुक्त करता है।

५. सूर्य के उदय रहते समय कोई चोर पापी चोरी और पाप करने का साहस नहीं करता। रोग के कीटाणु सूर्य प्रकाश में मर जाते हैं

६. पृथवी आदि के रक्षक तथा धारक सूर्य के आकर्षण द्वारा सब ग्रह उपग्रह शून्य आकाश में भी अटल ध्रुव रहते हैं।

वेद-विवेचन

७—जो सूर्य किरणों की संगति करते हैं उनकी शरीर शोभा और सन्तति की रक्षा होती है।

उपरि लिखित भाष्य महर्षि दयानन्द के भाष्य के आधार पर किया गया है अर्थों के प्रमाण के लिये शतपथ और यास्क के वचन महर्षि भाष्य में वर्तमान हैं। अब इस मंत्र का वाममार्गी महीधर और उव्वट का अर्थ देखिये यह अर्थ उव्वट महीधर के संस्कृत भाष्य के स्वरूप में दिया जाता है।

प्रस्तावना—उव्वट महीधर भाष्य

यज्ञ में दूध घी की आवश्यकता होगी और उसके लिये गौओं की। गौओं से दूध लेने के लिये बछड़ों को भी चराना पड़ेगा और दूध दुहते समय उनको छड़ी से हाकना भी होगा। बनाने के लिये पलाश आदि वृक्ष की डाल काटनी होगी, अतः कर्मों के लिये इस मंत्र का विनियोग है।

१. इषे त्वा (छिनद्मि)=(हे वृक्ष की शाख) मैं तुझे अन्न के लिये (काटता हूं)।

२. ऊर्जे त्वा (संनमयामि) = बल के लिये मैं तुझे (सीधा करता हूं)।

३. वायवः स्थ = (हे बछड़ों) तुम हवा हो (तुम वेगवाले हो, खूब हवा की तरह दौड़ते हो)।

४. देवः सविता श्रेष्ठतमाय कर्मणे वः प्रापयतु = [हे गौओं] सविता देव तुम्हें यज्ञ के लिए [वन में] पहुंचा दे।

५. अघ्न्या: इन्द्राय भागं आप्यायध्वम् = हे गौओं, तुम इन्द्र के लिये अपने भाग = दूध को बढ़ाओ।

६. प्रजावतीः अनमीवाः अयक्ष्मा: वः (अपहर्तुम) स्तेनः मा ईशत, अघशंसः मा ईशत =

सन्तान वाली, रोग रहित और अस्ट तुमको गौओं का (चुराने में) चोर न समर्थ हो और व्याघ्र आदि भी न खा सकें।

७. अस्मिन् गोपतौ ध्रुवाः बह्वीः स्यात =

इस गो रक्षक यजमान के पास अटल और अनेक होकर रहो।

(पालाश शाखे) यजमानस्य पशून् पाहि =

हे पलाश वृक्ष की डाल = छड़ी; संटी, लकड़ी तू यजमान के पशुओं की रक्षा कर।

[अचेतन शाखा से भी उसमें वर्तमान देवता का उद्देश्य करके उक्ति है।]"

पाठक देखें— वेद मन्त्र में पलाश की शाखा, काटना, सीधा करना बछड़े, वन में आदि का कोई वचन न होने पर भी उन्हें अपनी ओर से जोड़ा गया है, व्यापक अर्थों वाले वेद मन्त्र को कितना संकीर्ण और संकुचित कर दिया गया। यह देख कर महर्षि दयानन्द के व्यापक और सत्य अर्थ की महिमा विदित होती है।

चाणक्य के अमृत उपदेश

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पंडितः॥

जो पर-स्त्रियों को माता के समान, पर धन को मिट्टी के ढेले के समान तथा समस्त प्राणियों को अपने ही समान देखता है, वही वास्तव में पण्डित है।

दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन
स्नानेन शुद्धिर्न तु चन्दनेन।
मानेन तृप्तिर्न तु भोजनेन
ज्ञानेन मुक्तिर्न तु मण्डनेन॥

दान देने से ही हाथ की शोभा है, गहनों से नहीं। स्नान करने से ही शुद्धि होती है, चन्दन से नहीं। सम्मान से तृप्ति होती है, भोजन से नहीं और ज्ञान से मुक्ति होती है, केवल वेष-भूषा धारण करने से नहीं।

आर्यसमाज के समस्त पत्रों में सबसे अधिक छपने वाला आर्य प्रतिनिधिसभा उत्तर प्रदेश का पत्र—

लखनऊ—रविवार १८ सितम्बर तदनसार शुद्ध भाद्रपद शुक्ल २ सम्वत २०१२ सौर ३१ भाद्रपद दयानन्दाब्द १३० सृष्टिसम्वत १९७०९४९ ०७

एक बार फिर......

आज जो भी मैं लिखूँगा सम्पादक के नाते नहीं! निजी रूप में क्योंकि कुछ बातें ऐसी चल रही हैं जिन से मैं चिन्तित हूँ, और परेशान भी! कई बार एकान्त में बैठ कर यह जानने का यत्न किया है कि कहीं मैं भूल पर तो नहीं, बहुत विचार किया है इस पर फिर भी अपना अपराध भूल मुझे समझ नहीं आयी समझ आ जाती तो मैं स्पष्ट रूप से कह देता, झिझक या चिन्ता न कभी हुयी है, और सम्भव है न होगी!

१ फरवरी सन् ५४ को मैं लखनऊ आर्यमित्र में आया था, तब जो सोचा था, उससे बहुत आगे आना पड़ गया। कुछ दिनों के अंदर ही पुराना दैनिक निकालने की बातें सुन-सुन कर इसे आरम्भ करने की इच्छा अप्रैल सन् ५४ में ही जाग उठी! सौभाग्य से श्री कालीचरण जी मान्य भूतपूर्व मंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा का हार्दिक आशीर्वाद भी इस इच्छा को प्राप्त हो गया! समय बीतता गया और अप्रैल ५४ में सोची बात अप्रैल सन् ५५ के लगभग २८ मार्च को मूर्त रूप धारण कर सकी!

इस बात को भी आज लगभग ६ माह बीत गए जब दैनिक आरम्भ हुआ था तब भी पूंजी के रूप में एक पैसा पास नहीं था बीच में भी नहीं रहा और आज भी नहीं है! फिर भी ६ मास 'मित्र' चल चुका! इस बीच के जो परिणाम हैं वे निराशाजनक नहीं हैं। इतना तो स्पष्ट है ही! सफलता का आर्थिक न सही, प्रचार का आर्यसमाज के गौरव का, वैदिक भावनाओं की वृद्धि का लाभ सामने है। इतनी बात से तो कोई भी इन्कार नहीं कर सकता कि दैनिक के प्रकाशन से आर्य समाज आगे बढ़ा है, भले ही वह एक पग ही क्यों न बढ़ा हो!

किन्तु निरन्तर प्राप्त होने वाली सफलताओं सहायता व सहयोग के लिये अत्यन्त आभारी होते हुए भी आज प्रत्येक आर्य से यह प्रश्न है कि वह अब क्या इच्छा है? क्या ६ मास तक प्रत्यक्ष रूप से एक काम का नमूना दिखाने के बाद भी आर्य जनता इसे सम्भाल नहीं सकती? इतना निश्चित और स्पष्ट है कि यदि वह सम्भालेगी नहीं तो वर्तमान प्रबन्ध में अधिक दिनों चला न जा सकेगा?

किन्तु क्या वह रुक जाना अच्छा होगा? क्या वह सभी के लिये लज्जा की बात न होगी? क्या इससे हमारे गौरव को ठेस न लगेगी? सोचिए, इस प्रश्न पर गम्भीरता से! और फिर जो आप चाहें कीजियेगा? आज लाखों रुपया हमारे द्वारा संस्थाओं पर व्यय किया जा रहा है? निजी रूप में भी हम न जाने कितना व्यय करते हैं फिर क्या सारे आर्य भाई मिल कर भी अपना एक दैनिक पत्र नहीं निकाल सकते?

मैं जानता हूँ कि बहुत से भाई हमारी बात पढ़ कर दुखी होंगे पर इस समय मेरे सामने और कोई उपाय नहीं है। जिस समय दैनिक निकालने की और इसे चलाने की इच्छा प्रकट की थी उस समय भी केवल जनता का और ईश्वर का विश्वास हृदय में था और आज भी यही विश्वास गति का लिखने का आधार है!

> बाधाएं आएं, आने दो,
> दानवीय होने दो वार!
> छाती खोल खड़े रहो सम्मुख,
> सहने को ये सभी प्रहार!!

मैं जानता हूँ कि दैनिक मित्र उतना अच्छा नहीं निकल पा रहा, जितना निकलना चाहिये था किन्तु जो कठिनाइयाँ हैं उन्हें भी मैं अच्छी तरह अनुभव कर रहा हूँ। किन्तु स्वर्णमय भविष्य अभी आगे बढ़ने की प्रेरणा कर रहा है चिन्ता केवल एक है कि यह सपना टूट न जाये! आर्य समाज की विचार धारा को दूर दूर तक पहुँचाने की मित्र द्वारा अभिलाषा कहीं बीच में ही न रह जाये! यह ठीक है कि ऐसा होने पर मुझे असीम कष्ट होगा, किन्तु क्या मेरे साथ और भी हजारों हृदयों पर इस से ठेस न लगेगी?

जिन्हें यह ठेस लग सकती हो उन से आज मैं सहयोग देने की प्रार्थना कर रहा हूँ। होगा वही, जो ईश्वर की इच्छा होगी, हमारा धर्म तो कर्म करना है, इसलिये आर्य जनता से सभी सहयोगियों से आर्य मित्र के शुभ चिंतकों से आर्य समाज की विचार धारा प्रसार के इच्छुकों से मेरा पूर्ण आग्रह के साथ यह निवेदन है कि अपना पूरा बल लगाकर भी आर्य समाज के महान गौरव प्रतीक दैनिक मित्र की उन्नति और सञ्चालन में हाथ बटाएं?

अब समस्या केवल धन की है धन के अभाव में आर्य समाज की महान संस्था का काम असफल हो जायगा इसकी कल्पना भी करते भय लगता है! संसार को आर्य बनाने का लक्ष्य लेकर चलने वाले हम, क्या इतने अधिक निष्क्रिय सिद्ध होंगे कि अपने राष्ट्र में में भी वैदिक संदेश प्रसारित करने की अनुपम साधन का धनाभाव से समाप्त हो जाने देंगे! हजारों रुपया इकट्ठा हुआ समाप्त हो गया एक दिन दैनिक नहीं निकला जनता रुष्ट हुई ठीक पर अब ६ मास दैनिक को चलते हुये हो गये क्या अब जनता को सहयोग देने के लिये तैयार नहीं हो जाना चाहिये!

अभी तक जहां तक सम्भव हो सका किया अब तो सब कुछ आर्य जनता के हाथ में है। उसकी नींद यदि नहीं खुलती आर्य समाज यदि इसे चलाने का संकल्प नहीं लेती तो आप ही बताइए हम क्या करें? मुझे यह भी ज्ञात है कि पत्र में बहुत सी त्रुटियाँ हैं बहुत सी शिकायतें भी बहुतों को होंगी किन्तु इतना होने पर भी मेरा निवेदन यह है कि इन सबका सुधार हो सकता है 'मित्र' को ऊंचा बहुत ऊंचा उठाया जा सकता है यदि आप चाहें तो!

निराश मैं हूँ नहीं, मुझे आशा ही नहीं अपितु यह पूर्ण विश्वास है कि जनता मेरी बात को सुनेगी और ध्यान देगी प्रार्थना पर। मित्र चलेगा और अपने महान गुरु महर्षि दयानन्द के संदेश को प्रसारित करने में सफल भी। जीवन स्वर का संगीत दूर-दूर विस्तृत धरती पर गूंज उठेगा पर आवश्यकता केवल यह है कि आप की नींद टूट जाय। मैं इस निद्रा को छोड़ देने के लिए सभी से झोली पसार कर भिक्षा मांगता हूँ।

जिन्हें तनिक भी सहानुभूति हो, प्रेम हो, विश्वास हो वे इस प्रार्थना को सुनें और जो दे सकते हों सहयोग दैनिक आर्यमित्र के लिए दें। आपका यह योग दयानन्द ऋषि के संकल्पों को प्रत्येक मानस तक पहुँचाने में सफलता प्राप्त करेगा केवल यह विश्वास मैं आपको दिला सकता हूँ।

मैंने व आर्यमित्र के अधिष्ठाता श्री कालीचरण जी आर्य ने पिछले दिनों प्रार्थना की थी कि यदि १०) मासिक देने वाले केवल २०० व्यक्ति मिल जाएं तो मित्र उन्नति कर सकता है पर दुर्भाग्य कि सारे आर्य जगत में २०० व्यक्ति भी १०) मासिक देने वाले न निकल सके। यदि यह प्रार्थना आज भी स्वीकार कर ली जाए तो संकट टल सकता है।

आप सदस्य बना कर अपने नगर में एजंसी स्थापित कर सहयोग दे सकते हैं। पर आज मैं आपसे जो भी आप अधिक से अधिक या कम से कम जो भी भेज सकते हों भेजने की प्रार्थना कर रहा हूँ। एक आना भेजिये या एक रुपया सौ भेजिये या एक हजार आपकी शक्ति हो भेजिए। इस आशा के साथ कि आरम्भ किए यज्ञ की सफलता हमारी आप की सभी की सफलता होगी इस यज्ञ में आहुति दीजिए।

आर्यमित्र जनता का है जनता के लिए है वह चाहेगी चलेगा नहीं चाहेगी तो रुकेगा। उसकी चाह पर आर्यमित्र का आर्य समाज का और संसार का भविष्य निर्भर है। क्या सोच बैठे हुये आज न स्थिति का सामना करने के उद्देश्य से निरंतर आगे आगे बढ़ने के चाह लिए यह पंक्तियां लिख डाली हैं। यदि कुछ भी सत्य होगा तो जनता मेरी प्रार्थना को ठुकराएगी नहीं धन के अभाव में काम रुकने भी न देगी इस आशा से यह प्रकट की हैं।

सोचिए विचार कीजिए और फिर उठाइए पग देरी विनाश का निमन्त्रण है! बस शीघ्रता कीजिए और जो भी भेज सकते हों इन पंक्तियों को पढ़ते ही भेज दीजिए। क्या आशा करूं की पुकार शून्य में न टकराएगी। × ×

जब गोवा की मस्जिद में—

पांच हजार स्त्री पुरुषों को जिन्दा जला दिया गया

(ले०—श्री मधु कौशल)

आज से लगभग ४६० वर्ष पूर्व गोआ बीजापुर के सुल्तान युसुफ आदिलशाह की सल्तनत में था। इसी समय पुर्तगाली लुटेरे पश्चिमिडल अल्फान्सो अल्बुकर्क के साथ यहां आए और खूरेजी का वह इतिहास लिखा कि भारत के स्वर्ग गोआ को नरक में बदल दिया। गोवा उस समय अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का केन्द्र था। जिस समय अलबुकर्क ने सुल्तान की गैर मौजूदगी में गोआ पर गोलाबारी की तब यहां एशिया के २४ राष्ट्रों के जहाज व्यापार के लिए खड़े हुए थे। पुर्तगाली लुटेरों ने इन जहाजों को भी जी भर कर लूटा और हजारों को पुरुषों को मौत के घाट उतार दिया गया। इस सम्बन्ध में एक वर्णन उपलब्ध है, जिसमें कहा गया है—

"जान बूझकर हजारों हज यात्री मुस्लिमों, पुरुषों, स्त्रियों बच्चों को गोवा के तट से दूर समुद्र के बीच फेंक दिया गया और जहाज के पुर्तगाली लोग जहाज के छेदों से पानी में जीवन मरण से संघर्ष करते और चूहों की तरह ऊपर नीचे उतराते उन अभागे लोगों का तमाशा देखने लगे। आदिल शाह की मृत्यु के बाद अलबुकर्क और उसका जहाजी बेड़ा अपने मलावार के प्रधान केन्द्र से गोआ पहुंच गया। २५ नवम्बर १५१५ को पुर्तगाली बेड़े ने अपने सैनिक गोआ में उतार दिए। इन दिनों जो कत्लेआम यहां इन क्रूर पुर्तगालियों ने मचाया, वह स्वयं अलबुकर्क की कलम के अनुसार इस प्रकार है—

'तब मैंने शहर को आग लगादी और सब कुछ तलवार को सुपुर्द कर दिया। कई दिनों तक बराबर खून बहाया जाता रहा। जहां कहीं वे दिखाई पड़े पकड़ लिए गए और साफ कर दिये गये। किसी मुसलमान की जान नहीं बख्शी गई और स्त्री पुरुषों को मस्जिदों में भर कर आग दे दी। अनुमानतः पांच हजार से कम न थी। यह एक बहुत बड़ा कार्य था। हम खूब लड़े और मैदान साफ कर दिया गया।"

तीन दिन के लगातार कत्लेआम के बाद पुर्तगालियों ने चैन की सांस ली जो मुट्ठी भर लोग इनकी तलवार से बच पाये, उन्होंने बताया कि जब पुर्तगालियों के जहाज रवाना हुए तो वे हजारों स्त्रियों, हीरों और सोने से भरे हुए थे। बाद में पुर्तगालियों ने जिस गोवा का निर्माण किया, उसमें सारी मस्जिदें और मन्दिर तोड़ दिये गए। उनके स्थान पर पुर्तगाली वस्तु कला के आधार पर नये भवन और गिरजाघर गोवा में बने और यह नगर पूर्व में पुर्तगाली लुटेरों का एक अड्डा बनगया। लोगोंको तलवार के बल पर ईसाई बनाया गया और यह नगर अवैध व्यापार का अड्डा बन गया। अरबों का यहां आयात होने लगा। इसके बदले में स्त्रियों, रेशम, हीरों और मसालों का यहीं से निर्यात होने लगा।

गोवा के बीच में एक केन्द्र खोला गया, 'रूआ डिरीटा' के नाम से विख्यात हुआ। यहां स्त्रियाँ नीलाम होती थीं और पुरुषों को गुलाम बना कर बेचा जाता था। पुर्तगालियों के अत्याचार यहीं तक सीमित न थे। वे औरतों के बेचने से पूर्व उन्हें नंगा कर उनकी परेड कराते थे, ताकि खरीदने वाला उनकी फड़कती हुई बोटी बोटी की परख कर ले। खरीददार इन स्त्रियों के गुप्तांग को टटोल टटोल कर देखते थे और स्त्रियाँ अपने सगे सम्बन्धियों के सामने इस स्थिति में दूसरे को बेच दी जाती थीं। लिस्बन में गुलाम स्त्री पुरुषों को बेचने के लिए ६ बड़े बाजार थे। पुर्तगाली दुराचारियों का हौसला उससे भी आगे बढ़ा। उन्होंने सारे भारत में अपने आदमी फैला दिए, जो स्त्रियों को उड़ाकर गोवा ले जाते थे बाद में उन्हें लिस्बन भेज दिया जाता था।

सन् १६६७ के करीब जहाँ मुगल सम्राट शाहजहां का इन धूर्तों के अत्याचारों की जानकारी मिली तो उसने हजारों ऐसे पुर्तगालियों को मौत के घाट उतरवा दिया। चार हजार पुर्तगाली गिरफ्तार कर लिये गये और आगरा में सम्राट के सामने पेश किये गये। शाहजहांने उन्हें मुसलमान बनाने का आदेश दिया और उसके हुक्म का पालन किया गया। फिर भी पुर्तगालियों का औरत बेचने का व्यापार बन्द नहीं हुआ। अफ्रीका और पुर्तगाल में ऐसी मंडियाँ खूब पनपी आज गोवा में जहां सेंट कैथेराइन चर्च है, वहां कभी एक बहुत बड़ी मस्जिद थी। कदम्ब ने विशाल काय मन्दिर की जगह 'रोज मैंगोज, चर्च खड़ा किया गया। पुर्तगालियों ने जी भर कर मूर्तिभंजन किया, नारियों के साथ व्यभिचार किया और मनमाने अत्याचार किये।

समय आया, जब गोवा इनका उपनिवेश बन गया। ४४० वर्ष की इस अवधि में शोरगुल और हंगामें के बजाय भूमिगत अत्याचार और कुचक्र पुर्तगालियों के पनपते रहे। अब लोगों की आँखें ब्रिटिश हुकूमत पर थीं। कारण कि भारत के अधिकांश भाग पर उनका कब्जा था। भारत में जब राष्ट्रीय आन्दोलन आरम्भ हुआ तो वह भी अंग्रेजों के खिलाफ जलियानवाला बाग का काण्ड नरमेध यज्ञ के लिये कभी भुलाया नहीं जा सकता। वहाँ भागते हुए दर्शकों और श्रोताओं को पीठ पर गोली दागी गई। गोद में बालक लिये हुए माताओं को निसन्तान बना दिया गया। न मालूम कितनी बहन निराश्रय हो गईं, कितनी ही सधवाएं विधवाएं हो गईं, कितने माँ बापों के बुढ़ापे के आश्रय छिन गये। पापी डायर अपने इस पाप के प्रायश्चित से बच न सका। कहते हैं, लगी बुरी होती है। ऊधमसिंह नामक भारतीय युवक ने उस खूनी डायर को भारत से दूर सात समुन्दर पार उसी के देश इंग्लैंड में जाकर गोली मारी और दुनियाँ को बता दिया कि अत्याचारी को देर सवेर सजा जरूर मिलती है। चाहे वह भगवान के हाथों मिले या भगवान के पैदा किये किसी बन्दे के हाथ से। डायर का खात्मा हुआ। हैलेट ने भी किसी हद तक डायर के पद चिन्हों का अनुसरण करने की कोशिश की, उसे शीघ्र स्वदेश लौटना पड़ा।

भारत आजाद हुआ। तत्कालीन ब्रिटिश मजदूर दलीय सरकार ने समझदारी की। क्या पुर्तगाल के आज के तानाशाह सालाजार से पूछा जाय कि एटली ने यह नासमझी की या समझदारी। शायद सालाजार इसे एटली की नासमझी ही कहेगा। सालाजार कहेगा कि फ्रांस के भूतपूर्व प्रधान मंत्री मेंडेस फ्रांस का ऐसा कदम था जो बिना रक्तपात के पाँडिचेरी छोड़ दी। किन्तु दुनिया जानती है कि पुर्तगाल का यह शासन गोआ में अब कितने दिन टिक सकेगा अब वे दिन दूर नहीं, जब पुर्तगाली अपना बिस्तरा लादकर पुर्तगाल लौटेंगे। इज्जत से जाएं तो अच्छा वरना यह तराना उनकी विदाई पर सुनने को जरूर मिलेगा—

"किस कदर बे आबरू हो
तेरे कूचे से हम निकले।"

आवश्यकता

हमें एक सदाचारी, सुयोग्य एवं सिद्धान्तों के जानने वाले भजनोपदेशक की आवश्यकता है जो ग्रामों में सफलतापूर्वक प्रचार कर सके। वेतन योग्यतानुसार होगा। प्रार्थना-पत्र श्री मन्त्री आर्य समाज हापुड़ के नाम दिनांक २४-९-५५ तक भेजें। प्रार्थना-पत्र में आयु, योग्यता व अनुभव अवश्य दिया जावे। ९ बी०

मुकतालाल राम प्रोबताय
मन्त्री आर्यसमाज हापुड़, (मेरठ)

आवश्यकता

एक २२ वर्षीय साँवले रंग की अपितु सुन्दर वैश्य कुलोत्पन्न बी० ए० बी० टी० कुमारी के लिए जो १४५) मासिक पर अध्यापिका है उसके लिये ३० वर्ष तक के अविवाहित या विधुर कम से कम १५०) मासिक आय के वर की (जाति बन्धन रहित) आवश्यकता है। गुरु० कु० के स्नातक को विशेषता होगी। विवाह बहुत अच्छे ढंग से होगा। पूर्ण विवरण के साथ पत्र व्यवहार करें।

पोस्ट मास्टर हकोर
जि० जालौन

आर्यमित्र का शुल्क
दैनिक + साप्ताहिक

एक वर्ष का	—	२४)
६ माह का	—	१२)
३ माह का	—	७)
एक प्रति का	—	-)

साप्ताहिक का शुल्क

एक वर्ष का	—	८)
६ माह का	—	४॥)
३ माह का	—	२॥)
एक प्रति का	—	-)

श्री विद्यानन्द विदेह के बारे में

सार्वदेशिक सभा धर्मार्य सभा के निश्चय

[श्रीकालीचरणजी आर्य मन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधिसभा, देहली]

श्री विद्यानन्द जी विदेह का विषय इस सभा में गत दो वर्ष से अधिक समय से चला आ रहा है।

श्री विद्यानन्द जी के विषय में गत चार पाँच वर्ष से यह शिकायत सुनने में आ रही थी कि वे अपने प्रवचनों में, भाषणों में और वैयक्तिक वार्ताओं में आर्यसमाज, ऋषि दयानन्द और वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध कहते रहते हैं जिससे जनता में भ्रम उत्पन्न होता है। उनके मित्रों और आर्य समाज के हितैषियों का उनकी गति विधि को ठीक करने का प्रयास असफल होता रहा है। जब उनकी गति विधि सीमा का उल्लंघन करने लगी और वैयक्तिक प्रेरणा का कोई फल न हुआ तो आर्य समाजों तथा आर्यों को वैधानिक रीति से उनका विरोध करने के लिये बाध्य होना पड़ा। आर्य समाज मेरठ, अलीगढ, एटा, गाजियाबाद आदि आर्य समाजों ने विदेह जी की घोर गुरुडमपरक और वेद विरुद्ध बातों के सम्बन्ध में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को शिकायतें लिख कर भेजीं और उनकी गतिविधि को सुधारने का अनुरोध किया कतिपय मुख्य मुख्य शिकायतें इस प्रकार थीं :-

१-- बधाई के गीतों द्वारा सतान पैदा होने का प्रचार करना। देवी को जिसके सन्तान न होती थी सन्तान हो गई।

२-- विदेह जी का अपने को ऋषि मानना और मनवाना।

३- ऋषि दयानन्द और वैदिक धर्म की जय लगाया जाना साम्प्रदायिक है।

४-- परमात्मा को निराकार और साकार दोनों मानना और ऐसा ही प्रचार करना।

५ - मुर्दों का आजकल लकड़ी के अभाव में बिजली से जला दिया जाना उचित है।

६ - यह कहना कि उनकी रग रग में वैराग्य भरा हुआ है परन्तु उनकी धर्मपत्नी सन्यास ग्रहण करने की आज्ञा नहीं देती। पूरा वैराग्य हो जाने पर भी विवाहित्री की आज्ञा के संन्यास न लेने का प्रचार करना अवैदिक है।

७-- कार के ऊपर अटोल कर कुछ पोइन्ट अर्थात् व्यक्ति के भूत, भविष्यत तथा वर्तमान की स्वाभाविक घटनाओं का बताना।

८-- आर्य समाज के तीसरे नियम को अपूर्ण बताना।

इसी प्रकार उनकी रचित पुस्तकों के अनेक स्थल अलौकिक मान्यताओं और शिक्षाओं से परिपूर्ण पाये गये जिनके निरीक्षण की सार्वदेशिक धर्मार्य सभा से मांग की गई। इतना ही नहीं अनेक असन्तुष्ट समाजों ने प्रस्ताव पास करके सार्वदेशिक सभा से माँग की कि विदेह जी के लिये आर्य समाज की वेदी बंद कर दी जाये।

इन सब शिकायतों के प्राप्त होने और उनमें निरन्तर वृद्धि होते रहने पर सार्वदेशिक सभा के लिये आवश्यक कार्यवाही का करना अनिवार्य हो गया। फलतः सभा ने विद्यानन्द जी से उन शिकायतों का उत्तर मांगा जो प्राप्त हुआ परंतु संतोष जनक न पाया गया। जब यह बात उनके ध्यान में लाई गई तो उन्होंने ७।४।५४ को सार्वदेशिक सभा के तत्कालीन प्रधान को इस आशय का क्षमा पत्र लिख कर दे दिया कि भविष्य में उनके लेखों. व्याख्यानों में कोई भी सिद्धान्तादि की भूल न सुन पड़ेगी। पुस्तकों में जो सिद्धान्त विषयक त्रुटियां धर्मार्य सभा घोषित करेगी। उसे स्वीकार कर तत्काल अपनी पुस्तकें संशोधित कर देंगे। इस विश्वास कि उनकी गतिविधि में परिवर्तन हो कर कोई शिकायत न सुनी जायगी श्री विद्यानन्द जी की इच्छानुसार उनका क्षमा पत्र कार्यालय की फाइल का ही अंग रखा गया और उनकी निम्नांकित पुस्तकें संशोधन के लिये धर्मार्य सभा के सुपुर्द करदी गईं। धर्मार्य सभा ने उनकी पुस्तकों का निरीक्षण किया और संशोधनीय स्थलों के सम्बन्ध में एक विशेष निश्चय किया!

इस निश्चय की प्रति विदेह जी को भी भेजी गई परन्तु उन्होंने धर्मार्य सभा द्वारा निर्दिष्ट त्रुटियों को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। इस पर सार्वदेशिक सभा ने धर्मार्य सभा का एक विशेष अधिवेशन २६।६।५४ को देहली में बुलाया और श्री विदेह जी को उन त्रुटियों को सभा के सम्मुख अन्यथा सिद्ध करने की प्रेरणा की गई। श्री विदेह जी इस सभा में सम्मिलित हुये। इस सभा में उन्होंने अपनी त्रुटियों को न केवल माना ही अपितु लिखित रूप में धर्मार्य सभा द्वारा प्रस्तुत की हुई भूलों की स्वीकृति दे दी। धर्मार्य सभा ने उनकी पुस्तकों का भलाभांति संशोधन करने के लिये एक उप समिति नियुक्त कर दी। उक्त उप समिति ने बड़े परिश्रम से संशोधनीय स्थलों की विस्तृत तालिका बनाई जो विदेह जी को इस आदेश के साथ भेज दी गई कि वे शीघ्र अपनी पुस्तकों के संशोधित संस्करण निकालें या जब तक नये संस्करण न निकलें तब तक पुस्तकों का प्रचार बन्द रखें अथवा वर्तमान पुस्तकों में संशोधन

(शेष अगले पृष्ठ पर)

प्रांत की समाजों के नाम आदेश—

श्री विद्यानन्द जी विदेह का बहिष्कार किया जाए

आदेश भंग करने वाली आर्य समाजों के विरुद्ध अनुशासन की कार्यवाही की जाएगी

लम्बे समय से श्री विद्यानन्द जी 'विदेह' अजमेर निवासी के कार्य आर्य पुरुषो की चिन्ता का कारण बने हुए थे। उनकी पुस्तकें, उनके भाषण, उनका संस्थान आर्य जनता के धन से पोषित होकर भी आर्य समाज की आधारित बातों को नष्ट भ्रष्ट करने में लगा हुआ था। समय समय पर आर्य पत्रों ने, विद्वानों ने इस ओर सभा का ध्यान आकर्षित किया। परिणाम स्वरूप धर्मार्य सभा में यह विषय उपस्थित हुआ। विदेह जी को कई बार समझाने का भी यत्न किया गया पर परिणाम कुछ भी न निकला, उन्होंने लिखित क्षमा तक माँगी और भूलें लिखित स्वीकार की पर उनकी उलटी गतिविधि बढ़ती ही गयी, वेद भाष्य के लिये अपीलें निकलती रहीं और अगस्त का एक विशेषांक स्वयं विदेह जी के संपादन में प्रकाशित हुआ जिसमें विदेह स्तुति के अतिरिक्त कुछ और न था! कई आर्य पत्रों व विद्वानों की सम्मतियां भी तोड़ मरोड़ कर और पुरानी प्रकाशित की गयी, अपने को वेद मूर्ति आदि घोषित किया गया।

इस प्रकार स्थिति धीरे-धीरे असह्य होती गई और अनुभव किया गया कि अब जरा सी भी ढील आर्य समाज के लिये भयकर हानिप्रद सिद्ध होगी। अतः सोच विचार कर धर्मार्य सभा ने २७ ८ ५५ को एक प्रस्ताव पास किया और उसी के आधार पर सार्वदेशिकसभा ने २८ अगस्त को निश्चय कर आर्य जनता को आदेश दिया कि आर्य समाज से विदेह जी का बहिष्कार किया जाए! उनके ग्रंथ पुस्तकालय में न रखे जांय और न उन्हें किसी प्रकार की सहायता दी जाय! साथ ही यह भी बता देना चाहता हूं कि जो समाजें इस आदेश का उल्लंघन करेंगी उनके विरुद्ध अनुशासन की कार्यवाही की जा सकती है! अतः सभा आर्यसमाज के गौरव की रक्षा के लिए विदेह जी का पूर्ण बहिष्कार करें।

निवेदक

जयदेव सिंह आर्य एडवोकेट

मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश

करवा कर मयोजित कर देवें।

ये सवाल ८-९-५४ को उन्हें भेजे गये थे और जनता की सूचना के लिये प्रकाशित कर दिये गये थे। खेद है आज लगभग एक वर्ष का समय होने पर भी पुस्तकों के न तो नये संस्करण सभा कार्यालय में प्राप्त हुये और न संशोधनों में संयोजित वर्तमान संस्करण ही। यद्यपि विदेह जी को अनेक बार स्मरण कराया गया। उन्होंने प्रत्येक बार यही अनिश्चित उत्तर दिया कि नये संस्करण होने पर पुस्तकें भेजी जायेंगी। उन्होंने सभा को यह भी लिखा कि उनकी आपत्तिजनक पुस्तकों का प्रचार बंद हो गया है।

इधर तो विदेह जी की ओर से यह आश्वासन मिलता रहा और उधर उनकी पुस्तकों का बिना संशोधन के प्रचार जारी रहा। जो अब तक जारी है। इतना ही नहीं उनके सविता पत्र में अनेक अवैदिक गुरुडम परक और मिथ्याभिमान पूर्ण बातें प्रकाशित होती हैं और हो रही हैं यथा:-

सुफल भई मम बड़भागी।
वेद ज्ञान मम उतान पाई।
मति ऋतम्भरा मम जागी ॥
ब्रह्म धाम पीयूष पान कर।
सदा समाधि लागी ॥
जीवन मुक्त विदेह कहाया,
राग रहित अनुरागी।

सविता मार्च ५५, पृष्ठ ७७,

२-मेरी साधना पूर्ण हुई और मेरी रश्मियों ने अपने साथ समस्त विश्व को प्रकाशित कर दिया। सर्वलोक मेरे आलोक से आलोकित हो गया, और निरन्तर और अजस्र आलोक से सुपुष्ट रहता है। (सविता मई ५४, पृ० ७०)

विदेह विचार

मैं वहां हूँ कि जहां हर्ष नहीं शोक नहीं।
मैं वहां हूँ कि जहां रोक नहीं टोक नहीं ॥
मैं वहां हूँ कि जहां भोग और विलास नहीं
मैं वहां हूँ कि जहां लाभ और ह्रास नहीं ॥
मैं वहां हूँ कि जहां दुःख और त्रास नहीं।
मैं वहां हूँ कि जहां पाप का प्रभाव नहीं।
मैं वहां हूँ कि जहां द्वन्द्व का प्रभाव नहीं ॥
मैं वहां हूँ कि जहां भाव का प्रभाव नहीं ॥
मैं वहां हूँ कि जहां इच्छा वा द्वेष नहीं।
मैं वहां हूँ कि जहां घृणा व क्लेश नहीं।
मेरे संसार में संसार का व्यापार नहीं ॥
मेरे व्यवहार में संसार का व्यवहार नहीं।
यह मेरा लोक तो न्यारा है और ऊंचा है बहुत ॥
तुम्हारा लोक मेरे लोक से नीचा है बहुत
निम्न उलझन से तुम जब तक सुलझ न पाओगे।
तुम मुझे तब तक न समझ पाओगे॥

(सविता सितम्बर ५४ पृष्ठ १३२)

इसी प्रकार विदेह जी के भाष्य के विरुद्ध सार्वदेशिक धर्मार्य सभा ने अपनी अन्तरंग सभा दिनांक २०।४।५५ में निम्न निश्चय किया:

श्रीयुत विद्यानन्द जी विदेह ने सार्वदेशिक धर्मार्य सभा के २६।६।५४ के अधिवेशन के सामने स्वीकार किया कि मेरी दर्शन में गति नहीं और मैं संस्कृत भी उतनी नहीं जानता। ऐसी स्थिति में पं० विद्यानन्द जी विदेह ने अपने ऋग्वेद भाष्य के प्रकाशन के लिये आर्य जनता से जो अपील १ लाख रुपये की है सार्वदेशिक धर्मार्य सभा उसका घोर विरोध करती और सार्वदेशिक सभा से प्रार्थना करती है कि वह यथोचित कार्यवाही अविलम्ब करे। इस सभा की निश्चित सम्मति है कि ऐसे व्यक्ति को वेद भाष्य करने का कोई अधिकार नहीं।

इस पर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा ने २०।४।५५ की बैठक में निम्न निश्चय किया.

विशेष रूप से सभा प्रधानजी की आज्ञा से प्रस्तुत होकर कि श्री विद्यानन्द विदेह द्वारा वेद भाष्य के प्रकाशन के लिये १ लाख रुपये की अपील प्रकाशित हुई है, निश्चय हुआ कि सार्वदेशिक सभा इस वेद भाष्य को प्रमाणित नहीं मानती अतः आर्य समाजें एवं आर्य नर नारी इस सम्बन्ध में सचेत रहें और इसके लिये कोई आर्थिक सहायता न दी जाये। यही निर्देश उनके द्वारा छपी हुई अन्य पुस्तकों के सम्बन्ध में माना जाये।

सार्वदेशिक धर्मार्य सभा तथा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के इन निश्चयों के होते हुये भी विदेह जी ने सार्वदेशिक सभा की अवहेलना करते हुये आर्य जनता से धन संग्रह करना जारी रखा।

धर्मार्य सभा के निर्णय को अभी तक क्रियान्वित न किया जाना अपितु उसके विरुद्ध व्यवहार करना या प्रकाशनों का करते देना आर्य समाज के संगठन और अनुशासन को खुली चुनौती है।

श्री विदेह जी की वर्तमान गति विधि पर लक्ष्य इत्यादि से सभा को यह निश्चय हो गया है कि उनका अपनी भूल पर जरा भी खेद नहीं है और न आर्य समाज के अनुशासन का जरा भी सम्मान नहीं करते। ऐसी अवस्था में धर्मार्य सभा को उनके सम्बन्ध में पुनः विचार के लिये बाधित होना पड़ा और उसने अपनी २८।८।५५ की सभा में निश्चय करके सार्वदेशिक सभा को प्रेरणा की है कि उनकी अवैदिक विचार धारा और गुरुडम को रोक देने का तत्काल उपाय करें। जिससे आर्य जनता उनके फैलाये हुये भ्रम, अन्ध श्रद्धा और अविश्वासों से मुक्त रहे। धर्मार्य सभा का निश्चय इस प्रकार है:

सार्वदेशिक धर्मार्य सभा ता० २७।८।५५ का निश्चय (सार्वदेशिक सभा के पास भेजने के लिये)

विषय संख्या २०

पं० विद्यानन्द जी विदेह की वर्तमान गतिविधियों पर विचार। पर्याप्त विचार होकर सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि:

श्री विद्यानन्द विदेह जी के सविता पत्र के कतिपय लेख धर्मार्य सभा के ध्यान में लाये गये उनके प्रकाशित साहित्य व व्यवहार का आर्य जनता पर इस प्रकार का प्रभाव पड़ता है कि जिससे वह अपने आपको नबी, अवतार मन्त्र द्रष्टा ऋषि आदि के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इससे आर्य जगत् में भ्रम और अन्ध विश्वास फैल रहा है और उससे वैदिक सिद्धांत के सर्वथा विरुद्ध भावना का उदय होता है। ऐसी अवस्था में यह सभा सार्वदेशिक सभा से अनुरोध करती है कि वह आर्य जगत् का इस भ्रम से बचने का समयोचित उपाय अविलम्ब करे।

विदेह जी की सविता पत्र के कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं:—

सविता योजनांक मास अगस्त १९५५

(क) भगवान समय समय पर लोकोद्धार के लिये एक युग नेता अवश्य भेजते हैं। मेरी समझ में हो लुप्त हो रही वेद विद्या तथा योग विद्या के प्रचार के लिये ही आपका अवतरण हुआ है।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्। गीता ४-७) सविता पृष्ठ १६१

(ख) ऋषिवर स्वामी दयानन्द जी जिस महान् उद्देश्य को लेकर कार्य क्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे और जिसे पूर्ण कर पाने की अन्त पीड़ा लिये हुए उन्होंने ऐहलौकिक यात्रा पूर्ण कर दी थी उसी उद्देश्य की पूर्त्यर्थ आचार्य विदेह जी को मानो परमात्मा ने संसार में भेजा है। सविता पृ०१४३

(ग) आचार्य विद्यानन्द विदेह विप्र ऋषि दिव्यद्रष्टा इत्यादि [सविता पृष्ठ १५३।

धर्मार्य सभा के इस निश्चय पर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की २८-८-५५ की अंतरंग ने निम्नांकित निश्चय किया है।

निश्चय सं० २० सार्वदेशिक धर्मार्य सभा की २७-८-५५ की अन्तरंग का प्रस्ताव प्रस्तुत हो कर पढ़ा गया। निश्चय हुआ कि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से आर्य समाजों को इस आशय का आदेश दिया जाय कि क्योंकि विदेह जी ने अनेक बार ध्यान खींचे जाने पर और आश्वासन देकर भी वैदिक सिद्धांतों के विरुद्ध प्रचार बन्द नहीं किया है इस कारण (१) आर्यसमाज की वेदी पर से उनके व्याख्यान न कराये जावें। (२) उनके अन्य आर्य समाज के पुरस्कारों में न रखे जावें। (३) उनके ग्रंथों के प्रकाशन के लिये अथवा अन्य किसी कार्य के लिये आर्थिक सहायता न दी जाये।

इस निश्चय को क्रियान्वित करना प्रत्येक आर्य समाज और आर्य संस्था का परम कर्तव्य है। सभा को आशा है कि निश्चय का अक्षरशः पालन होगा और कोई आर्य समाज और आर्य संस्था आदि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को अनुशासन भंग की कार्यवाही करने का अवसर न देगा। यह सभा इस निश्चय को बुराई के प्रसार को रोकने के लिये कड़ाई के साथ परिपालन कराने के लिये कृत संकल्प है।

विदेह जी के प्रति इस अनुशासनात्मक कार्यवाही के करने में सभा को दुःख है। सबसे बड़ा दुःख इस बात का है कि सभा ने विदेह जी को अपनी गति विधि में सुधार करके आर्य समाज का एक उपयोगी अंग बने रहने का आवश्यकता से अधिक अवसर दिया, परन्तु उन्होंने उससे समुचित लाभ न उठाकर उपयुक्त प्रकार का सभा को निर्णय करने के लिये विवश कर दिया। आर्य समाज की शिक्षाओं सिद्धांतों और मन्तव्यों के विरुद्ध प्रचार करने में कोई भी आर्य स्वतंत्र नहीं किया जा सकता। आर्य समाज के सिद्धान्त उनके मन्तव्य और विश्वास से बढ़ कर उनका हित विदेह जी पर बलिदान नहीं किये जा सकते। × ×

चाणक्य के अमृत उपदेश

सदा प्रसन्नं मुखमिष्टवाणी
सुशीलता च स्वजनेषु सख्यम्।
सतां प्रसङ्गः कुलहीनहानं
चिह्नानि देहे त्रिदिवस्थितानाम् ॥

सदा प्रसन्न मुख रहना, प्रिय बोलना, सुशीलता, आत्मीय जनों में प्रेम, सज्जनों का संग और नीचों की उपेक्षा—ये स्वर्ग में रहने वालों के लक्षण हैं।

सांख्य और ईश्वर

[ले० श्रुतिशील शर्मा तर्क पं० गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन]

दार्शनिक जगत् में भारतीय दर्शनों का स्थान उत्तम है। क्योंकि सारे दर्शनों का आधार ही भारतीय दर्शन है। यद्यपि भारत में छोटे दर्शन अधिक संख्या में विद्यमान हैं। परन्तु विचार की दृष्टि से मुख्यता का श्रेय कुछ ही दर्शनों को मिलता है। वे दर्शन अपने २ स्थान पर अपना २ प्रभाव रखते हैं। परन्तु इन में भी दार्शनिकों ने आस्तिक नास्तिक दृष्टि से दो भेद कर दिये हैं। जिनमें जैन, बौद्ध दर्शन तो कट्टर नास्तिकवादी हैं। तथा शेष न्याय, वैशेषिक, योग मीमाँसा, वेदान्त ये पाँच आस्तिकवादिता का प्रतिपादन करते हैं। इन दर्शनों के आस्तिकता के विचार में लगभग सारे दार्शनिको का एक मत है—क्योंकि ये दर्शन स्पष्ट रूप से सूत्रों में ईश्वर के अस्तित्व का प्रतिपादन करते हैं यद्यपि न्याय दर्शन ने सूत्रों में ईश्वर की सिद्धि नहीं की, परन्तु तर्कों द्वारा इतनी सुघड़ता से इसका प्रतिपादन किया है कि अनेकों कट्टर नास्तिक भी उसके तर्कों को खंडित नहीं कर सके। परन्तु शेष सांख्य दर्शन पर "ईश्वरासिद्धेः" इस सूत्र को लेकर अनेको दार्शनिकों ने नास्तिकता का प्रबल कुठाराघात किया है परन्तु यह आघात उनके अर्थो की अनभिज्ञता के कारण ही कहा जा सकता है। अतः मैं यहाँ पर कुछ युक्तियोंसे और सूत्रोंके भाष्य के आधार पर उसकी आस्तिकता के सिद्ध करने की कोशिश करूँगा। इन षड्दर्शनों का आपस में इतना सम्बन्ध कि इनका विभाजन न्याय वैशेषिक, सांख्य-योग, मीमांसा, वेदान्त, इस प्रकार किया जा सकता है, क्योंकि जो कुछ सिद्धान्त न्याय दर्शन के हैं उनसे बहुत कुछ मिलता जुलता सिद्धान्त वैशेषिक का भी है। और सांख्य-योग के सिद्धान्त तो इतने मिलते हैं कि बहुत से विद्वानो ने सांख्य को निरीश्वर सांख्य कह कर योग को सेश्वर सांख्य कहा है। इसी प्रकार सिद्धान्तों के कारण मीमांसा को पूर्व मीमांसा और वेदांत को उत्तर मीमांसा कहा है।

विज्ञान सांख्य की "ईश्वरासिद्धेः" प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः" सम्बन्धाभावान्नानुमानं" इन सूत्रों पर निरीश्वरता सिद्ध करते हैं। परन्तु उनका आरोप ठीक नहीं है। क्योंकि कपिलाचार्य २० क ज्ञानवान् ऋषि होते हुये भी ईश्वर न मानें तो कुछ असंगत सा प्रतीत होता है, तथा च उसी के समान सिद्धान्त वाले योग दर्शन के रचयिता श्री पतञ्जलि ने सूत्रों में ईश्वर का वर्णन किया है। तो यहाँ पर इस दर्शन के सिद्धान्तों की छाप सांख्य पड़ी है तो ईश्वरास्तित्व की छाप न पड़ी हो यह ठीक प्रतीत नहीं होता। तथा च यदि सांख्याचार्य को ईश्वर अमान्य ही था तो सूत्र में असिद्ध पद न रख कर अभाव पद ही रखते। क्योंकि दर्शनों में अमान्य सिद्धान्त के लिये अभाव का ही प्रयोग होता है। अस्तु सम्प्रति सांख्य सूत्रो पर श्री विज्ञान भिक्षु का भाष्य प्राप्य है। और वह मान्य भी है। साथ ही स्वा-दर्शनानन्द जी ने इनका भाष्य करते हुए लिखा है। उन्होंने प्रत्यक्ष के प्रसंग में पूर्व पक्षी के द्वारा एक प्रश्न उठवा कर उत्तर दिया है। पूर्व पक्षी मानसिक प्रत्यक्ष को नहीं मानता है तो उत्तर देते है। 'ईश्वरासिद्धेः' यदि मानसिक प्रत्यक्ष न माना जाये तो ईश्वर की असिद्धि हो जायेगी। यतः मन द्वारा ही ईश्वर का आभास मिलता है। अतः मानसिक प्रत्यक्ष आवश्यक है तथा च यह परमात्मा बाह्येन्द्रियों से असिद्ध है अतः यहाँ 'असिद्धेः' पद रखा। सम्भवतः महर्षि जी ने भी सत्यार्थ प्रकाश में इस सूत्र का यह ही अर्थ लिखा है। अतः यहाँ असिद्ध पद अभाव वाचक नहीं है। यह सूत्र प्रथमाध्याय का है इसके पश्चात शेष दो सूत्र पञ्चमाध्याय के हैं। जिनमें पूर्वपक्षी ईश्वर को जगत का अभिन्न निमित्त उपादान कारण मानता है। उसका उत्तर देते है की "प्रमाणाभावान्नतत्सिद्धिः" अर्थात् उसको जगत का उपादान कारण मानने में कोई प्रमाण न होने से उसके कारणत्व की सिद्धि नहीं हो सकती। तथा "सम्बन्धाभावान्नानुमानम्" उसका जगत से उपादान कारण रूप सम्बन्ध न होने से अनुमान भी नहीं हो सकता। अतः उसके उपादान कारणत्व में अनुमान भी प्रमाण नहीं है। इस प्रकार, उपादान कारणत्व का खंडन हो गया। अतः यदि सूत्रों पर प्रसंग सहित विचार किया जाये तो नास्तिकता के आरोप के लिए लेशमात्र भी अवकाश नहीं है। अब यदि सांख्य के ऊपर किये गये "विज्ञान भिक्षु" द्वारा रचित "सांख्य प्रवचन भाष्य' पर दृष्टिक्षेप करें तो यद्यपि वहाँ कुछ अंशो में ईश्वर का अभाव तो प्रतिपादन किया है लेकिन अभाव प्रौढिवाद में लाकर आगे उसका खडन भी कर दिया है। उन्होंने प्रथम भूमिका में प्रौढिवाद का लक्ष्य बता दिया है और पूर्वपक्षी के यह कहने पर कि ईश्वर नित्य है उसमे सन्निकर्षाभाव से प्रत्यक्ष का लक्षण नहीं जाएगा अतः अव्याप्ति होगी। उन्होंने कहा है कि—

ईश्वरासिद्धेः:—भा० ईश्वरे प्रमाणाभावान्न दोषः, अयंच ईश्वर प्रतिषेध एक देशिनां प्रौढिवादेनैवेति प्रागेव प्रतिपादितम्। अन्यथा ह्यीश्वराभावादित्येवोच्येत [सांख्य प्रवचन भा. अ. १ पा. १ सू० ६२] अर्थात् ईश्वर के अभाव से लक्षण म अव्याप्ति नहीं होगी। यह ईश्वर का प्रतिषेध केवल प्रौढिवाद को लेकर किया है अन्यथा यदि कपिलाचार्य को ईश्वर अभीष्ट न होता तो ईश्वरासिद्धेः न कह कर 'ईश्वराभावात्' ही रखते। अतः उनको ईश्वर मान्य था। यह विज्ञान भिक्षु का भाष्य है। सम्पूर्ण सूत्रों पर भाष्य विज्ञान भिक्षु का ही प्राप्य है। परन्तु इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर विद्वानो ने कारिकाये बनाई है। इनका निर्माता 'ईश्वर कृष्ण' है जिनके ऊपर 'वाचस्पति मिश्र' ने तत्व कौमुदी नाम की टीका बनाई है। इसमें भी ईश्वर का अभाव सिद्ध किया है। परन्तु असगत रूप से, वहाँ तत्व कौमदी पूर्व पक्षी ने प्रश्न उठाया है कि प्रकृति जड़ है उसका नियामक कोई चेतन होना चाहिए। आत्मा उस प्रकृति के स्वरूप से अनाभिज्ञ है अतः वह नियामक नहीं हो सकता है। अतः ईश्वर को मानना चाहिए। वहाँ वाचस्पति ने उत्तर दिया है कि जैसे जड़ दूध की प्रवृत्ति बछड़े के लिए होती है उसी तरह आत्मा के लिए प्रकृति स्वय कार्य करता है। परन्तु यहाँ पूर्व पक्षी ने फिर प्रश्न उठाया कि जब तक गाय में चेतन्यता रहती है तब तक तो दूध आता है जब मर जाती है तो नही आता। अतः दूध की प्रवृत्ति में चेतनता ही कारण है। उसी तरह प्रकृति नियामक चेतनश्वर मानना चाहिए। परन्तु वाचस्पति जी ने इसका समुचित उत्तर नही दे पाये। और फिर आगे लिखा कि विद्वानो की किसी कार्य में प्रवृत्ति दो ही कारणों से होती है या तो प्रयोजन वश से या कारुण्य से अतः यदि सृष्टि के आधार पर ईश्वर की सिद्धि होती है तो उसका सृष्टि बनाने मे भी कोई प्रयोजन है न कारुण्य है। अतः ईश्वर ने सृष्टि नही बनाई। और जब सृष्टि का कर्त्ता ही नही है तो इसका अर्थ ईश्वर ही नही है: परन्तु यहाँ भी उनका कथन समीचीन नहीं है। क्यो कि सृष्टि का निर्माण करने मे उसका प्रयोजन था। वह था लीला कैवल्य का। जैसा कि श्री ब्रह्ममुनिजी ने अपने वेदान्त दर्शन के भाष्य मे "लोकवत्तु लीला कैवल्यम्' इस सूत्र पर भाष्य करते हुए लिखा है कि—

"परमात्मा जगद्रचयिता कर्तृत्वादि स्वप्रभाव प्रदर्शन लोकवत्करोति यज्जना स्तस्य कर्तृत्व व्यापकत्वज्ञानपूर्वक विश्वात्मरचनाद्दे गुणानवलोक्य

(शेष पृष्ठ ९ पर)

अनमोल बोल !

(श्री प्रेमकुमार पाण्डेय 'प्रेमी')

* स्वयमेव विद्यार्थी को इसी प्रकार का (उत्तम) आचरण अपनी ओर से भी करना चाहिये, चाहे माता पिता उनके लिये ऐसा प्रबन्ध करें या न करें!

—महात्मा नारायण स्वामी

* सत्य को ग्रहण करने और असत्य को त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

महर्षि दयानन्द

* मन ही मन समझे सो देवता, संकेत से समझ ले सो मनुष्य और कहे कहे भी जो न समझे सो पशु है।

—नीति

* महात्मा और पतित में यही भेद है कि जो मन को वश में रखता है सो महात्मा और जो मन के वश में रहता है सो पतित है।

—पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

* इन्सान मरता आ रहा है, मर रहा है और मरता रहेगा यह नहीं रोका जा सकता, हाँ कुत्ते की मौत मरना रोका जा सकता है। —भगवानदीन

* वह सभा नहीं जिसमें वृद्ध न हो, वे वृद्ध नहीं जो धर्मज्ञ न हो, वह धर्म नहीं जिसमें सत्य न हो और वह सत्य नहीं जो छल से भरा हो।

—विदुर प्रजागर

* सन्तान को उत्तम और सत्य शिक्षा न देने वाले माता पिता शत्रु के समान हैं मूर्ख संतान सभा में उसी प्रकार शोभित नहीं होती जिस तरह हंसों में बगुला।

—चाणक्य नीति

इसाई उत्तर देंगे ?

मूल लेखक:—शास्त्रार्थ महारथी पं० रामचन्द्र देहलवी
अनुवादक:—विद्यावती शर्मा, M.A.B.Com

(१) क्या ईश्वर, पुत्र और पवित्र आत्मा समान गुण-युक्त व्यक्तियों का मंडल है जिसे गॉड-हीड नामक सामान्य संज्ञा से सम्बोधित किया जाता है ? दूसरे शब्दों में क्या ये तीनों समान गुण वाले एक ही जाति के व्यक्ति हैं ?

(२) अगर ये तीनों एक ही जाति के हैं तो तीनो एक ही पदार्थ के बने हुए होने चाहियें, अन्यथा ये एक कोटि मे नही रखे जा सकते।

(३) समान धर्मी होने के कारण उनके तत्व आदि एक दूसरे में प्रवेश नहीं कर सकते क्योंकि समान धर्मी व्यक्तियों का, किसी भी संयोग में, व्याप्य व्यापक सम्बन्ध नहीं हो सकता।

(४) उपर्युक्त व्याप्य व्यापक संबन्ध के अभाव मे, उन्हे असीम स्थान में भिन्न-भिन्न स्थान ग्रहण करने चाहियें और इससे प्रमाणित करना चाहिये कि वे सीमित अस्तित्व, ज्ञान और शक्ति वाले सीमित तथा एक देशीय हैं।

(५) यदि ये समान धर्मी और समान गुणयुक्त नही हैं तो ये तीनों किन गुणों और लक्षणो में एक दूसरे से भिन्न हैं ?

(६) ईसामसीह किस प्रकार के पुत्र थे ? क्या वे ईश्वर से पैदा हुए थे ? या संसार के नियमानुसार ईश्वर ने उन्हें दत्तक लिया था ?

(७) यदि वे ईश्वर से पैदा हुए थे तो वे अनादि या अनंत नहीं हो सकते—पिता और पुत्र दोनों एक साथ अनादि और सम-वयस्क नहीं हो सकते।

(८) जब पवित्र आत्मा (Holy Ghost) के संयोग से ईसा की माता कुमारी मेरी ने ईसा को जन्म दिया है तो ईसा को ईश्वर का पुत्र क्यों मानते है ? अगर ईश्वर और पवित्र-आत्मा मे कोई भेद ही नहीं हैं तो आपके सिद्धांतो मे मान्य त्रैतवाद के ठहरने का कोई आधार ही नहीं रहता।

(९) क्या आप मानते है कि कु० मेरी ईसामसीह की माता थीं और पवित्र-आत्मा तथा ईश्वर दोनों के साथ सम्भोग से उन्हें गर्भ रहा था। क्यों कि आप ईसामसीह को ईश्वर का पुत्र भी मानते है।

(१०) यदि ईश्वर, पुत्र और पवित्र आत्मा का अलग अस्तित्व नहा है और ये तीनों उसी एक कर्त्ता के विभिन्न गुणों और कार्यों के द्योतक हैं तो क्या यह कहना तर्क युक्त और न्याय संगत न होगा कि कु० मेरी ने गर्भ धारण किया और त्रैतवाद में समाहित ..व्यक्तियों को जन्म दिया ?

(११) क्या सृष्टि-रचना के पूर्व ईश्वर अनन्त में निरर्थक और आलसी बैठा हुआ था ?

(१२) यदि ईश्वर कुछ भी नहीं कर रहा था तो किस कारण से उसने उस निकम्मी अवस्था का त्याग कर दिया और सृष्टि रचना का कार्य आरम्भ किया ?

(१३) किसके लिये और किस हेतु से ईश्वर ने यह दुनियां बनाई ? उसने इसे उस समय बनाया जब कि केवल उसी का अस्तित्व था, वह अपने में पूर्ण था और उसे अपने लिये किसी वस्तु की आवश्यकता न थी।

(१४) जब दुनिया बनाने के उपकरण (Matter) ईश्वर के पास नहीं थे तब ईश्वर ने दुनियां किसमें से बनाई ? वह अपने में से तो बना नही सकता क्यों कि वह स्वयं अविनाशी और अविभाज्य है।

(१५) इंजील में सेंट जान के वर्णनानुसार अध्याय १, कड़ी १, में लिखा है कि, "आरम्भ में शब्द था, शब्द ईश्वर के पास था, शब्द ईश्वर था।" इससे आगे १४ वीं कड़ी में जॉन साहब कहते हैं कि, "शब्द को मांस में परिवर्तित किया गया।" क्या इसका यह अर्थ नहीं होता कि आरम्भ में पुत्र पिता के साथ था, पुत्र पिता था ? क्या इस कथन में कोई बुद्धि-पूर्ण, सागर्भित भाव है ? शब्द तो वक्ता की क्रिया मात्र है, जिसका अस्तित्व वक्ता के पूर्व नहीं हो सकता। कार्य हमेशा कर्ता पर आधारित होता है। कार्य और कारण दोनों का स्वातन्त्र्य अस्तित्व नहीं होता, वे तो सदैव पदार्थ में रहते हैं।

(१६) क्या ईश्वर की यह दिली इच्छा थी कि मनुष्य को अपराधों और कुमार्ग पर ले जाने के लिये शैतान को उत्पन्न करना चाहिये।

(१७) दुनियां में मनुष्य पैदा करने के बाद ईश्वर को पश्चात्ताप क्यों हुआ ? क्या यह उसकी सीमित शक्ति और ज्ञान का प्रमाण नहीं है ?

(१८) ईश्वर ने आदम को अच्छे और बुरे का ज्ञान देने वाले वृक्ष के फलों को खाने की मनाई क्यों की, जब कि इसी ज्ञान के द्वारा मनुष्य, शब्द के सच्चे अर्थों में मनुष्य बन गया है ?

(१९) यदि ईश्वर की आज्ञानुसार आदम ने ज्ञान वृक्ष के फल न खाये होते तो, मैं नहीं समझ सकता, इस दुनियाँ और मनुष्य की क्या अधिक अच्छी स्थिति हो सकती? शायद यह दुनियाँ नङ्गों अन्धों और अज्ञानियों से भरी होती।

(२०) गढ़े में कैद किये और कुमार्गी शैतान को क्यों छोड़ा गया ? सारी सृष्टि पर उसे विजयी क्यों बनाया गया ? क्या यह ईश्वर की कमजोरी का प्रबल प्रमाण नहीं है ?

(२१) ईव को मना किये गये वृक्ष के फलों को खाने के लिये लालायित कर सारी मनुष्य जाति को नुकसान पहुंचाने वाला तो शैतान ही था, फिर निर्दोष ईसामसीह के स्थान पर शैतान को फाँसी क्यों नहीं दी गई ?

(२२) क्या समानता और न्याय के सिद्धान्त पर आधारित कोई भी सरकार इस प्रकार सच्चे अपराधी के स्थान पर किसी निर्दोष को सजा देकर अपना मूल्य घटा सकती है ?

(२३) जब कि कु० मेरी धर्मानुकूल जोसेफ की पत्नी थी और जोसेफ उसका पति, तब क्या यह कहना ईश्वर की निन्दा नहीं कि पवित्र-आत्मा से कु० मेरी को गर्भ रहा ? पवित्र-आत्मा को ऐसा कर्म करने का क्या अधिकार था ?

(२४) बाइबिल का ईश्वर शरीर धारी, सीमित ज्ञान, शक्ति तथा सीमित अस्तित्व वाला है। जेनेसिस के अध्याय ३, ८ वीं कड़ी को देखिये। उसमें लिखा है कि, दिन के शीत पहर के समय जब मालिक खुदा बगीचे में टहल रहे थे तब उन्होंने उसकी आवाज सुनी।"

(२५) जेनेसिस अध्याय ३ कड़ी २२, २३, २४ में जो कुछ लिखा है उससे स्पष्ट है कि बाइबिल का खुदा ईर्ष्या और भय से मुक्त नहीं है क्यों कि उसे डर लगा कि अच्छा और बुरा जानने से मनुष्य देव हो जायगा और जीवन वृक्ष को पाकर तो अमर ही हो जायगा। इसी लिये उन्होंने मनुष्य को ईदन के बगीचे में से निकाल कर उसके पूर्व स्थान पर जहां पर उसे लाया था, जमीन जोतने के लिये भेज दिया तथा बगीचे के सुदूर पूर्वी सिरे पर रखा। चारों ओर घूमने वाले चेरू बीम और प्रज्वलित तलवारों से जीवन वृक्ष की रक्षा हेतु पहरा लगवाया।

मनुष्य ने होड़ की और ईश्वर ने ईर्ष्या !

मैंने सब देकर सब पाया।

अक्षय कोष मिला जब मैंने अपना सारा कोष लुटाया !
जाने कब से मैं पागल बन,
मिट्टी को समझी थी कंचन,
किन्तु तुम्हारी कृपा किरण ने,
दिया मुझे अनमोल ज्योतिकण,
जिसके दिव्य प्रकाश पुंज में, मैंने नूतन पंथ बनाया !
लक्ष्य प्राप्ति करने का यदि प्रण,
करो विभव का दूर प्रलोभन,
कहीं न स्थिर कर दे पद की गति,
सोने—चाँदी का आकर्षण,
छाया बन — बन पथ को रोके मन की मृग तृष्णा की माया !
देव तुम्हारा पूजन अर्चन,
करता है मन प्रति पल, प्रति क्षण,
तेरा ही बन अनुगत होकर,
सिद्ध बने यह आत्म समर्पण,
ज्ञात न मै प्रभु बनी तुम्हारी प्रभु ही मुझ में कहां समाया !

—विद्यावती मिश्र

सिद्धान्त-विमर्श

सत्यार्थप्रकाश पाठ संख्या ३३ (अष्टम समुल्लास)

तीन अनादि पदार्थ

[श्रीसुरेशचन्द्र वेदालंकार एम० ए० एल० टी० डी० बी० कालेज गोरखपुर]

इससे पहले लेख में हमने बताया था कि "मूल प्रकृतिरविकृतिः महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त। षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः ॥"

अर्थात् वह मूल प्रकृति अविकृति है- अर्थात् किसी का भी विकार नहीं है' महदादि सात (अर्थात महत्, अहंकार और पञ्चतन्मात्रायें) तत्व प्रकृति विकृति है और मन सहित ग्यारह इन्द्रियाँ तथा स्थूल पञ्च महाभूत मिलकर १३ तत्वों को केवल

विकृत अथवा विकार कहते हैं। पुरुष न प्रकृति है न विकृति। इस प्रकार ये पच्चीस तत्व स्वामी जी महाराज ने भी सत्यार्थ प्रकाश में दिखाये हैं। यह तो प्रकृति तथा पुरुष परमात्मा हुए। इनके अतिरिक्त जीवात्मा भी एक तत्व है। इन पच्चीस तत्वों के और तीन भेद किये गए हैं—अव्यक्त व्यक्त और ज्ञ। अव्यक्त प्रकृति है व्याम २४ तत्व अन्य एवं ज्ञ पुरुष है इनमें से प्रधानता पुरुष अर्थात् परमात्मा की की है। क्योंकि इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय उसी से होती है अत वही ब्रह्म जानने योग्य है, (प्रश्न) यह जगत् परमात्मा से उत्पन्न हुआ है या अन्य से? (उत्तर) निमित्तकारण परमात्मा से उत्पन्न हुआ है परन्तु इसका उपादान कारण प्रकृति है, (प्रश्न) क्या प्रकृति परमेश्वर से उत्पन्न नहीं हुई? (उत्तर) नहीं यह अनादि है अर्थात वह किसी से नहीं हुई और वह अनादि है? उसका जन्म नहीं होता। (प्रश्न) अनादि किसको कहते हैं और कितने पदार्थ अनादि हैं? (उत्तर) ईश्वर, जीव और जगत का कारण ये तीन अनादि हैं। आदि उसे कहते हैं जिसका प्रारम्भ और जिसका प्रारम्भ होगा उसका अन्त भी होगा। ईश्वर, जीव और प्रकृति इन तीनों का न तो प्रारम्भ होता है और न अन्त ही। इनमें से प्रकृति मूल प्रकृति सत्व, रज और तम की समानावस्था वाली प्रकृति सदा विद्यमान रहती है भले ही वह अपना रूप परिवर्तन कर ले। [प्रश्न] इसमें क्या प्रमाण है कि ये तीनों पदार्थ अनादि हैं? (उत्तर) द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।

यह ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त १६४ मन्त्र २० है। इस मन्त्र में बड़ी कविता मय भाषा में इन तीनों अनादि तत्वों का उल्लेख किया गया है। [सुपर्णा] चेतनता और पालनादि गुणों से सदृश [सयुजा] व्याप्य एवं व्यापक भाव से संयुक्त [सखाया] परस्पर मित्रता युक्त (द्वा) दोनों ब्रह्म और जीव सनातन एवं अनादि हैं। (तयो) इस जीव और ब्रह्म में से (अन्य) एक [समानं वृक्षं] अपने ही समान अनादि वृक्ष अर्थात मूल कारण और शाखा रूप कार्य युक्त वृक्ष (प्रकृति) पर बैठा हुआ इस वृक्ष रूपी संसार में (पिप्पल) पाप पुण्य रूप फलों को (स्वाद्वत्ति) अच्छे प्रकार भोगता है और दूसरा पक्षी अर्थात् परमात्मा वह भी अपने समान अनादि वृक्ष पर बैठा हुआ पाप पुण्य रूप फलों को खाने वाले जीव रूपी पक्षी को देखता है पर स्वयं उस पाप पुण्य रूपी फलों का भोग नहीं करता, उन्हें छूता तक नहीं। तात्पर्य यह है कि जीव को इस संसार में पाप और पुण्य दोनों का फल दुःख और सुख भोगने पड़ते हैं पर परमेश्वर इन फलों से अछूता रहता है। क्योंकि वह तो कर्मों के फलों का द्रष्टा है। जो जैसे कर्म करता है उसको वैसा फल प्रदान करता है। जीव को कर्म करने की स्वतन्त्रता है वह चाहे तो अच्छे कर्म करे और यदि न चाहे तो बुरे करे। पर वह कर्मद्रष्टा परमेश्वर उसे उनके कर्मों का फल अवश्य देगा। वह क्षमा नहीं करेगा। उसे सुख और दुःख भी नहीं होता है तभी तो हम उसे सच्चिदानन्द स्वरूप कहते हैं। सुख दुःख का अनुभव तो चेतन जीव जो पाप पुण्य सभी फलों का भोक्ता है, अनुभव करता है। इसीलिए योग दर्शन में परमेश्वर का लक्षण लिखा है "क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः' जो अविद्यादि क्लेश, कुशल, अकुशल, इष्ट, अनिष्ट और मिश्र फलदायक कर्मों की वासना से रहित है वह सब जीवों से विशेष ईश्वर कहाता है। और आत्मा के चिन्ह, 'इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख' हैं। इस प्रकार इस मन्त्र में ईश्वर, जीव और प्रकृति को अनादि माना गया है।

इसी प्रकार श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी एक मन्त्र आया है —

अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥

जो जन्म रहित सत्व, रज तमो गुण रूप प्रकृति है वही स्वरूपाकार से बहुत प्रजारूप हो जाती है। सत्व, रज और तम ये तीन गुण हैं सत्व गुण सफेद रंग का माना गया है, लाल रंग रजोगुण का और काला रंग तम गुण का माना जाता है। इसलिए इस मन्त्र में लोहित शुक्ल कृष्णा ये शब्द सत्व रज और तम इन तीनों गुणों वाली प्रकृति के लिए आए हैं। यह प्रकृति उन तीनों गुणों की विषमावस्था में विक्रमस्त होने से परिणामिनी है और अवस्थान्तर को प्राप्त हो जाती है। इसीलिए लिखा है कि अपने समान आकार वाली बहुत प्रजाओं को उत्पन्न करने वाली, सत्व रज और तम गुण वाली एक अज मा प्रकृति को सेवा करता हुआ अर्थात् उसमें लिप्त होता हुआ एक अज अर्थात् जन्मा जीव उसमें रत हो जाता है, उसका भोग करता है और भोग की गई इस प्रकृति को गई इस प्रकृति को दूसरा अज अर्थात परमात्मा छूता तक नहीं।

इस प्रकार इन दोनों मन्त्रों द्वारा ईश्वर जीव और प्रकृति को अनादि माना है। ये तीनों जगत् के कारण हैं। इस अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ फंसता है और परमात्मा न उसका भोग करता है और न उसमें फँसता है। इस प्रकार प्रमाणों द्वारा भी यह त्रैतवाद ही ठीक ठहरता है।

सांख्य और दर्शन

(७ पृष्ठ का शेष)

तमुपगच्छेयु वह परमात्मा जगत् रचकर वह अपने प्रभाव का प्रदर्शन करते हैं। जिससे उसके गुणों को देखकर मनुष्य उसकी उपासना करें। यह ही सृष्टि के रचने में उस परमात्मा का प्रयोजन है। अतः वाचस्पति जी का कथन समीचीन प्रतीत नहीं होता। इस प्रकार वाचस्पति ने सांख्य को निरीश्वरवादी सिद्ध करने का प्रयत्न किया। परन्तु असफल ही रहा। और बिना परमात्मा के आत्मा मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। क्योंकि वह हमेशा प्रकृति में ही फंसा रहता। परन्तु परमात्मा की प्रेरणा से अपने स्वरूप का [illegible] कर आत्मा [illegible] मोक्ष को पाता है। अतः पुरुष के मोक्ष के लिए भी परमात्मा का मानना आवश्यक है। अतः सिद्ध होता है कि महर्षि आचार्य कपिल मुनि को ईश्वर अभीष्ट था। अतः वे नास्तिक नहीं थे अपितु पूर्ण तथा आस्तिक थे। × × ×

स्व० महात्मा गौरी सहाय जी

[ले० श्री ठाकुर सिंह जी ग्वालियर]

गौरी सहाय जी ने पटियाली जिला एटा (उत्तर प्रदेश) के एक प्रतिष्ठित रईस दलपतराय जी के आर्य परिवार में ज्येष्ठ शुक्ला १० सम्वत् १९३६ वि० को जन्म लिया था। श्रीराय साहब के ६ पुत्र थे जिसमें हमारे अधिनायक तृतीय पुत्र थे। आपने अँग्रेजी में इन्टर तक शिक्षा अध्यन की थी। इसके पश्चात् कुछ वर्ष इन्दौर राज्य के सेटिलमेन्ट विभाग मे सर्विस की। वहाँ साथी कर्मचारियो के अन्याय पूर्ण धन उपार्जन करने की वृत्ति से उनके दिल में सर्विस से अत्यन्त घृणा उत्पन्न हो गई और सर्विस छोड़कर वापिस अपने गांव में आ गये। वहाँ आकर फर्रुखाबाद में अपने ज्येष्ठ भ्राता डा० महेश्वर सहाय जी के निजी मुद्रणालय में कई वर्ष तक हर प्रकार की मुद्रण कला का अध्ययन करते रहे परन्तु काल की विकरालगति से उन्हें ग्वालियर राज्य में पुनः सर्विस करना पड़ी।

२. आपने आलीजाह दरबार प्रेस में दिनांक २६—८—१९०८ को एक साधारण जगह ट्रेवलिंग एजेंट पर ४०) रुपये से सर्विस प्रारम्भ की और अन्त में उन्नति करते हुये सराहनीय सेवाओं के साथ सहयोगी मैनेजर आलीजाह दरबार प्रेस व स्टेशनरी विभाग ग्वालियर के पद से १५ अप्रैल सन् १९४० को सेवा मुक्त हो गये। श्रीमंत आर्जे जीवाजीराव सिंधिया महाराज ने उनकी कर्तव्य परायणता से प्रसन्न होकर ३२ वर्षीय सेवाओं के उपलक्ष में ग्रेज्यूटी तथा पेंशन दोनों सन्मान पूर्वक प्रदान कीं यह एक ऐसी विशेष उल्लेखनीय घटना है जो ग्वालियर राज्य मे किसी को भी प्राप्त नहीं हुई थी। दरबार के कठिन से कठिन कार्यो को अपने अथक परिश्रम से थोड़े समय मे इच्छानुसार पूर्ण करने के कारण अनेक बार आपने पारितोषिक प्राप्त किये।

३. बाबू गौरी सहायजी के जीवन की अनेक ऐसी घटनायें हैं जिनसे उन्हे सच्चे अर्थ में महात्मा की पदवी से संबोधन करना असंगत न होगा। उन्होंने अपने जीवन को प्रारम्भ से ही एक आदर्श जीवन व्यतीत करने का अभ्यास किया था और वह यह था कि बाबू जी नित्य

प्रति ब्राह्म मुहूर्त में उठ कर शौच इत्यादि कर्म से निवृत्त होकर वायु सेवन के हेतु ३—४ मील की दूरी पर पहाड़ पर भजन गाते हुये जाते थे वहाँ पर थोड़ी देर ईश वंदना करके पुनः भजन गाते हुये घर लौटते थे। उन्होंने नगर के कुछ प्रतिष्ठित सज्जनों को उपदेश के प्रभाव से वायु सेवनार्थ एक मंडल बनाया था। घर आकर पुनः स्नान करते संध्या हवन करते, योगासन द्वारा व्यायाम करते इसके पश्चात वेदों तथा उपनिषदों का स्वाध्याय करते थे। ठीक ९ बजे भोजन करके प्रेस को चले जाते थे और रात को ९ बजे वापिस लौटते थे। उनका यह क्रम निरन्तर अपने सेवकाल में चलता रहता।

४. चूंकि बाल्यकाल से ही आप आर्य परिवार मे पले थे इस लिये उनके शुद्ध हृदय पर स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तो की पूर्ण छाप लग चुकी थी। फर्रुखाबाद मे जिस समय क्रिश्चियन मिशनरी बड़े जोरों के साथ धन के जाल मे लोगो को फंसा कर ईसाई बना रही थी उस समय आपने अपने ज्येष्ठ भ्राता डा० महेश्वर सहाय जी के साथ शुद्धि का कार्य बड़ी तत्परता से किया था। सन् १९१० ई० से स्थानीय आर्य समाज लश्कर की निस्वार्थ सेवायें कीं। कई वर्षों तक मंत्री निरीक्षक तथा प्रधान रहे। इसके अतिरिक्त माधव आर्फनेज, अनाथाश्रम मुरार कन्या धर्म वर्धिनी सभा, गौशाला इत्यादि सार्वजनिक संस्थाओं में भी अधिकारी रहे। इस समय अनाथाश्रम मुरार के प्रधान तथा श्री मंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य भारत के उपमंत्री पदों पर विद्यमान थे। ५- राज्य की सेवा से मुक्त होने के उपरांत भी आप कुछ न कुछ राज्य भक्ति के कारण अवैतनिक सेवायें करते रहे। सन् १९४२ ई० से आप महात्मा के रूप में पुनः आनरेरी सुपरिन्टेन्डेन्ट गजराराजा अपग आश्रम के पद पर आदर्श कार्य कर रहे थे। आप अपंगों की हर प्रकार की सेवाएँ स्वयं परिवार की तरह कर रहे थे। समय की गति प्रबल होती है कि वह अपने मझले पुत्र के यहां पौत्री के विवाह संस्कार में शुजालपुर गये थे वहां दिनांक २१।६।५४ को प्रातःकाल ५-१५ पर हृदय की गति रुक जाने के कारण अचानक आपका स्वर्गवास हो गया इस समय आपकी की संतित में एक पुत्री तथा तीन पुत्र है। आपके तीनो पुत्र इस समय उच्च पदों पर कार्य कर रहे हैं।

६- महात्मा गौरी सहाय जी का जीवन एक आदर्श जीवन रहा, उन्होंने अपने जीवन में यह घटाकर बतला दिया कि मनुष्य गृहस्थ जीवन में रह कर किस प्रकार वर्णाश्रम धर्मों का पालन कर सकता है। सदाचार के आप इतने दृढ थे कि सन् १९१८ ई० में धर्म पत्नी का देहान्त हो जाने पर आपने आजीवन पत्नीव्रत धर्म का पालन किया। महात्मा जी बड़े परोपकारी, लोकप्रिय, हँसमुख, सच्चे शौक तथा उत्साही थे और आर्य जगत के लिये एक महान् अनुकरणीय आत्माओं में से थे।

श्री विद्यानन्द जी विदेह के सम्बन्ध में आर्य विद्वानों की सम्मतियां

(ले०—आचार्य विश्वश्रवाजी प्रधानमंत्री सार्वदेशिक धर्मार्य सभा देहली)

सार्वदेशिक सभा ने पं० विद्यानन्द जी विदेह के लिये आर्य समाज की वेदी अत्यन्त विवश होकर बन्द की है। विद्यानन्द जी विदेह ने अपनी पत्रिका सविता के वोधनाङ्क में आर्य विद्वानों की सम्मतियाँ अपने बारे में छापी हैं जिसको देखकर आर्यमित्र दि० ४ सितम्बर १९५५ के अङ्क में यह जिज्ञासा जनता ने की है कि ऐसी स्थिति में आर्य विद्वान् अपनी अच्छी सम्मतियाँ पं० विद्यानन्द जी और उनके ग्रन्थों के बारे में क्यों लिखते हैं तथा पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक विद्यानन्द विदेह जी की समिति के सदस्य भी हैं और धर्मार्य सभा के भी अन्तरङ्ग सदस्य हैं। जनता के ज्ञानार्थ में इसका स्पष्टीकरण करता हूं।

पं० युधिष्ठिर जी को जिस समय धर्मार्य सभा में सम्मिलित किया गया था उस समय हम लोगो को इसका ज्ञान नहीं था कि वे विद्यानन्द जी की समिति के सदस्य हैं और न पं० युधिष्ठिर जी को ही विद्यानन्द जी विदेह और सार्वदेशिक सभा की स्थिति का पूर्ण ज्ञान था और न उस समय तक विद्यानन्द जी की वेदी ही सभा ने बन्द की थी अब पं० युधिष्ठिर जी को सारी बातों का ज्ञान है मेरी मौखिक बातचीत भी इस सम्बन्ध में पं० युधिष्ठिर जी से हो चुकी है वे अब अपना निर्णय इस सम्बन्ध में शीघ्र ही कर लेवेंगे।

अन्य विद्वानों से भी मैंने बात की कुछ का तो कहना यह है कि सविता बोधनाङ्क मे छपे शब्द इस रूप में हमारे हैं ही नहीं तथा वे सम्मतियाँ बहुत पुरानी हैं जब आर्य समाज के विद्वान पं० विद्यानन्द जी की चालाकियों को जानते न थे और न उनकी लीलाएं जानते थे, साधारण सरल स्वाभाव से बहुत पहले कुछ शब्द लिख दिये थे जैसे एक पंडित दूसरे पंडित को लिख ही देते हैं। अब विद्यानन्द जी विदेह का वास्तविक स्वरूप सबको पता चल गया है अतः आर्य जगत् के विद्वानों की अब सम्मति विद्यानन्द जी विदेह के बारे में क्या है यह शीघ्र समक्ष में आ जायगा, जनता कुछ प्रतीक्षा करे।

श्री विद्यानन्द जी ने वर्षों मुझसे आग्रह किया कि मै उनके ग्रन्थों के बारे में सम्मति दूं पर मैने मौन ही रखा था उनके बहुत विवश करने पर मैंने उनको यह लिख कर भेज दिया था कि आप की गायत्री पुस्तक देखने में ऐसी अच्छी लगती है कि मेरे बच्चे उनसे खेलते हैं पर विद्यानन्दजी ने न जाने मेरे बारे में क्या क्या छाप दिया, यही दशा दूसरे विद्वानों की भी होगी, अस्तु अब यह भी सब प्रकट हो जायगा, जनता प्रतीक्षा करे।

स्वास्थ्य-सुधा

तम्बाकू

[लेखक—श्री क शिव श्री गाजियाबाद]

आज तम्बाकू प्रयोग संसार में कितने मनुष्य करते हैं और कितने प्रकार से करते हैं यह किसी से छिपा हुआ नहीं है। मानव समाज को तम्बाकू द्वारा क्या हानि पहुंच रही है यह जन साधारण की जानकारी के हेतु बता देना आवश्यक है।

वैज्ञानिकों ने इसमें से जो विष निकाला है और सम्भवतया जिसको निकोटीन कहा जाता है वह अत्यन्त घातक है। इसके विषाक्त निर्यास (सार) की एक बूंद प्राणी की जीवन लीला का अवसान करने के लिये पर्याप्त है। एक पाउन्ड तम्बाकू में ३०० से ४०० ग्रेन यह पदार्थ होता है जो ३०० जीवों का प्राणान्त कर सकता है। यदि तम्बाकू का निर्यास स्वास की नली में छोड़ दिया जाय तो तत्काल मृत्यु हो सकती है। इस निर्यास में भिगो कर शीशे की एक छड़ को जब तीन छोटी छोटी बिल्लियों के कंठ में छुआया गया तो तीनों १५ सेकिन्ड के अन्दर मर गईं। यदि इस निर्यास का एक बूंद आंख के ढेले के सफेद भाग से स्पर्श कर जाय तो तुरन्त प्राणान्त हो जायगा।

जेम्स कोल ब्लड गुड ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि जब तक डाक्टर और मरीज दोनों इस बात को न समझ जायेंगे कि तम्बाकू ही उपद्रव की जड़ है, तब तक मुंह के कैन्सर का निराकरण नहीं हो सकता मुंह में कैन्सर के रोग से पीड़ित होने वाले १२० में से ९० व्यक्ति तम्बाकू पीने वाले होते हैं। मुंह के कैन्सर का एक मात्र उपचार यह है कि तम्बाकू का पीना बिलकुल बन्द कर दिया जाय।

तम्बाकू पीने वाले प्राय यह कहते हैं कि लत पड़ जाने से तम्बाकू के विष का प्रभाव उनके शरीर पर नहीं पड़ता। किन्तु उनका यह कथन ठीक नहीं है। वह शरीर को अदृश्य रूप में धीरे धीरे हानि पहुंचाता रहता है इस प्रकार शरीर में विष का उत्तरोत्तर बढ़ते जाना और भी भयानक है।

चिलम में भर कर पीने से ही नहीं, सिग्रेट, सिगार सिगरट के धुएं में १६ प्रकार के जहर होते हैं और वे सब घातक होते हैं। एक डाक्टर ने प्रयोग करके बतलाया कि तम्बाकू के निर्यास की एक बूंद के छटवें हिस्से से एक बिल्ली या चूहा मर सकता है। आधी से दो बूंद देने से कुत्ता और आठ बूंद तक से घोड़ा मर सकता है।

हुक्का, नस्वार, खाने, जर्दा, बीड़ी सिगरेट सुर्ती के रूप में लोग प्रयोग करते हैं। हम यह देख रहे हैं। इस विष रूपी पान का प्रयोग घटने के स्थान पर दिन प्रति दिन बढ़ रहा है। सभ्य समाज यह जानते हुए भी कि तम्बाकू का प्रयोग हानिप्रद है। इसके सेवन पीने को सम्मान रूप से किसी के समक्ष उपस्थित कर देने में सभ्यता का चिन्ह (खातिर तवज्जो) समझ उपस्थित करते हैं। यह प्रथा प्राय सारे भारत में और विदेशों मे भी उत्सवों निमन्त्रणों, विवाहों, और प्रीति भोजों के अवसरों पर आपको देखने को मिलगी। यदि कोई मिलने आये या जाय तो भी उनके समक्ष चाय बीड़ी पान सिगरेट आ ही जाते हैं। कांग्रेस के स्वराज्य प्राप्ति आन्दोलन के समय तो विलायती सिगरेट के स्थान पर बीड़ी के प्रयोग ने इतना जोर पकड़ा कि जिस का प्रभाव आज दिन भी यह प्रत्यक्ष प्रत्येक स्थान आबाल, युवक वृद्ध, पुरुष और कहीं २ तो स्त्रियां तक बीड़ी पीते देखी जाती हैं। बड़ों को देख कर बच्चों को भी बीड़ी पीने की लत पड़ जाती है। कुछ लोगों का कथन है कि बीड़ी के कारण बहुत से और हजारों गरीबों का जीवन यापन हो जाता है किंतु वह लोग यह भूल जाते हैं कि तम्बाकू के इस विष पान की प्रथा ने मानव को कितना रोगी और पतित बना दिया है। मध्य प्रदेश में तो सरकार को कृषि के कार्य आधिक्य के कारण कृषि कार्य को किसान और मजदूर नहीं मिल पाते मैं मध्यप्रदेश के उस क्षेत्र में बहुत रहा हूं कि जहां बीड़ी बनाने का केन्द्र है अर्थात जबलपुर, कटनी, दमोह हटा सैन पुर आदि उस ओर यह कार्य वृहद् रूप में होता है, उस क्षेत्र के नगरों में ही ग्राम ग्राम में आप को बीड़ी बनती दृष्टि गोचर होगी। बीड़ी बनाने का अधिक प्रचार क्या तो जनता की प्रवृत्ति है जाने के कारण बीड़ी बनाने वाले कारखाने दारों को लाभविक्रय था। स्वराज्य प्राप्ति के समय में जिसने भी थोड़ी पूंजी से आरम्भ किया वही सेठ बन गया। यह लाभ विक्रय देख, जमींदार माल गुजार, दूकानदार और बड़े किसान बीड़ी बनाने की ओर झुक पड़े। इस बीड़ी के काम ने उपर्युक्त स्वास्थ्य सम्बन्धी हानियों के अतिरिक्त मध्य प्रांत को जो चारित्रिक हानि पहुंचाई है वह अकथनीय है। प्रांत का सदाचार कुछ सभ्य उच्च जाति के लोगों को छोड़ कर साधारण नागरिक और ग्रामीण जनता का भारी पतन हुआ। विशेष कर अपढ़ लोगों का। उस ओर पचासों की संख्या में पुरुष स्त्रियां लड़के और लड़कियों को पंक्ति बद्ध बिठला कर बड़ी कारीगरों के रूप में इस कार्य को साथ साथ कराया जाता है। और वहीं हंसी मजाक गन्दे गान छेड़ छाड़, गन्दी गजलें, अश्लील कहानियां और कुरीतें होती रहती हैं। कई कारखाने दारों का विवाह नयी या रंडियों का नाच और उस प्रकार की भाषा में राई (दुश्चरित्र स्त्रियों का नाच गान) करते देखा जाता है। पैसे ने इसे और प्रोत्साहन दिया। और अपढ़ जनता में दुराचार और भ्रष्टाचार फैल गया मुसलमान सेठों और कारीगरों ने भी इस अवसर से पूरा लाभ उठाया और प्रांत की हिन्दू जनता का चारित्र हीनता में शर को कर दिया बहुत सी मुसलमान बना देने में भी वह पीछे न रहे। प्रायः हिन्दू कन्याओं स्त्रियों अनाथों, और विधवाओं के भगा ले जाने के समाचार सुनने में आते रहते थे और अभी भी सुनने में आते हैं। कारीगर लोगों को उन हिन्दू घरों में भी जाने का अवसर बीड़ी का पत्ता कटाने के बहाने मिलता है। कारण कि जो स्त्रियां बाहर नहीं जा सकतीं वह बीड़ी बनाने को पत्ता काटती हैं। और अब तो घरों में स्त्रियां भी बीड़ा बनाती पाई जाती हैं। इस भांति सेठों व बीड़ी कारीगरों का सम्पर्क घरों के अन्दर भी हो गया है। और विधर्मी होने अथवा पतित होने का मार्ग घर-घर तक पहुंच चुका है। इधर मध्य प्रदेश के बाहर के नगरों में बीड़ी की खपत बढ़ाने के हेतु पोस्टरों,

[शेष अगले पृष्ठ पर]

जानिए

१९२७ में वेनेजुएला एक स्काउट जुलियो वेसिलवर्डिया दक्षिण अमेरिका, मध्य अमेरिका और मेक्सिको के २७ देशों में २००० मील पैदल चला। इसके ५० जोड़े जूते चलते चलते घिस गए।

सोवियत संघ के समाचार पत्र सम्पादकों को अब समाचारों के लिए अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ेगा।

यदि भूतल की सारी बर्फ एक साथ ही पिघल जाए तो उससे इतना अधिक पानी बढ़ जाएगा कि समुद्र की सतह १०० फीट ऊपर उठ जाएगी।

मानतीय सम्पादक जी!

२८ अगस्त १९५२ का 'साप्ताहिक आर्यमित्र पढा। मुखपृष्ठ की कविता "अबला नारी सबला नारी" आद्यो प्रान्त पढने के पश्चात् हृदय आह्लादित भी हुआ और खिन्न भी! आह्लादित होने का कारण यह है कि लेखिका ने नारी जाति के वास्तविक गुणो का हृदय ग्राही शब्दों में गहन भावो को प्रकट कर गागर में सागर भरा है! उदाहरणार्थ निम्न पंक्तियां हैं—

"देती दुलार की सघन छांह
पढ़ते हो नैंना की भाषा।
पीती दुःख गरल जगत भर का
देती सुख का आभास सदा।
इसमें अमृत भी हाला भी
कैसा अद्भुत यह रत नारी।
रण स्थल में इसको देखा
बन काल शत्रु पर टूट पड़ी
पहना दी प्रियतम को माला
काटा निज हाथा से निज सर'

उपरोक्त पंक्तियो मे नारी के प्रेम सहन शीलता वीरता, त्याग आदि का अनुपम रहस्य छिपा है किन्तु इसके साथ साथ निम्न पंक्ति खिन्न करने वाली है और बार २ भुलाये जाने पर भी हृदय पटल से दूर नहीं होती।

"पर पाया जीवन में इसने
युग युग से है उपहास सदा'

यह पंक्ति न केवल नारी जाति का तिरस्कार करती है वरन् आर्य जाति, उसके प्राचीन वैभव और सभ्यता पर प्रहार है। जहां नारी को "अर्द्धांगिनी, सहधर्मिनी गृहस्वामिणी की पदवियो से विभूषित किया जाता हो, जहाँ पर 'यत्र नार्यस्तु पूज्य ते रमन्ते तत्रदेवता' का आदर्श हो, जहाँ पर सीता राम राधेश्याम आदि शब्द नारी की महत्ता प्रकट करते हों वहाँ पर नारी का उपहास होना कहा तक न्याय योचित है? हमारा उद्देश्य तो पहले से ही नारी को समुचित आदर वरन पुरुषो से अधिक आदर प्रदान करने का रहा है! माता कौशल्या के शब्दों को देखिये?

"जो केवल पितु आयुस ताता
तो जनि जाहु जानि बड़ माता॥

मेरा विचार किसी प्रकार की आलोचना का नहीं है वरन् पढते समय हृदय में जो उद्गार उत्पन्न हुये केवल उन्हे प्रकट करना है और यदि श्री लेखिका महोदया को कुछ अनुचित जान पड़े तो क्षमा प्रार्थी हू!

पूरन मल गुप्त बजाज

गढमुक्तेश्वर (मेरठ)

तम्बाकू

[पिछले पृष्ठ का शेष]

विज्ञप्तिया के अतिरिक्त नचनियों और गवैयों की बाजे सहित टोलिया घूमते आप स्वय देखते हैं। अतएव यदि सिनेमाओ का चरित्र हीनता के बढाने म पहिला गहरा हाथ है तो तम्बाकू बीडी आदि का भारतीयों को पतित करने मे दूसरा नम्बर अवश्य है। ईश्वर भारतीय समाज की मनोवृत्ति को स मार्ग की ओर लगाये।
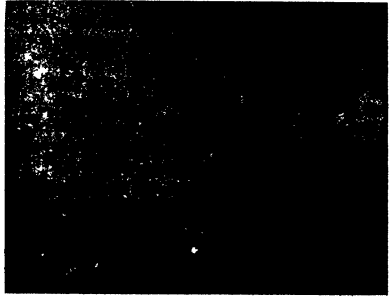
नये पूसा (नयी दिल्ली) के भारतीय कृषि अन्वेषणशाला में कुछ वैज्ञानिक रेडियों का माम गा तक पहुचाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

उत्तर प्रदेश की सभा का—

एक बहुत बड़ा त्याग

(लेखक—श्री आचार्य विश्वश्रवा जी बरेली)

आर्य जगत् के कर्मठ नेता श्री बा० कालीचरण जी आर्य का त्यागपत्र उत्तर प्रदेश की प्रतिनिधि सभा के मन्त्री पद से बड़े दुःख के साथ कानपुर अधिवेशन में स्वीकार किया गया जिससे वे सार्वदेशिक सभा के मन्त्रि पद का कार्य भार देहली रह कर पूर्ण रीति से सम्भाल सकें पिछली

नैनीताल वाली अन्तरङ्ग में भी उन्होंने त्याग पत्र दिया था पर उस समय सब ने यही कहा कि वे दोनों सभाओं के मन्त्री पद का कार्य करें। सार्वदेशिक सभा के प्रधान प० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति की यह प्रबल इच्छा थी कि बा० कालीचरण जी उत्तर प्रदेश से त्याग पत्र देकर सार्वदेशिक सभा में आकर बैठें। ऐसा श्री प० इन्द्र जी ने मुझ से भी कहा था अब इस कानपुर की अन्तरङ्ग में मने अपने उत्तर प्रदेश की सभा के सदस्यों से बहुत आग्रह किया कि वे त्याग पत्र स्वीकार करके सार्वदेशिक सभा के लिए अवकाश दे दें। अन्तरङ्ग सदस्य उनका त्यागपत्र स्वीकार करना नहीं चाहते थे क्योंकि उत्तर प्रदेश की सभा के मन्त्री रहते हुए जितना दौरा सारे प्रांत में सभा के लिये बा० कालीचरण जी आर्य करते थे किसी भी मन्त्री ने अब तक नहीं किया था। सभा के लिये सारे वर्ष धन लाना, कार्यालय मे रह कर सञ्चालन करना इत्यादि विशेष गुण उनके अन्दर थे। यह एक बहुत बड़ी क्षति उत्तर प्रदेश की सभा को सहन करनी पड़ेगी। पर जैसा मैंने पूर्व एक लेख में लिखा था कि उत्तर प्रदेश सदा अपने कर्मठ नेताओं को सार्वदेशिक सभा के लिये समर्पित करता रहा है उसी का अनुकरण बा० कालीचरण जी का त्यागपत्र है।

गुरुकुल विश्व विद्यालय वृन्दावन के उस समय के मुख्याधिष्ठाता श्री महात्मा नारायण स्वामी जी, श्री राजगुरु जी, श्री उपाध्यायजी आदि अनेक व्यक्तियों को उत्तर प्रदेश अपनी हानि करके सार्वदेशिक सभा को देता रहा है यहाँ के व्यक्तियों का मोह अपने प्रान्त तक कभी सीमित नहीं रहा है।

श्री बा० कालीचरण जी आर्य की विशेषताएं।

[१] सब प्रथम श्री बा० कालीचरण जी आर्य कट्टर ऋषि भक्त हैं जहाँ भी वे बैठे होंगे वहाँ सिद्धान्त विरुद्ध कोई बात नहीं हो सकती उनकी दृष्टि सिद्धान्त रक्षा पर बड़ी जागृत रहती है।

[२] उन्होंने अपनी घर की स्थिति का ऐसा बना रखा है कि वे अपना पूरा समय आर्य समाज को दे रहे है यह कोई साधारण बात नहीं है। जिस संस्था के पास पूर्ण समय देने वाले व्यक्ति नहीं वह संस्था चल नहीं सकती है।

[३] श्री बा० कालीचरण जी आर्य अपनी सेवा के उपलक्ष में किसी संस्था से कुछ धन की इच्छा नही रखते।

[४] उनका जीवन सरल है दिखावट पसन्द नहीं है केवल कार्य पर उनकी दृष्टि रहती है।

[५] सभाओं के कार्य सञ्चालन की अनुपम योग्यता उनके अन्दर है कार्यालयों का सञ्चालन उनके बाये हाथ का खेल है।

हमें पूर्ण आशा है कि अब बा० कालीचरण जी आर्य सार्वदेशिक के कार्यालय में बैठकर उसके प्रधान मन्त्री पद का कार्य भार ऐसे ढंग से सञ्चालन करके दिखावेंगे कि समस्त प्रान्त के प्रतिनिधि ऐसे प्रधान मन्त्री को बार बार चाहेंगे। और सार्वदेशिक सभा में उनके काल में सिद्धान्त सम्बन्धी लहर अवश्य चलती दिखाई देगी।

महर्षि के ग्रन्थों के सम्बन्ध में

(ले०—आचार्य श्री विश्वश्रवा जी प्रधान मन्त्री, सार्वदेशिकधर्मार्य सभा, देहली)

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के ग्रन्थों के सम्बन्ध में जो ऐसे चर्चा चलाई है उससे ऋषि ग्रन्थों के प्रकाशक और पुस्तक विक्रेता सब ही परेशान हैं। पहले अन्दर अन्दर घुटते थे अब मेरे विरुद्ध लेख भी लिखने लगे। श्री पूज्य उपाध्याय जी के लेख को वे पुस्तक विक्रेता बार-बार छाप कर प्रमाण देने लग गये कि देखो श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय जैसे पुराने लेखक भी आचार्य विश्वश्रवा से सहमत नहीं हैं। परन्तु

उन पुस्तक विक्रेता और प्रकाशकों को यह पता नहीं कि जो लीला ऋषि के ग्रन्थों की उन्होंने कर रखी है उससे उपाध्याय जी भी सहमत नहीं हैं।

ऋषि के ग्रन्थों की दुर्दशा

ऋषि के ग्रन्थों की स्थिति आज कल यह है कि वैदिक यन्त्रालय पहले केवल ऋषि के ग्रन्थों को छापता था। मूल्य पुस्तकों का अधिक था इस बात का सहारा लेकर कुछ प्रकाशकों ने स्वामी जी के ग्रन्थों का छापना प्रारम्भ किया। इसी उद्देश्य से दानवीर श्री ला० रामलाल कपूर अमृतसर द्वारा कपूर ट्रस्ट की स्थापना हुई। यह कपूर परिवार इतना अधिक धार्मिक और ऋषि का भक्त है कि हमने वैसा परिवार अभी तक देश में नहीं देखा। वे लोग जितना पैसा पुस्तक के छापने पर व्यय होता था उससे भी कम मूल्य पर ऋषि का ग्रन्थ देते हैं। वे बिना मूल्य भी दे सकते थे पर वह प्रकार अच्छा नहीं था नाम मात्र दाम पर पुस्तक विक्रय कपूर ट्रस्ट अब तक कर रहा है। आर्य साहित्य मण्डल पैदा हुआ उसने ऋषि के ग्रन्थ किसी उद्देश्य से छापने आरम्भ किये। देहली में एक सार्वदेशिक लिमिटेड बना जिसके प्रकाशित ग्रन्थों को भ्रान्ति से लोग सार्वदेशिक सभा का छापा समझ बैठते हैं जिसके सम्बन्ध में सार्वदेशिक सभा के प्रधान मन्त्री ने घोषणा छापी कि सार्वदेशिक लिमिटेड और सार्वदेशिक सभा दो पृथक् हैं, दोनों एक नहीं। उस लिमिटेड ने स्वामी जी के ग्रन्थ छापने आरम्भ कर दिये। अब सब ही छाप रहे हैं तब गोविन्द राम हासानन्द जी ने भी दयानन्द ग्रन्थमाला के ढंग से एक जिल्द ऋषि के ग्रन्थों की छाप दी।

गोविन्दराम हासानन्द की लीला

रामलाल कपूर ट्रस्ट के साथ प्रसिद्ध विद्वान श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु और प्रसिद्ध शास्त्रज्ञ पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक हैं। आर्य साहित्य मण्डल के साथ चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार थे जिन की देख रेख में कुछ ग्रन्थ पहले छपे। परन्तु गोविन्दराम हासानन्द की पुस्तक विक्रेता देहली के हैं। वे अपने आप विद्वान् हैं। इन्हें किसी विद्वान की भी आवश्यकता नहीं। गोविन्दराम हासानन्द देहली ने जो ऋषि के ग्रन्थ एक जिल्द में छापे हैं उनकी लीला यह है कि ऋषि के ग्रन्थों के अन्दर ही अपनी पुस्तकों के विज्ञापन छापे हैं देखने से ऐसा प्रतीत होता है यह किताब का विज्ञापन स्वामी जी की पुस्तक का ही अंग है। विज्ञापन देने वाले पुस्तक के टाइटिल पेज पर अपनी किताबों का विज्ञापन छापते हैं यह और बात है मैं तो उसको भी अच्छा नहीं समझता पर इन्होंने तो जिस पृष्ठ पर ऋषि की पुस्तक समाप्त हुई उसी पृष्ठ पर जितना स्थान नीचे बचा उसी पृष्ठ पर किताब का एक नोटिस छाप दिया। ऐसा भाव ऋषि की हर पुस्तक पर अपनी एक-एक पुस्तक का नोटिस छाप रखा है जिसे देखने से भी कष्ट होता है। यदि आर्य जगत में अनुशासन होता तो ऐसे पुस्तक विक्रेता का बायकाट किया जाता।

उधर सन्ध्या हवन की पद्धतियाँ जो उन्होंने छापी हैं उनमें सन्ध्या और हवन का भी नाश किया है। वे श्रीमान् जी अर्थों को मन से गढ़ते हैं और पद्धति को मन से गढ़ते हैं जो बात कहीं भी ऋषि के ग्रन्थों में नहीं है वह ये मन से बनाते हैं। इन्होंने पहले एक सत्यार्थ प्रकाश छापा था वे स्वयं सुनाते हैं कि मेरा विरोध हुआ था तब मैंने यह साबित कर दिया कि मैंने जो यह सत्यार्थ प्रकाश छापा है इस में कुछ परिवर्तन नहीं है वैदिक यन्त्रालय के एक संस्करण की प्रतिलिपि है। मुझे उस युग का नहीं पता। पर अब जो ऋषि के ग्रन्थ छापे हैं ये वैदिक यन्त्रालय के किसी संस्करण की प्रतिलिपि नहीं हैं।

श्री पूज्य स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती ने एक लेख मेरे सम्बन्ध में छपा। ऊपर देखने से प्रतीत होता है कि वह लेख विरुद्ध है पर लिखा मेरे विरुद्ध नहीं है। मुझे एक सम्मति दी है। लेख का शीर्षक है—

आर्य जनता सावधान

ऐसा प्रतीत होता है कि पूज्य स्वामी जी को बहुत क्रोध मुझ पर आया होगा और लिखने बैठे होंगे कि आज इस विश्वश्रवा को बहुत फट कारू। बड़ा भयकर शीर्षक रखा। पर जब लेख लिखने चले होंगे तब दया आ गई होगी क्योंकि मेरा अपराध कुछ है नहीं। श्री पूज्य स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती ने उस लेख में केवल यह लिखा है कि विश्वश्रवा वैदिक यन्त्रालय के छपे ग्रन्थों को लेने को कहता है पर वैदिक यन्त्रालय के छपे ग्रन्थों में भी अशुद्धियाँ हैं। श्री स्वामी जी की यह बात सत्य है। मैं मानता हूं। पर स्वामी जी मुझे यह समझा दें कि सब ही ऋषि के ग्रन्थों का छाप रहे हैं और सब लौट बदल कर कर रहे हैं इनको कैसे रोकूं मुझ कोई विरोध नहीं सब छापो पर छापो तो एक जैसे। यदि लौट बदल करने पर ही सब तुल हैं, तो लौट बदल ऋषि के ग्रन्थों में कर लो, भर पेट कर लो, पर लौट बदल भी सब एक जैसी ही कर लो।

श्री उपाध्याय जी की विचारधारा

मुझे पूर्ण विश्वास है कि श्री पूज्य उपाध्याय जी भी यह नहीं चाहते होंगे कि दश प्रकार का सत्यार्थप्रकाश छपे और पचीस प्रकार की संस्कार

(शेष पृष्ठ १४ पर)

महर्षि-महत्व

(श्री धर्म वीर विद्यानिधि एम० ए० शास्त्री जसपुर, नैनीताल)

वह कौन? नहीं मनसे, वाणी से माना
सृति पर ऋषिवर! उपकार तुम्हारा जिसने।

तुम आर्य लोक के बन प्रतीक आये थे
वैदिक संस्कृति की पुण्य लीक लाये थे
वैदिकता में नव प्राण सजोया तुमने
संदेह पंक-आविल उर धोया तुमने
स्वर्गीय सनातन रीति तुम्हीं में आई
सुन पड़ी देव भाषा की तुम्हें दुहाई
थे तुम्हीं एक वैदिक निष्ठा के बल पर
फैली नवीनता को ललकारा जिसने।

जब कर जन-मन के लिये कुटिल कारागृह
फैली थीं वादों की विभिन्न धाराएं
जो रहे लोक में कभी सूझ के सोते
उन श्रुति-मन्त्रों के अर्थ व्यर्थ थे होते
क्या अहा, और का विज्ञ रूढ़ि के पीछे
ला रहे मूढ़ शाश्वत प्रबोध को नीचे
तुम वही सत्य कर अर्थ तर्क-तीरों से
भ्रम को विरोधियों के संहारा जिसने

तुमने स्वराज्य का सूत्र प्रथम सिखलाया
जग को नवयुग का भव्य रूप दिखलाया
नारी को तुमने किया ज्ञान—अधिकारी
गुरुकुल शिक्षा आदर्श दिया अविकारी
वह कौन क्षेत्र जो तुमसे रहा अछूता
तुमने जीवन का मूल्य पूर्णतः कूता
तुम सा न अन्य था हुआ युगों से जड़
सर्वांग जाति का पुन सुधारा जिसने।

धार्मिक शिक्षा संस्थाएं —

आगे कैसे बढ़ें

(ले०—कु० कमला कन्या गुरुकुल, हाथरस)

अभी ४ सितम्बर के "मित्र" में श्री गोपाल शरण जी ने देश की बढ़ती हुई अनुशासन हीनता पर दुःख प्रकट करते हुए यह विचार प्रकट किया था कि अनुशासन धार्मिक शिक्षा में ही सम्भव है। लेख को पढ़कर मैं यह विचार कर रही थी कि अनुशासन के लिए धार्मिक शिक्षा तो अनिवार्य है किन्तु धार्मिक शिक्षा-संस्थायें चलें कैसे ?

देश की दशा को सुदृढ़ और सुसंस्कृत बनाने के लिए ही ऋषि दयानन्द ने देश में "गुरुकुल" नाम की धार्मिक शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की थी। ऋषि की पवित्र आत्मा ने यह अनुभव किया था कि नगरों की हलचल से दूर प्रकृति के शान्त एकान्त वातावरण में गुरु चरणों में बैठ विद्यार्थी दिव्य ज्ञान प्राप्त करेंगे और सात्विक जीवन बितायेंगे।

समय परिवर्तित हुआ, युग परिवतन हुआ, साथ ही भावनाओं का भी परिवर्तन हुआ। आज धार्मिक संस्थाओं को किन कठिनाइयों का सामना पड़ रहा है, वह किसी से छिपा नहीं। कहना चाहिए कि आज धार्मिक शिक्षा-संस्थायें जीवन की अन्तिम साँसें ले रही हैं। पैसे का अभाव, योग्य और सच्चे कार्यकर्ताओं का अभाव संस्थाओं को पनपने नहीं देता। धार्मिक शिक्षा-संस्थाओं के संचालक आज उद्विग्न हैं कि कैसे काम करें। ठीक और समय पर पैसा न होने के कारण सच्चे योग्य, कर्मठ कार्यकर्ता संस्थाओं को नहीं मिल पाते।

हमारी सरकार इन संस्थाओं को धर्म के नाम पर अपनी अलग पाठ विधि रखने के कारण अपनाती नहीं। आज धर्म का तात्पर्य साम्प्रदायिकता से लिया जाता है भारतवर्ष एक अन्तर्राष्ट्रीय देश है, जिसमें सभी धर्म मतावलम्बी रहते हैं। धार्मिक शिक्षा का तात्पर्य किसी भी एक धर्म को उन्नत करना नहीं है, सभी धर्मों का सन्तुलन, सामंजस्य धार्मिक शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। साम्प्रदायिकता और प्रान्तीय संस्थाओं की उन्नति में महान विघ्न है जनता का सहयोग भी इसमें बाधक है। आज की मनोवृत्ति कुछ ऐसी है कि पंजाब वाले यू० पी० संस्थाओं को और यू० पी० वाले पंजाब की संस्थाओं को, आर्यसमाजी अन्य धार्मिक संस्थाओं को और अन्य धर्मी आर्यसमाजी संस्थाओं को सहायता देने में हिचकते हैं। वे धर्म के नाम पर सहायता नहीं करते, शिक्षा के नाम पर सहायक नहीं बनते, अपितु प्रान्तीयता और साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन देते हैं। यही नहीं किन्तु यदि यह कहा जाय कि दानवृत्ति ही धीरे धीरे लुप्त होती जा रही है तो अत्युक्ति न होगी। दान लेने जाने पर प्रायः धनी-मानी व्यक्ति भी देने में संकोच करते हैं, फिर संस्थायें आगे बढ़ें ही कैसे ? जिनका आधार ही दान है। किस प्रकार निःशुल्क धार्मिक शिक्षा केन्द्रों की उन्नति हो ?

इसके अतिरिक्त विदेशी शिक्षा और सभ्यता ने हमारे ऊपर इतना आधिपत्य स्थापित किया हुआ है कि हम उसे छोड़ना नहीं चाहते। "सुखार्थिनः कुतो विद्या, विद्यार्थिनः कुतः सुखम्" का पाठ आज हम भूल चुके हैं। राजसी भोजन और वस्त्र की बलवती भावना और इच्छा इस गुरुकुल में अधिक विद्यार्थियों को प्रवेश नहीं होने देती। स्कूल कालेजों के नाम पर सैकड़ों रुपया मासिक व्यय करने वाले व्यक्ति भी धार्मिक शिक्षा के नाम पर अल्प शुल्क भी देना नहीं चाहते।

आज देश के कर्णधारों की, समय की पुकार अनुशासन है और उसके लिए धार्मिक शिक्षा आवश्यक है। अतः इस शिक्षा को जीवित रखने के लिए आवश्यक है भावनाओं का परिवर्तन, साम्प्रदायिकता और प्रान्तीयता को समूल नष्ट करना। देश में पैसे का अभाव नहीं, अभाव है भावना का। संस्थाओं में पैसे का अभाव न रहने से सच्चे, कर्मठ कार्यकर्ता होंगे और संकेतों पर चलने वाले अनुशासित विद्यार्थी होंगे, देश में पुनः। शान्ति का साम्राज्य होगा।

———

महर्षि के ग्रन्थों के सम्बन्ध

(पृष्ठ ११ का शेष)

विधि छपे। और न उपाध्याय जी यही अच्छा समझते होंगे कि गोविंदराम हासानन्द जी की तरह ऋषि के ग्रन्थों के पृष्ठों पर किताबों के विज्ञापन छापे जाय।

मैंने जो लेख उपाध्याय जी के लेख के उत्तर में लिखे हैं वे लेख उपाध्याय जी के बारे में नहीं हैं। उपाध्याय जी का नाम मेरे उन लेखों में ऐसा ही है जैसे गणित के ग्रन्थ में राममोहन-श्याममोहन के नाम। वह एक विचारधारा है, जिसके विरुद्ध मैं खड़ा रहूंगा। वह यह कि स्वामी जी के ग्रन्थों में यदि कुछ पाठ रह गया, रह जाय तो अब हम मूल में नहीं मिला सकते। नीचे टिप्पणी में लिख दें अगर हमसे न रहा जाय। कोई बात हमें ऋषि के ग्रन्थों में गलत ज्ञात होती है तो रहने दें हम ठीक करने वाले कौन ? हम अपनी अलग टिप्पणी लिख दें यही पर्याप्त है।

परोपकारिणी सभा की उप बैठक दिल्ली में

इस आन्दोलन को देख कर परोपकारिणी सभा ने आर्यविद्वानों की एक बैठक देहली में की। कुछ बातों पर विचार हुआ जैसे—

ऋषि के ऋग्वेदभाष्य में मन्त्र-संख्या विवादास्पद है उसमें कुछ प्रेसादि की अशुद्धियां हैं कुछ मौलिक सिद्धान्त की बात है प्रेस आदि की अशुद्धियाँ ये बताई गईं कि २६ के स्थान पर ३६ छप गया है। १०२८ के स्थान पर ११०१८ छप गया है यह ठीक कर दिया जावे। इत्यादि पर द्विपदा ऋचाओं की जो स्थिति है वह प्रेस की अशुद्धि नहीं है। उपसमिति के प्रशंसित विद्वानों का यह निर्णय ठीक है। मैं मानता हूं मुझे ऋग्वेद भाष्य छापना होगा। तब ऐसा ही छापूंगा। पर द्विपदा ऋचाओं को यदि कोई ऋषि के भाष्य में बदले तो मैं डर जाऊंगा।

ऋषि की पुस्तकों को सस्ता बेचने वाले

यह पुस्तक प्रकाशक और विक्रेता एक दूसरे के विरुद्ध मुझे स्वयं बताते हैं अतः मुझे सब बातों का ज्ञान स्वयं हो जाता है। गोविन्द राम हासानन्द जी ने मुझे बताया कि सार्वदेशिक लिमिटेड वालों ने सत्यार्थ सस्ता छापा है पर यह कोई नहीं देखता कि अखबारों वाले कागज पर छाप दिया जो जल्दी ही कागज गल जायगा और सत्यार्थ प्रकाश में प्रमाण वैदिकयन्त्रालय मोटे अक्षरों में छापता है और सार्वदेशिक लिमिटेड प्रमाणों को बहुत ही छोटे टाइप में छापता है जिससे पृष्ठ संख्या भी कम है कागज कम लगा और अखबारी कागज बहुत सस्ता बिकता है अतः सार्वदेशिक लिमिटेड के सत्यार्थप्रकाश का मूल्य कम है। गोविन्द राम हासानन्द के कहने पर मैंने लिमिटेड के सत्यार्थ प्रकाश को देखा दोनों बातें ठीक थीं।

उधर ये सब लोग व्यापार में शामिल हैं। एक संस्कार विधि इन सबने मिल कर देहली में छापी जिसमें वेद का स्वर ही सम्पूर्ण संस्कार विधि में से निकाल दिया और मूल्य वैदिक यन्त्रालय की संस्कार विधि जैसा ही लगभग है। मैं गाजियाबाद में कथा कर रहा था। मैं जहाँ जाता हूं सब आर्यों को पञ्चमहायज्ञविधि और संस्कारविधि खरीदने को कहता हूं। इन सत्संग गुटकाओं में लिखी सन्ध्या हवन की पद्धतियों को मना करता हूं गाजियाबाद समाज के लोग सारी देहली में ढूंढ कर लौट आये उन्हें वैदिकयन्त्रालय की छपी संस्कार विधि और पंचमहायज्ञ विधि नहीं मिली। इन बुकसेलरों ने कहा कि हमारी छपी ले जाओ। समाज वालोंने मना किया तब ये मुझे बुरा भला कहने लगे अखबारों में मेरे खिलाफ लिखने पर उतारू हो गये। इसी प्रकार ये आर्य समाज के वार्षिक उत्सवों पर जो बुक सेलर किताबों की दुकानें लगाते हैं ये भी वैदिकयन्त्रालय की पुस्तकें न बेच कर इन बुकसेलरों की ही छापी संस्कार विधियाँ और पञ्चमहायज्ञ-विधियाँ और सत्संग गटके बेचते हैं। ये सब लोग आपस में किताबों से किताबें बदल लेते हैं। कोई कुछ छापता है कोई कुछ। ऋषि के ग्रन्थों का यह व्यापार चल रहा है। यदि ये लोग स्वर वाली संस्कार विधि छापें। ऋषि की पञ्चमहायज्ञविधि के अनुसार मन्त्रों के अर्थ लिखते। ऋषि की पुस्तकों में मन मानी लौट बदल कर सब परिवर्तन न करते। ऋषि के ग्रन्थों के पृष्ठों पर अपनी दुकनदारी के नोटिस न छापते तो मुझे कोई विरोध नहीं था। मेरे विरोधमें लिखने वाले इसका प्रबन्ध करें अन्यथा मुझे चिन्ता नहीं।

भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् की

परीक्षाएं

भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् द्वारा संचालित सिद्धांत सरोज सि० रत्न, सि० भास्कर, सि० शास्त्री सि० वाचस्पति परीक्षायें आगामी जनवरी मास में देश-विदेशों में होगी। आवेदन पत्रों की तिथि ३१ अक्टूबर १९५५ है। इन परीक्षाओं की विशेषता है—धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय, किसी भी परीक्षा में सीधे बैठने की सुविधा, प्रत्येक परीक्षा का प्रमाण-पत्र उपाधि रूप में मिलता है। आर्य सस्थाओं में शिक्षक उपदेशक, बनने में इनको प्रमाण माना जाता है। इन्ही परीक्षाओं के लिए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने अष्टम आर्य महासम्मेलन में निश्चय किया है कि वैदिक धर्म प्रचार और उन्नति की दृष्टि से कुमार, कुमारियों युवक-युवतियों को अधिक से अधिक सख्या में परीक्षा में बैठायें।

पाठ विधि तथा आवेदन पत्र मंगाने, नवीन केन्द्र स्थापित करने एवं अन्य जानकारी के लिए परोक्षा कार्यालय से पत्र व्यवहार करें।

डाक्टर प्रेमदत्त शर्मा शास्त्री B.I.M.S.

परीक्षा मन्त्री

भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् अलीगढ़

दैनिक स्वाध्याय के ग्रन्थ

१ऋग्वेद सुबोध भाष्य--मधुच्छन्दा, मेधातिथी, शुनःशेप, कण्व, पराशर, गोतम, हिरण्यगर्भ, नारायण, बृहस्पति विश्वकर्मा, सप्तऋषि आदि १८ ऋषियों के मंत्रों के सुबोध भाष्य मू. १६) डा. व्य. १॥)

ऋग्वेद का सप्तम मण्डल (वसिष्ठ ऋषि) सुबोध भाष्य । मू. ७) डा. व्य. १)

यजुर्वेद सुबोध भाष्य अध्याय १; मू. १॥), अध्याय ३०, मू. २) अध्याय ३६; मू. १॥) सब का डा. व्य. १)

अथर्ववेद सुबोध भाष्य (संपूर्ण. १८ कांड) मू. २६) डा. व्य. ४)

उपनिषद्भाष्य--ईश २), केन १॥), कठ १॥) प्रश्न १॥), मुण्डक १॥), माण्डूक्य ॥), ऐतरेय ॥) सबका डा. व्य. २)

श्रीमद्भगवद्गीता पुरुषार्थ बोधिनी टीका । मू. १२॥) डा. व्य. २)

वैदिक व्याख्यान—१ मनि में आदर्श पुरुष, २ वैदिक अर्थव्यवस्था, ३ स्वराज्य, ४ सौ वर्षों की आयु, ५ व्यक्तिवाद और समाजवाद, ६ शांति शांतिः शांतिः, ७ राष्ट्रीय उन्नति, ८ सप्त व्याहृति, ९ वैदिक राष्ट्रनीति, १० वैदिक राष्ट्रशासन, ११ वेद का अध्ययन अध्यापन, १२ भागवत में वेद दर्शन, १३ प्रजापतिका राज्यशासन, १४ त्रैत-द्वैत-अद्वैत, १५ क्या विश्व मिथ्या है? १६ वेदों का संरक्षण ऋषियों ने कैसा किया? १७ आप वेद-रक्षण कैसा कर रहे हैं? १८ देवत्व प्राप्तिका अनुष्ठान, १९ जनता का हित करने का [illegible] २० मानव की सार्थकता, २१ राष्ट्र निर्माण, २२ मानव की अठ शक्ति, २३ वेदोक्त विविध प्रकार के शासन। प्रत्येक का मूल्य ।=) डा. व्य. पृथक। आगे व्याख्यान छप रहे हैं।

ये ग्रंथ सब पुस्तक विक्रेताओं के पास मिलते हैं।

स्वाध्याय मण्डल, किल्ला-पारडी (जि. सूरत)

क्या आप रोगी हैं?

परमात्मा करे कि उत्तर "न" हो

किन्तु यदि "हां" भी हो तो घबराएं नहीं

"हां" को "न" में बदलने के लिये केवल दो आने का लिफाफा भेज कर उत्तर मंगा लीजिये, विश्वास रक्खें कि आप फिर रोगी न हो सकेंगे—

डा० ओमप्रकाश आर्य

आर्यन होमियो लेबोरेट्रीज

२० सुभाष मार्केट बरेली

श्वेतकुष्ट की जड़ी

प्रिय सज्जनो! औरों की भांति मैं अधिक प्रशसा करना नही चाहता यदि इसके ३ दिन लेप से सफेदी के दाग जड़ से आराम न हो तो मूल्य वापस। शर्त लिखा लें। मूल्य ५)

पता—कष्ट निवारण औषधालय नं० ए ५ पो० मोकामा घाट (पटना)

आवश्यकता

एक लगभग ३० वर्षीय, कारपात्र, चौहान क्षत्री, देश सेवक, युवक के लिए, सुन्दर और शिक्षित वधु चाहिए। उनका गोत्र खंडेलवाल है, सम्बन्ध क्वारी लडकी से अथवा २२ वर्ष तक आयु वाली विधवा लड़की से भी हो सकेगा, और रूढियों का सर्वथा खडन रहेगा। पत्र व्यवहार का पता:--

टीकाराम बाजपेयी सहायक अध्यापक

जू० हा० स्कूल जसपुर

जिला-नैनीताल

मस्तिष्क एवं हृदय

सम्बन्धी भयंकर पागलपन मिर्गी, हिस्टीरिया, स्मरणशक्ति का ह्रास, पुराना सरदर्द, रक्तचाप का न्यूनाधिकता, (ब्लड० प्रे०) दिल की धड़कन तथा [illegible] पीड़ा आदि सम्पूर्ण पुराने रोगों की एवं देवियोंके समस्त रोगों के परम विश्वस्त निदान तथा चिकित्सा के लिए परामर्श कीजिए:—

जीर्ण व्याधि विशेषज्ञ

कविराज

योगेन्द्रपाल शास्त्री

पता—आयुर्वेद शक्ति आश्रम

व्याधिष्ठाता—कन्या गुरुकुल हरिद्वार

मुख्य सम्पादक—शक्ति - सदेश

संचालक—आयुर्वेद शक्ति-आश्रम

पोस्ट-कनखल हरिद्वार

आवश्यक-प्रार्थना

आर्यमित्र के समस्त एजेंटो से हमारा निवेदन है कि वे पिछला देय धन तुरंत भेज देने की कृपा करें। इस समय हमें धन की अत्यंत आवश्यकता है, छः हजार से भी अधिक रुपया इस समय एजेंसियो की ओर है। यह धन यदि तुरंत प्राप्त हो जाए तो बहुत सी समस्याएँ हल हो सकती हैं। आशा है कि सभी अविलम्ब धन भेजने की कृपा करेंगे।

निवेदक

कालीचरण आर्य

अधिष्ठाता

आर्यमित्र लखनऊ

दमा-खाँसी

२० मिनट में खत्म

कठिन से कठिन और भयंकर दमा खांसी व फेफड़ो सम्बन्धी समस्त रोगों को परीक्षित रामबाण दवा "एफीडन" सेवन कीजिए। दवा गुणहीन साबित करने पर दाम वापिस की गारंटी। मू० ५० खुराक ५॥), १०० खुराक १०) डाक व्यय अलग। उत्तर के लिए जवाबी पत्र आना लाजमी है।

पता—

ओंकार केमिकल वर्कस

हरदोई यू० पी०

महर्षि दयानन्द का अपूर्व जीवन चरित्र

दयानन्दायन

(महाकाव्य)

ठीक रामायण की भांति दोहे और चौपाइयो में पहली बार लिखा यह महाकाव्य आर्यसमाज के सभी विद्वानों द्वारा प्रशसित है ४०० पृष्ठों के बृहद्ग्रथ का मूल्य ४) है। डाक व्यय पृथक् ।।।≡)। किन्तु जो सज्जन या समाजें १५ सितबरतक ४) मनीआर्डर द्वारा आर्यमित्र कार्यालय में भेज देंगी उन्हें यह पुस्तक इतने में हो भेज दी जाएगी। और प्रकाशक श्री डा० सूबाबहादुरसिंह जो प्रत्येक पुस्तक पर १) आर्यमित्र दैनिक के लिए दान देंगे। बहुत थोडी प्रतियां शेष हैं अतः शीघ्र आदेश धन सहित भेजें।

मैं प्रत्येक आर्य सदस्य से व आर्यसमाज से अविलब कम से कम एक पुस्तक मंगाने का आग्रह करता हूं--

भवदीय-

—अधिष्ठाता, आर्यमित्र लखनऊ

पताः—'आर्यमित्र'
५ मीराबाई मार्ग, लखनऊ
फोन—११३
तार—"आर्यमित्र

आर्यमित्र

रजिस्टर्ड नं० ६० ए०
१८ सितम्बर, १९५५

आर्यमित्र का शुल्क

दैनिक + साप्ताहिक

एक वर्ष का	—	२४)
६ माह का	—	१३)
३ माह का	—	७)
एक प्रति का	—	-)

साप्ताहिक का शुल्क

एक वर्ष का	—	८)
६ माह का	—	४॥)
३ माह का	—	२॥)
एक प्रति का	—	=)

बाबूराम "भारती" द्वारा अमीनाबाद शीघ्र आर्य भास्कर प्रेस, मीराबाई मार्ग लखनऊ में मुद्रित तथा प्रकाशित

उषा का गीत

स्वर्ण उषा की आज धरा पर, फिर आगी नरुणायी।
अंतरिक्ष में बिखर रही है, कुंकुम सी अरुणायी॥

निशा प्रहर का अन्त हुआ है, नयी चेतना जागी,
चिर निद्रा से पोषित जड़ता दूर स्वप्न सी भागी,
मलयानिल का मुग्ध संदेशा घर घर डोल रहा है,
दिव्य प्रभा आलोक लोक में, जीवन बोल रहा है,
जगना मानो युग नूतन ने, विजय ध्वजा फहरायी।
अन्तरिक्ष में बिखर रही है, कुंकुम सी अरुणायी॥

सुधा सनी भाषा में रवि ने अपना ज्ञान प्रसारा,
दूर दूर तक विस्तृत थल में, आभा को विस्तारा,
त्रस्त ग्रस्त मानव का जागृत, होने का आमन्त्रण,
किया तुम्हीं ने आशा जीवन का अभिनव अभिनन्दन
स्वप्न मधुर साकार हुआ है, ज्योति किरण हरषायी।
अन्तरिक्ष में बिखर रही है, कुंकुम सी अरुणायी॥

किन्तु निशा का स्वप्न दूर है, दूर लक्ष्य की छाया।
आशा का संदेश मधुर तम, सिसक रहा मुरझाया।
व्यस्त विजन सा प्रहरी मानव, बिलख रहा आगन में,
मानो अन्तर आण क्षीण सा, ज्योतिमय प्रागण में,
ला न सका किरण प्रकाश को, गहन तमिस्रा भायी।
अन्तरिक्ष में बिखर रही है, कुंकुम सी अरुणायी॥

क्षुब्ध मनुज-वीणा का स्वर है, रुद्ध हुयी कल्याणी,
भेद भाव की दीवारों में, फसी शांति की वाणी,
अमर उजाला ज्योति किरण का, रोक रही दानवता,
पग पग पर व्यवधान बनी है, आज उभरती पशुता,
द्वन्द्व हटा पथ निर्मल कर युग, बन सकता सुखदायी।
अन्तरिक्ष में बिखर रही है, कुंकुम सी अरुणायी॥

प्रश्न, शांति का आमन्त्रण यह कौन करे स्वीकार,
कर निराशा की कक्षा में, आशा का मनुहार,
प्राण दीप के आकर्षण से, हटा सके तमजाल,
सजा सके स्वर्णिम किरणों को गृह सक जयमाल,
निमे पहन चिर युग चेतनता अमर में मुस्कायी।
अन्तरिक्ष में बिखर रही है, कुंकुम सी अरुणायी॥

[सुश्री राकेश रानी 'साहित्यरत्न']

वैदिक प्रार्थना

हे एकल संसार के उत्पादक, सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मन्! इस गहन और बीहड़ संसार में अपने पथ को खोजने के लिए तुमने बुद्धिरूपी प्रदीप हमें दिया है। पर जीवन में अनेक समय उपस्थित होते हैं, जिस समय कर्तव्य क्या है। यह कुछ सूझ नहीं पड़ता है। सब जगह अन्धकार और अन्धकार दिखाई देता है। ऐसे कठिन समयों में तुम्हारा दिव्य प्रकाश ही मुझे मार्ग दिखा सकता है।

इस अंक के आकर्षण

स्वास्थ्य-सुधा

मैं बी०सी०जी०के टीके का विरोध क्यों करता हूँ?

[लेखक—चक्रवर्ती श्री राजगोपालाचार्य जी]

जिस विषय की मैं जितनी ज्यादा जाँच करता हूं, उतना ही ज्यादा मेरा यह विश्वास दृढ होता है कि बी० सी० जी० के इस सामूहिक आन्दोलन के पीछे सच्चे वैज्ञानिक आधार का अभाव है और वह नीम हकीमी से ज्यादा कुछ नहीं है। लोगों की बहुत बड़ी संख्या के लिए उसका कोई उपयोग नहीं है। और कितने ही लोगों के लिए वह नुकसानदेह भी है। बी० सी० जी०

का आधार जिस कमजोर और अप्रदर्शित सिद्धान्त पर है कि शरीर के भीतर कृत्रिम रूप से उत्पन्न की गयी 'एलर्जी' रोग के खिलाफ सुरक्षा है। जिसे प्रमाण का वह समर्थन प्राप्त नहीं है, जो कि वैज्ञानिक पद्धति से किसी सिद्धान्त को स्वीकार करने से पहले से जरूरी होता है। जो इसके खिलाफ प्रमाण देनेवाले के जरूरी होता है। जो इसके खिलाफ प्रमाण देने-वाले हर मामले का मुकाबला कर सके, ऐसे इकरारों द्वारा इसका बचाव किया जाता और इसे मजबूत बनाया जाता है। यह स्वीकार कर लिया गया है कि जहां रोग का फिर से लगी हुई छूत तत्र होती है, वहाँ बी० सी० जी० अपना कोई शक्ति नहीं दिखा सकते। और यह बी० सी० जी० की प्रत्येक असफलता के लिए स्पष्टीकरण हो सकता है। जिन मामलों में यह नुकसान करता है, वहाँ इसका कारण रोग के शिकार की 'नीची प्रतिरोध शक्ति' बतायी जाती है। भारत में बी० सी० जी० का जो सामूहिक आन्दोलन शुरू किया गया है, उसमें नीमहकीमी की सारी परिस्थितियाँ मौजूद हैं, बावजूद इसके कि बाहर के सभ्य देशों में जहां कहीं इसे आजमाया गया है वहाँ काफी सावधानी से काम लिया गया है। भारतीय बालकों पर उसी योजना

के आधार पर सामूहिक प्रयोग किया जा रहा है, जिसका युद्ध से बर्बाद हुए प्रदेशों के लोगों और असभ्य पराधीन प्रजाओं के बीच अमल किया गया था।

केवल बी० सी० जी० योजना का आधार ही वैज्ञानिक दृष्टि से अपर्याप्त नहीं है, बल्कि विशाल पैमाने पर उसे तेजी से आगे बढाने के लिये जो प्रचार किया जाता है उसमें भी नीमहकीमी के तरीकों की ही गंध आती है। सरकार की ओर से अक्सर यह कहा गया है और अखबारों में दोहराया गया है कि इस वर्ष इतने लाख बालकों को क्षय रोग के खतरे से मुक्त कर दिया गया है और अगले दो वर्ष के अन्त तक इतने लाख बालकों को इस खतरे से मुक्त कर दिया जायगा। जिस आदमी को बी० सी० जी० के टीके के बारे में किये जानेवाले बहुत सीमित दावों का स्मरण होगा वह देख सकता है कि इस विषय में सरकारी प्रचार गलत-फहमी पैदा करनेवाला है, क्योंकि बालक को टीका लगाने के बाद दो वर्ष से अधिक उसके रोग मुक्त रहने का दावा नहीं किया जाता—और उस सीमित अवधि में भी बी० सी० जी० तीव्र प्रकार की छूत में काफी प्रतिरोध शक्ति नहीं दिखा पाता—और क्योंकि रोगमुक्ति की अवधि को बढाने के लिये फिरसे टीका लगाने की कोई योजना नहीं है। सच पूछा जाय तो इस बारे में डॉक्टरों की राय स्पष्ट है कि बी० सी० जी० का टीका बार बार लगवाना खतरनाक होगा।

यह सामान्य राष्ट्रीय महत्व का प्रश्न है और ऐसी बात नहीं है, जिसे निष्णातों में मतभेद होने पर बहुमत की रायके अनुसार निपटाने के लिये छोड़ा जा सकता है। विज्ञान के साहसों में भिन्न रायें हो सकती हैं। जिस बातका जनता के बहुत बड़े भाग पर असर नहीं पड़ता, उसके बारे में पैदा होने वाले मतभेद को दूर करने की जिम्मेदारी वैज्ञानिकों पर छोड़ी जा सकती है, लेकिन ऐसी स्थिति में नहीं जब किसी सिद्धान्त पर लोगों के शरीरों को लाभ या हानि के लिये छुआ जाता है।

मेरा विश्वास है कि भविष्य में एक दिन ऐसा आयेगा जब बी० सी० जी० बेकार जाहिर कर दिया जायगा और वैज्ञानिक लोग इसे त्याग कर भूल जायेंगे। हमारे यहाँ भारत सरकार का स्वास्थ्य विभाग इस अवैज्ञानिक साहस पर इतना जोर डाल रहा है इस लिए उसे छोडने में थोड़ा समय लगेगा। इस बीच सारे देशके बालकों में और उनके उत्तम भागमें, सामूहिक पैमाने पर, जानबूझ कर भयंकर से भयंकर किस्म के जीवित कीटाणु प्रवेश कराये जा रहे हैं। कुछ अत्यन्त प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने इस विषय में गहरी शंकायें व्यक्त की है कि मानव शरीर में दाखिल किये जाने वाले ये कीटाणु अगर एकदम नहीं तो कुछ समय बाद क्या रूप ले सकते है और क्या क्या परिणाम उत्पन्न कर सकते है। बी० सी० जी० का टीका लिये हुए असंख्य रोगों के कारण तथा आँधी के वेग से चलने वाले इस सामूहिक आन्दोलन में पैदा होने वाले छूत के अनिवार्य मौकों के कारण यह खतरा और बढ जाता है।

इस सामूहिक आन्दोलन का उद्देश्य बालकों में क्षयरोग को रोकने का बताया जाता है। पहली बात तो यह है कि भारत में क्षयसे मरने वाले नौजवानों के जो आँकड़े बताये जाते है वे सच्चे नहीं होते, बल्कि केवल अनुमान के आधार पर निकाले गये परिणाम होते है। दूसरी बात यह है कि यह रोग न तो कभी महामारी के रूप में फैला और न भविष्य में कभी फैलेगा, ताकि ऐसे जहर का—जो पूरी तरह निर्दोष सिद्ध नहीं कर दिया गया है—सामूहिक पैमाने पर टीका लगाया जाना उचित ठहराया जा सके। इसके सिवा, इस टीके के लिये जो दावा किया जाता है वह निश्चित ही ऐसा रोग मुक्त नहीं है जिस पर पूरा भरोसा किया जा सके, और वह भी दो वर्ष के लिये ही मिलती है। इन सब बातों पर विचार करते हुये हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि यह आन्दोलन बिलकुल अनुचित है।

बी० सी० जी० के सामूहिक आन्दोलन की एक बुरी बात यह है कि इसमें व्यक्ति, जिनके शब्दों का आम जनता पर प्रभाव पड़ता है, निरन्तर बहुसंख्य लोगों में रोग का भय पैदा करने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे लोगों में रोग का प्रतिरोध करने की शक्ति को काफी घटा देता है, जिन्होंने अभी तक दबी हुई छूत का हिम्मत से सामना किया है। इस आन्दोलन का एक दूसरा सामान्य परिणाम ऐसे उपायों की उपेक्षा में आता है, जो वास्तव में क्षयरोग पर नियन्त्रण रखने में बहुत मददगार हो सकते हैं।

मैं आधुनिक 'पश्चिमी' चिकित्सा या आधुनिक विज्ञान के खिलाफ नहीं हूं। बी० सी० जी० का आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं है। सच पूछा जाय तो आम तौर पर जिसे आधुनिक चिकित्सा कहा जाता है उसके बनिस्बत बी० सी० जी० का होमियोपैथी के सिद्धान्तमें अधिक समानता है। वह ऐसे विश्वास के अनुसार काम करता है, जो होमियोपैथी से बहुत मिलता जुलता है। वह यह कि रोगों के इलाज के लिए मन्द मात्रा में वही शरीरके अन्दर दाखिल करनी चाहिए, जो रोग पैदा करता हैं। फर्क इतना ही है कि होमियोपैथी में मानने वाला चिकित्सक शरीर में ऐसी चीज दाखिल नहीं करता जो भीतर जाकर बढती है, जब कि बी० सी० जी० का डाक्टर शरीर के अन्दर बढ़ने वाले जीवित कीटाणु दाखिल करता है, जो कभी शरीर से बाहर नहीं निकलते और इस इरादे से ही दाखिल किये जाते हैं कि वे शरीर में हमेशा बने रहें।

जानकार पाठक मुझे यह कहने के लिये क्षमा करेंगे कि बी० सी० जी० किसी रोगको अच्छा नहीं करता। इसके बारेमें दावा यही किया जाता है कि कुछ लोगों में वह थोड़े समय तक क्षयको रोकने का काम कर सकता है। यह बात इस लिये कहनी पड़ती हैं कि मुझे ऐसे कितने ही सुशिक्षित लोगों

(शेष पृष्ठ १५ पर)

आर्यसमाज के समस्त पत्रों में सबसेअधिक छपने वाला आर्य प्रतिनिधिसभा उत्तर प्रदेश का मुखपत्र—

ओ३म्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

आर्य-मित्र

वर्ष ५७

लखनऊ—रविवार २५ सितम्बर तदनुसार शुद्ध भाद्रपद शुक्ल ९ सम्वत २०१२ सौर ९ आश्विन दयानन्दाब्द १३० ... १३ ४ ५५

सम्पादकीय

उत्थान या पतन

हिन्दू विवाह विधेयक को पास हुये अभी अधिक दिन न बीत पाये थे कि उत्तराधिकार बिल भी आ पहुँचा। कहा यह जा रहा है कि नारी की स्वतन्त्रता और अधिकार के लिये ये बिल प्रथम पग हैं, किन्तु क्या वास्तव में यह उत्थान की ओर प्रयाण है या पतन की ओर—

विवाह सम्बन्धी विधेयक में सर्वाधिक प्रशंसनीय या आपत्तिजनक है विच्छेद का अधिकार। इसके प्रशंसक नारी के लिये यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण देन समझ रहे हैं। कहा यह जा रहा है कि इसके द्वारा देवियों को प्रथम बार अधिकार नाम की वस्तु प्राप्त हुयी है। आज तक वे शोषित पीड़ित और दलित ही रही हैं। उनका समाज परिवार या राष्ट्र में कोई अधिकार न था, इस विधेयक ने उन्हें अधिकार दिया है पुरुष के अत्याचारों से छुटकारा पाने का।

किन्तु ऐसा सोचने वाले भाई और बहन, वास्तविकता से बहुत दूर भटक कर अपने विचार बनाये हुये हैं। सत्य कुछ और ही है किन्तु उसे जानने या समझने की चेष्टा कभी किसी ने नहीं की। आइये आज हम अत्यन्त संक्षेप में नारी की वैदिक कालीन स्थिति पर विचार करें। इसके लिये प्रथम हमें "विवाह" के आदर्श को समझना होगा। वैदिक संस्कृति में विवाह को शारीरिक बन्धन के रूप में नहीं माना गया। वह सर्वथा मानसिक आत्मिक मिलन का रूप है। स्त्री को यह 'अर्धांगिनी' संज्ञा दी गयी है। स्त्री पुरुष को पृथक न मानकर एक मानना इस संस्कृति की अपनी विशेषता है, जो कहीं खोजने पर भी न मिलेगी। नारी दासी नहीं, अर्धांग है। वह जल में जल के समान मिल जाती है। आप देखेंगे कि संसार की प्रत्येक दो वस्तुओं को पृथक किया जा सकता है पर जल को जल से पृथक नहीं किया जा सकता। इसी तरह विवाह दो शरीरों के मिलन का नहीं, अपितु दो हृदयों के, आत्माओं के मिलन का नाम है।

वैदिक आदर्श में विवाह का उद्देश्य वासना पूर्ति नहीं है। सन्तानोत्पत्ति के अतिरिक्त वासनापूर्ण विचार मन में लाना निषिद्ध बताया है। स्त्री और पुरुष जीवन सार्थी हैं, अभिन्न मित्र हैं। एक गाड़ी के दो पहिये हैं। इसमें से एक के अभाव में भी गाड़ी बेकार है। दोनों मिल कर अपने परिवार समाज, राष्ट्र और विश्व कल्याण के लिये यत्न करते हुये अपने चरम लक्ष्य की सिद्धि का यत्न करते हैं।

दोनों का उद्देश्य साधना है, जहाँ साधना हो वहाँ वासना का क्या काम? लक्ष्य एक है मोक्ष प्राप्ति! एक के बिना दूसरा अधूरा है, उसका कोई कार्य यज्ञ संस्कार पूरा नहीं हो सकता। वेद में कन्या को शुद्ध पवित्र और पूजनीया बताया गया है। उसे प्रत्येक प्रकार से पुरुष का सहयोगिनी माना है, कहीं भी उसके दरजे को, गौरव को कम नहीं बताया, अपितु सदैव आदर सम्मान और गृह राज्य की संचालिका के रूप में स्वीकार किया गया है।

उस स्वर्णिम काल में नारी को वासना पूर्ति का साधन, न मानकर श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखते हुये अपना परम सहयोगी माना जाता था। घर में उसका राज्य था। बाहर उसकी सलाह ली जाती थी उसके अधिकार बराबर थे, कर्तव्य महान् थे, मान अधिक था। वह निर्मात्री थी, माँ थी, अर्धांगिनी थी, स्नेहमयी थी! और आज आज की चर्चा न करना ही अच्छा है।

कन्या स्वयं अपने वर का, साथी का निर्वाचन करती थी। यह आज भी होता है जिसे (*Love Marrig*) प्रेम विवाह कहते हैं। किन्तु आज छिप कर होता है तब माता पिता समाज व गुरुजनों के सम्मुख अपने गुण कर्म स्वभाव के अनुसार गुरुजनों की सलाह से कन्या स्वयं पति चुनती थी! यहां स्मरण रहे कि विवाह का उद्देश्य वासना पूर्ति न था! जीवन में पवित्रता थी! ब्रह्मचर्य की महानता का सभी को ज्ञान था। सौ वर्ष तक नीरोग सुख पूर्वक रहने की सभी इच्छा रखते थे। २४ वर्ष पर्यन्त आश्रमों में रह कठोरता से ब्रह्मचर्याश्रम की साधना कर चुके होते थे। दोनों को जीवन लक्ष्य का ज्ञान हो चुका होता था। तब परिपक्वावस्था में विवाह होता था दोनों के मस्तिष्क में आज कल से रंगीन सपने न हो कर एक कठोर साधना के बाद दूसरी साधना के मार्ग पर चलने का संकल्प होता था। तब विवाह में कलुषता अथवा, कैसे उत्पन्न हो सकती थी।

समय बदला, व्यवस्थाएं बदलीं धीरे धीरे मनुष्य में पशुता उभरती आयी जिसका खुल कर नंगा रूप आज प्रकट हो रहा है। विवाह को मिलन के स्थान पर ठेके (*Contract*) का रूप दिया जा रहा है। आज तक हृदय से हृदय मिला कर बात करने वाले, अपना सर्वस्व सौंपने वाले कल दूसरे से भी वैसा ही छल ना करें इससे अधिक पतन और मानव का क्या हो सकता है? विवाह के बाद पति पत्नी का और पत्नी पति की हो जाती है। सब भेदभाव समाप्त हो जाते हैं किंतु आज की व्यवस्था में एक अनेक का हो सकता है। यह शरीर का सौदा है या पवित्रता की होली? अध पतन की कल्पना करने भी तो डर लगता है।

सामाजिक स्वास्थ्य नष्ट भ्रष्ट होने जा रहा है। रहा सहा चरित्र और प्रेम अब कल्पना की वस्तु हो जाएगा, भारत इंग्लैण्ड और अमरीका बनेगा! नारी खिलौना बनेगी वह अधिकारों की दौड़ में अधिकार खो देगा। वह भ्रम करेगी—पुरुषों के अधिकार छीन कर! बच्चे बर्बाद होंगे मां की ममता मिटेगी बहन का स्नेह उड़ जाएगा और पत्नी का प्रेम कल्पना की वस्तु बन जाएगी। धोखा छल प्रपंच से परिवार भर उठेंगे। नारी की मर्यादा टूट जाएगी। उसका सम्बन्ध केवल शरीर का रह जाएगा तब गांधी-सुभाष दयानन्द-प्रताप-शिवा-कृष्ण राम से नहीं, हिटलर चर्चिल आइजनहोवर से व्यक्ति उत्पन्न होंगे।

नारी-नर के समान होगी तो नर का निर्माण कौन करेगा? लोरियां सुना सुना कर बच्चे के मन में वीरता-सौजन्यता-और राष्ट्र प्रेम के भाव कौन भरेगा? मां का प्रेम खोकर बालक राक्षस बन सकता है देवता नहीं, न मनुष्य ही, यह तथ्य आज आंखों से क्यों ओझल है, समझ नहीं आता।

आवश्यकता थी कि समाज की रूढ़ियां और अभिशापों को मिटाया जाए! बालकों-बालिकाओं को सच्ची शिक्षा देने का प्रबन्ध किया जाए, पर इस के स्थान पर कहीं (Co E ct i) सह शिक्षा द्वारा अनजाने में चरित्र नाश के सामान जुटाए जा रहे हैं तो कहीं नारी को उठान के स्थान पर उन्हें पतन की ओर ढकेला जा रहा है। उसे गृह-साम्राज्ञी के पद से च्युत कर खिलौना बनाने की चेष्टा हो रही है। क्या हो गया है आज विचारकों, जननायकों और मनोवैज्ञानिकों को? क्या सभी की बुद्धि का दिवाला निकल चुका है? क्या समझे हम?

क्या राष्ट्र में बढ़ती चरित्र हीनता का उन्हें ज्ञान नहीं, या नारी के शरीर विक्रय व्यापार की वृद्धि का उन्हें भान नहीं, सिनेमाओं में नग्नता और कामुक विलासिता के दृश्य जो उपस्थित हो रहे हैं, क्या उनके भयंकर परिणामों का उन्हें अनुमान नहीं? फिर क्या हो रहा है यह सब कुछ? उत्तर देने का साहस भी तो किसी में नहीं।

यह प्रजातन्त्र कैसा है जिसमें प्रजा की भावनाओं का गला घोटना ही श्रेय हो? भारत की ७५ प्रतिशत जनता के विरुद्ध नियम बनाते जाना कहां का न्याय है? और फिर धर्म निरपेक्ष राज्य को किसी विशेष वर्ग के लिए नियम बनाने का अधिकार भी क्या? किन्तु शासन मद में डूबे व्यक्ति क्या सुनेंगे हमारी बात? किन्तु स्थिति तो स्पष्ट है हम मृत्यु और अन्धकार की ओर जा रहे हैं। आने वाले दिनों में आत्मा और सत्य के लिए कोई स्थान नहीं। नग्न बन्दर और भौतिकता की आराधना का क्रम जारी है आध्यात्मिक परम्पराओं पर वज्र प्रहार हो रहे हैं। मानवीय चेतना लुप्त हो चुकी है। क्या होगा कैसे होगा क्या होगा, कोई नहीं जानता, अनजाने पथ पर विनाश का आलिंगन करने तैयार से दौड़ा जा रहा है, इस दौड़ को रोका जाए यह समय की मांग है पर लगता है कि सुनने वाले कानों में उंगली डाल कर गहरी नींद में सो रहे हैं। सोते रहें पर इतना ध्यान रहे कि विनाश के काल चक्र से कोई बचेगा नहीं।

मनुष्य को शारीरिक सुख देने के यह सब प्रयास उसके अस्तित्व पर अंगारों से हैं इनके बाद मनुष्य का मनुष्यत्व जीवित रह सके इसकी सम्भावना नहीं। रक्षा सुरक्षा के लिए किसे पुकारें यह भी तो अज्ञात है। जल सम्पूर्ण प्रवाह से बचने का उपाय करने के लिए जो भी सुन सके उसे निमन्त्रण दे रहे हैं।

सामयिक समस्याएँ

विशाल पंजाब के निर्माण की आवश्यकता

[रायबहादुर दीवान बद्रीदास जी एडवोकेट, जालन्धर]

प्रत्येक देश में शासन के सुचारु एवम् उत्तम प्रबन्ध के लिए, कुछ भाग नियत किये जाते हैं जिनकी सीमा देश की लम्बाई चौड़ाई और जन संख्या पर निर्भर होती है। कई बड़े देशों में प्रबन्ध के लिए जो (administrative units) विभाग बनाये जाते हैं, उनकी संख्या अधिक होने से कुछ विभागों को एक प्रान्त में संगठित करके केन्द्र की अध्यक्षता में एक अलग अधिष्ठान का निर्माण किया जाता है। दुनिया में इसके कई उदाहरण मिलते हैं—रूस और अमेरिका के युक्तप्रान्त, जर्मनी की रियासतें और चीन आदि कई ऐसे देश हैं जो अपनी विशालता के कारण एक केंद्रीय शासन से भलीभाँति चल नहीं सकते वैसे ही भारत में समझना चाहिए। इतने बड़े देश की देखभाल केवल केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल से नहीं हो सकती। विदेशी राज्य के समय भी भारत भिन्न भिन्न प्रान्तों में विभक्त था, यद्यपि अखिल भारत का केन्द्रीय शासन एक था। १९३५ में जो भारतीय शासन कानून बना उसमें सरकार की रूपरेखा में परिवर्तन हुआ। कुछ एक बातों में प्रान्त केन्द्र से स्वतन्त्र माने गये और कुछ विषय प्रान्तीय सरकार के अधिकार से बाहर रखे गए। अंग्रेजों के जाने के पश्चात् भी इस शैली में कुछ अधिक परिवर्तन नहीं हुआ। यदि देश की एकता को मुख्य मानकर भिन्न भिन्न प्रान्तों का निर्माण केवल प्रबन्ध की सुगमता की दृष्टि से किया जाय जैसा कि वास्तव में जो प्रान्तों की माँग थी प्रबन्ध की सुगमता के आधार से ही ठीक समझी जा सकती है, अन्यथा नहीं।

इस सम्बन्ध में एक और बात भी विचारणीय है, वह यह कि देश का प्रान्तों में विभाजन देश की एकता में बाधक न हो और प्रान्तों का निर्माण केवल प्रबन्ध की दृष्टि से ही हो। अन्य कोई ऐसी भावनाएं उसमें सम्मिलित न की जावें जिनसे समस्त राष्ट्र की एकता पर लेशमात्र भी हानि कारक असर हो सके। दूसरे शब्दों मे साम्प्रदायिक अथवा जनता का विभाजन नहीं केवल प्रबन्ध का विभाजन है। यह विचार प्रान्तों के निर्माण मे आवश्यक है।

इस समय पंजाबी भाषा के आधार पर प्रान्त की जो माँग की जाती है, उसके सम्बन्ध में निष्पक्ष विचार के लिए निम्न प्रश्न उपस्थित होते हैं—

[१] क्या यह माँग प्रबन्ध की सुगमता के लिए की जाती है?

[२] प्रबन्ध के अतिरिक्त इसमें जनता का कौन सा सुख या कल्याण अभिप्रेत है?

[३] क्या पंजाब प्रांत के रहने वाले इस माँग से सहमत हैं?

[४] क्या यह माँग किसी साम्प्रदायिक या धार्मिक सिद्धाँत पर निर्भर है?

[५] इस माँग की पूर्ति से भारत राष्ट्र पर क्या असर होवेगा?

[१] जहाँ तक मैंने इस माँग पर विचार किया है मुझे कोई ऐसा कारण ज्ञात नहीं, जिसका सम्बन्ध प्रबन्ध से हो। भाषावार प्रान्त निर्माण के समर्थकों ने कभी नहीं कहा कि वर्तमान प्रबन्ध में कोई ऐसी त्रुटि है जो प्राँत सीमा के परिवर्तन से दूर हो जायेगी, प्रबन्ध की शैली तो भारत विधान पर निर्भर है, प्रांत की लम्बाई चौड़ाई का अधिक न्यूनता से कोई फर्क नहीं पड़ता, न ही ऐसा किसी का मत है। मेरी सम्मति में प्रांत निर्माण का मूल आधार तो किसी पर समाप्त हो जाता है, और माँग निर्मूल हो जाती है।

(२) जनता का कोई विशेष कल्याण भी इसमें प्रतीत नहीं होता, कोई ऐसी आपत्ति बयान नहीं की जाती जिसका निराकरण प्रान्त को पंजाबी भाषा के आधार पर विभक्त करने से ही हो। भाषा सम्बन्धी जितना आन्दोलन अब तक समाचार पत्रों तथा व्याख्यानों में किया गया है, किसी भी प्रकार से जनता के कल्याण तथा सुख की दृष्टि से किया हुआ प्रतीत नहीं होता।

(३) तीसरा प्रश्न जो प्रान्त निवासियों की सहमति के विषय में है, उसका तो उलटा दिखाई दे रहा है, यदि सब लोग या उनकी बहु संख्या इस माँग को सम्पुष्ट करने को तैयार होती तो, आज इस सम्मेलन करने का कष्ट आपको न दिया जाता। स्थिति तो यह है कि वर्तमान पंजाब की बहु संख्या इस माँग का विरोध करती है और इस विरोध में हम लोग भी शामिल हैं।

(४) चौथा प्रश्न जो मैंने आपके सम्मुख रखा है, उसके सम्बन्ध में जो विचार प्रचलित है, उन में संशोधन की आवश्यकता प्रतीत होती है। साधारणतया इस माँग को सिक्खों से सम्बन्धित किया जाता है। और इसे सिक्ख माँग कहा जाता है। यह ठीक नहीं। यदि कहा जाय कि यह माँग करने वाले सिक्ख हैं तो सत्य है इस से यह 'सिक्ख माँग' नहीं बनती, क्यों कि कई एक सिक्ख महोदय इसके विरुद्ध हैं। जहाँ तक मैं समझता हूं यह माँग सिक्खों के उस विभाग की ओर से है, जो अपने आपको प्रान्तीय (विधान सभा) के सदस्य बनने के उम्मीदवार बनाते हैं, परन्तु उसके लिए पर्याप्त सम्मति प्राप्त करने में असमर्थ हैं। वह पंजाब प्रान्त को इस प्रकार परिमित करना चाहते हैं, जिस से उन अनुगामियों की संख्या बढ़ जावे और (विधान सभा) में वह बहु सम्मति बना सकें। जो सिक्ख महोदय वर्त्तमान पंजाब में शासक समुदाय अथवा (कांग्रेस) के सदस्य हैं और एसम्बली के सदस्य हैं, वह सब लोग इस माँग का विरोध करते हैं। ऐसे महानुभावों की संख्या थोड़ी नहीं कि उन का ध्यान न किया जावे। इन दो श्रेणियों के अतिरिक्त और सिक्ख भी हैं जो पक्षपात छोड़ कर विचार करते हैं। जिनका परिचय मुझे नवम्बर की इक्कीसवीं तिथि को हुआ। उस दिन जालन्धर में (युनिवर्सिटी) की ओर से एक वाद विवाद प्रतियोगिता हुई। Declamation cantest के लिए पंजाब के समस्त कालेजों से विद्यार्थी निमंत्रित थे, प्रत्येक कालेज को तीन विद्यार्थी भेजने का अधिकार दिया गया। इस अधिवेशन की अध्यक्षता के लिए (युनिवर्सिटी) ने मुझे नियत किया। उस मीटिंग में ३४ या ३५ विद्यार्थी तथा विद्यार्थिनियाँ सम्मिलित हुईं [illegible] ७० ने भाषा के आधार पर प्रान्त के निर्माण [illegible]। इनमें १० के लगभग सिक्ख विद्यार्थी थे। जो खालसा कालेज अमृतसर पसु प्रान्त के दो कालेजों [illegible]। इन सब ने भाषा के आधार [illegible] का विरोध किया। सिक्खों के अतिरिक्त अन्य सब वक्ताओं ने भी विरोध ही किया, दो सिक्ख विद्यार्थियों ने एक युक्ति यह दी कि भारत में २०० से ऊपर भाषा अंकित हो चुकी हैं, जिनका उल्लेख जन गणना की रिपोर्टों पर आश्रित है। उन्होंने प्रश्न किया कि फिर २०० प्रान्त बनाओगे। २०० हाईकोर्ट, २०० गवर्नर, २०० विधान सभाएं इत्यादि इत्यादि। क्या देश इतना समृद्ध है कि इस व्यय का भार सहन कर सके।

इस सारे विचार का निष्कर्ष यह है कि संकुचित प्रान्त की माँग केवल एसम्बली की सीट प्राप्त करने के लिए कुछ एक व्यक्तियों की ओर से की गई है, इसमें देश हित या प्रजा का कल्याण अभिप्रेत नहीं, न ही इसमें कोई धार्मिक सिद्धान्त या धर्म्म रक्षा का अंश दिखता है, केवल हठ धर्मिता के विचार से यह लोग प्रेरित हो रहे हैं विवेक के विचार से नहीं।

(५) पांचवे प्रश्न पर अधिक विवेचन की आवश्यकता नहीं संकुचित प्रांत के मांगने वाले अपने आप को अन्य भारत वासियों से पृथक समझते हैं। जैसे जिन्होंने द्विराष्ट्र सिद्धान्त (Two nation theory) स्थापित की थी। मुसलमान अपना सम्बन्ध अरब से जोड़ते थे। मैं अपने अमृतसर के भाषण में कह चुका हूं कि वह भारत वासियों का अंश होते हुए भी अपने पितर अरबियों को मानने लगे, और इस भाव को लेकर अपने आप को भारत भिन्न जाति कहने लगे। किन्तु सिख भाई तो ऐसा नहीं कह सकते। उन के रिश्ते नाते भारत में ही सिक्ख समुदाय से बाहर भी होते हैं। खान पान, मिलन वर्तन में कोई भेद नहीं। धर्म शास्त्र भी एक ही है। इन सारी बातों को देखते हुए यही मानना पड़ता है कि यह भिन्नता का आन्दोलन केवल इस लिए है कि कुछ एक महोदय एसम्बली में जा कर अधिकारी बन सकें और सरकारी नौकरियों में दूसरों

[शेष पृष्ठ १३ पर]

सत्याग्रहियों पर गोवा में हुए अमानुषिक अत्याचारों के दृश्य
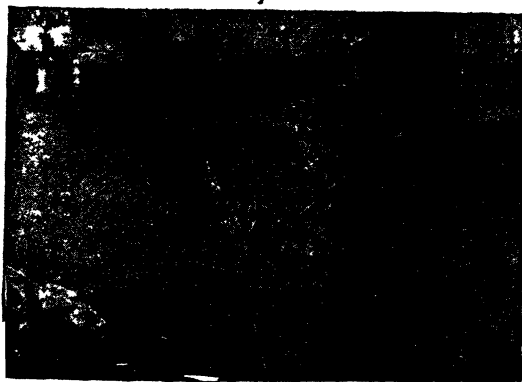
१५ अगस्त को १७११ सत्याग्रही गोवा में प्रवेश किये जिसमें से १६९१ लौटे। शेष २० कि गोवा में बर्बर पुर्तगालियों की गोलियों से शहीद हो गए।

चित्र में एक सत्याग्रही एक महिला सत्याग्रही को अपने कंधों पर उठाये लिए जा रहा है जो पुर्तगाली सैनिकों की गोली का शिकार बन गई थी मकान के बरामदे में पीछे की ओर पुर्तगाली सैनिक दिखाई दे रहे हैं।

गोवा सत्याग्रह के आदर्शवादी निहत्थे सैनिक जब १५ अगस्त को १७११ की संख्या में गोवा में प्रवेश किये तो बर्बर पुर्तगाली सैनिक उन पर गोलियों की बौछार करने लगे।

चित्र में दिखाया गया है कि वीर सत्याग्रही किस प्रकार गोलियों का सामना करते हुए भी अपनी लक्ष्य की ओर आगे ही बढ़ते जा रहे हैं।

१५ अगस्त को गोवा में पुर्तगाली सैनिकों की गोली खाकर लगभग दो दर्जन व्यक्ति शहीद हो गये।

एक सत्याग्रही दल के नेता श्री करनैलसिंह भी शहीद हो गये। चित्र में दिखाया गया है कि एक अमेरिकन फोटोग्राफर श्री आर्थर बोनर तथा यू० पी० ए० के प्रतिनिधि श्री जान हलावेक श्री करनैल सिंह को उठाये जा रहे हैं।

१५ अगस्त १९५५ को जब भारतीय सत्याग्रही गोवा में प्रवेश किये तो पुर्तगाली सैनिकों द्वारा अन्धाधुन्ध गोलियों की बौछार में अनेकों शहीद हो गए। चित्र में दिखाया गया है कि श्री आर्थर बोनर नामक एक अमरीकी फोटोग्राफर एक सत्याग्रही को उठाकर भारतीय सीमा में ला रहा है जो पुर्तगाली सैनिकों की गोली का शिकार हो चुका था।

आर्यसमाज के विद्रोही

[ले०—श्री भवानीलाल जी 'भारतीय' एम० ए०, सिद्धान्त वाचस्पति]

आर्यमित्र के १७ जुलाई के अंक में प्रकाशित मेरे उपर्युक्त लेख के सम्बन्ध में एक लेख श्री पं० गंगाप्रसाद जी रि० जज का 'आर्य' के २८ अगस्त के अंक में प्रकाशित हुआ है। मेरे लेख को पढ़कर सम्भवतः अनेक पाठकों को जज महोदय की भाँति ही भ्रम हुआ होगा, अतः मैं अपने पूर्व प्रकाशित लेख और जज महोदय के लेख के सम्बन्ध में निम्न विचार पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता हूं।

मुझे इस लेख को यह शीर्षक देने की प्रेरणा ६ जून के आर्यमित्र में प्रकाशित पं० जयदेवजी विद्यालंकार के एक लेख "आर्यसमाज में उपद्रवकारी" से मिली। वस्तुतः पं० जयदेव जी ने भी यह शीर्षक पं० सातवलेकर जी के एक लेख के उत्तर रूप में ही दिया था क्योंकि सातवलेकर जी ने अपने लेख में उन व्यक्तियों को "उपद्रवकारी" के विशेषण से सम्बोधित किया था जो वेद में इतिहास नहीं मानते।

मैं यह अवश्य कह देना चाहता हूं कि मैंने "विद्रोही" शब्द को उन अर्थों में ग्रहण नहीं किया है, जैसा कि साधारणतया समझा जाता है। इसके अन्तर्गत उन सभी व्यक्तियों को लिया गया है जो आर्य समाज के सिद्धांत से सर्वांश में सहमत नहीं थे, अथवा जो वैधानिक दृष्टि से उससे पृथक हो गये थे। रा० ब० मूलराज और लाला लाजपतराय आदि के नाम इस सूची में आ जाने से भ्रम अवश्य उत्पन्न हो गया है, परन्तु मेरे हार्दिक भावों का पता निम्न पंक्तियों से लग जायगा।

मैं जज साहब की इस बात से सहमत हूं कि सिद्धांतों के विषय में मतभेद होता ही रहता है और वह सदा बुरा भी नहीं होता। परन्तु मेरा इतना और निवेदन है कि मतभेद भी एक उचित सीमा तक ही सह्य हो सकता है, जब मौलिक सिद्धांतों के प्रति ही लोगों की अनास्था हो जाती है तब मतभेद को सहन नहीं किया जा सकता। पं० अखिलानन्द और पं० विश्वबंधु शास्त्री सिद्धांत भेद के कारण ही आर्य समाज से पृथक हुए थे। चाहे इसे विद्रोह कहें या और कुछ।

विदेह साहब के सम्बन्ध में जज महोदय का स्पष्टीकरण नितान्त समयोचित और श्लाघनीय है। अवश्य ही सार्वदेशिक सभा के निर्णय के पूर्व ही उन्होंने विदेह जी की प्रशंसा में यह वक्तव्य दिया था, परन्तु खेद तो यह है कि विदेह जी जज महोदय तथा अन्य आर्य पंडितों की उन पुरानी सम्मतियों से ही लाभ उठा कर जनता को भ्रम में डाल रहे हैं। (देखिये सविता का परिचय अंक) मेरे लेख का कम से कम एक लाभ तो यही हुआ कि यह मामला साफ हो गया। वैसे जज महोदय हम सबके पूज्य हैं और मैं अपनी धृष्टता के लिए क्षमा माँगता हूं।

अब मैं अपने लेख में दिए गए नामों और उन पर जज म० की टिप्पणियों पर कुछ विचार रखता हूं। मैं आर्यसमाज के इतिहास का एक तुच्छ विद्यार्थी हूं यह मेरे अध्ययन का प्रिय विषय है। इसी अध्ययन के प्रसंग में ये नाम मेरे ध्यान को आकृष्ट कर सके और मैंने उनकी एक सूची बना ली। अवश्य ही सब नाम एक ही वर्ग में रखे जाने के योग्य नहीं हैं, परन्तु उनमें कहीं न कहीं आर्यसमाज महर्षि अथवा सिद्धांतों के प्रति विरक्ति का भाव दीखपड़ा था।

पं० भीमसेन और पं० अखिलानन्द के विषय में तो कोई मतभेद ही नहीं है। मुन्शी इन्द्रमणि के विषय में मैंने इतना ही लिखा था "वे तुच्छ अर्थ लोभ में फंसकर महर्षि के विरुद्ध हो गये।" तथ्य यह है कि इन्द्रमणि आर्यसमाज से पृथक होकर सैद्धान्तिक दृष्टि से आर्यसमाज का विरोध करते रहे। पं० भीमसेन द्वारा सम्पादित "आर्यसिद्धांत" में उनके सिद्धांतों की समीक्षा छपती थी। इस समय मेरे पास महर्षि का कोई बड़ा जीवन चरित्र नहीं है, परन्तु सार्वदेशिक प्रकाशन से छापे संक्षिप्त जीवन चरित्र में भी लिखा है "मुन्शी इन्द्रमणि आर्यसमाज के कट्टर शत्रु बने। उसकी लिखी निम्न पुस्तकें मैंने देखी हैं जो उसने महर्षि के विरुद्ध लिखी थी—(१) दयानन्द का कच्चा चिट्ठा (२) दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य की समीक्षा (३) दयानन्द लीला (४) दयानन्द चरित्र (५) दयानन्द मत दर्पण (६) दयानन्द हृदय (७) नवीन मत समीक्षा (८) मुक्ति प्रकाश (९) सत्यार्थप्रकाश समीक्षा (१०) दयानन्द के मूल सिद्धांत की हानि।

मुन्शी बख्तावर सिंह और हरिश्चन्द्र चिन्तामणि से वैदिक यंत्रालय के प्रबंध के विषय में झगड़ा हुआ। मेरे कथन का अभिप्राय केवल इतना ही था कि स्वामी जी को विश्वस्त कर्मचारी भी नहीं मिले।

मेरे लेख में स्वा० "आत्मानन्द" का जिक्र नहीं था। मैंने लिखा था, "आत्माराम सागर" प्रेस की भूल से वह आत्माराम छप गया और जज साहब ने उसे स्वामी जी का शिष्य आत्मानन्द समझा। अस्तु। आत्माराम के कुख्यात जीवन से जज साहब जैसे वयोवृद्ध और आर्यसमाज के वर्तमान इतिहास स्वरूप महानुभाव परिचित ही होंगे। इस व्यक्ति ने आर्यसमाज से पृथक होकर समाज की यथा शक्ति हानि ही की। इतिहास बताता है कि इसने सरकार के समक्ष आर्यसमाज को राजद्रोहात्मक संस्था सिद्ध करने का प्रयास किया और अदालतों में इस प्रकार की साक्षियाँ दीं। उसका एक व्याख्यान संग्रह "सनातन हिन्दू धर्म व्याख्यान दर्पण" मैंने पढ़ा है, उसके प्रत्येक पृष्ठ २ और पंक्ति २ पंक्ति में इसने महर्षि और आर्यसमाज के प्रति विष वमन किया है।

अब लाला मूलराज और लाला लाजपतराय को लीजिये। मूलराज जी के विषय में जो कुछ जज साहब ने लिखा है वह यथार्थ ही है। मैं भी इससे परिचित हूं। परोपकारिणी सभा महर्षि के साथ उनका वैसा ही सम्बन्ध था, जैसा लेख में लिखा गया है। शायद जज साहब को यह भी विदित होगा कि एक बार आर्यसमाज के क्षेत्रों में महर्षि की निर्भ्रान्तता और सभ्रान्तता का विकट प्रश्न छिड़ा था। उस अवसर पर मूलराजजी ने दश प्रश्नी A memo on the Arya SanaJ तथा the veda and the Arya Samaj शीर्षक ट्रैक्ट निकले थे। दशप्रश्नी का उत्तर स्वयं महात्मा हंसराज जी ने दिया था। आर्यसमाजी विद्वान ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों और मन्तव्यों को जब निर्भ्रात कहते हैं तो उनका यह कथन किसी अंध श्रद्धा या अपने गुरु के प्रति अंध विश्वास का द्योतक नहीं है! हम तो दयानन्द को ऋषि मानते हैं और जैसा कि महर्षि यास्क ने लिखा है—साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः "धर्म के तत्वों का साक्षात्कार करनेवाले ऋषि कहलाते हैं। महर्षि दयानन्द भी ऐसे ही ऋषि थे अतः उनके प्रत्येक शब्द, वाक्य, सिद्धान्त और मन्तव्य को आप्त वाक्य के रूप में हम प्रामाणिक मानते हैं। वेदानुकूल होने से जिस प्रकार मन्वादि अन्य ऋषि प्रामाणिक हैं उसी प्रकार महर्षि भी।

रा० ब० मूलराज और लाला लाजपत राय इस सिद्धान्त से सहमत नहीं थे। लाजपतराय ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक The Arya Samaj में इसी प्रकार के विचार प्रकट किये हैं। ऊपर उल्लिखित पुस्तकों को पढ़ने से मेरे कथन की सत्यता विदित हो जायगी। अन्यथा आर्यसमाज के प्रति लालाजी का प्रेम सब को विदित ही है। पृथक दल की स्थापना का जहाँ तक सम्बन्ध है, लाला मूलराज और लाला लाजपतराय ने तो अलग दल नहीं बनाया, परन्तु दुर्भाग्यवश आर्य समाज में दो दल महात्मा और कल्चर्ड, कालेज और गुरुकुल तो पहले से ही बन चुके थे और कहने की आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त दोनों महानुभाव कालेज दल से सम्बन्धित थे। आशा है इतना कहने के पश्चात् मेरे कथन का अभिप्राय पाठकों को विदित हो जायगा। अलमति विस्तरेण।

श्री विश्वबंधु शास्त्री ने आर्यसमाज का विरोध नहीं किया और विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान उपयोगी कार्य कर रहा है, यह जज महोदय का कथन यथार्थ ही है। मैंने भी अपने लेख में विश्वबंधु जी के आर्यसमाज से पृथक होने का ही उल्लेख किया था। थियोसोफी के प्रवर्तकों के द्रोह का वर्णन तो आर्यसमाज के इतिहास में प्रसिद्ध ही है। पं० सातवलेकर और श्री विदेह के सम्बन्ध में पृथक लेख मैं लिखूंगा। आशा है तब तक जज साहब का शेष लेख भी प्रकाशित हो जायगा।

सत्यार्थ प्रकाश पाठ संख्या ३० (अष्टम समुल्लास)

सृष्ट्युत्पत्ति से पूर्व

(श्री सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम० ए० एल० टी० डी० वी० कालेज, गोरखपुर)

जब यह सृष्टि उत्पन्न नहीं हुई थी, उस समय प्रकृति शक्ति, जीव शक्ति और ब्रह्म शक्ति विद्यमान थी। इनमें से ब्रह्म शक्ति स्वतः पूर्ण और निष्काम है। प्रकृति शक्ति जड़ है और उसमें स्वतः प्रवृत्ति नहीं हो सकती अतः परमात्मा की सृष्टि रचना की इच्छा में भी प्रेरणा करने के लिए एक निमित्त शक्ति जो इन दोनों शक्तियों से अलग ही होनी चाहिए और वह जीव शक्ति है। इस जीव के पूर्व सृष्टि में किए हुए पाप और पुण्यों के अनुसार इस सृष्टि की रचना हुई। और जब प्रभु ने इच्छा की तब सत्व रज और तम इन तीनों गुणों की समानावस्था से बनी प्रकृति में विकृति आई और इस विश्व का निर्माण हुआ। आज जब विश्व पर अपनी दृष्टि डालते हैं तो हमें इस सृष्टि में वृक्ष, पशु, मनुष्य, पत्थर, सोना, चांदी, हीरा, जल, वायु आदि अनेक पदार्थ दीख पड़ते हैं और इन सब पदार्थों के रूप तथा गुण भी भिन्न भिन्न हैं।

"अर्थात् सृष्टि के आरम्भ से पूर्व तम था, उस समय सब कुछ तम में छिपा हुआ था" इसे दो प्रलय के बाद महारात्री भी कहा जाता है। "या तस्मादेव सामर्थ्यात् प्रलयानन्तर भवति सा रात्रि" उसी ईश्वर के सामर्थ्य से जो प्रलय के पीछे हजार चतुर्भुजों के प्रभाव से रात्रि कहाती है सो भी पूर्व प्रलय के तुल्य होती है। इस प्रकार सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व जब सत्व, रज और तम प्रकृति ये तीन गुण समानावस्था में थे तब प्रलय की रात्रि थी। अन्धकार था और अन्धकार से यह सारा संसार आवृत था। यह (अप्रकेतं) रात्रि रूप में जानने के अयोग्य था।

परन्तु जब सत्व, रज और तम नामक प्रकृति के तीनों गुणोंमें भिन्नता आने लगती है, वे गुण न्यूनाधिक होने लगते हैं तब प्रवत्यात्मक रजोगुण के कारण मूल प्रकृति से भिन्न भिन्न पदार्थ होने लगते हैं। प्रवृत्यात्मक रजोगुण का मतलब यह है कि प्रलयावस्था में सत्वगुण और रजो गुण का परिणाम, सर्जनोन्मुखी प्रकाश और क्रिया के रूप में नहीं हो रहा होता, अतः उस समय तमोगुण का प्राधान्य होता है और प्रकृति की स्थिति में क्रिया होने लगती है यह क्रिया प्रवृत्यात्मक रजोगुण के कारण होती है। इस प्रकार विश्व का निर्माण होना शुरू होता है। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि यदि पहले सत्व रज और तम तीनों गुण समानावस्था में थे तो इनमें न्यूनाधिकता कैसे हुई? कुछ व्यक्ति एवं विद्वान यह कह सकते हैं कि यह तो प्रकृति का मूल धर्म है, रासायनिक क्रियाओं का परिणाम ऐसा करना होता है? यह तो माना जा सकता है कि यह प्रकृति का मूल धर्म है? परन्तु प्रकृति तो जड़ है? जड़ वस्तु को समता से विषमता में लाने के लिए आवश्यक है कि कोई चेतन इस क्रिया का निमित्त कारण कोई होना ही चाहिए। जिस प्रकार यदि हम किसी जङ्गल में जांय और वहां अच्छी प्रकार व्यवस्था के अनुसार बिछे हुए सामान को देखें तो हम इस उत्तर द्वारा कि यह स्वयं हो गया, सन्तुष्ट न होंगे और उसके कर्ता के विषय में सोचेंगे, वैसे ही समानावस्था से विषमावस्था में लाने के लिये किसी चेतन कर्ता की कल्पना हमें करनी होगी। तभी तो गीता में कृष्ण भगवान् ने लिखा है कि प्रकृति अपना खेल करने या सृष्टि का कार्य चलाने के लिये स्वतंत्र नहीं किन्तु उसे यह काम ईश्वर की इच्छा के अनुसार करना पड़ता है। गीता में लिखा है :—

मयाध्यक्षेण प्रकृति. सूयते सचराचरम्
हेतुनानेन कौंतेय जगद्विपरिवर्तते।

मैं अध्यक्ष होकर प्रकृति से सब चराचर सृष्टि उत्पन्न करवाता हूं। हे कौन्तेय! इस कारण यह जगत् का बनना बिगड़ना हुआ करता है।

वेद में भी इसी बात का प्रतिपादन किया गया है जैसे:—

"हिरण्यगर्भं समवर्तताग्रे भूतस्य जात: पतिरेक आसीत्" और इस हिरण्य गर्भ से सब सृष्टि उत्पन्न हुई, वह ही इस संसार का अध्यक्ष है, चलाने वाला है, धारण करनेवाला और स्वामी है।

इस प्रकार प्रकृतिमें विकृति आने के बाद इस विश्व का निर्माण हुआ? यह निर्माण किस प्रकार हुआ इसका उल्लेख सध्या के अघमर्षण में किया गया है। वास्तव में इस अघमर्षण मंत्र में वर्जित सृष्टि क्रम में और आज के वैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित सृष्टि क्रम में समानता पाई जाती है। इस प्रकार सृष्टि से पूर्व साम्यावस्था में रहनेवाली प्रकृति थी और उसका ही परिणाम था कि चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार था। स्वामीजी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश में ऋग्वेद 'तम आसीत्तमसागूढमग्रे' मंत्र द्वारा प्रकृति की साम्यावस्था के समय के अन्धकार का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि यह सब जगत सृष्टि के पहले अन्धकार से आवृत, रात्रि रूप में जानने के अयोग्य था। पश्चात् परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से कारण रूप से कार्य रूप किया।

आर्य समाज क्या है और उसने क्या किया!

(लेखक श्री [illegible] प्रसाद, आर्योपदेशक, डी. ए. वी. कालेज, कानपुर)

आर्यसमाज जैसा कि इसके नाम से ही प्रकट है, आर्यों (वैदिक धर्मियों) का समाज है। जिसे श्री स्वामी दयानन्द जी महराज ने अप्रैल सन् १८७५ ई० में बम्बई नगर में वैदिक धर्म के प्रचार और संसार के उपकारार्थ स्थापित किया था। मैं इस लेख में 'आर्यमित्र' के पाठकों के सम्मुख आर्यसमाज का विस्तार जो संपूर्ण विश्व में है वह संग्रह करके लिख रहा हूँ, जिससे पाठकों को भलीभांति यह ज्ञात हो जायगा कि आर्यसमाज क्या है और उसके संगठन का विस्तार कितना है?

१—सम्पूर्ण भारतवर्ष में ३०००० के लगभग आर्यसमाज हैं।

२—इंगलैंड, अमरीका, जमन, असीरिया, अफगानिस्तान, अरब, फारस, बगदाद, सिंगापुर, बर्मा, स्याम, अनाम, कम्बोडिया, हांगकांग, आदि देशों में भी, आर्यसमाज का प्रचार कार्य हो रहा है।

३—भारत से बाहर पूर्वी अफ्रीका, दक्षिणी अफ्रीका, मौरीशिस, और फीजी द्वीप, आदि देशों में ३०० सौ के लगभग आर्यसमाजें हैं?

४—प्रांतीय तथा जिला आर्य प्रतिनिधि सभायें व उपसभायें ५०० सौ हैं।

५—भारत नैपाल और अफ्रीका आदि देशों में आर्यवीर दल की २२४ शाखायें स्थापित हैं; जिसमें लाखों युवक धर्म की शिक्षा ग्रहण करते हैं।

६—सम्पूर्ण भारतवर्ष में आर्यकुमार परिषद् की लगभग ५०० [illegible]।

७—२५० कालज और हाईस्कूल हैं। जिसमें समस्त भारतवर्ष में दयानन्द कालेज कानपुर का सबसे बड़ा है।

८—२००० हजार प्राइमरी और मिडिल स्कूल बालक बालिकाओं के लिये हैं।

९—६० गुरुकुल और कन्या गुरुकुल हैं।

१०—२०० सौ संस्कृत विद्यालय और धर्मार्थ औषधालय है।

११—४०० सौ अछूतों के लिए पाठशालायें हैं।

१२—२०० सौ अनाथालय, वानप्रस्थाश्रम, और गोशालायें हैं।

१३—२००० हजार संन्यासी, व्याख्याता, भजनोपदेशक, प्रचार कार्य में संलग्न हैं जो कि वेदों का घर घर संदेश पहुँचाते हैं।

१४—५०० सौ अतिथि भवन और व्यायाम शालायें हैं।

१५—३०० सौ प्रेस, पत्र-पत्रिकायें. वाचनालय और पुस्तकालय हैं।

१६—१ पत्र दैनिक 'आर्यमित्र' जो कि आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश का मुख्य पत्र है, जो कि वैदिक सिद्धांतों की रक्षा करता रहता है, और विरोधियों को मुंहतोड़ उत्तर देता है।

१७—परोपकारिणी सभा, विरजानन्द वैदिक संस्थान, रामलाल कपूर ट्रस्ट, वानप्रस्थाश्रम, दयानन्द मठ, श्रद्धानन्द स्मारक ट्रस्ट, दयानन्द सालवेशन मिशन, विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान, श्री गुलराज गुप्त चैरिटी ट्रस्ट, तथा आर्य युवक संघ दिल्ली, व दयानन्द रक्षा मण्डल लखनऊ आदि विभिन्न संस्थायें हैं।

प्रांतीय प्रतिनिधि सभाएं

१—आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश लखनऊ!

२—आर्य प्रदेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब, जालन्धर!

३—आर्य प्रतिनिधि सभा जालन्धर!

४—आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान जयपुर!

५—आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य भारत लशकर!

६—आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य प्रान्त नागपुर!

७—आर्य प्रतिनिधि सभा बिहार, बांकीपुर पटना!

८—आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल कलकत्ता!

९—आर्य प्रतिनिधि सभा बम्बई!

१०—आर्य प्रतिनिधि सभा हैदराबाद।

११—आर्य प्रतिनिधि सभा सिन्ध कल्याण कैम्प।

नोट—यह ११ प्रतिनिधि सभाएं तो केवल भारत वर्ष भर की है, विदेशों की भी आर्य प्रतिनिधि सभायें निम्न लिखित हैं—

१—आर्य प्रतिनिधि सभा, दक्षिणी अफ्रीका, नेटाल!

२—आर्यप्रतिनिधि सभा, पूर्वी अफ्रीका नैरोबी!

(शेष पृष्ठ १६ पर)

वेदों में 'शाश्वत इतिहास' की आलोचना

(ले० श्री पं. जयदेव शर्मा वेदालंकार वनस्थली विद्यापीठ जयपुर राजस्थान)

जब तक अरणियों में मन्थन किया नहीं होती तब तक अग्नि का प्रकाश प्रकट नहीं होता। इस लिये सत्य विज्ञान-आलोक प्रकाश उत्पन्न होने के लिये अरणिरूप विद्वानों का मन्थन होना ही चाहिये।

पाठकों ने मेरे पांच छः लेख आर्य मित्र के स्तम्भों में पढ़े। मैं कह नहीं सकता कि पाठकों ने उसका क्या अभिप्राय समझा। परन्तु मैंने उनको इसी लक्ष्य से लिखा था कि यदि वैदिक विद्वानों में सिद्धान्त विपरीतता है तो उसका भी स्पष्टी करण होना चाहिये।

श्री पं० सातवलेकर जी आर्य विद्वानों में भी प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके हैं। अभी भी सहस्रों आर्य पुरुष आपकी ओजस्विनी लेखिनी का रसास्वादन करते हैं। परन्तु आपके ऋषि दर्शनों में वेदमंत्रार्थ-करते हुए जो वशिष्ठ, वसिष्ठ को राजा सुदास के दिये दान और दान में दी गई दो वधू वाले रथों की चर्चा चली तो उससे आर्य पुरुषों के हृदयों में विक्षोभ उत्पन्न हुआ। जिसके परिणाम स्वरूप मैंने 'वेदों में इतिहास है क्या?' विषय पर एक आलोचनात्मक पुस्तक आर्य साहित्य मण्डल लि० अजमेर के सहयोग में प्रकाशित किया।

जिस पर [बिगड़ कर श्री प० जी ने तथ्य जाने बूझे हीन दृष्टि से जनता के समक्ष अपमानित करने का उद्योग किया और अप्रैल मास के १९५९ के वैदिक धर्म में अनेक उलट पुलट स्थापनाओं से अपने ऋषि दर्शनों में प्रकट किये अचिंत्य सके संगोपन के लिये बहुत उद्योग प्रकट किये जिनकी आलोचना मैंने आर्य मित्र के स्तम्भों में की जिनको पाठकों ने भली भांति पढ़ा।

हमारा लक्ष्य सर्वथा सिद्धान्त का ऊहापोह मात्र था श्री प० जी के मान-मर्यादा के प्रति अवहीरणा का भाव हमारे चित्त में सर्वथा न था। न अब है। न आगे रहने वाला है। विद्यावयो-वृद्ध महा पुरुष श्री पं० सातवलेकर जी के लिये आदर हमारे चित्त में सदा जागरूक रहने वाला है। परन्तु उनके लेखन व विचारों से जो वेद विषय में अनर्थ होने की संभावना है वह अवश्य किसी भी आर्य वेद प्रेमी पुरुष को सह्य नहीं होगी।

वेदों में इतिहासाभास मानने का आग्रह श्री पण्डित जी के हृदय में बहुत गहरा जम गया है। और इस भावना ने श्री पं० जी की दृष्टि में रामायण और महाभारत को भी इतिहास पद से गिरा कर काल्पनिक सीमा पर ला पटका है। और इसी प्रकार पुराणों को भी काल्पनिक वस्तु का समुदाय बना दिया है।

परन्तु वर्तमान इतिहास वेत्ता क्या योरोप के, क्या भारत के, क्या आर्य समाज के क्या अन्य पंथों के सभी विद्वानों ने रामायण, महाभारत और पुराणों को काल्पनिक रचना नहीं माना है जिनमें राजवंशावलियां उनके समय के बड़े २ ऐतिहासिक तथ्यों को ऐतिहासिक तथ्य ही माना है, काल्पनिक नहीं माना है। उनके मन्तव्यों से सर्वथा विपरीत श्री पं० सातवलेकर जी का ०ह इतिहासाभासवाद या शब्दान्तर में 'शाश्वत इतिहासवाद' है। क्यों?

क्यों कि. सितम्बर १९५९ के वैदिक धर्म में आपने वेदों में शाश्वत इतिहास शीर्षक से एक सातपृष्ठों [१४ स्तम्भों] का लेख प्रकाशित किया है जिसमें आपने अपने मन्तव्यों की विशद व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

हमारा अपना विश्वास है कि जिसको पण्डित जी शाश्वत इतिहास कहना चाहते हैं वह शाश्वत इतिहास नहीं है, प्रत्युत शाश्वत तथ्य है, उसे शाश्वत इतिहास अर्थात् अतीत न कहकर शाश्वत

वर्तमान कहना चाहिये। जब कोई पदार्थ शाश्वत है तो वह अतीत कहां है वह तो नित्य तत्त्व है। यदि परमेश्वर शाश्वत नित्य ध्रुव तत्त्व है, तो ईश्वर की सत्ता मृत नेपोलियन की अतीत सत्ताके समान अनित्य नहीं है।

जब वह अनित्य नहीं तो उस परमेश्वर के ज्ञान में भी अनित्य पदार्थों का उस प्रकार वर्णन नहीं है जैसा अनित्य इतिहास कहने वाले पुराण-इतिहास आदि में है। तब वेद जिसको अनादि परम्परा से वेदानुयायी ब्रह्मा आदि से लेकर जैमिनि ऋषि पर्यन्त अनादि व ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं, जिसको ऋषि दयानन्द ने भी अनादि माना है, उसमें अनित्य इतिहास मान लेना संगत नहीं है।

जिन भाष्यकारों ने वेद को नित्यतत्त्व मानकर भी भाष्यों में स्थान-स्थान पर इतिहास के अंशों को दिखाने का प्रयत्न किया है उन्होंने नित्य वेद मानने की या तो विडम्बना की है या उनको उन अंशों के तथ्य तत्त्व का ज्ञान नहीं हुआ है। या वे किसी अन्य भावना के वशीभूत थे।

परन्तु उन लोगों ने भी 'शाश्वत इतिहास' का स्वप्न वेदों में नहीं देखा। सायण, महीधर, स्कन्द, वर रुचि किसी ने भी 'शाश्वत-इतिहास' ऐसी पदावली का प्रयोग नहीं किया है। कारण शाश्वत तत्त्व तो हो सकता है परन्तु इतिहास शाश्वत नहीं हो सकता। जो इति-ह-आस 'ऐसा पहले था' वह आज नहीं है इसलिये उसकी शाश्वतता नष्ट हो गई।

यह केवल रामायण महाभारत पुराण आदि की ऐतिहासिक सत्ता को नष्ट करने वाले राम कृष्ण, आदि महापुरुष ऐतिहासिक व्यक्तियों को ईश्वर तत्त्व मान कर सम्प्रदायवाद या मानव पूजा प्रचलित करने वालों ने रामायण महाभारत तथा पुराणों में ऐसी ऊटपटांग कल्पनाओं को स्थान दिया जिनमें साक्षात् तथ्य का लव लेश भी नहीं है। और बाद में उनको अपने सम्प्रदाय दृष्टि से आलंकारिक रूप से दिखा कर उसका महत्त्व दिखाने का यत्न किया जाने लगा। इसका क्या परिणाम हुआ?

इसका परिणाम यह हुआ कि लोगों ने वास्तविक वेदज्ञान को छोड़कर साम्प-दायिक किस्से कहानियों को ही सदा तथ्य रूप माना। और कृष्ण की लीला को भी बढ़ा-चढ़ा कर लिखकर भागवतक पोथा बना कर उसकी आलंकारिक व्याख्या करके कृष्ण में देवरूपता का प्रचार किया गया। जो पुराण ऐतिह्य कभी ऐतिहासिक तथ्य था, वही अब सम्प्रदाय भेद से १८ पुराण १८ उप पुराणों में बट कर एक काल्पनिक कथा--कल्पना पुंजों के रूप में विकृत हो गया हमारे प्राचीन सात मन्वंतरो क[illegible] स लुप्त होकर अब कुछ भी [illegible] नहीं रहा।

श्री पं० सात वलकर जी तथा उनके पथिकृत् कुछ दक्षिणी विद्वान् जिन्होंने रामायण महाभारत को काल्पनिक वस्तु का रूप देने का यत्न किया है, रामायण महाभारत को ज्योतिषिक नक्षत्रों की काल्पनिक युद्ध लीला मान लिया है। वे अब इनकी रही सही ऐतिहासिकता को भी रसातल तक पहुंचा देना चाहते हैं।

इतिहास सदृश रचना या इतिहासाभास वाद, शाश्वत इतिहास, या इटर्नल-हिस्टरी (*Eternal History*) आदि ये सब नाम नये गढ़े गये है। जिन पर सम्प्रदाय वादियो की गहरी छाप है। महात्मा गांधी तक रामायण महाभारत को काल्पनिक रचना मानते हैं। उनकी दृष्टि में युधिष्ठिर, आदि पांच पाण्डव व तथा धृतराष्ट्र पाण्डु, व्यास आदि ऋषि सब कुछ भी नहीं केवल कल्पना मात्र हैं।

इसी प्रकार पं० सातवलेकर जी ने भी अपना मन्तव्य घोषित कर दिया है कि व्यासदेवने धृतराष्ट्र के सौ नाम कल्पित किये हैं। शायद पंडित जी की दृष्टि में धृतराष्ट्र के १०० पुत्रतो थे, पर उनके नाम कल्पित है। यदि उन सौ के नाम कल्पित हैं तो अवश्य उनके माता पिता, और पितामह सबके नाम भी कल्पित ही हैं। उनकी वास्तविकता मानना भी एक मूर्खता की बात होगी।

यदि मान लिया जाय कि व्यास देव ने वास्तविक इतिहास के लोगों के नामों में मन मानी कल्पना से खूब गड़बड़ की है, और एक काल्पनिक पोथा रचा है तो वस्तुतः ऐसे महाभारत का मूल्य एक रोमांस (उपन्यास) से अधिक कुछ भी नहीं हो सकता।

गत प्रथम महायुद्ध के समय योरोप से एक पुस्तक प्रकाशित हुआ "War In The Air" 'आकाशीय समर'। आप पढ़ें। बिल्कुल सत्य घटना मालूम होती है। उसके समान ही यह महाभारत रामायण भी एक कल्पना है तो इसका तथ्य-मूल्य शून्य हो गया है।

जैसी एटर्नल हिस्टोरी, 'शाश्वत इतिहास' प्रतीयमान इतिहास वेदों में मानकर श्री पं० सातवलेकर जी अपना अभिप्राय सिद्ध करना चाहते हैं वैसे तो पंचतन्त्र हितोपदेश, शुकबाहत्तरी, और शेख सादी के गुलिस्ता, बोस्तान, के पुस्तकों ने क्या अपराध किया है कि उनको वेद का स्थान न दिया जाय। उनमें भी शाश्वत इतिहास क्यों नहीं है। जब पंचतन्त्र की कथा मे एक स्वभाव कृपण नाम एक परिव्राजक की कथा है। हिरण्यक नाम मूषक की कथा है, कर्पूर पटक नाम रजक का कथा है, और इनके नाम भी साथक हैं। उन कथाओ से वैसे ही तथ्य निकलते हैं जैसे श्री प० जी वृत्रासुर की कथाओ से निकालते हैं तब और उनमे और वेदो में क्या भेद है। वे भी शाश्वत इतिहास है। जब श्री पं० सातवलेकर जी ऋषि दर्शनों में गौतम. वामदेव वसिष्ठ आदि ऋषियों को मन्त्र द्रष्टा न मान कर कालिदास, भवभूति, बाणभट्ट और विष्णुशर्मा आर नार यथा पाण्डन के समान वेदमन्त्रो के कर्त्ता मान लेते है। तब वेदों से इन [पञ्चतन्त्रादि में भेद क्या रहा?

केवल धृतराष्ट्र और दुर्योधन या आदि की कल्पना के चमत्कारों से आप वेद के महत्त्व या इतिहास महाभारतादि के मान की रक्षा नहीं कर सकते ऐसी कल्पनाए पञ्चतन्त्र की कथा के पात्रों में भी की जा सकती हैं।

(शेष पृष्ठ १२ पर)

वैदिक यज्ञ और स्वर पाठ

[लेखक आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री, पोरबन्दर]

वैदिक यज्ञो का वर्णन श्रौत सूत्रादि ग्रन्था में मिलता है। परन्तु इनके विद्यमान होते हुये भी आज बहुत से यज्ञो की प्रक्रिया की परम्परा लुप्त सी ही है। अश्वमेध आदि यज्ञो का नाम और विधान करने का हमें पूर्वोक्त श्रौतसूत्रों आदि में मिलता है परन्तु उनको यदि कराने को दे दिया जावे तो बहुत थोडे ही व्यक्ति होंगे जो कराने में समर्थ होंगे। कारण यह है कि उनकी परम्परायें अब चालू नहीं है। यज्ञ सम्बन्धी छोटी छोटी बातें आज विचारणीय कोटि में आ जाती हैं तथा उनका समाधान करना कठिन पड जाता है। वस्तुतः ये विषय पुस्तक में पढ लेने मात्र के नहीं बल्कि परम्परा चालू करने और घोर अभ्यास के है। सस्कारो मे बहुत साधारण कर्म है परन्तु केवल पोथी लेकर बैठने से सफलता नहीं प्राप्त होती। प्राचीन समय मे पुरोहित प्रथा थी और याज्ञिकों का सम्प्रदाय भी चलता था। दर्शपौर्णमास की क्रिया-पद्धति लघु होतेहुवे भी ग्रन्थो में इसका बाह्य डम्बर कितना घबडा देने वाला है। सोमयाग की बात भी आज कठिनता से समझ मे आती है। कराने की पद्धति में कितनी कठिनाई है विचारक स्वय जान सकते ह। "गोमेध यज्ञ" की पद्धति के भी विचार पूर्वक निर्णीत करने की आवश्यकता पडेगी। यदि वैदिक ग्रन्थों में इसकी विधि ह तो उसे ही अपनाना पडेगा। यदि नही है तो हम अपनी विधि युति युक्त और शास्त्रीय ढग पर बना सकते ह। श्री पूज्य स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने गोमेध यज्ञ की एक बनायी भी है। और इसका प्रयोग भी श्री ब्रह्मानन्द जी दण्डी द्वारा सुचारु ढग से हैदराबाद म किया गया। 'गोमेध यज्ञ की विधि बनाकर पूज्य स्वामी जी महाराज ने विद्वानों के लिये मार्ग निर्माण किया है। तथा उनका यह काय प्रशसनीय है। यज्ञ की वेदी और उसके दूसरे उपस्करों का विधिवत सन्धान वाले व्यक्ति भी आज नही। मतः प्रसन्नता है कि इस दिशा में मान्य स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज अच्छी जानकारी रखते ह। श्री प० परशुराम शर्मा जी भी इस विषय के बड़े ही जानकार थे। अस्तु पूज्य आत्मानन्द जी महाराज और पू० स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज दोनों महर्षि के अनन्य भक्त और उनके सिद्धान्तों की धारणा को मानने और पालन करने वाले हं।

गोमेध यज्ञ को विधि को आजक बनाने का साधन श्रौतसूत्रो में मिल सकता है। उसके ढूढने की आवश्कता है। मुझे जहाँ तक अध्ययन से ज्ञात हुआ है, मैं ऐसा ही समझता हू और पाता हू। लौगाक्षि-गृह्यसूत्र की ७१ वीं कण्डिका में एक गोयज्ञ' वर्णित है। उसमें प्रथम सूत्र में लिखा है—"गावो भग" इति गोयज्ञस्य-अर्थात् गावो भग" इस प्रतीक वाला मत्र गोयज्ञ का है। वहा पर टीकाकार देवपाल ने यह भी लिखा है कि यह "गोयज्ञ" ब्याई हुई गाय के स्वास्थ्य और सदूगर्भ ग्रहण के लि। बसन्त में किया जाता है। इसमें "सीरा युञ्जन्ति" आदि हल चलाने और कृषि सम्बन्धी मत्रो का विनियोग है। मध्य में सीता यज्ञ के भी मत्र आगये है। देखने से पता चलता है कि यहा गोयज्ञ मे गोवश की समृद्धि और उससे सम्बद्ध कृषि की समृद्धि दोनो का समन्वय ह। यह गोमेध के लिये उपयोगी वस्तु है नाम भले ही गोमेध न होकर "गोयज्ञ' है। इसमें विनियुक्त सभी मत्र उपयोगी ह। ताण्डयब्राह्मण के ११ व अध्याय के १३ वें खण्ड में "गोसव नामी यज्ञ का वर्णन है। यह यज्ञ कात्यायन श्रौतसूत्र २२ ११ ३१ और आपस्तम्ब २२ १२ १७ में वर्णित है। उसमें कात्यायन के अनुसार सहस्र बैलो की दक्षिणा दी जाती है। तैत्तिरीय ब्राह्मण २ ७ ७ में भी इस 'गोसव का वर्णन है। इसे 'पशुस्तोम' भी कहा गया है। इस गोसव पर इन ब्राह्मणों में लिखा गया है कि अथैष गोसव स्वाराज्यो वा एष यज्ञ। अर्थात् यह स्वाराज्य यज्ञ है। इस प्रकार से इस यज्ञ का महत्व और भी अधिक प्रकट होता है। यह मैंने यहाँ पर एक निदर्शन उपस्थित किया है। ऐसे अनेक विषय हैं, जिन पर विचार करने की आवश्यकता है। पौराणिक याज्ञिक, जिनमे यज्ञ की कुछ परम्परा होने का लोगों का भास दिखलाया जाता है, वे भी इस मे कटे ही मार्ग पर चलते हैं। शत कुण्डी, सहस्र कुण्डी आदि का कहीं विधान

(शेष पृष्ठ ११ पर)

आर्यसमाज के नियम

(ले०—श्री सत्यभूषण वनस्थ आचार्य वैदिक भक्ति साधन आश्रम, रोहतक)

आर्य मित्र दिनांक ४-६-५५ के पृष्ठ १२ पर "आर्य समाज के नियम-एक आलोचनात्मक दृष्टि" के शीर्षक का लेख छपा है। मैंने इसे सम्पूर्ण पढा है, मुझे लेखक के विचारों से पूरी२ सहानुभूति है परन्तु लेखक ने नियमों की उपयोगिता का केवल एक ही पहलू वर्णन किया है। नियम हैं, अपने आप में पूर्ण और महर्षि की क्रान्तदर्शिता और विद्वत्ता के पूर्ण परिचायक हैं। काश! हम महर्षि को उनके भावों के अन्दर घुसकर ही समझते। आर्य समाज बाह्य दृष्टि से देखने का आदी बन रहा है। जरूरत है कि इन नियमों के अन्दर आध्यात्मिक गुह्य तत्व और रहस्य को तथा उनके परिणाम को विचार पूर्वक देखें। मैं यहा केवल दो ही नियमों का वर्णन करू गा।

महर्षि ने पहला नियम बनाया—"सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उनका आदि मूल परमेश्वर है। आस्तिकता के भाव पैदा और सुदृढ करने के लिये इससे अधिक बलपूर्वक कौन से शब्द हो सकते हैं। जब यह कह दिया कि जितने भी पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं और जितनी सत्य विद्या हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है - तो जो भी पदार्थ हमारे अथवा हमारी सन्तति -युवक और युवतियो के सामने आयेगा, हमें यदि यह नियम कण्ठस्थ हैं और हमने इसे गाठ बाँध रखा है और यदि मूल परमेश्वर कैसे है यह भाव हमारे अन्दर पैदा हो जाए तो हम बडे जिज्ञासु और तत्व वेत्ता बन सकते हैं।

कल्पना करें हमारे सामने एक आम रखा है आम को देख कर हमें केवल इतना ही ज्ञात हो सकता है कि (१) यह आम है (२) यह चूसने के काम में आता है (३) इसके अदर छिल्का, रस और गुठली है और बस। ज्ञान की यह मात्रा समान रूप से वृद्ध में, बालक में, पठित में अपठित में सब में पाई जायगी। इसका आदि मूल परमेश्वर है, यह कैसे? इस पर कभी किसी ने विचार नहीं किया होगा और यदि किया होगा तो बालकों को पढ़ाते समय परमेश्वर के अस्तित्व की छाप उनके हृदय पटल पर कभी न लगाई होगी। हमारी पाठविधि में तो हम केवल यही देखते सुनते और पढाते हैं, क=कुत्ता, ख=खरगोश, ग=गधा, घ=घोडा-वर्णमाला सिखाने के लिये हम [ ] आदि से अपना सम्बन्ध जोडते है अथवा अन्य प्राकृतिक पदार्थों से जैसे च=चक्की, ल=लट्टू इत्यादि २। परन्तु हमने कभी नही कहा तथा समझा कि 'क' से कौन सा गुण परमात्मा का निकल सकता है और कैसे? अस्तु कहने का तात्पय यह कि महर्षि तो चाहते थे कि आर्य लोग अपने बच्चों को शिक्षा देते समय प्रत्येक पदार्थ का आदि मूल परमेश्वर हैं, ऐसा बच्चों के दिलो पर बिठा दें। पर हम बिठायें कैसे? हम स्वय भी तो आगे नही बढे।

आम को देख कर जब बालक और बूढे का ज्ञान यहा तक ही समाप्त हो जाता है तो वैज्ञानिक का ज्ञान इस से एक पग और आगे बढ़ जायगा वह कहेगा, इस के अन्दर analyse करने (विश्लेषण करने) पर इस में विटामिन पाये जायेगे। यदि हम बालक को कहें कि इस नासिका के साथ लगाये तो वह झट कह देगा कि इसके अन्दर गन्ध है। और आगे बढें रूप भी है पीला है अथवा सब्ज, रस भी है मीठा अथवा खट्टा, स्पर्श भी है सख्त अथवा नरम। इसके शब्द भी है। तो यह पाचों गुण गन्ध, रूप, रस, स्पर्श और शब्द इसके अन्दर कहाँ से आ गये। गन्ध पृथ्वी का गुण है, रूप अग्नि का, रस जल का, स्पर्श वायु का, शब्द आकाश का। तो पाचो भूत पृथिवी, अग्नि, जल, वायु और आकाश इसके अन्दर आ गए। यह प्रकृति की विकृत अवस्था को बतलाते हैं। इसी प्रकार यह पांचो भूत सन्तरे के अन्दर भी हैं अब प्रश्न होता है कि आम आम क्यों है और सन्तरा सन्तरा क्यो है? यह भेद भाव बताने वाली चीज अहकार हैं तो इसके अन्दर अहंकार भी है। अब प्रकृति स्वय तो जड है, स्वयं इसके अन्दर न गति आ सकती है, न गति कर सकती है। प्रकृति तो सत्व, रजस्, तमस् तीन गुणों की

(शेष पृष्ठ १२ पर)

[पृष्ठ १० का शेष]

नहीं मिलता परन्तु वे कराते हैं इनके कुण्डों की विधि भी शुल्वसूत्रों मे मिलती नहीं पायी जाती। वेद मंत्रों के भाव न समझ कर उन्होंने कुण्डों की मेखला की उच्च मेखला पर "अर्घा" के आकार बनाना प्रारंभ कर दिया है। यह गौ के पात्र रखने के स्थान पर निर्मित होता है। तथा योनि के आकार का बताया जाता है। साथ ही उसमें बीच में एक सुपारी भी रख दी जाती है जो उसमें पुरुष सम्बन्धी बीज की प्रतीक है। यह वस्तु वाम-मार्ग से आयी मालूम पड़ती है। यज्ञ में इस का कोई महत्व नहीं। यज्ञ में तो साक्षात् यजमान और उस की पत्नी होते ही हैं; इस अनर्गल वस्तु की वहाँ आवश्यकता ही क्या है? यज्ञ में यह विकार जिस प्रकार पौराणीक यराज्ञिको ने ग्रहण कर लिया है वैसे ही अन्य खराबियाँ भी उसी ने अपना ली हैं। यज्ञ में वेद मंत्रो के सस्वर पाठ की भी यही स्थिति है। औराणीक है या आज कल के वैदिक यज्ञ मे भी उदात्त, अनुदात्त और स्वरित सहित त्रैस्वय पाठ करते हैं—जब कि शास्त्रों में इसका निषेध पाया जाता है। ये लोग हाथ के द्वारा ही इन स्वरों का व्यक्तोकारण अधिकांश में करते हैं। हाथ के द्वारा स्वर व्यक्त करने की प्रथा कात्यायन की यजुः सर्वा० १।१२१ "हस्तेन ते" इस सूत्र से चलाई अथवा प्रचलित हुई मालूम पड़ती है। इस सूत्र पर भाष्य करते हुये उवट लिखता है—अनेन प्रकारेण हस्तेन ते स्वरा: प्रदर्शान्ते तत्रोदात्ते ऊर्ध्वगमनम् हस्तस्य, अनुदात्तेऽधोगमनम् हस्तस्य। एतत्सर्वेषामा चार्याणां मतेन स्थितम् स्वरितेतु विप्रतिपद्यन्ते। तत्प्रकाशनाथामदम—चत्वारस्तियकृस्त-रिता: १।१२२- चत्वारस्ति यग्धस्तं कृत्वा स्वरणीया: पितृदान वद्धस्तं कृत्वेत्मर्णं: अथरिर हाथ से स्वर दिखलाये जाते हैं। उदात्त में हस्त को ऊपर लेजाना होता है और अनुदात्त में नीचे- पट सभी आचार्यों के मत से सिद्ध हो गया है कि स्वरित के चारभेद हाथ को तिर्छाकरके करना चाहिये। अथवा पितृदान के समान हाथ करके करना चाहिये' परन्तु इस के होते हुये भी यहां पर यज्ञ में स्वर पाठ का विधान नहीं इसी प्रथम अध्याय के १३० वें सूत्र में क्रमश: 'एकम्' "सामजपन्यङ्खनर्जम्" आदि के द्वारा यज्ञ में "तानस्वर" एक स्वर हो और वह साम, जप

वैदिक यज्ञ और स्वर पाठ

तथा न्यूङ्खको छोड़कर हो ऐसा स्पष्ट कर दिया गया है इन सूत्रों पर टीकाकार उवट लिखता है—तान-लक्षणमेकं स्वरमाहुर्यज्ञकर्मणी...... यज्ञ कर्मणी एक: स्वरो बोला जाता है। इसी प्रकार कात्यायन श्रौतसूत्र के परिभाषा प्रकरण मे १।८।१६-१७ तक यज्ञ में वेदमंत्रों का स्वर पाठ कैसा हो, यह विचार चलाया है। अन्त में १८ वें "तानो वानित्यत्वात" और १७ वें एक श्रुति दूरात्सम्बुद्धौ यज्ञ कर्मणी सुब्रह्मण्याया साम-जप न्यूङ्ख-यजमान वर्जम" सूत्रों में सिद्धान्त निर्धारित किया है। १८ वें सूत्र में 'तान्' पाठ को यज्ञ मे नित्य बतलाया गया है। १७ वें सूत्र में आचार्य ने अन्य आचार्यों के प्रमाण को उद्धत किया है—ऐसा ज्ञात होता है। यहां पद निश्चित है की 'तान' अथवा एक श्रुति स्वर ही यज्ञकर्म मे मंत्रों का होना चाहिए।

मीमांसा दर्शन ७।२।३० मे भी इस विषय ७ चर्चा की गयी है। यहाँ पर भी अन्तमें निश्चित यही किया गया है की यज्ञ कर्म मे "तान" स्वर से ही वेदमन्त्रो पाठ होना चाहिये। मीमांसा के (५) सूत्रो पर 'शास्त्रदीपिका टीका' लिखने वाले पार्थसारथि मिश्र न एक पग और भी बढ़कर इस सूत्र पर अपने जो उद्गार प्रकट किये हैं वे पौराणिको की इस प्रथा पर पानी फेर देते है। वे लिखते हैं—अन्य चैक श्रुतिजपमन्त्रादि व्यतिरिक्त विषयः। 'यज्ञकर्मण्यपजन्यूङ्खसामसु इतिपाणिनिस्मृतः'एव अपमंत्रा दिव्यतिरिक्तेषु करणमंत्रादिरूपेषु 'अग्नये जुष्टं निर्वपामीत्यादिषु आध्वर्यवयजमानेषु आधुनिकानाम् याज्ञिकानां चातुःस्वर्येण प्रयोगे मूलम् मृग्यम्॥ अर्थात् जप आदि विषयों को छोड़कर यज्ञकर्म मे एक श्रुति ही पढ़ना चाहिये। पाणिनि का स्मृति (अष्टाध्यायी) से ऐसा ही पाया जाता है। ऐसा होने पर भी 'अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि' आदि यजमान और अध्वर्यु सम्बन्धी मन्त्रो में भी आधुनिक याज्ञिको का चतुःस्वर से पाठ करने का मूल ढूंढ़ना चाहिये। यद्यपि प्रातिशाख्य मे यजुः मे प्रावचन स्वर भी माना है और कात्यायन ने १।८।१६ सूत्र में 'यजमानवर्जम्' पद से इस विषय में एक श्रुति का निषेध किया है, और यही शायद इन याज्ञिकों की प्रक्रिया का मूल हो गया हो, परन्तु फिर भी पार्थसारथि की यह भावना स्पष्ट है कि यज्ञ मे त्रैस्वर्य या चातुःस्वर्य पाठ नहीं होना चाहिए वह इन याज्ञिक प्रक्रिया से सहमत नहीं।

आचार्य पाणिनी ने भी अपने अष्टाध्यायी ग्रन्थ मे इस विषय पर नियम बनाये हैं। तथा उनका यह नियम इतना सर्वव्यापक है कि सर्वत्र पाया जाता है। ऊपर के प्रमाणो मे सभी पर इसकी छाप है। पाणिनि का सूत्र उनकी अष्टाध्यायी १।२।३४ में 'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु' इस प्रकार है। यहाँ आचार्य कहते है कि यज्ञ कर्म में एकश्रुति स्वर ही होना चाहिये, जप, न्यूङ्ख और साम को छोड़कर यहां पर आचार्य की भावना स्पष्ट है। परन्तु सारा झगड़ा इस स्वर पाठ का नवीनो ने 'विभाषा छन्दसि' १।२।३६ के सूत्र से चला रखा है। यह सूत्र 'यज्ञकर्म०' सूत्र से एक सूत्र छोड़कर आता है। इस पर भाष्य करते हुये काशिकाकार लिखता है-विभाषाग्रहणं यज्ञकर्मणीत्यस्य-निवृत्यर्थम् -अर्थात् सूत्र में 'विभाषा' का ग्रहण 'यज्ञकर्म' की निवृत्ति के प्रयोजन से है। दीक्षित नागेश आदि ने भी इस सूत्र को 'यज्ञकर्मणि' सूत्र का विकल्प माना है। अतः उन्होंने यह मत बना लिया कि 'यज्ञकर्म' में प्राप्त एकश्रुति का यह विकल्पक सूत्र है और इसके अनुसार यज्ञ मे भी त्रैस्वर्य पाठ हो सकता है परन्तु यह ठीक नहीं। दीक्षित आदि का विचार गलत मालूम पड़ता है। यज्ञकर्मण्यज-पन्यूङ्खसामसु-इस सूत्र मे यज्ञ मे एकश्रुति विधान होने से ही यह सिद्ध है कि वेद मन्त्रों का पाठ काल में 'त्रैस्वर्यपाठ' न प्राप्त हो जावे, इस लिये ही यह सूत्र व्यवस्था करने के लिये रचा गया। यदि 'विभाषा छन्दसि' इस सूत्र मे यज्ञ विषय में एक श्रुति विकल्प से हो यही अभिप्रेत है तो फिर 'यज्ञकर्मणी' आदि सूत्र की रचना करने की ह' सूत्रकार को आवश्यकता नहीं थी। परन्तु इसकी उपादेयता पुनराम् 'सिद्ध है अतः यह निश्चित है कि विभाषा छन्दसि—यज्ञ से अतिरिक्त विषय के लिए प्रवृत्त है और वह कार्य उसका यह है कि वेदमन्त्रो के सामान्योच्चारण काल में विकल्प से एकश्रुति होवे। इससे सामान्योच्चारण काल मे भी वेदमन्त्रों का त्रैस्वर्य उच्चारण और एकश्रुति उच्चारण दोनो ही हो सकता है। दीक्षित आदि ने सूत्रकार के विपरीत भाव लेकर कल्पना खड़ी करदी।

वेदाङ्ग प्रकाश के सौवर प्रकरण और अष्टाध्यायी भाष्य दोनों में ही आचार्य दयानन्द ने इस सूत्र का ऐसा ही अर्थ किया है। अष्टाध्यायी वृत्तिकार श्री पं० जीवाराम जी भी ऐसा ही अर्थ करते है। इन सभी ने यहाँ पर सामान्योच्चारण काल में यह सूत्र दोनो प्रकार के उच्चारण बतलाता है—ऐसा ही माना है। दीक्षित ने जिस प्रकार 'विदाङ्कुर्वन्तु इत्यन्यतर स्याम्' ३।१।४१ सूत्र मे पुरुषवचन की विवक्षा न मानकर सभी पुरुषो में प्रयोग बना डाला है—जो सूत्र के आशय के सर्वथा विरुद्ध है। वैसी ही इस 'विभाषा छन्दसि' में यज्ञकर्म की अनुवृत्ति मानकर निरर्थक कल्पना कर डाली है। वस्तुतः यज्ञ मे एकश्रुति उच्चारण हो ऐसा समस्त आचार्यों को अभिप्रेत है। उन्होंने विपरीत कल्पना कर आचार्यों की व्यवस्था तोड़ी है। जो उचित नहीं। यज्ञ मे एकश्रुति स्वर का ही उच्चारण होना चाहिए और आजकल के याज्ञिकों द्वारा किया जाने वाला यज्ञ मे यह स्वर पाठ ठीक नहीं। कई लोग महाभाष्य के'मिथ्याप्रयुक्तः शब्द स्वरतो वर्णतो वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् वाक्य की शरण लेना चाहेंगे। परन्तु यहाँ पर अर्थविज्ञान के लिए यह बात कही जा रही है। यज्ञ में सस्वर पाठ के सिद्ध करने के लिये नहीं। भाष्यकार का अभिप्राय प्रकृतिस्वर के पाठ से भी सिद्ध हो सकता है। वस्तुतः अर्थ के लिए ही यह वचन मालूम पड़ता है, एकश्रुति पढ़नेमे भी तो गलती नहीं होनी चाहिए। क्योकि उससे अनिष्टापत्ति ही होती है। यजमान कर्म के कुछ मन्त्रो में प्रकृति स्वर कात्यायन श्रौतसूत्र में वर्जित है--इस दृष्टि को मानकर भी 'इन्द्रशत्रु' की समस्या साधी जा सकती है और भाष्यकार का आशय सिद्ध हो सकता है।

वेदों में 'शाश्वत इतिहास' की आलोचना

[पृष्ठ ९ का शेष]

आपकी यह स्थापना कि दुर्योधन के भाइयों में १३,१४ नाम 'दुर' लगा कर बनाये गये हैं। कोई भी मां बाप अपने पुत्रों को 'दुर' लगा कर बुरे नाम से बुलाने की चेष्टा नहीं करेगा इस लिये ये नाम कल्पित हैं। यह स्थापना जहाँ जहाँ धृतराष्ट्र के १०० पुत्रों को कल्पित बतावेगी वहाँ२ वह धृतराष्ट्र भीष्म शान्तनु आदि को कब अकल्पित या सत्य रहने दे सकती है। व्यास, द्वैपायन, तथा सैकड़ो देशो और उनके राजाओं के सहस्रो नाम, सब कल्पना का खण्डहर हो जायगा। इसलिए हम श्री पं० सातवलेकर जी के इस काल्पनिक सिद्धान्त को मानने के लिए कभी तैयार नहीं है।

ये सब नाम बुरा अर्थ बतलाते हैं। यह भी तथ्य नहीं है इनके सदर्थ भी हैं। शुनः शेष का ही लौकिक अर्थ कौन सा अच्छा है। ऋषिका नाम व्याघ्रपात् कैसे अच्छा है। असित, देवेल यही नाम लौकिक दृष्टि से कौन से अच्छे हैं? यह तो देखने वाले की दृष्टि पर निर्भर है। लोग नाम रखते हैं 'कासिम सिंह' ऐसे भी नाम रखते हैं जैसे छाजूराम, घीसालाल, घसीटामल, बुद्धामल क्या इनके पिता माता अपने बच्चों को ऐसे बुरे नामो से कैसे पुकारना पसन्द करते हैं। नाम रखा छीतरमल। भला इसमें क्या अच्छाई है?

यदि नाम आपको बुरा लगता है इसलिए वे नाम कल्पित हैं तो यह युक्ति बहुत ही निबल युक्ति है। जिन नामो को हम बुरे अर्थ वाला मानते हैं तो क्या उनका वही अभिप्राय नाम रखने वाले माता पिता की दृष्टि मे था? या उन नामों के पीछे कोई और अभिप्राय भी उनके माता पिताओं की दृष्टि में था।

यदि और कोई अभिप्राय था तो वह अवश्य ही बुरा अभि प्राय नहीं होगा। वह अवश्य अच्छा अभिप्राय होगा। जैसे नाम रखा दुर्मर्षण इसका अर्थ है उनको कोई बड़ा कठिनाई मे पराजित कर सकता है। 'दुर्योधन' जिसके साथ लड़ना कठिन है। 'दुर्मुख' जिसका मुख देखना भी शत्रु के लिये दुःसह है। दुष्कर्ण जिसका कान से नाम सुनना भी शत्रु को दुष्कर है? 'दुर्मद:' जिसका 'मद' आवेग दुःसह है। इत्यादि।

जिन नामों को श्री प० सातवलेकर जी बुरे अर्थों मे मानते हैं, वेही नाम अच्छी भावना से भी देखे जा सकते हैं। तब वे काल्पनिक न होकर सच्चे नाम हो जावेंगे। ऐसी दशा में वे कविकल्पित नाम नहीं प्रत्युत वास्तविक व्यक्तियों के इतिहास सिद्ध नाम हैं।

रही वेदों के भीतर इतिहास मान लेने की बात। यहां भी श्री पं० सातवलेकर जी का सिद्धान्त बहुत भयानक परिणाम उत्पन्न करने वाला है। वह यह कि वेद में जितनी बातें इतिहास की कथा के समान कहीं हैं वे सब काल्पनिक बातें होंगी। उनके भीतर जो भी अलंकार निकाला जावेगा वह निकालने वाले की बुद्धि के अधीन विद्यमान होगा उसकी अपनी तथ्यता कुछ नहीं रहेगी।

जैसे-इन्द्र वृत्र के सम्बन्ध के वाक्य हैं। 'अहन् अहिम् पर्वते शिश्रियाणम्' ऋग्वेद॥ ३० पर्वत पर वृत्रासुर घेर रहा था। इन्द्र ने उस पर वज्र मारा। 'त्वष्टाने यह वज्र इन्द्र को तैयार करके दिया। प्रथम तो यह अर्थ कुछ ठीक नहीं बैठा। प० जी की शैली के अनुसार इसका अर्थ होगा।

पर्वत पर आश्रयलेते हुए अहि को इन्द्रने मारा त्वष्टाने इस 'इन्द्र' के लिये स्वर्य वज्र गढ़ा यह इतिहास सदृश वाक्य है।

इस वाक्य में पर्वत से पहाड़ लेंगे तो इन्द्र ने पहाड़ पर आश्रय लिये अहि (सांप) को मारा और यह वज्र स्वर्ण [चमकता हुआ] त्वष्टाने गढ़ा। यह अर्थ हुआ। यह क्या शाश्वत इतिहास हुआ। यह तो ऐसी ही कथा हुई जैसे कृष्णने यमुना ह्रद में कालिया सांप को मारा।

इसमे प० जी ने नई का क्या महत्व पाया। तब स्वयं प० जी कह उठेंगे। 'पर्वतः पर्ववान् मेघ' तब पर्वत को छोड़ कर मेघ को पकड़लेंगे। 'अहि'से भी कोई वैसाही घर्षण शील जल पदार्थ लेंगे।

इतनी दूर की कल्पना न करके प्रथम ही प्रत्येक पदार्थ की निरुक्ति करके उसका सत्यार्थ लेना चाहिये। वैसा करने पर वह इतिहास सदृश नहीं रहता है।

हमारे पिछले लेख में पाठकों ने पढ़ा था कि श्री प० सातवलेकर जी जिन मन्त्रो मे भूतकालिक क्रिया पाते है उसमें इतिहास होना मानते हैं। परन्तु अब स्वयं उसका विरोध करने पर उतर आये हैं। आपने वैदिक धर्म के सितम्बर १९५५ के अंक में अग्नि देवताक तीन सूक्तो के मन्त्रो के अर्थ किये है जिनमें दसों अर्थ भूतकालिक तत्कर रहते हुए भी वर्तमान परक अर्थ किया है। हम तो समझते हैं कि अब भी प० जी पर से भूतकाल का भूत वेदविषय में उतरता जा रहा है। इसका निदर्शन अगले लेख में करेंगे।

आर्य समाज के नियम

[पृष्ठ १० का शेष]

साम्य अवस्था का नाम है। इसमें विषमता लानेवाला कोई चेतन पदार्थ अथवा शक्ति होनी चाहिए। चेतन सत्ताएं दो हैं, जीव और परमेश्वर हम देख रहे हैं कि जीव तो आम आदि बना नहीं सकता, तो यह पदार्थ निर्माण करने वाला आदि कारण केवल एक परमेश्वर ही रह जाता है। इस प्रकार यदि हम किसी वस्तु को लें तो उसके अन्दर पांचों भूत और अहंकार विद्यमान पाएगे और उनको गति देने अथवा स्थूल रूप आदि प्रदान करने वाला आदि मूल परमेश्वर को ही कार्य करता देखेंगे।

यह है ऋषि की परम आस्तिकता का ज्वलन्त उदाहरण। ऋषि ने दूरदर्शिता से भांपा कि आस्तिकता तो आर्यों के अन्दर ऐसे घर नहीं बना सकती, जब तक कि वह वेद को न पढ़ें। ऋषि थे कि मानव बड़े बहाने बनाना जानता है अतः इन बातों को [fore see] करते हुए तीसरा नियम बना दिया है—"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना सुनना, सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है"।

जिस समय विद्या का आदि मूल परमेश्वर पहले नियम में बताया था, उसका यथार्थज्ञान कैसे प्राप्त हो, कहा वेद पढ़ो, पढ़ाओ, सुनो सुनाओ! आर्य भाइयों से हम पूछ सकते हैं कि वह अपने गुरु के इस निर्मित नियम का कहां तक पालन करते हैं। अनेको आपत्तियां उठाते हैं (१) वेद कठिन हैं (२) अशुद्ध पढ़े जाएंगे (३) बिना अर्थ जानने के पढ़ना ही फिजूल है। पर वाह रे ऋषि! तूने तो इन सब का मक्कू बांध दिया। नियम स्वयं स्पष्ट है। वेद पढ़ नहीं सकते हो, सुन लो, पढ़ सकते हो, सुना दो। और परम कमा रहे होगे। मैं सत्य कहता हूं कि वेद पढ़ना कोई कठिन कार्य नहीं है, हिंदी का थोड़ा सा ज्ञान रखने वाला भी वेद को पढ़ सकता है और फिर यदि गायत्री आप इसके साथ २ किया जाए तो जहाँ वाणी में मिठास आ जाता है वहां वेद को अनेकों मन्त्रों के अर्थों का प्रकाश स्वयं हो जाता है। हमारे एक मित्र हैं सेठ राधा कृष्ण जी आजकल देरादून मे वास करते हैं। आप संस्कृतज्ञ नहीं, हिंदी पढ़ते लिखते हैं परन्तु अथर्ववेद का उन्हें इतना ज्ञान है कि वह बिना किसी सहायता के मन्त्रों के युक्ति युक्त अर्थ करते हैं और हमारे गुरुकुल कांगड़ी के दर्शनाचार्य तो यहाँ तक कहते हैं कि वेद मन्त्रो के अर्थों को समझने के लिये स्वय वेद की सहायता लीजिये, इस लिये महर्षि ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में स्पष्ट तौर पर आज्ञा की कि वेद का बिना अर्थ पढ़ना उत्तम कार्य है। अर्थ जान कर पढ़ना बहुत उत्तम है और अर्थ जान कर आचरण करना तो बहुत ही उत्तम कार्य हैं। कार्य की श्रेष्ठता में तो कोई संदेह नहीं।

बाकी प्रश्न रहा कि उच्चारण अशुद्ध होगा। मां के गर्भ से निकलते समय ही कोई शुद्ध भाषा नहीं बोलता। अभ्यास से ही भाषा शुद्ध बोली जाती है।

अतः यदि आर्य भाई हील हुज्जत को छोड़ कर प्रमाद और आलस्य का परित्याग करके जिज्ञासु भाव से पुरुषार्थ करें तो जहाँ अपने नाम को सार्थक कर रहे होंगे। वहाँ संसार को एक आदर्श पेश कर रहे होंगे।

प्रभु करें कि हमारे अन्दर महर्षि के प्रति सच्ची श्रद्धा उत्पन्न हो और हम उसके सच्चे अनुयायी बन सकें। यह श्रद्धा कैसे उत्पन्न हो, यह फिर कभी मौज आ गई तो निवेदन करूंगा।

[पृष्ठ ५ का शेष]

की उपेक्षा कर के, अपने लिए विशेषता प्राप्त करें।

यही स्थिति है जो परस्पर मत्सर और वैमनस्य का कारण बन रही है। जब आप किसी दूसरे का अधिकार छीन कर अपने लिए विशेषता की आकांक्षा करेंगे तो जिस का अधिकार हरण किया जावे, उसके लिए उद्विग्न होना अनिवार्य है यही कारण है जिसके कारण इस अभागे प्रान्त का वातावरण बिगड़ रहा है।

इस समय पंजाब में पश्चिम पंजाब से आये बहुत लोग दुःखी हैं। कई ऐसे हैं जो अपनी आजीविका का प्रबन्ध नहीं कर सकते। कई विधवायें और बच्चे बे घर बैठे हैं। अच्छे घरों की स्त्रियाँ माँग कर निर्वाह करने के विवश हो रही हैं। धनोपार्जन के लिए काम करने के लिए तैय्यार हैं, परन्तु काम नहीं मिलता। बहुत से माता पिता अपना सर्वस्व लगा कर बच्चों को शिक्षा देते हैं। इस आशा से कि वह कमा कर अपना परिवार का निर्वाह करेंगे। बच्चे उच्चतम शिक्षा पा कर भी घर बैठ जाते हैं, धन कमाने का कोई साधन नहीं मिलता। जनता की दशा शोचनीय है। देश नेताओं का प्रथम कर्त्तव्य यह है कि लोगों के दुःख की निवृत्ति का उपाय सोचें और अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य को पीड़ित जनता के उद्धार पर लगा दें और दुःखों की बढ़ती हुई लहरको शान्त करें। ऐसी दशा में पदसम्बन्ध और नौकरियों के पीछे जा कर अपनी सामर्थ्य का दुरुपयोग करना सराहनीय नहीं हो सकता।

हमारे कुछ नेता इस कष्ट का दोष सरकार के सर मढ़ कर स्वय उ जिम्मेदारी से मुक्त हो जाते हैं, यह बात माननीय नहीं कि हम लोग इस विषय में कुछ नहीं कर सकते।

जो लोग स्वार्थ वश देश हित को भूल कर अपनी शक्ति को, जनता में फूट और वैमस्य का सचार करने में लगाते हैं, वह देश तथा राष्ट्र की अव नति का हेतु ही बनते हैं।

भाषाधार प्रान्त निर्माण के लिए प्रायः आंध्र का उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है। केन्द्रीय सरकार ने मान लिया कि प्रान्त में एक भाषा होनी चाहिये। ऐसा कहा जाता है। मैं तो समझता हूं कि सरकार ने यदि केवल भाषा के आधार पर प्रान्त बनाया तो गलती की। आंध्र प्रान्त निर्माण के अन्य क्या आधार हैं, मैं नहीं जानता।

विशाल पंजाब के निर्माण की आवश्यकता

परन्तु आँध्र का उदाहरण पंजाब पर लागू नहीं हो सकता। तामिल और तेलगू भाषाओं में इतना भेद है कि वहाँ के लोग एक दूसरे की भाषा समझ नहीं सकते। पंजाब में ऐसी स्थिति नहीं है। पाकिस्तान से आये पंजाबी भाषा बोलने वाले लोग, यहाँ प्रत्येक जिला में बसाये गए। किंतु भाषा के बारे में कठिनाई किसी जिले में प्रतीत नहीं हुई। इसके अतिरिक्त आँध्र की माँग के लिए समस्त जनता सह मत थी। यहाँ बहु सम्मति सकुचित पंजाब के विरुद्ध है। इस विरोध का एक कारण यह है कि इस आन्दोलन के निर्माता महानुभावों ने पंजाबी भाषा और गुरुमुखी लिपि को पर्याय-वाची शब्द बना रक्खा है। इनकी सम्मति में जो भाषा देवनागरी अक्षरों में लिखी जावे वह पंजाबी नहीं, देवनागरी अक्षर उसे भ्रष्ट कर देते हैं। संयुक्त पंजाब की यूनिवर्सिटी लाहौर में थी। उसके नियमानुसार ज्ञान परीक्षा में, जो पंजाबी भाषा की सब कम परीक्षा है, उत्तर गुरुमुखी, हिन्दी तथा फारसी अक्षरों में लिखे जा सकते थे। अब पूर्वी पंजाब की यूनिवर्सिटी में गुरुमुखी के अतिरिक्त फारसी लिपि में तो लिख सकते हैं परन्तु हिन्दी में नहीं। हमारे सिख भाइयों की यह प्रवृत्ति उनके विचारों का प्रतीक है, मैं समझता हूं कि देवना गरी की इस तिरस्कार भावना ने ही इस समाज को इस विषय में विशेष आन्दोलन करने के लिए प्रेरित किया है। अन्यथा हम इसे साम्प्रदायिक प्रश्न बनाने की इच्छा नहीं। मेरा मत तो यह है कि पंजाबी, हिन्दी भाषा की ही एक बोली है, हिन्दी कई स्थानों में बोली जाती है, किंतु शब्द उच्चारण तथा शब्दों के उपयोग से उसके कई रूप बन चुके हैं जिनके नाम भी भिन्न भिन्न हैं—जैसे ब्रज भाषा, पूर्वी अवधी इत्यादि। किंतु यह सब हिंदी की शाखा प्रतिशाखा मानी जाती हैं। मैं पंजाबी को भी वैसे ही समझता हूं। पंजाबी में लगभग ६० प्रतिशत संस्कृत शब्द हैं। इसलिए पंजाबी हिन्दी अक्षरों में ही लिखना ठीक होगा। इसके अतिरिक्त पंजाबी एक साहित्यिक भाषा के रूप में समृद्ध नहीं है, इसको उन्नति करना है। पारिभाषिक शब्द इसमें लेने हैं। अब तक पंजाबी अनपढ़ लोगों की भाषा रही है यदि इसे समृद्ध करना है तो शब्द संस्कृत से ही लेने होंगे। पारिभाषिक तथा अन्य शब्द प्राय तीन भाषाओं से लिए जाते हैं जिन्हें क्लासिक कहा जाता है वह हैं संस्कृत अरबी और लैटिन। यूरोप में जब किसी नए नए शब्द की जरूरत होती है तो वह लैटिन से बनाया जाता है। एशिया के पश्चिम में अरबी प्रधान है। मुसलमानों के राज्य काल में यहां अरबी को ही क्लासिक माना गया। अंग्रेजों के समय उर्दू भाषा अरबी का ही आश्रय लेती रही। गणित भूगोल तथा अन्य वैज्ञानिक विषय जो उर्दू में पढ़ाये जाते थे। इन सब में पारिभाषिक शब्द अरबी से लिए गए। किंतु अब भारत में नवीन शब्दों के लिये संस्कृत का ही आश्रय लेना होगा। संस्कृत के पारि भाषिक शब्द गुरुमुखी लिपि में लिखे ही नहीं जा सकते, तीसरी बात जो विशेष विचारणीय है, वह यह कि पाठशालाओं में बच्चों को दो वर्ण माला सीखने का भार पड़ता है, इस विषय में मैंने अमृतसर के भाषण में वर्णन किया था कि पंजाबी में कई एक शब्द बोल चाल में बिगाड़ कर उच्चारण किये जाते हैं। पंजाबी श्रेणी में इस बात पर बल दिया जाता है कि शब्दों का बिगड़ा हुआ रूप ही स्थिर रहे, वही शब्द हिन्दी श्रेणी में अपने शुद्ध रूप में लिखा और बोला जाता है। परिणाम यह कि बच्चों को एक ही शब्द के पृथक २ रूप याद करने होंगे। जो उसकी शिक्षा-दृष्टि से व्यर्थ परिश्रम है। उनका जो समय अन्य प्रकार से अधिक फलदायक हो सकता है, वह शब्दों की भिन्न भिन्न रूप रचना में व्यर्थ खोया जाता है। उन्नत देश में भाषाओं के शिक्षण पर अपेक्ष बल देने की प्रथा घट रही है और साइंस प्रवृत्ति बढ़ रही हम बने हुए लकीर फकीर अपने बच्चों का समय नष्ट कर रहे हैं। भाषाओं के अति रिक्त लिपियों के भार से बच्चों को दबा रहे हैं।

यह सब यत्न जो स्कूलों में प्रत्येक विद्यार्थी के लिए गुरुमुखी आवश्यक बनाने में लगाया गया इस का वास्तविक उद्देश्य पंजाबी प्रान्त के लिए एक आधार शिला का निर्माण करना था। दुर्भाग्य से पंजाब में अन्ध विश्वासी अनपढ़ जनता बहुत है। उन्हें धर्म के नाम पर कुछ भी कहा जाय, चाहे उससे धर्म का कोई सम्बन्ध है वा नहीं यह विचार नेता लोग अपने ऊपर ले लेते हैं, और जनता को स्वय विचार करने के लिए न कोई अवसर है और न इतनी समझ ही है।

महर्षि दयानन्द जी की अपनी भाषा गुजराती थी तो भी तत्वदर्शी होने के कारण उन्होंने हिन्दी को ही भारत की राष्ट्र भाषा माना और यह अब केन्द्रीय सभा द्वारा निश्चय हो चुका है। ऐसा होते हुए बच्चों को हिन्दी में शिक्षा क्यों न दी जाय। मेरा मत तो यह है कि जो बोलियाँ संस्कृत से निकली हैं और इस लिए हिन्दी के निकट हैं उन्हे शनैः शनैः संशोधन कर के हिन्दी में ही परिणत कर देना चाहिये, जिससे भारत में एक भाषा हो सके।

यह पूर्णतया माना जा चुका है कि भाषा का एक होना राष्ट्र में एकता का एक उत्तम साधन है। इजराइल स्वतंत्र भारत से कुछ बहुत पुराना देश नहीं, वहाँ पर युरोप के भिन्न भिन्न देशों में चिरकाल से रहते थे और उनकी उन्हीं की भाषा बोलते थे। वह लोग जब इजराइल में आये तो उनके लिये आज्ञा हुई कि वह हीब्रू भाषा सीखें। नियम बनाया गया कि जो लोग इजराइल में प्रवेश की तिथि से दो साल के अन्दर हीब्रू नहीं बोलेंगे वह इजराइल के नागरिक नहीं माने जायेंगे। यह दण्ड इस लिये कि एक भाषा होने से ही राष्ट्र बन सकता है यद्यपि वह सब यहूदी धर्म अनुयायी हैं तो धर्म सम्बन्धी विचारों में परिवर्तन होते रहते हैं इसलिए उन्होंने निश्चय किया कि भाषा एक हो जाए। इजराइल के निर्माण के समय हीब्रू दुनिया में कहीं भी बोली नहीं जाती थी। केवल यहूदियों की धर्म पुस्तक तौरेत की ही भाषा थी। इधर हम हैं जिनकी भाषाओं की उत्पत्ति एक ही भाषा से है तो भी उसके बिगड़े हुए रूपों को स्थिर रखने के लिए मरणव्रत धारण करने के लिए तत्पर हैं ताकि भारत एक न हो सके, राष्ट्र पुष्ट न हो। यह किस लिये? ताकि कुछ व्यक्तियों को पदसम्बन्धी में सीट प्राप्त हो सके।

अन्त में हिन्दी राष्ट्र भाषा के रूप में अंगरेजी का स्थान लेगी। हम फिर दूसरे प्रान्तों से पीछे रह जायेंगे इस लिए कि हम पंजाबी सीखते रहे। हमारा प्रयत्न तो यह होना चाहिये कि हम हिन्दी को अपनी मातृभाषा

(शेष अगले पृष्ठ पर)

[पिछले पृष्ठ का शेष]

बा' क' युक्त प्रन्त से बराबरी कर सके।

स्वाभाविकता मानवता विचारो का उदय का उन्नति की ओर होता है जो लोग तत्वदर्शी निष्पक्ष बुद्धि से विचार करते हैं व ना इस प्रान्त को विशाल बनाना चाहते है। हिमाचल प्रदेश जो पजाब का भाग था वह हम से इसलिये जुदा हुआ कि पञ्जाब साम्प्रदायिक भावो से प्रभावित था उस समय मैंने भी कुछ सुना व देखा उससे मालूम हुआ कि पहाड़ी रियासतो के राजा पजाब के तत्कालीन साम्प्रदायिक वातावरण से अलग रहना चाहते थे। यदि पजाब अपने आप को भिन्नता के निकृष्ट विचारो से, मुक्त कर सके तो हिमाचल प्रदेश का पजाब में लौट आना सुगम हो जाए।

देश को जितने अधिक प्रान्तों में विभक्त किया जाय उतनी ही देश की आर्थिक अवस्था गिर जाती है। प्रान्तीय सरकार की आय कम होने से जनता की उन्नति तथा काम पर व्यय के लिये धन नहीं मिलता। अलग एसम्बली, अलग मन्त्री मण्डल, अलग गवर्नर, अलग हाईकोर्ट इस प्रकार सारा धन शासन की सामग्री पर खर्च हो जाता है। अन्तर प्रान्तीय व्यापारो के लिये कई परमिट लेने पड़ते हैं। यदि राजपुरा से यहाँ गेहूं, चावल इत्यादि लाना हो तो सरकार से आज्ञा प्राप्त करें। भारत के अन्य प्रान्तों मे पजाबियो के लिये अप्रिय भाव प्रतीत होता है। यदि हमारा अपना प्रान्त विशाल हो सके तो हम बाहर जाने की आवश्यकता ही न रहे।

आज कल हमारे पड़ोसी अन्य देशो से गठजोड़ कर के हमें दबाना चाहते हैं इस लिये आवश्यकता है कि हम आपा धापी छोड़ कर अपने ओज और बल को बढ़ावें। हम भारत के दरवाजे पर बैठे हैं। हमे द्वारपाल होने की दृष्टि से अपनी शक्ति बढानी है। हमारा ध्येय वृद्धि होना चाहिये। भूगोल की दृष्टि से पटियाले की सयुक्त रियासते पजाब ही है। वहाँ के लोग पजाबी ही कहलाते है। इस प्रदेश के कई भाग पजाब प्रान्त से घिरे हुए हैं। पाकिस्तान के निकटवर्ती होने से पेप्सू और पजाब की रक्षा सम्बन्धी कई समस्याएं एक हैं। इस प्रान्त का अलग रहना युक्ति पूर्ण नहीं, केवल हमारी हठधर्मी और स्वार्थ का ही परिणाम है। इस लिए आवश्यकता है कि पूरे बल से पजाबी सूबेकी मांग मे सिक्ख सूबे की मांग का पूरे बल से विरोध किया जाए। तथा विशाल पजाब की रचना के लिए प्रत्येक सम्भव उपाय पग उठाने का निश्चय किया जाए। इसी में राष्ट्र का और प्रान्त का कल्याण निहित है। X

—

आर्यसमाज क्या है और उसने क्या किया ?

(पृष्ठ ८ का शेष)

३—आर्य " " मौरीशस, पोर्टलुईस
४—आर्य " " फीजी, सुवा
५—आर्य " " दक्षिणी, अमरीका, ब्रिटिश गायना।

नोट—ये पाँच आर्य प्रतिनिधि सभायें विदेशी हैं।

सार्व देशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली इन सबमें समस्त देश व विदेशी की सभाएँ सगठित हैं।

प्रिय पाठकों ! इन थोड़े से शब्दो में आर्य समाज का जो भी विस्तार है, आप लोगो के समक्ष उपस्थित किया है। यदि आप इन कामों पर विचार करेंगे तो आप की सहानुभूति, आर्य समाज की ओर बिना हुये न रहेगी।

क्योंकि आर्य समाज का एक मात्र उद्देश्य वैदिक धर्म दिवाकर समुज्वल द्वारा ससार भर में, अशांति, अविद्या—दुराचार के अध विश्वास को दूर करना है। स्वामी दयानन्द का यही अभिप्राय था, इसीलिए उन्होने अपना सारा तप किया, यश, बल्कि जीवन तक अर्पण कर दिया। ईश्वर उनके तप तथा परिश्रम को सफल करे और उस बाल ब्रह्मचारी की मनो कामना पूरी हो। वेदोंका हो अवैदिक मतो का संहार हो, विद्या का प्रचार हो, सदाचार की वृद्धि हो, आर्य जाति का अभ्युत्थान हो, सत्य का प्रकाश हो, पाखंड का नाश हो। आर्य समाज अमर रहे, ॥ओ३म् शम्॥

—

योग्य वर तथा कन्या की आवश्यकता

२६ वर्षीय अविवाहित, साहित्य रत्न, एम० ए०, I M C (सगत), लेकचरर मासिक आय २००) वाले आर्य युवक के लिये सुन्दर शिक्षित आर्यकन्या की, और २० वर्षीय बी० ए० की छात्रा सुन्दर आर्य कन्या के लिये शिक्षित, कार्यसलग्न आर्यवर की आवश्यकता है। दोनो सक्सेना हे किन्तु जाति पाँति तथा दहेज का कोई प्रश्न नहीं गुणकर्मानुसार आदर्श वैदिक विवाह के लिये इच्छुक हैं।

आर्य वीरेन्द्र शास्त्री एम० ए०
मुहल्ला गाड़ खाना फतहगढ़

आवश्यकता

एक २२ वर्षीय साँवले रंग की अपितु सुन्दर वैश्य कुलोत्पन्न बी० ए० बी० टी० कुमारी के लिए जो १४५) मासिक पर अध्यापिका है उसके लिये ३० वर्ष तक के अविवाहित या विधुर कम से कम १५०) मासिक आय के वर की (जाति बन्धन रहित) आवश्यकता है गुरु० कु० के स्नातक को विशेषता होगा विवाह बहुत अच्छे ढंग से होगा पूर्ण विवरण के साथ पत्र व्यवहार करें।

पोस्ट मास्टर बड़ोत
जि० आलोर

बी०सी०जी० का विरोध

(पृष्ठ २ का शेष)

से मिलने का मौका आया है जो पूछते हैं कि मैं ऐसी चीज का विरोध क्यों करता हूं, जो बीमारी का इलाज करती है! बी.सी.जी. किसी बीमारी को अच्छा नहीं करता। वह इसके लिए शरीर में दाखिल नहीं किया जाता।

नीमहकीमी बुरी चीज है, भले ही वह आधुनिक हो या प्राचीन काल की हो। पुराने समय की नीमहकीमी से निबटना आसान है, लेकिन नये जमाने की नीमहकीमी से निबटना बड़ा कठिन है, क्योंकि वह अपने मतलब के लिये आधुनिक चिकित्सा शास्त्र के शब्दों का उपयोग करती है उसकी कार्य पद्धतियों को अपना लेती है। 'सम्पूर्ण असत्य का मुकाबला किया जा सकता है और उसके साथ खुले तौरपर झगड़ा किया जा सकता है। लेकिन ऐसे असत्य से झगड़ना बड़ा कठिन होता है जो अर्ध सत्य होता है।

ऐसा सिद्धान्त खोजा गया है जो सार्वभौम नहीं है, परन्तु ऐसे मामलों पर उसे लागू करने की इच्छा रखी जाती है, जहाँ वह लागू नहीं हो सकता; और गलती बताई जाती है तो उसका विरोध किया जाता है। बी० सी० जी० रोग मुक्ति के उस सिद्धान्त का ही विस्तार है, जो किसी रोग को पैदा करने वाले कीटाणुओं को ही बाहर से शरीर मे दाखिल करने के पीछे रहता है। इसके पीछे उद्देश्य यह रहता है कि ऐसा करने से मानव-शरीर रोग के कीटाणुओं से अपनी रक्षा करने के लिये उसी तरह उत्तेजित किया जा सकता है, जिस तरह स्वाभाविक रूप में छूत लग जाने पर शरीर करता देखा जाता है। इस सिद्धान्त को क्षय रोग पर लागू करना गलत है, क्योंकि यह जानी हुई बात है कि क्षय की छूत से शरीर में कोई रक्षक पदार्थ उत्पन्न नही होता। लेकिन इस कठोर सत्य और रोग मुक्ति पैदा करने की पाश्चर की पद्धति लागू करने के खिलाफ उठाई जाने वाली अजेय आपत्ति के साथ लड़ने हुए बी० सी० जी० का हिमायती केवल कुतर्क के खिलाफ ठोस बचाव रूपमें जहर दाखिल करने स शरीर मे उत्पन्न होनेवाली ऐलर्जी या अतिशय संवेदन शीलता पर निर्भर करता है और इसके खातिर हमें टीके के अच्छा नतीजों को स्वीकार करने को कहता है। और सवेदन शीलता भी ऐसी जो निश्चित रूप में केवल दो वर्ष तक ही टिकती है। बी०

केवल आंकड़ा सम्बन्धी ही है, जो अच्छे से अच्छे मूल्यांकन करने वालों के अनुसार अनिश्चयात्मक है। केवल टीका लगाये गये लोगों की संख्या, जिसके पीछे रोग मुक्ति सम्बन्धी परिणामों के किसी सुप्रमाणित निरीक्षण का बल नहीं होता, आंकड़ों की सच्ची दलील प्रस्तुत नहीं करती, वह केवल टीका लगाने का काम करने वाली संस्था या संगठन की शक्ति और साधनों का ही सबूत देती है।

मैं नम्र भाव से कहता हूं कि बी० सी० जी० के आन्दोलन के पीछे यही नीमहकीमी है। मैं कोई आधुनिक चिकित्सा शास्त्र का निष्णात नहीं हूं। लेकिन मैं जिन नतीजों पर पहुंचा हूं, उनका आधार पहले से खड़े कर लिये भयों या शंकाओं पर नहीं है, बल्कि सभ्य दुनिया के अत्यन्त विख्यात और निष्णात डाक्टरों की निश्चित घोषणाओं पर है। स्वास्थ्य मत्रालय ने जिन और डाक्टरों को उसका प्रचार करने के लिये भरती किया है, उनमे से बड़े से बड़े डाक्टर भी उन डाक्टरों जैसे प्रख्यात और निष्णात नहीं हैं, जिनके निरीक्षणों और मतों के आधार पर मैं इस नतीजे पर पहुंचा हू कि यह क्षय के जीवन कीटाणुओं का टीका लगाने का सामूहिक आन्दोलन गलत है और बन्द कर दिया जाना चाहिये।

हमारे देश के सारे अखबार एक किसी आदमी की बातों पर ज्यादा जगह देने के लिये बहुत राजी नहीं होते, जो सरकार द्वारा चलाये जानेवाले आन्दोलन का विरोध करता है, हालांकि उन का विषय अधिक से अधिक लोक कल्याण का महत्व रखता है और उनका उद्देश्य किसी सरकारी नीति को आगे बढ़ाने का नहीं बल्कि सत्य तक पहुंचाने का होता है। जब अखबार उदार बन कर लिखित आलोचनाओं या उस विषय की चर्चा करने वाले भाषणों की रिपोर्ट छापने के लिये तैयार होते हैं। तब भी वे उस विषय के सारे निष्णातों के मतों के पूरे उद्धरण छापने मे, आवश्यक होने के कारण, असमर्थ रहते हैं। यह पुस्तिका इस कमी को पूरी करने के लिये प्रकाशित की गई है। यहाँ मैं प्रसिद्ध डाक्टरों और चिकित्सा शास्त्रियों के उन महत्वपूर्ण वक्तव्य इकट्ठे करके पाठकों के सामने रखता हूं। मैं अपनी तरफ से उतनी ही बात कही है जितनी उन उद्धरणों की प्रामाणिकता समझाने के लिये आवश्यक है।

पता:—'आर्यमित्र'
५ मीराबाई मार्ग, लखनऊ
फोन—१९३
तार—'आर्यमित्र'

आर्यमित्र

रजिस्टर्ड नं० ए० ६०
२ सितम्बर, १९५५

भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् की
परीक्षाएं

भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् द्वारा सचालित सिद्धात सरोज सि० रत्न, सि० भास्कर, सि० शास्त्री सि० वाचस्पति परीक्षायें आगामी जनवरी मास में देश विदेशों में होगी। आवेदन पत्रो की तिथि ३१ अक्टूबर १९५५ है। इन परीक्षाओं की विशेषता है—धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय, किसी भी परीक्षा में सीधे बैठने की सुविधा, प्रत्येक परीक्षा का प्रमाण-पत्र उपाधि रूप में मिलता है। आर्य सस्थाओं में शिक्षक उपदेशक, बनने में इनको प्रमाण माना जाता है। इन्ही परीक्षाओं के लिए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने अष्टम आर्य महासम्मेलन मे निश्चय किया है कि वैदिक धर्म प्रचार और उन्नति की दृष्टि से कुमार, कुमारियों युवक-युवतियों को अधिक से अधिक सख्या में परीक्षा में बैठायें।

पाठ विधि तथा आवेदन पत्र मगाने, नवीन केन्द्र स्थापित करने एव अन्य जानकारी के लिए परीक्षा कार्यालय से पत्र व्यवहार करें।

डाक्टर प्रेमदत्त शर्मा शास्त्री B.I.M.S
परीक्षा मन्त्री
भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् अलीगढ़

[illegible]

आज जिनकी जन्म तिथि है!

शान्ति अहिंसा के पुण्य प्रतीक : विश्ववंद्य बापू

वैदिक प्रार्थना

ओ३म् पाक उप बदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा।
उभाकर्ता हिरण्यया॥

हे दिव्य प्रज्ञा शक्ति! तू निभृत स्थान में इन ...ी तथा यज्ञ को सुन्दर रूप देने वाली ... को, जिनके दोनों ज्ञान एवं कर्मरूप साधन ... प्रशस्त [हिरण्य] हैं, उपदेश दे, ...!

इस अंक के आकर्षण

सत्यार्थ प्रकाश पाठ संख्या ३१ (अष्टम समुल्लास)

विश्व की रचना

(ले० श्री सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम. ए. एल. टी. डी. बी. कालिज गोरखपुर)

हम अब तक सृष्टि के विषय में यह जान चुके हैं कि सृष्ट्युत्पत्ति से पूर्व केवल अन्धकार था। क्योंकि उस समय प्रकृति अपनी समानावस्था में अर्थात् सत्व, रज और तम गुणों की साम्यावस्था में थी। परन्तु अब हमें देखना यह है कि प्रकृति अपना जाल किस प्रकार फैलाती है। प्रकृति के जाल का विस्तार ही विश्व की रचना कहलाती है। विश्व की रचना और सृष्टि क्रम का विस्तार से वर्णन सन्ध्या के अघमर्षण मंत्र में किया गया है।

मंत्र है :—

ओ३म् ऋतञ्च सत्यं चाभीद्धात्तपसो ऽध्यजायत।

ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥१॥

समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥२॥

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्।

दिवं च पृथ्वीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥३॥

अर्थात् ऋत अर्थात् प्राकृतिक नियम या प्राकृतिक जगत् तथा सत्य अर्थात् ज्ञान। यहां ऋत और सत्य शब्द भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं। सत्य शब्द उन भौतिक तथा मानसिक सचाइयों के लिए प्रयुक्त हुआ है जिनका ज्ञान हमें पंचेन्द्रिय तथा मन अर्थात् बाह्य और आन्तरिक कारणों द्वारा होता है। दूसरे शब्दों में वैज्ञानिक तथा दार्शनिक सचाइयों का नाम सत्य है। ऋत वह आध्यात्मिक तत्व है जो इन सचाइयों का मूल है। इनको दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं प्राकृतिक संसार (ऋत) और उसका ज्ञान। ये दोनों ज्ञानमय परमात्मा से प्रकट हुए।

उस परमेश्वर से रात्रि भी उत्पन्न होती है। रात्रि का मतलब प्रलय। अर्थात् विषमावस्था से जब प्रकृति साम्यावस्था में आ जाती है तो यह प्रलय कहलाती है। उस समय "तम आसीत्तमसा गूढमग्रे" उस समय केवल तम होता है अन्धकार होता है। और सब संसार अन्धकार में छिपा रहता है। इस अन्धकारावस्था के बाद जल का निर्माण हुआ। 'सलिलं सर्वमाइदम्' सर्वत्र जल ही जल था। या उस (प्रकृति में) यह विश्व लीन था। स्वामी जी महाराज ने भी सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि आकाश रूप सब जगत् तथा तुच्छ अर्थात् अनन्त परमेश्वर के सन्मुख एक देशी आच्छादित था। परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से कारणरूप से कार्यरूप किया।" उससे पूर्व आकाश बना। इस आकाश का कुछ अंश कालान्तर में वाष्प रूप में परिणत था। यह आकाश के बीच में दूर दूर तक जलते हुए वाष्पों के समूह बन गए। यह समूह आजकल वैज्ञानिकों की भाषा में [Nebula] या नभस् (तेजतत्व के बादल) कहे जाते हैं। नभस नाना आकारों के होते हैं। एक नभस के कण आकर्षण के कारण आपस में एक दूसरे के अत्यधिक समीप हो जाते हैं। समय पाकर नभस में कहीं कहीं बड़े बड़े पुंज हो जाते हैं और कहीं कहीं छोटे छोटे। ये बड़े पुंज कुछ समय बाद सूर्य या तारे बन जाते हैं। इसी प्रकार से बना हुआ हमारा यह सूर्य भी है। यह हमारा सूर्य भी आजकल की भाँति उस समय भी जलता हुआ गोला ही था। हुआ क्या कि किसी कारण से सूर्य के छोटे छोटे टुकड़े उससे टूट कर हवा में निकल पड़े पर वे अपने पिता सूर्य से बिल्कुल अलग न हो सके। यह सूर्य भी घूमता हुआ एक गर्म गोला था। यह ऐसे ही घूम रहा था जैसे हम एक लोटे में पानी भर कर यदि उसे घुमावें तो पानी द्रव होते हुए भी घूमता रहेगा। और यह भी हम देखते हैं कि उससे दो चार बूंदें इधर उधर छिट छिट जाती हैं ऐसे ही किसी कारण से सूर्य की कुछ बूंदों से यह पृथ्वी ... ग हुई। पृथ्वी ही

सिद्धान्त-विमर्श

एक वाष्प पुंज था यह पृथ्वी इसी सूर्य से फटकर अलग हुई। सूर्य अब तक गर्म तथा तैजस अवस्था में है परन्तु पृथ्वी ऊपर से ठंडी हो गई है और घन या दृढ़ अवस्था में है। पहले पृथ्वी भी सूर्य की तरह गर्म तथा तैजस अवस्था में थी। पृथ्वी के वायुमण्डल के उद्जन [hydrogen] और ओषजन [oxygen] आपस में मिले और जल बना। आकाश जल से भर गया ! (समुद्रोऽर्णवः)। इस समय आकाश में घने बादल रहते थे। इसलिए न सूर्य दिखाई देता था, न चन्द्र, न तारे। बादल बरसते थे परन्तु पृथ्वी के गर्म होने के कारण ठीक उसी प्रकार जैसे गर्म पत्थर पर पानी डालने से वह ऊपर वाष्प रूप में उड़ जाता है यह पानी भी उड़ जाता था। इस क्रिया द्वारा धीरे धीरे पृथ्वी का तल ठंडा हुआ बादलों का पानी स्थान स्थान पर जमा होने लगा। यही समुद्र हैं।

यहाँ प्रसंग वश यह भी जान लेना चाहिए कि यह पृथ्वी कहाँ से प्रकट हुई हमने ऊपर बताया है कि सूर्यादि जलते हुए वाष्पों के पुंज

क्यों जितने दूसरे भी ग्रह हैं वे सब के सब इसी सूरज से निकले हैं। अब जो ग्रह सीधे सूर्य के चक्कर काट रहे हैं पृथ्वी, मंगल आदि वे तो ग्रह कहे जाते हैं और जो इन ग्रहों के चक्कर काटते हैं वे उपग्रह कहलाते हैं। जैसे चन्द्रमा पृथ्वी का चक्कर काटता है अतः यह पृथ्वी का उपग्रह है। सूर्य उसके ग्रह और उपग्रह मिलकर अपना एक परिवार बनाते हैं यह परिवार ही सौर जगत् है।

हां तो यह पृथ्वी भी सूरज से निकली है। पहले यह बहुत गर्म थी। दूसरे चारों तरफ़ का वायु मंडल भी गर्म था। पर सूर्य से बहुत छोटी होने के कारण यह जल्दी ठंडी होने लगी और ठंडा होने पर जितनी वाष्प हवा में थी वह जल के रूप में पृथ्वी पर गिरी। उस समय बहुत अधिक वर्षा हुई होगी और वही वह पानी है जिससे समुद्रोऽर्णवः समुद्र जल वाला हुआ। तब तक इस पृथ्वी पर जानदार प्राणियों का रहना संभव न था।

जब पृथ्वी प्रकाश और ताप से युक्त थी तब तक तो दिन और रात हो ही नहीं सकते थे। क्योंकि रात का मतलब अन्धेरा और दिन का मतलब है प्रकाश। उस समय तो हमेशा ही दिन रहता था और जब दिन रात की कल्पना नहीं हो सकती तो सप्ताह मास और वर्ष कैसे बनाये जा सकते थे। और ऋतुएं भी उस समय नहीं हो सकती थीं। क्योंकि पृथ्वी अत्यन्त गर्म थी अतः उस समय तो केवल ग्रीष्म ऋतु ही थी। इन ऋतुओं के क्रमशः बदलते हुए अनुभूत ऋतु जब पुनः दर्शन देती तभी तो वर्ष की समाप्ति होती और नये वर्ष का शुभागमन पर उस समय यह कहाँ संभव था। अतः पृथ्वी के ताप और प्रकाश के कम होने पर समुद्र अर्णव हुआ और उसके बाद दिन, रात, और ऋतुएं बनीं। उसके बाद द्युलोक, पृथ्वी लोक, अन्तरिक्ष-लोक को भी परमेश्वर ने उत्पन्न किया। जानदार जीवों का आगमन इसके बाद प्रारंभ हुआ।

यह पृथ्वी लोक, द्युलोक और अन्तरिक्ष लोक क्या है? हम इस पृथ्वी पर रहते हैं। यह पृथ्वी क्षितिज पर मिलती हुई दिखाई देती है। हम अपनी पृथ्वी को सब से नीचे समझते हैं। इसे हम भूलोक, पृथ्वी लोक कहते हैं। आकाश में सूर्य, नक्षत्र, तारे और चाँद दिखाई देते हैं और इनके और पृथ्वी के बीच में खाली आकाश। सूर्य और तारों के स्थान को दिव् या द्युलोक कहा जाता है और उस आकाश को जहां वायु बादल और बिजली के दृश्य दिखाई देते हैं अन्तरिक्ष कहते हैं।

इस प्रकार सूर्य के जलते पुंज या गोले पृथक् होकर जब यह पृथ्वी बनी और धीरे धीरे ठंडी हुई, दिन, रात, ऋतुओं और वर्ष का प्रारंभ हुआ। पृथ्वी लोक, अन्तरिक्ष लोक और द्युलोक का भेद स्पष्ट हुआ तब पृथ्वी पर मनुष्य, पशु, पक्षी वनस्पति आदि का निर्माण हुआ

आर्यसमाज के समस्त पत्रों में सबसे अधिक छपने वाला आर्य प्रतिनिधिसभा उत्तर प्रदेश का मुखपत्र—

लखनऊ—रविवार ७ अक्टूबर तदनुसार शुद्धभाद्रपदशुक्ल १४ सम्वत् २०१७ सौर ५ आश्विन दयानन्दाब्द १३० सृष्टिसम्वत् १९७२९४९०६१

सम्पादकीय

लाज बचाए कौन ?

दो सप्ताह हुए हमने 'एक बार फिर' शीर्षक से जो लेख लिखा था उस पर आर्य जनता ने ध्यान दिया है, और भेजी है सहायता ! पूरनपुर, देहरादून, हरदुआ, गोरखपुर, जौनपुर आदि समाजों ने तुरंत ही धन भेजा। आर्य जगत के प्रसिद्ध विद्वान श्री गंगा प्रसाद जी उपाध्याय ने २५) का मनिआर्डर भेजा और लिखा "मैंने आप का अग्रलेख "एक बार फिर" पढ़ा। दैनिक बंद हो सकने का ख्याल भी मुझे वेदना पहुँचाता है। २५) भेजता हूँ। ईश्वर आर्य जनता को प्रेरणा करे कि वह "दैनिक मित्र" को चिरजीवी रखे। इसी तरह श्री रामबहादुर शुक्ला जी ने भी पूरनपुर से धन भेजते हुये मनिआर्डर कूपन पर लिखा कि 'जैसे भी हो दैनिक बन्द न होने पाये।' यह आर्य समाज की लाज का प्रश्न है, इसकी रक्षा होनी ही चाहिये।

सभी सहयोगी महानुभावों की भावनाओं के प्रति अत्यंत कृतज्ञ होते हुये भी आज प्रश्न यही है कि यह 'लाज बचाये कौन' ?

"आर्य मित्र' दैनिक का प्रश्न स्वतः कोई मूल्य हमारी दृष्टि में नहीं रखता ! हम इसे आर्य समाज के जीवन मरण का प्रश्न समझते हैं। देखना यह है कि हम आर्य समाज की गति को, वैदिक विचारधारा को कैसे प्रसारित कर सकते हैं ! जिस तरह भी, जैसे भी आर्य समाज का बल बढ़े वही हमारा कार्यक्रम होना चाहिये। 'आर्य मित्र दैनिक' साधन है, 'लक्ष्य' नहीं। लक्ष्य है वैदिक भावनाओं का प्रचार, इसके लिये यदि यह उपयोगी है, यह हम समझते हैं तो इससे बढ़कर शर्म की बात आर्य जनता के लिये और क्या हो सकती है कि यह बंद हो जाय

दैनिक मित्र इसलिये नहीं कि वह आर्य समाज का भार बने, वह इसलिये है कि आर्य समाज इससे अपने को ऊंचा अनुभव कर सके, वह गर्व से कह सके कि हमारा अपना एक दैनिक पत्र है, जो हमारी, केवल हमारी बात कहता है। और यदि यह स्थिति उत्पन्न करने की शक्ति हम में नहीं है, हम केवल घिसटना ही जानते हैं तो आर्य मित्र को बोझ बना कर चलना कम से कम हमारी इच्छा के विरुद्ध है।

यह दैनिक के प्रयत्न का आरम्भ कोई पहली बार नहीं हुआ, आर्य जगत के सिद्धहस्त कर्णधारों ने पहले भी इसके लिये यत्न किये हैं। इसका प्रकाशित होना, आर्य जनता का, नेताओं का फिर स्वप्न रहा है, फिर यदि इस बार यह निकल गया, चल रहा है, चल सकता है, तो सहयोग क्यों नहीं ? तब प्रयत्न शून्य क्यों ? यह प्रश्न आज हम एक आर्य होने के नाते उन सबसे पूछते हैं जो कहते थे, कि दैनिक का प्रकाशन होना ही चाहिए, दैनिक निकालना हमारा स्वप्न है।

एक विचित्र स्थिति आज हमारे सामने है, सहारा देने वाला मार्ग दिखाने वाला, और लक्ष्य पर अडिग रहने की प्रेरणा करने वाला भी ईश्वर के अतिरिक्त और कोई दिखाई नहीं पड़ रहा, २२५) रोज का व्यय, एक पैसा आय नहीं, इस स्थिति में ६ मास बीत गये, आगे भी बीतेंगे ही, किंतु क्या इस स्थिति का चलते रहने देना आर्य समाज के लिये गौरव की बात है ?

कानों में तेल डालकर या आंखें बंद कर बैठने से काम नहीं चलेगा, निराशा की भीषण झंझा में भी हताश या पथभ्रष्ट होना हम नहीं जानते, जो विरोध कर रहे हैं और चाहते हैं कि दैनिक बंद हो जाये, उनकी हमें चिंता नहीं और न डर है, हम ईश्वर पर असीम विश्वास रख, ईश्वर के वरद आर्य पुत्रों को, ईश्वर आज्ञा प्रसार के निमित्त 'दैनिकआर्य मित्र' के सफल सचालन के लिये पुकार रहे हैं। हमारी प्रार्थना है कि निराश हताश होकर मझधार में अपनी नाव की पतवार सम्भालिए, अपनी शक्ति लगाइए बल, देखो कहीं आर्य जाति की गौरव प्रतीक यह नौका डूब न जाए।

इस पार या उस पार की स्थिति में आज हम खड़े हैं। चाहते हैं सफलता, चाहे कितना बड़ा बोझ ढोना पड़े। लक्ष्य है वैदिक विचारधारा का प्रसार। जो वैदिक विचारधारा के विरोधी हैं वे रहें, करें विरोध। हमें सिखाया था पाठ, कि सत्य प्रसार के लिए एकाकी चलते रहने पर भी सफलता अवश्य मिलती है। यही शिक्षा आज हमारी प्रेरणा का आधार है।

सोचे आर्य जनता, और निर्णय करे अपना कर्तव्य, वह चाहती क्या है, विजय या हार ? विजय के लिए अभिमान हमारा प्रण है। यह प्रण आर्य समाज के गौरव और बल के लिए है, इसकी पूर्ति हेतु जो भी वह कर सके, करे, यह समय की मांग है।

हमें हर्ष है कि हमारी पहली पुकार शून्य में नहीं टकरायी, और हम यह भी विश्वास रखते हैं कि हमारी आज की प्रार्थना आर्य जनता की गहरी नींद खोल उसे कर्तव्य की ओर सोचने की प्रेरणा करेगी। "आर्यमित्र बन्द हो यह उन सब व्यक्तियों के लिए अत्यन्त अपमान की बात होगी जो चाहते हैं कि आर्य समाज का दैनिक चले। किंतु क्या "आर्य" अपमान सहना पसंद करेंगे।

आर्यमित्र चलेगा, लक्ष्य में सफल होगा, संसार वैदिक विचारधारा अपनाएगा, इस आशा भरी कल्पना को लेकर हमने आर्य जनता को आमन्त्रण दिया है। निमन्त्रण को ठुकराना भविष्य निर्माण के मार्ग में व्यवधान बन खड़ा हो जायेगा, यह सुनिश्चित है, किंतु क्या लाखों दयानंद भक्तों के रहते ऐसा हो पाएगा।

इसलिये अधिक सोचिये नहीं "का वर्षा जब कृषि सुखाने ?" की लोकोक्ति के अनुसार शीघ्र वर्षा का प्रबंध की जिये ताकि आर्य जनता की संकल्प पूर्ति का यह वृक्ष सूखने न पाये। इसे हरा रखने के लिये आपसे आज हमारी मांग है आर्यमित्र के २००० वार्षिक सदस्यों की यदि हमें १५ अक्टूबर तक २००० सदस्य वार्षिक मिल जाएं तो हम आर्यमित्र को उन्नत करने की ओर विशेष ध्यान दे सकते हैं। सदस्यों की सुविधा के लिए साप्ताहिक आर्यमित्र का चन्दा भी घटाकर २४) के स्थान पर २०) कर दिया है। इस ओर यदि जनता ध्यान दे—तो सारी समस्याएँ सुलझ सकती हैं। आर्य जनता की परीक्षा है, क्या

२००० वार्षिक सदस्य बनाने में लगिए

आर्यमित्र की उन्नति पर आर्यसमाज की उन्नति निर्भर है

इस समय हम ऐसे स्थान पर आकर खड़े हैं जहाँ हमें यह निश्चय करना आवश्यक हो गया है कि हम जीवन चाहते हैं या मृत्यु ? ऐसी परीक्षा आर्य समाज की पहली बार नहीं आयी, कई बार वह इन परीक्षाओं में से निकल चुका है।

आज की परीक्षा दैनिक मित्र के सचालन की है। मैंने आर्य जनता के सहयोग और विश्वास बल पर इसे चलाने का सकल्प लिया था। मुझे हर्ष है कि जनता ने मेरे विश्वास को कम नहीं किया। अब थोड़ा सहारा और लगाने से गाड़ी तेजी से चल सकती है।

यह सहारा दान का नहीं वार्षिक सदस्य बनाने का है। तीन माह या ६ माह के सदस्य बनने से हर तीसरे मास सकट आकर खड़ा हो जाता है इसलिए यदि आर्य जनता परिश्रम कर केवल २००० वार्षिक सदस्य बना दे तो पूरे एक वर्ष हम निश्चित होकर चल सकते हैं।

इसलिए मेरा आर्य जनता से यह विनम्र साग्रह निवेदन है कि जैसे भी हो १५ अक्टूबर से पहले-पहले २२) वार्षिक देने वाले २००० सदस्यों का शुल्क कार्यालयमें भिजवा दें। अत्यन्त विश्वास के साथ आर्य जनता से मैं सहयोग की भिक्षा मांगता हूं।

आपका अपना
कालीचरण आर्य
अधिष्ठाता आर्यमित्र लखनऊ

सम्पूर्ण आर्य जगत् केवल २०१० सदस्य भी न दे सका ? क्या ऐसा रहें हम ? आप ही लिखा कीजिए !

१५. महीने की बात, यह हम क्या कह रहे हैं ? जनता यदि "आर्यमित्र" पर ऐसा उठाना चाहे तो एक पैसा चाहे भेज ! उसकी सहायता से दूसरी ओर गहरी हो सकती है। दैनिक एक सप्ताह में यदि १०) भेजने वाले २०० व्यक्ति भी हमें मिल जाते तो फिर हम दिखाते कि दैनिक कैसा चलता है ? यदि हम यह इच्छा रखते हों कि आर्यमित्र दैनिक अन्य दैनिकों से अच्छा निकले तो आप जो भी भेज सकें तो भेजें। इस समय हमारी इच्छा यह है कि सम्पूर्ण आर्य जनता १५ अक्टूबर तक १००० वार्षिक सदस्य बनाने में शक्ति लगा दे।

इस मांग को पूरा किया जा सकता है यदि हम स्वयं निकलें, समाजो में पहुँचे, किन्तु यह भी तो सम्भव नहीं, इसलिए यदि कुछ आर्य भाई १५ दिन का समय प्रान्त में सदस्य बनाने के लिए दे सकें तो हम उन्हें अविलम्ब लखनऊ पहुँचने का निमंत्रण देते हैं।

आर्य पुरुषों, समय को पहचान, आर्य समाज के आदर्शों के प्रसार के लिए अपने गौरव और सबल साधन दैनिक मित्र को झुकने न दो। परमपिता परमात्मा के विश्वास पर संकल्प लो हम किसी भी मूल्य पर दैनिक को बंद न होने देंगे। पूरा बल—यदि आप लगा दें तो फिर देखिए आपके इस एक अंग की सफलता से आर्य समाज के सभी अंगों में कितनी शक्ति आती है।

अत्यन्त नम्रता से, भावना से, कर्तव्य की प्रेरणा से, महान् ऋषि दयानन्द के मार्ग पर संसार को चलाने की कामना से आज यह प्रार्थना आर्य जनता से की है, जनता इसे अपनाएगी, विजय के, जीवन के अभियान के हेतु बढ़ने में सहायक होगी, संकल्प लेगा यह विश्वास हो "आर्य मित्र" का जीवन है। कहीं टूट न जाए…यही सोच रहे हैं हम।

वेद प्रचार विभाग संभले

उत्तर प्रदेश के आर्य जगत् की सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता इस समय यह है कि प्रदेश का वेद प्रचार विभाग सुसंगठित किया जाए ! प्रदेश का बहुत बड़ा संपन्न क्षेत्र और १००० से अधिक समाजें होते हुए भी यह विभाग जितना सुदृढ़ और सक्षम होना चाहिए था, उतना नहीं है। यह हम बिना संकोच के कह सकते हैं।

काम ठीक क्यों नहीं चल रहा, इस विवाद में न पड़ समय की माँग है कि कार्य को सुव्यवस्थित करने का यत्न किया जाए ! आर्यसमाज की स्थापना का लक्ष्य केवल वेद प्रचार है किंतु विश्व के दुर्भाग्य से इस विभाग की ओर से नितांत उदासीनता बरती जा रही है जो किसी भी अवस्था में उचित नहीं। इसलिये आर्य भाइयों; समाजों व अधिकारियों को अविलम्ब, इस ओर ध्यान देकर आगे बढ़ने का यत्न करना चाहिये।

इस विषय में हमारे सुझाव निम्न हैं—

१—उपदेशक विभाग के अधिष्ठाता अपने आधीन एक योग्य वैतनिक या अवैतनिक व्यक्ति को, जो पूरा समय देने वाला हो, सहायक अधिष्ठाता नियुक्त करें।

२—समस्त उपदेशकों, प्रचारकों को मासिक दक्षिणा सभा कार्यालय से देने की व्यवस्था की जाए।

३—अयोग्य उपदेशकों, प्रचारकों को सभा पृथक कर दे।

४—वेद प्रचार के लिए स्थिर निधि स्थापित की जाये, जिसमें कम से कम दो लाख रुपया दिसम्बर सन् १९५५ तक संग्रह करने का निश्चय किया जावे। सभा के माननीय प्रधान व मंत्री महोदय अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों के सहयोग से डेप्टेशन लेकर प्रांत का दौरा करें। प्रत्येक जिले पर राशि बाँट दी जावे और प्रत्येक जिले के आर्य कार्यकर्ता उस धन राशि को जिले से संग्रह करने में लग जायें ! इस प्रकार भेद भाव भूलकर यत्न किया जायगा तो दो लाख की राशि एकत्रित होनी कठिन नहीं है।

५. प्रांत का कोई उत्सव सभा की आज्ञा के बिना न होना चाहिए। उत्सवों पर विद्वानों के भेजने का पूरा प्रबंध भी सभा ही करे। प्रत्येक समाज उत्सव के समय निश्चित धन राशि सभा के वेद प्रचार विभाग को दिया करे। किसी भी उपदेशक प्रचारक का बाहर से धन लेना निषिद्ध घोषित किया जाय।

६. उपदेशक निरंतर बाहर प्रोग्राम पर रहें। केन्द्र स्थान पर रहने के दिन नियत हों। इसके अतिरिक्त वे सभा कार्यालय के निर्देशानुसार निरंतर कार्य करें।

७. उपदेशकों का सम्मान करने की भावना उत्पन्न की जाये। उन्हें जनता गुरू मानें। उनके पहुँचने पर उनका स्वागत सत्कार किया जाये। ताकि अन्यों पर भी विशेष प्रभाव पड़े, साथ ही उपदेशक भी अपने आप को शहीद पँ० लेखराम के चरण चिह्नों पर चलाते हुए सच्ची मिशनरी भावना से कार्य पर लगें।

७. हमारे यहां योग्य उपदेशकों की कमी नहीं। धन का भी अभाव नहीं। योग्य नेता भी उपस्थित हैं किन्तु अभाव है केवल सुनियोजित प्रकार का। न जाने क्यों निराशा और उदासीनता क्यों छायी हुयी है, यह नींद टूटे और सभी मिल कर इस ओर ध्यान दें तो अतिशीघ्र काया पलट हो सकता है !

९—प्रचार केवल उत्सवों पर ही न हो, साधारण दिनों में भी सार्वजनिक स्थानों पर सैद्धांतिक विषयों पर व्याख्यानों का भी प्रबंध किया जाये। साथही साथ ग्राम प्रचार की ओर विशेष ध्यान दिया जाए।

१०—प्रचार के आधुनिकतम साधनों के द्वारा प्रबल अनुशासित सुनियोजित प्रकार से इस समय इस ओर क्रांतिकारी पग उठाने की आवश्यकता है।

ये कुछ सुझाव अत्यंत संक्षेप से हमने प्रस्तुत किए हैं। हम चाहते हैं कि इस विषय पर शीघ्र गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाए ! देरी विनाश का प्रतीक है। संसार मिट रहा है और भोगवादी मार्क्सवादी विचारधारा बल पकड़ती जा रही है। ऐसे में हम महर्षि के भक्त विचार करें और करें कर्तव्य पालन ! हम उत्तर प्रदेश के आर्यों पर अपने प्रदेश में वैदिक विचार धारा प्रसार का दायित्व है। इस दायित्व को भुला किसी भी दृष्टि से तो उचित नहीं।

—————

मानव का जीवन

(ले०—श्री पं० हरिप्रसाद जी शास्त्री, साहित्याचार्य)

अनिर्यन्त्रित उत्तुङ्ग तरंगों में बहने वाली छोटी नौका के समान ही तो है यह मनुष्य का जीवन। जिस परिस्थिति में नाविक हजार प्रयत्न करने पर भी नौका को इच्छानुकूल नहीं चला सकता ठीक वसी ही दशा में यह मानव भी विषम वातावरण से पार न पाकर अपने को प्रत्येक कर्म से विरत कर बैठता है। जो कुछ होना होगा, हो जायगा यह मूल मंत्र ही उसकी सहायता करता है।

विवश होकर तूफान के सहारे बहने को छोड़ दी गई नौका कभी कभी आशा के प्रतिकूल किनारे लगती भी देखी गई। इसी प्रकार कुशल नाविक के होते हुए भी अच्छे मौसम में नावका बीच धारा में बैठ जाना अनेक बार देखा गया है। ये बातें विस्मय जनक होती हुई भी असम्भव नहीं हैं। प्रकृति के नियन्त्रण में सभी कुछ सम्भव है।

मानव अपने को प्राकृतिक नियंत्रित मानने के लिये तैयार नहीं है, वह सर्वतन्त्र स्वतंत्र होकर विचरने का आदी बन गया है, उसे अपने कामों में किसी का हस्तक्षेप सह्य नहीं है, वह स्वयं अपने जैसे दूसरे की नुक्ता चीनी करने में जन समुदाय पर अपनी विद्वत्ता की छाप छोड़ने में नहीं हिचकता पर दूसरों के द्वारा की गई अपनी सत्य परन्तु कटु आलोचना उसे असह्य हो उठती है।

शासक बन कर रहने में ही इसने अद्यावधि आत्मगौरव समझा है शासित होना पसन्द नहीं है। सुख दुख में समत्व का उपदेष्टा यही मानव विपत्ति में स्वयं आत्मघात करते नहीं हिचकता। सर्व भूतों पर आधिपत्य स्थापित करना यह अपना जन्म जात अधिकार समझता है किसी को भी अपना अधिपति मानने के लिये यह स्वप्न में भी तैयार नहीं है। जीवन भर प्रति दिन प्रभात के स्वर्णिम वातावरण में अठखेलियां करना इसे खूब रुचता है परन्तु निमन्त्रण का आह्वान करती हुई संध्या का आदान इसे कभी भी प्रसन्न न कर सका। दूसरों के मस्तिष्क पर अपने विचारों को थापने में यह जहाँ आनन्द का अनुभव करता है वहाँ दूसरों के विचारों का सुनना भी इसे कष्ट कटु प्रतीत होता है।

सत्य या असत्य अपना इसी नियामक प्रकृति के कारण दूसरों पर इसके व्यवहार की क्या प्रतिक्रिया होती है यह इसने आज तक नहीं सोचा। इसने अपने को केवल आज्ञापक समझा है आज्ञा पालन से मानो इसका कुछ लगाव ही नहीं। भूल कर भी यह सोचने की उदारता इसने नहीं दिखाई कि मानव होने के नाते प्रत्येक मनुष्य यदि मेरे ही विचारों का हो जाय तो आज्ञापालक कौन रहेगा।

प्रकृति प्रदत्त बल के सहारे सर्वोच्चता का अद्वितीय प्रतीक यही मानव उस बल के अभाव में कितना क्षुद्र एवं असमर्थ रह जाता है यह सत्य बात इसके मस्तिष्क में क्यों नहीं जगता, जबकि जीवन में अनेक बार इसे इसका अनुभव हो जाता है। अहंमन्यता का दावेदार यह गर्वीला इंसान प्रकृति की एक साधारण सी चपेट में ही विशृंखल हो कर बिखर जाता है और तब मिट्टी के एक जड़ पुतले से अधिक इसका कुछ भी महत्व नहीं रहता। उस दशा में पक्षी अपने चरण एवं चंचु प्रहार से उसे क्षतविक्षत कर दे पशु उसे रौंदता हुआ निकल जाय उसका सजातीय प्राणी घृणा से उस पर थूकता हुआ चले पर उसमें किसी प्रकार के भी प्रतिकार की क्षमता नहीं। प्रकृति विजय की दुर्दमनीय लालसा का केन्द्र आज इस हीन दशा में क्यों है ? अनेक बार यह दृश्य देखकर भी मानव ने कभी इस पर सोचा है कुछ ?

बुद्धि के सहारे संसार में महानता प्राप्त करने वाला यह प्राणी जब स्वयं ही सब कुछ है तब अपने मनोरथों की विफलता का दर्शन करके इस हीनावस्था को क्यों पहुँच जाता है। अपनी उद्दण्ड मनोवृत्ति के कारण सबको पददलित करने का इच्छुक आज क्यों पदाक्रान्त हो रहा है। संसार के प्रत्येक विधान का निर्माता आज क्यों परनिर्मित विधान में जकड़ा पड़ा है ! कल का साधन सम्पन्न आज क्यों साधन विहीन हो गया है ? कभी का गर्वोन्नत मस्तक आज क्यों भूलुण्ठित दिखाई दे रहा है ! शासन सूत्र संभालने वाले हाथों में आज भिक्षा का पात्र क्या दिखाई पड़ रहा है ? जी हुजूर सुनने के आदी कानों को मर्मभेदी कटु आलोचना क्यों सुननी पड़ रही है ? पूज्यों के लिये भी क्यों कटु वाक्यावली

[शेष पृष्ठ १४ पर]

आर्य समाज किधर

आर्यों का दाय भाग

[आचार्य श्री नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ कुलपति महा विद्यालय ज्वालापुर]

'आर्यों' का अर्थ खाली आर्य समाजियों का नहीं अपितु समस्त हिन्दुओं का है। भारत सरकार ने सीधे तो नहीं, अपितु टेढे मार्ग से हिन्दूकोड बिल पास कर लिया। वस्तुत धर्मनिरपेक्ष राज्य को प्रजा के धर्मकर्म में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। यदि वह ऐसा करता है तो उसका लोक प्रतिनिधित्व यथार्थ में, सर्वांश में रहता भी नहीं।

प्रजा के धर्म-कर्म में हस्तक्षेप उस उस धर्म के धर्माचार्य ही कर सकते हैं अथवा उस धर्म को मानने वाला शासक अथवा शासक वर्ग। वे क्यों हस्तक्षेप करें जिनका उन-उन धर्म कर्मों में विश्वास ही नहीं, लोग मुझ से पूछते हैं कि इतने दिन क्यों चुप रहे। मैं चुप नहीं रहा, मैंने कतिपय प्रसिद्ध समाचार पत्रों मे हिन्दूकोड बिल के विरुद्ध लेख भेजे किन्तु उनके सम्पादक कोडबिल के अनुकूल थे इस लिए उन्होंने हमारे लेखों को छापने का सौजन्य नहीं दिखलाया। मैं चाहता था कि मेरे लेख अच्छे पत्रों में छपें जिनकी ग्राहक संख्या अधिक से अधिक हो—'आर्यमित्र' में मैंने लेख इसलिए नहीं प्रकाशित किये कि मैंने प्राय देखा कि आर्यों के नेता हिन्दूकोड बिल की बात सुन सुनकर प्रसन्न हो रहे हैं। हमारे आर्य समाजी भाई किसी बात से इतने प्रसन्न नहीं होते जितने कि विवाह मे स्वेच्छा पूर्वक विवाह करने की छूट को सुनकर—इन्होंने अपना एक 'आर्य विवाह बिल' भी पास करा लिया था, पर वह कुछ चला नहीं। नये हिन्दूकोड बिल में इनकी यह इच्छा अच्छी तरह पूरी हुई। कोई जाति किसी जाति में भी विवाह कर सकता है, विधर्मी के यहाँ भी विवाह कर सकता है और हिन्दु का हिन्दु सोलाह आने हिन्दू भी बना रह सकता है—सो नये हिन्दू कोड बिल से उनकी यह इच्छा, आशातीत रूप में सफल हुई। यह बात तो समझ में आती है कि गुण कर्म स्वभावानुसार विवाह हो, यह बात भी समझ में आती है कि किसी विधर्मी जाति में विवाह सम्बन्ध स्थापित करना हो तो प्रथम उनका शुद्धीकरण हो। पर यह कहाँ का सिद्धान्त कि न गुण कर्म स्वभाव की ही परवाह हो, और न शुद्धीकरण की हो। और चल उच्छृंखलता पूर्वक, स्वच्छन्दता पूर्वक, मनमाने तरीके से विवाह करने। यह तो न शास्त्र पद्धति है और न ही आर्यपद्धति है, इस तरह जात पाँत टूटेगी नहीं,

अपितु वर्ण संकरता बढ़ेगी और समाज हीन, छिन्न विच्छिन्न हो जायगा और होता जा रहा है, इनके गुण—कर्म—स्वभावों के मिलाने के विधि विधान भी निराले हैं। जिस किसी ने कहा गुणकर्म स्वभाव मिल गये, बस हो गया। कोई ऐसी सर्वमान्य विद्वत्परिषद् नहीं है जो धर्म शास्त्रानुकूल निर्णय दे और उसका सब कोई माने और आचरण करने लगे। ऊपर वैदिक धर्मियों का शासन भी नहीं है जिसका दण्ड हमको मर्यादा में चलाता रहे।

प्रश्न यह है कि क्या हिन्दू कोड बिल के बिना इस प्रकार के अन्तर्जातीय विवाह नहीं हो रहे थे? क्या लोग स्वेच्छा से ही ऐसे अन्तर्जातीय विवाह नहीं करते थे? क्या नहीं?

बात यह थी कि ऐसे अन्तर्जातीय विवाह हो सकते थे होते थे, और आये दिन हो रहे हैं पर हिन्दू धर्म शास्त्र के अनुसार, जिसको हमारी पुरानी ब्रिटिश सरकार भी मानती रही। ऐसे अन्तर्जातीय विवाह करने वालों की सतति को दाय भाग नहीं मिल रहा था। इसीलिए स्वराज्य के होते ही, स्वतन्त्रता के मिलते ही, मौका देखते ही, लोक प्रतिनिधियों ने (जो प्राय आङ्गल—शिक्षा में ही लालित-पोषित—पालित—परिवर्धित थे और जिनका मस्तिष्क प्राय पाश्चात्य आचार, विचार व्यवहार तथा प्रचार से सर्वथा प्रभावित हो गया था) इस प्रकार का हिन्दूकोड विवाह बिल पास करा लिया—जनता ने बहुत विरोध किया पर सीधे अपने विचारों जैसा बिल न ला कर टेढे मार्ग से बिल लाया गया। हमारे लोक प्रतिनिधियों को इस प्रकार धर्म में हस्तक्षेप करने का

अधिकार नहीं था—यही प्रश्न को जनता के सम्मुख रखकर चुने जाते, और ऐसों का वह बहुमत होता तो निसंशय वे ऐसा करने के अधिकारी बन सकते थे पर गये काग्रेस या अन्य पार्टियों के टिकटों पर राज्य करने के लिये राज्यतन्त्र सम्भालने के लिए और ले बैठे (धर्म निरपेक्ष कहलाते हुए भी) हिन्दुधर्म सुधार की बातें। हाँ कानून सब के लिये एक से बनते तो भी कोई बात थी। बेचारे हिन्दुओं को सीधा साधा देख कर पड़े इन्हीं के पीछे। मुसलमानों की तरफ देखने की इनकी हिम्मत कहाँ थी।

अस्तु हिन्दुओं में आङ्गल शिक्षा दीक्षा लिए हुए सैंकड़ों, सहस्रों ऐसे हैं जो हिन्दुओं में जन्म लिए हुए हैं पर पश्चात्य विचारों से प्रभावित होने के कारण हिन्दुधर्म शास्त्रों के नियम, बन्धन नहीं मानना चाहते हैं। वैसे हिन्दुओं में ही रहना चाहते हैं—इन्हीं लोगों के कारण वर्तमान स्वरूप का हिन्दूकोड बिल बना और ऐसे लोगों को छुट्टी सी ही मिली कि हिन्दुओं में ही रहो, हिन्दुओं की बहुत भी बात मानो भी नहीं, समाज बन्धन ढीले भी कर दो। ऐसा बिल बनने से हिन्दुओं का विनाश हो जायगा ऐसी बात तो नहीं है। हाँ विच्छृंखलता में छूट हो गई, अवश्य।

वर्तमान प्रजातन्त्र की चुनाव पद्धति के कारण जो जहाँ लड़ा हुआ है वहीं खड़ा होगया है। जो जहाँ पड़ा हुआ है वहीं पड़ा हुआ है है। हिन्दुओं के धर्म के विपरीत आचरण और विश्वास रखने वाले भी हिन्दु ही रहेंगे हिन्दु धर्म को छोड़ेंगे भी नहीं समाज बन्धनों को मानेंगे भी नहीं, फिर भी हिन्दुओं के हिन्दू ही बने रहेंगे। यही बात मुसलमान, ईसाई, सिक्ख जैन आदि की है। क्योंकि हिन्दुओं में रहते हुए हिन्दुओं के वोट मिलेंगे मुसलमान रहते हुए मुसलमान के वोट मिलेंगे, इसी तरह अन्य धर्मों में विश्राम करने वालों की बात है आश्चर्य, परन्तु स्वर्ग के ... आग बन रहा है। जब चुनाव आते हैं तब उम्मीदवार देखेगा कि वोटरों में उसके जात बिरादरी के लोग अधिक संख्या में किधर किस चुनाव क्षेत्र में अधिक हैं। उसे विश्वास है कि जात बिरादरी वाले उसे वोट देंगे ही, देखा देखी और भी देंगे ही। यही बात सर्वत्र देख रहे हैं। काग्रेस भी इस विषय में सर्वथा निर्दोष नहीं कही जा सकती। इधर जाट अधिक हैं, जाट को खड़ा करो। इधर ठाकुर अधिक हैं, राजपूत को खड़ा करो। इधर वैश्य हैं, वैश्य को खड़ा करो। इधर अहीर अधिक हैं, अहीर को खड़ा करो। इस प्रकार का भीतरी प्रच्छन्न उपद्रव काग्रेस चुनाव में भी देखा गया है। इस लिए कट्टर हिन्दुओं में भी यह बात आगयी है कि वोट देना तो हिन्दुमहासभा के उम्मीदवार को—यह और बात है कि हिन्दुमहासभा जनसंघ, रामराज्य परिषद् की बात चलने नहीं पाती। पाठक नाराज होंगे कि यह क्या पुराण ले बैठे हो। वस्तुत मैं वस्तुस्थिति का प्रदर्शन करा रहा हूँ—इसलिए भी कि आगे जो मैं बात लिखने लगा हूँ वह पाठकों की समझ में आ जाय।

मैं लिख रहा हूँ आर्यों अथवा हिन्दुओं के दायभाग के विषय में। हमारी सामाजिक धर्म पद्धति जिस प्रकार की चली आ रही हैं उनमें पुत्र

(शेष पृष्ठ १९ पर)

ईसाई उत्तर दें

(ले० श्री ललताप्रसाद जी आर्योपदेशक डी० ए० वी० कालेज कानपुर)

आज से एक वर्ष पूर्व लखनऊ से "आर्यमित्र" का ईसाई मत समीक्षा अंक श्री भारतेन्द्र नाथ जी के सम्पादकत्व में निकल चुका है। उसमें मैंने समस्त विश्व के पादरियों के सम्मुख १५ प्रश्न किये थे। परन्तु अत्यन्त खेद से कहना पड़ता है कि किसी भी ईसाई पादरी ने उन प्रश्नों के उत्तर देने का साहस नहीं किया। हाँलाकि मैंने स्वयं लखनऊ तथा कानपुर के बड़े-बड़े ईसाई पादरियों को ईसाई मत समीक्षांक की प्रतियाँ प्रयाप्त मात्रा में भेंट की थी। श्री वी० एम० चाद पादरी को जो कि दुआ का घर लालबाग लखनऊ में रहते हैं मम-चाक और ईसाईमत पर अन्य ट्रैक्ट मैंने दिया और चैलेंज किया पर शास्त्रार्थ से इन्कार कर दिया। यहीं तक नहीं बल्कि आर्य उपप्रतिनिधि सभा लखनऊ के योग्य प्रचार मन्त्री श्री रामेश्वर सहाय जी ने भी शास्त्रार्थ के लिए ललकारा था तब भी पादरी चांद और अन्य पादरी आर्य समाज के सम्मुख नहीं आये। अब मैं "आर्यमित्र;" लखनऊ द्वारा ईसाई जगत को खुली चुनौती देता हुआ कुछ प्रश्न और करता हूँ देखें कौन पादरी "बाइबिल की रक्षा हित लेखनी उठाता है प्रश्न निम्नलिखित है।

१—परमात्मा को आप लोग कैसा मानते हैं? वह ससीम है या असीम? इसलिये तसलीस के क्या मानें हैं? इसका जन्म दाता 'कौन है।

२—पिता पुत्र पवित्रात्मा यह वास्तव में तीन हैं या एक? यदि तीन हैं तो ईसाईयों के ईश्वर तीन हो जाते हैं। यदि एक है और फिर तीन हैं तो ईसाइयों के ईश्वर का विभाजन हो जाता है। फिर वह पिता पुत्र पवित्रात्मा द्रव्य हैं या गुण?

३—ईसाई मसीह ने उससे कहा तू मुझे उत्तम क्यों कहता है कोई उत्तम नहीं है अर्थात ईश्वर" (देखि लूक की इंजील पर्व १८ आयत ११)

प्रश्न—जब ईसा मसीह ही एक अद्वितीय ईश्वर कहता है तो ईसाइयों में बाप बेटा रुहुल कुदूस यानी पिता पुत्र पवित्रात्मा, यह तीनों कहां से बना दिये? पादरियों! यदि लेखनी में बल व साहस हो तो इस विषय पर प्रकाश डालो कि तीन एक और एक तीन कैसे हो सकते हैं। इसमें क्या फिलासफी और मान्तक है।

४—ईश्वर तो शरीर धारी हैं नहीं फिर मरियम को ईश्वर की स्त्री मानना अथवा मरियम के लड़के "ईसा' को ईश्वर का पुत्र मानना कैसे बन सकता है।

५—यदि सभी पुरुष ईश्वर के पुत्र हैं तो सभी स्त्रियाँ ईश्वर की पुत्री हैं इस अर्थ में मरियम भी ईश्वर की पुत्री थी, फिर मरियम का लड़का ईसा मसीह ईश्वर का इकलौता पुत्र कैसे हुआ?

६—यदि ईश्वर को अपना इकलौता पुत्र विचित्र रीति से उत्पन्न करना था तो माता, पिता दोनों के बिना करता? ईसाई मानते हैं कि आदम माता, पिता, के बिना उत्पन्न हुये थे वह ईश्वर के इकलौते पुत्र क्यों नहीं? और मसीह को उनपर बड़ाई क्यों? क्यों कि बिना बाप के पैदा होने वाले पर बिना माता पिता के पैदा होने वाला जिसको खास तौर से ईश्वर ने बनाया हो और प्रत्यक्ष में बात की ही वह बड़ा क्यों नहीं।

७—यदि ईसा का आत्मा ईश्वर का पुत्र था क्यों कि ईश्वर ने उसको बनाया तो इस अर्थ में उनके मत के अनुसार सभी आत्मा ईश्वर के पुत्र हैं। इसमें विशेषता क्या है?

८—यदि ईसा अपने शरीर के साथ ईश्वर का पुत्र हुआ तो मृत्यु के पश्चात् ईसा ईश्वर का पुत्र रह गया कि नहीं? क्यों कि शरीर तो यहीं रह गया। पादरियों समझ बूझ कर ही उत्तर देना?

९—यदि कहो ईसा कुआँरी के पेट से पैदा होने के कारण ईश्वर का पुत्र हुआ तो इसके लिए "बाइबिल" से कोई उचित प्रमाण हो? क्यों कि कुआंरी के पेट से पैदा होना असम्भव है! यह सिद्धान्त इतना कच्चा है कि कोई भी बुद्धिमान् इसको मान नहीं सकता है। बताओ तो पादरियों। इस पर तुम लोगों की क्या सम्मति है?

१०—ईसा का जब सूली हुई वह मरे कि नहीं? यदि मरे तो उनको याद करना बेकार है और यदि है तो कहाँ हैं? उनको प्रत्यक्ष कराइये, यदि दोनों अवस्था में नहीं, तो उनकी उपासना ढोंग मात्र है, बाइबिल से ही उत्तर दो?

११—यदि ईसा मसीह अगली पिछली सारी बातों को जानता था तो यहूदाइस्करोती जो उसका प्रधान शिष्य था जिसने ३०) के लालच में ईसा मसीह को गिरफ्तार कराया उससे वह क्यों अज्ञात अवस्था में रहा? और धोखे में उसने पकड़ा दिया यदि मसीह धोखे में आ सकता है तो ऐसे पर ईमान लावें?

१२—यदि ईसा मसीह ने अन्धों को आँखें दीं; लंगड़ों को पैर दिये, मुर्दों को जिन्दा किया, तो ईसाईयों में अंधे लूले लंगड़े, अपाहिज क्यों होते हैं? क्या ईसाइयों से उनका कोई सम्बंध नहीं?

१३—क्या विश्व के पोप, पादरी, ईसाई नीचे लिखी इबारत को समझाने की कृपा करेंगे। "कुरन्थियून पहला पर्व ७ आयत ३६ व ३७ प्रकाशित इलाहाबाद सन् १८२७ ई० पृष्ठ २०१ हिन्दी अनुवाद में है:—"अगर कोई समझे कि मैं अपनी कन्या से अशुभ कार्य करता चाहता हूँ जो वह सयानी होवे और ऐसा होना आवश्यक है तो वह जो चाहता है सो करे उसे कुछ पाप नहीं।,'

नोट—इसका अभिप्राय मेरी समझ में अभी तक नहीं आया और इसी प्रश्न के स्वर्गीय धर्मवीर पं० लेखराम जी आर्य मुसाफिर ने कुल्लियात आर्य मुसाफिर में किया है। इसको किसी ईसाई महानुभाव ने आज तक नहीं समझाया यही प्रश्न संसार भर के पादरियों से मेरा है देखें ईसाई विद्वान इन प्रश्नों का क्या उत्तर देते हैं? ओ३म् शम्॥

सरकार षड़यंत्र में सहायक क्यों?

लेखक—श्री ओमप्रकाश जी पुरुषार्थी प्रधान सेनापति अखिल भारतवर्षीय आर्यवीरदल

नवभारत टाइम्स दिनांक २४।९।५५ के समाचारानुसार ज्ञात हुआ है कि यमुना नदी के किनारे गीताभवन के पास अठारह वर्षीय बाल सन्यासी रविवार २५ सितम्बर से आठ दिन की समाधि ले रहे हैं और उसके बाद वह पंद्रह मास तक समाधिस्थ रहने का विचार कर रहे हैं। साथ ही यह जानकर आश्चर्य हुआ कि अपढ़ तथा अंधविश्वासी जनता को धोखा देकर उनके धन का अपहरण करने की इस चाल में सरकार का भी इन्हें समर्थन प्राप्त हो गया है और राज्य के अधिकारियों ने समाधि के स्थान पर प्रबंध करने के निमित्त पुलिस का प्रबन्ध कर दिया है।

अबोध तथा सीधी जनता से धन लूटने का यह षडयन्त्र नया नहीं है अपितु अपढ़ तथा चालाक सन्यासियों के द्वारा समय-समय पर यह रचा जाता रहा है और जनता लुट जाने के पश्चात् पछताती रह जाती है। पठित जनता भली भाँति जानती है कि योग तथा समाधि से इस प्रकार के ढोंग का कोई सम्बन्ध नहीं है और नाहीं शास्त्रीय समाधि का यह अर्थ है कि जिसके नाम से यह जाल रचा जा रहा है। आत्म संयम तथा मन की एकाग्रता की चरम सीमा को ही ध्यान तथा समाधि का नाम दिया जा सकता है। प्राण वायु का इस अवस्था में सर्वथा सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है यह बात कदापि नहीं है। इस अवस्था को वही व्यक्ति प्राप्त कर सकता है कि जिसने वेद शास्त्रों के अध्ययन तथा मनन द्वारा ईश्वर जीव तथा प्रकृति के वास्तविक स्वरूप को जान लिया है और ईश्वर प्राप्ति की जिसके हृदय में एक तड़प उत्पन्न हो गई है।

परन्तु इस ड्रामे के करने वालों को वेद शास्त्रों का ज्ञान तो दूर रहा अपितु यम नियमों के शब्दार्थ का भी साधारण ज्ञान नहीं होता है। परन्तु अपढ़ जनता इन चालाक बाजीगरों को महान् योगी समझ इनके चरणों पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देती है।

अपने कथन को सिद्ध के लिये मैं श्री बाल सन्यासी जी को चैलेंज देता हूँ कि वह आठ दिन या १५ मास तक प्राण वायु के बिना रहने का जो दावा कर रहे हैं वह पास में ही बह रही यमुना नदी में यदि १ घण्टा की भी समाधि लेकर दिखादें तो मैं उनकी नवोंकि मैं कुछ तथ्य समझूँगा। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि श्री बाल सन्यासी जी १५ मिनट भी हवा के बिना रह सकेंगे। यदि उनमें साहस है और एक कथन में सत्यता है तो वह वर्तमान समाधि के पश्चात् अगली १५ मास की समाधि लगाने से पूर्व यमुना के पानी में अपनी समाधि का चमत्कार दिखलाय। जहाँ कि उनके ढोंग की थोड़ी देर में ही पोल खुल जायगी। यदि स्वामी जी अपने ढोंग के खुल जाने के भय से ऐसा करने का साहस न करें तो समझदार जनता का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह श्री सन्यासी जी को ऐसा करने पर विवश करे और भोली जनता को के इस जाल में फंसने से बचायें। साथ ही मैं सरकार व अधिकारियों से प्रार्थना करता हूँ कि विज्ञान के इस युग में उन्हें ऐसे षड्यंत्रों से जनता की रक्षा करनी चाहिये न कि उल्टे इसमें वह सहायक बनें। इस प्रकार के षड्यंत्रों से धन कमाना तो उसे सर्वथा ही वर्जित कर देना चाहिये क्यों कि यह खेल तमाशा न होकर स्पष्ट धोखा (चार सौ बीसी) है।

आवश्यकता

एक उच्च कुल उत्पन्न ३५ वर्षीय अक्षतयोनि स्वस्थ देवी के लिये एक जीवन साथी की आवश्यकता है जिसकी आयु ५० वर्ष के अन्दर हो। जाति पात का कोई विचार नहीं है। वैदिक-धर्मी को विशेषता दी जायगी। इच्छुक इस पते पर पत्र व्यवहार करें ४५ A.

श्री बसा राम अकोदिया

गुरुकुल कांगड़ी

हरिद्वार (सहारनपुर)

'मेरे व्यक्तिगत विचार'

[लेखक पं० श्री गंगाप्रसाद जी उपाध्याय]

इस लेखमाला में मैं उन विचारों को जनता के समक्ष रखना चाहता हूं जिनको मैं आर्य समाज के हित की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक और कल्याणप्रद समझता हूं, मैं इनको 'व्यक्तिगत' इसलिए कहता हूं कि इनके लिए पूरा उत्तरदायित्व मेरे ऊपर है, सम्भव है इनमें से अनेकों के विषय में आर्य समाज की प्रतिनिधि सभाओं या किसी समाज की वैधानिक स्वीकृति न हो। और यह भी सम्भव है कि इनमें कतिपय के विषय में आर्यजनता के विचार अधिकतर प्रतिकूल हों। मेरे अध्ययन काल में बहुत सी ऐसी बातें दृष्टिगत हुई हैं जो ऋषि दयानन्द के विचारों के तो अनुकूल हैं परन्तु किसी कारण आर्य जनता ने भिन्न धारणा में बना रक्खी हैं और वही आर्य समाज के विचार समझे जाने लगे हैं, कुछ ऐसी भी बातें हैं जिनके अनुकूल या प्रतिकूल आर्य समाज की विधान सभाओं ने अपना निश्चित मत प्रकट नहीं किया परन्तु जनता में म किसी न एकबार एक प्रकार के विचार प्रकट कर दिये और वह सर्वसाधारण में प्रचलित हो गये और अब वही आर्य समाज का मत समझा जाने लगा। यदि कोई अन्यथा कहे तो वह विरोधी समझा जाय। दूसरी धार्मिक संस्थाओं में भी यह परिपाटी रही है। उदाहरण के लिए यदि ईसाई और मुसलमान धर्मों के आरंभिक और मौलिक तत्वों की खोज की जाय तो कोई ऐसी बात न मिलेगी कि आवागमन का मानना खास ईसाई या मुसलमान धर्मों का विरोधी समझा जाय। परन्तु कभी किसी बड़े धर्माध्यक्ष ने आवागमन के विरुद्ध कह दिया, अब इन धर्मों का मूलभूत सिद्धांत यह है कि आवागमन नहीं होता और इन धर्मों के पोषक आवागमन के विरुद्ध युक्तियां गढ़ते और शास्त्रार्थ करते हैं। बहुत से ईसाई थियोसाफीकल सोसायटी के प्रभाव में आकर पुनर्जन्म को मानने लगे हैं और बहुतों ने यह सिद्ध किया है कि बायबिल में पुनर्जन्म के पोषण में कुछ प्रमाण मिलते हैं। परन्तु ऐसे ईसाइयों को धर्म विरुद्ध या काफिर समझा जाता है। इसी प्रकार आर्य समाज के इतिहास में यदि उसी प्रकार की घटनायें होने लगें तो कोई अस्वाभाविक बात नहीं है, यह मानवमात्र की दुर्बलता है। अब मैं अपने इन विचारों के लिए किसी अन्य को उत्तरदाता नहीं ठहराता। यदि इन विचारों में कुछ माह्य हो तो ग्रहण किया जाय यदि त्याज्य हो तो त्याग देना ही ठीक है। परन्तु मैं अपना और प्रत्येक आर्य का यह कर्तव्य समझता हूं कि खुले दिल और खुले दिमाग से उदारतापूर्वक प्रत्येक विषय पर विचार किया जाय। अरबी की एक उक्ति है कि कौन कहता है कि उसकी चिंता मत कर। विचार इस बात का कर कि क्या कहा जा रहा है (हजूर, इला मा काल। ला तुजूर इला मन काल) मेरी समझ में स्वामी दयानन्द के उपदेशों का भी यही सार है, वह अनेक स्थानों पर कहते हैं कि 'पक्षपात' छोड़ कर विचार करो। 'पक्षपात' का क्या अर्थ है? केवल यही कि जब कोई नई बात आपके विचार के लिए समक्ष आवे तो यह मत सोचिये कि किस बड़े आदमी ने कहा है, सोचिये यह कि युक्ति संगत है या नहीं। चाहे वह आपके पहले विचारों को ठेस दा क्यों न लगती हो, स्वामी दयानन्द जो बात अपने प्राचीन ऋषि मुनियों या पूर्वजों के लिए कहते आप के पुराने विचारों या कुछ पुराने विद्वानों के विचारों के प्रतिकूल पड़ते हैं। इतना सोचिये कि यह एक विचार सामने आया है इसको खुले दिल और खुले दिमाग से सोचना चाहिये।

मैं समझता हूं कि आर्य समाज इसी दृष्टिकोण को लेकर जनता के समक्ष आया था, और वह दूसरे धर्मावलम्बियों की बात की पुष्टि करने में स्वतन्त्रता से विचार नहीं करते। मुसलमानों का दृष्टिकोण यह था कि जो सन्देह करे वह काफर है। हमारे उपदेशक इस धारणा को बुरा और अहितकर सिद्ध करते थे। अब आर्य समाज को काम करते ८० वर्ष हो गये। जो सड़क हमने बनाई थी वह पक्की हो गई। अब हमारा दृष्टिकोण भी वैसा ही बन गया है और यदि

> उपाध्यायजी आर्य जगत के सर्व मान्य विद्वान हैं। उनका अध्ययन उनकी विद्वत्ता, उनकी प्रतिभा विवाद से परे है। उन्होंने यह लेख माला अपने अनुभव और विचार प्रकट करने हेतु लिखी है, हो सकता है कि बहुतों को इस विचारधारा से मतभेद हो, किंतु फिर भी हम सभी से निष्पक्ष होकर इस लेखमाला के विचारों पर विचार करने का आग्रह करते हैं।
>
> —सम्पादक

है वह अपने लिए भी कहते हैं, अपने विषय में मैं इतना कहदूं कि मैं होश सम्भालते ही आर्य समाजी हो गया था। उस बात को आज ५८ वर्ष होते हैं। मैंने धार्मिक या सामाजिक जो सिद्धांत बनाये उसका शत प्रतिशत श्रेय ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का ही है। और जब मुझे कोई नया विचार सोचना पड़ता है तो मैं ऋषि वर के ग्रन्थों की ही छानबीन करता हूं और उनकी अपेक्षा से मैं दूसरों के ग्रन्थों को भी पढ़ता हूं। अभी चार पाँच दिन हुये कानपुर में एक विद्वान से 'दयानन्द फिलासफी' पर बात होने लगी, उन्होंने कहा, 'तुम ऐसा इसलिये मानते हो कि स्वामी दयानन्द के सिद्धांतों में ही तुम पले हो और तुम्हारा दृष्टिकोण वैसा ही हो गया है।" मेरा उत्तर यह था, "आप ठीक कहते हैं। परन्तु इसको मैं दोष नहीं नहीं मानता। मैं इन विचारों को इस लिये नहीं मानता कि वह ऋषि दयानन्द के हैं, अपितु इसलिये कि स्वतन्त्र विचार करने के पश्चात अब यह मेरे हो गये हैं। अतः आप भी इनका इसलिये तिरस्कार न करें कि यह यह ऋषि दयानन्द के विचार हैं या कोई बात ऐसी आ जाती है जो हमारी धारणा के विरुद्ध हो तो हम चौंक पड़ते हैं और उस पर विचार करने के लिये उद्यत नहीं होते। एक आर्य समाजी के लिए यह तो आवश्यक है कि मूल वैदिक सिद्धान्तों को मानता हो परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में दिये हुए अक्षर अक्षर को मानता हो। स्वयं स्वामी दयानन्द भी ऐसा नहीं कहते इस लिये उन्होंने अपने ग्रन्थों के अतिरिक्त 'स्वमंतव्या मंतव्य' अलग लिखा, जिससे कोई यह न समझले कि प्रत्येक बात जो कही गई है उसका मानना आर्य समाजी के लिये आवश्यक हो अथवा जो उसे न मानता हो उसको आर्य समाज से निकाल दिया जाय। मैं यह बात इसलिये लिख रहा हूं कि आर्य समाज में बहुत से ऐसे लोग हैं जो ऋषि दयानन्द के नाम की दुहाई देकर ही लोगों को उत्तेजना दिया करते हैं। और उनका विद्वानों पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। अभी एक सज्जन मेरे पास आये और कहने लगे कि शंकराचार्य जी को हुये बाईस सौ वर्ष हुये ऐसा सत्यार्थ प्रकाश में लिखे हैं। इतिहास ऐसा नहीं बताता, मैंने कहा कि ... [illegible] अन्यथा सिद्ध हो जाय तो आप वैसा मान लिये। सम्भव है इसमें कोई गलती हो गई हो। यह कोई मूल-सिद्धान्त तो है नहीं, क्या न ऋषि दयानन्द इतिहास ... थे वह प्रचलित इतिहास ... के आधार पर लिख रहे थे। इससे आर्य समाज की स्थिति में कोई भेद नहीं आता, वे सज्जन ... उपदेश और चाहते थे कि ... की पुष्टि की जाय। मैंने उनको कहा कि यह दृष्टि कोण ठीक नहीं है, सत्यार्थ प्रकाश के ११ वें समुल्लास के अन्त में कुछ राजाओं के नाम और शासन काल की अवधि

दी है। यह अब वैसा स्वामी जी महाराज ने काशी की एक पत्रिका के आधार परलिख दी हैं। यह स्वयं उनकी खोज नहीं है। यदि किसी राजा के शासन काल में वर्ष, मास या दिन की अशुद्धि निकल आवे तो हमको मानने में क्या हानि? मौलिक सिद्धान्त और बात है और लकीर का फकीर होना और बात फिर ऋषि वर ना कहा तक ... यदि कोई बात वेद विरुद्ध हो तो किसी की भी न मानना चाहिए मैं यह नहीं मानता कि ऋषि के ग्रन्थों में भूल होना असम्भव है, या उनके शोधने का विचार भी करना पाप है। मेरा अनुसन्धान यह बताता है कि ऋषि दयानन्द ने बहुत सी बातों में पर्याप्त स्वतन्त्रता दी है, और उन बातों में ऋषि दयानन्द का अनन्य भक्त उनसे विपरीत जाकर भक्ति च्युत नहीं हो सकता।

मैं इस बात पर इसलिये बल दे रहा हूं कि आर्य समाज के भीतर एक संकुचित विचारों ... बैठी है, उसने ... सिद्धान्तों का तो विमुख कर ... लोगों में भी आ ... है। जो एक दूसरे का ... विरोधी ...

(शेष पृष्ठ १० पर)

गांधी जी का मानवतावाद

(लेखक—श्री डा० राधाकमल मुकर्जी)

गांधी जी का महानतम सन्देश यह था कि उन्होंने सदैव जीवन के मूलभूत और अन्तिम मूल्यों को ही महत्त्व प्रदान किया। राजनीति शिक्षा तथा समाज सुधार के क्षेत्र में वे सदैव वैज्ञानिक युग के विवेकहीन भौतिकवाद तथा उद्योगवाद का विरोध करते रहे। उनका चर्खा भारतीय देहातों की ओर गतिशील औद्योगिक प्रवृत्ति के विरुद्ध घरों और गाँवों की आत्म निर्भरता एवं ऐक्य का प्रतीक था। उनका पंचायत राज वर्तमान औद्योगिक सभ्यता वर्ग सघर्ष की विपरीत प्राचीन कृषि प्रधान सभ्यता के सहकारिता मूलक मूलभूत तत्वों का प्रतीक था। इसी प्रकार हरिजन उद्धार का आन्दोलन भी सामाजिक-न्याय, समता और मानव व्यक्तित्व के उच्चतम मूल्यों की स्थापना के आह्वान के रूप में ही था। बाह्य रूप से वे विज्ञान और यन्त्रों के विरुद्ध दिखाई देते थे किन्तु बात ऐसी थी नहीं। वे यह चाहते थे कि इनका उपयोग मनुष्य आजकल की भांति अपने बन्धुओं के शोषण, वर्ग संघर्ष और युद्ध के लिये न करे, वरन् ये चीजें समाज के उच्चतम हित-साधन के लिए प्रयुक्त हों। गांधी जी की दृष्टि में समस्त विज्ञान, समस्त शिक्षा, समस्त राजनीति तथा सामाजिक आन्दोलन वह साधन थे जो मानव जीवन के उन आधारभूत मूल्यों का चयन कर जिसके फलस्वरूप व्यक्ति, व्यक्ति के सन्निकट आता है, समाज देवत्व की ओर अग्रसर होता है और इस प्रकार अन्तत रामराज्य की स्थापना होती है। गांधी जी वर्तमान काल के सबसे बड़े मानवतावादी एवं भारत की प्राचीन आध्यात्मिक परम्परा के चिर नवीन प्रतीक हैं।

यह तो स्वीकार करना ही होगा कि विज्ञान तथा यन्त्रों का सम्बन्ध जीवन के संचालन और आधारभूत आवश्यकताओं से तो है और इनमें हीन-मूल्यों को कम करने अथवा उनका अन्त करने की भी शक्ति भी है किन्तु ये नवीन सजीव मूल्यों की सृष्टि एवं संरक्षण नहीं कर सकते। कृषि विज्ञान तथा औद्योगिक ज्ञान द्वारा कृषि और उद्योगों के उत्पादन में वृद्धि हो सकती है और श्रम तथा कठिन प्रयास की समाप्ति भी सम्भव है किन्तु ये चीजें मनुष्य को यह नहीं बता सकतीं कि वह बढ़ी हुई सम्पत्ति तथा उपलब्ध समय का किस प्रकार उपयोग करे। चिकित्सा विज्ञान द्वारा विभिन्न शारीरिक रोगों का ह्रास या समाप्ति तो सम्भव है किन्तु इस विज्ञान से मनुष्य को यह शिक्षा नहीं मिल सकती कि सम्पूर्ण एवं स्वस्थ जीवन किस रीति से यापन करे। मनोविज्ञान वेत्ता तथा मानसिक-चिकित्सक मानसिक कष्टों और अन्तर्द्वन्द्वों को कम कर सकते हैं किन्तु वह नहीं बतला सकते कि उनके स्थान पर किन विश्वासों एवं धारणाओं की प्रतिष्ठा की जाय। राजनीति, अर्थशास्त्र और न्यायशास्त्र द्वारा अच्छे नियम और अधिकारों का निर्धारण तो किया जा सकता है किन्तु ये सदाचार, मान्यताओं एवं आदर्शों की स्थापना नहीं कर पाते। नियोजक और यन्त्रविद् प्रयत्न पूर्वक वैज्ञानिक, कलायुक्त एवं सुदृढ़ समाज का निर्माण कर सकते हैं किन्तु केवल आर्थिक और राजनीतिक संस्थायें मानवीय उद्देश्यों की प्राप्ति एवं संरक्षण नहीं कर सकतीं। गांधी जी ने इस पर सदा जोर दिया कि उचित मानवीय सम्बन्धों की प्राप्ति अथवा उनका ह्रास अर्थशास्त्र राजनीति या न्याय के क्षेत्र में नहीं अपितु नैतिकता और धर्म के क्षेत्र में होता है। उन मनुष्यों के हाथ की भावनायें और शक्ति जिनकी प्रवृत्तियाँ और जीवन के मूल्य व्यवस्थित होते हैं, निश्चित रूप से अव्यवस्था का ही सृजन करती हैं। किसी भी आयोजित समाज में योजना बनाने वालों की बौद्धिक योग्यता ही सबसे मुख्य बात होती है। मूल प्रश्न तो यह है कि इनका नियोजन कौन करे जिससे अपनी कार्य प्रणाली और संगठन क्षेत्र के बाहर स्थित मानव जीवन के मूल्यों का विचार भी निश्चित, रूपेण करे। भारत के इस नये युग में जब कि हम उपयुक्त समाज की स्थापना के कार्य में संलग्न हैं, हमें विज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की कमियों को समझ लेना चाहिए। उत्तम और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना केवल विज्ञान और यन्त्रों के आधार पर नहीं हो सकती। गांधी जी का मानवतावाद ही इसके लिए उचित मार्ग बतला सकता है।

विज्ञान के द्वारा नहीं अपितु कला, मानवीय भावना एवं धर्म के द्वारा सजीव मानवीय मूल्यों और आकांक्षाओं की अभिवृद्धि हो सकती है। इनके द्वारा ही उत्तमता के प्रति आकर्षण तथा प्रेम, सौन्दर्य, स्नेह एवं सहानुभूति का प्रादुर्भाव सम्भव है। भारत के नवीन युग पर इस बात का उतना प्रभाव पड़ने वाला नहीं है कि अर्थशास्त्र और राजनीति समाज के लिए क्या कर सकते हैं वरन् इनकी कार्य-शक्ति से बाहर की चीज ही अधिक प्रभाव डालेगी। अर्थशास्त्र और राजनीति द्वारा न्याय और समता की कल्पना की जा सकती है किन्तु वे उन्हें प्रेम एवं सहयोग में परिवर्तित नहीं कर सकते जो कि भावी लोक कल्याणकारी राज्य का आधार है। भगवत् गीता के एक महत्वपूर्ण श्लोक में कहा गया है कि सर्व शक्तिमान के कर और चरण प्रत्येक स्थान पर हैं, नेत्र, मुख तथा कर्ण सर्वत्र हैं और वह समस्त विश्व में व्याप्त हैं। गीता का यह अंश गांधी जी को सबसे अधिक प्रिय था। मानव असीम प्रेम और त्याग की आशा तभी कर सकता है जब उसमें पारलौकिक शक्ति मूर्त हो और वह उसके उद्देश्य की पूर्ति में संलग्न रहे। गांधी जी की उद्बुद्ध सामाजिक चेतना और दीनों एवं उपेक्षितों की सेवा की लगन हमारी पीढ़ी में केवल तभी अधिक प्रसार पा सकती है जब हम व्यक्ति की सीमाओं से ऊपर उठें और हमारा धर्म अच्छाई और प्रेम की प्राप्ति के निमित्त मानवता के अधिक व्यापक मार्गों को प्रशस्त करे। ऐसी स्थिति में व्यक्ति का कष्ट दैवी कष्ट और उसका अभाव दैवी अभाव का रूप ले लेता है। हरिजन भगवान का अपना प्रियजन है और गांधी जी के कार्यक्रम के अनुसार उसकी सेवा सर्वोच्च शक्ति के सम्मुख आत्म समर्पण है। बीसवीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध में जातिभेद का उन्मूलन भारत का एक महान् कार्य होगा और गांधी जी के जीवन एवं कार्य से इस महान् कार्य में निश्चय ही पथ प्रदर्शन प्राप्त होगा।

इन्हीं मूल्यों और आदर्शों की पृष्ठभूमि में हमारे युवकों को गांधी जी के जीवन और उनके सन्देश को समझना चाहिए और अपने जीवन को सत्य सहयोग तथा सेवा में लगाना चाहिये। विज्ञान के विकास में मानव उद्देश्य एवं आकांक्षाएं अन्तर्हित होंगी और वैज्ञानिक अन्वेषणों का कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन वृद्धि में, रोग, अस्वच्छता, अन्ध विश्वास के निराकरण में तथा जनता के रहन सहन के स्तर को ऊपर उठाने में अधिकाधिक उपयोग हो सकेगा। अर्थशास्त्र समाजशास्त्र तथा राजनीति समाज को नव-स्फूर्ति प्रदान करती है क्योंकि इनका लक्ष्य बेकारी, निर्धनता, वर्ग भेद और जाति भेद का उन्मूलन तथा आय के सम वितरण एवं सब के लिए समान अवसर की व्यवस्था करना है। यह तभी सम्भव है जब हमारी शिक्षा संस्थायें आर्थिक योजनाओं को लोकप्रिय बनाने और उन्हें कार्यान्वित करने में प्रमुख भाग लें, निरक्षरता का अन्त करने को कटिबद्ध हों, आज की आवश्यकताओं को देखते हुए लोक कथाओं, नाटकों आदि को नया रूप प्रदान करें और ग्राम, पुनर्निर्माण के निमित्त सहकारी फार्मों और सामुदायिक केन्द्रों को संगठित करें। हमारी विशाल योजना तभी सफल हो सकती है जब हमारे शिक्षित नवयुवक नियमित रूप से या निर्धारित अवधि के लिए सामूहिक श्रमदान में भाग लें और सड़कों नालियाँ, पंचायतघरों, सहकारी इमारतों के निर्माण या गन्दी बस्तियों की सफाई के लिए अपने तन का पसीना बहायें। यदि हमारे प्रौढ़ शिक्षित न होंगे तो आज जो सामाजिक परिवर्तन हो रहा है उसको भारी संघर्ष और उथलपुथल का सामना करना पड़ेगा। भारत की जन संख्या का पंचमांश पिछड़े हुए एवं दलित वर्ग का है। इनमें से भी आधे अस्पृश्य है, जिनका बनदासों अथवा क्रीतदासों से भी बुरा है। इसलिए यह आशंका और भी बढ़ जाती है।

आचार्य विनोबा भावे के भूदान आन्दोलन द्वारा सेवा और सहयोग का एक महान अवसर प्राप्त हुआ है। प्रदेश के शिक्षकों एवं विद्यार्थियों को छोटे-छोटे जत्थे बनाकर समाज-सुधार के इस महान कार्यक्रम में भाग लेना चाहिये, जिसकी मूलभूत प्रेरणा सामाजिक सद्भावना एवं सहयोग है न कि वर्ग-विभेद एवं संघर्ष। वास्तव में विनोबा भावे जी के इस कार्यक्रम का उद्देश्य वर्ग भेद और वर्ग-संघर्ष को हटाना है। गांधी जी के मानवतावाद के सर्वश्रेष्ठ प्रवक्ता, आधुनिक भारत के महान संत आचार्य विनोबा भावे ने ४० लाख एकड़ भूमि दान में प्राप्त कर ली। उन्हें यत्र तत्र बिखरे हुये जो छोटे छोटे भूखंड प्राप्त हुये हैं, उनको एक चक करके सहकारी या सामूहिक फार्म का रूप दिया जा सकता है। और इस प्रकार वैज्ञानिक एवं सामूहिक

(शेष पृष्ठ १० पर)

विदेह जी का गो लोक

सविता का संस्थान योजनांक : एक समीक्षा

(ले०—श्री भवानीलाल 'भारतीय' एम० ए० सि० वाचस्पति)

आर्य मित्र ता० ४ सितम्बर के सम्पादकीय में यह पढ़ कर हमने सन्तोष की साँस ली कि ता० १८-८-५५ की सार्वदेशिक की अन्तरंग सभा की बैठक ने श्री विदेह जी के लिये आर्य समाज की वेदी बन्द कर दी है और जनता को आदेश दिया है कि किसी भी प्रकार का सह योग उन्हें न दिया जाय। हम भी सम्पादक की इस बात से सहमत हैं कि आर्य जनता का यह कर्तव्य है कि वह अनुशासन का पालन करती हुई विदेह जी का पूर्ण बहिष्कार करे।

मैंने अपने एक लेख "आर्यसमाज के विद्रोही" में विदेह जी की प्रवृत्तियों पर कुछ विस्तार से प्रकाश डाला था। उसके प्रकाशित होने के तुरन्त पश्चात ही सविता का "संस्थान परिचयांक" प्रकाशित हुआ। इसका अधिकांश कलेवर विदेह प्रशस्ति से भरा हुआ है। इसमें आर्य विद्वानों और पण्डितों की नई पुरानी सम्मतियों का सकलन इस खूबी के साथ किया गया है कि पढ़ने वाले साधारण पाठकों को यही प्रतीत होता है मानों सारे आर्य विद्वान, नेता और समाचार पत्र उनकी योजना से हार्दिक सहमति रखते हैं। मैंने अपने पूर्व लेख में यह भी लिखा था कि विदेह जी के वेद भाष्य की प्रशंसा सार्वदेशिक सभा के पूर्व प्रधान पं० गंगा प्रसाद जी रि० जज ने भी की है। इस पर जज महोदय ने मेरे लेख के उत्तर म लिखा था कि विदेह भाष्य पर उनकी सम्मति सार्वदेशिक के निर्णय से काफी पुरानी है परन्तु इस सविता के अंक में तो उनकी एक सम्मति ता० ९-६-५५ की भी छपी है, और यह अवश्य ही सार्वदेशिक के निर्णय के पश्चात की है। देखें जज साहब इसका क्या समाधान ढूंढते हैं।

विदेह जी ने आर्य समाज के चोटी के विद्वानों तथा पं० जयदेव विद्यालंकार, पं० बुद्धदेव विद्यालंकार डा० सूर्यदेव शर्मा, म० आनन्द स्वामी, पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति आदि आदि की पुरानी सम्मतियों को जनता को आतंकित और प्रभावित करने के लिये प्रकाशित की हैं। यहां नई बोतल में पुरानी शराब वाली कहावत चरितार्थ होती है। कई पण्डितों ने तो यह स्पष्टीकरण भी प्रकाशित कराये हैं कि विदेह जी के विषय में उनकी सम्मतियां प्राचीन हैं और अब उनकी सम्मति में परिवर्तन हो गया है। 'सार्वदेशिक' पत्र के सम्पादकीय में एक ऐसा ही स्पष्टीकरण छापा है। ऐसी स्थिति में आर्य जनता को सावधान हो जाना चाहिये और यह समझ लेना चाहिये कि वह 'नूतन ऋषि' के हथकंडे मात्र हैं। वस्तुतः आर्य पण्डितों के निर्णय के लिये धर्मार्यसभा का विदेह जी विषयक निर्णय पढ़ना चाहिये। क्या विदेह जी में इतना साहस है कि वे धर्मार्यसभा विषयक अपने निर्णय को भी प्रकाशित कर सकते हैं। अस्तु।

जैसा कि मैंने पूर्व ही लिखा कि 'सविता' का यह अंक विदेह प्रशस्ति से भरा हुआ है। विदेह जी के तीन चार तो फोटो ही हैं, कहीं वे ध्यानावस्थित हैं, तो कहीं वेद भाष्य में सलग्न। मनुष्य पूजा की यह एक नवीन भूमिका बाँधी जा रही है। अब विदेह जी 'देव' बन रहे हैं और बन रहे हैं "ऋषि"। उनका एक भक्त लिखता है—

देव ! आपके अभिनन्दन में निहित आर्यता का अभिनन्दन ऋषे ! आपके पथदर्शन ~ आर्य विश्व बन जावे सत्वर ॥

उनके भ्राता ने उन्हें "विप्र-ऋषि" कह कर सम्बोधित किया है, तथा एक अन्य प्रशसक उनकी शैली में 'ऋषित्व' की छाप देखते हैं। आप ये ऋषि कैसे हैं। यह किसी से छिपा नहीं है। धर्मार्यसभा के अनुसार दर्शन, व्याकरण ज्ञान से शून्य। इन्हीं के हाथों वेद का उद्धार होगा। परन्तु आश्चर्य क्या स्वाज्ञानानन्द के अनुसार तो विदेह जी वेद मूर्ति हैं, वे महर्षि दयानन्द के स्थानापन्न हैं। आर्य समाज का यह दुर्भाग्य है कि उसने ऐसे ऋषि का बहिष्कार किया।

विशेष क्या लिखें। आचार्य विदेह जी जिस पत्र के सम्पादक हों, और उनके पुत्र उसके विशेषांक के सम्पादक हो, उसमें "गोलोक" का उल्लेख देख कर भी यदि हमारा माथा ठनकने लगे तो किसे दोष दें। पृ० १४५ पर लिखा है—"पूज्य पिता जी आपके पास ही गोलोकवासी हुये।" मैं यही सोच रहा था कि [illegible] भक्त और आर्य धर्म के एक निष्ठ सेवक इस "सविता" में "गोलोक" की चर्चा कैसे आ गई, तभी समय एक मित्र ने सूचित किया कि यहाँ गोलोक एक बार नहीं दो बार आया है। शायद अब वल्लभ मत का गोलोक भी विदेह जी के कृपा से वैदिक धर्म में स्वीकार कर लिया गया है। "सविता" इस अंक की अधिक क्या स्तुति करे। हम तो सविता के पिछले अंकों की विदेहोक्तियां (वस्तुतः गर्वोक्तियों) को पढ़ कर आश्चर्य करते थे, परन्तु यह अंक तो उनका भी गुरु निकला। आशा है इन पंक्तियों से उस भ्रम का निवारण होने में यत्किंचित सहायता मिलेगी जो इस योजना विशेषांक के द्वारा उत्पन्न हुआ है।

आर्य परिवार संघ विभाग-उत्तर प्रदेश की विज्ञप्ति

(लेखक—श्रीपीतमलाल एडवोकेट अलीगढ़)

हमको यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई है कि आर्य समाज में प्रचलित कुरीतियों से ऊपर उठ कर जन्म जात उपजाति आदि के कल्पित बन्धन को तोड़कर गुण कर्म स्वाभावानुसार विशुद्ध वैदिक रीति से अपनी सन्तान का विवाह संस्कार करना चाहते हैं। इस शुभ संकल्प के लिये आप बधाई के पात्र हैं। कृपया वर वधू के विषय में निम्न विवरण स्पष्ट और संक्षिप्त लिख भेजें ताकि नवीन योजनानुसार वर वधू का नाम लिखने तथा उनके लिये योग्य वधू या वर ढूंढने में आपकी सहायता करने में सुविधा हो और हम अपने उत्तरदायित्व को सुन्दरतम रीति से निभा सकें।

(१) नाम

(२) पिता या संरक्षक का नाम, व्यवसाय तथा पता

(३) हुलिया (आयु, कद, शारीरिक गठन, चेहरा तथा रंगरूप)

(४) शिक्षा

(५) व्यवसाय, आर्थिक स्थिति तथा मासिक आय

(६) स्वभाव तथा रिवाज

(७) जाति तथा वर्ण (यदि किसी अन्य धर्म से शुद्धि हुई हो, तो कब ?

(८) भाई बहिन, तथा सबंधियों का संक्षिप्त विवरण

(९) अन्य विशेषतायें यदि हो

[१०] कोई विशेष रुचि की शर्तें, यदि कोई हो

[११] यदि पहले विवाह हो चुका तो पूर्व पति या पत्नी का विवरण

[१२] कोई अन्य बात जो उपरोक्त में न आई हो

[१३] पत्र व्यवहार का पूरा पता

नोट १—उपरोक्त विवरण मे जन्मगत जाति का वर्ण को सूचना केवल सूचनार्थ है उनका कोई महत्व सम्बन्ध निर्णय मे न होगा।

नोट २—जो सज्जन आर्य परिवार संघ के सदस्य बनना चाहे यह नियत प्रवेश पत्र को १) प्रवेश शुल्क सहित अधिष्ठाता आर्य परिवार संघ की सेवा में प्रेषित करें—उनसे कोई निर्धारित धन नहीं लिया जाता है, परन्तु यदि वह स्वेच्छा से दान या धन आर्य परिवार संघ की उन्नति के लिये दें, तो वह धन्यवाद तथा सहर्ष स्वीकार किया जावेगा धर्मानुरागी, दानी सज्जनों से आशा की जाती है कि वह इस पावन कार्य के लिये पुष्कल धन दान देकर धन्यवाद के पात्र बनें।

नोट—पत्र व्यवहार करते समय स्पष्ट पते और व्यवहार पर ध्यान रखना आवश्यक है।

मेरे व्यक्तिगत विचार

[पृष्ठ ७ का शेष]

विभूषित करने लगे हैं, इसका परिणाम बहुत बुरा हो गया।

कुछ लोग समझते हैं कि संगठन उनके हाथ में है, हमको संगठन से बाहर नहीं जाना चाहिये, यह बात अनेक अंशों में समुचित है। परन्तु इसकी एक सीमा है, संगठन उस समय सुदृढ़ रह सकता है जब संगठन के अध्यक्ष अपने कर्त्तव्य को समझते हुये उदारता से काम लें और व्यक्तिगत अधिकारों पर आघात न करें। कल्पना कीजिये कि मैं समझता हूं कि ऋषि दयानन्द का ऐसा मत है और संगठन के कुछ सदस्य उसके विरुद्ध घोषणा करते हैं तो मेरी धारणा तो यह है कि मुझे ऐसी बात नहीं मानना चाहिये, हजार सभाओं का निश्चय एक ओर और ऋषि दयानन्द की साक्षी एक ओर। यदि संगठन को सुदृढ़ रखना है तो संगठन के अधिकारियों को अपने अधिकार संभाल कर बरतने चाहियें अन्यथा चाहे कुछ दिनों के लिये संगठन बनाभी रहे किसी न किसी दिन टूटेगा ही, और सबको ले बैठेगा: यह हुई दृष्टि कोण की बात। अब अन्य विचारों को आगे देखिये। चौंक कर नहीं, अपितु स्वतंत्र विचार की तैय्यारी करके।

महर्षि के ग्रन्थों के सम्बन्ध में

(श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय कला प्रेस इलाहाबाद)

१८ सितम्बर ५९ के साप्ताहिक आर्यमित्र में ऊपर दिये शीर्षक से एक लेख श्री विश्वबन्धु जी का छपा है जिसके गौण रीति से मेरा नाम भी है 'जैसे कि गणित के ग्रन्थों में राम मोहन श्याम मोहन के नाम'

आपने जिन कठिनाइयों का उल्लेख किया है वह निराधार नहीं है। न मैं यह चाहता हूँ कि जो चाहे अशुद्धियों से पूर्ण ग्रन्थ छाप दे! मुझे यह तो आपत्ति नहीं कि ग्रंथ सस्ते और न्यूज प्रिंट पर क्यों छपते हैं। न यह आपत्ति है कि उनका कागज शीघ्र सड़ जायगा। मुझे यह भी आपत्ति नहीं कि ऋषि के ग्रन्थों के साथ अन्य पुस्तकों के विज्ञापन क्यों नहीं होते हैं। परन्तु मुझे घोर दुःख होगा यदि ऋषि के ग्रन्थों को असावधानी से अशुद्ध छापा जावे।

परन्तु एक कठिनाई है जिसका श्री आचार्य ने उल्लेख नहीं किया। जब तब उत्तरदायित्वपूर्ण सभायें ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों को शोधने का प्रयत्न नहीं करती वह दूसरों को छापने से रोक नहीं कसी, मैं यह देखता हूँ कि आप तो लकीर के फकीर हैं, और दूसरो रोष देते हैं, यदि किसी को दूध में मक्खी डाल देने का अधिकार है तो दूसरे उनके छापने पर विवश होंगे चाहे उस छापने में कुछ मैल अधिक ही क्यों न पड़े जाय। कहीं कहीं टिप्पणियों से भी काम चल सकता है, परन्तु बहुत से ऐसे स्थल हैं जहाँ अशुद्धियाँ स्पष्ट हैं और उसकी सुगमता से सुधारा जा सकता है। यदि किसी के शरीर में फोड़ा हो जाय और उसको चिर फैलने के भय से डाक्टर चीर दे तो वह अच्छा ही ही है। परन्तु यदि आप यह आग्रह करें कि चीरे हुये मवाद को एक थैली में बांध कर उसी फोड़े के स्थान में लटका दिये जाँय तो उससे ही सर्वत्र काम लिया तो अशुद्धियों के जीवन को बढ़ा दिया और उनसे होनेवाली हानियों को भी अधिक दे जीवन दे दिया तो। मेरी तो राय है कि आर्यसमाज को समस्त आर्य ग्रन्थों को शोध कर छाप देना चाहिये आर्यसमाज के विद्वान ईर्ष्या-द्वेष को छोड़कर इस काम में जुट जावें तो दस वर्ष में हम आर्यसमाज के साहित्य को शुद्ध कर दे सकते हैं। परन्तु क्या हम ऐसा कर रहे हैं, पिछले ७२ वर्षों में तो किया नहीं, आगे क्या आशा की जाय। तू-तू मैं-मैं जारी है और जारी रहे। यह ठीक है कि कई स्वार्थोपरि शोधन का कार्य अनाधिकार हो होगा। परन्तु सभी सभी स्थान ऐसे नहीं हैं, यह समझने के लिये कि कहाँ प्रक्षेप हैं वैज्ञानिक रीतियाँ है, हर अशुद्ध अंश को शुद्ध करने के उपाय है, परंतु उन्हीं के लिये जो उपाय सोचें। यहाँ पूछा यह है कि जब दूसरे उसी काम को करते है तो हम शोर मचाते हैं और अनुशासन की धमकी देते हैं। परन्तु जब हम स्वयं उसी काम को करते हैं तो चाहते हैं कि कि कोई इस पर नजुनच न करें। उदाहरण के लिये मैं भी भी पुस्तकें छापता, विज्ञापन देता, उत्सवों या व्याख्यानों में अपनी पुस्तकों की प्रशंसा करता हूँ तो मुझे क्या अधिकार है कि दूसरों पर आक्षेप करू, यदि मुझ में अर्थशुचि नहीं हो दूसरों पर किस मुख से कहूँ। यदि मैं तो दाम्पत्य के नियमों का आदर नहीं करता तो दूसरों पर कैसे आक्षेप करूं। आज मैं प्रतिष्ठित पद पर आरूढ होकर दूसरों पर शासन करता हूँ तो दूसरे भी अवसर पाकर मेरे साथ ऐसा हो व्यवहार करेंगे, अंगरेजी की कहावत है 'डाक्टर हील हाईसेल्फ' Doctor heal thyself वैद्यजी पहले अपनी चिकित्सा कीजिये। 'अनुशासन' किसी सभा में संगठन के लिये अत्यन्त आवश्यक है। परंतु इसके भार केवल अनुशासकों को भी अनुशासन की आवश्यकता है। उपनिषदों में 'देवों' को प्रजापति की शिक्षा है 'दम्यत' अर्थात् पहले अपने ऊपर दमन करो। नहीं तो देवत्व छिन जायेगा। जब व उत्तरदायित्वपूर्ण सभाओं या सभासदों के समक्ष कोई स्पष्ट अशुद्धि लाई जाती है तो वह व्याकरण-चातुर्य, वाक्-पटुता और तर्क-कौशल के सहारे बाल की खाल निकालने लगते हैं। इससे त. अनुशासन सुदृढ़ नहीं होता और न कभी किसी धर्म या संस्था के स्थान में हुआ है।

मेरी एक कठिनाई और है, जिसका एक उदाहरण देता हूँ। (१) मैंने अपनी आंख से देखा कि संस्कार विधि की असली कापी में 'अयन्त' . मंत्र पहली तीन समिधाओं के लिये नहीं है। केवल समधाग्नि. आदि यजुर्वेद के तीन मंत्र ही हैं। (२) मैंने अपनी आंख से देखा कि पहले प्रेस कापी में भी नहीं था। (३) मैंने अपनी आंख से देखा कि यह मंत्र हाशिये पर पीछे से बढ़ाया।

(४) मैंने वैदिक प्रेस के और भी दिखाया।

(५) संस्कार विधि में अब तक बराबर छपता आ रहा है कि एक एक मंत्र से एक समिधा दी जाय।

युक्ति और प्रसंग भी ऐसा ही कहता है।

(७) अन्यत्र कहीं दो मंत्रों से एक समिधा नहीं डाली जाती परन्तु जब मैंने परोपकारिणी सभा का ध्यान आकर्षित किया तो बाल की खाल निकाली गई। क्योंकि अब तक ऐसा ही छपता रहा है।

जब यदि कोई सभा या सभायें मेरे ऊपर अनुशासन चलाकर कुछ और कराना चाहें तो मेरी आपत्ति यह होगी कि मैं ऋषि दयानंद की बात को मानूँ या अनुशासन सभाओं की। मैं तो नित्य कहीं तीन वर्षों से एक एक आहुति दिया करता हूँ। मैं दूसरों से झगड़ा कभी नहीं करता। परन्तु आप क्या अनुमान करते हैं, मैं ने प्रत्यक्ष देखा है। मैंने परोपकारिणी सभा से यह भी मांग की कि इन स्थलों का फोटो ले कर छाप दिया जाय। परंतु सभा के सदस्यों ने हाथ उठाकर निश्चय कर दिया कि "परनाला तो वहीं पर गिरेगा" यद्यपि सत्य का ग्रहण करना और असत्य का त्यागना हम सबको स्वीकार है। इस प्रकार की बीसियों बातें हैं।

इसलिये मैं कहता हूँ कि यदि आप आत्मनिरीक्षण करके रचनात्मक कार्य के लिये उद्यत नहीं हैं या आप में उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर रहकर उनके अनुरूप उदारता प्रदर्शित करने का सामर्थ्य नहीं है तो यही कहना पड़ेगा कि—

वही रफ्तार बेढंगी जो पहले थी व अब भी है।"

२७००० कैथोलिक मिश्नरी—

लोह बन्धन में

१८५० चर्चों की अन्त्येष्टि

(लेखक— श्री पं० शिवदयालु जी मेरठ)

१८ सितम्बर के अंक में कलकत्ते का अंग्रेजी साप्ताहिक हेरेल्ड लिखता है कि केवल हंगरी, जैकोस्लोवाकिया, लिथूनिया, तथा बाल्कन देशों में २७००० कथालिक पुरोहित बन्धु तथा भगिनियाँ या तो जलावतन कर दी गई हैं या सींखचों में बन्द हैं या फिर श्रमिक शिविरों में रखकर उनसे कड़ी मशक्कत ली जाती है। रूस, चीन, व्यतनाम आदि की संख्या जो इससे भी कहीं अधिक है इससे पृथक है।

प्रश्न यह है कि यह साम्यवादी देश इन कथालिकों के पीछे ही क्यों पड़े हुए हैं, प्रोटेस्टेन्ट। के भी अनेक पन्थ हैं उनको सतावट की चर्चा कहीं सुनने को नहीं मिलती। हमारा उत्तर तो स्पष्ट शब्दों में यह है कि संसार भर के कथालिक ईसाई रोम के पोप से जुटे हुए हैं, पोप को ईसामसीह के बाद मान्यता देते हैं। पोप को जो नहीं मानते जैसे चीन और व्यतनाम के कुछ कथालिक जिन्होंने स्वतंत्र राष्ट्रीय चर्च संगठित करना आरम्भ किया है उनको इनके कथनानुसार मुक्ति नहीं मिल सकती। इस सम्बन्ध में प्रमाण के रूप में कार्डीनल फूमासोनी ब्योन्दी का वह पत्र जो उन्होंने व्यतनाम के कथालिकों को लिखा है और जिसका हवाला हेरेल्ड ने अपने १८ सितम्बर के अंक पृष्ठ ६ कालम १ में दिया है हम प्रस्तुत करते हैं। उनके शब्द हैं "If bond of Unity (with the Pope) is strained and the branch of thevi nebrok andwith the is and is no longer capable of bearing the fruits or Salvation." अर्थात् यदि यह एकता (पोप के साथ) का बन्धन ढीला कर दिया जाता है और तोड़ दिया जाता है और लता की डाली सूख जाती है तो उसमें मुक्ति रूपी फलों को उत्पन्न करने की शक्ति नहीं रहती।

भाषा बहुत संयत और चातुर्य पूर्ण है किन्तु भाव छिपाए छिपता नहीं। बिना पोप पर ईमान लाए मुक्ति नहीं तात्पर्य यही है।

दूसरे पोप के आदेश संसार के प्रत्येक कथालिक के लिये किसी भी देश की सरकारी आज्ञाओं, विधान तथा उ देशों से ऊपर हैं जिसका परिणाम स्पष्ट है कि एक कथालिक की देश के प्रति वफादारी संदिग्ध है और जब भी कभी पोप का आदेश शासन के आदेश से भिन्न होगा तो वहाँ के कथालिक बगावत करने पर निश्चय उतारू हो जावेंगे, एक कथालिक लिये देश प्रेम अथवा राष्ट्र भक्ति का कोई मूल्य नहीं और जो उसकी डींग हांकते हैं जैसा कि आज दिन स्थान स्थान पर यह लोक सम्मेलन कान्फ्रेंस करके शपथें खा रहे हैं और नेहरू की आंखों में धूल झोंकते रहे हैं वह धोखा देते हैं।

यह बात कथालिकों के ही सम्बन्ध में है हम यह भी नहीं कहते, हमारा दावा है कि जितने मतान्धता के पुजारी और एक चाल के अनुवर्ती हैं उन सबों की ही देश भक्ति संदिग्ध है।

साम्यवादी देशों में इन कथालिकों की सतावट का तीसरा कारण इनका

(शेष पृष्ठ १४ पर)

आर्यसमाज किधर

(पृष्ठ ५ का शेष)

को ही दायभाग मिलने की बात पक्की है। अब घर में चादना करने वाला पुत्र ही न हों तो फिर भले ही पिता की जायदाद की भागिनी बड़ी लड़की हो, बड़ी बहन न हो तो छोटी बहन को भाग मिले।

हम तो वेदों को स्वतः प्रमाण मानते हैं। वेदानुकूल होने से अन्य शास्त्रों को प्रमाण मानते हैं। वेद विरुद्ध होने से हम उनको भी प्रमाण नहीं मानते। इस विषय में समस्त दर्शनशास्त्र तथा धर्मशास्त्र, उपनिषद् सब एकमत हैं —

वेद क्या कहता है ?

वेद कहता है "यदि मातरो जनयन्त वह्निं', (ऋग्वेद) अर्थात् यदि माताएं दो प्रकार के बालक जनें— एक वह अर्थात् लड़का जो वंश का दीपक बनकर आगे भी वंश को चलाने वाला हो अथवा ऐसी आशा की जाती हो और दूसरा बालक ऐसा जनें जो (अवन्हि) लड़की हो तो वन्हि (लड़का) उत्तराधिकारी बन जाता है और अवन्हि अर्थात् लड़की नहीं।

ऐसा क्यों

इसलिए कि "अन्य सुकृतः कर्ता, अन्य. ऋन्धन्"—अन्य (लड़का) सुकृत का करनेवाला है, वंशका दीपक है, आगे भी वंश का चलानेवाला है। अन्य (लड़की) तो पिता के घर लालित-पालित-पोषित-परिवर्द्धित होकर अन्य वंश के लड़कों को दी जाती है या उस पति के वंश में जाकर उसी के वंश को बढ़ाती है। इस विषय में वेद का ऐसा स्पष्ट प्रमाण कहीं नहीं मिलेगा। इस वेदमूल को लेकर हिन्दू-धर्म शास्त्र की दायपद्धति चली आ रही है। इसलिए वेदमूलक होने से, वेदों से अविरुद्ध होने से प्रमाणभूत है।

जहां सवर्ण विवाह होते हैं और वहां दायभाग अन्य प्रकार से चलता है। और जहाँ प्रतिलोम होता है वहाँ दायभाग की पद्धति और है।

प्रथम प्रकार-सवर्ण विवाह

अर्थात् तीन प्रकार के दायभाग हुए एक तो आर्यों की अथवा हिन्दुओं की स्वाभाविक आधार को मानकर प्रचलित सवर्ण [illegible] का दायभाग जिसमें गुण-कर्म स्वभाव [illegible] सवर्ण विवाह होते हैं जैसे ब्राह्मणों का ब्राह्मणों में, क्षत्रियों का क्षत्रियों में, [illegible] वैश्यों में, शूद्रों का शूद्रों में।

दूसरा प्रकार-अनुलोम विवाह

अनुलोम पद्धति पर निर्भर है। ब्राह्मण ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य वर्णों में विवाह कर सकता है। क्षत्रिय क्षत्रिय तथा वैश्य वर्णों में, वैश्य, वैश्य तथा शूद्र वर्ण में।

इनकी सन्तान को भी दायभाग का अधिकार है पर पूरा अधिकार सवर्णों को ही है।

तीसरा प्रकार—प्रतिलोम विवाह

अर्थात् नीचे नीचे के वर्णों वाले ऊपर ऊपर वर्णों की लड़कियों से विवाह करें। इनका भी दायभाग में कुछ अधिकार रक्खा गया है।

समाज में वर्ण संकरता न फैले, समाज हीन, दीन, छिन्न-विच्छिन्न न हो इसीलिये तो वर्णाश्रम धर्म की स्थापना की गई थी। जब हम स्वतन्त्र थे, हमारे ही धर्म-कर्म को मानने वालों का शासन हम पर था। तब सब अपने धर्म कर्म मर्यादा में स्थित रहते थे। क्यों कि शासक का दण्ड सदैव जागृत रहता था। सब वर्ण अपने स्वाभाविक धर्म का पालन करते रहते थे। कोई भी अपने धर्म का पालन न कर सकता था तो नीचे के वर्ण में बने रहने, ऊपर जाने, नीचे खिसकने की व्यवस्था थी।

जब काल धर्म संयोग से हमारे पूर्वजों को भी लक्ष्मी मद चढ़ा, परस्पर एकता नहीं रही, ऊपर मर्यादा पालक का दण्ड शिथिल हो गया अथवा होता गया, विदेशी आक्रमण होने लगे, विधर्मी प्रबल हो गये तब जो जहाँ था उसने अपने अपने समुदाय को ऐसा जकड़ा कि कोई अपने वर्ण के बाहर भले ही चला जाय पर भीतर कोई अन्य वर्ण वाला न आ सके तब जात पांत का प्रवेश हुआ और वह वर्णों का स्थान न लेने वाली जाँत पाँत तब से अब तक जड़ जमाये हुए है। जब विदेशी तथा विधर्मियों का आक्रमण हो रहा था, तब आत्म रक्षा के लिये यही एक उपाय शेष रह गया था। और हिन्दुओं ने कौर्मीवृत्ति, कछुए की सी वृत्ति धारण कर आत्म रक्षा की। जब कोई व्यक्ति कछुए को मारने लगे, अथवा उसको कहीं से भय दिखलाई पड़े तब वह अपने सब अंगों को भीतर सिकोड़ कर आत्मरक्षा कर लेता है और भय के कारण के हटते ही फिर अंगों को बाहर निकाल लेता है।

ठीक यही दशा हिन्दुओं की रही। विशेष बात यह रही कि इस अङ्ग संकोच वृत्ति को हटा कर इस जाति के रोगों को दूर करने के लिये, और इसको सुदृढ़ बनाकर संसार भर का उपकार करने की शिक्षा दीक्षा देने [illegible] ये दयालु, दयानिधि, दयानन्द आये जिन्होंने कर्तव्य का प्रबोधन कराया—हम जगे, हम उठे, हम चलने फिरने लगे, नहीं नहीं हम दौड़ने लगे, जोर से दौड़ने लगे और उद्दिष्ट की ओर अग्रसर होते गये और आशा पड़ती रही कि अब भारत संभलेगा। सम्भला भी, स्वतन्त्र भी हुए, स्वराज्य लिया, संविधान बनाया और अब नये ढर्रे का पाश्चात्य-प्रणाली का प्रजातन्त्र चला रहे हैं जो कि धर्म निरपेक्ष है। धर्म निरपेक्ष का अर्थ धर्मशून्य नहीं तथापि इस धर्म निरपेक्ष तन्त्र में धर्म की बड़ी अनास्था हो रही है। अनार्य शिक्षा हमारी सन्तानों को नास्तिक, अश्रद्धान, उच्छृङ्खल, अनुशासन हीन बना रही है। सब समझ रहे हैं पर विवश होकर देख रहे हैं कि क्या करें, कैसे करें। ऊपर "दण्ड" ने जागृत रहकर प्रजा को धर्म मर्यादा में चलने वाला शासक वर्ग का तथा उसके शासक का रूप ही बदल गया। स्वराज्य के मिल जाने से, स्वतन्त्र हो जाने से स्वामी दयानन्द का आधा कार्य सफल हुआ। शेष आधा तब सफल होगा जब यह स्वराज्य और हमारा वैदिक धर्म (स्वधर्म) दोनों मिलकर विचरने लगेंगे। यह आधा कार्य आर्य समाज कर सकता है यदि वह आस्तिक श्रद्धान बनकर वेद मर्यादा रक्षार्थ उग्र त्याग तपस्या का मार्ग ग्रहण करे। उसके पिछले त्याग-तपस्या समाप्त प्राय हो गयीं आज इतना ही। जब मैं त्याग तपस्या आदि पर बल देता हूँ और आर्य समाज को त्रुटियों को दिखलाता हूँ तब वे समझ लोग समझ बैठते हैं कि मैं निराशा का संचार कर रहा हूँ। पर वे भूलते हैं। मैं तो आर्यों को जगाने का प्रयत्न करता रहता हूँ। इस बात को ऐसे लोग जितनी शीघ्रता से समझें उतना ही उनके लिये अच्छा है। आर्य समाज के लिये जितने कष्ट हमने सहे हैं, उन बातों को लोग जाने तो कभी निरर्थक बातें न करें और आर्य सिद्धान्तों के ठेकेदार न बन बैठें।

मैं आर्यों के उस बड़े समुदाय का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जो मेरे लेखों को बड़े चाव से पढ़ते रहते हैं और जब मैं लिखना छोड़ देता हूँ तब बुरा मानते हैं और लेखनी चलाने के लिये प्रेरणा करते रहते हैं और सच्ची बात यह है कि मैंने गत ५० वर्षों में इतना लिखा, इतना लिखा, कि मैं स्वयं नहीं जानता कि नयी बात क्या लिखूं, और वर्षों से मेरा ध्यान भी राजनैतिक उलझनों में उलझा पड़ा है।

गांधी जी का मानवता वाद

[पृष्ठ ८ का शेष]

कृषि के कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के साथ साथ कृषकों के प्रति अन्याय और बेकारी को भी दूर करना है। यदि हम भूदान आन्दोलन को एक प्रभावशाली सामाजिक एवं आर्थिक कार्यक्रम बनाना चाहते हैं तो भारत की ४० प्रतिशत दलित जनता के उद्धार एवं कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा संस्थाएं एवं विश्वविद्यालय वर्तमान जाति-विभेद और उन सभी भेदों को दूर करने के लिए नेतृत्व करें, जो केवल राजनीतिक लोकतंत्र में ही अपना स्थान नहीं रखते बल्कि आधुनिक समाज में न्याय एवं बंधुत्व के मूल सिद्धान्तों के भी विरुद्ध हैं। बालकों के नये-नये खेल, स्काउटिंग, विद्यार्थियों द्वारा संयोजित अभिनय और उनका छोटे-छोटे कस्बों में देहातों में जाना; ग्रामीण जनता की परम्परागत को मिटाने और उनमें एकता की भावना को विकसित करने में सहायक होगा। हमारे महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों को चाहिये कि अपनी बौद्धिक देन तथा सामाजिक आकांक्षा द्वारा उस अच्छे सामाजिक जनतन्त्र की स्थापना में अपना योग दान दें। जिसमें पाश्चमी उदार चेतना की राजनीतिक और आर्थिक समानता भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के और नैतिक आदर्शवाद से मिल कर श्रीयुक्त होता है, हमें यह स्मरण रखना होगा कि जीवन का संकेत चिन्ह उपेक्षा नहीं अपितु साहसपूर्ण कार्य है, स्थिरता नहीं गति है।

गांधी जी का जीवन हमें शाश्वत नैतिक साहसपूर्ण कार्यों के लिए आमंत्रण देता है।

आर्य समाजों से

अनुशासन एवं संगठन को ध्यान में रखते हुए यह परम आवश्यक है कि सार्वदेशिक सभा का श्री विद्यानन्द विदेह के प्रति निकाला गया आदेश सभी जिलों की समाजें दृढ़ता से पालें और श्री विदेह को कोई भी समाज किसी भी दृष्टि कोण से अपने यहाँ न बुलावे। जो समाजें ऐसा नहीं करेंगी उनके प्रति अनुशासन की कार्यवाही भी की जा सकेगी।

प्रियव्रतशास्त्री
मन्त्री उप सभा, मेरठ

कब !

खो गयी जिसकी अपनी शक्ति उसे मिल सका सहारा कब ?

हृदय में लिये हुए जलराशि
फट गया जब बादल का वक्ष,
नाचता लहर लहर मर मर
न देता सदेशा है यक्ष,

ग्राम बालाओ ने कर जोड, कभी भी उसे पुकारा कब ?

नदी का साहस उसका वेग
तरी का सबल है पतवार,
विसर्जन को निज सम्मुख देख
रुका यदि पल भर कर्णधार,

नही मिल पाया उसको तीर मोड पाया वह धारा कब ?

कर्म को पाते लख अवसान
साधना होते देख मलीन,
नही यदि पाया पौरुष जाग
प्रेरणा आयी नही नवीन,

उसे पहनाने को जय माल भाग्य ने हाथ पसारा कब ?

—विद्यावती मिश्र

सभा की सूचनाएँ

बाढ़ पीड़ित सहायतार्थ दान दाताओं की सूची

जिनका २७-९-५५ तक धन सभा को प्राप्त हुआ है, प्रकाशित की जाती है। दानी सज्जनो को धन्यवाद।

१—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली। १०००)
२—आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश लखनऊ ५००)
३—श्री कृष्णकान्त एडवकेट कृष्णा निवास फजलुर रहमान रोड सहारनपुर १०)
४—गुप्त दान धन्यवाद १००)
५—श्री मन्त्री आर्यसमाज सदरबाजार कानपुर। २५)
६—श्री दयाल अग्रवाल बजाज हिरोर मैनपुरी ११)
७ श्री कालीचरण गुप्ता चौक पीली भीत ४)
८ श्री डाक्टर जे० एस० सूद गोला गोकर्णनाथ खीरी लखीमपुर १०)
९ श्री डी० डी० शर्मा कोषाध्यक्ष वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर सहारनपुर २)
१० श्री मन्त्री आर्यसमाज थाना भवन मुजफ्फरनगर १००)
११ श्री मोहनलाल मन्त्री आ० स० बेवर मैनपुरी ३)
१२ श्री मुरारीलाल सेरसिंह गवा बदायू १०)
१३ श्री जगन्नाथ शीतल प्रसाद २८१ चौक मुकद्दरी प्रतापगढ़ १०)
१४ श्री मन्त्री आर्यसमाज, सदगपुर, सढौली, फर्रुखाबाद ५)
१५ श्री डाक्टर आर० एस० लाल मेहनाजपुर आजमगढ़ ५)
१६ श्री मन्त्राणी स्त्री आर्यसमाज रुड़की सहारनपुर २०)
१७ श्री लालताप्रसाद भोलानाथ सर्राफ चौक बाजार, बहराइच ५)
१८ श्री वासुदेव शर्मा, ओवरसीयर नहर, बहेड़ी बरेली ५)
१९ श्री रामशरण दास द्वारा श्री चतुरभुज, होलीवाला, हसनपुर मुरादाबाद १०)
२० श्री अमरचन्द नागर २११४ काजी वारा दरियागज दिल्ली १०)
२१ श्री प्रधानाचार्य मोतीलाल जूनियर हाईस्कूल सैया आगरा ७॥=)
२२ श्री शान्ति शिहोन २५ नार्थ व्यू शिमला ५)
२३ श्री मन्त्री आर्यसमाज सिर्कागज मैनपुरी १५)
२४ श्री मन्त्री आर्यसमाज शिकोहाबाद मैनपुरी ४०)
२५ श्री नारायण दास लक्ष्मण दास बजाज बारादरी, अलीगढ़ २५)
२६ श्री मुरारी लाल जी मेरठ १५)
२७ श्री मन्त्री आर्यसमाज सदर लखनऊ १०)
२८ श्री आर्य मुनि रस्तोगी ४०१, पुराना किला लखनऊ १०)
२९ श्री मन्त्री, स्त्री आर्यसमाज कायम गज फर्रुखाबाद २१)
३० श्री इन्द्रसेन शर्मा प्रकाश भवन दुग (म० प्र०) रामजी प्रसाद गुप्त कोषाध्यक्ष सभा २०)

आर्य विद्या परिषद् की परीक्षायें

सरकार से राजस्टर्ड आर्य साहित्य मण्डल लि० के अन्तर्गत भारतवर्षीय आर्य विद्या परिषद् अजमेर द्वारा सञ्चालित विद्या विनोद, विद्या रत्न, विद्याविशारद तथा वाचस्पति की परीक्षायें आगामी जनवरी मास में समस्त भारत में होंगी। इन परीक्षाओं में सामान्य ज्ञान, इतिहास, भूगोल राजनीति आदि विषयों के साथ वैदिक धर्म और साहित्य का बहुत ही सुन्दर पाठयक्रम है। प्रत्येक परीक्षा में उपाधि दी जाती है। नियमावली और आवेदन पत्र निम्न पते से मुफ्त मगाइये।

डा० सूर्यदेव शर्मा एम० ए० डी० लिट्
परीक्षा मन्त्री,
भारतवर्षीय आर्य विद्या परिषद्, अजमेर,

"यज्ञरूप प्रभो हमारे" भजन पर धर्मार्य सभा का निर्णय

[श्री आचार्य विश्वश्रवा जी मंत्री सार्वदेशिक धर्मार्य सभा, देहली]

"यज्ञरूप प्रभो हमारे "भाव उज्ज्वल कीजिये" इस भजन के सम्बन्ध में बार बार पत्र आते रहते हैं। ऐसा भी प्रतीत होता है कि कोई एक व्यक्ति ही भिन्न भिन्न स्थानों से पत्र डलवाता है। सब की जानकारी के लिये इस विज्ञप्ति द्वारा स्पष्टीकरण करता हूँ।

किसी भी भजन को मान्यता देना न देना धर्मार्य सभा का काम नहीं और न धर्मार्य सभा ने इस भजन को या किसी भी भजन को कोई मान्यता प्रदान की है। जो भजन जिस को प्रिय हो और सिद्धान्तानुकूल हो अपनी अपनी रुचि के अनुसार सब गाते हैं गावें। यदि इन भजनों को मान्यता प्रदान करने लगेंगे तो आर्य जगत् में सैकड़ों आर्य भजन बनाने वाले हैं सब ही अपने अपने भजनों को मान्यता देने के लिये भेजेंगे इन हजारों भजनों को सिद्धान्तानुकूल है या नहीं यही एक कार्य धर्मार्य सभा का हो जायेगा संभवतः और बातों के विचार का अवसर ही न रहेगा। कुछ पत्र लेखक "यज्ञरूप प्रभो भजन" में और गलतियां लिख कर भेज रहे हैं ऐसे पत्र हमारे पास भेजना अनावश्यक है। यदि उन्हें किसी भी भजन में कोई अशुद्धि प्रतीत होती है तो जिसने वह भजन बनाया है उससे पूछें। धर्मार्य सभा ने "यज्ञरूप प्रभो भजन" नहीं बनाया और न पूरे भजन को शुद्ध अशुद्ध होने का निर्णय ही दिया है और न धर्मार्य सभा ने यह निर्णय किया है कि यज्ञ के अवसर पर या किसी भी अवसर पर इसे गाया करो या न गाया करो।

धर्मार्य सभा का इस भजन से केवल एक बात से ही सम्बन्ध है कि प्रश्न यह उठा था कि परमात्मा के प्रति हाथ जोड़ झुकाये मस्तक कह सकते हैं या नहीं। इस पर निर्णय धर्मार्य सभा का यह है कि ऋषि के ग्रन्थों में पाये जाने से यह शैली वैदिक नहीं है। इस भजन का यज्ञ से ही कोई सम्बन्ध नहीं है अतः सभा ने भजन लेखक को आदेश दिया कि इस भजन का नाम यज्ञ पुरुष महिमा ठीक नहीं और यज्ञ रूप प्रभो के स्थान पर पूजनीय प्रभो करने से वह भ्रान्ति निकल जाती है। अतः यज्ञ पर बैठकर जो यज्ञ कुंड के आगे भक्त लोग हाथ जोड़ झुकाये मस्तक होकर मिथ्या भ्रान्ति आर्य जगत् में फैला रहे थे वह धर्मार्य सभा ने हटादी अब यह भजन जब कि इस में यज्ञरूप शब्द नहीं है तब कहीं भी बैठ कर परमात्मा के लिये और भजन "हे दयामय हम सबों को शुद्धताई दीजिये" आदि गाये जाते हैं ऐसे यह या और भजन सर्वत्र गाये जाते हैं गाये जावें। धर्मार्य सभा की ओर से किसी को मान्यता देने न देने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। यज्ञ कुंड पर बैठ कर ही गाने के लिये यह भजन है इस भ्रान्ति को हटाना धर्मार्य सभा का काम था।

विज्ञप्ति

आर्य जनता की सूचना के लिये यह निवेदन कर देना चाहता हूं कि मैंने बहुत दिन हुये धर्मार्य सभा से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया है। मैं आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश की ओर से उक्त सभा के लिये प्रतिनिधि चुना गया था। मैंने श्री मंत्री जी महोदय को सूचना दे दी है, कि यदि आप चाहें तो मेरे स्थान में किसी अन्य महानुभाव को चुन कर भेज दें।

गंगाप्रसाद उपाध्याय एम०ए०

लौह बन्धन में

(पृष्ठ ११ का शेष)

दुराचार, क्रूरता, छल और कपट है, इनके व्यभिचार के अड्डे बन गये थे। चीन आदि देशों के बच्चों को जबरदस्ती पकड़ पकड़ कर ईसाई बनाना इनका नित्य का कार्यक्रम बन गया था।

चौथे संसार भर में वह कैथोलिक अन्ध विश्वासों तथा बुद्धि शून्य मान्यताओं के सबसे बड़े प्रचारक हैं, जिनके कारण राष्ट्र में मानवता और नैतिकता बुद्धिवाद एवं विश्व बन्धुत्व का विस्तार होना सम्भव नहीं।

तो अब प्रश्न यह है कि अफ्रीका, जापान, भारत, फिलिपाइन्स आदि में इनका विरोध क्यों नहीं होता।

इसका उत्तर हमारी दृष्टि में इन देशों का साम्राज्यवाद जो चक्की में दला जाना है अथवा अंग्रेजों को मानस पुत्र होना है, अफ्रीका में बृटिश, फ्रान्स, इटली आदि के उपनिवेशवाद का बोल बाला है, जापान फिलिपाइन्स में अमेरिका का साम्राज्य कायम है तथा भारत के नेताओं के सर पर अंग्रेजी मत की दासता सवार है, जैसे ही इन देशों में विदेशी साम्राज्यवाद तथा अंग्रेजियत के विरुद्ध ज्वाला धधकेगी यह कैथोलिक पन्थ काफूर की तरह उड़ जावेगा। इस प्रकाश के युग में कोई भी मत या सम्प्रदाय जो मतान्धता, अन्धविश्वास तथा एक चाल के अनुवर्तन का या अलापता है अधिक समय तक टिक न सकेगा।

मानव का जीवन

(पृष्ठ ४ का शेष)

उच्चारने में अभ्यस्त जिह्वा आज साधारण पथिक के लिये भी सम्मान के शब्द कहने को विवश क्यों है? कल जिन आंखों में क्रूर भाव था आज उन्हीं में दैन्य क्यों है? कौशेय वस्त्रों से अलंकृत रहने वाला शरीर आज फटे चिथड़ों से भी अपने को ढकने में असमर्थ क्यों है?

मानव ने अपने जीवन में इस 'क्यों' पर भी विचार किया है कभी?

सम्भवतः मानव के जीवन में उदय और अस्त से सम्बंध रखने वाली गम्भीर समस्या का हल इस एक 'क्यों' में ही सन्निहित हो।

विवाह योग्य कन्याओं का परिचय

१. नाम—विद्यावती
परिचय—आयु १७, १८ वर्ष स्वास्थ्य अच्छा, रंग गोरा सुन्दर, आयुर्वेदाचार्य बी० ए० एम० एस०
पता—कविराज लोकनाथ गुप्त, प्रधान आर्य समाज भागलपुर, बिहार।

२. नाम—सुधावती
परिचय—आयु २६ वर्ष, स्वास्थ्य अच्छा, फर्स्टईयर एफ० ए० में पढ़ रही है। गृह कार्य में दक्ष
पता—कविराज लोकनाथ गुप्त, प्रधान आर्य समाज भागलपुर, बिहार

३. कन्या नाम—अज्ञात
परिचय—आयु, १७, १८ वर्ष मिडिलपास, प्रथमा परीक्षा पास, रंग गोरा, कायस्थ माथुर बीसा
पता—नारायण माथुर वकील, शाजापुर, मालवा, (मध्य भारत)

४. नाम—४ सिंधी बहिनें
परिचय—सुन्दर स्वस्थ्य, गृह कार्य में दक्ष आयु क्रम से १६, १८, २०, २२ वर्ष शिक्षा ८ श्रेणी से १० श्रेणी तक।
पता—मंत्री आर्य समाज गुना मध्य भारत

५. नाम—निर्मलाकुमारी
परिचय—आयु १७ वर्ष, स्वास्थ्य सुन्दर गृहकार्य में दक्ष, विद्याविनोदिनी तथा हाई स्कूल उत्तीर्ण-इन्टर की परीक्षा दे रही है।
पता—श्री बा० पीतमलाल ऐडवोकेट, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश

शंका समाधान

उपासना किसकी ?

[लेखक—महात्मस्वरूप गुप्त एम०ए० एडवोकेट- मेरठ]

'उपासना किसकी' शीर्षक एक लेख मेरा २८।८।५५ के साप्ताहिक 'आर्य मित्र' के अन्तिम पृष्ठ पर प्रकाशित हुआ है। उसके सम्बन्ध में दो पत्र शंका के मुझे प्राप्त हुए हैं।

१—श्री वेदानन्द शर्मा स्थान व पोस्ट अतरनपुर जिला हरदोई का तथा २—किन्हीं लखनऊ के महानुभाव का।

पहिले पत्र में तो मुझ से श्री गोस्वामी तुलसी दास जी की रामायण की उक्ति 'सगुणोपासक मोच्छन लहहीं' का पता पूछा गया था और यह लिखा गया था कि पत्र लेखक महानुभाव ने मेरा उक्त लेख किन्हीं सनातन धर्मी मित्रों को दिखाया जिन्होंने 'रामायण में या तुलसीदास की किसी पुस्तक में' उक्त चौपाई दिखाये जाने पर आर्य बन जाने का वचन दिया। मैंने उन्हें पता भेज दिया।

दूसरे पत्र में मुझे ताड़ना दी गई कि चौपाई में शब्द 'लहहीं' नहीं है; 'लेहीं' है अतः ऐसी गलत बात लिखनी उपयुक्त नहीं।

उक्त शंका के समाधान में निम्न पंक्तियें लिखता हूं। आशा है शंकाओं का निराकरण हो जायगा।

१. यह ठीक है कि चौपाई में शब्द 'लेहीं' है 'लहहीं' नहीं है। और यह भूल सम्भवतः मेरे लिखने म हो सकती है अथवा छपने में, तो भी निम्न लेख से प्रकट हो जायगा कि इस भेद से विवेचनीय विषय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

२. मेरा लेख था कि 'उपासना किसकी' और उसमें भिन्न विचार धाराओं के अनुसार ईश्वर का क्या स्वरूप है और ईश्वर को साकार, निराकार अथवा कैसा मान कर हम उसकी आराधना, स्तुति व उपासना करनी योग्य है, इस ही का विवेचन उक्त लेख में किया गया है। इसी सम्बन्ध मे उसमे मैंने यह बताया कि श्री गोस्वामी तुलसीदास जी सगुण (साकार) उपासना से मोक्ष प्राप्त नहीं मानते। क्योंकि कहा है कि—

'सगुणो पासक मोच्छन लहहीं' (क्योंकि मूल लेख मे ऐसा ही छपा अतः ऐसा ही यहाँ लिखा)।

इस कारण मोक्ष के इच्छुकों को सगुण (साकार) उपासना करनी योग्य नहीं है। अब शब्द 'लहहीं' तथा 'लेहीं' के भेद से इतना अर्थ बदल सकता है कि 'लहहीं' के साथ अर्थ प्राप्त करने का है और 'लेहीं' के साथ लेने का। अर्थात् स्वयम् ही नहीं लेते।

अब यदि इसके पूरे प्रकरण को देखा जाय तो यह भेद भाव भी ऐसे ही लुप्त हो जायगा जैसे वर्तमान संसार से छूत छात लोप हो रही है।

प्रकरण:—

राम ने रावण वध कर दिया है। और सीता जी की अग्नि परीक्षा हो चुकी है सब देवता राम की स्तुति करते हैं चतुरानन (ब्रह्माजी) भी (देखो लंका काण्ड दोहा संख्या ११० तथा १११ के नीचे पुस्तक रामचरित्र मानस गुटका, गीता प्रेस गोरखपुर) तभी महाराज दशरथ जी भी राम के गुण गान करने आते हैं। दोहा संख्या १११ के नीचे राम तथा लक्ष्मण पिता के चरणों में पड़ जाते हैं। राम कहते हैं कि यह सब आपकी ही कृपा से सफल हुआ है। फिर राम दशरथ को ज्ञान देते हैं, जिससे दशरथ 'सुरधाम' को जाते हैं।

इस समय निम्न चौपाई लिखी है:—

ताते उमा मोच्छ नहीं पायो।
दशरथ भेद भगति मन लायो॥
सगुणोपासक मोच्छ न लेहीं।
तिन कह राम भगति निज देहीं॥

बात इस प्रकार है कि सारी रामायण तुलसीदास जी इस प्रकार लिखते हैं कि शिव जी महाराज उमा (पर्वती) को रामचरित सुना रहे हैं। अतः उपरोक्तानुसार दशरथ जी के राम के गुण गान करने आने पर शिव जी स्वयम् शंका मान कर उसका निराकरण करते हैं कि—

हे उमा (पार्वती) दशरथ ने 'ताते' इस कारण से मोक्ष नहीं पाया था [अर्थात् अब तक नहीं पाया था, अब तो राम के ज्ञान देने से सुरधाम को चले ही गये] कि उन्होंने 'दशरथ ने' भगति का भेद 'रहस्य' मन में लिया था [अर्थात् राम की केवल भक्ति ही की थी] और सिद्धान्त यह है कि—सगुणोपासक मोच्छ न लेहीं [नहीं लेते अर्थात् प्राप्त करते] उन्हें तो राम अपनी भक्ति देते हैं।

इस प्रकार इस सब से स्पष्ट है कि—

दशरथ ने केवल भक्ति ही की थी। अथवा प्रेमकी और पहिचानी थी। और इस कारण ही उन्हें मोक्ष नहीं हुआ। मोक्ष तो केवल ज्ञान मार्ग ही से मिलता है। और ज्ञान मार्ग का सम्बन्ध सगुण उपासना से नहीं है। सगुण उपासना और भक्ति मार्ग से तो उन दशरथ जी का भी मोक्ष न हुवा जिन्होंने 'राम राम कहि राम राम कहि राम' इस प्रकार से केवल राम नाम जपते, राम में ध्यान रखते, और राम के अतिरिक्त अन्य किसी का लेश मात्र भी विचार न करते हुए शरीर त्यागा था। और उन ऐसे दशरथ महाराज को मोक्ष तब ही हो सका कि जब उन्हें राम ने 'ज्ञान' दिया। क्योंकि भक्ति मांगी, मोक्ष नहीं पाते [लेते] उन्हें तो राम अपनी भक्ति देते हैं।

इस प्रकार प्राप्त करते [लहहीं] और लेते [लेहीं] के भेद पर भ्रम फैलाना भूल है। विद्वानों का कर्तव्य है कि उचित को जाने तथा जनावें।

अधिक स्पष्ट करने को उक्त दोहा संख्या १११ लंका काण्ड और उसके नीचे की सब चौपाई नीचे देता हूँ—

दोहा—विनय कीन्हि चतुरानन,
प्रेम पुलक अति गात।
सोभा सिन्धु बिलोकत,
लोचन नहीं अघात॥१११॥

चौ० तेंहि अवसर दसरथ तहं आये।
तनय बिलोकि नयन जल छाये॥
अनुज सहित प्रभु बन्दन कीन्हा।
आसिरबाद पिता तब दीन्हा॥
तात सकल तव पुन्य प्रभाऊ।
जीत्यों अजय निसाचर राऊ॥
सुनि सुत बचन प्रीति अति बाढ़ी।
नयन सलिल रोमावलि ठाढ़ी॥
रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना।
चितइ पितहिं दीन्हे दृढ़ ग्याना॥
ताते उमा मोच्छ नहिं पायो।
दसरथ भेद भगति मन लायो॥
सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं।
तिन कहुं राम भगति निज देहीं।
बार-बार कार प्रभुहि प्रनामा।
दसरथ हरषि गये सुरधामा॥

पता—'आर्यमित्र'
५ मीराबाई मार्ग, लखनऊ
फोन—११३
तार—"आर्यमित्र

आर्यमित्र

रजिस्टर्ड नं० ए० ६०
२ अक्तूबर, १९५५

आर्यसमाज के समस्त पत्रों में सबसेअधिक छपने वाला आर्य प्रतिनिधिसभा उत्तर प्रदेश का मुखपत्र—

लखनऊ—रविवार १६ अक्टूबर तदनुसार आश्विन शुक्ल १ सम्वत् २०१२ सौर २३ आश्विन २९ दयानन्दाब्द १३० सृष्टिसम्वत् १९७-२९४९०५५

सम्पादकीय

हमारी स्थिति

विकट संकट के भीषण चक्रों में आज हमारे धर्मशास्त्रों की मर्यादा लगभग समाप्त हो रही है। भारतीय संसद के द्वारा विवाह और उत्तराधिकार के संबंध में जो नए नियम लागू किये जा रहे हैं, (जो अनिवार्य रूप से प्रत्येक हिंदू पर (आर्यों सहित) लागू होंगे! इस बात को गंभीरता से यदि हम विचारें तो ज्ञात होगा कि यह व्यक्ति की निजी स्वतंत्रता पर प्रबल कुठाराघात है। कहा यह जा रहा है कि आज युग परिवर्तित हो रहा है। ऐसे में सड़े गले पुराने मनु के धर्मशास्त्र को लागू रखना बुद्धिमानी नहीं। किन्तु इस निर्णय को करने का अधिकार किसने चंद व्यक्तियों को दिया?

सुधार के नाम पर व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का यह दमन प्रजातंत्र के सर्वमान्य प्रकार को ही शोभा देता है। एक ओर कहा जाता है कि भारत धर्मनिरपेक्ष राज्य है। प्रत्येक को अपने अपने विचारों के अनुसार कर्म और विचार करने की स्वतंत्रता है, दूसरी ओर केवल हिन्दुओं के धर्मशास्त्रों पर प्रहार करने में आमादी बनने की होड़ सी लग गयी है। मुसलमानों की शरीयत और ईसाइयों को छेड़ने का साहस किसी में नहीं है और हिंदुओं का इन के लिए नियम बनाने का पूर्वाधिकार सदा सुरक्षित है।

भारत को यूरोप और इंग्लैंड बनाने की धुन में हमारे राष्ट्र नायक आंखें बंद कर प्राचीन को ठुकराने पर लगे हैं। उनकी दृष्टि में प्राचीन सभी दोष पूर्ण है और नवीन गुणभंडार! भौतिकवाद के प्रभाव ने सोचने विचारने और कार्य के प्रकार में मौलिक अंतर उपस्थित कर दिया है। जिसका परिणाम आर्य संस्कृति संबंधित प्रत्येक व्यक्ति को भोगना पड़ रहा है।

भारत का बौद्ध, मुसलमान, ईसाई, राष्ट्रीय बन सकता है। उनकी शिक्षा संस्थाओं को करोड़ों रुपया राज्य से दिया जा सकता है क्योंकि बौद्ध नास्तिक है, यवन बर्बर और भारत के अंग भंग कराने वाले, ईसाई राष्ट्रीयता की जड़ें खोखली करने वाले। किंतु वे ऊपर से मधुर बन कर धोखा देना जानते हैं इस लिए वे राष्ट्रीय हैं, राज्य से संरक्षण पाने के अधिकारी हैं। और सच्चे राष्ट्रीय आर्यत्व के भावों से सींचने वाले वैदिक संस्कृति अभिमानी लोगों से ठुकराने योग्य सांप्रदायिक। कितना अनर्थ है, पाप है, अपराध है, यह सब कुछ!

हमारा निवेदन है कि वर्तमान सामाजिक निर्णय की घोषणा करने वाले नेतागण भारत में नास्तिक स्वार्थ पूर्ण पशुता भरी स्मृति को प्रसारित करना चाह रहे हैं। सत्य-अहिंसा की चादर ओढ़, भोली भाली जनता को बहका कर बर्बर असभ्य और पाशविक प्रेरणाओं से पूर्ण विचारधारा को प्रसारित करने का यत्न किया जा रहा है। जीवन निर्माण

मौलाना अबुलकलाम आजाद हैं। हमारे धर्म शास्त्रों की निर्मात्री वह संसद है, जसके अधिनायक भारत को यूरोप बनाना चाहते हैं और जिन्हें भारत के पूर्व गौरवमय इतिहास का लेश मात्र भी ज्ञान नहीं। प्रतिदिन ऐसे नियम बन रहे हैं जिन्होंने स्मृति और शास्त्रों की परंपरा को समाप्त कर अपना प्रभाव

आर्य समाजों से

इस समय "दैनिक मित्र" की उन्नति और भविष्य २००० वार्षिक सदस्यों पर आकर अटक गया है! २२) वार्षिक देने वाले २००० व्यक्ति हमें आर्य जगत में से चाहिये! इस प्रकार यह परिक्षा की घड़ी संम्पूर्ण आर्यों के सामने आयी है! आर्य कभी असफल नहीं होते, यह अटल विश्वास हमारा बल है!

मूल्य २४) के स्थान पर २२) कर दिया! २२) में ही साप्ताहिक का मूल्य ८) भी शामिल है! इस प्रकार केवल १४) में दैनिक पड़ा! बताइये और क्या चाहते हैं आप!! यह सुविधा ३१ अक्टूबर तक के लिये बढ़ा दी गयी इसलिये अब प्रतीक्षा न कीजिये और न आलस्य भी!

अपने क्षेत्र से अधिकाधिक सदस्य बना कर भेजिये! प्रत्येक आर्य आर्य व आर्य समाज का यह नैतिक कर्तव्य है कि वह आर्य समाज के एक मात्र दैनिक की उन्नति करने में शक्ति का पूरा उपयोग करें!

कितने सदस्य आप तुरत भेज रहे हैं इसका निर्णय आज ही कीजिये!

विनीत

जयदेवसिंह एडवोकेट	कालीचरण आर्य
मन्त्री	अधिष्ठाता
आर्यप्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश	आर्यमित्र

में सादगी तपस्या, प्रेम अपनत्व और मिल कर काम करने की भावना को कुचला जा रहा है। भोग विलास को, नग्नता को उच्छृंखलता और वर्ग संघर्ष को प्रश्रय दिया जा रहा है। प्रतीत होता है कि मनुष्य के अंतर का असुर देवों की पोशाक पहने जाग उठा है। परिणाम भी स्पष्ट है हाहाकार पीड़ा और असंतोष से राष्ट्र व्यथित हो उठा है।

भारत की शिक्षा के सर्वोच्च नियामक निर्देशक भारतीय संस्कृति के शत्रु प्रसारित करना आरंभ किया है।

प्रश्न उठ सकता है कि इस सब के लिए उत्तरदायी कौन? क्या केवल शासक वर्ग को दोष देना ही उचित है? हमारा उत्तर है नहीं, अधिकांश दोष हमारा है हम अपने गौरव सिद्धांत और मर्यादाओं को भूल गए। हमारा सामाजिक संगठन नष्ट भ्रष्ट हो गया। हमारी कथनी और करनी में भेद हो गया। हमें स्वयं धर्म कर्म पर श्रद्धा न रही। हमने केवल कहा किया कुछ भी नहीं। हमें जिन्होंने कुचला, हम सदा उनको सहारा देते रहे इस तरह आज तक अपनी ही तलवार से अपनी गरदन कट जायी। एक मुसलमान को अभिमान है।

अपने इस्लाम पर, वह राजनीति में भी इस्लामको नहीं भूलता, ईसाई सिक्ख और सभी अपने मत के लाभ के लिये राजनीति में भाग लेते हैं किंतु हम अपने विश्वासों और आधारो को तिलांजलि देकर दूसरों के साथ बहने में तनिक भी तो संकोच नहीं करते। सोचिए, परिणाम, अपने कर्मों का, हम संसार को आर्य बनाने चले थे, वैदिक युग की स्थापना हमारा लक्ष्य था, पर आज हमारा अस्तित्व तक संकट में पड़ गया है। हम क्या थे और कहां पहुँच गए हैं। विश्व भर को शिक्षा दीक्षा; ज्ञान दर्शन और उन्नति का मार्ग दिखाने वाले हम, आज पिछड़े सांप्रदायिक और प्रतिक्रियावादी कहे जा रहे हैं। इस अपमान और लज्जा को सह कर भी अपने को जीवित समझने वालों को हम क्या कहें?

किंतु अब क्या हो, किया क्या जाए यह प्रश्न है जो हमसे प्रायः पूछा जाता है, हमारा उत्तर है कि गीदड़ों के झुंड में रहते रहते सिंह का बालक भी अपने को श्रृगाल ही समझने लगा था। एक दिन उसे अपना बोध हुवा और फिर उसने हुंकार की जिसे सुन सभी को तथ्य का ज्ञान हो गया। आज भी आवश्यक यही है कि हम अपने को समझें, समझ कर अपने जागरण की घोषणा कर दें, फिर देखें कौन साहस करता है हमें और हमारी सँस्कृति को गिराने का जगाने की चेष्टा बाल ब्रह्मचारी दयानन्द ने की, लेखराम और श्रद्धानन्द ने की। किंतु हमारी नींद नहीं टूटी। आज भी वह चल रही है। विनाश की ओर तीव्रता से बढ़ते हुये भी हमें यदि चेत न हुआ तो कब होगा। आप जाने या भगवान्!

पुनर्गठन आयोग की रिपोर्ट

गत सप्ताह की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना राज्य पुनर्गठन आयोग की रिपोर्ट का प्रकाशन है। अधिकांश पाठक इस रिपोर्ट के बारे में बहुत कुछ पढ़ चुके होंगे अतः अधिक लिखना उचित न समझते हुऐ हम केवल यह कहना चाहते है कि कमीशन के माननीय सदस्यों ने अपनी रिपोर्ट अत्यन्त निष्पक्ष भाव से केवल राष्ट्रीय हित को दृष्टि में रखकर लिखी है। कमीशन ने अकालियों की पंजाबी सूबे की मांग ठुकरा दी है। हिमांचल और पेप्सू को पंजाब में मिला

आर्य प्रतिनिधि सभा के

प्रधान जी को खुला पत्र

[श्री रामबहादुर जी मुख्तार, पूरनपुर]

आदरणीय प्रधान जी आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश,

नमस्ते ! कुछ विचार आपके समक्ष रखना चाहता । मेरा ख्याल है कि आर्यसमाज की वर्तमान अवस्था में आप भी उसी प्रकार सन्तुष्ट न होंगे जिस प्रकार कि और लोग । मुझे तो थोड़े समाजों में जाने का अवसर मिला है आप तो कहीं अधिक स्थानों पर चुके हैं । —लेखक

आर्य समाजें

६. वर्तमान समय में आर्य समाजें तीन श्रेणियों में विभक्त की जा सकती हैं (१) ग्रामीण (२) कस्बों की (३) शहरों की।

(१) ग्रामीण समाजों के सम्बन्ध में यदि यह कह दिया जावे कि वास्तव में वहां कोई आर्य समाज है ही नहीं तो कुछ अनुचित न होगा । जब कोई एक दो व्यक्ति ऋषि दयानन्द के भक्त हो गये । आर्य समाज स्थापित करली जो या तो उनकी मृत्यु के साथ समाप्त हो गई या जब उन का जोश ठंडा हो गया तो आर्य समाज भी ठंडी हो गई है । परन्तु सभा के रजिस्टर में नाम लिखा चला जाता रहता है ।

(२) कस्बों की आर्य समाजों की यह दशा है कि अधिकतर उनके मन्दिर अपने हैं । मन्दिर के नाते उनका नाम जीवित है । परन्तु उनमें से अधिक संख्या ऐसी है जिनमें न साप्ताहिक अधिवेशन होते हैं न कोई उत्सव होता है, और न वार्षिक निर्वाचन ही होते हैं । कहीं-कहीं तो यह अवस्था है कि नगर वाले भी यह नहीं जानते कि आर्य समाज मन्दिर है भी या नहीं । न सभा के पत्रों का उत्तर वहां से मिलता है, न वहां जनता की सेवा का कार्य समाज द्वारा होता है । न वहां मन्दिरों की मरम्मत ही होती है । बहुत थोड़े कस्बों की समाजें ऐसी हैं जहाँ कुछ कार्य होता है ।

(३) शहरों की समाजें । अवश्य कुछ लकीर पीटती चली आ रही हैं, साप्ताहिक सत्संग त्योहार उत्सव आदि होते रहते हैं । सभा का अन्तरंग चन्दा भी बहुधा समाजों से मिल जाता है ।

परन्तु कहीं भी किंचित मात्र प्रगति, जीवन तथा उत्साह प्रतीत नहीं होता । हम इन त्रुटियों के कारण तथा उनके निराकरण के उपाय ढूंढ निकालने में बिल्कुल उदासीन हैं । मैं यह नहीं कहता कि आप इस पर विचार नहीं करते होंगे, अवश्य करते होंगे । क्यों कि आप जैसे दार्शनिक व विचारक की दृष्टि इस ओर अवश्य जाती होगी परन्तु किन्हीं कारणों से हम लोग उदासीन अवश्य हैं यह निर्विवाद है ।

आर्य प्रतिनिधि सभा

अब कुछ आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर विचार कर लेना चाहिए ' सभा की प्रायः वर्ष में चार अन्तरङ्ग सभा तथा एक साधारण सभा की बैठकें होती हैं इन सभी बैठकों में केवल दफ्तरी कार्यवाही ही होती है । हम कभी भी एक मिनट आर्यसमाज की शोचनीय दशापर विचार नहीं करते न यह सोचते हैं कि किस प्रकार हम अपना भविष्य ऊँचा करें । हमारी इन बैठकों में अपनी प्रगति को बढ़ाने तथा दोषों को दूर करने व जन साधारण की सेवा करने तथा सर्वसाधारण को अपने प्रभाव में लाने के उपायों पर कोई प्रस्ताव पास नहीं होते । यदि इस प्रकार के कोई प्रस्ताव कभी किसी ने प्रस्तुत कर भी दिये तो कभी समय का अभाव कह कर, और कभी अनावश्यक समझ कर हवा के झोंके के साथ उड़

जाता है । परिणाम यह हो रहा है कि धीरे धीरे निराशा का वातावरण बढ़ता जा रहा है ।

आर्यसमाज की सदस्यता

नव युवक तो आर्य समाज से दूर हो ही चुके हैं मानों नवीन रक्त तो आर्य समाज की ओर देखता ही नहीं । स्त्रियों पर वैसे ही कोई प्रभाव नहीं के सदृश है । ८० प्रतिशत आर्य घराने ही ऐसे होंगे जहाँ देवियां आर्या नहीं हैं । कुछ थोड़े से वृद्ध ऐसे हैं जो अब भी ऋषि दयानन्द के भक्त हैं और कार्य करते रहते हैं । परन्तु यह वृद्ध कब तक चलेंगे । इन वृद्धों के समाप्त होने पर आर्य समाज का क्या बनेगा । आर्य समाज की करोड़ों की सम्पत्ति का क्या बनेगा । और भावी सन्तान हमें क्या कहेगी । इस अवस्था पर हमें गम्भीरता से अवश्य विचार करना चाहिए ।

आर्यसमाज की बात समझ में ही नहीं आती है । अत वह वैसे ही दूर रहते हैं । अब केवल थोड़े से व्यक्ति रह गये जिनको आर्यसमाज की बात सुनने का व्यसन पड़ा हुआ है वही गिने चुने लोग हर समय आ जाते हैं । (८) अधिकतर उपदेशकों की यह मनोवृत्ति है कि जहाँ जैसे अधिकारी देखें वहां वैसी ही बातें कह दीं ताकि धन मिलने में कहीं बाधा न पड़ जावे । [९] प्रचार का केवल एक ही ढंग, साठ साल पुराना, ढोलक बाजा और कुछ लेक्चर और चाहते हैं ईसाइयों को परास्त करना (१०] साहित्य और पत्रिकाओं की न्यूनता तो सभी अनुभव करते हैं ।

हमारा ध्येय

हमें अपना ध्येय 'कृण्वन्तो विश्वम् आर्यम्' पूरा करने के लिये अपनी वर्तमान अवस्था पर सन्तोष नहीं करना चाहिये । हमारा उद्योग तो यह होना

सुझाव और सम्मतियाँ

'प्रचार विभाग'

अपने प्रचार विभाग पर भी कुछ विचार करना आवश्यक है । (१) उपदेशक ग्रामों में जाना तो पसन्द करते ही नहीं, न हमारे पास ग्रामों में पहुँचने के साधन हैं । (२) जब आर्य समाजें चाहती हैं तो उनको उपदेशक नहीं मिलते (३) जब उपदेशक खाली होते हैं तो समाजें नहीं बुलाती हैं. अधिकतर उपदेशक वहीं जाते हैं जहां धन मिलता है वे बिचारे भी क्या करें उनकी भी अपनी आवश्यकतायें हैं । [४) कितने उपदेशक हैं कि जिनकी बात सुनने को लोग दौड़ते हैं । [५] उपदेशकों के पास कोई निश्चित कार्यक्रम नहीं जिनके आधार पर वह प्रचार करें । (७) पढ़ा लिखा और व्यापारी समुदाय तो आर्यसमाज की बात सुनना नहीं चाहता । वर्तमान शिक्षा के कुप्रभाव से पढ़ा लिखा समुदाय तो ईश्वर, जीव, प्रकृति के झमेले में पड़ना ही नहीं चाहता, सन्ध्या हवन को फिजूल की चीजें समझता है । व्यापार में व्यापारी को तिकड़मबाजी से धन कमाने ही से अवकाश नहीं है । उसके लिये तो लक्ष्मी ही भगवान है । जनपद को तो

चाहिये कि अधिक से अधिक दृढ़ वैदिक धर्मी बनें और शेष जन समुदाय आर्य समाज से प्रभावित हो । ऐसा वातावरण बने कि आर्यसमाज जो कार्य हाथ में ले उसमें जनसाधारण का पूर्ण सहयोग सहज में प्राप्त हो जावे ।

उपाय

इस कार्य की पूर्ति के लिये पहले हमें वर्तमान आर्यों को सुसंगठित करके एक विशेष प्रकार से तैयार करना होगा । उनमें नव उत्साह और स्फूर्ति लानी होगी । अत सर्वप्रथम मेरा सुझाव यह है कि आर्य जगत के उच्चतम कोटि के दस विद्वान किसी एक स्थान पर सम्मिलित होकर कम से कम एक सप्ताह तक अत्यन्त शांत चित्त होकर आर्यसमाज की वर्तमान दशा, उसके कारण तथा उसके दूर करने के उपायों पर गहरा विचार कर कोई निश्चित कार्यक्रम बनाने का प्रयत्न करें । आवश्यकतानुसार एक से अधिक बार के इस प्रकार सम्मेलन करें । पूर्व इसके कि यह विद्वान एक स्थान पर अन्तिम निर्णय के लिये बैठें एक प्रश्नावली इस आशय से तैयार करें कि जिनके उत्तरों के फलस्वरूप आर्य समाज की वर्तमान दशा, विशेष स्थानों की विशेष आवश्यकताएँ [illegible] के कारण तथा उनके दूर करने के उपायों आदि के सम्बन्ध में आर्यसमाजों तथा आर्य विद्वानों के विचार साधारणतया ज्ञात हो सकें ।

अच्छा हो कि इस प्रकार का एक आयोग सार्वदेशिक सभा की ओर से नियुक्त हो । यदि यह सम्भव न हो तो अपनी प्रतिनिधि सभा अपने प्रदेश में प्रगति लाने के लिये यह उपाय करे । यदि यह प्रयोग अपना कार्य पूरन र में करें तो इसका व्यय भार आर्यसमाज पूरनपुर द्वारा वहन करने का प्रयत्न किया जा सकता है ।

'कुछ सुझाव

कुछ क्रियात्मक सुझाव जिन पर कार्य करने के से सँभवत प्रगति आ सकती है —

१. सबसे पहले आर्य प्रतिनिधि सभा को अपनी कार्य शैली तथा प्रचार में कुछ परिवर्तन व संशोधन करने होंगें ।

(अ) कार्य शैली—हर वार्षिक निर्वाचन के पहले अथवा बाद को आगामी वर्ष का कार्यक्रम बनाने गत वर्ष की गतिविधि, तथा प्रगति लाने के उपायों पर विचार करने के निमित्त आर्य प्रतिनिधि सभा की साधारण सभा अपना पूरा एक दिन लगाया करे और उसी के अनुसार पूरे वर्ष कार्य किया जाया करे ।

[ब] अन्तरंग सभा सदैव दो दिन रखी जाया करे, एक दिन तो कार्यालय तथा प्रबन्ध सम्बन्धी अर्थात् वे कार्य जो अब होते हैं करने के लिये, और एक दिन में से आधे दिन आर्यसमाज में प्रगति लाने सम्बन्धी उपायों पर विचार और शेष आधे दिन नित स्थान पर अन्तरंग सभा की बैठक हो उस क्षेत्र के समस्त आर्यसमाजो के पदाधिकारी गण के साथ हुआ करे जिसमें सभा प्रधान से सबका परिचय कराया जाया करे तथा उस क्षेत्र की विशेष समस्याओ की जानकारी प्राप्त की जाया करे और सबको सभा कार्यक्रम से अवगत कराकर प्रगति लाने के उपाय किए जाया करें ।

(२) या तो आर्य प्रतिनिधि सभा का कोई उपदेशक, अथवा जिला का कोई विशेष व्यक्ति अथवा सभा का अन्तरंग सदस्य जिसको सभा नियुक्त करे एक निश्चित क्षेत्र की उन आर्य समाजों में जिनमें हर वर्ष निर्वाचन नही होते हैं तथा वार्षिक फार्म भर कर सभा को नही जाते हैं मास जनवरी व फरवरी में मे स्वयम् पहुँच कर अपनी उपस्थिति में निर्वाचन करा दिया करे और फार्म आदि भिजवा दिया करें । जिससे आर्य समाजों में प्रगति तथा सभा व [illegible] के सम्बन्ध में दृढ़ता आयेगी तथा सभा की आय में भी वृद्धि होगा ।

(३) कुछ उपदेशकों को उत्सव आदि पर जाने के लिए (reserve) रख कर शेष उपदेशकों में से एक एक को एक-एक वर्ष के लिये एक एक निश्चित क्षेत्र में स्थाई रूप से किसी केन्द्र स्थान पर रक्खा जावे (पहले पहल सम्भवत क्षेत्र

(शेष अगले पृष्ठ पर)

(पिछले पृष्ठ का शेष)

वे छाँटे जावें जहाँ उपदेशक का वेतन आदि का भार उस क्षेत्र के कार्यकर्ता अपने ऊपर ले लें, उपदेशक को धन न माँगना पड़े बिना माँगे मिलने पर लेने में कोई हानि नहीं) उपदेशक वहां रह कर (organisor) का कार्य करे, आर्य समाजों में साप्ताहिक अधिवेशन करने, हिसाब किताब नियमपूर्वक रखने, सन्ध्या हवन, जन सेवा आदि के ढंग सिखाने का कार्य करे। जनता में व्यक्तियों से मिल भेंट कर आर्य समाज की ओर ध्यान आकृष्ट करें। उस क्षेत्र की विशेष संस्थाओं की जानकारी प्राप्त करना और उनसे समाजों व सभा को अवगत कराना आदि कार्य करना। जन साधारण की अपने दिन की आवश्यकताओं में नैतिकता के आधार पर सहयोग देना आर्यों को दिनचर्या में सम्मिलित होना चाहिये यह सब तभी सम्भव हो सकता है जब स्थाई रूप से एक क्षेत्र में उपरोक्त प्रकार से कार्य कराया जावे। सम्भव है प्रारम्भ में यह योजना पाँच चार प्रांतों (जिलों) में ही कार्य रूप में परिणित हो सके परन्तु जिन जिलों में इस प्रकार कार्य किया जावेगा वहां ठोस प्रचार हो सकेगा।

(४) प्रत्येक वर्ष के आरम्भ में सभा के समस्त उपदेशकों का सम्मेलन सभा प्रधान व मन्त्री जी के साथ हुआ करे जिसमें गत वर्ष के अनुभवों तथा साधारण सभा द्वारा निश्चित कार्य क्रम के अनुसार आगामी वर्ष का कार्य क्रम बना कर तथा प्रचार शैली निर्धारित करके समस्त प्रदेश में एक रूपेण प्रचार कार्य हुआ करे। तथा किसी एक विषय को आँदोलन के रूप में उठाया जाया करे।

नवयुवकों सम्बन्धी सुझाव

वर्तमान काल में स्कूली शिक्षा के प्रभाव से नव युवक केवल संध्या हवन के प्रोग्राम में दिलचस्पी लेने वाला नहीं है। संसार की चका चौंध में पड़कर नव युवक का बहाव धार्मिकता से दूर भौतिक वाद की ओर आ रहा है अतः कार्य क्रम ऐसा हो जिसमें नवयुवक का मन भी लगे और धीरे २ उसका झुकाव सत्य पथ की ओर भी होवे। इसके लिये कुछ सुझाव नीचे दिये जाते हैं।

(१) यूनीवर्सिटियों, कालिजों, स्कूलों में क्रम बद्ध प्रचार की यथेष्ट योजना बनाई जावे।

(२) आर्य समाजों में एक विभाग ऐसा खोला जावे जिसके द्वारा सर्व साधारण के कष्टों (चाहे वे सरकारी कर्मचारियों द्वारा पहुँचाये जाते हों चाहे जनता के किसी वर्ग या व्यक्ति विशेष द्वारा) को सुना जावे और उनके निराकरण के लिये उचित उपाय काम में लाये जावें।

(३) भ्रष्टाचार के दूर करने के लिये क्रियात्मक प्रोग्राम बनाया जावे अर्थात् ऐसा उद्योग हो कि आर्य समाज द्वारा लोगों को व्यक्तिगत रूप से समझाने का कार्य किया जावे तथा आवश्यकता पड़ने पर सरकार द्वारा दण्ड दिलाने का भी प्रयत्न किया जावे।

(४) शराब, [illegible], [illegible] [illegible] को [illegible], गो मांस जहाँ चोरी छुपे बिकता हो वहाँ उसको पकड़वाने आदि प्रकार के कार्यों को आँदोलन के रूप में समय २ पर हाथ में लिया जावे।

(५) आर्य वीर दल के द्वारा [illegible]

(शेष पृष्ठ १३ पर)

स्वास्थ्य-सुधा

लम्बी आयु का रहस्य

हममें से प्रत्येक लम्बा जीने की कितनी इच्छा रखता है। हम दीर्घ जीवन प्राप्त करने के उपाय खोजने की चिन्ता में रहते हैं। कोई कोई उपाय बताता है और कोई कोई। हाल ही में सर हरबर्ट ब्रेकर ने दीर्घ जीवन के सम्बन्ध में एक लेख लिखा है। आपका कथन है कि पूरे मन के साथ जिन्दगी भर काम में लगे रहना ही दीर्घ जीवन का एक उपाय है। आपके लेख का सार नीचे दिया जाता है। पाठकों के लिए शिक्षाप्रद होगा।

"हम अवधि से ही पहले ही मर जाते हैं। बीमारी आकस्मिक आघात और बुरे ढंग का रहन सहन स्वास्थ्य के लिए हानिकर पेशों का करना, इनमें से कोई भी एक या सभी मिल कर जल्दी चले जाने के लिये बाधित करते हैं। एक तिहाई मनुष्य ऐसे हैं जो ६०-७० साल की पाते हैं और शायद लाखों में से दो ऐसे होते हैं जो शतायु होते हैं पर हमारे जीवनों के लिये इतना छोटा होना कोई आवश्यक नहीं है। हम इससे बच सकते हैं। विज्ञान ने मृत्यु को परे धकेलने में सहायता देने वाली अनेक बातों का आविष्कार किया है। यदि हम अपने शरीर की मशीनरी को पूरी तरह समझ कर उसके अनुकूल अपना जीवन व्यतीत करें तो हम अपनी आयु को बढ़ा सकते हैं।

"जीवन को लम्बा करने के जितने उपाय हैं उनमें से मुख्य कार्य में लगे रहना है। कार्यशीलता और दीर्घ जीवन का सम्बन्ध है। संसार में जुटे रहने वाले पुरुष हों, यदि अन्य उत्तम भोजन व्यायाम और स्वच्छ वायु का सेवन आदि बातों की ओर भी ध्यान दिया जाता रहा हो, लम्बे से लम्बा जीवन व्यतीत करते हैं। काम में लगे रहने का मतलब हजारों रुपया आदि कमा लेना आदि नहीं है। काम का अर्थ है शरीर और मस्तिष्क से इतना कार्य लेना जितना वे अधिक से अधिक दे सकते हैं। शरीर को कई बार मशीन से उपमा दी जाती है और कहा जाता है कि अधिक कार्य लेने से जैसे मशीन बिगड़ जाती है वैसे ही अधिक कार्य लेने से शरीर का स्वास्थ्य भी नष्ट हो जाता है। मशीन और शरीर में समता है सही पर वह सर्वांश में नहीं है। कार्य लेने से मशीन भी क्षीण हो जाती है और शरीर भी। पर शरीर साथ ही अपने-आपको नया भी करता रहता है। शरीर के क्षीण भग्न अवयव का स्थान नये बने हुए अवयव लेते रहते हैं। शरीर में उत्पत्ति, वृद्धि और नाश का चक्र साथ ही चलता रहता है। इस दृष्टि से शरीर मशीन नहीं है।"

'अत्यधिक कार्य से मस्तिष्क थक शक्तिहीन हो जाता है इस प्रचलित विश्वास को विज्ञान ने अनेक परीक्षणों द्वारा मिथ्या सिद्ध कर दिया है। हमारा मानसिक यन्त्र इस प्रकार बनाया गया है कि यदि कोई मस्तिष्क का काम करने वाला कठोर से कठोर मानसिक परिश्रम करे तो भी वह २० फी सदी अधिक मानसिक शक्ति का व्यय नहीं कर सकता। दिमागी काम करनेवालों का दिमाग के थक जाने का सर्वथा निराधार है दिमाग से जितना चाहें काम लीजिये। इसकी कार्यसीमा को आप कभी नहीं पा सकेंगे। हाँ, शरीर की अन्य दुर्बलताओं के कारण हम दिमाग से काम ही न ले सकें यह और बात है। कार्य करता मस्तिष्क ज्यों-ज्यों काम करता चला जाता है त्यों त्यों अधिक शक्तिमान् होता जाता है। मस्तिष्क सम्बन्धी कार्य करनेवाला व्यक्ति अपने लगातार मानसिक प्रयत्न द्वारा जीवन को पकड़ को और अधिक मजबूत करता चला जाता है। वह मृत्यु से बचता चला जाता है।

"इसके उदाहरण जितने चाहो देख लो। कारण यह है कि दिमागी काम करने वाला अपने काम में डूबा हुआ होता है, उसे पूरा करके ही छोड़ना चाहता है, इसलिये वह जीवन से एक विशेष प्रकार का मोह रखता है और इसी लिए जीवन को मजबूती से पकड़ता है। जो आदमी जीवन से तंग आये हुए रहते हैं और थोड़े से थोड़ा काम करना चाहते हैं वह जल्दी मरते हैं। उन्होंने जीवन को एक कमजोर मुठ्ठी से पकड़ा हुआ होता है जो कि जल्दी से खुल जाती है। हम उन चीजों को प्राप्त कर लेते हैं जिन्हें हम बहुत चाहते हैं। संसार के महान् कर्मशील व्यक्ति जीवन से प्यार करते हैं। क्योंकि उन्हें कुछ करके आनन्द होता है। इसलिये वे अपने आत्मा की एक अद्भुत इच्छाशक्ति द्वारा नाश को परे धकेलते रहते हैं।

"सर ओलिवर लाज इस बुढ़ापे की आयु में भी नवयुवकों के से उत्साह के साथ ईथर नामक वैज्ञानिक तत्व के सम्बन्ध में अपने अनुसन्धान (Researches) चला रहे हैं। पचासी साल की आयु में ऐडीसन अपनी प्रयोगशाला में २४ घण्टे काम किया करता था। दिवंगत अर्ल बालफोर ८० साल की आयु में साहित्यिक इंगलिश में अपने जीवन के संस्मरण लिखा करता था, उससे पहले वह और मानसिक परिश्रमों से युक्त जीवन बिता चुका था। जेकोस्लोवाकिया का बूढ़ा प्रेसीडेंट मजरिक भी पूरी तन्मयता से कार्य कर रहा था ये लोग इतना लम्बा कैसे जी सके? इसका उत्तर यही कि ये जीवन भर भारी कर्मशील रहे हैं और अपने कार्य से गहरा प्रेम कर रहे हैं। इनमें से किसी पर भी यदि नियन्त्रण लगा दिया जाता कि वह कार्यशील न हो सकें तो वह अपने जीवन से पहिले कभी का मर गया होता।

"यह एक प्रत्यक्ष अनुभव में आने वाली बात है कि जो लोग जीवन भर कर्म-शीलता का जीवन व्यतीत करते हैं वे जब अपने काम से उपरत होते हैं तो शीघ्र ही क्षीण होने लगते हैं। मानसिक कार्यकर्त्ता और एक पहलवान में एक समता है। मानसिक कार्यकर्ता क्षीण होने लगता है ज्यों ही वह अपने मस्तिष्क की पेशियों से काम लेना बन्द कर देता है। पहलवान भी क्षीण होने लगता है ज्यों ही वह अपने शरीर की पेशियों (Muscles) से काम लेना बन्द कर देता है। निकम्मा रहना, मन और शरीर की आदतों में ढील ले आना मृत्यु को निमन्त्रण देना है। जीवन बिताने और उसके कार्यों में अपनी रुचि आधी कर दीजिये आप का जीवन ही जाता रहेगा। आनेवाली अपनी सन्तानों को जो हम बहुमूल्यवान् वस्तु उत्तराधिकार में दे सकते हैं वह कार्य में लगे रहने का स्वभाव है। कोई भी स्वस्थ बालक निकम्मा और अक्रिय नहीं रहना चाहता। उसकी इस सक्रियता की प्रवृत्ति को काम करने में झुका दीजिये तो आप एक सुखी और कामयाब मनुष्य समाज को दे जायेंगे।

"बहुत बार काम करने की इच्छा शिक्षा के अशुद्ध उपायों से नष्ट हो जाती है। ज्यों ज्यों दिन बीतते जाते हैं त्यों त्यों काम जो कि एक आनन्दप्रद वस्तु प्रतीत होता था, एक अभिशाप प्रतीत होने लगता है और जब काम करने की प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है तो जीवन सङ्कुचित हो जाता है। सङ्कुचित जीवन—कार्य से अपरिपूर्ण जीवन कभी लम्बा नहीं होता। इसलिये बच्चों को शिक्षा इस ढंग से देनी चाहिये कि उनमें काम करने की रुचि प्रदान हो।

"हमारे जीवनों की अनेक वस्तुयें छिन सकती हैं। हमें प्रेम करने वाले छिन सकते हैं। हमारी महत्त्वाकांक्षायें अधूरी रह सकती हैं दुःख आकर हमारे जीवन के प्रकाश को बुझा सकते हैं। परन्तु काम करने की आदत को हमसे कोई नहीं छीन सकता और इससे उत्पन्न होने वाला आनन्द हमारा अपना रहता है।

"इसलिये काम करते रहने की आदत डालिए और खूब मन लगा कर काम कीजिए, यह कर दीजिए कि आपके दीर्घजीवी होने के अवसर बढ़ जायेंगे। पर काम करना और पूरे मनोयोग से काम करना छोड़ दीजिए, आपका नाश समीप है। अपनी मानसिक और शारीरिक शक्ति के खज़ाने को बचाकर रखिये—उसका बिल्कुल खर्च न कीजिए तो आप देखेंगे कि यह खजाना बहुत शीघ्र जाता रहेगा। आप कहीं न होंगे। लम्बा जीने का सूत्र है, शरीर और मस्तक से पूरा काम लेना।"

'वेद में इतिहास'

विवाद का सुपरिणाम

(श्री प० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार मीमांसतीर्थ वनस्थली विद्यापीठ जयपुर)

पाठक हम से आग्रह करेंगे कि आपको श्री प० सातवलेकर जी से क्या स्पर्धा है कि आप उनसे टकराते हैं। हमारा इस सम्बन्ध में नम्र निवेदन है कि हमें टकराने की किसी विशेष व्यक्ति से कोई अभिलाषा नहीं है। परन्तु वैदिक सिद्धान्त का प्रेम अवश्य अपसिद्धान्त से विवाद का विषय हो जाता है।

वैदिक धर्म के लेखों ने एक बार "वसिष्ठ को सुदास से प्राप्त दो वधुओं" का प्रश्न खड़ा कर दिया है। और उसके साथ साथ वसिष्ठ और सुदास राजा की समस्त कथाएं जिनका उल्लेख या परिचय हमने अपनी पुस्तक 'क्या वेद में इतिहास है?' में बहुत खोज किया है। वह सब इतिहास की परम्परा और उसी प्रकार अनेक ऐतिहासिक बातें वेद में अनित्य ऐतिहासिक रूप में वेद के ऊपर आक्षेप रूप में आने वाला हैं, इसलिये वेद को नित्य मानने वालों के लिये इस प्रश्न पर विस्तृत विचार करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

श्री प० जी के इस निर्दोष वाक्य से हमें कोई मतभेद नहीं है कि "हम लौकिक व्यक्तियों की दृष्टि में लौकिक भाषा के समान "वेद में इतिहास कथा के समान वाक्यों का वाक्यों" का वर्णन प्रतीत होता है।

परन्तु प्रश्न है कि क्या वह सही है या उससे भिन्न पदार्थ है यदि वह सही है तो वेद में अनित्य इतिहास मान लेना साहसिक है। यदि वह नहीं तो विद्वानों को स्पष्ट करना होगा कि वह तथ्य क्या है। तथा फिर आग्रह तथ्य के लिये होना चाहिये— इतिहासदृश वाक्य है। काट छांटकर अपना पूर्व लिखी इतिहासमय बातों को पुष्ट करने का आग्रह नहीं करना चाहिये।

और यदि श्री प० जी अपनी वास्तविक आस्था से इस बात का स्वीकार करते हैं कि वेद में स्थान २ पर इतिहास है, पुरु भरत' सुदास, पुरुकुत्स, विश्वामित्र, वसिष्ठ आङ्गिरस, अत्रि, कक्षीव, च्यवन आदि नाम और हरियूपीया, अयोध्या, आदि नगर नाम सरस्वती, गंगा, यमुना, शुतुद्री आदि नदी नाम अनित्य इतिहास को ही बतलाते हैं तो हमारा उनसे मतभेद अवश्य है और इस मतभेद से भिन्न २ विचार धारा का बुरा मानना ही नहीं चाहिये। क्या एक वेद मन्त्र पर दृष्टि डालिये है। फिर उनको "इतिहास सदृश का क्या" या इतिहास कथा के समान वर्णन आदि बातें कहकर तथ्य को उलझाना नहीं चाहिये।

'इतिहास सदृश' कहकर अर्थापत्ति से उनके इतिहासत्व का प्रतिषेध किया जाता है। अर्थात् वह इतिहास है नहीं इतिहास के समान दीखता है। इस अर्थात् के आगे की बात नित्यवेद मानने वाला भी मानता ही है।

यदि प० जी का यही मन्तव्य है कि वेद की रचना स्थान २ पर इतिहास सदृश वाक्यों के समान है, पर इतिहास है नहीं" तब उनसे हमारा कोई मौलिक मतभेद नहीं है।

परन्तु प्रश्न यहाँ ही समाप्त नहीं हो जाता है। श्री माननीय विद्यावयोवृद्ध पण्डित श्री सातवलेकर जी की व्याख्या है कि—"इतिहास के रूप में जहां वर्णन होता है वहीं भूतकाल के प्रयोग होते हैं। इन्द्र वृत्र के वर्णन देखिये। जैसे इतिहास हुए, वैसे वर्णन।" (देखो वैदिक धर्म अक्तूबर १९५५ पृष्ठ ११० स्तम्भ २ पंक्ति ७—६।

इसका स्पष्ट अर्थ है कि श्री पूज्य प० जी भूतकाल के प्रयोग देख कर इतिहास के रूप में वर्णन होने का निर्णय करते हैं। अर्थात् 'जैसे इतिहास हुए, वैसे वे वर्णन हैं।" अर्थात् जो इतिहास पहले हो गये, वैसे ही वर्णन वेद में आगये हैं। यदि श्री प० जी का यही मत है तो ही नित्य वेद मानने वालों का यहां मतभेद है।

डा० सीताराम प्रधान एम० एस० सी० पी० एच० डी० कुलपति महोदय Chronlogy of Ancient India " (क्रानोलोजी आफ एन्शेन्ट इण्डिया) नामक पुस्तक लिखी है। उसमें आपने राजा रथ, उसकी कन्या इन्द्र सेना, उसके पति मुद्गल का इतिहास माना है, तथा सुदास के पिता को राम के पिता दशरथ का समकाल मानकर ऋग्वेद को राजा युधिष्ठिर से १०—१२ पीढ़ी पूर्व अर्थात् उससे ३०० वर्ष पूर्व ही माना है। अर्थात् उन नामों को अनित्य इतिहास का अंश माना है। आप स्पष्ट रूप में मानते हैं कि वेद के मन्त्रों और सूक्तों पर जिन ऋषियों के नाम हैं वे ऋषि उन वेद मन्त्रों के बनाने वाले (Authors) हैं। यहां तक कि ऋग्वेद का एक सूक्त (ऋ० म० १० सूक्त १४२) खाण्डव वन की आग से बचे हुए मन्दपाल ऋषि की सन्तान को एक अनार्य जाति की स्त्री के गर्भ से उत्पन्न चार पुत्रों का बनाया हुआ है। इस लिए वेद की रचना अर्जुन द्वारा खाण्डव वन के दाह काल तक होती रही।

क्योंकि श्री माननीय विद्यावयोवृद्ध प० जी ने अपने ऋषि दर्शनों में भी शुनःशेप आदि ऋषियों को वेद का द्रष्टा न मान कर कर्ता माना है। गौतम आदि नाम भी जहाँ सूक्तों में बहु वचन आये हैं उनको गोत्र माना जाता है, इसलिये श्री पं० जी की दृष्टि में वेद की रचना अनित्य और उसमें वर्णित इतिहास भी अनित्य ठहरता है।

इस लिये फिर 'शाश्वत इतिहास' और (Permanent History) की बात कहना एक वाग्जाल हो जाता है। इस शाश्वत इतिहास की लपेट में रामायण, महाभारत को हमारे सार्वभौम प्राचीन इतिहास हैं। वे भी काल्पनिक रचना या 'फिक्शन' हो जाती हैं। तब उनका मूल्य केवल शिक्षार्थ बने पञ्चतन्त्र, हितोपदेश के समान हो जाता है। यदि श्री प० जी का वेदों के सम्बन्ध में यही मन्तव्य है तो निश्चय ही ऋषि दयानन्द का वह सिद्धान्त नहीं है।

परन्तु प० जी कभी-कभी मार्मिक वाक्य रचना भी लिखते हैं। जैसा— "ईश्वर के आन्तरिक स्फुरण से जो वेद ऋषियों के अन्तःकरण में प्रकट हुए उसमें इतिहास सदृश बोध वाक्य अर्थात् इतिहास नहीं होने चाहिये। ऐसा कहने का इन 'प० जयदेव शर्मा' को अधिकार ही क्या है? इसका अर्थ यह है कि "इतिहास सदृश वाक्य रचना करने की शिक्षा वेद न देवें।" इन श्रेष्ठ विद्वानों (प० जयदेव आदि) का यह कितना आग्रह है? 'वेद इतिहास सदृश न बोले तो लोगों को इतिहास लिखने का ज्ञान किस तरह हो? या लोग इतिहास की रचना करने के उपयोगी ज्ञान से सदा सर्वदा के लिये वंचित ही रहें? मनुष्य का मस्तिष्क इस तरह की रचना से खाली रहे? मनुष्य इस उपयोगी विषय से अप्रभावित रहे, ऐसा वेद नहीं चाहता। ..." वेद में इतिहास सदृश रचना न हो तो एक महत्व के साहित्य विभाग से आर्य जाति वंचित रहेगी।" पर वेद ऐसा एकांगी उपदेश नहीं देना चाहता। इसीलिये वेद में केवल प्रार्थना ही प्रार्थना नहीं केवल उपासना ही उपासना नहीं, केवल यज्ञ ही यज्ञ नहीं केवल इतिहास ही इतिहास नहीं पर सब प्रकार के सब साहित्य के परम श्रेष्ठ आदर्श वेद में हैं। इस लिये 'सब ज्ञान मयो वेदः' कहते हैं। (देखो वैदिक धर्म अप्रैल १९५५। पृ० १११ स्तंभ २ पंक्ति १३ से १७ तक) [समीक्षा]—इस प्रकरण में श्री प० जी ने आरम्भ में वेदों को ईश्वर की आन्तरिक स्फुरणा, वेदों को ऋषियों के अन्तःकरण में

[शेष पृष्ठ १० पर]

गीता के उपदेश

१—गीता न वैराग्य का उपदेश देती है और न कर्मों में लिप्त हो जाने का, प्रत्युत संसार में रहते हुए संसार का त्याग करके जीवन के कर्तव्यों को निभाने का उपदेश देती है।

२—गीता का सार निष्काम कर्म का उपदेश है वह यह कि मनुष्य का कर्तव्य कर्म करना है और वह भी उस के फल की इच्छा किये बिना।

३—गीता यज्ञ आदि नित्य नैमित्तिक कर्मों के लिए मनुष्य को प्रेरित करती है। क्यों कि ये सब वेदोक्त कर्म हैं जिन के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती।

४—गीता मनुष्य को इस रहस्य से परिचित करती है कि आत्मा अमर है और शरीर नाशवान है आत्मा न स्वयं मरता है और न किसी को मार सकता है। उसे न हवा सुखा सकती है और न जल गला सकता है और न शस्त्र ही काट सकते हैं वह अनादि और अमर है।

५—मनुष्य जितने भी कर्म करता है। वह अपने ज्ञान के अनुसार करता है। उन कर्मों का प्रेरक आत्मा जब अच्छे संस्कारों को लेकर उत्पन्न होता है तो अच्छे कर्मों की ओर मन को प्रवृत्त करता है और बुरे संस्कारों से पैदा हुआ बुरे कर्मों की ओर।

महाभारत की एक घटना

जयद्रथ वध से एक रात पहले

(ले०—श्री म० [illegible] जी बी.ए. सिद्धान्तालंकार)

(१)

श्री भगवान कृष्ण दूत कार्य कर चुके। दुर्योधन की सभा से चलते समय उन्होंने महारथी कर्ण को अपने रथ पर बिठा लिया। हस्तिनापुर से बाहर आकर उन्होंने देखा कि कर्ण किसी तरह भी दुर्योधन से पृथक नहीं हो सकता। और युद्ध अनिवार्य है तो कर्ण से बोले—"यहां से लौट कर द्रोण, भीष्म और कृप से कह देना कि यह महीना बहुत अच्छा समय है। न अधिक गर्मी है और न अधिक सर्दी, पानी साफ है आज से सातवें दिन अवसर अमावस्या होगी। उसी दिन युद्ध के लिए तैयार रहना। जो राजा लोग युद्ध में भाग लेने आये हैं उन से भी कह देना कि मैं स्वयं सारा प्रबन्ध करूंगा। युद्धक्षेत्र में वीर की मृत्यु पाकर वे अपने नाम को अमर करें। और सुनो कर्ण! जब तुम इस महा युद्ध में श्वेत अश्वों वाले रथ को कृष्ण द्वारा चलते देखोगे जिस पर कि सिपाहियों का सिरताज अर्जुन पानी, आग और वायु तूफान से आने वाले शस्त्रास्त्रों का प्रयोग करेगा और जब गाण्डीव की आवाज बिजली की कड़क को मात करेगी, तब त्रेता और द्वापर के तमाम पहले युद्ध फीके पड़ जावेंगे।" ऐसा कह कर भगवान ने कर्ण को अपने रथ से उतारा और सारथी को बहुत जल्दी चलने की आज्ञा दी।

(२)

भगवान कृष्ण की आज्ञानुसार ठीक अमावस्या के दिन कुरुक्षेत्र की पवित्र भूमि पर भारत का महान युद्ध आरम्भ हुआ। युद्ध को जारी हुए तेरह दिन बीत गये उस दिन सूर्य अस्त के के समय जब कृष्ण और अर्जुन अपने तम्बुओं की ओर वापिस आ रहे थे तब से ही अर्जुन ने बुरे आसार देखे। शोकातुर अर्जुन को जब यह मालूम हुआ कि उस का प्यारा बेटा—सुभद्रा की आंखों का तारा—युद्ध में कृष्ण की तरह पौरुष का मालिक, दलेर अभिमन्यु वीरों की भांति युद्धक्षेत्र में मारा गया है तो उस पर विपत्ति का पर्वत टूट पड़ा। पुत्र के शोक से विह्वल...... आंखों से आंसू जारी। यह देख अर्जुन को श्रीकृष्ण ने धैर्य बंधाया, जब शान्त हो अर्जुन ने अपने पुत्र के वध का विस्तृत विवरण अपने बड़े भाई से सुना। सुन कर अर्जुन बोला—इस रात के बीतने के अनन्तर कल मैं जयद्रथ को यदि मौत के घाट न उतार सकूं तो दुनिया भर के शाप मुझे लगें। और मैं सब से बड़ा पापी कहलाऊं और इस के साथ ही मेरा यह भी प्रण है कि यदि पापी जयद्रथ जीवित रहा और कल सूर्य अस्त हो गया तो मैं जलती हुई आग में प्रवेश कर अपने शरीर का अन्त कर दूंगा।

(३)

अर्जुन की ऐसी प्रतिज्ञा से पाण्डवों की छावनी में शोर मच गया, जब कुछ शान्ति हुई तो भगवान कृष्ण अर्जुन से बोले—"तुम ने जो प्रतिज्ञा की है। उसमें असीमित पौरुष है, मेरे साथ विचार विनिमय किये बिना ही तुम ने अपने कन्धों पर इतना बड़ा उत्तरदायित्व लिया है और मैं सोच रहा हूं कि हम क्या करें जिस से हमारी जग हँसाई न हो। तुम्हारी प्रतिज्ञा सुन कर मैंने दुर्योधन की छावनी में जासूस भेज दिये थे। वे अभी आकर बता गये हैं कि सिन्धु के राजा जयद्रथ की रक्षा के लिये अपनी सारी शक्ति व्यय कर देंगे।" पाठक गण! कृष्ण की नीति, उनकी दूरदर्शिता का यह एक मामूली सा उदाहरण है कि इधर अर्जुन ने प्रतिज्ञा की और उधर कृष्ण ने कुछ ही क्षणों में कौरवों की फौज का वह भेद जान लिया जिसे वह कल तक छिपाये रखना चाहती थी। तब कृष्ण जी बोले 'अर्जुन! कौरवों की फौज का कल जो प्रबन्ध होगा उसे सुनो! छः महारथी मिल कर जयद्रथ की रक्षा करेंगे उन में से एक एक भारी शक्ति का मालिक है। फिर उन सब का उस समय जब कि वे संगठित होंगे। सामना कैसे होगा। इसलिये मैं योग्य मन्त्रियों से और मित्रों से बार बार मशविरा करूंगा कि कल का काम कैसे हो। अर्जुन बोला—"भगवान! जिन छः महारथियों को आप अपूर्व शक्ति का स्वामी बताते हैं कल आप देखेंगे कि उन सब की शक्ति मेरी आधी शक्ति के भी बराबर नहीं, फिर भी आप ऐसा प्रबन्ध करें कि मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो।

(४)

उस के अनन्तर श्री कृष्ण जी ने सुभद्रा को तसल्ली दी और फिर अर्जुन के तम्बू में आये उसे कई बातें समझा कर बोले—"अर्जुन! सो जाओ तुम्हारा कल्याण होगा"—अब मैं जाता हूं।" उस रात श्री कृष्ण जी ने अर्जुन की रक्षा का विशेष प्रबन्ध किया। कितने ही सशस्त्र सिपाहियों को लगाया और तब अपने प्यारे सारथी के साथ अपने तम्बू में आ कर भगवान श्री कृष्ण सो गये। रात आधी इधर, आधी उधर तब अनायास उनकी नींद उचट गई। उन्हें अर्जुन की प्रतिज्ञा याद आई और अपने सारथी को बुला कर बोले—'दारुक! बेटे के शोक में जलते हुये अर्जुन ने प्रतिज्ञा की है कि कल जयद्रथ का वध करूंगा इसलिये दुर्योधन ऐसा प्रबन्ध करेगा कि यह बात न हो सके। उसकी तमाम फौजें जयद्रथ की रक्षा करेंगी। बहादुरों के सिरताज, सब हथियारों के स्वामी द्रोण भी अपने बेटे के साथ उसकी रक्षा करेंगे, तो भी मैं कल ऐसा करूंगा कि सूर्यास्त से पहले ही कुन्ती का बेटा अर्जुन जयद्रथ को मार गिरायेगा। मेरी भार्या, मेरे मित्र, मेरे सम्बन्धी या कोई और मुझे अर्जुन से ज्यादा प्रिय नहीं है। अर्जुन के बिना मैं इस दुनिया को नहीं देख सकता इसलिये ऐसा न हो।" मैं स्वयं अर्जुन के लिये हजारों राजाओं को नष्ट करूंगा। कल लोग जानेंगे कि अर्जुन मुझे कितना प्रिय है। जो अर्जुन का शत्रु है वह मेरा शत्रु है, जो उसका प्रिय है वह मेरा प्रिय है। अब जाओ दारुक! अर्जुन मेरा आधा शरीर है।" "इसलिये दारुक! कल तुम ने मेरे रथ को घोड़ों को हथियारों को झंडों को लगाना और चक्र आदि को तैयार रखना और खुद को भी जरा बख्तर आदि से सुरक्षित रखना। तुम जब मेरे शंख की आवाज सुनो तो पूरी तेजी के साथ मेरे पास पहुंच जाना। मैं वह सब उपाय करूंगा जिससे अर्जुन की विजय हो। दारुक ने कहा! जैसी आप की आज्ञा, लेकिन भगवान्! जिसके आप सारथी हों उसकी अवश्य विजय होगी।

इस तरह बात चीत करते वह रात बीत गई। प्रातःकाल उठ अर्जुन ने हवन किया, सन्ध्या की ब्राह्मणों को दान दिया भगवान श्री कृष्ण प्रातःकाल के आवश्यक कर्मों से निवृत्ति हो कर युधिष्ठिर के पास पहुंचे और उनसे बोले 'आज निश्चय अर्जुन जयद्रथ को मार कर ही तुम्हारे पास आवेगा। वह दोनों अभी बात चीत कर ही रहे थे कि अर्जुन भी प्रणाम के लिये वहां पहुंचा। उसे देख कर युधिष्ठिर ने कहा "अर्जुन! साफ दिखाई दे रहा है कि जंग में तुम्हें भारी विजय होगी। तुम्हारी सूरत से आज यही बात जान पड़ती है कि और श्री कृष्ण जी भी प्रसन्न है।

उस दिन कैसा युद्ध हुआ। कृष्ण ने किसी तरह बार बार अर्जुन की सहायता की और किस प्रकार वह अपने उद्देश्य में सफल हुए। यह सब कुछ महाभारत में पढ़िये।

कहानी-कुञ्ज

वेद में 'इतिहास'

[पृष्ठ ८ का शेष]

प्रकट हुआ माना। बीच में इतिहास की ।संज्ञा देने के लिये इतिहास सदृश रचना आने पर बल दिया। उप संहार में वेद को 'सर्व ज्ञान मय बतलाते हुए उसमें प्रार्थना, उपासना यज्ञ, इतिहास सब बातें मानली हैं।

इस प्रकार रंगीली भाषा में प० जी ने अपने मर्म की रक्षा की है। दबी जबान से व्यंग में कह गये हैं कि वेद में इतिहास भी है। जब श्री प० जी को इतिहास की सत्ता ही मानली है तब अपने वैदिक धर्म अप्रैल मास के अङ्क में लिखित सभा घोषना के उन्नाइस पृष्ठों में इतिहास सदृश रचना का आलाप किया है, उसका क्या मूल्य शेष रह गया?

ठीक है कि श्रेष्ठ विद्वानों का यह कहा "अक्षम्य धाष्ट्र्य" है कि वेद को इतिहास जैसी रचना से इतिहास सिखने की शिक्षा को देने से रोकें।" और ऐसा कहने का इन विद्वानों को अधिकार भी नहीं है। परन्तु साथ ही दूसरों को भी यह कहने का अव सर प्राप्त है कि जो विद्वान वेदों को ईश्वरीय स्फुरणा से (इल्हाम, ईश्वरीय दर्शन) मानता है (पण्डित जी के ही शब्दों में। उसका यह कितना 'धाष्ट्र्य' है कि वह समय समय पर उसी ईश्वर स्फुरण रूप वेद को मानव की अनित्य कृति मानले, इसको क्या 'अधिकार' है कि ईश्वरीय कृति में 'अनित्य इतिहास' मानले।

रही इतिहास की पहचान, कि वेद में भूत काल का प्रयोग। जहाँ श्री पं० जी ने 'इतिहास सदृश रचना,' 'इतिहास कथा का सा वर्णन' मान लेने का सौजन्य प्रकट किया है जो उनके अप्रैल १९५५ मास के वैदिक धर्म के अङ्क से पूर्वकी उनकी कृतियों में उपलब्ध नहीं है। यहां अब उनको "भूतकाल के प्रयोग होते हैं" इसके स्थान में भूतकाल के से प्रयोग होते हैं" ऐसा मान लेना चाहिये। और इस में कोई लज्जा की भी बात भी नहीं है। यह उनके स्वत के लेख से स्पष्ट भी है। कैसे? सुनिये।

जब वेद के वाक्य इतिहास कथा के समान है तब इतिहास के रूप में जहाँ वर्णन होता है वहीं भूतकाल के से प्रयोग होते हैं।" ऐसा अभिप्राय पृष्ठ ११० स० २ म० ७७१ के लेख का निकलता है। और यह बात नहीं की प० जी ऐसा नहीं मानने लग गये हैं अब तो प० श्री की चेष्टा भी इस बात का प्रमाण है कि प० जी भी अब भूतकाल के प्रयोगों का हठ छोड़ बैठ हैं। चाहे वे प्रयोग भूतकाल के से भले ही हों। प्रमाण अभी नया वैदिक धर्म अङ्क सितम्बर मास १९५५ में आपने दिया है। उदाहरणार्थ देखिये—अग्नि देवता (ऋग्वेद १ १४३ लेख में (१) (पृ० ४ स्तम्भ १ मन्त्र २ प्रथावा पृथिवी पृथिवी अरोचयत्) द्युलोक और पृथिवी को प्रकाशित करने लगा।

पृथिवी से लेकर आकाश में रहे पदार्थों को प्रकाशित करने लगता है।

यहाँ अरोचयत् भूतकाल का प्रयोग है परन्तु प० जी का अर्थ वर्तमान काल का है।

(२) पृष्ठ ८ स्तम्भ २ [illegible] मन्त्र २ (यन् मातृ अजगन्‌अप०) जब माता रूपी जल के पास जाता है। यद्दूरे सन् इहाभव क्योंकि तू दूर होता हुआ भी यहीं अरणि में समाप रहता है ॥२॥ 'दूरे सन् इहाभव'—दूर होने पर भी पास होने के समान रहो बनो। अग्नि दूर होने पर भी पास है, ऐसा ही सबको प्रतीत होता है।"

इस मन्त्र में 'अजगन' गम् धातु का लङ् रूप है। दूसरा अभव' भूधातु का लङ् में रूप है। भाषा की दृष्टि से दोनो भूतकाल के रूप हैं। परन्तु दोनों स्थानों पर प० जी ने वर्तमान का और प्रार्थना का भी अर्थ किया है।

यहाँ श्री प० जी की इतिहास का रूप होना और भूतकाल का रूप होना यह बात भी सर्वथा खण्डित हो जाती है। और प० जी की बात व्यभिचरित हो जाती है।

(३) (पृ० ९ स्तम्भ १ मन्त्र ४) में 'ईयिवाँसमतिस्रिध' 'अन्वीमविन्दन् अग्विदाम) और मन्त्र ५ मे (सस् वांसमिवत्मना) हिंसकशत्रुओं को दूर करने वाले इस अग्नि को प्राप्त करते हैं।

[५ वें मन्त्र में] सकने वाले बालक को पिता उठाकर वापस लाता है। [आनयत्] जनता के सामने अग्नि को लाते हैं।

इन मन्त्रो में 'ईयिवास, सस् वांसम्' दोनों प्रयोग लिट् के स्थान म क्वसु' के हैं। भूतकालिक हैं और 'अविन्दन्' 'आनयन्' दोनों लङ् के भूतकालिक प्रयोग हैं। परन्तु प० जी ने अर्थ वर्त्तमान के किये है।

(४) पृ० ९। मन्त्र ६। में— 'तत्वमर्त्ता अगृभ्णत' मनुष्य उस तुझ को स्वीकार करते हैं।

'अगृभ्णत' भूत काल का प्रयोग है। परन्तु पण्डित जी वर्त्तमान का अर्थ कर रहे हैं।

सोवियत रूस के कृषि मन्त्री श्री ब्लौदेमीर मात्सके विच, जिन्होंने अभी हाल ही अमरीका को भेजे गए 'सोवियत-फार्म प्रतिनिधि मण्डल' का नेतृत्व किया ब्राडकास्ट कर रहे हैं।

(५) पृ० ११। मन्त्र ९ मे— (त्रिशच्च देवा नवचासपर्यन्) [आ दद्‌होतार न्यसादयन्त] तीन हजार तीन सो तीस और नौ देव अग्नि की पूजा करते हैं। 'औक्षन् घृतै घीसे सींचते हैं। और विद्वानों को बुलाकर अपने साथ लाने वाले अग्नि देव को इस आसन पर बिठलाते हैं। [अस्तृणन] आसन बिछाते हैं। इस मन्त्र में अ पर्यन् औक्षन्, और न्यसादयन्त, और 'अस्तृणन्' चारों क्रिया पद भूत कालिक लङ् के रूप हैं। श्री पण्डित जी ने सब के वर्त्तमान कालिक अर्थ किये हैं। जब कि दादा गुरु सायण ने सब के भूतकालिक ही अर्थ किये हैं।

ये पांच निदर्शन हमने पण्डित जी की वर्त्तमान प्रगति में से पाठकों के समक्ष उठाकर रखे हैं यह हमारे लेखों के लिखने का कुछ प्रभाव समझिये या श्री प० जी के अन्तःकरण में स्वतः स्फुरण समझिये, हुआ है। और यह हर्ष का विषय हुआ।

इन स्थलों में भूतकालिक का प्रयोग होकर भी श्री पण्डित जी ने इतिहास कथा का सा अर्थ नहीं किया है। और इतिहास का सा वर्णन भी नहीं माना है। इसी प्रकार पृष्ठ १२ में 'अजान' लिट् भूतकाल का अर्थ भविष्यत काल में किया है—'जनेगी' पृ० १४ मे अरोचयत या लङ् भूतकाल का अर्थ वर्त्तमान प्रदीप्त हो रहा है' किया है पृ० १४ में 'अवधु' भूतकाल के प्रयोग का अर्थ वर्तमान में धारण करते है किया है। पृ० १५ में 'अनि-मीत' और 'असहन्त' भूतकाल के प्रयोग है। प० जी ने अर्थ वर्तमान में किया है। पृ० १६ में 'अरोचत' भूत-काल प्रयोग है। अर्थ वर्त्तमान में—'शोभता हैं' किया है।

अब पाठक देखें कि पण्डित जी ने इतिहास मास का इतना भारी आरोप किया था, और अब अपनी ही लेखनी से उस आरोप का संहार किया है।

पाठको को यह जानकर और भी हर्ष होगा कि 'अग्निदेवता के ये सूक्त बम्बई विश्व विद्यालय के बी० ए० आनर्स कोर्स में संस्कृत पाठ्य क्रम में नियत है। उनकी असुविधा के लिये श्री प० जी ने यह प्रयास आरम्भ किया है।

मैं श्री प० जी से प्रार्थना करूंगा कि राजपूताना यूनिवर्सिटी ने भी ऋग्वेद के अनेक सूक्त बी० ए० के पाठ्य क्रम में रखे हैं। उनका भी आप इसी प्रकार की उदारता से व्याख्यान प्रकट करें तो विद्यार्थियों पर बड़ा उपकार होगा। आप कहेंगे तो मैं आपके पास वे सूक्त लिख भेजूंगा।

नालन्दा विश्वविद्यालय

प्यारे बच्चो !

प्राचीन काल में हमारे देश में शिक्षा का बहुत प्रचार था। देश भर में यत्र तत्र अनेकों विद्यालय तथा शिक्षा के लिए आश्रम बने हुए थे। इनमें दो विश्व विद्यालय अत्यन्त प्रसिद्ध थे। जिनकी कीर्ति न केवल भारत वरन् और देशों में भी फैली हुई थी। चीन, जापान, मंगोलिया, तिब्बत, मिश्र, यूनान, अरब आदि विद्यार्थी इन विश्व विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने आते थे। क्या तुम इन विश्व विद्यालयों के नाम बता सकोगे ? इनमें एक का नाम तो नालन्दा विश्व विद्यालय था और दूसरे का नाम था तक्षशिला विश्व विद्यालय।

आज हम तुम्हें नालन्दा विश्व विद्यालय के बारे में कुछ बातें बतायेंगे।

नालन्दा विश्व विद्यालय में जहाँ सह-शिक्षा होती थी १९०० से अधिक विद्यार्थियों और १५०० शिक्षकों को स्थान था। विद्यार्थियों को न केवल निःशुल्क शिक्षा मिलती थी साथ ही साथ बिना मूल्य भोजन और रहने के लिये कपडे भी प्राप्त होते थे।

इस विद्यालय के द्वार पर बराबर पहरा रहता था। ये द्वार पाल पण्डित कहलाते थे और अत्यन्त विद्वान होते थे। केवल उन्हीं विद्यार्थियों को विद्यालय में स्थान मिल पाता था जो इन द्वार पालों की परीक्षा में उत्तीर्ण होते थे। इस परीक्षा में उत्तीर्ण होना भी अत्यन्त दुःसाध्य था और विश्व विद्यालय में लगभग सभी विषयों की शिक्षा का प्रबन्ध था। इस विश्व विद्यालय के स्नातकों का भी अत्यन्त आदर होता था।

अगली बार तुम्हें हम कुछ तक्षशिला विश्व विद्यालय के बारे में बतलायेंगे।

पहेलियाँ—

(श्री शिव प्रसाद)

(१) लिखने में करती काम
मेरा नहीं बहुत है दाम
लकड़ी की मैं होती हूँ
बच्चों से मैं खोती हूँ

(२) दो पहिये की गाडी हूँ
बीसों तक मैं जाती हूँ
मुझ पर होकर सदा सवार
रस्ता तय करते हैं यार।

उत्तर— (१) पैंसिल
(२) साइकिल।

सच्चरित्र बालक

रोम के पास एक ग्राम में एक बालक रहता था। उसकी माता रोगी हो गई। जब उसके पास व्यय करने को कुछ न रहा तो उसने अपनी कापी में से एक पृष्ठ फाडा। उस पर टूटे फूटे कुछ शब्द लिखे। कुछ स्याही के धब्बे भी पड गये। वह उस पत्र उसने रोम के पोप के नाम डाल दिया। उसमें यह लिखा था कि मुझे अपनी माता की दवाई के लिये ३०) रुपये चाहिये। पोप के पास इस रंग रूप का पत्र कभी कोई नहीं भेज सकता था। फिर भी उसने धैर्य से उसे पढ़ा। और उसका उत्तर दिया कि वह बालक अमुक समय पर उसे मिले। पोप का पत्र पाकर वह उसके पास गया। द्वारपालों को पोप का पत्र दिखाकर अन्दर जाने को आज्ञा मागने लगा। द्वारपाल कभी पत्र को देखते कभी उस फटे कपडे वाले बालक को देखते, परन्तु पोप का पत्र देखकर वह उसे रोक न सके। वह निर्भय बालक पोप के पास चला गया। पोप ने कुछ थोडी बातचीत करके उसे एक मोहर २०) रु० की देदी। उस बालक ने मोहर लेकर कहा कि मैंने तो ३०) रुपये दवाई के लिये मांगे थे इस पर पोप ने कहा मुझे तुम्हारा पत्र याद नहीं रहा था और उसे दस मोहरें और दे दी। इस पर बालक ने कहा कि यह तो बहुत ज्यादा है। मुझे ३७) चाहिये थे। मेरे पास परचून भी नहीं है जो मैं आपको बकाया दे दूं। हां मैं कल लाकर दे दूंगा। पोप ने कहा ठीक है, फिर किसी समय आकर दे जाना। वह दूसरे दिन बकाया तीन रुपये लेकर जब गया तो पोप उसके चरित्र से प्रसन्न हो गया। पोप ने उसकी माता के इलाज का और उसकी पढ़ाई का भी ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि जिससे वह बालक बड़ा मान्य बन गया।

—निरञ्जननाथ

प्रकाश—हरीश तुम कहाँ जा रहे हो ?

हरीश—मैं ? सूरज के घर।

प्रकाश—सूरज तो आसमान पर है। तुम वहां किस प्रकार जाओगे।

—जगदीश कुमार बख्शी

बताओ तो जानें ?

नीचे लिखे वाक्यों में भारत के एक बड़े शहर का नाम छिपा है। क्या तुम उन्हें खोज सकते हो ? अपने उत्तर 'आर्य मित्र' को भेजो। जिसके उत्तर सही होंगे उनका नाम 'मित्र' में अगले सप्ताह छपेगा—

(१) मनीराम दुलारा लड़का है।

(२) शीला अम्मा बना रखवन्ती पढ़ रही थी।

(३) आग राह पर मत फेंको।

(४) हाशिम लाल बाग में रहता है।

(१) कुत्ता भौं भौं चिल्लाता है, और बिल्ली म्याऊ म्याऊ अच्छा जरा बताओ तो चिरिंग कैसे चिल्लाता है।

(२) एक २० फीट की दीवार है उस पर एक मेंढक चढ़ रहा है। एक घंटे में चार फीट ऊपर चढ़ता है और दीवार चिकनी होने की वजह से वह तीन फिट नीचे फिसल पड़ता है। अब बताओ वह कितने घंटे में ऊपर पहुंच जायगा ?

(३) एक बीस फीट का सीधा रस्ता है और उस पर सामने मुख किये हुए एक केकड़ा सीधा दौड़ रहा है वह एक मिनट में ५ फीट तय करता है तो अब बताओ वह कितनी देर में दूसरी ओर पहुंच कर फिर अपने स्थान पर वापस आ जाएगा ?

पापा के कान

शुरू से ही पापा का यह विश्वास रहा है कि बच्चे मार से नहीं प्यार से ही सुधारे जा सकते हैं। इसी कारण हम सब भाई बहनों ने उनसे डांट बहुत कम खाई, सिर्फ प्यार ही पाया है। पर अभी कुछ दिनों की बात है, पापा को किसी बात पर हमारी दो वर्षीया बहन मंजु पर क्रोध आ गया। उन्होंने डांटकर कहा 'मंजु तुम बहुत शरीर हो गई हो, कान पकड़ो।"

मंजु बेचारी सहम सी गई थी। चुपचाप रुआंसी होकर पापा को ताकने लगी। पापा ने जब फिर कहा पकड़ती क्यों नहीं ?" तो उसने बड़े भोलेपन से डरते डरते धीरे से पापा के कान पकड़ लिये। पापा का क्रोध एकदम शांत हो गया और वह हंस पड़े।

—उषा श्रीवास्तव, इलाहाबाद

हँसिए नहीं

मास्टर—(सोहन से) मूर्ख के प्रश्न का उत्तर तो बुद्धिमान पुरुष नहीं दे सकता।

सोहन—इसीलिये मैं आज आपके प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता

महेन्द्र माथुर (किशनगढ़)

× ×

सोहन—मोहन तुम्हारे बाल कैसे गिरे ?

मोहन—चिंता से।

सोहन—चिन्ता किस बात की।

मोहन—बाल गिरने की चिन्ता।

श्यामसुन्दर रायरखानी

× ×

सत्यभूषण—तुम्हारा घर सड़क के किस ओर है।

मित्रकुमार—दोनों ओर।

सत्यभूषण—कैसे ?

मित्रकुमार—आते समय दाहिनी ओर और जाते समय बाईं ओर है।

मन्मथ कुमार गुप्त

× ×

बच्चा—तो हमारा यह छोटा भाई स्वर्ग से आया है ! क्यों माँ ?

माँ—हाँ बेटा, क्यों।

बच्चा—कैसा आदमी है ? स्वर्ग छोडकर यहाँ आने की क्या जरूरत थी।

× ×

मजिस्ट्रेट—[अपराधी से] तुम्हारा नाम क्या है ? और काम क्या करते हो।

अपराधी—खूब ! आप तो अभी से भूल गये। छः मास हुए आपने ही तो अपनी कलम से मुझे छः मास की सख्त कैद की सजा दी थी।

× ×

अध्यापक विज्ञान की कई खोजों पर पाठ पढ़ा रहे थे। एकाएक उन्होंने एक लड़के से पूछा—हरि, क्या तुम बतला सकते हो, कि ५० बरस पहले कौन सी विचित्र वस्तु नहीं थी।

हरि—मैं

× ×

अध्यापक [रमेश से] हिन्दुस्तान की लम्बाई कितनी है ?

रमेश—जी, दो हाथ।

अध्यापक—क्या बकता है।

रमेश—जो मैं सच कह रहा हूं। नहीं विश्वास हो तो नक्शे पर नाप कर देख लें।

आर्य्य महिला मण्डल

माँ का दूध

श्री कौशल्या रानी देवेन्द्र

दस महीने तक जिस बोझ को नारी अपने उदर में उठाये फिरती है, उसके आगमन से माँ के हृदय में अगाध स्नेह अपने आप ही उमड़ आता है। उस नन्हें शिशु की रक्षा के लिये प्रकृति वरदान स्वरूप माँ की छाती में ऐसा पवित्र और स्वादिष्ट दूध भर देती है, जिसकी तुलना संसार की और किसी चीज से नहीं की जा सकती।

अक्सर प्रसव के दो तीन दिन बाद ही छाती में दूध उतर आता है। वह दो दिन नन्हें शिशु को मिसरी अथवा ग्लूकोज-चीनी के पानी अथवा बकरी के दूध पर रक्खा जाता है। नवयुग की पढ़ी लिखी बहनें अपनी सुन्दरता और स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये अक्सर बच्चे को जन्म के साथ ही, बोतल का दूध पिलाना शुरू कर देती हैं। उनके विचार से बच्चे को स्तन पान कराने से उनका शारीरिक आकर्षण बिगड़ जाता है। साथ ही बोतल के प्रयोग से उनके बाहर घूमने फिरने की आजादी में भी बाधा नहीं आती। इसीलिये बोतल का प्रयोग दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा है।

स्तनपान कराने के लाभ

स्तनपान कराने से शरीर पर पहला यह प्रभाव पड़ता है कि बच्चेदानी शीघ्र ही अपनी पहली अवस्था और स्थान में आ जाती है। फिर मानसिक प्रभाव का तो कहना ही क्या! माँ के दूध के जरिये जो खून का सम्बन्ध पनपता है, जो ममता उत्पन्न होती है, जो अपनेपन का भावना जागती है, वह बतल कहां से आयेगी। जब मां बच्चे को दूध पिलाती है तो उसे यह अनुभव कर वास्तविक आनन्द होता है कि बच्चे को वह ऐसी वस्तु पान करा रही है जो और कोई नहीं करा सकता।

स्तन का दूध हर तरह से पवित्र और स्वच्छ होता है। इससे बच्चे को किसी तरह के पेट के रोग होने का डर नहीं रहता समय की बचत एक और लाभ है। दूध का निर्मल प्रवाह छाती के अन्दर भरा हुआ है। नन्हें शिशु की भूख का समय होने पर स्तन मुंह में दिया और अलौकिक सुख माँ और बच्चे के हिस्से में आ पड़ा। पेट भारी होने का खतरा भी नहीं, पैसे की बचत से है और पात्र वगैरह का भी कोई झंझट नहीं।

हां, अगर आपकी तन्दुरुस्ती बच्चे को स्तनपान कराने से गिर ही है, या सिर में चक्कर अथवा शरीर में थकान इत्यादि का अनुभव होता है तो डाक्टर की राय लेना आवश्यक है। अगर आप अपने में इससे कोई अकल्याणकारी परिवर्तन नहीं पाते हैं तो अपने भोजन पर ध्यान देती रहिए और बच्चे का छाती मोह न छुड़इए।

स्तनपान कराने का तरीका

आरम्भ में बच्चे को लेटे लेटे ही दूध पिलाने की विधि अपनानी चाहिये। मां उसकी बगल में लेट जाये और छाती उसके मुंह के पास इस प्रकार लगा दे कि उसके ओठों के बीच स्तन की घुण्डी हो। इसके लिये सहज तरीका यह कि कोहनी बिस्तर पर गड़ा कर, हथेली पर शिशु का सिर रख लिया जाय। वह आप से आप मुंह खोल कर छाती से दूध चूसने लग जायेगा। मगर हाँ, उसकी नाक न दबने पाये, इसके लिये आपका दूसरा हाथ स्तन के ऊपर रखा रहना चाहिये। बहुतेरी बड़ी-बूढ़िया अपनी बहू-बेटियों को शिशु की नाक के चिपटा हो जाने के डर से यह तरीका अपनाने से रोकती हैं। उनका यह अनुशासन भले ही नाक के मामले में ठीक हो, पर बच्चे की स्वतन्त्रता में बाधक है और जो आनन्द बिस्तर [illegible] दूध पीने में बच्चों को मिलता होता है, वह गोद में जाकर खो जाता है।

यदि दूध कम उतरे

कभी कभी छाती से दूध उस मात्रा में नहीं उतर पाता जिससे कि बच्चे को पूरी खुराक मिल सके। तब माता को उदास नहीं होना चाहिये पर अपनी सारी चिन्ताओं को दूर कर अच्छी तरह और तरीके से भोजन करना चाहिये।

समय और कायदे की पाबंदी

पहले दो सप्ताहों में दस पन्द्रह मिनट तक बच्चे के मुंह में छाती रहने देनी चाहिए और वह भी हेर फेर करके। बाद में उसकी मर्जी जब तक हो पिये। यहाँ एक बात याद रखने की है। बच्चा दूध के साथ जो हवा खींचता है, पेट के भीतर वही बुल बुले की शक्ल में कुछ देर टिकी रहती है। इससे किसी किसी बच्चे को, जो अधिक हवा खींच लेता है, यह होता है कि दूध की पूरी खुराक पेट में उतर नहीं पाती और वह बेचैन हो उठता है। ऐसे मौके पर आप उसे कंधे से लगा उसकी पीठ आहिस्ते आहिस्ते सहला दें। चाहे आपका बच्चा अपनी खुराक की अन्तिम बूंद चूसने तक कोई बेचैनी न दिखाये, किन्तु दूध पिलाने के बाद कंधे पर लिटा कर उसकी पीठ सहला देनी चाहिए। ऐसा करने से आप देखेंगी कि उसके पेट में दर्द नहीं होगा।

यों देखा जाता है कि बहुत सी मातायें दूध पिलाने के लिये निश्चित समय या अन्य किसी कायदे पर अमल नहीं करती। कितनों का विश्वास है कि बच्चा दिन और रात में मिला कर काफी दूध पीता है। इस विश्वास की बुनियाद पर पली हुई मातायें अपने बच्चे मुंह के पास अब भी वह रोया, चाहे वह रोना भूल से हो या किसी अन्य कारण से, फौरन छाती

बनाना सीखिए

गरी के बिस्कुट

१ हरा नारियल या सूखा हो तो उसे कस कर थोड़े दूध में भिगो दो। सिल पर बारीक पीस कर रखो। उसमें शकर व आटा मिलाओ। ३ हिस्सा आटा व १ हिस्सा शकर का रखो और मिला कर गूंथ डालो कड़ा कड़ा। अब एक बड़ी लोई बनाकर चकले पर रोटी की तरह फैला कर बेलो। गिरी छोटी कटोरी से (धार तेज हो) बराबर के गोल-गोल बिस्कुट से काट लो। चूल्हे पर घी कढ़ाई में चढ़ा कर उसमें तल लो। इसी प्रकार बादाम, पिस्ते आदि के भी बना सकते हैं। आटे की जगह मैदे का उपयोग कर सकते हैं। चीनी ज्यादा होने पर फूटने का डर रहता है।

ढोकला

किसी बड़े बर्तन म १॥ सेर बेसन लेकर उसमें एक पाव तिल्ली का या सरसों का तेल, पतला दही आधा सेर, पापड़ खार (समुद्र फेन) पीस कर आधा तोला डाल कर गर्म पानी में (पकौड़ा की तरह पतला बेसन) घोल कर ढक गर्म जगह पर रात भर रख देना चाहिये। जाड़ों में [illegible] दिन सुबह धूप में रखने से खमीर उठ जाता है। दूसरे दिन उसमें हरी मिर्च, अदरक महीन पीस कर मिला दें। तीन या चार नींबू नमक, हल्दी भी डाल कर उसे और पतला कर लें। किसी चीज में खाने वाला सोडा रख लें।

फिर भगोने में थोड़ा पानी डाल कर उसमें एक कटोरे में पानी भर कर बीच में रख देना चाहिये। इसके लिये तेज आंच चाहिये। जब भगोने का पानी खौलने लगे तब एक गहरी तश्तरी लेकर उसमें घी लगाकर घुला हुआ बेसन थोड़ा-सा डाल कर चढ़ाते समय जरा सा सोडा मिलाकर उसी कटोरे पर रख कर भगोने का मुंह अच्छी तरह ढांक दें। जब फूल कर पक जाये तो उतार कर चाकू से कतरे काट कर थाली में रख दें। इसी तरह बार-बार तश्तरी में थोड़ा थोड़ा बेसन डाल कर बनाना चाहिये। जब सब बेसन का बन जाये तब कढ़ाई में घी या तेल डाल कर राई और हींग का तड़का देकर कतरे डाल दीजिये, जरा देर भून कर ऊपर से हरा धनिया काट कर व कच्चा नारियल कस कर डाल दीजिये।

दक्षिणी मीठी पूरी

अन्दाज का मैदा ले लो, आधा दूध व आधा दही डाल कर मैदे को माड़ लो, फिर छोटी-छोटी कुछ मोटा पूड़ियां बेल लो, चाकू से गोद लो, फूलने न पाये, फिर कढ़ाई में घी डालकर लाल-लाल भून लो। भगोने में चाशनी बना कर उसमें पूड़ी डालकर एक खोल लगा लो। इलायची केशर पीस कर डाल दो।

संस्कृत देव वाणी है

[पृष्ठ ४ का शेष]

सेनापत्यं च राष्ट्रं च।
दण्डनेतृत्वमेव च ॥
सर्व लोकाधिपत्यं च।
वेद शास्त्र विदर्हति ॥
(मनु-अध्याय १२)

चारों वर्णों का तत्व जानना हो, तीनों लोकों की बात समझना हो, वर्णाश्रम की महिमा को जानना हो तो वह वेदों से ही जानी जा सकती है। वेदज्ञ पुरुष सेनापति बन सकता है। न्यायाधीश बन सकता है। वेदज्ञ पुरुष समस्त लोगों का अधिपति हो सकता है।

क्या ये बातें कोरी कोरी कल्पनाये हैं। कदापि नहीं। १४०० वें शतक में बुक्क महीपति के समय में वेद भाष्यकार सायणाचार्य के बड़े भाई माधवाचार्य राज्य के सेनापति थे कि नहीं? हमारे प्राचीन पूर्वज राज्य सचालन, सेना-संचालन आदि करते थे कि नहीं?

फिर इन बातों में सन्देह करना हमारी अपनी हीनता, दीनता, आत्म विश्वास-हीनता का ही द्योतक है।

एक समय था, हम ही सब कुछ थे। एक समय था कि हम ही विधर्मियों के दास बने। एक समय था जब हम अंग्रेज महाप्रभुओं के काल में सब कुछ खो बैठे। अब पुन स्वराज्य काल आ गया है, पूर्वजों के पुण्य शेष हैं और हमारे सौभाग्य हैं। अब आशा करनी चाहिये कि भारतवर्ष पुनरपि अपने गत गौरव को शनै शनै प्राप्त कर सकेगा। वर्तमान धर्म निरपेक्ष राज्य में केवल राज्य के भरोसे पर बैठे रहना भी श्रेयस्कर न होगा। संस्कृतानुरागियों को पुनरपि नष्टप्राय धर्म का प्रचार प्रसार विचार संघुष्ट करना होगा। संस्कृत विद्या जीवित रहेगी तो हम भी जीवित रह सकेंगे और जीवित रह सकेगा हमारा धर्म, हमारी संस्कृति, हमारी सभ्यता और हमारा सब कुछ। क्यो संस्कृत विद्या का अभिसम्बन्ध सीधे वेद विद्या से है जो कि आर्य जाति का प्राण है।

जो जाति इतने आक्रमण इतने संक्रमण, इतने पराभवों में भी किसी प्रकार अपने आपको जीवित रख सकी, वह जाति अपनी स्वतन्त्रता के पश्चात, प्राप्त स्वराज्य काल में नष्ट हो जायगी ऐसा मानना अपने प्राचीन पूर्वजों का अपमान करना है। अपना भी अपमान करना है। अतएव मेरा श्रोतृवृन्द से यही अनुरोध है कि वे सर्वात्मना संस्कृत विद्या प्रचारार्थ कटिबद्ध रहें। सुख दुःख आते ही रहते हैं, उत्थान, पतन होते ही रहते हैं, और विवश होकर देखने ही पड़ते हैं किन्तु हमारा कर्तव्य है कि अपराजित हृदय से हम आगे ही बढ़ते चलें इसी में हमारा कल्याण है।

पाँच सहस्त्र वर्ष पूर्व, महाभारत महायुद्ध के पश्चात्, सौतिऋषि मुनि कहा था।

उर्ध्वबाहुर्विरोम्येष,
न च कश्चित् शृणोति मे ॥
धर्मादर्थश्च कामश्च।
स किमर्थं न सेव्यते ॥

मैं चिल्ला चिल्लाकर, हाथ उठा उठा कर कह रहा हूँ, कि लोगो क्यो इधर-उधर भटकते फिर रहे हो। तुम्हारे सब मनोरथ जिससे सिद्ध हों, उसी धर्म का सेवन क्यों नही कर रहे हो।

आज मैं भी, इस अवसर पर उसी वचन का स्मरण दिलाकर अपने भाषण को समाप्त करता हूँ।

[सभा के अध्यक्ष थे श्री सुब्रह्मण्य अय्यर प्रिन्सिपल संस्कृत विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय]

प्रधान जी को खुला पत्र

[पृष्ठ ६ का शेष]

पूर्व के समान फिर से सेवा समितियाँ स्थापित करके मेलों, रेलवे स्टेशनों, ग्रामों के हाट बाजारों, हस्पतालों आदि में सेवा तथा रक्षा के कार्यों को प्रोत्साहन दिया जावे?

(६) आर्य समाज मन्दिरों में वाद विवाद, व्याख्यान, अन्त्याक्षरी आदि सप्ताह में एक दिन कराने की परिपाटी डाली जावे।

(७) धार्मिक पुस्तकों के स्वाध्याय में रुचि उत्पन्न करने के निमित्त प्रदेशीय प्रतिनिधि सभाओं की ओर से धार्मिक परीक्षाओं में उत्तीर्ण प्रथम तीन व्यक्तियों को उत्तम पारितोषिक दिये जाया करें तथा स्थानीय आर्य समाजें अपने २ नगर या क्षेत्र के विद्यार्थियों को इसी प्रकार पारितोषिक देने की व्यवस्था करें।

साहित्य

(१) सार्वदेशिक तथा प्रदेशीय आर्य प्रतिनिधि सभाओं के द्वारा प्रकाशित साहित्य का अधिकाधिक वितरण हो।

(२) दैनिक व साप्ताहिक आर्यमित्र को पूरी शक्ति लगाकर सुदृढ़ बनाया जावे।

प्रधानजी! मेरा यह पत्र लिखकर आप से यह निवेदन है कि आर्य समाज में प्रगति लाने के लिये अपने कार्य काल में कोई ठोस पग अवश्य उठाइये। कम से कम मुझे तो वर्तमान दशा से बहुत चिन्ता है। आशा है आप गम्भीरता से विचार करेंगे। अन्य आर्य विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करने के लिये इसको मित्र में प्रकाशित कराना उचित समझा।

श्री प्रीतमलाल जी द्वारा प्रस्तावित

प्रदेशीय शिक्षा योजना के सम्बन्ध में आ० प्र० द्वारा ६-११-५४ को नियुक्त उपसमिति की आख्या (रिपोर्ट)

इस पर आगामी अंतरङ्ग सभा में विचार होकर निश्चय किया जायेगा। सं०

उपसमिति की बैठक १६-२-५५ को हुई जिसमें सभी सदस्य उपस्थित थे। श्री प्रीतमलाल जी ने अपनी योजना स्पष्ट समझाई। समयाभाव से स्थगित होकर दूसरी बैठक कानपुर में ३-१-५५ को हुई। इसमें स्वीकृत आख्या अन्तरङ्ग सदस्यों के विचारार्थ तथा आर्य शिक्षा विशेषज्ञों के परामर्श से प्रकाशित की जाती है। आगामी बैठक में अन्तरङ्ग सभा द्वारा इस पर विचार कर निर्णय किया जावेगा।

इस योजना में यह उद्देश्य रूप से लक्ष्य रखा गया है कि शीघ्र से शीघ्र पूर्ण प्रयत्न करके आर्य विश्वविद्यालय की स्थापना अवश्य करनी है। विश्व विद्यालय की स्थापना का प्रस्ताव मेरठ की स्वर्णजयन्ती में स्वीकृत हुआ था। विभिन्न आर्य महासम्मेलनों तथा उनके शिक्षा सम्मेलनों में भी इसकी आवश्यकता और उपयोगिता प्रदर्शित की जा चुकी है। इस वर्ष सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा ने भी लौकिक कार्यक्रम में आर्य शिक्षा-संस्थाओं के संगठन को आवश्यक स्थान दिया है। अत इस योजना का पर्याप्त महत्व है।

इसमें कुछ संदेह नहीं कि इस कार्य में अत्यन्त परिश्रम विपुल धनराशि तथा आर्यजनों के पूर्ण सहयोग की आवश्यकता होगी। निराशावादी बनकर समालोचना और विरोध करने की अपेक्षा आशावादी बनकर पूर्ण प्रयत्न के साथ रचनात्मक कार्य करना कहीं अधिक कठिन कार्य है।

यदि सार्वदेशिक सभा केन्द्रीय आर्य विश्वविद्यालय बनाना चाहे तो उसे अपनी नियमित रूप से निर्मित विद्यार्य सभा द्वारा विधान बनाकर संसद से आर्यविश्वविद्यालय विधेयक स्वीकार करना होगा किंतु हमारा कार्य उत्तर प्रदेश तक सीमित है अत हमें प्रदेशीय समस्त आर्यशिक्षा संस्थाओं को संगठित कर आर्य विश्वविद्यालय का विधान बनाकर प्रदेशीय विधान मण्डल से स्वीकृत कराना होगा और इसके लिये महा आन्दोलन भी करना होगा।

जबतक आर्यविश्वविद्यालय का विधान सरकार से स्वीकृत होता है तब तक हमें, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के हिंदी विश्व विद्यालय के समान वेद संस्कृत आदि विभिन्न विषयों की शिक्षा और परीक्षा का प्रबन्ध करना है। यदि आर्य जनों ने सहयोग दिया तो इसमें सफलता की पूर्ण आशा है।

आर्य विश्वविद्यालय में (१) विशुद्ध महर्षि दयानन्द पाठविधि (२) संस्कृत कालेज बनारस जैसी पाठविधि जिसे कि इस समय अनेक आर्य संस्थाओं ने स्वीकार कर रक्खा है) और (३) राजकीय स्कूल कालेज आदि की पाठविधि को इस समय (अपने विधान के सरकार द्वारा स्वीकृत होने से पूर्व काल के लिये) यथा समय लिया जावेगा किंतु वैदिक धर्म शिक्षा और संस्कृत भाषा की शिक्षा समस्त आर्य शिक्षा संस्थाओं में प्रत्येक छात्र छात्रा के लिये अनिवार्य होगी। अत स्कूल, कालेज, गुरुकुल, संस्कृत पाठशाला आदि समस्त आर्यशिक्षा संस्थायें विद्यार्य सभा से अवश्य सम्बद्ध हो जावें।

विद्यार्य सभा के नियम

१ नाम—आर्य प्रतिनिधि सभा उ० प्र० के अन्तर्गत एक 'विद्यासभा' होगी यही 'आर्य विश्वविद्यालय समिति' का कार्य करेगी। प्रदेश की समस्त आर्य शिक्षा संस्थायें इससे सम्बद्ध और स्वीकृत होंगी।

२ उद्देश्य और कार्य—(१) आर्य प्रतिनिधि सभा उ० प्र० से वैधानिक नियम के अनुसार सम्बद्ध आर्य समाजों तथा तदन्तर्गत प्रबन्ध समितियों के अधीन अथवा अन्य सम्बद्ध आर्य शिक्षण संस्थाओं में प्रबन्ध, संगठन तथा परस्पर सहयोग की प्रवृत्ति उत्पन्न करना

(२) सम्बद्ध शिक्षा संस्थाओं में वैदिक परम्परानुसार नैतिक (धार्मिक) तथा सांस्कृतिक शिक्षा की व्यवस्था करना।

(३) सम्बद्ध शिक्षा संस्थाओं के संगठन तथा सुप्रबन्ध एवं सदाचार नीति (धर्म) और देश प्रेम की वृद्धि के लिये उचित और उपयोगी परामर्श देना।

(४) सर्व साधारण में संस्कृत भाषा और वेद वेदांग, दर्शन तथा उपवेदों की शिक्षार्थ एवं तदर्थ विभिन्न परीक्षाओं के सचालनार्थ आर्य विश्वविद्यालय का सचालन करना।

(५) सम्बद्ध संस्थाओं में वैदिक (धर्म) को शिक्षार्थ योग्य अध्यापकों तथा अध्यापिकाओं की नियुक्ति संस्था द्वारा नियुक्तों की सम्पुष्टि, उनके प्रशिक्षण (Trening) की व्यवस्था तथा नैतिक (धार्मिक) प्रशिक्षण विद्यालय का सचालन करना।

(६) समस्त कक्षाओं के लिए नैतिक (धार्मिक शिक्षा की पाठ विधि का निश्चय करना।

(७) शिक्षा संस्थाओं का निरीक्षकों द्वारा निरीक्षण और उसमें उपदेशकों द्वारा वैदिक संस्कृति (धर्म) के प्रचार की व्यवस्था करना।

(८) छात्रों के हितार्थ उच्च कोटि के नैतिक साहित्य (मासिक आदि) का प्रकाशन।

(९) सम्बद्ध शिक्षा संस्थाओं के

[शेष पृष्ठ १४ पर]

(पृष्ठ १३ का शेष)

अध्यापकों तथा अध्यापिकाओं का उनके वय संस्था हितार्थ स्थान परिवर्तन आदि की व्यवस्था करना।

३ संस्थाओं को सम्बद्ध करने के नियम—

आर्य विद्यार्य सभा अधिष्ठाता शिक्षा विभाग] की उचित जांच के पश्चात् उसकी अनुकूल सम्मति होने पर निम्न लिखित नियमों को पालन करनेवाली संस्था को सभा सम्बद्ध किया जावेगा—

१ सभा द्वारा निर्दिष्टप्रवेश प्रार्थना पत्र को पूर्ण कर अपने विधान तथा प्रबन्ध समिति के प्रस्ताव के साथ, प्रस्तुत किया जावे। प्रवेश प्रार्थना पत्र का मूल्य ३) होगा। विशेष स्थिति में मूल्यवाले प्रार्थनापत्र के स्थान पर २) प्रवेश शुल्क के साथ प्रार्थनापत्र दिया जा सकता है।

२. संस्था की प्रबन्ध समिति में बहुमत सदैव आर्य सभासदों (साधारणत स्थानीय आर्य समाज द्वारा निर्वाचित) का रहे। प्रबन्ध समिति के कम से कम २।३ सदस्य अवश्य ही आर्य समासद हों।

(३) प्रधान मन्त्री तथा प्रबन्धक और आचार्य (मुख्याध्यापक) अनिवार्य रूप से आर्य समासद हों।

(४) संस्था अपनी आन्तरिक प्रबन्ध व्यवस्था में स्व विधानानुसार एवं राजकीय व्यवस्थानुसार स्वतन्त्र रहेगी किंतु सभा की सम्मति में कुप्रबन्ध अथवा अन्य कष्ट जाने पर सभा को अधिकार होगा कि संस्था का स्वय अथवा अन्य किसी प्रबन्ध समिति द्वारा सचालन करे।

(५) यथा सम्भव स्थानीय आर्यसमाज का प्रधान अथवा उपप्रधान ही संस्था का प्रधान होगा।

(६) सम्बद्ध संस्था में सह शिक्षा Co education) न होगी।

(७) संस्थाओं के नाम और कोटियां अन्न प्रकार होंगी, उन्हें वर्ष की समाप्ति पर सभा द्वारा नियत चित्र पर वार्षिक आख्या (report) और वार्षिक शुल्क निम्न प्रकार से देना होगा—

वर्तमान नाम	आर्य नाम	शुल्क
(अ) कक्षा ५ तक प्राइमरी स्कूल तथ)		
जन्य प्राथमिक विद्यालय		५
संस्कृत विद्यालय (समस्त प्रकार के दयानन्द संस्कृत विद्यालय		५
आर्यकन्या प्राथमिक	„	५)
गुरुकुल (समस्त प्रकार के) दयानन्द गुरुकुल	„	५)
(ब) कक्षा ८ तक दयानन्द पूर्व माध्यमिक विद्यालय	„	५)
जूनियर हाईस्कूल आर्यकन्या पूर्व माध्यमिक	„	८)
जूनियर हाईस्कूल आर्यकन्या पूर्व माध्यमिक	„	८)
(स) कक्षा ६ से १२ तक दयानन्द उच्च माध्यमिक विद्यालय		१२)
हायर सेकंडरी स्कूल दयानन्द संस्कृत महाविद्यालय		१२)
(द) डिग्री कालेज दयानन्द महाविद्यालय १५)		
बी ए एम ए आर्य कन्या महाविद्यालय १५)		

(८) सम्बद्ध संस्था सभा द्वारा स्वीकृत अपने विधान और नियमों में इस सभा की पूर्व स्वीकृत लिये बिना किसी प्रकार का परिवर्तन, परिवर्धन तथा संशोधन न कर सकेगी।

४ सभा का उत्तरदायित्व—धारा ३ में वर्णित नियमों का पालन करनेवाली, आर्य शिक्षा संस्था के सभा से सम्बद्ध हो जाने पर सभा उसका उत्तरदायित्व पैतृक संस्था के रूप में स्वीकार करेगी और संस्था को निम्नलिखित प्रकार का प्रमाणपत्र प्रदान करेगी (जिसके मिलने पर अनरजिस्टर्ड संस्था को अपनी रजिस्ट्री पृथक् कराना आवश्यक न होगा और प्रदेशीय शिक्षा बोर्ड द्वारा स्वीकृत किये जाने में भी सुविधायें प्राप्त हो सकेंगी)

"प्रमाणित किया जाता है द्वारा प्रबन्धित नामक संस्था आर्य प्रतिनिधि सभा उ० प्र० से (जो स्वयं एक रजिस्टर्ड संस्था है) नियमानुसार सम्बद्ध, स्वीकृत, संचालित तथा नियन्त्रित है, और आर्य प्रतिनिधि सभा उ० प्र० इसके प्रबन्ध तथा आर्थिक व्यवस्था के लिये अपने को उत्तरदायिनी स्वीकार करती है।"

५, सभा का निर्माण—विद्यार्य सभा में निम्न प्रकार से ३० तक सदस्य होंगे

(१) प्रधान—आ. प्र सभा का प्रधान (स्वपदेन), विश्वविद्यालय-कुलपति १

(२) मन्त्री—आ प्र स की अन्तरंग द्वारा निर्वाचित, अधिष्ठाता शिक्षा विभाग विश्वविद्यालय का प्रस्तोता (रजिस्ट्रार) १

(३) कोषाध्यक्ष—आ, प्र. स का कोषाध्यक्ष स्वपदेन १

[४] आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग से निर्वाचित सदस्य, जो कम से कम बी ए शास्त्री या स्नातक हो ३

(५] एक सदस्य आर्य प्रतिनिधि सभा का मन्त्री १

[६) सम्बद्ध शिक्षा संस्थाओं के प्रतिनिधि जो निम्नलिखित रीति से निर्वाचित होंगे। १४

२०

[क) दयानन्द महाविद्यालयों के प्रबन्धकों में से १

(ख) „ „ अध्यक्षों में से १

(ग) „ उच्चतर विद्यालयों उनके „ १

(घ) „ „ , प्रबन्धकों में से १

(ङ) आर्यकन्या „ „ „ १

(च) „ „ „ अध्यापिकाओं में से १

(छ) „ पूर्वमाध्यमिक „ १

(ज) „ „ „ प्रबन्धकों में से १

(झ) समस्त संस्कृत विद्यालयों १

(ञ) „ „ अध्यापकों में से १

(ट) „ गुरुकुल के „ १

(ठ) „ „ प्रबन्धकों में से १

(ड) गुरुकुल विश्व विद्यालय वृन्दावन से १

(ढ) कन्या गुरुकुल हाथरस से १

(७) विद्यार्यसभा द्वारा सहयुक्त ३ तक आर्य शिक्षा विशेषज्ञ ३

३०

६ विद्यार्यसभा अपनी वार्षिक बैठक में वार्षिक आख्या स्वीकृत करेगी, वार्षिक आनुमानिक आयव्यय (बजट) स्वीकार (report) करेगी तथा उपप्रधान, उपमंत्री, उपकुलपति, निरीक्षक, आयव्यय निरीक्षक को नियुक्त करेगी।

७. शिक्षा संस्थाओं के प्रतिनिधियों का निर्वाचन प्रदेशीय आर्य शिक्षा सम्मेलन में हुआ करेगा और ३ वर्ष के लिये स्थायी होगा। विशेष अवस्था में यह कार्य डाक द्वारा सम्मति प्राप्त करके भी किया जा सकता है।

८ विद्यार्यसभा को नियमों के आधार पर उपनियम बनाने का अधिकार होगा।

९ आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग को विद्यार्यसभा के निश्चयों पर आवश्यकतानुसार पुनर्विचार करने का अधिकार होगा।

कुछ उपनियम

१. सम्बद्ध सहायता प्राप्त संस्था को सरकारी मैनेजर्स रिटर्न की एक प्रति सभा के पास प्रतिवर्ष रिपोर्ट के साथ भेजनी होगी।

२ सम्बद्ध संस्था को संस्कृत भाषा तथा नैतिक शास्त्र [वैदिक धार्मिक-साहित्य] की शिक्षा द्वारा निर्दिष्ट पाठ्य क्रमानुसार अपने छात्रों में अनिवार्य रूप से प्रचलित करनी होगी, नियमित रूप से दैनिक सन्ध्या हवन तथा आर्य पर्व और यथा शक्ति उपनयन-वेदारम्भ संस्कार सम्पन्न करने होंगे, पुस्तकालय में चारों वेद तथा महर्षि दयानन्द कृत और अन्य उपयोगी धार्मिक ग्रन्थ रखने होंगे, एवं धर्म शिक्षाध्यापन, हवनादि धार्मिक कार्य सम्पादन, और उपदेशक-निरीक्षक मार्ग इत्यादि के लिये कोई निधि अथवा कुछ धन सुरक्षित रखना होगा।

३ सम्बद्ध संस्था सभा द्वारा प्रेषित उपदेशक तथा निरीक्षक को व्याख्यान तथा संस्था के निरीक्षण की आवश्यक सुविधा और उचित मार्ग कम व्यय तथा ५) निरीक्षण शुल्क प्रदान करेगी।

४ कार्यालय विद्यार्य सभा और आर्य विश्वविद्यालय का कार्यालय प्रस्तोता सभ मंत्री (अधिष्ठाता शिक्षा विभाग) के स्थान पर रहेगा और उसे लेखक टायपरायटर आदि की आवश्यक सुविधायें प्राप्त रहेंगी।

आर्य विश्व विद्यालय के कुछ नियम

१. आर्य विश्वविद्यालय द्वारा प्रति वर्ष ५ परीक्षायें ली जाया करेंगी जिनके नाम उपाधियों, शुल्क, विषय आदि निम्न प्रकार से होंगे और जिनमें कोई भी परीक्षार्थी योगतानुसार बैठ सकेगा। उत्तर का माध्यम हिंदी होगा, आवश्यकतानुसार अन्य भाषाओं में भी उत्तर स्वीकृत किये जा सकेंगे।

२ ये परीक्षायें वेद, कुरान, आर्यभाषा (हिन्दी) वेदाङ्ग (व्याकरण, गणित ज्योतिष), दर्शन, विज्ञान आदि विषयों में होंगी। परीक्षार्थी एक मुख्य विषय का अतिरिक्त इच्छानुसार अन्य विषय भी ले सकते है, किंतु प्रत्येक विषय का अतिरिक्त शुल्क देना होगा।

३ प्रत्येक प्रश्न पत्र के पूर्णाङ्क १०० होंगे। उत्तीर्णांक (३ श्रेणी) ३३ से ४४ तक, द्वितीय श्रेणी ४५ से ५९ तक और प्रथम श्रेणी ६० से १०० प्रतिशत होंगे।

४ कम से कम ५ व्यक्तिगत छात्र होने पर उस स्थान पर आर्यसमाज के प्रधान अथवा विद्यालय के प्रधानाचार्य की अध्यक्षता में केन्द्र स्वीकृत किया जा सकेगा। प्रत्येक सम्बद्ध विद्यालय परीक्षा केन्द्र होगा और उस विद्यालय का ७ म कक्षा से आगे का प्रत्येक छात्र प्रतिवर्ष किसी न किसी परीक्षा में अवश्य सम्मिलित होगा। प्रत्येक आर्य समाज के सदस्यों को भी इन परीक्षाओं में अवश्य सम्मिलित होना चाहिये।

१ कालीचरण आर्य—पूर्व मन्त्री आ० प्र० सभा—संयोजक उपसमिति

२ फूलसिंह सदस्य—उपसमिति

३ आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री एम० ए० अधिष्ठाता शिक्षा विभाग सदस्य उपसमिति

संख्या नाम	समकक्षा	उपाधि	विषय अनिवार्य	ऐच्छिक विषय (प्रत्येक विषय में एक विषय का)	प्रश्न पत्र	शुल्क
(१) प्रथमा	८ म कक्षा	विशारद	वैदिक साहित्य	४	१	॥)
(२) पूर्वमध्या	१० „	भूषण	„	३	२	३)
(३) उत्तरमध्यमा	१२ „	रत्न	„	२	३	२)
(४) स्नातक	बी० ए०	शिरोमणि	„	१	४	३)
(५) स्नातकोत्तर	एम० ए०	अलंकार	„			[illegible]

अन्तरंगाधिवेशन की सूचना

सर्व अन्तरंग सभासदों को विदित हो कि आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश की अन्तरंग सभा का साधारण अधिवेशन दिनांक २९ व ३० अक्टूबर १९६५ दिन शनिवार व रविवार को कन्या गुरुकुल हाथरस (अलीगढ) के रजत जयन्ती महोत्सव के शुभअवसर पर होगा। कृपया सदस्य गण नियत समय पर पधारने का कष्ट करें। प्रथम दिवस की बैठक १ बजे मध्याह्नोत्तर से प्रारम्भ होगी।

जगदेवसिंह ऐडवोकेट
मन्त्री
आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश

२००० वार्षिक सदस्य दैनिक के बनाने में पूरा बल लगायें

(पृष्ठ २ का शेष)

tative and enternal character'

श्री सुखदेव जी वेदालङ्कार ने अपनी पुस्तक वेद तत्त्व प्रकाश में भी ऐसा लिखा है। "पुरुष अर्थात परमात्मा के साथ रहने वाला जो सदा मुख्य समर्थ है जिसको हम ज्ञान शक्ति या क्रिया शक्ति का नाम दे सकते हैं उसी से ही वेद प्रकट हुए है।"

मेरी उलझन यह है साँख्य के सम्बन्ध में 'पुरुष' और 'प्रधान' विशेष अर्थ रखते हैं। दोनों विद्वानों ने इस पर विचार नहीं किया और स्वामी जी के शब्दों को विशेष अर्थ में लेने के स्थान में हिन्दी का अनुवाद का ही दृष्टिकोण किया है।

मेरा दार्शनिक विद्वानों से प्रार्थना है कि सांख्य दर्शन के पूर्वार्ध पर विचार करके यह दिखाने की कृपा करें कि वास्तविक बात क्या है? पुरुष और प्रधान का सहचारित्व क्या है और उसका वेद के नित्यत्व से क्या सबंध है?

उ०प्र० सभा श्री घासीराम जी के अंग्रेजी अनुवाद को छपवा रही है। श्री प्रशंसित प० जी ने स्वामीजी महाराज के संस्कृत भाग का ही अंग्रेजी अनुवाद किया है, और यथा शक्ति हार्दिक अनुवाद करने का यत्न किया जो सर्वथा समुचित ही है। इस स्थल पर मुझे यह बात स्पष्ट नहीं जची। इसीलिये विद्वानों की सहायता अपेक्षित है। श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज तथा स्वामी वेदानन्द जी साँख्य के विद्वान हैं वह विशेष ध्यान दें तथा अन्य विद्वान् भी।

—गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०

आर्यमित्र का शुल्क

दैनिक + साप्ताहिक

एक वर्ष का	—	२४)
६ माह का	—	१३)
३ माह का	—	७)
एक प्रति का	—	-)

साप्ताहिक का शुल्क

एक वर्ष का	—	८।
६ माह का	—	४।)
३ माह का	—	२।)
एक प्रति का	—	=)

पता:—'आर्यमित्र'
५ मीराबाई मार्ग, लखनऊ
फोन—१९३
तार—'आर्यमित्र'

आर्यमित्र

रजिस्टर्ड नं० ए० ६०
१६ अक्तूबर, १९५५

१५ अक्टूबर की परीक्षा

दो हजार सदस्यों का संकल्प

क्या चाहती है जनता ?

१५ अक्तूबर तक २००० वार्षिक सदस्य बनाने की प्रार्थना हम कई बार कर चुके हैं आज सीधे शब्दों में हमारा प्रश्न है कि आर्य जनता क्या चाहती है, उठना या गिरना ?

यदि उत्थान इष्ट है तो यह २००० सदस्यों की मांग पूरी होनी चाहिए ·····चाहे जैसे हो ! १५०० के लगभग सदस्यों का शुल्क ३० सितम्बर को समाप्त हो गया है उन सब को पत्र भेजे जा चुके हैं। यदि वे सदस्य और कुछ नए भी इस ओर ध्यान दें तो संकट कट सकता है !

इस ओर सुविधा के लिए मूल्य भी २४) के स्थान पर २२) कर दिया गया है।

इसमें साप्ताहिक का मूल्य भी शामिल है। अब देरी न करें और आर्यसमाज के गौरव प्रतीक को जीवित रखने के लिए पूरे बल से १५ अक्तूबर तक का समय दैनिक मित्र के सदस्य बनाने में लगाएं।

२००० सदस्य, जो चन्द पैसे रोज देकर अपना दैनिक पढ़ सकें साप्ताहिक भी साथ में हो, यदि आर्य जनता नहीं कर सकती तो हम क्या करें वह ही बताए ! शीघ्रता कीजिए देरी किसी भी अवस्था में उचित नहीं।

भवदीय—

जयदेवसिंह एडवोकेट
मन्त्री
आर्यप्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश

कालीचरण आर्य
अधिष्ठाता
आर्यमित्र

भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् की परीक्षाएं

भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् द्वारा संचालित सिद्धांत सरोज सि० रत्न, सि० भास्कर, सि० शास्त्री सि० वाचस्पति परीक्षायें आगामी जनवरी मास में देश विदेशों में होंगी। आवेदन पत्रों की तिथि ३१ अक्तूबर १९५५ है। इन परीक्षाओं की विशेषता है—धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय, किसी भी परीक्षा में सीधे बैठने की सुविधा, प्रत्येक परीक्षा का प्रमाण-पत्र उपाधि रूप में मिलना है। आर्य संस्थाओं में शिक्षक उपदेशक, बनने में इनको प्रमाण माना जाता है। इन्हीं परीक्षाओं के लिए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने अष्टम आर्य महासम्मेलन में निश्चय किया है कि वैदिक धर्म प्रचार और उन्नति की दृष्टि से कुमार, कुमारियों युवक-युवतियों को अधिक से अधिक संख्या में परीक्षा में बैठायें।

पाठ विधि तथा आवेदन पत्र मंगाने, नवीन केन्द्र स्थापित करने एवं अन्य जानकारी के लिए परीक्षा कार्यालय से पत्र व्यवहार करें।

डाक्टर प्रेमदत्त शर्मा शास्त्री P.I.M.S
परीक्षा मन्त्री
भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् अलीगढ़

सत्यार्थ प्रकाश पाठ संख्या ३७ (अष्टमसमुल्लास)

विकासवाद की आलोचना

[श्री सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम० ए० एल० टी० डी० वी० कालेज, गोरखपुर]

पिछले लेख में हमने बताया था कि विकासवाद क्या है वे विकास वादी प्राकृतिक पदार्थों का आदि और मूल कारण ईश्वर को मानते हैं उसीकी कल्पना, और तरंगावली से विद्युत, प्रकाश शब्द और गर्मी पैदा होती है। उसी के सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणों को इलेक्ट्रोन कहते हैं। इन इलेक्ट्रोनों के संघात से ही विद्युत होती है और वही शक्ति के रूप से स्थूल आकार में मैटर कहलाती है। मैटर की विरल दशा गैस, तरल दशा द्रव और ठोस अवस्था को सोलिड कहते हैं। ईश्वर से पैदा, हुए ये ही पदार्थ घनी भूत होकर आकर्षणानुकर्षण के नियम से चक्राकार गति म हो जाते हैं। कुछ दिनों में वही चक्र सूर्य हो जाता है। सूर्य में गर्मी और गति के कारण चक्कर लगाते हैं और पृथक होकर अन्य ग्रह बन जाते हैं। इसका बनाने वाला परमात्मा नहीं। यह पृथ्वी पहले गर्म थी, धीरे-धीरे ठंडी हुई, समुद्र बने, उनसे भूमि निकली और जीवन आरम्भ हुआ। जड़ से जीवित प्राणी हुए।

पृथ्वी में जड़ से चेतन वस्तु बनी। पहले यहां न वनस्पति थी और न जन्तु! किन्तु दोनों को उत्पन्न करने वाली चेतनता थी। उसकी एक शाखा एक कोष्ठधारी 'अमीबा' बन गई। इस 'अमीबा' की संख्या बढ़ने पर इनमें जीवन संग्राम शुरू हुआ। शक्तिशाली बचे। जो अमीबा बचे वे भी भिन्न प्रकार के होते हुए भी बढ़े, योग्य बचे और अयोग्य मारे गए और अन्त में मरते बचते, परिस्थिति के अनुसार अपना रूप बदलते-बदलते मछली, मेढक, सर्प, पक्षी गाय, बैल, बन्दर, वनमानुष और मनुष्य की उत्पत्ति हुई।

इस प्रकार विकासवादी न तो ईश्वर को मानता है और न चैतन्य को ही मानता है और अंगों में परिवर्तन तथा जड़ का चेतन में परिवर्तन मानता है। ईश्वर आदि चैतन्य की सत्ता पर विचार करने से पूर्व हमें यह देखना चाहिए कि क्या संसार में कोई भी ऐसा उदाहरण है जिससे यह सिद्ध हो सके कि जड़ता जीवन में परिवर्तित हो सके। रासायनिक क्षेत्र में हमें इसका कोई अन्य उदाहरण नहीं मिलता कि जीवित वस्तुओंमें कुछ इस प्रकार के विशेष गुण हैं जो केवल रासायनिक परिवर्तनों से उत्पन्न होते नहीं दिखाई देते। ये गुण निम्न हैं:—

(१) प्रत्येक जीवित वस्तु एक समष्टि के रूप में काम करती है चाहे उसके कितने ही अवयव हों।

(२) प्रत्येक जीवित वस्तु अपने आन्तरिक स्वभाव तथा किसी उद्देश्य के लिए कार्य करती है। मनुष्य या जानवर अपनी इच्छा से किन्तु पत्थर की कोई अपनी इच्छा नहीं। जीवित वस्तुओं में आत्म रक्षा, सन्तति रक्षा आदि कार्य पूरे होते दिखाई देते हैं परन्तु जड़ वस्तुओं में ऐसा नहीं होता।

(३) जीवित वस्तुओं में प्रत्येक अंग के लिए अलग-अलग क्रियायें होती हैं।

(४) जड़ वस्तुएं सर्वथा परिस्थिति के वश में रहती हैं उन्हें भौतिक तथा रासायनिक वस्तुओं द्वारा ही गति प्राप्त होती है। परन्तु जीवित वस्तुओं में गति आन्तरिक प्रभावों और प्रेरणाओं से होती है।

(५) जीवित वस्तुओं में अपने आपको परिस्थितियों के अनुकूल बनाने और बाह्य पदार्थों में से मतलब की चीजों को लेकर अपने अन्दर जज्ब कर लेने की योग्यता तथा वृद्धि, चोट आदि की क्षति पूर्ति और सन्तान उत्पत्ति के विशेष गुण होते हैं—ये गुण निर्जीव वस्तुओं में नहीं होते।

इस लिए यदि जीवित वस्तुएं केवल जड़ तत्वों के समास मात्र हों तो जड़ तत्वों के मिलने से जैसे जड़ समास उत्पन्न होते हैं उसी तरह जीवित वस्तुएं और उनके घटक प्रोटोप्लाज्म, रक्त तथा एल्व्यूमिन आदि भी क्यों नहीं उत्पन्न हो जाते। आज तक कभी किसी वैज्ञानिक ने जड़ वस्तुओं के मेल से जीवित वस्तु का निर्माण नहीं किया।

हर्बर्ट स्पेन्सर आदि विकास वादी कहते हैं कि भूतकाल में संभव है ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई हो जब कि जड़ तत्वों के मेल से जीवित वस्तुओं के उत्पन्न होने के बाद इन जीवित चीजों से दूसरी, तीसरी जीवित शृंखला चल पड़ी हो। परन्तु इस कल्पना को मानने का मन नहीं करता। माना यह जाता है कि "कारण गुण पूर्वक: कार्य गुणो दृष्ट:" कारण गुणों को कार्य में होना देखा जाता है। बात भी ठीक प्रतीत होती है अब जड़ और जीवित वस्तुओं में बहुत अधिक भिन्नता के कारण यह संभव नहीं अत: विकासवाद का आधार ही ठीक नहीं।

इसके अतिरिक्त विकास वादी कहते हैं कि सबसे पहले अस्थिविहीन प्राणी थे परिस्थिति ने उनमें हड्डियां उत्पन्न कर दीं। यह विचित्र बात है यदि परिस्थितियों में या वातावरण में हड्डी उत्पन्न करने की शक्ति है तो एक ही परिस्थिति में रहने वाले भाई और बहन दोनों के दाढ़ी मूंछ क्यों नहीं उत्पन्न होती? हाथी और हथिनी एक ही परिस्थिति में रहते हैं पर हथिनी के बड़े बड़े दाँत नहीं। मोर और मयूरी, मुर्गा और मुर्गी के एक परिस्थिति में रहते हुए भी सुन्दर पर और कलगी। अतः परिस्थिति व हड्डियां कैसे?

हम ने चित्र द्वारा बतलाया था कि विकास वाद के अनुसार एक कोष्ठ का अमीबा आगे चलकर दो कोष्ठ का हैवान गया और विकास वाद के सिद्धान्तानुसार ये हमेशा दुगने होते जाते हैं। इस सिद्धान्त से प्रत्येक उत्तरोत्तर की योनियां आकार और वजन में एक दूनी और दूनी से चौगुनी होनी चाहिए थी—पर ऐसा नहीं होता।

इस लिए संक्षेप में हमारा यह कथन है कि एक ही वस्तु से अनेक वस्तुएं अस्थि हीनों से अस्थि वाले प्राणी हो गए यह सिद्धान्त ठीक नहीं। यदि इस विकास के सिद्धान्त को हम मान लें तो हमें निम्न बातों का कोई उत्तर नहीं मिलता।

(१) एक कोष्ठ वाले अमीबा से स्त्री और पुरुष यह दो भेद कैसे हुए

(२) यदि अमीबा के बाद दो कोष्ठ का पैदा हुआ तो क्रमशः सभी योनियां दुगुनी क्यों नहीं हुई और क्यों नहीं अब भी बढ़ती हैं?

(३) पक्षधारी प्राणी तो सर्पणशीलों के बाद होने चाहियें थे, पहले नहीं, तब कृमियों में पर कैसे उत्पन्न हुए?

(शेष पृष्ठ १५ पर)

राष्ट्र के अष्ट तत्व

ओ३म् सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु॥
(अथर्व)

हे विश्व नियन्ता परमात्मन्! आप के सत्य, बृहत्, ऋत, उग्र, दीक्षा, तप, ब्रह्म और यज्ञ, पृथ्वी को-राष्ट्र को, अखिल विश्व को-धारण करते हैं। वह हमारे भूत, भविष्यत् और वर्तमान को रक्षिका सर्वधात्री पृथिवी-मातृभूमि, स्वराष्ट्र, हमारे लिये विस्तृत, अतिविशाल लोक—स्थान और प्रकाश की समुचित व्यवस्था करे।

राष्ट्र निर्माण के लिये, और सारे संसार के कल्याण के लिये सचाई, महानता, तेजस्विता, दृढ़निष्ठा, तपस्या, ज्ञान और परोपकार की भावना, इन आठ तत्वों की आवश्यकता है। ईश्वर सबसे बड़ा संसार का सचालक शासक राजा है। ईश्वर की ये आठ शक्तियां इस पृथिवी ही नहीं, अपितु अखिल ब्रह्माण्ड का संचालन करती हैं। चराचर जगत् में इन आठ तत्वों को मूर्तरूप में हम देखते हैं।

आज हमारा राष्ट्र निर्माण पथ पर द्रुतगति से बढ़ता चला जा रहा है। राष्ट्र की उन्नति में इन आठ तत्वों के समुचित उपयोग से ही राष्ट्र का कल्याण है और राष्ट्र के कल्याण से संसार का कल्याण भी सम्भव है। इस वैदिक अष्टांग योग साधन से, बिना विरोध के, बिना युद्ध और संघर्ष के अखिल विश्व की उन्नति और कल्याण एक साथ हो सकते हैं। भगवन्! हम आर्य इसी प्रकार स्वराष्ट्र और संसार के क[illegible] की कामना करते हैं।

आर्यसमाज के समस्त पत्रों में सबसेअधिक छपने वाला आर्य प्रतिनिधिसभा उत्तर प्रदेश का मुखपत्र—

लखनऊ—रविवार २३ अक्टूबर।१९५५ तदनुसार आश्विन शुक्ल ८ सम्वत् २०१२ सौर २९ आश्विन।दयानन्दाब्द १३० सृष्टिसम्वत्१९७२९४९०५५

सम्पादकीय

अब हम कहां हैं ?

इस समय न केवल हमारे समक्ष अपितु आर्यसमाज के वर्तमान और भविष्य के बारे में सोचने वाले प्रत्येक व्यक्ति के समक्ष केवल एक प्रश्न है कि आर्यसमाज का क्या बनेगा ! सब एक स्वर से मानते हैं कि आर्यसमाज का भूत महान था, वर्तमान शिथिल है और भविष्य अंधकारमय ! यह शिथिलता और अन्धकार क्यों है इसके बारे में प्रायः जानकर भी अनजान बन जाते हैं यही विचित्रता है।

अंधकार के कारण दो हो सकते हैं पहला यह कि आर्यसमाज के मंतव्य, सिद्धांत असत्य, अज्ञान पर आधारित हैं और दूसरा यह कि जिनके हाथ मे बागडोर है वे असफल हैं, अयोग्य हैं। हम निश्चित और विश्वास पूर्वक यह कहना चाहते हैं कि इन दो कारणों में से एक के अतिरिक्त और कोई कारण इस निराशा और शिथिलता का नहीं है। अतः आइए विचार करें कि मूल कारण क्या है !

प्रथम संभावित कारण हो सकता है सिद्धांतों की दुर्बलता का ! किन्तु सत्य उपयोगिता और शांति प्राप्ति की सफलता के दृष्टिकोण से वैदिक सिद्धांतो में त्रुटियां, दोष निकाला जा सकता है। यह आज तक सम्भव नहीं हुआ। बड़े-बड़े तार्किक विद्वान विचारक नेता विचार करने पर वैदिक ज्ञान के अनुयायी बन गए। सत्य, शाश्वत ज्ञान और मानव कल्याण की दृष्टि से वेद की विचारधारा पूर्ण है ! अंतर की गहन घाटियों में प्रकाश प्रभा छिटकाने की पूर्ण सामर्थ्य इसमें है। मत मतांतरों को समाप्त कर एक धर्म का शुभ सन्देश देने का बल भी इसी में है। और सब से बढ़ कर यह कि सम्सार के प्रत्येक व्यक्ति के लिए वेद मार्ग समान स्थान है। समानता का प्रे का शांति का, कल्याण और निर्माण । शुभ दिव्य ज्योतित सन्देश आर्यसमाज के लक्ष्य के अतिरिक्त और कहां ! कौन है ऐसा भूतल पर जिसमें बुद्धि और विचार शक्ति हो; और वह यह कह सके कि इस मार्ग में कोई त्रुटि है। बताइए कौन सी ऐसी विचारधारा है जो प्राणि मात्र के कल्याण का लक्ष्य रखती हो, जिसमें व्यक्ति पूजा का स्थान न हो और वह सच्चे अर्थों में समानता का सन्देश देती हो ! जिस मार्ग में रूढ़ि का, विश्वास का गुरुडम का कल्पना का स्थान न हो, जो जीवन में दुःख को नहीं सुख को ही स्वीकार करती हो ? दृष्टि डालिए चारों ओर, सोचिए भूमि की समस्याओं पर; और तब देखिए महर्षि के पावन दिव्य सन्देश को समस्त प्रज्वलित समस्याओं का हल आपको इसमें मिलेगा !

आर्य समाज के सिद्धांत बल ने मुंशीराम को श्रद्धानन्द बनाया था। जामा मस्जिद की गद्दी से वेद धर्म का उपदेश देने वाला वीर, चांदनी चौक में संगीनों के सम्मुख सीना ताने जो विरोधी दल को ललकारने का साहस रखता था, वेद ज्योति से दीप्त उसकी आभा के आकर्षण से विश्व वंद्य गांधी ने उस दयानन्द के शिष्य के चरणों पर मस्तक रखना अपना सौभाग्य समझा था। गुरुदत्त, लेखराम दर्शनानन्द और नारायण स्वामी से रत्न इस सिद्धांत बल की देन थे। और स्वयं महर्षि दयानन्द ही क्या थे, इसी वेद ज्ञान के सच्चे अनुयायी। इतिहास के पृष्ठ पलटकर देखिये कहीं महामानव दयानन्द सी उदात्त निर्मल दिव्य विभूति खोजने पर भी आप को न मिलेगी ? एक अकेला लंगोट-बंद सन्यासी विश्व की १७५ करोड़ जन संख्या के विचार बदलने का साहस लेकर किस के बलसे खड़ा हो सका था ? उसकी वाणी में ओज, और प्रभाव किसने उँडेल दिया था ! जीवन साधना का वह मूर्त रूप 'वेद' ज्योति का बल लेकर विजयी हुआ था ! उसकी क्रांति का मार्ग चेतना जीवन और निर्माण पर आधारित था, उसकी सफलता के बाद कौन यह कहने का साहस कर सकता है कि वेद ज्ञान के सिद्धांतमें बल नहीं, सत्य नहीं या ससार को उनकी आवश्यकता नहीं।

अब दूसरा पक्ष लीजिये और वह है उन व्यक्तियों का जिनके हाथ में आज आर्य समाज की बाग डोर है। बताएँ वे आर्य समाज के संदेश को प्रसारित करने हेतु क्या कर रहे हैं। कितना समय वे देते हैं कितना विचार वे करते हैं, कितना त्याग कर वे अटल अडिग विश्वास के साथ लक्ष्य पूर्ति की साधना में लीन हैं। बताइए ! किसमें साहस है जो कह सके कि मैं अपने पूरे बल, विश्वास से अपने को मिटा कर भी आर्य समाज की विचार धारा प्रसार के लिये काम कर रहा हूँ। जो थोड़े बहुत है उन्हीं के बल पर थोड़ा बहुत हो रहा है पर कर्णधार से जो हमारी नौका के खिवैया बने हैं उनकी ओर देखिए, क्या कर रहे हैं वे ? शून्य में लटक कर स्वार्थ पूर्ति में मग्न, चुनाव और मान के चक्कर में महर्षि के अरमानों को कुचल कुचल कर अपने गौरव को बढ़ाने की कल्पना की जा रही है और परिणाम सर्वनाश के रूप में काल सा सम्मुख खड़ा है। इस स्थिति का दर्शन हमारे अंतर में अपार वेदना भर देता है हम कहते है पर सुने कौन, जाने कौन, माने कौन ?

हम पूछते हैं बताइये क्या हो रहा है आज ? कितने नये व्यक्ति आ रहे हैं हम में, कितना मोन बढ रहा है हमारा, कितने व्यक्ति विचारधारा को पहचान मार्ग परिवर्तन कर रहे है ? ग्रामो मे नगरो में विद्वानों मे मूर्खों मे, कहाँ हमें सफलता मिल रही है। दयानन्द की साधना का श्रद्धानन्द व लेखराम के बलिदान का परिणाम क्या है ? जीवन गति प्रेरणा कहाँ है ? और छोड़िये, अपने को आर्य समझने या कहलाने वालों मे प्रेम कहाँ ? सहानुभूति व सहयोग व अपनत्व कहाँ ? जा रहे हैं हम, कोई क्यो नहीं सोचता ?

आर्यसमाज किन्हीं विशेष व्यक्तियों की सम्पत्ति या धरोहर नहीं, आर्यसमाज उन व्यक्तियों के संगठन का नाम है जो ऋषि दयानन्द के सच्चे शिष्य हों, पर आज मे। लकाम का नहीं पार्टी बाजी का है, ढोंग का है, आडम्बर का है। किन्तु क्या यह विनाश मार्ग हम सहन करते ही चले जायेंगे, इस प्रश्न का उत्तर हम उनसे चाहते है जो वास्तव में दयानन्द के अनुयायी है, जिनके हृदय में आग है, जो करना जानते है कहना नहीं, जिन्हें ससार के भोगो से अधिक आत्मा का अपने कतव्य का ध्यान है।

टालने से काम न चलेगा, हमें उत्तर चाहिये बातों का नहो। अपने अनुभव के आधार पर हमारा कथन है कि आर्य

मत चूको हे आर्य !

आर्य जनों का बल निर्बल है, नहीं मुझे विश्वास,
सोच न सकती मिट जायेगा, "मित्र" छटा का हास।
श्वास-श्वास में झंकृत है अब, वैदिक गौरव गान,
कितना सौरभ फैल चुका है, कर न सके अनुमान।

आदि प्रहर से परम तपस्वी, सा साधक जय गीत
दयानन्द के आदेशों का, वाहक रहा पुनीत।
झुक जायेगी कीर्ति ध्वजा क्या, रहते जीवन प्राण ?
आर्य जाति का मस्तक नत हो, मिट जाये सम्मान ?

नहीं जानती कौन सुनेगा, या मानेगा बात,
किन्तु पूछती मरण न होगा, सह कर यह आघात ?
कठिन परीक्षा का अवसर है, मत चूको हे आर्य !
आगे बढ़ कर पीछे हटना, नहीं वीर का कार्य ॥

—राकेशरानी "साहित्यरत्न"

समाज के वर्तमान ढंग को बदल बिना काम न चलेगा। विश्व में क्रान्ति के हेतु आर्यसमाज में प्रविष्ट ... तत्वों को ... होगा। ... लक्ष्य को समाप्त होते देखने से बाधक ... की लज्जा की बात हमारे लिए और क्या हो सकती है इसलिए नवीन युग निर्माण का लक्ष्य भविष्य और अभियान का नियन्त्रण दे रहा है। हमें महर्षि के सदृश भी सफलता पर विश्वास है। हमें विश्व के नवीन निर्माण की रूपरेखा का भी ज्ञान महर्षि ने सिखाया है। हम वर्तमान से संतुष्ट नहीं भूत के निर्माण की इच्छा हमारे सामने है और आधार है वैदिक समाज, धर्म, और राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना!

इसलिए पुन ज्ञान ज्योति को दीप्त करने हेतु समिधा आज से यज्ञ में आहुति डालने का लक्ष्य लेकर ... व्यक्तियों से हमारी प्रार्थना है कि निराशा के कूपों में डूबते रहना छोड़िए, आशा का हाथ पकड़िये, ... नहीं, अपने अन्तर में दयानन्द का आलोक धारण कर वही उजाला ... श्रद्धानन्द के अन्तर में ... थी। मार्ग के रोड़ों से डरिए नहीं, ... किए नहीं, सफलता सिद्धि के लिये बढ़िए आगे परमपिता परमात्मा पर अटल विश्वास लेकर। विश्व की कोई शक्ति आपको तब डिगा न सकेगी।

तब यह प्रश्न कि आर्यसमाज का क्या बनेगा, सम्मुख ठहर न सकेगा, और जैसे हमारा भूत महान् था, भविष्य भी उज्ज्वल होगा। भारत में ही नहीं अपितु जब विश्व भर में वैदिक मार्ग का अनुसरण सभी करने लगेंगे तब होगी हमारी यह स्थिति कि हम कह सकें कि वर्तमान उज्ज्वल है। अभी तो भविष्य को बदलना है। वर्तमान में संतुष्ट हम हो सकें, प्रसार हो सके, इसी लक्ष्य हेतु यत्न करने की ... आज हमारी लेखनी कर रही है।

जो अपने को आर्य कह, उत्तरदायित्व संभाल कर भी कर्तव्य पालन नहीं कर सकते, उनसे अधिक पातक कौन होगा, आज हे आर्य बन्धु अन्तर टटोलिये, देखिये आप कहां हैं, आपका कर्तव्य क्या है और क्या हैं आपके कार्य? हमें नहीं अपने को प्रश्न का उत्तर दीजिये। सत्य को पहचानिये, और जानिए लक्ष्य को। यदि शेष है जीवन या ज्योति का अंश तनिक भी आप में है तो पथ भ्रष्टता और कर्तव्य विमुखता की समाप्ति का प्रण लेने आज ही अन्तर को टटोल बतलाइये, आप कहां हैं, कहां आप हैं वहीं आपका आर्यसमाज भी है यह कभी न भूलिए।

वेदप्रचार की सोचिए !

सार्वदेशिक में रजत जयन्ती के अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा की बैठक हो रही है। यदि हमारे मान्य अंतरंग सदस्य बुरा न मानें तो हम निवेदन करना चाहेंगे कि हमें अपनी इन बैठकों को, विवाद और प्रस्ताव पास करने मात्र तक ही सीमित न रखना चाहिए। जहां तक हमारा ज्ञान है, इन में वास्तव में कुछ करने की भावना से विचार तक भी नहीं किया जाता है। पर इसी का परिणाम ... के रूप में प्रकट हो रहा है।

हमारा आग्रह है कि हमें अपनी विचार पद्धति में आमूल चूल परिवर्तन करना चाहिए और ऐसी बैठकों में भविष्य के निश्चित कार्यक्रम के निर्माण और निर्देशन पर भी बल देना चाहिए। आज की सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या इस समय वेद प्रचार की है। इस ओर बरती जा रही उदासीनता किसी भी दृष्टि से तो क्षम्य नहीं अतः आवश्यकता है कि आगामी अंतरंग सभा में वेद प्रचार के कार्य को गति देने के कुछ ठोस उपाय सोचे जाएं और एक दीर्घ वर्षीय योजना बना कर चुनाव और पार्टी के झंझट से पड़ना छोड़ इस प्रश्न को सुलझाने का यत्न किया जाए?

हम समस्त विचारकों व आर्य भाइयों से अपेक्षा इस विषय में अपने सुझाव सभा कार्यालय में भेजने का आग्रह करते हैं। सुझाव संक्षिप्त और व्यावहारिक होने चाहिएं। हमें विश्वास है कि सभा के मान्य अधिकारी व अंतरंग सदस्य आर्यसमाज के एक मात्र मुख्य लक्ष्य वेद प्रचार के प्रश्न को अपने ध्यान में हल करने की दिशा में निश्चित पग उठायेंगे।

३० वर्ष प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता व नारी शिक्षा के विशेषज्ञ, आप को पद्म विभूषण की उपाधि दी गई

प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ श्री कृष्ण मेनन

कौन रोकेगा ईसाइयों को !

भारत में ईसाई आंदोलन की जानकारी आज प्राय सभी को हो चुकी है। इस संबंध में सभी लम्बी चौड़ी बातें करते हैं किंतु इनकी गति विधि पर हमारा कुछ भी प्रभाव पड़ सकता हो यह संभव नहीं।

आए दिन इनके प्रचार, प्रसार, प्रभाव के समाचार हमें पढ़ने को मिलते हैं। हम सिवाय आकुल होने के या खिन्न होने के और कुछ भी नहीं कर पाते। चारों ओर शिथिलता का जो ढांचा खड़ा हो गया है और उदासीनता की जो चादर हम पर पड़ चुकी है वह विवश कर देती है और हम सिसकियाने के अतिरिक्त आगे नहीं बढ़ पाते।

और स्पष्ट ... रहा है कि ईसाई मत बढ़ रहा है। पादरी अब अपनी विजय और हमारी हार पर मुस्कराते हैं, क्यों भी तो है कि "जिसकी उतर गई लोई उसका क्या करेगा कोई" बात कड़वी है पर सत्य है। कल की बात है। एक पादरी साहब से हमारी भेंट हुई, वे हमें नहीं हमारे लेखों को जानते थे। परिचय हुआ तो बोले ... भी आप हमारा विरोध क्या करते हैं? उन्होंने स्वीकार किया कि हमारा मार्ग सही है पर साथ ही उन्होंने कहा और तीव्र व्यंग करते हुए कहा कि हमारी सत्य को प्रसारित करने की शक्ति कहां है? वे बोले कि हम काम करते हैं और आप बातें। आपके तीर वहां चलते हैं जहां शिकार नहीं होता और हम वार वहां करते हैं जहां 'निशाना चूके नहीं।' बात साधारण थी लेकिन कब से दिमाग चकरा रहा है उन की कही बातों की वास्तविकता पर।

विरोध ईसाइयों का नहीं ईसाई मत का करना है। ईसाई मत के प्रसार के लिये भारतीय मिशन में २० हजार से अधिक पूरा समय देने वाले योग्य पादरी हैं। लाखों रुपया उनके पास है। उनकी निश्चित योजना है, प्रकार है। और हमें कुछ न कहें तभी अच्छा है। मान धर्म, और गौरव की बर्बादी का प्रत्यक्ष स्वरूप सम्मुख होते हुये भी जिन हृदयों में टीस नहीं उठती उन्हें हम क्या जीवित समझें और अब जीवन शेष नहीं तब विरोध कौन करेगा?

८ दिन शेष हैं !

हमने, सभा मन्त्री ने, आर्य जनता से प्रार्थना की थी ३१ अक्टूबर तक केवल २००० वार्षिक सदस्य बना देने की है आज २३ अक्टूबर हो चुकी, केवल ८ दिन और शेष हैं। हम नहीं कह सकते कि आर्य जनता हमारी मांग पूरी करेगी या नहीं, पर हां इतना स्पष्ट है कि मांग पूरी न हुई तो ... जो भी हो उस का उत्तरदायित्व हम पर न होगा!

हम बहुत लिख चुके, बार-बार क्या लिखें, जिन्हें आर्य समाज के गौरव की चिन्ता नहीं, न ध्यान है भविष्य का वे क्यों सुनेंगे हमारी बात? होगा वही जो ईश्वर की इच्छा! ७ मास बीत गए, और भी बीतेंगे ही, पर काश, कि २००० स्थायी वार्षिक सदस्य बन जाते तो फिर हम दिखलाते पत्र कैसा निकलता है।

क्या आर्य समाज सी सुसंगठित संस्था २००० सदस्य अपना दैनिक खरीद कर पढ़ने वाली भी नहीं दे सकती? मन विश्वास क्या कल्पना भी नहीं करना चाहता, डर लगता है कि कहीं यह विश्वास टूट न जाए, लाज, भविष्य सब आप के हाथ है केवल ८ दिन शेष हैं भाई ॥

एशिया का सबसे बड़ा "सांप ब्लाक"

दिल्ली। पता चला है कि पुराने किले के पास बनने वाले जंगली पशुओं के पार्क का पूरा प्लान इस मास के अन्त तक बन कर तैयार हो जायेगा। इस पार्क में सांपों का एक विशेष ब्लाक बनने वाला है। जिसमें हर प्रकार के सांप एकत्रित कर रखे जायेंगे और प्रबन्ध इस बात का किया जायगा कि उन्हें वहां प्राकृतिक आवास की सुविधा उपलब्ध की जा सके। यह ब्लाक यदि प्रस्तावना के अनुसार ही बनाया गया तो शायद यह एशिया का सबसे बड़ा "सांप ब्लाक" होगा। इससे पूर्व लखनऊ और कलकत्ता के अजायब घरों में सांपों के ब्लाक हैं, लेकिन दिल्ली के उपरोक्त पार्क में सांपों का ब्लाक बनेगा, वह शायद सबसे बड़ा होगा।

उक्त ब्लाक के निर्माण के सिलसिले में श्रीलंका के एक विशेषज्ञ डायरेक्टर आजकल यहां पर आये हुये हैं। वे यहां पर भारतीय विशेषज्ञों को परामर्श देंगे। (हि० स०)

जीवन का आदर्श

[लेखक—श्री [illegible]चन्द जी मेरठ]

मैं जो कुछ कहूं मीठा कहूं, मैं [illegible] से क्रोध, मुझसे [illegible] दूर करें [illegible] और [illegible] अध्ययन करूं और [illegible] मंगाने [illegible] का पूजन करूं (अथर्व १२ १-५८

मेरे मुख में वाणी ठीक हो। मेरी श्वासों के मार्ग ठीक हो। मेरी आंखों में दृष्टि ठीक हो। मेरे कानों में श्रुति ठीक हो। मेरे बाल श्वेत न हों। मेरे दांतों में से खून न निकले। मेरी भुजाओं में बहुत बल हो। मेरे पांवों में दृढ़ता हो। मेरे सब अंग ठीक हों। मेरा शरीर शक्ति युक्त हो। (अथर्व १९ ६०-१ २॥)

मेरी आंख का जो छिद्र हो रहा है। मेरे हृदय और मेरे मन की जो त्रुटि हो, बृहस्पतिदेव जो लोक का पालक है उसे ठीक करे, वह मेरे लिए सुखकारी हो। (यजुर्वेद, ३६ २)

यह शरीर मन और प्राण के आदर्श हैं। स्वस्थ मन और नीरोग शरीर हो, तभी मनुष्य आदर्शों की ओर पहुंचने का यत्न करता है। हमें अवश्य हृष्ट पुष्ट शरीर, शान्त स्फूर्ति युक्त मन, और मेध्य बुद्धि प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करते रहना चाहिये।

सूर्य मेरी आँख है। वायु मेरा प्राण है, अन्तरिक्ष मेरा आत्मा और पृथिवी मेरा शरीर है, इस कारण अभी तक मेरा कुछ भी बिगड़ा हुआ नहीं है, आगे भी न बिगड़े और मेरा संरक्षण होता रहे, इस भाव से मैं अपने आपको भूमि और आकाश की सेवा में प्रस्तुत किए हुए हूं [अथर्व ५-९-७]

मुझे अग्निदेव द्वारा क्या कुछ नहीं मिल रहा ? प्रकाश तेज यश,प्रभाव, पराक्रम और बल—सभी मेरे अन्दर आ रहे हैं मुझ पर अग्निदेव की कृपा बनी रहे और मुझे तैंतीस प्रकार के सभी वीर्य प्राप्त होते रहें [अथर्व १२ ३७ १]

आत्मा के प्रोत्साहन देते रहने तथा सावधान रहकर संचय से जीवन में शक्ति बल और साहस संचय करने से मनुष्य में उन्नति होने की रुचि उत्पन्न होती है।

हमारा बल चारों दिशाओं में व्याप्त होने वाला हो। हमारा बल चारों लोकों में व्याप्त होने वाला हो। हम बल ऐश्वर्य को पैदा करें। हमारे शुभ कार्य में सब दिव्यजनों से मिल कर हमारा अपना बल हमारा सहायक हो। हमारा बल सब हमारी शान-शक्ति को बढ़ाता रहे। हमारे बल ने [illegible] पुष्ट स्वस्थ बनाया है। हम [illegible] बल को श्रद्धा पूर्वक धारण करते [illegible] दिशाओं में विजय पताका फहराते [illegible]। हमारा बल हमें आगे आगे बढ़ाता रहे। हमारा बल बीच में बढ़ा हम बढ़े हों हमारी रक्षा करे। हमारा बल देव पूजा में अधिक से अधिक लगा रहे। मेरा बल ही मुझे सर्वथा स्वस्थ बनाए हुए है मैं जिस दिशा में भी निकलूं मेरा बल मेरा पूरा साथ दे। [यजुर्वेद १८ २२ ३४॥]

तेज ओज बल साहस संचय करना मनुष्य को मनुष्य कहलाने का अधिकारी बनाते हैं। निर्बलता अभिशाप से निर्बल व्यक्ति अपने आपको दीन हीन समझने लगता है और वह पराधीन रहता है। स्वाधीन और स्वतंत्र रहने के लिए संयुक्त साधन सम्पन्न ऐश्वर्यवान होना अनिवार्य है।

मनुष्य आशावादी होना चाहिये और महत्वाकांक्षी होना चाहिये। दबे हुए भीरु लोगों में इनकी शक्ति मन्द पड़ जाती है और वे निस्तेज हो केवल जीवन की घड़ियां गिनते रहते हैं। और अपने आपको भाग्यहीन कहा करते हैं। हम आर्य है हम उसी जीवन स्रोत से नित्य नवजीवन और नया उत्साह पा रहे हैं, हम भाग्यहीन नहीं हैं, हम अपने भाग्य के स्वयं निर्माता हैं सफलता हमारे चरण चूमती है हम सम्पन्न हैं और समर्थ हैं।

सबका ब्रह्माण्डपति हमारा हृदय विहारी सखा ही दिव्य सखा हमें प्रकाश देता है हम भगवान की सन्तान हैं हम आर्य हैं श्रेष्ठ हैं हम अपना आदर्श उसी एक सत्यम् शिवम् सुन्दरम् परमात्मा को मानते हैं और उससे अपना निरंतर संबंध समझते हैं। यह सामर्थ्य आर्यत्व से प्राप्त होता है। आर्यत्व में दिव्यता, दिव्यशक्ति अजेय होती है।

दिव्यगुण धारण करने से ही प्रेम और आनन्द के स्रोत भगवान की सच्ची आराधना होती है। दिव्यगुण अपनाने से ही मनुष्य को भगवान के अपने निकटतम होने की अनुभूति होती है दिव्यगुणों में पवित्रता पहला गुण है। पवित्र अन्त करण में ही सत्य धारण किया जाता है। मनुष्य का संतुलन सत्य और पवित्रता के समन्वयसे स्थिर रहता है और जिसका संतुलन ठीक है वह ही प्रेम कर सकता है। अहिंसा प्रेम का ही दूसरा रूप है। पवित्रता के लाने के लिए तो नैतिकता अर्थात् सत्य को जीवन व्यवहार में ढालना है उसका परिणाम संतोष है। संतोष में संतुलन अनिवार्य है जिसमें संतोष है वह कभी चोरी नहीं करता। इन्द्रिय लोलुपता का न होना ही ब्रह्मचर्य है वही महान आचरण है, यह सत ज्ञानयुक्त आचरण है जिसका अन्तिम परिणाम वैयक्तिक रूप में ईश्वर [illegible] ईश्वर के लिए जीवन समर्पण और समाज में अपरिग्रह [illegible] यह आदर्श जीवन है और इसी में वास्तविक स्वतंत्रता है। ऐसे जीवन व्यवहार-वाला व्यक्ति परतंत्र नहीं होता। वह अपने आपको रूढ़ियों म नहीं फँसाता और न ही दबा रहता है उस पर नियंत्रण अपना ही है वह स्वयं अनुशासन में है ऐसे जीवन का आदर्श स्वयं भगवान है जो सब में रहता हुआ भी सबसे न्यारा है। आर्य के लिए उद्देश्य भी वही भगवान है और आदर्श भी वही है। उसमें आर्य रहता है और उसी में जीवन पाता है।

आर्य होना एक दायित्व का काम है आर्य होते ही जबर्दस्त जिम्मेदारी आजाती है कि उसमें आर्य नाम भगवान के गुण व्यवहार में अवश्य दिखाई दें मनुष्य आर्य, भगवान के गुण धारण करने से ही, बनता है भगवान परम श्रेष्ठ है आर्य भी श्रेष्ठ मानव है।

एक आर्य के लिए संस्कृत का ज्ञान होना अनिवार्य है क्योंकि भारतीय संस्कृति का आदि स्रोत वेद है और संस्कृत साहित्य में ही भारतीय संस्कृति सुरक्षित है। खेद से कहना पड़ता है कि संस्कृत का सम्बन्ध नवयुवकों से प्राय विच्छेद सा हो रहा है। नवयुवकों और युवतियों में संस्कृत सीखने की रुचि कम हो रही है। आर्यसमाज की भी यही स्थिति है यह अवस्था शोचनीय है। संस्कृत भाषा मधुर है और कठिन नहीं है संस्कृत भाषा में योग्यता प्राप्त किए बिना हम सच्चे अर्थों में भारतीय संस्कृति का ज्ञान ही नहीं सकते। संस्कृत का व्यावहारिक ज्ञान तो प्रत्येक भारतीय को होना चाहिये तभी वह अपने देश का जीवन आदर्श जान सकेगा। भारत में हम भारतीय होकर रहना है भारत के जीवन को हम संस्कृत जाने बिना समझ ही नहीं सकते हमारा ध्येय वैदिक संस्कृति का पुनरुत्थान है इसके लिए संस्कृत सीखनी आवश्यक है। वेद में जो परम उदात्त भावनाएं है वे संस्कृत जानने से समझ में आएगी। संस्कृत जाने बिना भारतीय लोग विदेशी प्रभाव से अपने आपको बचाने में असमर्थ रहेंगे।

कुछ शताब्दियों से प्रचलित थोथे वैराग्य ने भारतीय लोगों में अकर्मण्यता और शिथिलता ला दी है यह रोग आर्यसमाजियों तक में व्याप रहा है हमें अभ्युदय और निःश्रेयस में समन्वय करना है। उसकी ओर उपेक्षा वृत्ति ने भारतीयों को पराधीन

(शेष पृष्ठ ११ पर)

रत्न-कण

जो गुणी होते हैं, वे अपनी जिम्मेदारियों की बात सोचते हैं। जो गुणहीन होते हैं, वे अपने अधिकारों का नाम रटा करते हैं।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

जो आत्मा पर राज्य करता है, वह उससे कहीं ऊँचा है, जो किसी भूमि खण्ड पर शासन करता है।

—सालोमन

मोह त्याग कर हमें उन लोगों के बीच आनन्दपूर्वक रहना चाहिए, जो मोहग्रस्त हैं। मोहग्रस्तों के साथ मोह हीन हो कर रहना बड़ी बात है।

—धम्मपद

हमारे गांव संगीत हैं। हमारे नगर नाटक हैं। दोनों के सहज समन्वय से पूर्ण अत्यन्त पूर्ण संगीत नाट्य प्रस्तुत हो सकता है।

—[illegible]गफेओ

जो व्यक्ति दूसरों का विश्वास करता है, उतनी गलतियाँ नहीं करता, जितनी कि वह, जो किसी पर विश्वास नहीं करता।

—काबूर

स्वर्ग भी केवल अपने अतीत के बल पर कायम नहीं रह सकता।

—ह्यूहन

मेरे व्यक्तिगत विचार

(३)

(श्री प० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०)

यों तो आर्य समाज आर्यों के समूह का नाम है और आर्य आर्यसमाज के सदस्य हैं फिर भी कर्तव्य और अधिकार की दृष्टि से सर्व समावेश आर्य आर्य समाज नहीं और आर्य समाज आर्य नहीं। यह बात शायद हर एक की समझ में न आसके, लेकिन हर एक को यह याद रखना चाहिये कि व्यक्तियों और समष्टियों में अनन्यत्व का सम्बन्ध नहीं है और जो अधिकार या कर्तव्य व्यक्तियों के हैं वही समाज के नहीं, व्यक्तियों का अपना व्यक्तित्व भी होता है, परन्तु समाज केवल उन्हीं बातों को लेता है जो सब सदस्यों में समानता रखती हैं। व्यक्तिगत विशेष बातों में वह हस्तक्षेप नहीं करता। केवल अविरोध बातों को ही दृष्टि में रखता है। उदाहरण के लिये यदि मुझे आलू अच्छे लगते हैं और आपको बुरे तो हम दोनों आर्य समाज के सदस्य होते हुये भी आर्य समाज से यह आशा नहीं रख सकते कि वह यह निर्णय दे कि आलू खाना चाहिये अथवा नहीं। हां यदि मांस भक्षण का प्रश्न आवे तो यह अविरोध और समष्टि का प्रश्न है, क्योंकि इस में 'अहिंसा' के सिद्धान्त का सम्बन्ध है। आर्य समाज इस का निर्णय कर सकता है कि अमुक सिद्धान्त मान नीय है और अमुक नहीं।

व्यक्तित्व के साथ देश प्रान्त आदि का भी प्रश्न है। बहुत सी बातें पंजाब की विशिष्ट हैं और बंगाल की विशिष्ट। उनमें प्रान्त कीर्ति अपेक्षा से भिन्नता हो सकती है। उन बातों को प्रान्तीय प्रतिनिधि सभायें विचार सकती हैं। परन्तु सार्वदेशिक सभा को उनमें हस्तक्षेप करना अनुचित होगा।

इस प्रकार एक आर्य समाजी के लिये यह बात कठिन हो जाती है कि किस बात को किस दृष्टि से देखे। एक आर्य समाजी जो भारत वर्ष के किसी समाज का सदस्य है अपने अधिकारों और कर्तव्यों को कई दृष्टि से देख सकता है, वह (१) भारतीय है (२) हिन्दू है (३) वैदिक धर्मी है (४) और आर्य है, यह चारों दृष्टि कोण अलग अलग हैं, इन की व्याख्या मैं आगे करूंगा। यदि इन दृष्टि कोणों में गोल माल हो जाता है तो इससे आर्य समाज को क्षति पहुंचती है।

भारतीय होने के नाते एक आर्य समाजी को बहुत सी ऐसी बातों पर विचार करना पड़ता है जो दूसरे देशों के आर्य समाजियों के विरुद्ध भी हो सकती हैं, जैसे लंका के ईसाई और अमेरिका के ईसाई की बहुत सी भिन्नताएं हो सकती हैं इसी प्रकार दूसरे देशों के आर्य समाजियों के साथ भी यही बातें लागू होती हैं, भारतीयता के नाते बहुत सी बातों में एक भारतीय आर्य भारतीय मुसलमान से अभिन्न होगा, और होना चाहिये।

फिर कई बातों में भारतीय आर्य समाजी हिन्दू है। वह अपने को आर्य (हिन्दू) या हिन्दू 'आर्य' कहता है, वह हिन्दू 'का' के आधीन है। हिन्दुओं के बहुत से मन्तव्य ऐसे हैं जो वह आर्य मानता है चाहे वह वेदों के विरुद्ध ही क्यों न हों और केवल इस लिये मानता है कि हिन्दुओं से उसने इनको लिया है। वह उसकी प्रकृति में घुल मिल गये हैं और उसने किसी प्रकार समझ लिया है कि यह सिद्धान्त वैदिक भी है। बहुतसी बातों में वह वैदिक धर्म के भी वही अर्थ लेता है जो परम्परा से हिन्दुओं के माने हुये शास्त्रों ने बताये हैं, चाहे वह वेदों के मूल सिद्धान्तों से भिन्न ही क्यों न हों, उसने वेदों के मूल तत्वों की खोज नहीं की। उसमें और साधारण हिन्दुओं में दृष्टि कोण का भेद नहीं केवल दो चार मोटे मोटे सिद्धान्तों का है जैसे मूर्तिपूजा, मृतक श्राद्ध इत्यादि।

इस प्रकार का आर्य समाजी आर्य समाज की उन उच्चतम संस्थाओं को भी अपने विचारों की गाड़ी के पीछे घसीटना चाहता है, वह मुख से तो यही कहता है कि हम असाम्प्रदायिक हैं और हमारा समाज सार्वभौम समाज है। परन्तु जब कभी कोई व्यावहारिक प्रश्न आ जाता है तो किसी न किसी बात के व्याज से उच्चतम सभायें भूल जाती हैं कि वे सार्वभौमिक हैं। उनके और साम्प्रदायिक हिन्दुओं के दृष्टि कोण में कोई भेद नहीं होता। इस का खुला परिणाम यह है कि लोग आर्य समाज को हिन्दू समाज का एक अंग समझते हैं, हमारी शिरोमणि सभाओं के निर्णय भी उसी दृष्टि कोण को लिये हुये होते हैं, हम जब किसी अन्य धर्मावलम्बी की शुद्धि करते हैं तो इस से यही तात्पर्य रखते हैं कि हम उनको हिन्दू बना रहे हैं। आजकल यह बात इस लिये नहीं अखरती कि आजकल आर्य समाज में हिन्दू ही हैं। शुद्धियां भी उन्हीं की हुई हैं जो हिन्दुओं से चले गये थे और अब आकर फिर हिन्दू बन गये हैं, यदि दो चार अन्य भी हैं तो केवल 'अपवाद मात्र।' चूंकि यह बात अखरती नहीं अत उस पर ध्यान भी नहीं जाता जो जूता पैर को काटता नहीं उस पर तो किसी की दृष्टि नहीं जाती, परन्तु इस 'न अखरने' से एक हानि भी होती है, वह बहुत बड़ी हानि है और अपारण अखरने से कई गुणा हानि कारक है। अर्थात् आर्य समाज का क्षेत्र बहुत संकुचित हो गया है। विदेश के सभी आर्य समाजी हिन्दू है या भारतीय है, इसका एक दृष्टान्त देता हूं १९५२ के अप्रेल मास में मैं मासले में था। वहाँ का वार्षिक उत्सव था। उसमें लोग भजन गा रहे थे।—

"यज्ञ हवन से हो सुगन्धित अपना भारत वर्ष देश" मैंने उनसे कहा कि भोले भाइयो, आप यहां देश के घी, सामग्री आदि से हवन करते हो और हवन की सुगन्ध को पंजाब भेजना चाहते हो मासले का समाज उत्सव ऐसा प्रतीत होता था कि वह जालधर या लुधियाने का वार्षिकोत्सव है। विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या हम मलयदेशीय बन्धुओं को कभी भारतीय या हिन्दू बना सकते हैं। यही कारण है कि आर्य समाजी की शुद्धि वैदिक धर्म प्रवेश के स्थान में केवल भरत मिलाप ही रह गया है। इस क्षेत्र में जहां हम को क्षणिक यश की उपलब्धि हुई है वहां दीर्घजीवी उन्नति से हम वंचित भी रह गये हैं, भारतीय राजनीति की दृष्टि से यह बात आवश्यक हो भी, तो भी हम से आर्य समाज का सार्वभौमिक स्वरूप विकृत हो जाता है। हमारा मत है कि वैदिक संस्कृति सार्वभौमिक और सार्वकालिक है। परन्तु जिस वैदिक संस्कृति का हमारे मंत्र या हमारे समाचार पत्र प्रचार करते हैं वह तो विकृत हिन्दू संस्कृति ही है। इस का सब से बड़ा ज्वलन्त प्रमाण है हिन्दू कोड बिल के विषय में हमारी शिरोमणि सभाओं और नेताओं का दृष्टि कोण हमने कभी स्वतन्त्र रूप से यह देखने का यत्न किया हो नहीं कि वेदों के मौलिक सिद्धान्त क्या है, हम अपनी आवाज उन पुराने ढंग के सनातनियों की आवाज के साथ मिलाते रहे जो हर प्रकार के सुधार के विरुद्ध हैं, हम ने स्मृतियों से भी वही बातें अपनाईं जो एक देशीय या काल विशेष से सम्बन्ध रखती थीं, हमने ऋषि दयानन्द के वाक्यों की भी व्याख्या उन्हीं पुरानी रूढ़ियों के आधार पर की। इस का सब से बुरा परिणाम यह निकला कि हमारा दृष्टि कोण सार्वभौमिक, अन्तर्राष्ट्रीय (International) रहा ही नहीं। यही नहीं हमने उन भारतीय विचारकों का भी विरोध किया जो अन्तर्राष्ट्रीय विचार रखते थे। ऋषि दयानन्द कहते हैं कि मैं भारत में उत्पन्न धर्मों की भी वैसी ही कड़ी और उसी आधार पर आलोचना करता हूं जैसी विदेशों में उत्पन्न हुये धर्मों की। उनके समक्ष वैदिक धर्म का वही स्वरूप है जो सार्वभौमिक है और सार्वकालिक। वह विदेशीय अच्छी बातों को स्वीकार करते और भारतीय बुरी बातों को त्याज्य समझते है। आज कल का आर्य समाज पाश्चात्य सभ्यता का कट्टर विरोधी और पूर्वी सभ्यता का कट्टर पक्षपाती है। हमारे समाचार पत्र इस भावुकता से भरे रहते है। उन्होंने कभी यह नहीं सोचा कि सत्य और अनृत दोनों न पश्चिमी हैं न पूर्वी। मैं यह समझ सकता हूं कि काशी के आर्य समाज का दृष्टि कोण काशी नगर की परिस्थिति के अनुसार हो और उसमें वहाँ के वातावरण की अपेक्षा से संकुचितता भी हो। परन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि सार्वदेशिक का दृष्टि कोण भी वही क्यों हो, और वह स्थानिक आर्य समाज से ऊँचा क्यों न उठे। परन्तु मैं देखता हूं कि १९४७ के पश्चात् आर्य समाज के दृष्टि कोण में बहुत कुछ संकुचितता आ गई है। मैं यह तो नहीं कहता कि आर्य समाज उतना ही संकुचित है जितना पुराने ढंग का सनातनधर्म, परन्तु उसकी भावनाओं का झुकाव उसी ओर को है। अत भारतीयों का सुधार वादी भाग तो आर्य समाज को बहुत अच्छी दृष्टि से नहीं देखता। यह दूसरी बात है कि प्रत्येक दल आर्य समाज से लाभ उठाना चाहता हो। मेरी व्यक्तिगत भावना यह है कि सब बात आर्य समाज के उच्चतम और

[शेष पृष्ठ १० पर]

अज्ञेयवाद

[स्वर्गीय श्री शान्तस्वामी अनुभवानन्द जी महाराज]

इधर कुछ दिनों से भारत में समाजवाद (Socialism) एवं साम्यवाद (Communism) का प्रचार उत्तरोत्तर की ओर बढ़ रहा है इनके साथ साथ अज्ञेयवाद और अनीश्वरवाद ने पुनर्जन्म लेकर हाथ पैर चलाने आरम्भ किये हैं। इनके पुनर्जन्म पाने की बात कोई विशेष महत्त्व नहीं रखती, कारण यह कि, भारत में यह कोई आविष्कार नहीं जिस प्रकार रोमनकैथोलिक चर्च के अत्याचारों ने यूरोप में विज्ञान मूलक अनीश्वरवाद के फैलने में सहायता दी थी ठीक उसी प्रकार भारत में पुरोहित पद्धति के हिंसामूलक यात्रिक कर्मकाण्ड ने भी चार्वाक आदि मतों के प्रचार में हाथ बटाया है। इसलिए अज्ञेयवाद एवं अनीश्वरवाद भारत में न तो अभिनवमत वाद के रूप में देखे गये और न ही भारतीय साहित्य इन दोनों सिद्धान्तों से अपरिचित रहा है। ये दोनों एक दूसरे के सहायक होते हुए भारत में ही नहीं—और और देशों में भी सर्वत्र देखे सुने जाते हैं। जहां जहां ईश्वर की सत्ता को असत्य तथा मान कर धर्म जीवन के लिए सन्मार्गों पर विचार विमर्श होने लगा अथवा किया जाने लगा, वहां वहां अज्ञेयवाद एवं अनीश्वरवाद भी बिन बुलाये मेहमान की भाँति पहुंचते रहे हैं। इतना होने पर भी दोनों में से कोई किसी एक को पछाड़ कर अपने को प्रतिष्ठित नहीं कर सका। दोनों सब जगह चल रहे हैं, दोनों के मानने वाले भी सब जगह पाये जाते हैं, और दोनों फैलने के लिए भी अपनी अपनी शक्ति के अनुसार तर्क वितर्क से काम ले रहे हैं। इतने पर भी विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि, अनीश्वरवाद की अपेक्षा अज्ञेयवाद और इन दोनों की तुलना में आस्तिकवाद का आदर करने वालों की संख्या ही बढ़ चढ़ कर देखी जाती है।

कोई भी वाद, सिद्धान्त अथवा उसकी विचार परम्परा चाहे जितने भाव में सूक्ष्म विस्तृत, व्यापक एवं गम्भीर क्यों न हो, किन्तु संसार के सभी लोग एक मत हो कर विश्वास करने वाले कभी नहीं देखे जाते और न कभी देखे जायें।। वेद के महावाक्य नुसार सभी मनुष्य आँखों और कान आदि बाहरी साधनों में समान होने पर भी मनोनायक व्यापार में एक समान कभी नहीं होते। इस कारण विभिन्न प्रकृति विभिन्न जीवन क्रम और रुचि तथा विभिन्न विचार प्रवाह रखने वाले लोग अपने अपने दृष्टिकोण से ही सब विषयों पर विचार किया करते हैं। उनका यह दृष्टिकोण अथवा विचार भेद मतभेद और मतवाद का कारण होता है। मूल बात यह कि, जो मनुष्य विचार जीवन के जिस भाव क्षेत्र में रहता है, उस भाव क्षेत्र से बाहर का सत्य भी छोटा दिखाई दिया करता है। विश्वकवि श्री रवीन्द्र नाथ के शब्दों में कह सकते हैं कि, " भगवान् समस्त सत्य को समान बना सब को एक ही विपत्ति में नहीं डाला करते, दूर की सभी वस्तुएं इसीलिए छोटी नजर आती हैं कि मानव इन्द्रियों की अपनी पहुंच उतनी व्यापक नहीं होती।"

भारत और भारत का मानव समाज अपने जन्म दिन से ही आस्तिक एवं धर्मपरायण चला आ रहा है। लाख यत्न करते रहने पर भी सारे भारत में अनीश्वरवाद और अज्ञेयवाद का पांव नहीं जमने पाया। जो आस्तिक भाव मन्त्र संहिताओं के आदिम वाक्य और अक्षर से आरम्भ हो कर वर्त्तमान युग के धर्मजीवन में भी पूर्ण रूप से व्यापक चला आ रहा हो, उसका सर्वथा मिट जाना अथवा मिटाया जाना कहने-मात्र के लिये आसान होने पर भी सर्वथा असम्भव है।

नास्तिकवाद का एक बहुत बड़ा अन्धड़ (तूफान) भी अपनी समस्त शक्ति लगा कर के समूचे भारत को अज्ञेयवादी एवं अनीश्वर वादी बनाने में सर्वथा असमर्थ ही रहा है, और सर्वदा असमर्थ रहेगा। कारण यह कि घोर से घोर नास्तिकवाद भी एक सीमित सम्प्रदाय से आगे नहीं आ सकता।

पश्चिमी विद्वान् और उनके भारतीय चेले कहना चाहते हैं कि, अज्ञेयवाद की पहली झलक ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में मिलती है, और उसकी सर्वाङ्ग पुष्टि केन उपनिषद् से होती है। प्रस्तुत लेख में इन्हीं दोनों प्रमाणों पर विचार करना अभीष्ट है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त के नीचे लिखे मन्त्र में अज्ञेयवाद की झलक बताई जाती है।

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः। अर्वाग्देवा अस्यविसर्जनेनाऽथा को वेद यत आबभूव ॥ ऋ० १०।१२९।६

अर्थः—(क अद्धा वेद, क इह प्रवोचत्) कौन यथार्थ रूप से जानता है, कौन यहाँ विश्वासपूर्वक कह सकता है कि (कुत आजाता), (कुत इयं विसृष्टिः) कहाँ से पैदा हुई, कहाँ से इसकी रचना हुई। (देवा अस्य विसर्जनेन अर्वाक्) इसे समझाने वाले विद्वान वैज्ञानिक तो इसकी रचना के पश्चात् पैदा हुए हैं, (अथ को वेद यत आबभूव) तब उस समय के वस्तु समुदाय को कौन जाने जिस से यह निर्मित हुई है। इस अज्ञेयता का उत्तर और समाधान वेद ने ही अगले मन्त्र में ऐसे स्पष्ट एवं सुन्दर शब्दों में दिया- है कि कुतर्की अज्ञेयवादी चुप रहने के सिवा और कुछ कह ही नहीं सकता। मन्त्र कहता है—

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव, यदि वा दधे यदि वा न। यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अंग वेद यदि वा न वेद ॥ ऋ० १।१२९।७

अर्थ—(इयं विसृष्टि यत आबभूव) यह विशेष सृष्टि-रचना जिस वस्तु समुदाय अथवा उपादान संघात से सर्वाङ्ग सुन्दर रूप से प्रकट हुई है उसे (यदि वा दधे यदि वा न) चाहे वह धारण भी किये हो या नहीं, किन्तु (यो अस्य अध्यक्ष परमे व्योमन्) जो इसका अध्यक्ष मालिक-अपने परम दिव्य व्योम पद में विराजमान है,—(अङ्ग स. वेद यदि वा न वेद, वरे जाई ? यह ही इसे जानता है या न—तुच्छ मनुष्य की दिव्यविष्य बुद्धि उसे नहीं समझ सकती। इन दोनों मन्त्रों में मानव की अल्पज्ञता, अ..न्तता एवं भौतिक दायरे का संकुचित होना ही दरशाया गया है न कि अज्ञेयवाद। मानव का विकास क्रम सृष्टि रचना का अन्तिम परिणाम है, अतः जो मानव सृष्टि में लाखों जाति की वनस्पति और प्राणिक योनियों के अन्त में पैदा होता है वह अपनी उत्पत्ति से अनन्तकाल पूर्व पैदा होने वाली सृष्टि को कैसे जान सकता है —यह ही अज्ञेयवादियों के लिये सर्व प्रथम विचारणीय प्रश्न है।

आइये पाठक ! अब अज्ञेयवाद की पुष्टि करने वाली उपनिषद् को भी देख लें कि वह कहाँ तक अज्ञेयवाद का पक्ष पोषण करती है। अज्ञेय वादियों के मत से केन उपनिषद् कहती है कि—

न विद्म न विजानीम —अर्थात् उसे हम सामान्य ज्ञान से भी जानने में असमर्थ हैं। फिर किसी वाक्य में कहा गया है कि—

तद्विदिताद्थो अविदितादधि"

अर्थात् वह तत्त्व विदित (Known) और अविदित (Unkown) दोनों से परे है। पूरे वाक्य पर विचार किये बिना और उसे पूर्णरूप से समझे बिना केवल दो वाक्य खण्डों से यह परिणाम निकाल लिया गया है कि, वह मौलिक तत्त्व ज्ञात (Known) ज्ञेय (Knowable) दोनों विचार की सीमा से बाहर है, अतः वह अज्ञेय है। केन उपनिषत् की पूरी कण्डिका इस प्रकार है—

न तत्र चक्षुर्गच्छति, न वाग्गच्छति नो मनो, न विद्म, न विजानीमो, यथैतदनुशिष्यात्। अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद् व्याचचक्षिरे ॥

केनोपनिषद् खण्ड १ वल्ली १

अर्थात्—उस तत्त्व तक आंख नहीं पहुंच पाती, वर्णन करने वाले शब्द भी वहां पहुंच सकते, और ना ही मानसिक तरंग वहां तक जा सकते हैं, इसी लिए उसे इन स्थूल इन्द्रियों से नहीं जान पाते और सूक्ष्म मन द्वारा भी नहीं जान सकते, जिस से कि इसकी शिक्षा दे सकें या इसे समझा सकें। वह जाने गये पदार्थों से तो सर्वथा भिन्न है, और न जाने गये पदार्थों से तो और भी परे है। यह ही हम पूर्वज के गुरु से सुनते चले आ रहे हैं जो,

(शेष पृष्ठ १० पर)

आर्य समाज में निराशा और उसका उपाय राजार्य सभा

[श्री राजकुमार आर्य निषौली कलाँ एटा]

आज आर्य समाज जगत में निराशा का वातावरण व्याप्त है। आर्य मित्र के सम्पादक महोदय का लोह लेखनी लेख लिखते लिखते घिस गई। माननीय बा० कालीचरण जी आर्य की आर्यमित्र के बारे में अपील करने पर २०० स्थायी ग्राहक न मिल सके। सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री इन्द्र जी विद्यावाचस्पति की बिहार बाढ़ सम्बन्धी अपील में निराशा की झलक दिखाई दे रही है। आर्य समाज के गुरुकुल अनाथालय आदि संस्थायें डगमगाती हुई जीवन पथ पर मंद गति से अग्रसर हो रही हैं। सार्वदेशिक सभा की तरफ से गोरक्षा आन्दोलन चलाया गया, सहस्त्रों व्यक्तियों ने प्रतिज्ञा पत्र भरकर भेजे। सहस्त्रों रुपया व्यय हुआ। आर्य जगत के लोह पुरुष स्वा० स्वतंत्रानन्द जी महाराज अष्टम आर्य महा सम्मेलन के अवसर पर सर्वाधिकारी चुने गए। परन्तु इतने बड़े आन्दोलन का भी स्वामी जी की मृत्युके साथ अन्त हुआ। भ्रष्टाचार निरोध का आर्यसमाज की वेदी से प्रचार किया जाता है। परन्तु देश में दुराचार और भ्रष्टाचार का बोल बाला है। ईसाई मिशनरी हमारे सक्रिय तथा निष्क्रिय विरोध के उपरांत भी बढ़ रहें हैं। राज्य उनका पोषण और सम्वर्धन कर रहा है।

अब आप दूसरा पक्ष देखिए। प्रथम पंच वर्षीय योजना समाप्तप्राय है। द्वितीय योजना की रूपरेखा प्रस्तुत है भारत का भौतिक निर्माण हो रहा है। विदेशी निर्देशक विदेशी कला के आधार पर निर्देशन कर रहे हैं परन्तु भारत का महानतम निर्देशक आर्य समाज किंकर्तव्य-विमूढ़ हो कर देख रहा है। भारत के पुनर्निमाण में उसका कोई सक्रिय योग नहीं है, भारत का संविधान धर्मनिरपेक्ष हो गया। इस निरपेक्षता के लिए किसे दोष दें भाग्य को या विधाता को, अपनी कर्तव्य हीनता को इस अवस्था का मूल कारण क्या है, यह मुख्य प्रश्न है। इस प्रश्न पर आज आर्य जनता तथा आर्य विद्वान विचार करें।

मेरे मतानुसार जिस समाज की ३०००० शाखायें हों उसका इस प्रकार उपेक्षित रहना परमाश्चर्य है। यदि हमारा शासन पर अंकुश होता तो हमारी शक्ति का इस प्रकार अपव्यय न होता। प्रत्येक समस्या चाहे वह गो-रक्षा आन्दोलन-नशाबन्दी-भ्रष्टाचार नारी चित्र विरोधी आन्दोलन या ईसाई विरोधी आन्दोलन था, हमें प्रत्येक स्थान पर सफलता मिलती। शासन के प्रत्येक क्षेत्र में आर्यों के उपस्थित रहते हुए यह कांड हुए। इन समस्त असफलताओं का मुख्य कारण यह है, कि महर्षि के मन्तव्यानुसार राजार्य सभा की स्थापना नहीं की गई।

आर्य समाज का इतिहास देखने पर पता चलता है कि यह एक अत्यंत विवादास्पद विषय रहा है। पर्याप्त समय तक वाद विवाद चलने पर श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज ने आर्यों को व्यक्तिगत रूप से राजनीति में भाग लेने की अनुमति दी थी। यदि आर्य समाज ने स्वयं राजनीति में प्रवेश किया होता तो भारत का यह दुर्भाग्य पूर्ण विभाजन न होता। आज भारत का मानचित्र बदला हुआ होता। आर्य कार्यकर्ता प्रत्येक क्षेत्र में गए परन्तु उसमें जाकर मिल गए। अपने सिद्धांतों की चिंता नहीं की, अतः आज आवश्यकता है कि उस भूल का परिमार्जन किया जावे और राजार्य सभा की स्थापना की जावे। लेकिन राजार्य सभा को सक्रिय राजनीति में भाग लेने में रोक दिया जावे। इस प्रकार आर्य जगत के दोनों पक्ष प्रसन्न रहेंगे। राजार्य सभा का क्षेत्र (King) बनना नहीं परन्तु (King maker) बनना हो। इस प्रकार राजनीति पर धर्म की जय होगी। अतः सार्वदेशिक सभा एक समिति का निर्माण करे। वह समिति भारत वर्ष की समस्त विधान सभाओं तथा संसद के सदस्य गणों के एक एक सामान्य प्रश्नावली प्रेषित करे। सदस्य गणों से पूछा जावे कि वे महर्षि द्वारा प्रतिपादित प्रोग्राम पर मन वचन से आस्था रखते हैं या नहीं। जितने सदस्य महर्षि की विचार धारा से सम्मत हो, चाहे वे कांग्रेसी, समाजवादी, जनसंघी, कम्यूनिस्ट हिन्दूसभाई हो, उनका एक अखिल भारत वर्षीय सम्मेलन हो। और राजार्य सभासर्वसम्मत प्रोग्राम स्वीकृत करके सदस्यों को आदेश करे कि वे अपनी २ संस्था विशेष द्वारा उस प्रोग्राम को प्रचलित करें। फिर देखिए किस तीव्र गति से वेद प्रचार होता है और महर्षि के लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

यह प्रहार क्यों ?

(श्री हरिश्चन्द्र आर्य अमरोहा)

नित्य प्रति आर्य समाचार पत्रों में आर्य समाज की अवनति-बाधायें-पतन इत्यादि शीर्षकों से अनेकों लेख प्रकाशित होते रहते हैं। जिससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि आर्य समाज का यश एवं गौरव नष्ट होता जा रहा है। और आर्य समाज उन्नति की अपेक्षा अवनति को प्राप्त होता जा रहा है कहां है वह पहिले जैसी विश्वास की सी बात तथा जनता की श्रद्धा-ऐसी परिस्थिति में आर्य समाज के हित चिन्तकों के हृदयों में दुःख का होना स्वाभाविक ही है। हम सभी व्यक्तियों एवं समाजों को अपनी इस दुरवस्था से ऊपर उठने का यत्न करना चाहिए और करना चाहिये आत्म निरीक्षण हम यदि गम्भीरता पूर्वक विचार करें तब यह असम्भव है कि हम उत्थान एवं सन निर्माण का सुनिश्चित प्रोग्राम न बना पावेंगे। मेरे अपने विचार से आर्य विद्वान इस गिरावट का लिये कुछ न कुछ उत्तरदायी अवश्य हैं। जब आर्य पत्रों में मैं प्रमाणित आर्य विद्वानों का संघर्ष देखता हूँ तब हृदय विचार करने लगता है कि इस प्रकार की बातों से क्या बनेगा न आचार्य विश्वश्रवा जी तथा पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु का बहुत समय तक यजुर्वेद भाष्य के ऊपर ही कथा विवाद चलता रहेगा जिसका नग्नरूप आर्य जनता ने मेरठ आर्य महा सम्मेलन के अवसर पर भी मंच पर ही देखा श्री पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय तथा पं० विश्वश्रवा जी का बहुत समय तक सत्यार्थ प्रकाश पर भी बातचीत चलती रही इसी प्रकार की बातें आये दिन प्रकाशित होती रहती हैं।

अभी ११ सितम्बर ५५ के आर्य में श्री प० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु का आर्य पद्धति पर प्रहार तथा उनके व्याकरण ज्ञान का सार शीर्षक से एक लेख श्री स्वामी वेदानन्द जी महाराज ने प्रकाशित कराया है। जिसमें उन्होने जिज्ञासु जी की व्याकरण विषयक अशुद्धियां दिखला कर व्याकरण शास्त्र के विषय में प्रकाण्ड अज्ञान सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। मैं इस विषय में किसी का पक्ष लेकर नहीं लिख रहा हूँ कि भूल किसकी है। हो सकता है श्रीजिज्ञासु जी द्वारा भूल हुई हो परन्तु मेरे लिखने का अभिप्राय तो यह है कि किस प्रकार के आक्षेपात्मक लेखों से जन साधारण को कितना लाभ पहुँचता है यह तो रही दूसरी बात।

पर यह निश्चय है कि आर्य समाज विरोधियों-अशुभचिन्तकों को एक अच्छा खासा मसला मिल जाता है। आर्य समाज को बदनाम करने का जिसका परिणाम शुभ नहीं होता है। अतः मैं समस्त आर्य विद्वानों एवं धर्मार्य सभा से निम्नलिखित निवेदन करता हूँ :—

जब कभी भी किसी भी आर्य साहित्य पर किसी महानुभाव को शंका उपस्थित हो तब वह प्रामाणिक रूपसे श्री धर्मार्य-सभा देहली को लिख कर भेज दिया करें और धर्मार्य सभा यदि उस आक्षेप को सही समझे तब श्री लेखक महोदय से उसका स्पष्टीकरण मांग कर तदुपरान्त निर्णय कर प्रकाशित कर दिया करे इस प्रस्ताव पर यदि आचरण किया गया तब निश्चय ही आर्य समाज एक बड़ी भारी गन्दगी से बच जायेगा प्रभु आर्यों को बुद्धि दे कि वह शीघ्र ही आर्य समाज को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने का पुरजोर प्रयत्न करें।

अज्ञेयवाद

[पृष्ठ ८ का शेष]

इस सबके विषय में खोल कर बतला गये हैं।

इससे आगे फिर इसी उपनिषत् के दूसरे खण्ड में हम पढ़ते हैं कि—

यदि मन्यसे सुवेदेति, दभ्रमेवापि-नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम्। यदस्य त्वं यदस्य च देवेष्वथ नु मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम्॥ केन खण्ड २ वल्ली १।

अर्थात्—यदि तू ऐसा मानता है कि तू ठीक ठीक जानता है, तब तो तू निश्चय ही बहुत कम जान पाया है। जो तू उस ब्रह्म का स्वरूप जानता है और उसका रूप इन्द्रियों से जाना जाता है, वह भी थोड़ा सा ही है। इसको जितना कुछ जान सका है, उसका भी अभी तुझे मनन करना चाहिए।

उपनिषत्कार का खुला अभिप्राय यह है कि मनुष्य जितना कुछ भी जान एवं समझ सकता है, वह केवल ज्ञान इन्द्रियों की सहायता से ही जान समझ सकता है। ज्ञान-इन्द्रियों की पहुंच, क्योंकि अपने घेरे से बाहर नहीं जा सकती, अतः वे सर्वव्यापक परब्रह्म को नहीं जान सकतीं। उपनिषत्कार ने वस्तुतः यजुर्वेद के इस महावाक्य की ही इस प्रकार से व्याख्या की है—वह महावाक्य यह है—

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्। तद्धावतो ऽन्यानत्येति, तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥ यजु० ४०-४

अर्थात्—(अन एजत् एकम्) वह ब्रह्म अचल एवं एक अद्वितीय है, (मनसः जवीयः) वह मन के वेग से बढ़ कर भी वेगवान है अथवा उसकी चेतना शक्ति का संचार अतुल वेग रखता है, [पूर्वं अर्षत् देवाः एवं न आप्नुवन्] सबसे पहले पहुंचे उस ब्रह्म को मानवीय इन्द्रियदेव पा ही नहीं सकते। [तत् धावतः अन्यान् अति एति] वह दौड़ने वाले प्रत्येक वस्तु तत्व को पीछे छोड़ आगे निकला रहता है—फिर भी वह [तिष्ठत्] अर्थात् ठहरा हुआ है, [मातरिश्वा तस्मिन् अपः दधाति] माता के गर्भ में अथवा अन्तर्लोक में जीव होने वाले जीव मात्र उसी के सहारे कर्म कलाप को धारण किए हुवे हैं।

वेद और उपनिषत् की शिक्षा का सार तत्व यह ही है कि, मानव अपने सीमित ज्ञान से अपनी सीमा में रहता हुआ भी असीम प्रभु को जानता हुआ आस्तिक बना रहे, और इसी से वह आस्तिक रह भी सकता है। इसी प्रकार न जानने वाला उसे जानने के लिए यत्न करता रहे—अज्ञेयवादी बन कर अर्धनास्तिक नहीं। उर्दू के किसी कवि ने इस भाव को अपने शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है कि—

सदा हमने बहुत सी कोशिशें कीं ताकि कुछ समझें। अगर समझे तो यह समझे कि अब तक कुछ नहीं समझे।

मेरे व्यक्तिगत विचार

[पृष्ठ ७ का शेष]

व्यवसायात्मक लेखकों के लिये विचारणीय है अन्यथा आर्य समाज को लोग भी अन्त में दयानन्द पंथी कहेंगे जैसे कबीर पंथ को कहते हैं। और जैसे कबीर पंथी के लिये यह आवश्यक नहीं कि वह कबीर के उन सिद्धान्तों को भी मानता हो इसी प्रकार आर्य समाज के लिये भी यह आवश्यक न होगा कि स्वामी दयानन्द के आर्ष मौलिक सिद्धान्तों को मानता ही हो, केवल 'दयानन्द' 'दयानन्द' चिल्लाना ही पर्याप्त होगा। क्या है कोई उस संस्था ही ऐसी हो जिसका दृष्टिकोण सार्वभौमिक हो और जो स्थानिक या प्रान्तिक संकुचितता से ऊँचा उठ सके!

००○○○००

आर्य समाजों से

इस समय "दैनिक मित्र" की उन्नति और भविष्य २००० वार्षिक सदस्यों पर आकर अटक गया है! २२) वार्षिक देने वाले २००० व्यक्ति हमें आर्य जगत में से चाहियें! इस प्रकार यह परीक्षा की घड़ी सम्पूर्ण आर्यों के सामने आयी है! आर्य कभी असफल नहीं होते; यह अटल विश्वास हमारा बल है!

मूल्य २४) के स्थान पर २२) कर दिया! २२) में ही साप्ताहिक का मूल्य ८) भी शामिल है! इस प्रकार केवल १४) में दैनिक पड़ा! बताइये और क्या चाहते हैं आप!! यह सुविधा ३१ अक्टूबर तक के लिये बढ़ा दी गयी इसलिये अब प्रतीक्षा न कीजिये और न आलस्य भी!

अपने क्षेत्र से अधिकाधिक सदस्य बना कर भेजिये! प्रत्येक आर्य भाई व आर्य समाज का यह नैतिक कर्तव्य है कि वह आर्य समाज के एक मात्र दैनिक की उन्नति करने में शक्ति का पूरा उपयोग करे!

कितने सदस्य आप तुरंत भेज रहे हैं इसका निर्णय आज ही कीजिये!

विनीतः—

जयदेवसिंह एडवोकेट	कालीचरण आर्य
मन्त्री	अधिष्ठाता
आर्यप्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश	आर्यमित्र

अपने से पूछिए !

आप कितने लोकप्रिय हैं ?

लोग आपको पसन्द करें, इस बात के लिए किसी जादू-टोने की जरूरत नहीं। अगर हम लोग अपनी कमजोरियों और बुराइयों पर काबू पा लें, तो लोग खुद-बखुद हमारे व्यक्तित्व को अच्छा समझेंगे, पसन्द करेंगे।

आज हम आपके सामने जो प्रश्नावली रख रहे हैं, उसमें जितने भी सवालों के जवाब आप 'हां' में देते हैं, उनमें से हर एक जवाब पर आप पांच नम्बर लीजिए। यदि आप कुल मिला कर ७५ या इससे अधिक नम्बर पाते हैं, तो यह निश्चित है कि आप बेहद लोकप्रिय हैं या हो सकते हैं। ६० से ७५ नम्बर पाने वाले व्यक्ति भी काफी लोकप्रिय हैं पर उनके व्यक्तित्व में अभी सुधार की गुंजाइश है। साधारण लोग ३५ से ५५ तक नम्बर पायेंगे। हो सकता है कि आपके दोस्त और परिचित आपको काफी पसन्द करते हों, पर इस हालत में कोई निष्पक्ष निर्णायक आपको काफी लोकप्रिय नहीं कहेगा।

अगर आप ३५ भी नम्बर पाते हैं, तो यह समझ लीजिए कि आपके व्यक्तित्व में बहुत सी ऐसी कमजोरियाँ हैं, जिनके कारण आप लोकप्रिय नहीं हो सके—एकाकीपन की भावना आप को घेरे रहती है। जिस सवाल का उत्तर आप 'नहीं' में दे रहे हैं, उसे पहले अच्छी तरह समझ लीजिए। अपने व्यक्तित्व को सुधारने की कोशिश कीजिए, जिससे कि आपका जीवन सुख और सन्तोष से बीत सके। तो फिर आइये, जरा इन सवालों को समझ कर इनका जवाब तो दीजिये—

१—किसी व्यक्ति से मिलते-जुलते वक्त जब आप 'नमस्ते' करते हैं, तो क्या आप इस बात का ध्यान रखते हैं कि आप जोर से और उत्साहपूर्वक कहें ?

२—क्या आप रोजाना की जिन्दगी की मामूली घटनाओं में उत्साह दिखाते हैं ?

३—क्या आप छोटी-छोटी-सी बातों में भी अपने वादे का ख्याल रखते हैं ?

४—क्या आप अपने हर मिलने जुलने वाले में कोई न-कोई गुण खोजने की कोशिश करते हैं ?

५—क्या आप हर वक्त मुस्कराते रहते हैं ?

६—दूसरों की तारीफ करते वक्त क्या आप काफी उदार बन जाते हैं ?

७—क्या आप बिना किसी बात पर बिगड़े हुए महीनों तक शान्त रह सकते हैं ?

८—क्या आप इस की कोशिश करते हैं कि आपकी तकलीफों का बोझ दूसरों पर न पड़े ?

९—क्या आपको लोगों के नाम और चेहरे अच्छी तरह याद रहते हैं ?

१०—बातचीत करते वक्त क्या आप अपने पक्षपातपूर्ण विचार और अपनी नापसन्दी छिपाये रखते हैं ?

११—क्या आप दूसरों का मजाक उड़ाने और दूसरा को बेवकूफ बनाकर मजा लेने के विरोधी हैं ?

१२—जब भी आपके द्वारा दूसरों की बातचीत में बाधा पड़ने लगती है, तब क्या आप अपने को रोकने की कोशिश करते हैं ?

१३—क्या आप दूसरे लोगों से मिलने जुलने के मौके का फायदा उठाते है ?

१४—क्या आप बातचीत करते वक्त गन्दे मजाकों से दूर रहते हैं ?

१५ क्या आप अपना काम छोड़ कर भी दूसरो की मदद करते हैं ?

१६—क्या यह सच है कि आपको कभी यह शक नहीं होता कि लोग आपके पीछे चुगलखोरी कर रहे हैं या आपकी पीठ पीछे आपकी बुराई कर रहे हैं ?

१७ क्या आप हमेशा दूसरो की भावनाओं का ख्याल रखते है ?

१८ क्या आप हर मिलने-जुलने वाले के साथ दोस्ती का बर्ताव करते हैं ?

१९ क्या आप दूसरों की गलतियाँ बताते वक्त अधिक से अधिक नम्र बनने की कोशिश करते हैं और परोक्ष रूप में दया दिखाते हुए यह बात कहते हैं ?

जीवन का आदर्श

[पृष्ठ ५ का शेष]

बना दिया। भारतीयों में महत्वाकांक्षा का अभाव तथा उदासीनता का कारण यह उपेक्षा वृत्ति ही है। [illegible] हमारे साथ है और उसके हमें निरन्तर जीवन प्राप्त [illegible] है यह भाव जीवन को उज्ज्वल बनाता है। वेद में ऐश्वर्य की निन्दा नहीं है। ऐश्वर्य की उपेक्षा करते करते भारतीय निर्धन और दरिद्री हो गए। हमें भूतल पर स्वर्ग लाना है न कि अपने ही यत्न के प्रति आँख मींचकर दैव के भरोसे जीवन यापन करना। ऋषि दयानन्द ने वेद का आदर्श जनता के सामने रखकर सबको तन्द्रा आलस्य और प्रमाद से जगाया है।

आर्यसमाज के स्वर्णिम नियम मानवता के विकास के सिद्धान्त हैं उन पर आचरण करने से जीवन का विकास होता है जीवन में शक्ति सौंदर्य और सुगन्धि साथ साथ आती है। आर्यसमाज के नियम मनुष्य को श्रेष्ठ मनुष्य अर्थात् आर्य बनाने की क्षमता रखते हैं मनुष्य को जीवन का आदर्श सुझाते हैं।

आदर्शहीन और उद्देश्य हीन से भारतीय लोग अन्धकार में पग पग पर ठोकर खा रहे थे उन्हें ऋषि दयानन्द वेद के प्रकाश में जीवन का आदर्श दिखा गया है। अब आर्यसमाज के सदस्यों की जिम्मेदारी है कि वे जीवन आदर्श समझें और उसके अनुकूल जीवन व्यवहार करें

वेद में प्रार्थना है—हे बृहस्पति देव आओ, सूक्त को लेकर आओ। हे बृहस्पति देव ! आओ, हमें ऐश्वर्य प्रदान करते हुए आओ। हे बृहस्पति देव ! आओ हमारा टेर का सुनते हुए आओ (अथर्व १९४३) मेरे मन की कामना पूर्ण हो, मुझे जो फुरना फुरे वह पूरा हो मेरी वाणी से जो निकले वह सत्य हो। मुझे यश मिले, श्री मिले और सम्मान मिले, मेरे पशु बढ़ें मेरे अन्न रस भरे हो। (यजु० ३९ ४)

महर्षि के ग्रन्थों मे

[पृष्ठ ६ का शेष]

चाहिये मेरी किसी से शत्रुता नहीं थी जगद्गुरु साक्षात्कृतधर्मा महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के सम्बन्ध म मेरा यह सिद्धान्त है। कि—

यस्त्वाँ द्वेष्टि सर्पोद्वेष्टि यस्त्वामनु स मामनु स ॥

यस्त्वाँ द्वेष्टि तमहं द्वेष्मि यस्त्वामनु तमहमनु ॥

❀ चुने हुये फूल ❀

हमें इस बात में विश्वास रखना चाहिए कि जो सत्य है, उसी में सारी शक्ति निहित है। इसलिए हमें पूरे विश्वास के साथ अपने कर्त्तव्य मार्ग पर आगे बढ़ते जाना चाहिए।

—अब्राहम लिंकन

इस बात को अपने मस्तिष्क से निकाल दो कि तुम स्त्रियो से अधिक गौरवशाली हो। स्त्रियाँ तुम्हारी इच्छाओं और महत्वाकांक्षाओं की संगिनी हैं। वे तुम्हे सुख दुःख में सहायता देती है।

—'मेजनी'

बड़ा साहित्य क्या है ? वह भाषा, जिसके माध्यम से गहरे भाव सरलतापूर्वक व्यक्त हो सकें, ही महान साहित्य है।

—एजरा पाउण्ड

आनन्द हमारी सन्तोष वृत्ति की वह चरम सीमा है, जहां सुख और शान्ति निवास करते हैं, जहां कामना या इच्छा-जैसी वस्तु रह नहीं जाती। कामना की प्यास उसी तरह नहीं बुझती, जिस तरह समुद्र का पेट नहीं भरता। इनका पेट ज्यों-ज्यों भरा जाय, त्यों त्यों इनकी माँग बढ़ती जाती है।

-स्वामी विवेकानन्द

६० छात्राओं का अपहरण

स्कूल पर बर्मी विद्रोहियो का धावा

रंगून, २० अक्तूबर। लोअर बर्मा के थाटन क्षेत्र के एक ग्राम्य-स्कूल पर कल ४० सशस्त्र करने विद्रोहियोंने धावा किया और ६० छात्राओं को उड़ा ले गये। अपहृतों में स्कूल की अध्यापिकाएं और मुख्य अध्यापक भी है।

बाद में ७ और १२ वर्ष के बीच की छात्राएं छोड़ दी गई और शेष के लिये धन की मांग करने की चिट्ठियां भेजी गई हैं। प्रत्येक 'कैदी' के लिये ५०० क्याट (लगभग ५०० रु) की मांग की गई है।

गत वर्ष करेनों ने थाटन क्षेत्र में एक यात्री ट्रेन के रास्ते में बारूद के विस्फोटक को उसे रोक लिया था और छुट्टियां बिताकर रंगून लौटती हुई ५० कालेज छात्राओं का अपहरण कर लिया था। कई लड़कियों को १२ विद्रोही नेताओं से विवाह करने अथवा उनके हरम में रहने के लिये मजबूर किया गया।

थाटन शहर मोलमीन से ४० मील दूर है।

रिक्शा वाला

[श्री ज्ञानेन्द्र पथिक]

"—तुझे मजदूरी न मिली न सही, पर मुझे तो अपना भाड़ा मिलना चाहिए"—और इन शब्दों के साथ ही पीठ पर बेंत के दो तीन सड़ाके सड़-सड़ ! गरीब कुछ कहता था और मालिक हाथ में बेंत लिये आंखों से अंगारे बरसाता हुआ दांत पीस रहा था—

"जा, चला जा मेरे सामने से, कल से गाड़ी न मिलेगी तुझे।"

मन में निराशा का अंगार लिये वह तो दिया वह अंधेरे में—पर घर में आज क्या होगा। बूढ़ी मां पड़ी होगी, बहिन भाई सभी तो भूखे होंगे। नौकरी नहीं मिलती, मजदूरी भी नहीं, रिक्शे पर भी कोई नहीं बैठता, अब होगा क्या ? यही तो वह सोच रहा था—अब होगा क्या ? ऐसा तो वह कई बार सोच चुका है और पता नहीं कब तक वह इसी प्रकार सोचता रहेगा। महीने में बीस दिन वह अभागा इसी प्रकार बेंतें खाता है, फिर भी रिक्शे के सिवा' दूसरा धंधा क्या करे ? रात जैसे तैसे कटती और दिनमणि के उदय के साथ नयी आशाएँ भी उदय होतीं और फिर वही

"—दो आना सवारी कोई आना जी बाबू, जल्दी पहुंचा दूंगा—दो आना सवारी !"

o o •

धुएं के गुब्बार-सा धूल का उड़ता रेला उस पर कड़कती धूप, सड़क भी गर्मी से तड़पकर सांय सांय कर रही थी, पर रिक्शेवाले का इन सब बातों से क्या मतलब ? उसे तो रिक्शा मिला था—आठ घण्टे में मजदूरी कमाकर रिक्शे का भाड़ा भी देना था डेढ़ रुपया !

गर्मी के दिनों में गर्म हवाएँ मुँह पर तमाचे जमातीं और बरसात के दिनों में गीली हवाएँ उसे सिर से लेकर पैर तक नहला देतीं—सर्द हवाओं से हड्डी हड्डी छिद जातीं, थके हुए कुत्ते की तरह वह हाँफता भी, मगर ··

पेट के नरक की आग बुझाने के हेतु उसे रिक्शा खींचते रहना है। रास्ते उतार चढ़ाव और मोड़—हड्डियाँ उसकी चटचट बोल उठतीं, पर उसे उनके अन्दर छिपी पुकार सुनने की फुर्सत कहां। जीवन के उतार-चढ़ाव के साथ जीवन की सांसें बस मजदूरी और भाड़ा के आसपास नाचती रहतीं। फिर भी वह रिक्शे वाला आशा की ज्योति जगाये दौड़ता फिरता।

"—बाबूजी आना, दो आना सवारी।"

• • o

मोहन को आज भी कुछ न मिल सका था और रिक्शा लौटाने में केवल ४ घण्टे शेष थे। सड़क के एक किनारे वह चला तो जा रहा था—चिल्लाता—

आना बाबूजी कोई, जल्दी पहुंचा दूंगा··· ··पर कोई क्यों आये ? गरीब का साथ कोई नहीं देता। आज वह यही सोच रहा था—पिताजी की मृत्यु के बाद जैसे तैसे माँ ने मेहनत मजूरी कर मुझे पढ़ाया—और बी० ए० पास किया मैंने, पर माँ की आँखों की कीमत पर। आज जब वह लाचार है तो मैं उसे एक जून भी भर पेट खाना नहीं खिला पाता। हर दफ्तर का द्वार खटखटाया पर नौकरी के नाम पर–'नो वेकेंसी।' और अब आज रिक्शा चलाने की नौबत आयी तो कोई बैठता ही नहीं। सोचते सोचते मोटर की 'पों-पों' से उसका ध्यान भंग हुआ और वह पुनः चिल्ला उठा—

"—आनाजी भैय्या, दो आना सवारी।"

एक मोटर बस गुजरी कि दूसरी बाबुओं को भरे हुए बायें से आ धमकी।

मोटरों पर और हर विश्राम कुटी पर लिखा था—"घोड़ों का काम आदमी से लेना महापाप है, मोटरों पर सवार होइये।" वह भी यही सोच रहा था—घोड़ा का काम देता हूं, अपनी पीठ पर सैंकड़ों को लादे फिरता हूं, फिर भी पाप कमाता हूं। बेकारी की समस्या। रिक्शे का धंधा खुला, कुछ बेकारों को काम मिला कि मोटरें घूमने लगीं। सरकार को भी रहम आया, रिक्शे बन्द होंगे—रिक्शेवालों से घोड़ों का काम लेना महापाप है।' सरकार की हित चिन्तना सराहनीय है—आखिर है तो अपनी ही सरकार ! पर क्या कभी उसने सोचा—इतने रिक्शे वालों का क्या होगा ?

o • •

दोपहर का समय-बारह बजा था, ट्रैफिक पुलिस का सिपाही पहरा बदल रहा था, जैसे ही रिक्शेवाले को कहते सुना—

"आना कोई बाबू जी दो आना सवारी" कि हाथ देकर रिक्शा रोका और धम से आ बैठा—वह सफेद देव लाल पगड़ी सिर पर दबाये। रिक्शे वाला खिटपिटाया, हिम्मत कर मोहन ने कहा–अभी एक पैसा भी नहीं मिला है जमादार साहब, दूसरे रिक्शे से चले जाइये, बस भी आती होगी, वह जल्दी पहुंचा देगी। पर वहाँ सुने कौन, गालियों के सामने मोहन की एक न चली। सिपाही कह रहा था–पैसा लेगा कि और कुछ। आखिर मोहन चल दिया बोझ उठाये। जैसे तैसे ढाल मोड़ चौराहे पार करता तलाक मुहाल आ पहुंचा तब वही सफेद देव बोला–रुको ! रिक्शा तो रुका और वह कूदकर एक ओर चल दिया–पैसे धेले की बात को कहे कौन ?

अपने भाग्य को कोसता मोहन चला जा रहा था, आखिर पुलिसवाले भी गरीबों का खून चूसने छोड़ दिये गये हैं।

वह सीधा स्टेशन, आया गाड़ी आ चुकी थी-यात्रियों की भीड़ निकल तो रही थी और रिक्शे, तांगे और इक्के वाले चिल्ला रहे थे–'आइये बाबूजी, कहाँ जाना है बाबू साहब ?

कुछ इक्के पर बैठे, कुछ तांगे पर, कुछ बिना सामान वाले बस में, कुछ रिक्शों में और कुछ पैदल ही चल दिये, पर मोहन की आँखें इन्तजार में ही लगी रहीं।

एक बाबू पेट में हाथ डाले सिगरेट का धुआँ उड़ाते आते हुए दीखे और ज्योंही मोहन ने कहा—आइये बाबूजी, कि बाबूजी ने सिगरेट का धुआं मुंह से बाहर फेंकते हुए कहा—'नहीं···' नहीं सुन ,'नहीं' शब्द सुन से ही उसके पैर के नीचे की जमीन खिसक गयी। फिर भी साहस, आस नहीं छोड़ी और वह ·····

चिल्लाया–'आना कोई बाबू, दो आना सवारी।'

धोतीधारी एक बाबू उधर से गुजरे और मोहन की करुण पुकार पर वे ठिठक से गये, बोले—

"अच्छा आओ" और आगें बढ़ते गये। आगे आगे बाबू और पीछे रिक्शा।

'रुकिये बाबू, गाड़ी में बैठ जाइये', पर बाबू यही कहते जाते—चले आओ—और चले आओ ! मोहन हैरान हो गया आखिर।

'बाबू बैठते क्यों नहीं ?' फिर वह यहा कह उठता–'आइये न बाबू, बैठ जाइये।' और बाबू हर बार यही दोहराते' चले आओ ·····और चले आओ।'

स्टेशन से बहुत दूर अब वे बाबू साहब चले आये थे, सम्भवत: अपने घर के समीप ही पहुंच गये थे। एकाएक वे रुके और रिक्शे वाले के हाथ में दो रुपया थमाना चाहा। आदमी से "घोड़े का काम लेना महापाप।"

गरीब के आत्मसम्मान को चोट पहुंची, मोहन ने कहा–मैं गरीब आदमी हूं बाबू साहब। मेहनत करके खाता हूं बाबूजी। रिक्शे पर तो आप बैठे नहीं, फिर मजदूरी कैसी ? मैं भिक्षा नहीं लेता। मजदूरी मांगता हूं, मजदूरी करता हूं।

बाबू साहब एक ओर चल दिये रुपया जेब में वापिस डालकर। और उनके कानों में अब भी वही गूंज रहा था—

गरीब आदमी हूं बाबू साहब, मेहनत करके खाता हूं बाबूजी ! भिक्षा नहीं लेता !! मजदूरी करता हूं !!!

o o o

कहानी-कुञ्ज

ब्रिटेन का नया बजट
२६ अक्तूबर को पेश होगा

लन्दन २० अक्तूबर। ब्रिटिश सरकार ने कल यहां पर घोषणा किया कि ब्रिटेन का नया बजट २६ अक्तूबर को पेश होगा। यह बजट पूरक पेपर के चान्सलर श्री रिचार्ड ए० बटलर द्वारा हाउस आफ कामन्स में पेश किया जायगा। यू. प्रे.

हिन्दू महासभा की कार्यकारिणी की आवश्यक बैठक

नयी दिल्ली, २० अक्तूबर। हिन्दू महासभा की अखिल भारतीय कार्यकारिणी की एक आवश्यक बैठक यहां पर २६,२० अक्तूबर को होने जा रही है जिसमें राज्य पुनर्गठन आयोग की रिपोर्ट पर ठीक तरह से विचार किया जायेगा। यू प्रे.

स्वास्थ्य-सुधा

जाड़ेमें कैसे स्वस्थ रहें?

(लेखक—श्री श्रीकृष्ण जी)

> जाड़ा आरम्भ हो गया है स्वास्थ्य सुधारने के लिए इससे उत्तम अन्य ऋतु है भी नहीं। जो लोग स्वास्थ्य सुधारना चाहते हैं, उन्हें इस लेख से सहायता मिलेगी। —सम्पादक

चितवनि तो सभी की होती है। किन्तु, "वह चितवनि कछु और है, जेहि बस होत सुजान।" सभी जानते हैं कि स्वास्थ्य सुधारने के लिये जाड़े से उत्तम कोई ऋतु नहीं। अनेक लोग उसके सुधार के लिये प्रयत्न भी करते हैं, किन्तु, वस्तुत उससे सच्चा लाभ तो वे ही थोड़े से व्यक्ति उठा पाते हैं जो जाड़ों में स्वस्थ रहने का नुस्खा जानते हैं और उस पर सोलह आने अमल करते हैं। नही तो लोग सेब और सतरा, दूध और मेवा, अण्डा और च्यवनप्राश, मक्खन और गाजर का हलुआ, कॉड लिवर आयल और तरह-तरह की देशी-विदेशी पौष्टिक दवायें खाकर भी वही ढाक के तीन पात के ढग के रह जाते हैं। जाड़ा देखते ही देखते हवा हो जाता है और वे रेख-सी हाथ मल करके ठेक रह जाते हैं कि इस बार भी स्वास्थ्य न सुधरा!

स्वास्थ्य सुधारने के लिए जाड़ा वस्तुतः बड़ी अच्छी ऋतु है। इसमें स्वास्थ्य सुधारने के लिए कितने ही अमूल्य पदार्थ कौड़ी के मोल मिल जाते हैं। केवल अमीरों के लिए ही नही, गरीबों के लिए भी। तब इससे मूर्खता और क्या होगी कि हम इस ऋतु को यों ही चला जाने दें और अपने स्वास्थ्य में भरपूर उन्नति न करें।

अब जाड़ा आ गया है। अत हमारा हित इसी में है कि हम जाड़े में स्वस्थ रहने और स्वास्थ्य सुधारने का सच्चा नुस्खा जान लें और अविलम्ब उस पर अमल करना आरम्भ कर दें।

तो सुनिए इसके लिए हमें तीन बातों पर पूरा-पूरा ध्यान देना होगा। [१] स्नान, [२] भोजन और [३] व्यायाम।

स्नान

आप शायद कहें कि स्नान तो हम रोज करते हैं, इसमें ऐसी कौन-सी बात है? जी नही, जाड़े में स्नान की लोग बड़ी मिट्टी पलीद करते हैं। कितने ही सज्जन तो इन दिनों स्नान को एकबारगी ही गोली मार देते हैं। अभी परसाल ही तो मैंने बगल वाले मकान में रहने वाले १३ १४ साल के "अशर्फी" का हाल देखा था। वह जाड़े में महीनों स्नान न करता दिनों और हफ्तों की तो बात ही क्या! कितने ही लोग इन दिनों स्नान को छुट्टी के दिन के लिए मुल्तवी कर देते हैं। कहते हैं "हमने कौन कुत्ता कढेला है जो रोज नहायें" किन्तु, जिन्हें अपने अंगों के अशुद्ध होने का डर है वे या तो गरम पानी की शरण लेते हैं, अथवा किसी तरह २-४ लोटे पानी शरीर पर छिड़क कर काक-स्नान द्वारा अपने 'धर्म' की रक्षा करते हैं।

जाड़ों में न तो स्नान से एकबारगी ही छुट्टी लेनी वाञ्छनीय है, और न गरम पानी से स्नान करना तथा काक स्नान करना ही। ये तीनों तरीके एक बारगी ही गलत हैं। स्नान तो शरीर शुद्धि और स्वास्थ्य का अनिवार्य अङ्ग है। इसके बिना तो काम चल ही नही सकता। जो लोग बिना नहाये ही स्वस्थ रहने की कामना करते हैं, वे भारी भूल में हैं। शरीर की गन्दगी दूर करने, उसका मल निकालने और रोम-कूपों को खोलने के लिये स्नान से बढ़कर और कोई उत्तम साधन ही नही है। जो लोग स्नान द्वारा शरीर की समुचित सफाई नही करते, वे घर बैठे रोगों को निमन्त्रण देते हैं। स्वास्थ्य के अभिलाषी को तो बिना स्नान के गति ही नहीं है। उसमें ननु-नच करना अपने हाथों अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारना है।

गरम पानी से स्नान करने से मैल तो छूटता है, किन्तु, इससे स्वास्थ्य को धक्का लगता है। रोगियों, बीमारों और वृद्धों की बात दूसरी है। स्वस्थ व्यक्ति भी सप्ताह में एकाध बार चाहे तो गरम पानी से नहा ले। किन्तु प्रतिदिन गरम पानी से स्नान करना स्वास्थ्य के लिये हानिकर है। गरम पानी से पहले गरमाहट मालूम होती है, बाद में ठढक। किन्तु, ठण्डे पानी से नहाने मे इसका बिल्कुल उलटा प्रभाव होता है। उसमें पहले ठण्ढक मालूम होती है फिर गरमाहट। त्वचा पर ठण्डे पानी का बड़ा उत्तम प्रभाव पड़ता है। उसके पड़ते ही शरीर की ऊपरी सतह का रक्त खट से भीतर चला जाता है और फिर तुरत भीतर के सभी भागों से रक्त लौट कर ऊपरी सतह के सभी खाली स्थानों को घेर लेता है। रक्त के इस तीव्र गति के सचालन से शरीर में फुर्ती और गरमाहट आ जाती है, जो कि स्वास्थ्य के लिये परम लाभदायक है। गरम पानी से स्नान करने वाले इस लाभ से वञ्चित रहते हैं। नहाने के लिये सर्वोत्तम जल बहती हुई नदी का होता है। नदी न मिले तो कुएं के ताजे जल से भी मजे के साथ स्नान किया जा सकता है।

किन्तु, आप कह सकते हैं कि और ऋतुओं में तो नही, जाड़े में नदी में डुबकी लगाना या प्रात काल सर पर लोटा उड़ेलना बड़ी टेढ़ी खीर है। रोम राम उस समय खड़ा हो जाता है। इसका भी एक आसान उपाय है और वह यह कि आप नहाने से पहले अपने सारे शरीर को सर से लेकर पैर तक खूब अच्छी तरह तलहथी से रगड़िये। तलहथी नीचे से ऊपर की ओर जानी चाहिये। सबसे पहले सिर और चेहरा रगड़ना चाहिए। फिर क्रम से गर्दन, पीठ, बाया हाथ, बाई टाग, दाई टाग, दाहिना हाथ और सब से अन्त में पेट। देखियेगा ३-४ मिनट के भीतर ही शरीर में गरमाहट छा जाती है और फिर आप मजे में देर तक स्नान कर सकते हैं। नहाते समय प्रत्येक अङ्ग को अच्छी तरह रगड़िये, कोई भी अङ्ग अछूता न छोड़िये। इस में लापरवाही करना स्नान के सच्चे आनन्द से वञ्चित होना है और रोगों को शरीर में जमने का अवसर देना है। नहाने पर तो शरीर में स्वत गर्मी छा जाती है। बस, तौलिये से उसे अच्छी तरह पोंछ डालिये और लीजिये, हो गया आपका स्नान।

रही बात नहाते समय साबुन लगाने की, सो एक तो यों ही बाजार में अच्छे साबुन मिलते नही, जो मिलते हैं उनमें अधिकतर त्वचा को हानि ही पहुंचाते हैं, दूसरे उनकी आवश्यकता भी नही। हाँ, नहाने पहले तेल यदि लगाया हो तो अवश्य ही किसी अच्छे साबुन से शरीर मल डालना चाहिये, नहीं तो रोमकूप खुले न रहने से त्वचा अपना प्राकृतिक कार्य करने में भली प्रकार समर्थ न हो सकेगी।

कुछ लोग जाड़े में स्नान न करने के पक्ष में दलील देते हैं कि इससे उन्हें सर्दी, जुकाम होने का डर है। पर बात ऐसी नही है। सर्दी, जुकाम नहाने से नही होता, वह होता है, पेट की गड़बड़ी से। शरीर का भीतरी विकार जब सांसों, गुर्दों, फेफड़ों और त्वचा के मार्ग से पूरा-पूरा नही निकल पाता, तभी जुकाम होता है। स्नान से तो विकार निकलने में सहायता ही मिलती है, बाधा नही पड़ती। इसलिये जुकाम के डर से स्नान न करना अथवा गरम पानी का सहारा लेना कोरा भ्रम है। आप भूल कर भी कभी इसके फेर में न पड़िये।

भोजन

भोजन स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य वस्तु है। यह सही है कि भोजन के बिना जीवन धारण करना असम्भव है, किन्तु यही भी उतना ही सही है कि भोजन में सावधानी न रखने से तथा उसमें गड़बड़ी करने से असंख्य रोगों का जन्म होता है। भोजन के थोड़े से स्वर्ण सूत्र यदि मनुष्य याद रखे तो वह पूर्णत स्वस्थ रह सकता है। जाड़ा, गर्मी, बरसात सभी ऋतुओं में इन थोड़ें से नियमों का ध्यान रखना स्वास्थ्य के लिये परम हितकर है।

(१) भूख से सदा कम खाइये। भूख न हो तो उपवास कर डालिये।

(२) जो कुछ खाइये खूब चबा कर खाइये। रोटी, दाल चावल आदि सब कुछ। दूध भी गट गट करके मत पीजिये, चूस चूस कर गले के नीचे उतारिये।

(३) हर बार के भोजन में ४।-५ घण्टे का अन्तर रखिये। सबेरे ८ बजे यदि कुछ खाइये तो उसके बाद १ बजे दोपहर को ही भोजन कीजिये और फिर शाम को ६-७ बजे।

(४) भोजन के साथ पानी मत पीजिये। या तो भोजन से आध घंटे पहले पानी पी लीजिये या भोजन करने के एक घंटा बाद जी भर कर पानी पीजिये।

(५) हलुआ, पूड़ी, मिठाई, अचार, चटनी मुरब्बा आदि पेट में खराबी

(शेष अगले पृष्ठ पर)

(पिछले पृष्ठ का शेष)

[illegible] परहेज करिये । तली-भुनी, चटपटी चीजों से खूब बचिये ।

(६) चाय, कहवा, बीड़ी, सिगरेट, माँस, मदिरा आदि मादक वस्तुओं का कतई सेवन न करिये ।

(७) हरा साग, फल, दूध, मक्खन और मेवा आदि वस्तुओं को अपने भोजन में अवश्य स्थान दीजिये ।

(८) एक साथ अनेक वस्तुयें खाइये । जहाँ तक बने मजेदार भोजन ही करिये- बेमेल नहीं ।

आजकल मूली और गाजर, अमरूद और टमाटर आमला और सतरा, धनियाँ और पोदीना, सोया और पालक, गोभी और शलगम आदि चीजें खूब इफरात से मिलती हैं। और इन चीजों में स्वास्थ्य को सुधारने वाले जो अमूल्य तत्व भरे हैं, उनके आगे लाखों रुपयों की दवायें मख मारेंगी । जरा नियमित रूप से इनका सेवन करके भी तो देखिए। स्वयं तो बात ही क्या, आप बजात खुद अपनी शक्ल पर रश्क कर उठेंगे ।

आप यदि जाड़े में स्वास्थ्य सुधारने के इच्छुक हैं तो रत्ती भर का विलम्ब किए बिना ऐसा कार्यक्रम बना डालिये जिससे आप इस फसल को भरपूर लाभ उठा सकें । अपना प्रोग्राम तो आपको स्वयं बनाना होगा, हाँ, प्राकृतिक जीवन के शास्त्रियों के अनुसार दो एक प्रोग्राम यहाँ दिए जा रहे हैं। आप चाहें तो इन्हीं को अपना सकते हैं या इन्हीं के ढर्रे पर अपना नया प्रोग्राम बना सकते हैं। इतना अवश्य करिए कि जो प्रोग्राम बना लीजिए उसे अमल में जरूर लाइए। कारण, 'बताशा' 'बताशा' चिल्लाने से मुंह मीठा न हो जायगा। वह तो तभी मीठा होगा जब आप दरअसल बताशा लाकर मुँह में डालेंगे ।

सवेरे लगभग ८ बजे अमरूद, सतरा अथवा टमाटर के साथ दूध लें । दूध के बजाय बादाम ले सकते हैं । वह भी असम्भव हो तो गाड़े की मेवा चिनिया बादाम [मूगफली] कहां गई है ?

दोपहर लगभग १ बजे चोकरदार आटे की रोटी, छिलकेदार दाल, हाथ का कूटा हुआ चावल, घी, और एक उबाला हुआ साग खायें। भोजन आरम्भ करने के पहले थोड़ा सा सलाद बनाकर खा लीजिए। सलाद में गाजर, टमाटर, मूली और उसकी पत्ती, पालक, धनियां, पोदीना, एकाध हरी मिर्च पतल पतली काट नमक छिड़क नीबू निचोड़ लीजिये । देखिये [illegible]

शाम लगभग ७ बजे उबाला हुआ साग, किशमिश मुनक्का या अजीर खाकर पाव डेढ़ पाव दूध पी लीजिये ! अथवा रोटी ही खाना हो तो उसके साथ गाजर खाइयें, किशमिश, मुनक्का खाइये, अंजीर या खजूर खाइयें !

सुबह दस बजे से आपको स्कूल में या दफ्तर में हाजिरी देनी पड़ती है, तो आप सुबह वाला फल दूध का प्रोग्राम शाम को ५ बजे चला सकते हैं और दोपहर वाला सुबह ९ बजे। पर रात को फिर ९ बजे से पहिले मत करिये और उसमें दूध न रखें तो अच्छा है । दूध पीकर लोग जल्दी सो जाते हैं, यह स्वास्थ्य के लिए हितकर नहीं होता । भोजन करके शीघ्र सोना भी अच्छा नहीं है ।

हाँ, मूली, गाजर, आंवला, अमरूद, पालक एवं टमाटर आदि वस्तुएं आप के भोजन में अवश्य रहें । इनमें एक-एक में असंख्य गुण भरे हैं। च्यवनप्राश में पड़ने वाला आंवला जब आजकल आपको ताजा ही मिल रहा है, तो आप च्यवनप्राश के फेर में क्यों पड़ते हैं ? जानते हैं छोटा-सा एक आंवला २ सन्तरों के बराबर होता है । इसी भांति गाजर, मूली भी परम उपकारी है । हमें गाजर मूली समझ रखा है क्या ? कहने वाले जानते ही नहीं कि ये चीजें टके सेर भले ही मिलें पर इनके लाभ अशर्फियों के मोल भी मंहगे हैं । गाजर के विषय में एक बात याद रखिये कि उसे कच्चा खाना ही लाभ कर है, पकाया या हलुआ बनाया नहीं ? अमरूद तो गरीबों का मेवा है ही, पालक और टमाटर भी विटामिनों से भरे पड़े हैं ।

व्यायाम

पर, इन सब वस्तुओं के भोजन से ही काम न चलेगा इन्हें पचाने का भी कुछ प्रबन्ध करना होगा । जबतक आप भरपूर व्यायाम न करेंगे, तब तक आप अपना स्वास्थ्य उत्तम न बना सकेंगे । सर्वोत्तम व्यायाम टहलना तैरना, योगासन और सूर्य नमस्कार है। यों दण्ड बैठक आदि देशी और पैरलल बार, जिमनास्टिक आदि विदेशी व्यायाम भी शरीर को सुडौल बनाने में सहायक होते हैं। प्रातः काल खूब ५, ६ मील रोज टहलिये और फिर देखिये कि आप का स्वास्थ्य कैसा निखरता है । लौटकर एक गिलास गरम पानी में नीबू निचोड़ कर पीजिये और मस्ती से अपने काम धन्धे में जुट जाइये ।

आज आप अपना वजन और माप लीजिये और जाड़े भर यह प्रोग्राम चलाइये । मजाल है कि आप के वजन और स्वास्थ्य में वृद्धि न हो। अविश्वास करने की बात नहीं है। "हाथ कंगन को आरसी क्या ?

सभा की सूचनाएं

बाढ़ सहायता

आर्य कन्या हा० से० स्कूल बरई के मैनेजर श्री० श्रीवर दयालु जी द्वारा निम्न सज्जनों से बाढ़ पीड़ित सहायतार्थ धन ५०) मनीआर्डर से प्राप्त हुआ। समस्त दानी सज्जनों की आभारी हैं और धन्यवाद देती हैं।

श्री श्रीधर दयालु जी मैनेजर ११)
,, कुमारी पुष्पा रानी प्रिन्सीपल ५)
,, सूरज प्रसाद जी क्लार्क १)
,, कुमारी किरन मार्नसिंह अध्यापिका १)
,, कुमारी रानी सेठ अध्यापिका १)
,, ,, प्रतिमा रस्तोगी ,, १)
,, मती सरला सक्सेना ,, १)
,, ,, रामदेवी ,, १)
,, ,, शशि प्रभा ,, १)
,, ,, सावित्री तिवारी १)
,, ,, शान्ती निगम १)
,, पं० बलदेव मिश्र अध्यापक १)
,, प्रेम नारायण माथुर ,, १)
,, मंजरी प्रसाद ,, १)
,, रामदास नायक ,, १)
कन्याएं कक्षा ५-१२ २२।।)
५०।।)
कमीशन मनीआर्डर ।।)
योग ५०)

सवदेवसिंह ऐडव ोकेट
मन्त्री

विकासवाद की आलोचना

(पृष्ठ २ का शेष

(४) प्राणियों में हड्डियाँ कैसे उत्पन्न हुई?

(५) एक ही परिस्थिति में पैदा होने वाले मुर्गी, मुर्गे, भाई, बहन, शेर शेरनी, मोर मयूरी में भेद क्यों?

(६) प्राणियों दाँतों की संख्या भिन्न क्यों? क्यों घास खाने वाले स्तन धारियों में गाय भैंस के ऊपर के दांत नहीं होते? क्यों घोड़े के ऊपर के दांत होते हैं? क्यों कुत्तों के दूध के दाँत नहीं गिरते।

(७) जब पक्षी, जल जन्तु और कीड़े तक मांस खाने वाले पाए जाते हैं तब मांसाहारियों का समावेश स्तन धारियों में क्यों किया गया?

(८) घोड़े में स्तन क्यों नहीं? बैल स्तन अंडकोश के पास क्यों और पुरुषों में स्तन का क्या प्रयोजन?

इस लिए एक ही प्राणी विकसित होकर अन्य जाति का नहीं हो सकता अर्थात् विकास वाद का सिद्धान्त बिल्कुल ठीक नहीं। कभी भी निर्जीव से सजीव की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। इस विषय का विस्तृत विवेचन संभव नहीं अतः संक्षेप में लिखा।

पता:—'आर्यमित्र'
५ मीराबाई मार्ग, लखनऊ
फोन—१९१
तार—"आर्यमित्र"

आर्यमित्र

रजिस्टर्ड नं० एल० ६०
२३ अक्तूबर, १९५५

भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् की

परीक्षाएं

भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् द्वारा संचालित सिद्धांत सरोज सि० रत्न, सि० भास्कर, सि० शास्त्री सि० वाचस्पति परीक्षायें आगामी जनवरी मास में देश-विदेशो में होंगी। आवेदन पत्रों की तिथि ३१ अक्टूबर १९५५ है। इन परीक्षाओं की विशेषता है—धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय, किसी भी परीक्षा में सीधे बैठने की सुविधा, प्रत्येक परीक्षा का प्रमाण-पत्र उपाधि रूप में मिलता है। आर्य सम्थाओं में शिक्षक उपदेशक, बनने में इनको प्रमाण माना जाता है। इन्ही परीक्षाओं के लिए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने अष्टम आर्य महासम्मेलन में निश्चय किया है कि वैदिक धर्म प्रचार और उन्नति की दृष्टि से कुमार, कुमारियों युवक-युवतियों को अधिक से अधिक सख्यामें परीक्षामें बैठायें।

पाठ विधि तथा आवेदन पत्र मगाने, नवीन केन्द्र स्थापित करने एव अन्य जानकारी के लिए परीक्षा कार्यालय से पत्र व्यवहार करें।

डाक्टर प्रेमदत्त शर्मा शास्त्री B.I.M.S.
परीक्षा मन्त्री
भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् अलीगढ़

बाबूराम भारती द्वारा भागवत प्रेस ५ मीराबाई मार्ग लखनऊ से मुद्रित। तथा प्रकाशित

अंधेरा छाया चारों ओर दीप जलाये कौन ?

× × ×

(राकेश रानी)

× × ×

डगर डगर में अंधियारा है
नगर नगर में हाहाकार।
अलस में भर कर ज्वालायें
सिसक रहा है जीवन सार।
ऐसे में है प्रश्न मौन सा
आज सजाये कौन ?

स्वयं मनुज हो दनुज रूप में
पोषित करता अत्याचार।
नग्न रूप में दानवता है,
छाया छलनामय व्यापार।
दीप जला के अन्तर के तब
ज्योति दिखाये कौन ?

मुग्ध स्निग्ध सी मिटी चांदनी
अम्बर में विकसित तम जाल।
शान्ति सत्य का काम यहां क्या
थिरक रहा है काल कराल।
पीड़ा ही भूषण जब अपना
पीर बटाये कौन ?

दीपमालिका आई है यह,
किन्तु राम का राज्य कहां है ?
मिलन हर्ष छलकते पथ पर,
सौख्य भरा संसार कहां है ?
सचित कर मानव की गरिमा
शंख बजाये कौन ?

कौन कहे मिट्टी के दीपक
कैसे भर पायेंगे प्राण।
अन्तर हुआ तिमिरमय सखा तब
कैसे होगा शुभ कल्याण।
पग पग पर ठोकर लगना जब
गीत सुनाये कौन ?

मुझे ज्ञात यह पथ दूर है,
दूर बहुत है लक्ष्य महान्।
और साथ ही अनथक श्रम के
थके हुए हैं तन प्राण।
आज अधूरे तार बिखरे हैं,
राग बजाये कौन ?

स्वार्थ भावना भोगवाद का
जमा चुकी मन पर अधिकार
व्याप्त हुआ है जीवन क्रम में
हिंसा और घृणा का सार
लाश पड़ी है मानवता का
हर्ष मनाए कौन ?

दीपक से क्या होगा प्रिय
शेष न जब मानस में राग।
माटी के दीपक का [illegible]
किसे मिला है अपना भाग
भटक रहे कौतुक भ्रान्त जब
दीप जलाए कौन ?

O O O

वह ऐतिहासिक घटना

जिसन 'मूल" को दयानन्द बनने की प्रेरणा की

महर्षि की अंतिम वेला के प्रभाव स

नास्तिक गरुदत्त एम० ए०
सच्च आस्तिक बन गए ।

गुरुवर्य विरजानन्द सरस्वती
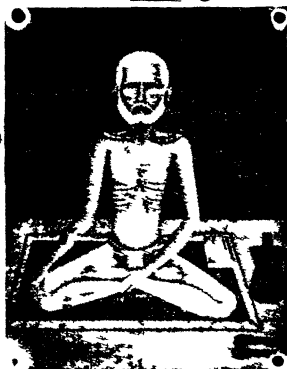
जिन्होंने प्रेरणा को मूलरूप दे दयानन्द को युगप्रवर्तक बनाने का महान् कार्य किया

युग प्रवर्तक, विश्व सुधारक, परम तपस्वी दयानन्द

अपना आलोक गहन प्रभा म प्रमाणित कर जो विदा हो गए

आर्यजगत् के समस्त पत्रों में सर्वाधिक छपने वाला आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश का मुखपत्र

आर्यमित्र

वर्ष ५७ अङ्क ३८

कार्तिक कृष्ण १५ (दीपमालिका) दयानन्दाब्द १३१ सृष्टि सवत् १९७२९४९०५६

ऐसा दीप जलाइए !

दीप मालिका प्रति वर्ष की भांति पुन आ पहुँची, राम के राज्य अभिषेक का हर्ष मनाते, राम के करोड़ों अनुयायी दीप पंक्तियो से द्वार सजा आज भी मङ्गल मनाते हैं । भौतिक दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि सारा देश एक छोर से दूसरी ओर तक आलोक आनन्द से भर गया है। मोद की लहरों में थिरती म चलाएँ, विजय और आदर्श की लहरें तरंगित कर रही हैं। साधना की विजय, अन्तर में वरदान बन मुस्करा रही है, मानवता की थिरकन से अणु अणु आलोकित हो उठा है, किन्तु

तनिक सी गहरायी में झांक स्थिति का खोखलापन प्रत्यक्ष मुखरित हो उठता है। जीवन की जर्जर स्थिति स्पष्ट अपना रूप धारण किए प्रकट हो जाती है और ऐसा भासित होने लगता है कि यह दीपक हर्ष के नहीं, सत्य और शान्ति की समाधि पर जलाए जा रहे हैं। मनुज अपनी सारी व्यथा में "स्व' को समाप्त कर प्रकट कर रहा ! युद्ध के बादल अशान्ति की घटाएँ, सर्वनाश की दामिनी दमक रही है ! क्षुब्ध एवं धरती के प्राण प्राण में केवल चीत्कार है, हर्ष नहीं केवल विषाद है। फिर यह कैसी दीवाली !

आज राम का राज्य नहीं, लाभ के नाम पर हमारे पास एक कौड़ी नहीं, घाटे का पलड़ा भारी है, ऐसी स्थिति में क्या हम मिट्टी के दीपक जलाने के अधिकारी हैं ? जब हमारे जीवन में प्रकाश नहीं, तब इन दीप पंक्तियों को सजाने से क्या लाभ ? यदि इस हानि को, अभाव और विषाद को हम लाभ, और हर्ष में परिवर्तित करने का संकल्प ले सकें तो सच्चे अर्थों में यह दीवाली हमारे लिए कल्याण और श्री प्रदान करने में समर्थ हो सकती है !

'प्रत्येक दीवाली मनाने वाला व्यक्ति एक क्षण रुक कर सोच व विचार करे कि क्या वह सच्चे अर्थो में इस पर्व को मनाने की चाह रखता है ? क्या सौख्य समृद्धि और आनन्द से अपने परिवार को पूरित कर देना चाहता है यदि हां तो उसे दीपक की प्रथम बाती जलाते हुए जीवन क्रम में परिवर्तन का संकल्प लेना होगा उत्थान और अभियान के लिए वह मार्ग अपनाना होगा जिस मार्ग द्वारा राम ने रावण पर विजय प्राप्त की थी ! केवल राम की जय का हर्ष मनाने से काम नहीं चल सकता सच्ची स्मृति यदि मनानी इष्ट है तो राम के मार्ग का अनुसरण करना होगा।

हम जानते हैं कि माया मोह और भोग वाद की चकाचौंध ने आज हमें इतना उलझा दिया है कि हम जीवन सत्य को भूल "रावण" पथ के पथिक बन गये हैं। हम नाम "राम" का भले ही पर कर्म अनुकरण रावण का ही करते हैं। ऐसी स्थिति में हम सोच रहे हैं कि क्या हमारा हृदय सत्य से प्रेरित हो राम की विजय पताका फहराने में कृत संकल्प हो सकेगा ?

स्थिति स्पष्ट है, चारों ओर आसुरी वृत्ति आंधी की भांति बढ़ा चला आ रहा है। नैतिकता का मूल्य शून्य रह गया है चरित्र सतीत्व, सत्य, प्रेम, विश्वास, नामक शब्द केवल शब्द मात्र रह गये हैं। पक्षपात, स्वार्थ, द्वेष और ईर्ष्या खुल कर खेल रहे हैं। भीषण चीत्कार के इस शोर में कोई सत्य न्याय की पुकार सुनने वाला नहीं। आततायी अन्यायी को दंड देने की सामर्थ्य भी किसी में शेष नहीं ऐसे में राम के उपासकों से यह प्रश्न है कि वे बताए क्या स्थिति सुधारने के लि उनका कर्तव्य नहीं ?

सोचिए गम्भीरता से और कीजिए कर्तव्य निर्णय ! अपने अन्तर की आवाज सुनिए और चलिए ज्योति मार्ग पर ! ज्योति दीप से द्वार गृह सजाने के इस पर्व पर हमारी लेखनी उन सभी को निमन्त्रण दे रही है तम पूरित मार्ग छोड़ प्रकाश की ओर बढ़ने का, जो सच्ची कामना से वर्ष में एक दिन के स्थान पर ३६५ दिन हर्ष मनाने की इच्छा रखते हों।

विचार का समय नहीं, नेत्र खोलिए अंधेरा दूर करने का संकल्प लीजिये और कीजिए प्रकाश प्रसार का प्रण ! अँधेरा क्षण भर का नहीं अंतर का दूर हो ऐसा दीप जलाइए ! साधना का पथ प्रेरणा का स्रोत बन आप का आवाहन कर रहा है, देखें आप क्या उत्तर देते हैं इस निमन्त्रण का !

सम्पादकीय टिप्पणियां

महर्षि के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित कीजिये

जब करोड़ो दीपक रात्रि के गहन अंधकार को दूर करने में मग्न थे, विश्व के अज्ञान अंधकार को दूर करने में समर्थ सूर्य दयानन्द अस्त हो चुका था ! मानवता का मूर्तिमान प्रतीक, सत्य का जीवित स्वरूप, ज्ञान का भंडार, दिव्य साधक, महान् महर्षि दयानन्द युग को क्रांति और निर्माण का दिव्य संदेश देकर विदा हुआ था इसी दिन इसी से समस्त आर्य जगत् इस दिन को ऋषि निर्वाण दिवस के रूप में मनाता है। भारत के ही नहीं अपितु विश्व के प्रत्येक आर्य समाज में इस दिन ऋषि के चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित की जाती है ! पर

आज भी महर्षि का कार्य अधूरा है ! संसार की बात छोड़िए अभी भारत में ही करोड़ो व्यक्ति अज्ञान अँधकार में भटक रहे हैं। गुरुडम मूर्तिपूजा अंधविश्वास सिर उठाये बढ़ चले आ रहे हैं ऐसे में महर्षि के उत्तराधिकारियो के समक्ष यह उत्तरदायित्व है कि वे निर्णय करें कि उन्हें महर्षि का कार्य पूरा करना है या नहीं ? किसी भी महापुरुष की स्थिति उसके अनुयायियोके कार्य कलापों द्वारा ही बनायी जाती है ! उनकी इच्छा पर जीवन और मृत्यु दोनों निर्भर रहते हैं ! इसलिए तथ्य यह है कि आज हमने इस बात का निश्चय करना है कि भविष्य हम कैसा बनाना चाहते हैं ? हम संसार के साथ चलना चाहते हैं ! या संसार को अपने साथ चलाना ?

आध्यात्मिक व भौतिक विचारधाराओं के संग्राम में विजय किस की हो यह हमारे हाथ में है ! महर्षि आध्यात्मिक चेतना के संदेश वाहक थे ! इसलिए उनके निर्वाण दिवस पर हमारा आर्य जनता से आग्रह है कि वह विश्व में विचारो की इस महान् क्रांति के यज्ञ की सफलता के लिए पूर्ण बल से कटिबद्ध हो लग जाने का संकल्प धारण करे ! आर्य समाज का जन्म भी इसी उद्देश्य पूर्ति हेतु हुआ था। इस लक्ष्य को पूर्ण करने का व्रत ही महर्षि के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि हो सकती है। — —

आइए मैदान मे

विदेशी क्रिश्चियन मिशन किस तेजी से स्वतन्त्रता प्राप्त होते ही भारत की धर्म निरपेक्ष नीति का अनुचित लाभ उठाकर बढ़ता चला आ रहा है यह किसी को भी आज बताने की आवश्यकता नहीं रह गयी ! साथ ही यह भी किसी से छिपा हुआ नहीं है कि भारत की समस्त संस्थाएँ इन की घातक नीति के प्रति मौन व उदासीन हैं। भारतमें नया इसाईस्तान बनाने के षड्यन्त्र जितना बल पकड़ते जा रहे हैं उतना ही हमारा आलस्य भी बढ़ता जा रहा है। हमारे गौरव मान और राष्ट्र पर अपमान के कठिन तम प्रहार होते रहने पर भी प्रतिकार की भावना किसी के मन में उदय नहीं हुयी यह और भी खेद का बात है।

(शेष पृष्ठ ४ प)

(पृष्ठ ३ का शेष)

किन्तु ऐसी विनाशक स्थिति को देख सदा का जागरूक आर्य समाज कैसे मौन रह सकता था उसने अपने पूरे बल साधनों से विदेशी पादरियों के कुचक्रों को विफल करने का संकल्प लिया है। हमारा यह अटल निश्चय है कि अगले वर्ष की दीपावली तक हम कम से कम उत्तर प्रदेश से इन मिशनरियों के षड्यन्त्रों को समाप्त कर देंगे।

हम चाहते हैं कि सारे प्रदेश मिल कर अपने अपने भाग से इनकी कुप्रवृत्तियों को समाप्त करने में लग जाएं। इनके सिद्धान्तों का खोखलापन इनकी धर्म पुस्तक की व्यर्थता इनके कार्यों का ढोंग और इनकी कूट नीति की पोल का ज्ञान सभी को करा देने पर इनका अधिकांश बल स्वय ही क्षीण हो जाएगा। इनके पास धन है, सत्य नहीं। शक्ति है ज्ञान नहीं। बुद्धि है, पर अन्धकार से प्रस्त। इसलिए इनका वास्तविकता को समझ उत्साह त्याग और बलिदान की भावना से कार्य करने पर विजय श्री हमारा साथ दे सकती है।

हम यथाशीघ्र इस दिशा में रचनात्मक पग उठाने वाले हैं। प्रदेश के १०० केन्द्रों में जहाँ इनकी गतिविधि जोरों पर है हम वैदिक प्रचार केन्द्र स्थापित करेंगे। एक एक केन्द्र पर २००) मासिक तक का व्यय किया जाएगा। प्रत्येक केन्द्र में हमारे दो संचालक रहेंगे। इस प्रकार आरम्भ में हमें २०० व्यक्ति चाहियें। अब तक बहुत थोड़े नाम हमारे पास पहुँचे हैं, इनसे काम न चल सकेगा। कम से कम ५० व्यक्ति मिलते ही हम कार्य आरम्भ कर देंगे। अतः समस्त उन व्यक्तियों को जो कहने के स्थान पर करने में विश्वास रखते हों, हम, इस आर्य सेना में भरती होने का आमन्त्रण देना चाह रहे हैं।

हमारा आग्रह है कि इस दिशा में उदासीनता न बरती जाए। कार्य करने के इच्छुक आर्यवीर युवक प्रौढ़ वृद्ध सभी इस क्षेत्र में आगे आएं और अपने प्राणों की गरिमा से ईसाइयत के अन्धकार को दूर करने का व्रत लें। जीवन और मृत्यु का यह भीषण संग्राम है। यह मानव दानव के बीच विजय का प्रश्न है। वैदिक संस्कृति पर होने वाले प्रहारों से रक्षा करनी है। इसलिये देरी न कीजिए अधिकाधिक कार्य क्षेत्र में आइये। लेखराम, श्रद्धानन्द के बलिदान में एक कड़ी और जोड़नेका अवसरआ पहुँचा यह निर्णायक घड़ी है इस पार या उस पार, जीत या हार, सोचिए क्या चाहते हैं आप?

ईसाइयों की गतिविधि को समाप्त करना इष्ट है तो तुरन्त अपना नाम "मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के ५ मीराबाई मार्ग लखनऊ के पते पर भेजिये और आइये मैदान में।

साप्ताहिक सत्संग

कई बार हम आर्य समाजों से साप्ताहिक सत्संगों को आकर्षक व प्रभावशाली बनाने का आग्रह कर चुके हैं। जहाँ भी जिस साप्ताहिक सत्संग में जाने का अवसर हमें मिलता है प्रायः सभी का आयोजन अत्यन्त विशेष प्रकार से ही हुआ मिलता है। अपने [illegible] ऐसे कुछ में ही आते हैं, अन्यों के तो दर्शन ही क्यों?

हम यह भूल गये प्रतीत होते हैं कि आर्य समाज की रीढ़ साप्ताहिक सत्संग हैं। हमारा विचार है कि यदि केवल इन सत्संगों का ही काया पलट हो जाए तो हम ५० प्रतिशत आगे बढ़ सकते हैं। इस ओर की उदासीनता आत्महत्या के समान है इतना समझ लीजिये हम इस दिशा में कुछ सुझाव प्रस्तुत करते हैं, इस आशा के साथ कि जनता व अधिकारी इन पर ध्यान देकर कार्य को गति देने का प्रयास करेंगे।

१—साप्ताहिक सत्संगों के प्रति श्रद्धा भावना रक्खी जावे। यज्ञ में उपस्थित होना भी सभी अनिवार्य समझें।

२—प्रति सप्ताह अपने अपने भाग में (नगर, ग्राम या मोहल्ला) मनादी करा कर सत्संग के विशेष आकर्षण की जनता को सूचना दी जावे।

३—सत्संग में आध्यात्मिक, सांस्कृतिक व बौद्धिक सामग्री दी जावे। हम क्या चाहते हैं, या आर्य समाज का आध्यात्मिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक दृष्टिकोण (सैद्धान्तिक रूप में) क्या है, यह सब विविध निश्चित विषयों के व्याख्यानों द्वारा बताया जाए। आलोचनात्मक भाषण चर्चा से जहाँ तक सम्भव हो बचा जाए।

४—प्रत्येक आर्य सभासद अपने पूरे परिवार के साथ ही सत्संग में आएं। एकाकी जाकर बैठ जाने से परिवार में वैदिक भावनाओं का प्रसार कैसे हो सकेगा?

५—समय-समय पर अन्य मतावलम्बियों को भी विशेष आमंत्रण द्वारा निमंत्रित कर बुलाना चाहिए। उनके साथ सैद्धान्तिक चर्चा भी यदा कदा कराने से जनता आकर्षित होगी।

६—जो आए वह हमारा बनकर, कुछ लेकर जाए, यह प्रयत्न समाज के अधिकारियों की ओर से निरन्तर होते रहना चाहिए।

७—सत्संग ठीक समय पर आरम्भ होकर निश्चित समय पर समाप्त होने चाहिए। सन्ध्या, यज्ञ, प्रार्थना, भजन, वेदोपदेश भाषण, शंका समाधान और शान्ति पाठ सभी का निश्चित समय कर कार्य संचालित करना चाहिये।

८—यदि आप के यहाँ योग्य उपदेशक नहीं हैं तो स्वयं स्वाध्याय कीजिये, बारी बारी से आप सभासद स्वयं भाषण की तैयारी कर बोलें इससे जहाँ स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढ़ेगी वहाँ जनता को भी हम कुछ दे सकेंगे। समाचार पत्रों से भी अच्छे लेख पढ़ कर सुनाए जा सकते हैं। किसी अच्छे ग्रन्थ का भी पाठ किया जा सकता है।

९—प्रत्येक सत्संग की समाप्ति के पश्चात् आर्य सभासदों की बैठक आध घण्टे के लिए होनी चाहिये जिसमें सप्ताह भर के लिए हमें क्या करना है, इस पर विचार कर लेना चाहिए।

१०—समाज के पुस्तकालय को सक्रिय करना आवश्यक है। इसके द्वारा भी हम जनता में वैदिक विचारधारा के प्रति आकर्षण उत्पन्न कर सकते हैं। साप्ताहिक सत्संग के पश्चात सभी को पुस्तकें पढ़ने और ले जाने का भी आग्रह करना चाहिए।

यह कुछ सुझाव हैं और भी हो सकते हैं। पाठकगण भेजें, हम उन्हें प्रकाशित करेंगे पर मुख्य समस्या आचारण की है। यदि आर्य समाजें इन १० बातों को ही स्वीकार कर लें तो हम में नया बल व स्फूर्ति उत्पन्न हो सकती है।

आर्य जगत की आशाओं के केन्द्र

श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी सरस्वती

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के मुख्य उपप्रधान

राजकुमार रणञ्जय सिंह जी सदस्य विधान सभा

सार्वदेशिक सभा के कर्मठ प्रधानमंत्री

श्री काली चरण जी आर्य

आर्यसमाज की रीढ़ सुदृढ़ करें

हम एक महत्वपूर्ण प्रवाह से गुजर रहे हैं, इससे पार होने पर आर्य समाज की स्थायी शक्ति कितनी बढ़ जायगी, इसकी तो कल्पना करनी भी संभव नहीं। आज तो हम परम पिता परमात्मा से उनकी ही आशीषों के प्रसार के लिए बल, साहस, उत्साह प्राप्त करने की प्रार्थना कर रहे हैं।

जीवन संघर्ष है संघर्ष ही जीवन है। सत्य की हार होती नहीं, विजय निश्चित है, हार अपनी त्रुटि की खोज का संकेत है। यही सोच हम चल रहे हैं। आशा है उदार हृदय पाठक अपना स्नेह सदा की भांति "आर्य मित्र" पर बनाए रखेंगे।

क्षमा-प्रार्थना

इस बार बहुत चाह कर भी दीपावली पर हम "विशेषांक" प्रकाशित न कर सके। पर हमें विश्वास है कि कृपालु पाठक हमारी स्थिति को समझते का यत्न करते हुए उदारता पूर्वक क्षमा कर देंगे।

पूजा चित्र की या चरित्र की!

(लेखक—पूज्यपाद स्वामी श्री आत्मानन्द जी सरस्वती)

यह सामने विशाल मन्दिर है, इसमें आज भगवान राम की स्थापना की जायगी। प्राण प्रतिष्ठा होगी। प्रतिमा कैसी सुन्दर है? कलाकार ने इसे बड़े परिश्रम से बनाया है। लोग कहते हैं कि यह प्रतिमा सामने खड़े महान् पर्वत से निकली है। परन्तु कलाकार कहता है कि नहीं पत्थर का टुकड़ा जब पर्वत से निकाला गया, उस समय उसके हाथ, पैर आदि अंग न थे। इसका निर्माण मैंने ही किया है। इसके हाथ, पैर आदि चिह्न इस पत्थर में थे अवश्य। परन्तु प्रकाश में नहीं थे। यह सब चिह्न मेरे अन्तःकरण में विराजमान थे। मैंने इन्हें उन्हीं के अनुरूप पत्थर में प्रकट किया है। इस प्रकार इस राम के चित्र को कलाकार से जन्म मिला है और इसीलिए यह चित्र कलाकार का आभारी है। कलाकार से जन्म पाकर यह चित्र इस विशाल मन्दिर में पहुँच गया। वहाँ आने पर उसकी प्राण प्रतिष्ठा विद्वानों ने की। प्राण प्रतिष्ठा हुई या नहीं। यह तो परीक्षा का विषय है, और परीक्षा करने पर इसमें प्राण का परिचय नहीं मिलता। परन्तु ऐसा कहा अवश्य जाता है कि प्राण प्रतिष्ठा हो गई। इस प्रकार राम के चित्र का जन्म कलाकार ने दिया और उसमें प्राणों का आधान किया विद्वानों ने। मन्दिर में प्रतिष्ठित होने के बाद यह राम अथवा राम का चित्र पुजारियों के हाथ में आया। पुजारियों ने इसे स्नान कराया, वस्त्र पहनाये और यद्यपि इसने खाये नहीं, परन्तु पुजारियों ने इसे खाने के पदार्थ मिष्टान्न आदि खाने के लिए भी दिए। इस प्रकार हमने राम के चित्र को कुछ न कुछ दिया ही है, हमें उससे मिला कुछ नहीं। परन्तु यह प्रसिद्ध है कि पूजा का लक्ष्य कुछ लेना है, देना नहीं। उपासक अपने इष्ट देव से कुछ लेना चाहता है, वह वस्तु लेना चाहता है, जो उसके पास नहीं है। उदाहरण के लिए वह विज्ञान का अभिलाषी है। उसके पास बहुत थोड़ा ज्ञान है। वह उससे अधिक चाहता है। परन्तु यह राम के चित्र को ऊपर लिखित वृत्तान्त के अनुसार कुछ न कुछ देता तो अवश्य है, परन्तु अपनी कामना की वस्तु ज्ञान उससे ले नहीं सकता। क्योंकि ज्ञान उस चित्र के पास भी नहीं है। [illegible]

परन्तु राम का चरित्र अनेक गुणों का भण्डार है। इस चरित्र में हम आध्यात्मिक, आधिदैविक, और पारलौकिक अनेक प्रकार के विज्ञानों का समावेश पाते हैं। सौम्य, वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि गुरुओं से राम ने अपनी आत्मा में आत्मिक गुणों का प्रकाश किया था, अपने इसी विज्ञान के बल पर उन्होंने एक ऐसे साम्राज्य को जन्म दिया जो आदर्श रूप में आज तक रामराज्य के नाम से प्रसिद्ध है। पदार्थ विज्ञान का परिचय उनको शस्त्रों के और अस्त्रों के निर्माण की कला से मिलता है। अस्त्र-शस्त्र न तो वे अयोध्या से लाये थे और न वन के ऋषियों से ही कहीं उनको मिले। परन्तु उनका चौदह वर्ष का वनवास का समय संग्राम में ही बीता। इस अवस्था का समाधान करने लिए हमें यह ही मानना पड़े।। कि राम ने इन अस्त्रों और शास्त्रों का निर्माण वन में ही किया, इसलिए वे पदार्थ विज्ञान के भी धनी थे।

प्राणिशास्त्र अथवा समाज शास्त्र के विज्ञान के भी अनेक उदाहरण हमें उनके चरित्र में मिलते हैं। वन की सारी जातियों के हृदय के सम्राट बन जाना और विभीषण आदि शत्रु कुल के लोगों के हृदय में भी स्थान बना लेना राम के प्राणि शास्त्र के विज्ञान का पूरा परिचय दे रहा है। इस प्रकार संसार में कोई ऐसा महत्वपूर्ण विज्ञान शेष नहीं रह जाता, जिसे हम राम के चरित्र से प्राप्त नहीं कर सकते।

हां इसमें कोई सन्देह नहीं कि चित्र की पूजा सरल है और चरित्र की पूजा अत्यन्त कठिन है। राम के चित्र की पूजा के लिये, जल, वस्त्र भूषण, धूप, दीप नैवेद्य आदि भौतिक सामग्री ही पर्याप्त है, जिसे कि हम बिना कठिनाई के जुटा सकते हैं। परन्तु राम के चरित्र की पूजा टेढ़ी खीर है। और तप के द्वारा राम के एक एक गुण का अपनी आत्मा में संग्रह करना ही राम के चरित्र की पूजा है और इस पूजा से हमें आदर्श चरित्र का निर्माण करने वाली गुणों की विभूति प्राप्त होती है। महर्षि दयानन्द ने इसी लिये मानव समाज को महापुरुषों के चरित्र की पूजा का आदेश दिया है, चित्र की पूजा का नहीं। अब इस प्रश्न का उत्तर हम [illegible]

[illegible]

जीवन की अनुभूतियां

(लेखक—श्री मंगल देव जी शास्त्री)

संशय :—

किसी बात को न समझने से जो सन्देह उत्पन्न होता है अथवा समझने पर भी स्वभाववश जो अविश्वास की भावना होती है उससे भय तत्काल उत्पन्न होता है।

मन शंका होने पर छोटी वस्तु भी बड़ी लगती है झाड़ी में भी भूत दिखाई देता है। सन्देह से भ्रम और भ्रम से निराशा उत्पन्न होती है।

उदासीनता :—

नीरसता या उदासीनता से जीवन रथ के दो मुख्य घोड़े आशा और उत्साह—मर जाते हैं और मनुष्य को संसार अवाक् रमय, मायामय, और भयानक लगता है। विरक्ति से निर्भीकता की जगह अधिक निराशा और भय की सृष्टि होती है।

अनिश्चितता :—

मन की अस्थिरता या, अनिश्चितता, अथवा उच्छृंखलता, से ममता-उत्पन्न होती है, वह भी अन्ततः भय का कारण होती है। मनुष्य जब दृढ़ मति होकर सप्रयोजन एक निश्चित दिशा की ओर नियम से चलता है तो संकट पूर्ण स्थिति में भी उस को भय नहीं लगता।

अनैतिकता :—

यह भय की बड़ी माँ है। चरित्र की निर्बलता से मनुष्य पद-पर डरता है। शारीरिक अपराध से ही नहीं, मानसिक अपराध से भी उसके भय का आरोपण होता है। काम, क्रोध, मोह, दम्भ, स्वार्थ घृणा, प्रतिकार भावना और अनुचित पक्ष पात से बाहर-भीतर आत्मा कांपती है। मिथ्या भाषण—व्यवहार अथवा मिथ्या विश्वास या अन्ध-विश्वास से तो भय अवश्य ही बढ़ता है। हिंसा या क्रूरता से भय का भयानक संचार होता है। अत्याचार और भय परस्पर हाथ मिलाते हैं। वे एक दूसरे के मित्र होते जैसा किसी ने कहा है 'Cruelty and fear Shake hands together' भयभीत दशा में मनुष्य क्रूरता करता है और क्रूरता करने के बाद उसको भय लगता है। मनुष्य अनैतिक आचरण से भयभीत होकर अनेकानेक आचरण करता है। नैतिक पक्ष प्रबल होने पर एक व्यक्ति में भी दस हजार व्यक्तियों का मनोबल आजाता है।।

अशक्तता :—

भय और अशक्तता भी एक दूसरे के साथ बेटे हैं। किसी भी प्रकार की निर्बलता में प्रतिपक्षी की चिन्ता होती है। स्वास्थ्य के निर्बल होने पर रोग [illegible] होनेपर श[illegible] भय मन में आता है।

इसी प्रकार भय त्रस्त रहने पर सभी बातों में अशक्तता आजाता है। थकावट और रोग जन्य अशक्तताओं से नाड़ी की गति बढ़ जाती है, और हृदय धड़कने लग जाता है।

इसी से समझना चाहिये कि भय और अशक्तता का प्रभाव एक सा होता है।

जब मनुष्य अपने को अशक्त पाता है, तभी वह वेदना की कल्पना से भय क्रान्त होता है। छोटे बच्चे अशक्त होते हैं तभी तो वे बात बात में डर कर चिल्लाते हैं। अशक्त होने पर दूसरों से ही नहीं अपने से भी डर लगता है। रोगग्रस्त व्यक्ति सदैव ही डरता है कि कहीं उसके हृदय की गति न रुक जाय। शरीर और मन से दुर्बल बच्चे कभी कभी अपने चिल्लाने की आवाज से चौंकते हैं।।

अयोग्यता :—

अयोग्यता के कारण मनुष्य को यह भय सदा बना रहता है कि कहीं कोई भूल न जाय और उस भय से प्रायः भूल हो जाती है, क्योंकि मन में भय रहने से रही सही जागृता भी स्फुरित नहीं होने पाती. मनुष्य की बोली तक बन्द हो जाती है, वह हक्का बक्का हो जाता है।

अकर्मण्यता :—

हाथ पर हाथ रखकर बैठने से भय मुंह खोल कर सामने खड़ा हो जाता है। आलस्य से पुरुषार्थ क्षीण हो जाता है। आलस्य से पुरुषार्थ क्षीण हो जाता है और भयकर परिस्थितियाँ मनुष्य को दबा लेती हैं। उसके आगे और भय के भूत ही दिखाई पड़ती है। कर्म के साथ भय भय निश्चित रूप से समाप्त हो जाता है जब मनुष्य एक दिशा में चल पड़ता है तो भय उसके पैरों के नीचे आ जाता है कुछ स्थानों में यह देखा गया है कि युद्धारंभ के पूर्व बहुत से सिपाही भावी संहार की कल्पना से भयभीत रहते हैं परन्तु युद्ध के प्रारम्भ होने पर भय सैनिक भी गोलियों की बौछार में निर्भय होकर दौड़ता है

इसका कारण केवल यह है कि कर्मोद्यत होने पर समाप्त हो जाता है, तब मनुष्य अपनी मृत्यु से भी नहीं डरता।

शारीरिक श्रम से मन का भय निश्चय भाग जाता है।

आलस्य में कल्पना-जन्य-भय से अपनी निस्सहायावस्था का जो अनुभव [illegible]

कहानी-कुञ्ज

कहानी—

"अमर आंसू"

(लेखक—श्री सूर्यप्रकाश जी बी०ए० (आनर्स) 'साहित्यरत्न')

भारत देश पर पूर्ण रूपेण गौरांग जाति का शासन हो चुका था। देश में सन् सत्तावन की होली अभी शान्त नहीं हुई थी। उसकी धू धू करती लपटों से भारत का मानस जल रहा था। किन्तु इतना होने पर भी विदेशी गौरांग जाति को शान्ति न थी। अभी पूर्ण प्रतिशोध की भावना से वह मानवों पर मनमाने अत्याचार करने पर तुली थी। अपने भोग विलासों के सम्मुख दीन हीन जनता की उसे क्या परवाह थी। उसी के आधीन अनेक भारतीय राजे अपने अपने कर्तव्यों से विमुख होकर ऐश-आराम की सामग्री जुटाने में लग गये। एक ओर बड़ी बड़ी विशालकाय अट्टालिकाओं में तबले और सरंगी की मधुर तान और दूसरी ओर झोपड़ियों में जीर्ण-शीर्ण मानवता की कराहती आवाज। शान्ति नगर और ग्रामों से विदा लेकर मरघट में कराहती अधकुम्न रूप में सांसें ले रही थी।

× × ×

सुदूर तक पर्वतमालायें जग के अनन्त पथ का परिचय देती चली गई थी। पर्वतों की उच्च भ्रम्र हिम श्रृंगें अपनी महान गुरुता का पाठ पढ़ा रही थी। और उन्हीं के आंचल से कलकल करती अलकनन्दा बह रही थी। उसी हिमानी पर्वतों के नीचे एक छोटी सी कुटीर थी। रह रह कर वह कुटीर ऋषि के प्रणव ध्वनि से गूंज पड़ती। प्रातः से सायं तक ऋषि की कुटार में ब्रह्म विद्या सीखनेवालों का समाज लगा रहता। ऋषि ने अपने जीवन को भारत माता की जीर्ण शीर्ण मानवता का उद्धार करने के लिए, उसके चरणों पर समर्पित कर दिया। ऋषि के मस्तिष्क और हृदय को शांति न थी। नित्य प्रति कितने ही प्रश्न उससे किये जाते और सदैव वह उनका अत्यन्त नम्रता के साथ उत्तर देता रहता। अभी कल ही उसे परिव्राजक के नाते दूसरे स्थान को प्रस्थान करना था और आज ही संध्या की वेला में लगभग पच्चीस प्रश्नों का समाधान उसके सम्मुख प्रस्तुत हुआ। ऋषि की विद्वत्ता पर सन्देह? उसका मस्तिष्क उथल पुथल कर उठा और असत्य और अज्ञान का विनाशक, मानवता का महामानव सत्यालोक का दीप जलाने उस ओर बढ़ चला।

÷ ÷ ÷

भगवान् भुवन भास्कर की रश्मि अवनि तल पर अपना मधुरिम वैभव बिखेरने लगी। शीत की हिमानी ठिठुरती भूमि, उस पर ऋषि के चरण अबाध गति से बढ़े चले आ रहे थे। प्रातः आठ बज चुके थे। एकबार ऋषि की आगमन वेला समाप्त समझ विरोधी अपने झूठे गर्व पर उछल पड़े। किन्तु यह क्या! ऋषि के देदीप्यमान मुख मण्डल को देखकर सभी के मुख निस्तेज से हो चले। पुन. एकबार उसके 'ओ३म' शब्द से समस्त पण्डाल प्रतिध्वनित हो उठा। ऋषि ने एकबार अपनी दृष्टि उन समस्त आसीन सदस्यों पर डाली और दूसरे क्षण उसके अधरों पर मधुर मुस्कान बिखर उठी। छल-बल के द्वारा अनेक प्रश्न टेढ़े-मेढ़े रूप में रक्खे गये। ऋषि एक-एक करके उसका समाधान करता जाता। प्रातः

न हट सके और एक सूर्य का अपूर्व आलोक समस्त मानव हृदय पर आलोकित हो उठा। निस्तेज पाखण्डी मानव उस प्रखर प्रकाशित सूर्य की ओर न देख सके और एक एक करके चल दिये। देखते देखते शनैः शनैः सम्पूर्ण पण्डाल सभासदों और श्रोता गणों से रिक्त हो उठा।

÷ ÷ ÷

उसी पावस के आंचल से भागीरथी अपनी मधुर कल-कल निनाद स्वर-लहरी को अरण्य में बिखेरती सिन्धु से मिलन की प्रबल उत्कण्ठा को मानस में छिपाये अबाध अजस्र गति से भागी जा रही थी उसकी लहरें तट से टकरा टकरा कर थप-थप शब्द के साथ अपने प्रगट प्रणय का परिचय रह रह कर दे उठती। भास्कर की रश्मियों के प्रतिबिम्ब रह-रह कर जल में भारत के भावी जीवन का सन्देश दे रही थीं। पक्षियों के मधुर कलरव से समस्त आकाश गूँज उठा। दिन भर के बिछुड़े पक्षी गण अपने शिशु-मिलन की मधुर स्नेह को हृदय में दबाये बेतहाशा नीड़ों की ओर भागे आ रहे थे। उधर नीड़ों से चोंच निकाले खग शिशु निर्निमेष नयनों से अपने अभिभावकों की

ओर देख रहे थे। शनै! शनै! रवि पेड़ों की झुरमुट आ में छिपे। उनकी स्वर्णिम रश्मियाँ रह रह कर गंगा के जल में प्रतिबिम्बित हो उठती। मानों वे रश्मियां उन लहरों के साथ आँख-मिचौनी खेल रही थीं।

ऋषि के चरणों पर बैठे ब्रह्मचारी वेद पाठ कर रहे थे। उनके वेद-पाठ का स्वर विशाल ऊंची पर्वत मालाओं से टकराकर पास की उपत्यकाओं में उतरता हुआ, गंगा के मधुरिम लहरों में अठखेलियाँ करता दूर सिन्धु में मिल कर सुदूर देशों में पहुँच रहा था। ऋषि की आँख एक बार कुटीर के बाहर उठी और प्रतीची में अस्ताम सूर्य की स्वर्णिम रश्मियों पर जा टिकी। और उसके ओठे मुख पर पुनः मधुर विरकन नृत्य कर उठो। इतने में ही ऋषि का गम्भीर शब्द कुटिया में प्रतिध्वनित हो दूर पहाड़ों से टकराता विलीन हो गया—

'सत्यदेव'!

'गुरुदेव'!

शिष्य! देखो भगवान दिवाकर अपनी समस्त दिन की यात्रा समाप्त कर पेड़ों की झुरमुट में जा छिपे, और खग बसेरा लेने के लिये अपने नीड़ों की ओर भागे चले आ रहे हैं। दिन भर का

थका नैनों के पीछे आ रहा है। न जाने कितने दिनों का भूखा राही किसी के मिलन की याद में गृह की ओर लौट चला। समस्त संसार के सम्पूर्ण अंग इस चिर शाश्वत सत्य शान्ति प्रदायिनी संध्या की गोद में विश्राम ले रहे हैं। आओ! ऐसे विश्राम मय वेला में हम सब की संध्या की गोद में बैठकर उस जगन्नियन्ता का स्मरण करें।

ऋषि के शब्दों के साथ सभी ब्रह्मचारियों की पुस्तकें बन्द होने लगी। एक एक करके सभी कुटिया के बाहर निकले कुछ क्षण एवं ऋषि का कुटी-द्वार जो सूना पड़ा था, बटुकों के शत शत शब्द ध्वनियों से गूंज उठा। सभी के पश्चात ऋषि का निष्कासन हुआ। एक एक करके सभी ने नत मस्तक हो अपने अपने गृहों की ओर प्रस्थान किया। क्षण भर में कुटीर वेद पाठियों से शून्य हो गई। वह शून्यता मानों संसार की अन्तिम प्रहर की निस्सारता का सन्देश दे रही थी। ऋषि पैरों में खड़ाऊं पहन, हाथ में कोपीन लेकर पुण्य भागीरथी तट की ओर अग्रसर हुये और क्षण भर में ही कोपीन और कमण्डलु को एक ओर रख

कर जल में अवगाहित हो गये। थोड़ी देर बाद ही सन्ध्या के धूमिल मटमैले वसन के मध्य से ऋषि का प्रणव शब्द गूंज उठा।

÷ × ×

ऋषि समाधि पर जा बैठे। केवल उनका शरीर ही दृष्टिगत हो रहा था। इनमें किसी प्रकार का स्पन्दन शेष न था। उस समाधि में उनकी आत्मा अपने चिर सत्य शाश्वत युग युग तक अमर रहने वाले प्रियतम को ढूंढ रही थी। शनै! शनै! उनके शरीर के रोम रोमांचित होने लगे। देखते देखते ऋषि की समाधि टूटी और पुनः ओ३म शान्तिः! शान्तिः! के मधुर शब्दों से समस्त कानन और उपत्यकायें प्रतिध्वनित हो उठी। किसी अलौकिक प्रेम मिलन से आर्द्र थी और उसके ओठों पर मधुर मुस्कान थिरकने लगी। अपनी दृष्टि को पर्वत की उच्च शिखाओं पर जा टिकाया। उनकी दृष्टि उन शिखाओं से उनकी ऊंचाई को पूंछ रही थी पर वह थी मौन। धीरे-धीरे अपनी दृष्टि को वहां से उतारता हुआ गंगा के कलुषित कलेवर पर जमा दी। वह अथाह नदि के अनेक संकटों के अन्त बहने का संकेत दे रही थी। अंधकार अपने कलित कलेवर को [illegible] में

वृक्षों की ओट के ऊपर जाने का प्रयास कर रहे थे। ऋषि भी अपनी कुटीर की ओर मुड़ चला। क्षणिक दीप से उनका आश्रम आलोकित हो उठा। उनकी निगाहें कृषि की ओर कुछ देख रही थी कि एक करुणा विलाप ऋषि के कर्ण कुहरों में पड़ा। उसकी दृष्टि कुटी के बाहर करुणा-विलाप आदि रेखाओं को ढूंढने लगी और वह ढूंढने में सफल हुई। और दूसरे ही क्षण—ओह! यह क्या! के शब्द उसके मुंह से निकल पड़े। पुनः उसने कहा—

'प्रभु तेरी लीला अपरम्पार है।

अपने घर को उजाड़े एक जीर्ण-शीर्ण नारी अपने मृतक पुत्र को अपनी गोद में लिये विलाप करती गंगा मैय्या की ओर बढ़ी चली आ रही थी। उसके करुणा विलाप से द्रवित हो हिमानी शिखरों के आंसू उपत्यकाओं में ढुलकने लगे। कलावलियों मौन रूप से पुत्र वियोग में टप! टप! कर पत्तों के रूप में आंसू गिरा रही थी। वह गंगा तट पर पहुँच गई। धीरे से उसने गंगा-जल में अवगाहन किया और जल-मध्य वह आगे की ओर बढ़ी। गंगा अपनी भूख को मिटाने के लिये लहलहाते कर उठी। जल उसके कमर तक चढ़ गया। वह नीचे की ओर गंगा-जल पर झुकी और कहा—'लो गंगा मैय्या तुम्हारा लाल तुम्हीं को समर्पित करती हूँ। यह कह कर उसने मृत्यु पुत्र के कफन को छोर लिया और पुत्र को जल से प्रवाहित कर दिया। उसके नेत्रों से झरझर कर आंसुओं की झड़ी बह चली। भगवान सुधांशु उसकी द्रवित करुणा को आँखों से न देख सके क्षण भर के लिये वह बादलों की ओट में जा छिपे। मृतक बालक क्षण भर में ही पतित पावनी प्रगाढ़ प्रखर जल की लहरों में सदैव के लिये अन्तर्लीन हो गया।

दूर पर खड़ा ऋषि यह दृश्य देख रहा था। उसकी आत्मा उस नारी के दुःख जन्य वियोग से द्रवित हो उस ओर बढ़ चली। उसने पास पहुँच कर कहा—

'मां'! 'क्या अब भी मां कोई कहने वाला है! उसने अपना सजल मुख ऊपर उठाया और द्रवित अवरुद्ध कण्ठ से कहा—'बेटा'!

आर्य ने पूछा—'मां' वह बेटा तुम्हारा कितना प्यारा था! उसके बिना तुम आज अकेली हो गई। किन्तु आज तुम अन्तिम समय में उसे कफन न दे सकी! जिस कफन को तुम लिये जा रही हो वह तो 'मृतक के ही अर्थ है।'

'ठीक है बेटा! मेरा लाल मुझे प्राणों से प्रिय था। लाल गया किन्तु वह मेरी लज्जा को छोड़ कर। इसे संसार में किसी तरह ढकना है। मैं गरीब दुखिया हूँ। लाल के अतिरिक्त मेरे पास और कोई न था, आज भगवानने उसे भी छीन लिया। मेरे पास एक धोती थी; उसमें से मैंने आधा फाड़कर, अपने लाल को कफन बनाकर उढ़ाया था। इस आधे कफन को पुनः अपनी धोती में जोड़ लूंगी।' वह आगे कुछ न कह सकी। उसका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। आंसुओं की धारें उसके कपोलों पर बह चलीं।

नारी के नेत्र क्षितिज के दूर जा टिके और क्षण भर में उसके मुख के [illegible]

राष्ट्रीय दीवाली का चिट्ठा

ले०—श्री भूदेव शर्मा एम॰ ए. तिलकनगर, कानपुर

आज दिवाली है—वर्ष का सब से बड़ा पर्व वर्ष के तीन सौ पैंसठ दिनों में यही एक ऐसा शुभ दिवस है जब हमारे हानि, लाभ, की सफलता असफलता की चिट्ठा तैयार होता है। छोटे बड़े सभी व्यापारी अपने कारोबार का लेखा जोखा तैयार करके ही उस दिन लक्ष्मी पूजन की पावन विधि सम्पन्न करते हैं। जिन्होंने वर्ष भर में चार पैसे पैदा किये हैं वे आगामी वर्ष में भी इसी प्रकार सफलता पाने की आशा से दुगने उत्साह से उस वर्ष को मनाते हैं लेकिन जिन्होंने कुछ गाँठ तक की पूंजी खो दी है वह भी उसी उत्साह से उस पर्व को इस आशा से मानते हैं कि भविष्य में वे भूलें फिर न दोहराई जाँय जिनके कारण उन्हें कुछ हानि उठाना पड़ी है। इस प्रकार आज ही वह दिन है जब कि मानव अपने बाहर एवं भीतर के अन्धकार तथा दैन्य की कालिमा को भगाने का सत्प्रयत्न करता है। करोड़ों दीप जो आप सन्ध्या में जगमगाते हैं वे केवल यही चेतावनी देने के लिये कि ये दैन्य को असद्भाव को दूर भगाओ। मानव ओज को जगाओ। अदम्य उत्साह एवं साहस से आगे बढ़ो तभी मानव और उसका समाज सुख, शांति व समृद्धि को स्थाई रूप से पाने का अधिकारी हो सकता।

परतन्त्रता की दशा में हम दुधारू गाय की तरह दुहे जाने के लिये ही बने थे। अपना हित एवं अहित सोचने का न हमें अधिकार था और न समय। किसी नाबालिग सेठ के लड़के को जिस प्रकार अपने चतुर एवं स्वार्थी मुनीम का रूप नेत्रों से मुखापेक्षी रहना पड़ता है उसी तरह हमें भी विदेशी सत्ता का सब दिशाओं में मुँह ताकना पड़ता था। लेकिन आज हम स्वतंत्र हैं आज हमारे देश ने अपनी सरकार है प्रजातन्त्रात्मक शासन प्रणाली है। इस लिये हम भी अपने सब उत्सवों एवं पर्वों को राष्ट्रीय ढंग पर मनाने का अभ्यास डालना चाहिये। अपने व्यक्तिगत हानि लाभ के लेखे जोखे के स्थान पर समष्टि रूप से समूचे देश के हानि लाभ का ब्योरा तैयार करना चाहिये। देश की प्रत्येक गतिविधि में सक्रिय भाग लेना चाहिये। यदि सर्व साधारण इस दिशा में जागरूक न रहे तो फिर ऐसे घातक तत्व पनपने का अवसर पा जायेंगे जो अपने कहलाते हुए भी विदेशी लोगों से भी अधिक क्रूर एवं नृशंस सिद्ध होंगे। दिवाली जैसे शुभ पर्व को सच्चे मानों में मनाने का आज यही प्रकार है कि हम आज के दिन यह देखें कि अपनी सरकार जिस तत्परता से अरबों रुपया जन हित पर व्यय कर रही है वह उन अभागे नागरिकों तक पहुंच भी रहा है अथवा बीच में ही रेगिस्तानी नदी की भांति किन्हीं अनधिकृत क्षेत्रों में तो कहीं नहीं समाया जा रहा है। लोक सभा आदि में प्रस्तुत किये गये बजट में जो जमा खर्च के आँकड़े पेश किये जाते हैं वे बहुधा सच्चाई से दूर एवं भ्रामक ही आंकड़े होते हैं। उन पर ही सदैव विश्वास करते रहे तो एक दिन ऐसा हो सकता है जब कि राष्ट्र की दिवाली का दिन न हो पर हमारे दिवालियेपन का हमारे ह्रास एवं विनाश का दिन हो सकता है। अंग्रेज ऐसे ही माया जाल से भरे आंकड़े दे देकर देश को खोखला कर गये, वही दशा हम आप आज भी देख रहे हैं।

अन्यथा जितना रुपया हमारी सरकार बेकारी दूर करने एवं उद्योग धन्धों के विकास पर प्रथम पंच वर्षीय योजना पर व्यय कर चुकी है उतने रुपया से हमारी कम से कम आधी समस्या तो सुलझ ही गई होती, लेकिन यहाँ दूसरी ही दशा है। पढ़े लिखों में दिनों दिन क्षयरोग की तरह बेकारी बढ़ रही है। जिनके पुश्तैनी धन्धे थे वे ही अब हाथ पर हाथ रक्खे बैठे हैं तो नौसिखिये कारीगरी की तो बात ही क्या।

एक तरफ तो साइन्सज्ञ ताओं की बेहद मांग बताई जाती है दूसरी तरफ हजारों युवक इन्जीनीयरिंग आदि परीक्षा पास हुये बेकार घूम रहे हैं। हां कुछ विभागों के दो चार सौ अफसर व उनके नाते रिश्तेदार अवश्य फल फूल रहे हैं, इन सब बातों से स्पष्ट विदित होता है कि हमारी सरकार की मशीनरी में कहीं दोष है ऐसे दोषों का पता लगाने के लिये ही तो दिवाली जैसा पर्व हमारे यहाँ मनाया जाता है। प्रसिद्ध है कि कुशल व्यापारी रोकड़ की मिलान मिलाने के लिये एक-एक पैसे के अन्तर को जानने के लिये चार-चार आने तक का तेल दीपक में जला देता है और आठ आठ घण्टे अपने अमूल्य समय को नष्ट कर देता है लेकिन वे ही नागरिक अपने राष्ट्र के अमूल्य धन को नष्ट होते देखते हुये भी यह जानने एवं समझने का प्रयत्न नहीं करते कि ऐसा क्यों हो रहा है और यह फूटे लोटे का छिद्र कैसे बन्द किया जा सकता है। हमारे समाचार पत्र भी दीवाली अंक बड़ी सज-धज के साथ रंग बिरंगे एवं सुहावने रूप में निकालते हैं। उनमें दीवाली के ऐतिहासिक व पौराणिक महत्व आदि विषय के अनेक लेख रहते हैं लेकिन राष्ट्र के लिये इस प्रकार के परम आवश्यक तत्वों पर कोई भी ध्यान नहीं देता।

हम वस्तुतः चाहते यह है कि हमारा यह त्यौहार खील खेलौनों व पटाखों मात्र का त्यौहार न रह कर सच्चे मायनों में हमारे राष्ट्र के हानि-लाभ का, हमारी सफलता एवं असफलताओं का सच्चा खाका खींच कर हमारी वास्तविक स्थिति का परिचय देने वाला त्यौहार हो, और इस दिन सभी सम्भ्रान्त जन-सेवियों का यह पुनीत कर्त्तव्य हो कि वे बिना किसी भय एवं संकोच के राष्ट्र के कर्णधारों के गुण दोषों का निष्पक्ष भाव से समीक्षण तथा पर्यालोचन करें—

> हम वस्तुतः चाहते यह हैं कि हमारा यह त्यौहार खील खेलौनों व पटाखा मात्र का त्यौहार न रह कर सच्चे मानों में हमारे राष्ट्र के हानि लाभ का हमारी सफलता एवं असफलता का खाका खींच कर हमारी वास्तविक स्थिति का परिचय देने वाला त्यौहार हो और इस दिन सभी सम्भ्रान्त जन सेवियों का यह पुनीत कर्त्तव्य हो कि वे बिना किसी भय एवं संकोच के राष्ट्र के कर्णधारों के मुख्य दोषों का निष्पक्ष भाव से समीक्षण तथा पर्यालोचन करें।
>
> —लेखक

उधर अपनी राष्ट्रीय सरकार का भी यह कर्तव्य हो कि वह ऐसी आलोचनाओं को भले ही वे कटु हो, पूर्ण मनोयोग से अध्ययन एवं निरूपण करे और तदनुसार उनको दूर करने का भरसक प्रयत्न करे। इससे हमारा तात्पर्य सरकारी कार्यवाही में पदे-पदे बाधा डालने का नहीं है। हम केवल इस प्रकार से राष्ट्र की जागरूकता के ही पक्षपाती हैं। क्योंकि कितना ही विद्वान एवं ज्ञानी पुरोहित हो, मूर्ख यजमान को पाकर प्रमादी हो ही जाता है। राष्ट्र और उसके नागरिकों का जीवन भी एक यज्ञ ही है। जिसमें यजमान रूप जनता के मूर्ख रहने एवं अपने हित अनहित की तरफ से उदासीन होने पर यह सम्भव ही नहीं निश्चय है कि ये अधिकारी तत्व जिनके हाथ में देश की बागडोर है वे स्वार्थी तथा भ्रान्त हो जाय। इसी दोष की रोकथाम के लिये दिवाली जैसे त्यौहार का किसी देश में मनाये जाने की परम्परा होती है। उनको ठीक दिशा में मनाने का भार उस समय के जागरूक नागरिकों पर ही होता है। इसी स्वभाव एवं अभ्यास को हमारे पुनीत वेद वाक्य में कहा है कि तमसो मा ज्योतिर्गमय अर्थात हे प्रभु! मुझे अन्धकार से प्रकाश की तरफ ले चल।

कहना अनुचित नहीं होगा कि दिवाली इसी भाव का मूर्तिमान् रूप है।

संसार सुधारक की जय

(श्री पूर्णचन्द्र एडवोकेट, प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश)

आज मानव संसार भौगोलिक दृष्टि से अनेकों देशों में विभाजित है और राजनैतिक दृष्टि से अनेकों राष्ट्र जगत में उपस्थित हैं प्रत्येक राष्ट्र की अपनी सत्ता स्वतन्त्र रूप से बनाये रखने के लिए प्रबल इच्छा और भावना है, विज्ञान ने सारे देशों और राष्ट्रों में जो जल और थल के आधार पर सीमाएं थीं, उनको उल्लंघन की सामर्थ्य प्रत्येक को प्रदान कर दी है, समस्या यह है कि प्रत्येक राष्ट्र के लिये यह अनिवार्य है कि दूसरे राष्ट्रों की इच्छा और भावना का आदर करे, परन्तु भावनाओं का आदर उस समय तक सफलता से नहीं हो सकता, जब तक इस अनेकता को एकता का रूप देने के लिए कोई आधार हो, भारत के प्रधान मन्त्री ने देशदेशान्तरों में भ्रमण किया और अन्य राष्ट्रों के राष्ट्राध्यक्ष प्रतिनिधियों का यहां निमन्त्रित किया उनका लक्ष्य एक समान था, परस्पर मिलकर चलने की भावना (को एक जिस्टेम) को प्रोत्साहन देना है राजनीतिक दृष्टि से उसकी प्रसारित भावना का लक्ष्य युद्ध की सम्भावना का अन्त करना है और शांति स्थापित करना है, युद्ध की भावनाओं को नष्ट करने के लिये अस्त्र और शस्त्रों पर नियंत्रण के उपाय सोचे जा रहे हैं, परन्तु आश्चर्य यह है कि जितना इस भावना का प्रचार हो रहा है, उतने ही स्थानों में युद्ध के बादल मंडरा रहे हैं, जो राष्ट्र छोटे या बड़े इस समय पराधीन हैं, चाहे उपनिवेश के रूप में ही चाहे किसी अन्य रूप में, उनको युद्ध के रोकने की बात उचित प्रतीत नहीं होती, वे युद्ध के विरुद्धप्रचार को यह समझते हैं कि उनकी दासता को स्थायी रूप प्रदान किया जा रहा है, यदि युद्ध को वास्तविक रूप से रोकना है और अनेक देशों और राष्ट्रों को एक सूत्र में बांधना है, तो बाह्य रूप रेखा से हटकर अन्तर में पैठना होगा। (को एक जिस्टेम) में दो शब्द हैं, और सत्ता एक जिस्टेस शब्द बड़ा महत्व का है इसका अर्थ समझ लेने से 'को' की परिभाषा भी, अर्थात् परस्पर सम्बन्ध की परिभाषा भी समझ में आ जायगी, सत्ता जीवन प्रत्येक व्यक्ति के लिए दो रूप रखता है, एक उसका शरीर है और दूसरा उसके अन्दर चेतन सत्ता आत्मा है. केवल शरीर पर दृष्टि रखने से, रूप, रंग, लिंग, देश विदेश, भाषा, धनवान और निर्धन ये सब मान्यताएं सम्मुख उपस्थित होती हैं, ये शरीर के आधार पर भेद नैसर्गिक हैं, स्वाभाविक हैं और अनिवार्य हैं, इन भेदों को मिटाया नहीं जा सकता, रंग की दृष्टि से संसार में काले, गोरे, अंधे, और बूढ़े के भेद को नहीं मिटाया जा सकता, सम्भव है गोरों का कोलतार से कुछ समय के लिये मुंह काला किया जा सके, पर अभी तक ऐसा कोई साबुन नहीं निकला, जिससे काले हब्शी युरोपवालों के समान गोरे रंग के बनाए जा सकें। स्त्री और पुरुष का भेद भी नैसर्गिक है, कभी कभी समाचार पत्रों मे लिंग परिवर्तन के समाचार पढ़ने को मिलते हैं, परन्तु किसी एक या दो व्यक्तियों का लिंग परिवर्तन हो भी जाय, तो भी लिंग का भेद नहीं मिट सकता, यही दशा भाषा के भेदों की है, यदि इन भेदों को मिटाने का प्रयत्न होगा, तो मिटाने वाले स्वयं मिट सकते हैं और भेदों की खाई और गहरी होती जायगी, प्रश्न यह है कि भेद मिटाने का व्यर्थ प्रयत्न न कर भेदों को इस रूप से देखा जाय, जिससे वे अनेकता के रूप में प्रचलित रहते हुए एकता में बाधक न हों, इसके लिए केवल एक उपाय है कि व्यक्तियों में आत्मवत् सर्वभूतेषु की भावना प्रसारित की जाए, यदि व्यक्ति अपने को आत्मिक दृष्टि से देखेगा तो उसका सम्बन्ध मनुष्य मात्र से प्रेममय और एकता का हो जावेगा, और यदि वह अपनी दृष्टि को अधिक विस्तृत करले, तो उसका प्रेममय सम्बन्ध प्राणी मात्र से स्थापित हो जावेगा, आत्मिक भाव से देखने के स्वभाव को आध्यात्मिक दृष्टिकोण समझना चाहिये, इसी का नाम आत्मिक उन्नति है, यही आत्मिक बल है, जब व्यक्ति अपने को आत्मिक दृष्टि से देखने लगेगा तो उसके अन्दर ब्रह्माण्ड में एक व्यापक आत्मा देखने की भावना उत्पन्न होगी और जब व्यक्ति अपने पिंड में आत्मा की सत्ता को अनुभव करने लगे और ब्रह्माण्ड में परमात्मा की सत्ता को, तो सारा प्राणी जगत एक सूत्र में बंध जायगे, जिसकी पृथ्वी माता होगी और ईश्वर पिता और सारा संसार के उसके म बंध जायेंगे, जब माता और पिता की भावना न हो, केवलमातृभूमि का प्रचार एक कहने मात्र की चीज है, प्रचार की चीज है, क्रियात्मक रूप उसका नहीं है, महर्षि दयानन्द इस देश विदेश की समस्या को सदैव के लिए समाधान करना चाहते थे और उन्होंने दिव्य दृष्टि से आर्य समाज के नियमों में छठा नियम यह रखा कि संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है आज दोनों महायुद्धों से नाश को प्राप्त होकर सारे राष्ट्र और संसार के बहुत से विचारक (वर्ल्ड फेडरेशन) संसार का संगठन और (वर्ल्ड गवर्नमेंट) संसार का सचालन (वर्ल्ड कोर्ट) संसार की न्याय व्यवस्था और (वर्ल्ड आर्मी) संसार की सेना के स्वप्न देख रहे हैं परन्तु ये सारे स्वप्न पूरे नहीं हो सकते, जब तक संसार की परिभाषा निर्धारित न हो जाय, संसार या जगत् परिवर्तनशील है, परन्तु इसमें एक स्थायी सत्ता विद्यमान है, विदेशी भाषा में सारे संसार को यूनीवर्स कहते हैं, यूनीवर्स शब्द का अर्थ है, सबको एक मानना, परन्तु जब तक उस 'यूनी' अर्थात् एक का पता न हो, तो विज्ञान वालों का संसार और राजनीतिज्ञों का संसार, अर्थशास्त्र वालों का संसार यूनीवर्स नहीं हो सकता, वह डाइवर्स अर्थात् एक से अधिक या मल्टीवर्स अर्थात् बहुत रूप वाला हो सकता है, यूनीवर्स केवल वही समझ और समझा सकते हैं, जो उस एक सत्ता में विश्वास रखते हैं, जो सारे विश्व को सचालित करती है, जिस प्रकार एक यूनीवर्सिटी के लिये एक चांसलर होना अनिवार्य है, उसी प्रकार विश्व के लिये एक सचालक होना अनिवार्य है। आज यदि हमारे प्रधानमंत्री अपने प्रचलित और प्रसारित भावना को क्रिया रूप देना चाहते हैं, तो उन्हें अपने दृष्टिकोण को विशाल, गम्भीर बनाकर महर्षि के समीप आना होगा,

आज और आवश्यक, सत्य धर्म को [illegible] चाहते हैं, उसके इन विचारों की पुष्टि इनका मौलिक और क्रियात्मक रूप महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में स्पष्ट किया है, महर्षि दयानन्द [illegible] का अन्त करके एक धर्म की स्थापना चाहते थे। जन्म सूचक जातियों को नष्ट करके केवल कार्य विभाजन के लिए चार वर्णों की स्थापना चाहते थे। जिनमें जन्म के आधार पर कभी किसी प्रवेश सम्भव नहीं था, प्रवेश केवल गुण कर्म स्वभाव के आधार पर ही हो सकता है। परिस्थितियों के कारण हमारे प्रधानमंत्री महर्षि के पास आते जा रहे हैं। उनको और उनके साथ के कार्यकर्ताओं को यदि अपनी विचारधारा को सफलतापूर्वक क्रियात्मक रूप देना है, तो उन्हें अपनी दृष्टि को आध्यात्मिक रूप देना होगा। अब समय है कि प्रत्येक विचारक आत्मा और परमात्मा के गुण कर्म स्वभाव को समझे। जहां विज्ञान बड़े संसार को छोटा और छोटा बना रहा है और एक दूसरे के समीप ला रहा है, वहां आध्यात्मिक दृष्टिकोण को अपनाना ही एक उपाय है जिससे समीप आते हुये सम्पर्क बढ़ते हुये संघर्ष की भावना कम हो जायगी। संघर्ष की भावना तभी कम हो सकती है, जब सम्पर्क का प्रश्न आने पर यह भावना आ जाये कि जो दो समुदाय या दो व्यक्ति, दो देश या दो राष्ट्र एक दूसरे के सम्पर्क में आ रहे हैं, उनको एक सूत्र मे जोड़ने का आधार क्या है। अब संपर्क रोका नहीं जा सकता। विज्ञान ने संपर्क का रोकना असम्भव कर दिया है। जितना संपर्क का रुकना असम्भव हुआ है उतना ही संघर्ष संभावित होता जा रहा है। महर्षि दयानन्द संपर्क की विधि के निर्माता और संघर्ष के विष के निवारणकर्ता थे। उनकी परिभाषा में युद्ध भी अपनी उपयोगिता और आवश्यकता रखते थे। निर्बलों की रक्षा के लिये, अत्याचारियों के अत्याचार को दमन करने के लिये, नियमों के उलंघन करने वालों के लिये भय की भावना और आतंक की भावना भी आवश्यक है। केवल अहिंसा के प्रचार दुष्ट, क्रोधी, अत्याचारी अपने कुमार्ग को नहीं छोड़ सकते। अहिंसा का सम्बन्ध भी भावना से है। अहिंसा का अर्थ वैर त्याग है। इस दृष्टि से भी अध्यात्मिक विचारधारा को ही पुष्ट करना है और सार्वभौम रूप देना है। आज उनके पवित्र अवसर पर मैं संसार के

> संसार सुधारक महान् महर्षि के अपूर्व कार्यों से क्रांति की जो आधार शिला रखी गई थी, उसने युग निर्माण का आरंभ किया। उस महापुरुष के निर्वाण दिवस पर उनके आदर्शों का पालन हम सभी करें यही उनकी जय मनाने का एक मात्र प्रकार है!
>
> —सम्पादक

महर्षि के महान् जीवन की एक झलक

(लेखिका—श्री सावित्री देवी, जयपुर)

सम्वत् १८८१ का कम्न है वह शुभ दिन और वह शुभ घड़ी, जब पश्चिम भारत के एक सम्पन्न ब्राह्मण कुल में इस तेजस्वी बालक का जन्म हुआ। बालक परम सुन्दर और होनहार तो था ही।

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' की उक्ति के अनुसार इन प्रतिष्ठित माता पिता की स्नेहमयी छाया में दिन प्रति दिन चन्द्रकला के समान निश्चित और द्रुतगति से उस विलक्षण बालक का शारीरिक और मानसिक विकास होने लगा। बालक का नाम 'मूल शंकर' रखा गया क्योंकि वह परिवार शैव था उसके माता पिता कट्टर शिव भक्त थे।

शैशवावस्था के प्रारम्भ में ही शीघ्र उसका यज्ञोपवीत हो गया, तब ही संस्कृत शिक्षा के साथ-साथ उस कुशाग्र बुद्धि बालक ने अल्प काल में ही पूर्ण यजुर्वेद कण्ठस्थ कर लिया। उसके शिव-भक्त पिता उसे कैलाशनाथ महादेव की कथायें श्रद्धा भक्ति सहित सुनाया करते थे।

इसी कारण दस या ग्यारह वर्ष की अल्पायु में ही उसे प्रथम बार शिवरात्रि का कठिन व्रत कराया गया। ममतामयी माता ने इसका विरोध भी किया लेकिन पिता का आदेश उस सुकुमार किन्तु दृढ़ व्रती बालक को शिरोधार्य था। बालक ने पूर्ण श्रद्धा सहित व्रत रखा। सायंकाल अपने श्रद्धालु पिता तथा अन्य भक्तजनों के साथ वह टंकारा ग्राम के सब से बड़े शिव मन्दिर में पहुँच कर मगन मन शिव की विधिवत पूजन करता है। पश्चात् घंटे घड़ियालों के तुमुलनाद के साथ साथ भगवान शंकर की आरती का भव्य दृश्य उसके सामने उपस्थित है। इसी कोलाहल के बीच 'हर हर महादेव' तथा 'बम भोला' का उच्च घोष भी बार बार सुनाई पड़ रहा है।

बालक चकित सा सरल भाव से मानों उस भक्ति सरिता में बहा जा रहा है पूर्ण तन्मयता से। कुछ ही समय के बाद वातावरण शांत हो जाता है और भक्तजन महाशिव रात्रि के जागरण के लिये तत्पर हो जाते हैं। साथ ही सोत्साह भजन कीर्तन प्रारम्भ होते हैं। रात्रि का प्रथम प्रहर समाप्त होते २ वह उत्साह मंद सा प्रतीत होता है।

दयामयी निद्रा देवी भक्तों को भूखे प्यासे थके जान मानों गोदी में लिया चाहती हैं। अर्ध रात्रि पर्यन्त वह समस्त भक्त मंडली लेटे बैठे किसी प्रकार उनकी सुखद गोद में आ पहुँचती हैं।

केवल बालक मूल शंकर निद्रा को दूर भगा अकेला जागरण व्रत का दृढ़ता से पालन करता हुआ भगवान शिव के सतत दर्शन कर रहा है।

एक शान्त निस्तब्धता छाई हुई। इसी के बीच उस सरल साधना में संलग्न बालक देखता है कि उस भेंट पूजन की प्रचुर सामग्री के ढेर पर कहीं से एक चूहा आ गया है और निर्भयता पूर्वक ऊपर नीचे कल्लोल करता हुआ भगवान के उस भोग का आस्वादन कर रहा है।

बालक आश्चर्य और महान आश्चर्य में डूब जाता है। अकस्मात् एक विद्युत की लहर उसकी आत्मा को स्पर्श करती है। उस घोर विस्मय के बीच उसके मन में प्रश्न उठता है। ओह, जिनके एक चरणपात से सृष्टि की रचना, पालन और संहार होता है वह महा शक्तिशाली रुद्र क्या यही है? एक चूहे को भी नहीं हटा सकते। नहीं? यह प्रतिमा चराचर के स्वामी शिव नहीं है। यह तो केवल जड़, मिट्टी पाषाण प्रतिमा है। भगवान् की शक्ति से सर्वथा रहित, फिर वह सच्चे शिव कहां हैं? इन्हीं जिज्ञासाओं का स्रोत सा उमड़ आता है मूलके सरल और पवित्र हृदय में।

वह तत्काल अपने पिता को जगा कर अपनी शंकाओं को मिटाने की चेष्टा करता है। लेकिन पिता सन्तुष्ट करने में असफल रहते हैं। असन्तुष्ट बालक अश्रद्धा में बहता हुआ उसी समय अकेला अपने घर आ पहुँचता है।

स्नेहमयी माता उसके संशयों की उपेक्षा सी करती हुई उसकी इच्छानुसार कुछ भोजन करा देती है।

बालक की दिव्य शक्तियां बोध रात्रि की इस ज्योति में चमक उठती है। और उसे सतत जिज्ञासा और शंकायें घेरे रहती हैं।

सहृदयजन,

उस अनूठे बालक मूल शंकर के मन की अशांति व जिज्ञासा कुछ दिन की अथवा कुछ काल की अस्थिर वस्तु न थी। निरन्तर जलने वाली दीपशिखा के समान वह दिव्य ज्योति जो उसी क्षण से उसके हृदय में प्रदीप्त हो चुकी थी उसकी जगमगाहट ज्यों की त्यों थी। वह अमर ज्योति समय के साथ साथ अधिकाधिक विकसित और चमत्कृत होती गई। वह सच्चे शिव को जानने की जिज्ञासा और उसकी प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा उसे सतत आतुर और अशांत रखती थी।

इसी बीच विगत कुछ वर्षों में बालक मूल शंकर की सरल और निश्छल आत्मा को (जो कि आवश्यक हो चला था) दो महान् आघात सहन करने पड़े। पहिला उसकी स्नेहमयी छोटी बहिन का सर्वदा के लिए बिछोह था जो कि उसे बहुत था। सारा घर रो रहा था वह चकित खड़ा देख रहा था यह क्या हो गया? मीठी मीठी बातें करने वाली भोली भाली बहिन कहां चली गई?

इसके दो या तीन साल बाद ही उसके वात्सल्य पूर्ण चचा, जो कि पिता के समान ही उससे स्नेह करते थे, इस अनन्त यात्रा के पथिक बन गये। उस कुहराम के बीच वह देख रहा था मृत्यु का निष्ठुर ताण्डव किस प्रकार वह मानव हृदयों पर अपनी काली छाया डाल कर उन्हें घोर आहत और शोक मग्न कर देता है। इस विश्व रंगमंच का वह सच्चा और अवश्यम्भावी दृश्य था। जिसे कि साधारणतया मनुष्य आंखों से ओझल ही रखा चाहता है, केवल उसकी विभीषिका ही कभी २ स्मरण मात्र से उसके प्राणों को कंपा देती है अस्तु।

संसार के उस सत्य स्वरूप को देख कर मानवता के इस दुर्जय शत्रु को जीतने के लिये वह कटिबद्ध हो जाता है।

मैं मृत्युञ्जय बनूँगा, कहां इससे विजय मिलेगी? कहां अनन्त शान्ति अनन्त अमरत्व की प्राप्ति होगी? उसी क्षण से उसे इस हाहाकार भरे संसार से घृणा हो जाती है। उसकी ज्ञान पिपासा कई गुना जागृत हो कर उसके मस्तिष्क में मन्थन करने लगती है।

उसके हृदय में स्थित सतत आज्वल्यमान ज्योति में इन घटनाओं ने दो महा आहुतियों का काम किया और वह दिव्य ज्योति बड़े वेग से प्रज्वलित हो उठी। अब उसका घर के वातावरण में बंधे रहना असंभव था।

[शेष पृष्ठ १० पर]

महर्षि दयानन्द के प्रति

तुमने आकर हमें जगाया॥
जीवनहीन जानता था जग,
तुमने हमें सजीव बनाया।

हम अनार्य होते जाते थे,
विशेषता खोते जाते थे,
आत्म विस्मरण की धरती में
मरण-बीज बोते जाते थे।
आर्य भाव लेकर आये तुम,
तुमने आर्य समाज बनाया।
तुमने आकर हमें जगाया।

नारी को विद्या बल देकर,
अछूतों को कर में लेकर,
तुमने प्रगति प्रदीप जलाया
भारत के बन्धन ढीले कर।
आये हम मानव श्रेणी में
नव उन्नति का पाठ पढ़ाया।
तुमने आकर हमें जगाया।

श्रम मत त्याग लेकर तुम आये,
साहस के आगार दिखाये,
तेज तथा उत्साह निराला
तुम्हें देख कर हमने पाया।
सैनिक हमें बनाया तुमने
जीवन रण संघर्ष सिखाया।
तुमने आकर हमें जगाया।

विश्ववाद वेला बीती थी,
अमृत भरी प्याली रीती थी,
विष के घूंट विधर्मी कर से
भारत माँ व्यथिता पीती थी।
अनाचार अस्वीकृत करने—
के हित तुमने बिगुल बजाया।
तुमने आकर हमें जगाया।

विष पीकर भी बने अमर तुम,
जग में जीवित हो मरकर तुम,
भारत अन्धकार हरने को
सतत प्ररणा रत दिनकर तुम।
भरते रहो उमंग हृदय में
किये रहो नित सिर पर छाया।
तुमने आकर हमें जगाया।

—गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'

(पृष्ठ १९ का शेष)

"पौर्णमास" यज्ञों की परम्परा, जिसके कि कारण एक साथ तीन दिन अध्ययन का अवकाश रहता था। क्योंकि चतुर्दशी को छात्र समिधा व सामिग्री तथा कुशा आदि का प्रबन्ध करते थे, उस दिन भी वे यदि पाठ पढ़ते रहते, तो वे कैसे उस पाठ को याद कर पाते, अत. उस दिन का अनध्याय होना ठीक ही था। दूसरे दिन अमावास्या या पूर्णमासी को दोनों गुरु शिष्य क्रमशः दर्श और पौर्णमास यज्ञ करते थे, जो कि मध्याह्न तक तक समाप्त हो पाता था, उस दिन पढना पढाना दोनों के लिए असम्भव था, अत उस दिन का भी अनध्याय युक्ति युक्त ही था। उसके दूसरे दिन प्रतिपद् को विश्राम तथा गृह एवं आश्रम सम्बन्धी लौकिक कृत्यों को गुरु और शिष्य करते थे, अत. उस दिन का भी अनध्याय न्याय सङ्गत ही सिद्ध हो जाता है, ऐसा मानने से वह परम्परागत मन गढन्त 'अष्टमी गुरुन्त्री च" इत्यादि श्लोक भी सगत हो जाता है, और हमारी संस्कृत पाठशालाओं में संस्कृतज्ञ विद्वानों के माने हुए अनध्याय भी युक्तिपूर्ण सिद्ध हो जाते हैं। तथा कर्मकाण्डियों का यह कहना कि कार्तिक कृष्ण पक्ष अमावास्या को मनाया जाने वाला दीपावली महोत्सव "दर्श यज्ञों' के विशुद्ध महोत्सव का दिन है इत्यादि, यह भी युक्तियुक्त और तर्क सङ्गत सिद्ध हो जाता है।

परन्तु यह कहना कि इस दीपावली महोत्सव के दिन जुआ खेलना धर्म है या शास्त्रीय विधान है, यह उन ऐसा कहनेवालों की अज्ञानता की पराकाष्ठा का द्योतक है भारतीय जनता को कहनेवाले पण्डितों के फन्दे में नहीं फंसना चाहिये, तथा ऐसे पण्डितों का वाणीमात्र से भी सत्कार नहीं करना चाहिये।

अपि च पूर्वोक्तप्रकार से यह कहना कि यह चार दिन यम, लक्ष्मी, गोवर्धन तथा यमराज की बहिन के दिवस हैं इत्यादि, यह भी पुराणादि नाम से प्रसिद्ध कपाल कल्पित अभिनव सांप्रदायिक ग्रन्थों की गाथा है, अतः भारतीय जनता को इस भुलावे में भी नहीं आना चाहिये। भला सोचिये तो सही, दीपावली के दिन घृत के दीपक में चांदी का रुपया रख देने से या मिट्टी की लक्ष्मी की मूर्ति लाकर पूजने से क्या किसी के घर लक्ष्मी आज तक आई ? यदि ऐसा होता तो श्रेष्ठ(सेठ) जन तो उस एक दिन में ही करोडपति और अरबपति हो जाते। परन्तु आज तक किसी भी भारतीय जन ने उस घृत के दीपक में पडे एक रुपये के दो रुपये होते भी नहीं देखे। अधिक तो क्या, अतः ऐसे पण्डितों के भ्रमजाल में आर्यावर्त वासी निवासिनी आर्य जनता को नहीं पड़ना चाहिये। कोई प्रबल प्रमाण न होने से यह भी नहीं कहा जा सकता कि यह लंका विषयक जीत सम्बन्धी राम का विजय महोत्सव है इत्यादि।

अतः आर्यसमाज इन सब बातों पर विश्वास न करता हुआ ऋषियों के बताये हुए अपने प्राचीन वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार इस दिन बृहद्यज्ञ की रचना करता है, तथा प्रत्येक आर्य नर नारी आर्ष परम्परा के अनुसार उस बृहद्यज्ञ के उपरान्त 'भद्रं कर्णेभिः' इत्यादि वेदमन्त्रों द्वारा उस परम पिता परमात्मा जगन्नियन्ता जगदीश्वर से अनवरत यह प्रार्थना करता है कि हे प्रभो ? यह समग्र विश्व सब प्रकार से सुखी और समृद्धिशाली हो, हम समस्त दुर्गुणों से दूर हो सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझें ! तथा सदा वेद-पथ का अनुसरण करते रहें इत्यादि।

आर्य समाज के लिए यह दिन इस लिए भी अत्यन्त स्मरणीय है कि जैसे दिवाकर अपनी प्रदीप्त प्रकाशमयी किरणों से रात्रि सम्बन्धी गाढ ध्वान्त को ध्वस्त कर सुललित वाटिका के मनोज्ञ निकुञ्ज में सुस्थित सुशोभित कमल को विकसित कर सायंकालिक वेला में अस्ताचल पर्वत के शिखर पर लीन हो जाता है, ठीक उसी प्रकार आज दीपावली महोत्सव के दिन सायंकालिक वेला में उस आर्ष वैदिक ज्ञान का देदीप्यमान पुण्यमय प्रखर भास्कर प्रातः स्मरणीय आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि स्वा० दयानन्द सरस्वती अपनी विज्ञानमयी प्रकाशयुक्त ज्ञान ज्योति रूप किरणों से लौकिक पाखण्डमय अज्ञान रूप गाढ ध्वान्त को आमूल ध्वस्त कर भारत भू रूप वाटिका में सुसज्जित विराजमान भारतीय आर्य जनों के प्रेमास्पद मनोहर हृदय कमलों को प्रफुल्लित कर समस्त जनता के देखते-देखते अस्ताचल के समान इसी भारत वसुन्धरा के एक खण्ड में ओङ्कार का जप करते हुए सदा के लिए लीन हो गया था।

अतः आर्य जनता आर्य समाज मन्दिरों में तथा अपने-अपने निवास स्थानों में आज दीपावली के सायंकाल के समय महर्षि स्वा० दयानन्द सरस्वती सम्बन्धी निर्वाण दिवस भी मनाती है। इस प्रकार याज्ञिक प्रक्रिया की दृष्टि से तथा निर्वाण दिवस की दृष्टि से यह दीपावली समस्त आर्य जनता के लिए परमोपयोगी एवं अत्यधिक स्मरणीय है। ऐसा न करने वालों के लिए इसका कोई उपयोग नहीं है। ✻ ✻

अग्ने नय सुपथा

(श्री सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम० ए० एल० टी० डी० बी० कालेज गोरखपुर)

अज्ञान के अन्धेरे को दूर भगाने वाले वेदों की ज्योति जगाने वाले, संसार के कुपंथ मतों को दिखाने वाले, भारत के सामाजिक, धार्मिक, पारिवारिक और राजनैतिक कष्टों के निवारक, गोरक्षक, स्वराज्य के सरल मार्ग द्रष्टा, मुसलमान और ईसाइयों के भ्रमों को चूर करने वाले विधवाओं का आर्तनाद सुनने वाले, ऊँच-नीच का भेद मिटा कर दलितों का उद्धार करने वाले, निराशों के हृदय में आशा का सूर्य उदय करने वाले महर्षि दयानन्द का अमावस्या की रात्रि में दीपावली के दिन शरीरान्त हुआ। आज हम आर्य समाजी स्वामी जी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने को उद्यत हैं। आर्य समाजें स्वामी जी के लिए सभायें कर रही हैं वहां पर बड़े जोशीले भाषण दिए जा रहे हैं, आर्य समाज के अखबार अपने विशेषांक निकाल रहे हैं। पर क्या सचमुच यह हमारी श्रद्धांजलि ऋषि की आत्मा को संतोष पहुंचा सकेगी, क्या यह श्रद्धांजलियाँ उसके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होंगी। यह हमें विचारना है। आर्य समाज आर्यों का समाज है। अतः स्वामी जी महाराज को हमें वह श्रद्धांजलि अर्पित करनी चाहिये जिस से आर्यसमाज का संगठन हो और वह अपने उद्देश्य के निर्माण में आगे बढ़ सके। पर यह एक कटु सत्य है कि आज आर्य समाज के सदस्यों का कार्य या आर्यसमाज के सिद्धान्तों का उद्देश्य नहीं रह गया है, बस उनके सामने केवल आर्य समाज का कोई अधिकारी होना ही एक मात्र उद्देश्य बच गया है। परिणाम यह हो रहा है कि आर्य समाजों में संघर्ष बढ़, पार्टीबाजी, वैमनस्य, व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन निर्माण का कृष्ण पक्ष दिखाई दे रहा है। ऐसा क्या है? हमारी समझ में इसके दो मुख्य कारण हैं, एक तो संस्थाधर्म या संस्थावाद है। आज कल 'वाद' शब्द का जोर है अतः संस्थावाद की भी हम यहां पर थोड़ी व्याख्या कर देना चाहते हैं। आर्य समाज ने बड़े आदर्श और उत्तम उद्देश्यों को लेकर संस्थायें खोलीं, आर्यकन्या पाठशाला डी. ए. वी. स्कूल, गुरुकुल आदि। परन्तु यह संस्थायें थोड़े दिनों तक बहुत आदर्शों को लेकर चली पर जल्दी ही व्यापारिक धर्म की दुकानें होगई। इनके संचालकों को नाम और धर्म दोनों ही प्राप्त होने लगे और इन संस्थाओं में प्रवेश पाने का कार्य यही रह गया कि स्वयं तथा अपने इष्ट मित्रों के साथ आर्य समाज में घुसा जाय और वहां अपना बहुमत करके आर्य समाज पर अपना नियंत्रण किया जाय और उसके अधिकारी बन कर स्वयं तथा अपने मित्रों को भी उससे फायदा पहुंचाया जाय। इस प्रकार जब उस संस्था पर अधिकार हुआ तो क्योंकि उन व्यक्तियों में आर्य समाज के प्रति कोई विशेष उच्चभावना नहीं थी अतः या तो उन्होंने उस संस्था को आर्य समाज से पृथक् किया अथवा आर्य समाज और उस संस्था में रह कर अपना उल्लू सीधा किया। परिणाम यह हुआ कि दूसरे दल और उस दल में इस बात की होड़ होने लगी कि उस संस्था पर कैसे अधिकार हो। चाहिये तो यह कि दोनों दलों में यह होड़ होती कि जनता की कौन अधिक सेवा करेगा, आर्य समाज के संगठन, उद्देश्य प्रचार और उसके कार्यों को कौन बढ़ायेगा पर हुआ ठीक इससे उल्टा। या तो आर्य समाज से संस्था निकल गई या आर्य समाज में रहते रहते हुए उस पर आर्य समाजियों का अधिकार नहीं रहा। अतः भविष्य में इस दोष को दूर करने लिए हमें ईसाइयों की संस्थाओं की ओर दृष्टि पात करना चाहिये और उनके समान इन संस्थाओं पर प्रांतीय प्रतिनिधि सभाओं का अधिकार एवं नियंत्रण होना चाहिये। इसका एक बड़ा उत्तम प्रभाव यह होगा कि प्रतिनिधि सभा में तो सारे प्रांत से प्रतिनिधि आते हैं वहाँ किसी स्थानीय आर्य समाज में स्वार्थ के लिए किया गया बहुमत कोई प्रभाव न डाल सकेगा। मेरा यह कहने का मतलब नहीं कि स्थानीय संस्थाओं का सचालन प्रतिनिधि सभा करे परन्तु उसका नियंत्रण उसके हाथ में हो। वह सदस्यों को चुने, वह अपनी नीति निर्धारित करे और उसका कठोरता से पालन करवाए। आर्य समाज की शिक्षण संस्थाओं के प्रधानाध्यापक और प्रधानाध्यापिकाएँ आर्यसमाजी होनी चाहियें।

इसी प्रकार प्रधान और मंत्री पद के लिए भी आर्यसमाजों में भयंकर तनातनी और पारस्परिक द्वेष पूर्ण वातावरण हो जाता है। समझ में नहीं आता कि संसार को विश्व बन्धुत्व का पाठ पढ़ाने वाला आर्य समाजी अपने बन्धु से, समान उद्देश्य रखने वाले से कैसे द्वेष करने लगता है। 'मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा' अर्थात् भाई भाई से, बहन बहन से द्वेष न करें, इस वैदिक उपदेश का प्रदाता और श्रोता क्यों हीन संघर्ष के लिए उतारू हो जाता है? यह हमें सोचना है और इसको दूर करने का उपाय भी। इसके लिए भी मेरा एक सुझाव यह है कि आर्य सदस्य जिन जिन व्यक्तियों को प्रधान या मन्त्री चुनना चाहें, चुनाव के दिन उनका नाम प्रस्तावित एवं समर्थित कर दें। अब जिन जिन व्यक्तियों के नाम उपर्युक्त पदों के लिए आयें वे सब एकट्ठे बैठ जाएं और सदस्यों का वोट न लेकर उन व्यक्तियों से कहा जाय कि वे सर्व सम्मति से अपने में से किसी व्यक्ति को चुनें, और जो चुना जाय वह ही प्रधान और मन्त्री का काम संभाले। इससे प्रत्येक व्यक्ति में त्याग की भावना होगी और जब तक सर्व सम्मति से निर्णय न हो तब तक आगे का कार्य न शुरू किया जाय। हमारे विचार से इस प्रकार करने से संगठन में दृढ़ता होगी। योग्य व्यक्ति का चुनाव होगा। यह तो हुई संगठन को दृढ़ और वैमनस्य को दूर करने विषयक कुछ बातें। साथ ही आर्य समाज के नैतिक, बौद्धिक और ज्ञान संबंधी स्तर को ऊँचा करने के लिए भी कुछ ठोस और सक्रिय कदम उठाना चाहिए। ठोस और सक्रिय कदम उठाने की बात मैंने इसलिए लिखी है कि वह समाज, संप्रदाय,

[illegible]

जिसमें सिद्धान्त जानने वालों का अभाव होगा। इतिहास देखिए! बौद्ध धर्म की उन्नति बुद्ध भगवान् के बाद के अश्वघोष आदि दार्शनिकों ने की। बौद्ध दर्शन तैयार हुआ और विदेशियों ने उसे पढ़ा और उनके विचारकों को उसमें नई बातें ज्ञात हुईं तो उन्होंने उसका अपने यहाँ प्रचार किया। आर्यसमाज के विचारों का प्रचार न होने का मुख्य कारण यह है कि हमारे उपदेशक तथा प्रचारक भी सिद्धांतों में अपरिचित हैं। बुरा न मानिए, वे प्लेट फार्म पर जो बातें कहते हैं उनका एक मात्र उद्देश्य जनता को फंसाए रखना है, हंसाना है। ऐसा लगता है कि वे विदूषक का कार्य कर रहे हैं। विषय को रोचक बनाना दूसरी बात है अप्रासंगिक कथा कहानियों और चुटकलों का सुनाना दूसरी बात है। इसका यह असर होता है कि पढ़ी लिखी जनता मन बहलाव के लिए थोड़ी देर तक आ जाती है और जिनके पास समय काफी है, खाली हैं और जिन्हें अपना समय काटना है वे उत्सव में आते हैं। उत्सव की सफलता जनता की संख्या देखकर आप न मानिए। पर जरा सोचिए कि उसका क्या प्रभाव जनता पर पड़ा? क्या आपने प्रचार किया? क्या वास्तविक वस्तु आपने देश को दी? और कहाँ तक अपने उद्देश्य की ओर आगे बढ़े? व्यर्थ संख्या की चिन्ता न कीजिए। पढ़े लिखे और समझदार व्यक्तियों को अपने सिद्धान्त बताइए और तब देखिए कि किस तरह वे बातें छन कर साधारण जनता तक पहुंचती हैं अतः पहला काम हम अपने सिद्धान्तों को जनता तक पहुंचाना है।

सिद्धान्त यदि वाचिक रूप में ही जनता तक पहुंचे तो उनका प्रभाव कम होगा। अतः हम अपने व्यक्तिगत जीवन का भी आर्य समाज के दृष्टिकोण से निर्माण करना होगा। मान लीजिए, हम प्लेट फार्म से संध्या करने का उपदेश देते हैं, अस्पृश्यता और जातीय प्रथा के विरुद्ध भाषण देते हैं, गोरक्षा की पुकार मचाते हैं, वेदों का नाद सर्वत्र सुनाने का जोशीला और ओजभरा आह्वान करते हैं विश्व बन्धुत्व और 'मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षामहे' मित्र की आंखों से सब प्राणियों को देखें, का बखान करते हैं, माँस शराब आदि के निषेध के लिए दिवस मनाते हैं तो हमें अपने अन्दर भी इन गुणों का स्थापन करना होगा। यदि हम संध्या हवन नहीं करते, जाति पाति की प्रथा को

स्वामी जी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पण का यही सर्वोत्तम उपाय है कि इस स्वार्थमय चश्मों को उतार कर सत्यासत्य का विवेक कर इस भयकर रोग का निदान करें और यदि हमने ठीक उपचार किया तो आर्यसमाज पुनः जीवित, जागृत, ओजस्वी, तेजस्वी होकर अपने उद्देश्य पथ पर अग्रसर होकर न केवल भारत अपितु विश्व का मार्ग प्रदर्शन करेगा। स्वामी जी के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि उनके उद्देश्यों की ओर हम बढ़ें।

लेखक—

क्या तुम जानते हो ?

(१) चाय का उपयोग चीन से आरम्भ हुआ।

(२) चिरापूँजी में वर्ष भर में लगभग ५०० इन्च वर्षा हो जाती है जो भारत म सबसे अधिक है।

(३) संस्कृत के सर्वोत्तम कवि का नाम कालिदास है।

(४) प्रारम्भ म कलकत्ता काली-घाट नामक एक छोटा सा गांव था।

(५) कागज लकड़ी की लुगदी घास और बाँसो से बनता है।

(६) तम्बाकू का प्रयोग सबसे पहले अमेरिका में हुआ था।

जाड़ा

गरमी, वर्षा मार भगाई,
अब जाड़े की बारी आई।
पड़नें लगा रात को कुहरा,
दिन हो गया सिमिटकर दुहरा
जब से तन लगा सिकुड़ने,
ओठ - हाथ लग गए ठिठुरने।
धूप न अब असुहावन मन को,
खूब भली लगती है तन को।
सूरज में अब गरमी कम है,
या जाड़े से वह बेदम है।
ठण्डी हवा रोज चलती है,
जिससे सब पर हुई नमी है।
काजू, पिस्ते और बदाम,
सबका दिया सुनाई नाम।
रुई, ऊन या कम्बल काले,
बिकते नित हा शाल-दुशाले।
किन्तु गरीब न इनको पाते,
आग तपाकर शीत मिटाते।
नहीं उन्हे पिस्ते - अखरोट,
ज्वार बाजरा का है रोट,
सत्य उन्होंने इसे पछाड़ा है।
डरा उन्हींसे है यह जाड़ा

चुटकुले

शिक्षक (रमेश से) रमेश भारत में सोना कहाँ पाया जाता है ?' रमेश को चुप देख कर शिक्षक पुन: बोले - "बोलो जवाब क्यों नहीं देते ?"

रमेश चट से बोला "मास्टर साहब परसों पिता जी ने तो कहा था कि अपने से बड़ो को जवाब नहीं देते।"

पिछली बार ८ वर्षीय सोहन अपने भाई के साथ कानपुर से लखनऊ गया। जब उसके भाई ने बस के अपर क्लास का टिकट लिया तो सोहन असमञ्जस में पड गया और पूछ उठा 'भय्या, क्या अपर क्लास में बैठ कर हम जल्दी पहुंच जाएँगे ?"

अरुण प्रकाश
कानपुर

जज—यह सिद्ध हो चुका है कि तुम भी अपराध में शामिल थे। अब तुम यह बताओ कि कैसी मौत चाहते हो ?

अपराधी—महाराज, वास्तव में मैं बुढ़ापे की मौत चाहता हूं।

० ० ०

केलेवाला—आने में दो दिए हैं।

लड़का—भाई हम चार आने लाए हैं, ८ केले दे दो। और आने में कितने दोगे, बता दो।

० ० ०

मूँगफलीवाला—बेदाम हो रही है, भुनी हुई लो।

लड़का—अरे भाई, सब रख आ हम सब ले लेंगे।

आर्य्य-कुमार-संघ

आज दीपावली है। यह दिन जब दयानन्द ने इस धरती को छोड़ा था, वे विदा हुए थे पर सत्य का संदेश देकर। जीवन क्या है, का पाठ पढ़ाने का श्रेय उसी महापुरुष को था, अतः हे आर्य कुमारो, इस शुभ दिन महर्षि के अधूरे कार्य को पूरा करने के लिए उन के चरण चिन्हों का संकल्प ही वास्तव में सच्ची श्रद्धांजलि हो सकता है ·· ···· देखें कौन बालक गहन अन्धकार में प्रकाश फैलाने के लिए सूर्य बनने का संकल्प लेता है —सम्पादक

पिछली पहेलियों के उत्तर

१६ अक्तूबर १९५५ के आर्यमित्र में "बताओ तो जाने" शीर्षक से कुछ प्रश्न पूछे गए थे, प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न तो बहुत से बच्चो ने किया परन्तु उन्हें आँशिक रूप से ही सफलता मिली। सम्पूर्ण प्रश्नो के सही उत्तर इस प्रकार हैं—

नगरों के नाम

(१) मथुरा (२) बनारस (३) आगरा (४) शिमला अन्य तीन प्रश्नों का उत्तर -

(१) जिराफ कोई शब्द नहीं करता क्योंकि उसके गले में स्वर तंत्री नहीं होती।

(२) मेंढक दीवाल पर नहीं चढ़ सकता।

(३) केकड़ा सीधा नहीं दौड़ सकता, वह केवल बगल से या आड़ा ही चल सकता है।

भारत का प्राचीन विश्व विद्यालय

पिछली बार हमने तुम्हें भारत के प्राचीन काल के प्रसिद्ध विश्व विद्यालय 'नालन्दा' का हाल संक्षिप्त रूप में बताया था। साथ ही हमने तुमसे तब यह भी वायदा किया था कि अगले अब हम भी तुम्हे प्राचीन भारत के दूसरे प्रसिद्ध विश्व विद्यालय 'तक्ष-शिला' के बारे में बतलाया करेंगे।

अच्छा तो लो सुनो।

तक्ष शिला विश्वविद्यालय भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश में स्थित था अर्थात् आजकल जिस स्थान पर पेशावर (जो अब पाकिस्तान में है। बना हुआ है उसी के निकट यह विश्व विद्यालय विशेष रूप से विज्ञान की उच्च शिक्षा के लिए विख्यात था विज्ञान में भी चिकित्सा शास्त्र के क्षेत्र में इस विश्व विद्यालय ने विशेषता और प्रसिद्धि प्राप्त की थी।

इस विद्यालय में शिक्षा प्राप्त वैद्यों अथवा चिकित्सकों का सम्पूर्ण देश में अत्यधिक सम्मान होता था। ऐसा कहा जाता है कि गौतम बुद्ध जब कभी बीमार पड़ते तब उनकी चिकित्सा इसी विद्यालय शिक्षा प्राप्त चिकित्सक करते थे।

संस्कृत भाषा के श्रेष्ठ व्याकरणाचार्य पाणिनि, जो ईसा पूर्व छठीं और ७ वीं सदी में हुए ने इसी विद्यालय में शिक्षा प्राप्त की।

जातक की कथाओं में कई स्थानों पर इस बात का उल्लेख मिलता है कि इस विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के लिये भारत के कोने २ से बड़े २ राजाओ और सामन्तो के पुत्र तथा अन्य छात्र शिक्षा प्राप्त करने पहुंचते थे।

अपनी प्रसिद्धि और भौगोलिक स्थिति के कारण यह विश्व विद्यालय अफगानिस्तान और मध्य एशिया तक से विद्यार्थियो को अपनी ओर आकर्षित करता था।

तक्षशिला विश्वविद्यालय का स्नातक होना अत्यन्त गौरव की बात समझी जाती थी। यद्यपि तक्षशिला बौद्ध धर्म के प्रचलित होने से पूर्व ही स्थापित हो चुका था पर बाद में इस विश्व विद्यालय में अत्यन्त ऊंचे स्तर की बौद्ध धर्म सम्बन्धी शिक्षा भी दी जाने लगी थी तथा बड़े २ बौद्ध धर्म के विद्वानो ने इसमें शिक्षा प्राप्त की। इस विश्वविद्यालय में भी 'नालन्दा' की भांति सहस्त्रों विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे।

संसार का सबसे बड़ा घण्टा

संसार का सबसे बड़ा घंटा जो कोलोकोल मास्को में है। यह लगभग १७३५ ई० में वहाँ की महारानी आरिना अन्ना की आज्ञा से ढाला गया था। इसकी ऊंचाई और परिधि २६ फीट है। ढालते वक्त यह कुछ चटक गया था। बादमें जहांइसे लटकाया गया था वहां से किसी आकस्मिक दुर्घटना वश वह गिर पड़ा और उसका एक टुकड़ा जो ७ फीट ऊँचा और ३०० मन भारी था टूट गया। रूसी क्रांति के समय तक यह एक छोटे गिर्जे का काम देता था और दूसरा काम उसका दूसरा था !

दयानन्द के स्वप्न

दयानन्द के स्वप्न राष्ट्र की आँखों में आ मचल रहे हैं।
रवि की रम्य रश्मियों सा उज्ज्वल पावन कर्तव्य प्रखर,
पितृतुल्य सुखमय विराज्य से पाया यह 'स्वराज्य सुन्दर।
समस्त रेणु पर पड़े आज भी उसके शुचि पद-चिन्हों पर ही,
चरण राष्ट्र के बढ़ने को अब अन्य पथ से विचल रहे ही।
शत शरदों पहले उसकी पलकों पर छाया स्वप्न मधुर,
हिन्दी अपनी भाषा होगी हिन्दी होगा अपना उर।
उसके इस स्वर्गिक सपने की अरुणिम झलक देखने को ही,
आज राष्ट्र के कमल नयन खिल जाने को, हो विकल रहे हैं।
पुण्य दुग्ध-दधि उदधि विमल में खेल रहा होगा मधु ज्वार,
पा जायेगी कामधेनु अब जीवित रहने का अधिकार।
आशा दीप जलाये थे ये उसने अपनी देह जलाकर,
दीपावलि पर अमर दीप जो घर घर में आज जल रहे हैं।
सर्व प्रथम उसके श्वासों की वीरता ने गाये थे ये स्वर,
क्षण भर का उपकार ध्येय निज सब को दे आदर्श अमर।
पंच चूलि की दीपशिखा में भरा हुआ आलोक सही है,
कण - कण को आलोकित करने ले कर जो हम निकल रहे हैं।

रामगोपाल

No 6—37 38

...र्णय

...अद्वितीय ग्रन्थ लगभग २०० पृष्ठ ।
...य १)
...वर्षों का एक ही ग्रन्थ १२० पृष्ठ
है ।
...र जाति का अति प्रसिद्ध ग्रन्थ ।
...भग ३०० पृष्ठ मू० २) डा० १)
...सजिल्द ११) डा० १)
...मुस्लिम जातियों का तथा 'शुद्धि
...) डा० १)
...र शर्मा गौड़ 'विकल' स्वधर्मनिष्ठ,
...आदि के वर्षों के कठोर परिश्रम का
... ग्रन्थ । २॥) डा० १।) जोड़ी ही

...र्णव्यवस्था मण्डल,
...यपुर)

भारत राष्ट्र की नौका के कर्णधार

वृद्ध-युवक प० नेहरू
इस बार दीवाली और आपका
जन्म दिन एक साथ पड़ लाखों प्रज्व-
लित दीपों से अभिनन्दन कर आपके
शतायु होने की कामना कर रहे हैं
ॐ ॐ
आर्य समाज के ओजस्वी नेता

शेरे पंजाब लाला लाजपतराय
ॐ ॐ
आर्य सन्यासी

महात्मा आनन्द स्वामी जी सरस्वती

उत्तर प्रदेश के कमठ आर्य वीर

श्री ईश्वरदयालु जी आर्य
[illegible]

ऋषि दयानन्द कृत खंडन....

(पृष्ठ १० का शेष)

'झल्लामल्ला नटा शैव' इस मनु-श्लोक में आयेहुए मल्ला शब्द का अर्थ स्वामी जी ने नवें समुल्लास में नौका आदि के चलाने वाले' किया है इस पर पण्डित लोग बड़ा मुँह बनाते है। मल्ला पहलवान का अर्थ प्रसिद्ध है।

कुल्लक भट्ट ने ही 'मल्ला बाहु-.यन:' बाहो से युद्ध करने वाले अर्थात् पहलवान् ही अर्थ किया है। फिर स्वामी जी ने नौका आदि चलाने वाले अर्थ मल्लाः को मल्लाह से मिलता समझ कर यह तुक लगा दी हो, पर जब मनु का दसवें अध्याय का श्लोक २२ वां देखा जाता है तो 'मल्ल' व्रात्य क्षत्रियों की संतान एक जाति विशिष्ट सिद्ध होती है।

'झल्लो मल्लश्च राजन्याद्व्रात्या न्निच्छिविरेवच'

ये निच्छिवि बुद्ध के समय के लिच्छिवि ही हो सकते हैं। बिहार मे जैन बौद्धधर्म के प्रभाव से अनेक क्षत्रिय कुल वैदिक संस्कार हीन व्रात्य होकर झल्ल, मल्लनिच्छिवि नाम जाति के कहलाने लगे होगें। बिहार में ही बुद्ध काल मे मल्लो का गणतंत्र भी था और उधर नदियों की गहराई और प्रभाव होने से संभव है मल्ल लोग। नौकादि चलाने का कार्य करते रहे हों। अब कोश के भी स्पष्ट अर्थ देखिये :—

'व्रात्य जाति विशेषा:' व्रात्य जाति विशेष। निषाषद्, धीवर, कैवर्त भी अपने को क्षत्रिय कहते हैं।

इस प्रकार बहुश्रुत, गम्भीर विचारक, क्रान्तदर्शी दयानन्द के लेख को यूँ ही नहीं उठाया जा सकता। अल्प श्रुत लोगों को अधिकार नहीं कि स्वामी जी के ग्रन्थों का संशोधन कर सकें संशोधन क्या स्वामी जी के ग्रन्थो पर तो टीका लिखी जानी चाहिये पर एक के वश का यह कार्य नहीं। पण्डित मंडली हो पूरा समय लगाकर यह कार्य सम्भाल सकती है। पर दुर्भाग्य है कि—

विद्वांसो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मय-दूषिताः
अज्ञानोपहताश्चान्ये कथं कार्या भवेदिह ॥

ऋषि दयानन्द ने खण्डन मडन जो कुछ लिखा है लोक कल्याण काम-नया ही लिखा है। उनका अपना क्या स्वार्थ था? अतः उनके किये खंडन मडन का खूब सगति लगाकर पढ़ना चाहिये। कुछ बड़े बड़े लोग अपने नेतृत्व की धुन में लिख चुके हैं कि स्वामी जी ने जिनमतों का खडन किया

खडन करके उन मतों के ढंग अन्याय किया है।

पर जो उन मतवालों के साथ रह कर उनके ग्रन्थ देखने से पता लगा सकता है कि ऋषि दयानन्द उन मतों को ठीक वैसा ही समझे हैं जैसा कि वे मत वाले अपने मन में समझते थे। लोगों की रुचि को अपनी ओर खींचने के लिए मत वाले अपने ग्रन्थों के और, भीतरी भाव और बाहरी और दिखाया करते हैं। ऋषि ने उनके ही आभ्यान्तर अर्थों को जानकर उन पर चोट की है।

मय होने की घोषणा करते रहते हैं। पर इस्लाम का आज तक का इतिहास और जागियो की करतूतें, जबकि इस प्रचार को धूल में मिला देती हैं। इस्लाम का वास्तविक रूप तो इस्लामी इतिहास के दर्पण में देखा जा सकता है और मुस्लिम जनता के व्यवहार में। वास्तव में मतवालों का साहस नहीं हो सकता कि वह अपने मन्तव्यो को जनता के समान नग्न रूप में रख सकें। आजकल भी कई सम्प्रदाय बड़े गुप्त हैं। अपने मत को अपने ढंग मे दूसरे रूप में

महात्मा गांधी और उनके चेलों ने बराबर हिन्दुओं के हृदय में यह विश्वास जमाने का प्रयत्न किया कि इस्लाम शान्तिमय धर्म है। इस्लाम अहिंसात्मक धर्म है महात्मा जी तो इस्लाम से अनभिज्ञ थे पर उनके साथी मुसलमान उनको इस्लाम का वैसा रूप समझा देते थे वह विश्वास करते थे। उनके चेले विनोबा जी जैसे जान बूझ कर भी गुरु की पुष्टि करने के लिए इस्लाम का हिन्दुओं के सामने मधुर रूप में रखते रहते हैं। मुसलमान

रखवाते हैं और अन्यो के सन्मुख दूसरे रूप में। मौलाना शौकत अली, मुहम्मद अली, आदि कई मुस्लिम नेताओं के साथ खिलाफत आन्दोलन में हिन्दुओं का धन प्राप्त करने के लिये कैसे होते थे और खिलाफत का खातमा होने लगे और अन्त में फिर लीग के मञ्चों पर उन्होंने क्या रूप दिखा था वह उदाहरण देख लीजिये अतः श्री स्वामी जी ने जो कुछ लिखा है "यथार्थ" लिखा है। सम्प्रदायी चाहे बुरा माने या भला कहे।

काम का कोई बुरा माने या रूठे। सत्य को ग्रहण करे तो कल्याण पायेगा।

सत्यासत्य की विवेचना करने में बड़े साहस और निर्भयता से काम लिया है। और इस कार्य में उन्होंने अपने प्राणों तक को होम दिया। धन्य है सत्योपासक ऋषि, जय हो सत्यार्थ प्रकाशक ऋषि की।

स्वयं करें निर्माण.........!

दयानन्द के दिव्य स्वप्न का, स्वयं करें निर्माण!

निज स्वरूप को भूला जग है, अपनी राह बिसार!
दीन हीन हो थका हुआ सा, हमको रहा निहार!!
गहर लहर में डगमग पग से, करता करुण पुकार!
कदम बढ़ाओ मिलकर साथी, कर डालो उद्धार!!

पर-सहाय की आशा तज कर, स्वयं करें अभियान!
दयानन्द के दिव्य स्वप्न का, स्वयं करें निर्माण!!

ओ३म-ध्वजा को लेकर करमें, वेदों का आदेश!
बढ़ो अविद्या-तमको हरने, ले ज्ञान-राकेश!!
पाखण्ड अविद्या दूर करो, यह दयानन्द सन्देश!
मस्तिष्कों में दुहरायें हम, सदा यही उपदेश!!

इसी सहारे आगे बढ़ कर, करें देश कल्याण!
दयानन्द के दिव्य स्वप्न का, स्वयं करें निर्माण!!

पतझड़ के बाद पुनः आती है, सुन्दर ऋतु वसन्त!
महानाश बतलाओ है, ईश्वर शक्ति अनन्त!!
उतरे साज चढ़ाओ फिरसे, छेड़ो विप्लव गान!
प्राणों की आहुति देकर हो जाओ बलिदान!!

दर्द भरी टूटी आहों से गूंज उठेगा जहान!
दयानन्द के दिव्य-स्वप्न का स्वयं करें निर्माण!!

विश्वास अटल रख परमेश्वर पर, कूद पड़ो खुद रण में!
याद करो गौरव-अतीत और विजय करो फिर क्षण में!!
कहो नहीं कुछ, कुछ कर दिखलादो, समय नहीं अब सोने का!
वही पुराना बातें लेकर, केवल अतीत पर रोने का!!

" सच्चे आर्य बनो, बनाओ " यह जीवन-लक्ष्य-महान!
दयानन्द के दिव्य स्वप्न का स्वयं निर्माण!!

—प्रेम कुमार "प्रेमी"

संसार सुधारक की जय

पृष्ठ ८ का शेष

विचारकों का ध्यान ऋषि की मौलिक विचारधारा की बलपूर्वक आकर्षित करना चाहता हूँ, यदि हम ऋषि को भूले रहेंगे तो अपने मार्ग से विचलित होकर भटक जाएंगे। यदि सीधे मार्ग पर आना है तो आदर्श, पथप्रदर्शक, संसार सुधारक की जय बोलनी चाहिए।

दीपावली का महत्व

(लेखक—आचार्य श्री देवदत्त शर्मोपाध्याय, बनारस)

प्रस्तुत लेख दीपावली के महत्व पर सब दृष्टियों से प्रकाश डालता है। विद्वान लेखक ने प्रभावशाली ढग से जो विचार प्रस्तुत किए हैं उन पर विचार कर सभी को अवश्य ज्ञान वर्धन होगा ऐसा विश्वास है।

सृष्टियों से यह आर्य-अति दीपावली का त्यौहार मनाती चली आ रही है, जिधर देखो उधर दीपावली महोत्सव की तैयारियाँ प्रारम्भ हैं। स्कूल, कालेज, पाठशाला आदि भी बडे धूमधाम से इस दीपावली महोत्सव को मनाते हैं। भारतीय राजकीय विभाग में भी इस त्यौहार की छुट्टी अवश्य होती है। परन्तु इतने पुण्यतम महोत्सव के सम्बन्ध में किसी यज्ञ से नहीं, अपितु विशिष्ट से विशिष्ट विद्वान से भी यह पूछ लिया जाय, कि कहिये महाशय, यह उत्सव कब से और क्यों चला, तो वह निरुत्तर हो जाता है, बस उसको यही कहते बनता है कि यह पहिले से चला आ रहा है, अतएव हम भी इसे मनाते हैं दीपावली शब्द भी "दीपानाम् आवलि" दीपावली अर्थात् दीपों की पङ्क्ति, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं बताता।

अत इस दीपावली महोत्सव की वास्तविक खोज न होने के कारण ही लोगों ने इसके सम्बन्ध में भिन्न २ मनगढ़न्त कल्पनायें आधुनिक नवीन तम ग्रन्थों के आधार पर कर ली हैं।

कोई कहते हैं कि यह चार महोत्सवों का समुदाय है, अर्थात अमावस्या, जिस दिन की दीपावली मनायी जाती है, उसके एक दिन पूर्व अर्थात् चतुर्दशी जिसको कि छोटी दीवाली कहते हैं, वह "यमराज का दिवस" है, अत उस दिन सायकाल को यम के नाम से केवल एक दीपक घर के दरवाजे पर जला कर रख दिया जाता है। उसके दूसरे दिन अमावास्या, जिस दिन कि दीपावली मनायी जाती है, वह है "लक्ष्मी पूजन दिवस"। इस दिन लक्ष्मी का पूजन होता है। अब भी यह परिपाटी है, जिसको कि काशी में देखा है कि धनिक लोग मिठाई की मूर्ति लाकर अपने यहाँ रात्रि के समय पौराणिक पण्डितों द्वारा उसका पूजन कराते हैं। ब्रज के ग्रामों में तो प्रायः यह देखा गया है कि वे उस दिन लक्ष्मी पूजन उस भांति न करा कर तेल के दीपकों के अतिरिक्त एक घी का दीपक जलाते हैं, तथा उसमें घी के अन्दर एक चांदी का रुपया डाल देते हैं, और दीपक रात्रि भर जलता है। ग्रामीण स्त्रियों की यह भावना है कि ऐसा करने से लक्ष्मी हमारी घर में आ जायगी। दीपावली के दूसरे दिन अर्थात् प्रतिपद् (परिवा) यह "गोवर्धन दिवस" है। आज भी व्रज में इस दिन प्रत्येक घर में गौओं का गोबर लाकर उसकी खीलें और बताशे आदि चढ़ाये जाते हैं, और [illegible]

बडी कर लावा (खीलें) बताशे खाँड के खिलौने आदि से उन गोबर के बने हुये गाय, बछडे आदिकों की पूजा होती है। इस उत्सव के अनन्तर अर्थात द्वितीया को भ्रातृ द्वितीया या 'यम द्वितीया दिवस' मनाते हैं। कहते हैं कि यम आज के दिन अपनी बहिन से मिलने गया था, बहिन ने उसका बडा आदर सत्कार किया था। आज तो प्राय समस्त प्रदेश में बहिन भाई का बडे प्रेम से सत्कार करती है और भाई उसको यथा शक्ति कुछ न कुछ दक्षिणा (भेंट) देता है।

कोई कहते हैं, कि दीपावली के दिन जुआ न खेला जाय तो महा पातक लगता है, अत आज भी बहुत से ना समझ (अज्ञ) लोग थोडा बहुत जुआ खेलना अपना धर्म समझते हैं। इतना ही नहीं, सुना जाता है कि कुछ दिन पूर्व, काशी के एक महामहोपाध्याय, जो कि एक प्रसिद्ध कालेज के प्रिंसिपल थे, उन्होंने 'आज' नामक समाचार पत्र में दीपावली के सम्बन्ध में लेख लिखते हुये दीपावली के दिन जुआ खलने का शास्त्रीय विधान भी बतलाया था। काशी वासियों का कहना है कि गोवर्धन (गोधन) के दिन जमीकन्द का जो शाक नहीं खाता, उसको छुछूंदर का जन्म मिलता है।

कोई कहते हैं कि यह दीपावली-महोत्सव भगवान राम की लका विषयक विजय के उपलक्ष्य में प्रारम्भ हुआ है। उस दिन घृत के दीपक आदि जला कर प्रकाश आदि के द्वारा हर्ष प्रकट किया गया था। आज भी घृत के अभाव के कारण उसी भांति तैल के दीपक आदि जला कर प्रकाश मिष्टान्न भोजनादि के द्वारा वह प्रसन्नता दिवस मनाया जाता है।

बहुत से कर्मकाण्डियों का कहना है कि यह दीपावली सम्बन्धी अमावस्या तिथि वैदिक यज्ञों की परम्परा में 'दर्श' नामक यज्ञों का महोत्सव रूप दिवस है। "चातुर्मास्येष्टि" से सम्बन्ध रखता है। आर्य लोग वैदिक श्रुति के अनुसार 'दर्श' और [illegible]

करते थे। 'दर्श' नामक यज्ञ अमावस्या तिथि को हुआ था, और "पौर्णमास" नामक यज्ञ पूर्णिमा तिथि को हुआ करता था। 'दर्श यज्ञों की सबसे बडी महोत्सव तिथि कार्तिक कृष्ण पक्ष अमावास्या नियत थी और "पौर्णमास" नामक यज्ञों की सबसे बडी महोत्सव तिथि फाल्गुन शुक्ल पौर्णमासी नियत थी, जिस दिन कि होलिका महोत्सव मनाया जाता है अतएव आज भी लोग होली से एक मास पूर्व अर्थात बसन्त पचमी से अपने अपने नियत स्थानों पर लकडिया इकट्ठी करते हैं, जो कि पहिले समिधा के रूप में मानी जाती थी, और उनको फाल्गुन शुक्ल ठीक पूर्णमासी अर्थात होलिका के दिन जलाकर उसमें जो (यव) की बालो को भूनकर उन भुने हुए जौ (यव) को उसमें डालते हैं, जो कि पहिले सामग्री की आहुतियों के रूप में माने जाते थे।

अब हम लेख के विस्तार के भय से इस विषय में अधिक न कहकर इतना ही कहना चाहते हैं कि इसी प्रकार की भिन्न भिन्न विचार धाराए इस दीपावली महोत्सव के सम्बन्ध में लोगों की हैं। इसका कारण स्पष्ट यही प्रतीत होता है कि भारतीय साधारण-जनता अभी तक इस दीपावली महोत्सव के वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचान सकी, जिसका कि जानना उसके लिए परमावश्यक है।

वस्तुत कर्मकाण्डियों का कहना ठीक प्रतीत होता है, क्योंकि यह भारत देश याज्ञिक देश था 'यज्ञीय देश' नाम से इसकी प्रसिद्धि भी है। वैदिक परम्परा का यहाँ बोलबाला था, ऋषियों की यह जन्म भूमि है, गौओं का यह निवास स्थान रहा है, यहाँ तक सुना जाता है कि राजा विराट् के यहाँ दस सहस्र गौवें थी, अत घी का बाहुल्य यहाँ स्वाभाविक ही था, ऋषियों की सन्तान यहा के निवासी आर्यों का प्रतिदिन यज्ञ करना नैतक धार्मिक कृत्य माना जाता है, अत प्रति अमावास्या को "दर्श यज्ञ" और प्रति पूर्णिमा को "पौर्णमास यज्ञ" करना नितान्त ही [illegible]

आधारभूत हमारे गृह्यसूत्र और श्रौतसूत्र हैं। आज से कुछ पूर्व पूर्व समस्त संस्कृत पाठशालाओं में तथा आज भी किसी किसी पाठशाला में त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा और प्रतिपदद् इन चार दिनों का अनध्याय माना जाता है। उनमें त्रयोदशी तो इसलिए अनध्याय माना जाता है कि उस दिन व्याकरण (अष्टाध्यायी) के प्रणेता पाणिनि की मृत्यु हुई थी। संस्कृत पाठशालाओं में अब भी चाहे वह राजकीय हों या अराजकीय, उन सबमें अष्टमी तिथि के दिन भी अनध्याय मनाया जाता है, जो कि न्याय सगत है, क्योंकि महीने में कम से कम १५ दिन के अन्तर एक दिन अवश्य ऐसा होना चाहिये, जिसमें कि छात्र अपने पाक्षिक पाठ की तथा आवश्यक स्वाध्यायों की कमी को पूर्ण कर सके, अतएव अष्टमी के दो दिन मास में अनध्याय के माने गये। परन्तु आज कल प्राय किसी संस्कृत पाठशालीय छात्र से पूछिये, छात्र से भी क्या अध्यापक महोदय से भी पूछिये कि कहिये चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा, प्रतिपद का अनध्याय क्यों आपके यहा मनाया जाता है तो बेचारे के पास कुछ उत्तर नहीं केवल यह एक मनगढ त अशुद्ध श्लोक बोल देगा, जो कि प्रत्येक संस्कृत पाठशाला का छात्र गुरु परम्परा से सुनता चला आता है।

> अष्टमी गुरुहन्त्री च, शिष्य हन्त्री चतुर्दशी।
> अमावस्या पूर्णिमा द्वयोर्हन्त्री, प्रतिपद पाठविनाशिनी॥

इस श्लोक का अर्थ है कि अष्टमी को पढ़ाना गुरु को नष्ट कर देता है, अमावस्या, पूर्णिमा का पढ़ाना गुरु शिष्य दोनों को नष्ट कर देता है। प्रतिपदा को पढ़ाना पाठ को ही नष्ट कर देता है।

महोदय! अब विचार कीजिए कि अष्टमी का पढाना गुरु को हानि कारक है, यह तो ठीक है, क्योंकि अष्टमी मास में दो बार आती है, यदि गुरु उस दिन भी पढाता रहे, तो अपने गृहस्थ के तथा लौकिक कार्यों को कब करेगा। अत गुरु को मास में दो दिन अष्टमी का अनध्याय करना उचित है, परन्तु एक साथ प्रतिपक्ष में तीन दिन चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा, प्रतिपद् कर अनध्याय करना किस ध्येय से है। इसका उत्तर आज उस वैदिक परम्परा को भूला हुआ विद्यार्थी या पण्डित नहीं दे सकता।

वह थी हमारी 'दर्श' और

(शेष पृष्ठ ११ पर)

गद्य काव्य

ऋषि तुम्हें कोटिकोटि नमस्कार

लेखक—विश्वम्भरदत्त शास्त्री बरेली

देश दारुण दुःख से ग्रस्त था,
रवि की सहस्र रश्मियां अम्बर में सकुचित हो रही थीं।
भूमण्डल में प्रकाश हो कैसे ?
मानव ! स्मरण कर उस वेला को,
ज्ञान रविरश्मि माला मूर्छित थी, तब अज्ञान घन के—
आंचल में छिपी, मदपान कर, मादकता से !
मुस्कान भी स्तब्ध थी, प्रसन्नता प्रसुप्त थी उस भानु की !
मानवता दूर थी मानव से,
भारत मां का वक्षस्थल चीर डाला था,
क्रूर दैत्य दानव दल ने,
थीं की प्रतिमा थी, पर प्रति मा थे न थी।
सरस्वती पर रसवती न थी।
रसना थी पर रसना में रस ना था।
सवाद था पर समवाद न था।
चाहना थी, पर चाह न थी।
मोहन था किन्तु मोहन में मोह न था।
मंजुलता थी पर मंजु-लता न थी।
मन चले थे पर मन चले न थे।
वेद के प्रति वेदना थी पर वेद ना थे।
वाणी में मधुरता थी पर वाणी मधु रता न थी,
उत्थान-उषा वधू का भूषण था अज्ञान तिमिर चिर से।
क्या न था ? सब कुछ न था ? पर क्या था ? कुछ न था !
क्यों ? कैसे ? क्या ? कब ? कहाँ ? यह प्रश्न जागृत थे।
सहसा प्रभा तब जाग उठी प्रभाकर की।
ज्योत्सना जगमगा उठी शशांक की।
मेघ फटे, तिमिर हटे, कब जब प्रभा उसकी—
हिमगिरि तुङ्ग शिखर से कल्लोल कर बहती हुई,
शीतलता की सरिता के सरस कणों को समेटती हुई,
विकचपुञ्ज से भी सुरभि संशिहित कर उतर पड़ी भूमण्डल पर।
तब क्या हुआ ? इस भूतल की परिधि में अपरिचित सी घुसती—
प्रवेश कर गई, गुजर प्रान्तार्गत टङ्कारा ग्राम में,
वह शीतलता-समान्वता-शोभा मयी ज्ञान मदाकिनी की धवल धारा।
शैशव था काल उसका, कुछ विकसित उषा जीवन पुष्प-पराग लिये वेद का।
कोलाहल मचा, अन्तस्तल में उसके, तोड़ बन्धन,
छोड़ ममता, परिजन स्नेह आत्ममुक्त हो वह, विपरीत,
चल पड़ा लौकिक धरा के।
प्रसुप्त जगत् जाग उठा,
पर कुछ न्यूनता थी अभी—
मिले गुरुवर, प्रखर दीप्ति, प्रज्ञा चक्षु अमन्द—
लिये, थी वे सर्वस्व अर्पण कर दिया सुपात्र जान, उसको।
मानो उदधि ने उड़ेल दिया उदरस्थ तोयनिधि—
काल में उस पर।
संस्कृत हो समावर्तन संस्कार से—
वह चल पड़ा पथिक, ध्येय लिये श्रेय पर।
अवलोकन कर पथिक को—
सन्ध्या की अरुणिमा छिप गई न जाने कहाँ।
प्रभात हुआ, भास्कर की आभा से जगमगा उठा—
संसार।
दिग् दिगन्त में प्रवाहित होने लगी ज्ञान धारा।
वह कलाकार-वह कलाकार, सब कलाकार झूम उठे,

सारा देश आज दीवाली मना रहा है—

काश, कि वह अन्तर में भी ज्ञान दीप जला सके

ओ३म् ध्वज केतु चूम उठा गगन।
यज्ञ की सुरभि से नभ मण्डल सुरभित हो गया।
स्वतन्त्रता का मन्त्र जग उठा, जय घोष हुआ खण्ड खण्ड—
पाखण्ड हुआ हुंकार से उस देव के
प्रचार से वेद के ध्वस्त हुआ धर्म ध्वजियों का दुर्ग।
पथ्यान जो कि आवृत्त था पङ्क से,
कण्टकाकीर्ण था, पुष्पपराग से हो गया पूरित !
आह्वान किया स्वतन्त्रता देवी का,
गान किया सभ्यता के मन्त्र का
मान किया संस्कृत का, परित्राण किया नारी का,
कल्याण जन जन का,
वेद के विधान से निर्माण किया नूतन,
क्या न किया ? सर्वस्व देकर।
उस महान् की मानवता गा सके कौन ?
असख्य उपकार गिना सके कौन।
निर्माण से उसके निर्माण हुआ देश का, जाति का, विश्व का।
निर्वाण भी उसका विश्व को प्रकाश दिया,
अन्धकार नाश किया।
कुछ लो, मानव ! लो,
निर्वाण से भी उसके कुछ ले लो।
अभी समय है—देखो,
आज सहस्र दीप ज्योतित हो उत्सुक हैं,
दे रहे हैं ज्योतित दान,
स्वीकार करो मानव ! स्वीकार करो ! अन्तर्ज्योति;
अमर ज्योति, अक्षय ज्योति के पुनरुद्धारक ऋषिवर !
तुम्हें कोटि-कोटि नमस्कार !

वैदिक धर्म की जय।
ऋषिवर दयानन्द की जय !!

सार्वभौम दयानन्द

[चतुर्वेद भाष्यकार प० जयदेव जी शर्मा]

जगत् में महा पुरुष तो सदा ही सार्वभौम होते हैं। परन्तु व्यापक दृष्टि से देखें तो उनके अनुयायियों ने महा पुरुषों को बहुत ही सकुचित सीमा में कैद कर दिया है। कोल्हू के बैल के समान उनका प्रवर्तक महापुरुष उनके बनाये थोड़े से दायरे में ही चक्कर लगाता है और उसके मूल में जब उसकी विशाल वैयक्तिकता का कुछ भी महत्व बढ़ने नहीं पाता तब उसके साथ अनेक असत्य कल्पनाओं के वाग् जाल फैला कर उसको बढ़ाने की चेष्टा की जाती है। इस दूषित प्रथा से उस महा पुरुष की वास्तविक वैयक्तिकता तो समाप्त हो जाती है और काल्पनिक वैयक्तिकता ही उसका स्थान ले लेती है। तब वह साम्प्रदायिक एक आडम्बर मय चक्र बन जाता है।

उदाहरण के तौर पर हिन्दू देवी देवताओं को ही ले लीजिये। शकर एक तपस्वी महात्मा थे, तपस्या में सिद्ध थे, विश्वेश्वर थे, जितेन्द्रिय थे, बड़े त्यागी थे परन्तु उनके सम्प्रदाय वालों ने उनके नाम पर कैसे भ्रष्टाचारों का सयोग किया, उनको देव, परमेश्वर का स्थान तो दे दिया परन्तु उनकी उतनी दुर्दशा की है कि शकर शिव का अपना महत्वपूर्ण व्यक्तित्व सर्वथा नष्ट हो गया है।

ब्रह्मा, विष्णु आदि देव और दुर्गा कात्यायनी, आदि देवियों की भी यही दशा भारतीय उपासकों ने की है। अच्छी-बुरी सभी कल्पनाओं ने उनकी वैयक्तिकता का अधपतन तो किया ही है साथ, उनको लोक-प्रियता भी नष्ट होकर उनको सार्वभौमिकता भी नष्ट हो गई है।

महात्मा बुद्ध का अपने काल में लोक प्रिय नहीं थे? उनकी उदाराशयता से वह महात्मा चीन जापान तिब्बत आदि सभी देशों में श्रद्धा का पात्र हुआ। परन्तु उनके अनुयायियों ने उस महात्मा को त्रिपिटकों और बौद्ध सघों में बन्द कर दिया। बुद्ध को स्वत एक खूंटे के समान बनाकर उसकी शरण में लोगों को बंधने को कहने का तात्पर्य उसको एक स्थान में गाड़ देने के समान हुआ। हमें समझ में नहीं आता कि एक व्यक्ति ईसा को अच्छी बातों को मानता हुआ भी बुद्ध को आदर से क्यों नहीं देखे। बुद्ध को आदर देता हुआ भी कोई व्यक्ति दयानन्द के आदर्श वाक्यों को क्या छोड़े? क्यों न उनका भी आदर करे।

इस प्रकार हमें स्पष्ट अनुभव होता है कि ऋषि दयानन्द एक सार्वभौम महान् आत्मा है। वह अपने मन्तव्यों के लिये बड़ा उदार है। प्रत्येक सिद्धांत मानव मात्र के मनन शील मस्तिष्क को अपनी परीक्षा का अवसर देता है। वह चाहे सत्यार्थ प्रकाश को पढे या न पढे, जिस दिन से उसने ऋषि के तथ्य मन्तव्य पर विचार किया वह उसी दिन से उसके सम्प्रदाय का वारिस बन जाता है।

ऋषि दयानन्द के आनुयायिक आध्यात्मिक राज्य तत्व जगत् में बिखरे हुए हैं। और अनादिकाल से और अनन्त काल तक यथा तथा रहेंगे, उनमें तिलभर भी परिवर्तन होने वाला नहीं है? उन सत्य तत्वों को ऋषि दयानन्द ने प्रकट किया है, कल कोई और आनन्द उन ही तथ्यों को कहेंगे और गत काल में अनेक ऋषि महर्षि उन तथ्यों के कहते रहे हैं, देश देशान्तरों में भी वे तथ्य कहे ही गये हैं। इस कारण उन तथ्यों की सार्वभौमता है इस कारण ऋषि दयानन्द भी सार्वभौम है। आवश्यकता है कि मतवादों के कोहरे में भी लोगों को उन तथ्यों का ठीक ज्ञान कराने का। उसके लिये आर्य समाज और आर्य पुरुषों को कमर कसे रहना चाहिये। लोगों में वास्तविक आर्यत्व जगाते रहिये तथ्यों की रक्षा आप होती रहेगी। तथ्यों का लोकन मनावश्यक से होता है।

सबसे बड़ी समस्या की बात आती है साम्प्रदायवाद की। बौद्ध साम्प्रदायवाद ने महात्मा बुद्ध को सघों और त्रिपिटकों में बन्द कर रखा है। इसका तात्पर्य यह है कि त्रिपिटकों और सघों के अनेक दोष की बुद्ध के दोष बन जाते हैं। साम्प्रदायों की अपनी रूढियां भी उस महापुरुष के गुणों पर प्रहार करती हैं। और परिणाम यह होता है कि महात्मा पुरुष अपने साम्प्रदायवादियों के छोटे दायरे में सीमित होकर अपने सार्वभौम अधिकार से वंचित हो जाता है।

कोई भी साम्प्रदाय चाहे कितना अधिक देशों में फैल जाय इतने से कोई महात्मा सार्वभौम नहीं बन सकता जब तक कि उसको बहुत ही सकुचित भावनाओं से जकड़कर रखा गया हो। जैसे ईसा चार बाइबलों में साबित है। यदि कोई ईसा का भक्त बनता है तो उस ईसा का भक्त बनने के लिये चारों बाइबलों की सब बातें माननी पड़ेंगी चाहे वह बुद्धि कोटि पर ठहर सकें, चाहे न ठहर सकें। इसी प्रकार इन ईसाइयों की बीसियों बातें हैं जो ईसा पर लाद दी गई हैं। सबके पापों का बोझा लेकर सूली पर चढ़ा था इसमें तो सन्देह है, पर हाँ ईसाइयों को बीसों असत्य बातों से सद- कर तो अपनी वैयक्तिकता [illegible] कुछ लेते वाली साम्प्रदायिक कारागार [illegible]

ज्यों २ बौद्धिक अन्वेषण और अर्थ विज्ञान का प्रसार हुआ बाइबल के गपोड़ों के साथ २ ईसा को महापुरुषता भी अमान्य कोटि में चली गई है। अब उस धर्म को राजनैतिक दृष्टि से ही देश देशान्तरों में अन्य मतपन्थों की अज्ञानता व कचाई से लाभ उठाकर फैलाया जा रहा है कि कुछ सम्पन्नदेशों का उल्लू सीधा होता रहे। यदि उनका उल्लू किसी देशान्तर के साम्प्रदायवाद से सिद्ध होने लगे तो निश्चय ही ईसाइयत के पैर एक क्षण में उखड़ जाय। और यह बात निकट भविष्य में होने वाली है। असत्य बातों का दम्भ अधिक कालतक बहु व्यय-साध्य योजनापर जीनहीं सकता।

अन्य सम्प्रदायों के सकुचित क्षेत्रों की तुलना में हमें ऋषि दयानन्द का विशाल व्यापक क्षेत्र दिखाई दे रहा है। उसके सिद्धान्तों का आधार एक देश का धर्म पुस्तक नहीं है, किसी एक व्यक्ति का बनाया नहीं है, एक सम्प्रदाय का पक्षपाती पुस्तक नहीं, वह सार्वभौम पदार्थ है। इसलिये ऋषि दयानन्द तीनों कालों में और समस्त लोकों के लिए एक समान हैं। यदि प्रकृति का सिद्धांत है तो समस्त ससार के लिये वह प्रकृति सब अधीन है। यदि जीवात्मा विषयक सिद्धांत है, तो आत्मा या जीव जगत् के लिये एक समान है चाहे वह ऋषिदयानन्द को जो परमेश्वर अभिमत है वह एक देशी न हो, किसी एक जाति का पक्षपाती नहीं, वह देश काल की सब उपाधियों से परे, सबके हृदय का अन्तर्यामी और कर्म, कर्मफलों का नियन्ता है। वह ईश्वर केवल दयानन्द या आर्य समाज का ईश्वर नहीं है। इसी प्रकार ऋषि दयानन्द के ५१ मन्तव्यामन्तव्यों पर दृष्टिपात करने से भी उनकी सार्वभौमता स्पष्ट होती है। वे भी किसी देश और काल की सीमा से बद्ध नहीं है।

महर्षि के उपकार !

ब्र० दयानन्द आर्य वैदिक साधन आश्रम, यमुना नगर

भुजग प्रयात वृत्त

अहो देश भागा दयानन्द योगी।
पिलाया सुधा को सभी थे कुरोगी ॥

उठाया सभी को न सोया व रात्रि
न आनन्द भोगा जगाई ये जाति।
न आता व योगी सुगामी सुमार्गी,
सुवेदी सुकारी सुभागा सुहामी ॥
अहो देश आभागा आनन्द भोगी १

अरे देव भागी दयानन्द तूने,
मिटाई अविद्या व अन्धेर तूने।
मिटाया तूने पोप पाखण्ड सारा,
किया ज्ञान तूने लिया वेद धारा ॥
अहो प्रेम मानो व आनन्द भोगा २

उठो आर्यवीरो जगाओ सभी को,
करो काम पूरा मिटाओ कमीको ॥
नहीं काल ऐसा इसे पा जो खोना
मिली हैं य देही जिसे पान खोना ॥
अहो आर्य लोगो सुनों बीत होगी ३

दयानन्द योगी हितैषी व मानो,
अरे देश वालो सुनों और मानो ॥
यदा कौम सोती हुई थी दुखों में,
सुलाया तूने कौम अके सुखो में ॥
बनाया तूने प्रेम आनन्द भोगी ४

सभा का बृहदधिवेशन

निमन्त्रण-पत्र

उत्तर प्रदेशीय आर्य समाजों को सूचित किया जाता है कि आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के आगामी बृहदधिवेशन को जो आर्य समाज निमंत्रित करना चाहें वे अपनी समाज की अन्तरंग सभा से निश्चय कराकर निमन्त्रण पत्र १५ दिसम्बर १९५५ तक सभा कार्यालय में अवश्य भेजने की कृपा करें।

आर्यवीर सिंह
आ० प्र० सभा उ० प्र० लखनऊ

पता.—'आर्यमित्र'
५ मीराबाइ मार्ग, लखनऊ
फोन—१९३
तार—'आर्यमित्र

आर्यमित्र

रजिस्टर्ड नं० ए० ६०
१४ नवम्बर, १९५५

स्वामी सवदानन्द जी सरस्वती

महर्षि के आलोक प्रभाव से
ज्योतित

वैदिक सन्देश वाहक

दिव्य पुरुष

स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती

वीरश्रेष्ठ प० लेखराम

स्वामी श्रद्धानन्द सरम्वता

प० घासीराम जी एम० ए०
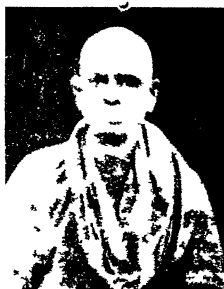
महात्मा नारायण स्वामी

स्व० प० गणपति शर्मा

आचार्य श्री रामदेव जी

जनता की सफलता के लिए

जनता में जागृति चाहिये

(श्री प्रेम नारायण एम. ए.)

किसी भी जनतंत्रवादी देश में शासन की सफलता देश का वास्तविक चतुर्दिक विकास और बराबर लोक कल्याणकारी कार्यों का होते रहना वहाँ की जनता पर निर्भर करता है। इसकी सफलता के लिये आवश्यक है कि जनता में जीवन व जागृति हो। जन जागृति होगी वह ठीक चुनाव के के अवसर का उपयोग करके उचित प्रतिनिधि भेजेगी, चुनाव के बाद अपने प्रतिनिधियों पर नियन्त्रण रखेगी। ताकि वह अपने उत्तरदायित्व को भूल न जावें गुमराह न हो जाव और बराबर अपनी जिम्मेदारी का देश के हितों का ध्यान रख कर उपयोग करें। अगर वह ऐसा नहीं करते, जनता उनको सचेत नहीं करती, तो देश रसातल को चला जायेगा। जनता का कर्त्तव्य वोट देने के बाद ही खत्म नहीं हो जाता वरन् उसका कार्य बराबर रहती है जिससे उसके प्रतिनिधि बराबर ठीक कार्य करते रहे, उसके भाव विचारों को प्रदर्शन समय समय पर होता रहना चाहिये।

जनतंत्र शासन अत्यन्त महंगा है। लाखों करोड़ों रुपये प्रतिनिधियों के भत्तों किराये आदि में खर्च हो जाते हैं, जिनका भार जनता को ही सहना पड़ता है। सरकारी मशीनरी का खर्च तो अलग होता ही है पर अगर देश में जनतन्त्रात्मक विधान न हो तो करोड़ों रुपयों को व्यय होने से बच जाय। जनतन्त्रात्मक शासन में गाव से लगा कर व्यवस्थापिका सभाओं तक कितने ही सार्वजनिक रूप से कार्य चलाने वाली सरकारी सस्थायें होती हैं, जिनमें चुने हुये व्यक्ति काम करते हैं। गाँव पचायत, म्यूनिसिपल बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, प्रादेशिक व्यवस्थापिका सभायें, केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभायें आदि। किन्हीं किन्हीं प्रदेशों में और केन्द्र में दो दो व्यवस्थापिका सभाये हैं। इस जनतन्त्रात्मक प्रणाली को स्वीकार करके भारतवर्ष की जनता ने करोड़ों रुपयों का खच प्रति वर्ष अपने ऊपर ले लिया है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के सालों में तथा इस आम चुनाव के पश्चात् होने वाली घटनाओं से हमें ऐसा लगता है कि हमारे यह प्रतिनिधिगण अपनी जिम्मेदारियों को भले प्रकार से नहीं निभा रहे हैं। और अगर जनता ने इस प्रकार की ढील रक्खी तो देश के शासन में बहुत ढीलापन आ जायेगा और अन्त में ही जनता इसका परिणाम भी भोगने को मजबूर होगी। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि जनता अपने कर्त्तव्य में चूके नहीं। अपने प्रतिनिधियों का रुप भूल न पावे ऊपर निगाह रक्खे, उनसे जवाब तलबी करती रहे जिससे वह अपना प्रतिनिधि का रूप भूल न पावे और अपने उत्तरदायित्व को भली प्रकार से निभाते रहें। हाल ही में खबर आई है कि कानपुर जनता ने अपने दो प्रतिनिधियों के घर जाकर उनसे उनकी कार्य की रिपोर्ट माँगी। यह बहुत सुन्दर उदाहरण है और आवश्यकता है कि देश के प्रत्येक भाग में इस प्रकार अपने प्रतिनिधियों से उनके कार्यों की रिपोर्ट माँगी जाय। केवल रिपोर्ट ही नहीं उनको यह भी बताया जावे कि वह जनता की अमुक भावनाओं को, अमुक दिक्कतों को, अमुक विचारों को अपनी अपनी सभाओं में पेश करें जिससे सरकार को उस इलाके के निवासियों की बातों का पता चल सके और वह उनके सुधार के लिये प्रयत्नशील हो। जब वह अपने निर्वाचन क्षेत्र की बात वहाँ उधर घूमते रहते हैं भत्ते पाने के लिये दस्तखत करने वालों की औसत हाजिरी २०० है पर सभा भवन में इतनी नहीं होती बहुत थोड़े लोग इनमें उपस्थित होते हैं। खास खास मौके पर वोट लेते समय वह बुलाये जाते हैं। उनकी इस गैरहाजिरी का प्रभाव जनता पर पड़ता है क्योंकि बनने वाले कानूनों पर समुचित गौर नहीं हो पाता और वह बराबर संशोधित किये जाते हैं।

जब से कांग्रेस सरकार कायम हुई है उत्तर प्रदेश में कुल ३०३ नये कानून बने हैं, सन् ४६ से लगातार मार्च ५२ तक ऐसा व्यवस्थापिकों की कुल ४७२ मीटिंगों में केवल जमींदारी विनाश और सुधार बिल के विचार के लिये हुई। इसके बावजूद भी इसमें इतनी कमी बेशी रह गई कि एक साल में तीन बार संशोधन किये गये। प्रतिनिधि तथा

नहीं बतायेंगे सरकार को उनको ठीक ठीक पता नहीं चलेगा और उनके सुधार में देर लगेगा इस प्रकार के कार्यों से जनता में भी अधिक जागृति हो सकेगी और वह चुनाव के समय बहुत सोच विचार कर अपना मूल्यवान मत किसी योग्य व्यक्ति को दिया करेगी। अयोग्य व्यक्ति इस प्रकार चुनने से हट सकेंगे।

जनता यह भी देखे कि उसके प्रतिनिधि अपनी संस्थाओं में जावें, उचित तरीके से भाग लें, चुन जाने के बाद आराम से घर में न पड़े रहें। उत्तरप्रदेशीय सरकार के हाल ही में कुछ आंकड़े प्रकाशित हुये हैं उससे पता चलता है कि प्रदेशिक धारा सभा के ४३१ सदस्यों में औसत परिषद् में औसत हाजिरी २८० रही। वहाँ राज्य परिषद मे ७२ सदस्यों में ६० रही। इससे स्पष्ट है कि बड़ी अच्छी उपस्थिति रही। छोटी की उपस्थिति कम है और वह भी अगर भत्ते का लालच न हो तो वह भी कम हो जाय। उनकी भी हाजिरी शामिल है जो नाम लिखकर भत्ते का प्रबन्ध करने के बाद इधर सरकार का यह निकम्मापन ही है कि इतना जल्द संशोधन की आवश्यकता पड़ गई। इसका अर्थ है कि बनाते समय उसे उपयुक्त रूप से सोचते विचारते नहीं। अगर एक बार भी उसे समझ बूझ कर आगा पीछा देख समझ कर बनाया जाय तो यह बार बार का व्यर्थ का खर्चा बच जाय जनता की परेशानी बार-बार संशोधन से जनता को बहुत परेशानियाँ बढ़ती हैं, व्यर्थ की मुकदमे बाजिया गलत फहमियाँ रञ्जिशें आदि बढ़ती हैं और इसमें लाखों करोड़ों रुपये बरबाद हो जाते हैं।

एक बार हमारे जिला बोर्ड ने एक नया नियम बनाकर चक्कियों व इन्जन से चलने वाली मशीनों पर नये टैक्स लगा दिये गये जब चक्की वालों ने हिसाब लगाया तो वह इतना पड़ा जितना वह साल भर में कमाती भी न थी। जिले भर में असन्तोष हुआ उन लोगों ने संगठन करके इसका विरोध किया। बोर्ड ने मुकदमें चलाये चक्की वालों ने दौड़ धूप की इसके उपरान्त लगातार मुकदमा काफी, दुर्घटनायें सरकार तक... जब वे बोर्ड को अपने नियमों में संशोधन करके अधिक व्यवहारिक बनाना पड़ा। जब इससे बोर्ड के दो चार प्रभाव शाली व्यक्तियों को इसी प्रकार की बेवकूफियों के बारे में पूछ ताछ की तो बताया गया कि ऐसे नियम की तरफ कौन ध्यान देता है। जिसके मन में जैसे आये वैसे बन गए। इस प्रकार के जवाब अत्यन्त निराशा जनक और अन्धेरे भविष्य के परिचायक हैं इन निर्वाचित प्रतिनिधियों का कर्त्तव्य है कि वह प्रत्येक नियम कायदों को ठीक से बना दें। इस प्रकार से गलत सलत बना कर वह अपने अक्ल का दिवालापन दिखाने के साथ अपना गैर जिम्मेदारी पन भी दिखाते हैं। ऐसे लोगों को ठीक रास्ते पर लाने के लिए जनता को सावधान व जागृत होना पड़ेगा। अन्यथा यह कीमती प्रयोग अत्यन्त व्ययसाध्य हो कर देश की नीवों को खोखला कर देगा या फिर तानाशाही को निमन्त्रण देगा।

प्रजातन्त्रात्मक शासन बनने से भारत के खर्चे कई गुना बढ़ गये, नये टैक्स आदि इन खर्चों को पूरा करने के लिए लगाये जा रहे हैं जिनसे कराहना जनता ने आरम्भ कर दिया है। यह खर्चे बढ़ना जारी है और दूसरी तरफ जनता का कर देने की शक्ति हो रही है। पर धींगाताजी भी तानाशाही का बीज हो रही है। खर्च कितने बढ़े हैं यह नीचे के उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा, परन्तु खेद यह है कि खर्चों के बढ़ने पर भी शासन प्रबन्ध बिगड़ता जा रहा।

सन् ५२ के आम चुनाव से पहले उत्तर प्रदेश की व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों पर ६ लाख रुपया वार्षिक खर्च होता था परन्तु अब करीब ११ लाख का बजट बना है। यह प्रथम वर्ष है अतएव अनुमान में गलती हो सकती है। हो सकता है कि यह और भी बढ़ जाय। इस बार सदस्य भी तो बढ़ गये हैं। सरकारी मिनिस्टरों की सख्या में ५ से ६ हुई और ६ से बढ़ कर १२ हो गई है। डिप्टी मिनिस्टर्स और पार्लियामेन्टरी सेक्रेटरी तो अलग ही रहे। अंग्रेजी राज्य में सलाहकारों पर डेढ़ लाख खर्च होता था वहाँ अब मन्त्रियों, उपमन्त्रियों तथा सभा सचिवों को मिलाकर १२ लाख रुपया सालाना खर्च होता है।

जिला बोर्डों के सदस्य भी बढ़ गये हैं। पहले उन्हें कोई भत्ता नहीं मिलता था अब भत्ता मिलने लगा है जिससे बोर्डों के खर्चों में एक बड़ी रकम जुड़ गई।

[शेष पृष्ठ ८ पर]

आर्यसमाज के समस्त पक्षों में ... आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र—

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

आर्य-मित्र

वर्ष ५७ अंक ३९

लखनऊ रविवार २० नवम्बर १९५५ कार्तिक शुक्ल ६ संवत् २०१२ सौर ४ मार्गशीर्ष दयानन्दाब्द १३१ सृष्टि संवत् १९७२९४९०५६

त्यागपूर्वक उपभोग करो

(श्री पं० इन्द्र—विद्यावाचस्पति प्रधान सार्वदेशिक सभा)

भगवद् गीता में 'त्यक्तेन भुञ्जीथा' इस श्रुतिवाक्य का भाव इस श्लोक द्वारा स्पष्ट किया गया है—

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥

इस कारण हे अर्जुन, तुम आसक्ति को छोड़कर, अपने कर्तव्य कर्मों के पालन में लगे रहो। जो मनुष्य लिप्त न होकर कर्म करता है, वह ईश्वर को प्राप्त कर लेता है। इसे भगवद्गीता में अनासक्ति-योग के नाम से कहा गया है कि कर्म करते रहो, उनके जो फल प्राप्त हों, उनका संयम-पूर्वक उपभोग करो, परन्तु उन में लिप्त न हो, उनके पीछे पागल न हो, उनकी लालसा में न फँसो। यदि भोग करते हुए तुम सीमाओं का ध्यान न रखोगे, तो कर्तव्य के मार्ग से गिर जाओगे, तुम्हें वासनाएं खींच कर पाप के गढ़े में ले जायेंगी।

जीवन की सर्व सामान्य भौतिक इच्छा से आरम्भ करके चक्रवर्ती राज्य की उत्कृष्ट महत्वाकांक्षा तक यदि वह सीमा के अन्दर रहे, और लालसा के रूप में परिणत न हो, तो उचित कही जा सकती है। उसे पूरा करना पाप नहीं, परन्तु छोटी से छोटी इच्छा भी सीमा को पार कर गई तो शरीर और मन के लिए दुःखदायक और आत्मा के लिये दुःख का कारण बन जाती है।

कुछ लोग क्रोध और लालसा के बुरे परिणामों को देख कर इतने खिन्न हो जाते हैं, कि संसार की सब वस्तुओं से विमुख होने में ही कल्याण मानने लगते हैं। वैदिक धर्म में ऐसे निरीह जीवन का विधान नहीं है। वेदों में सभी श्रेष्ठ और सुख-कारी वस्तुओं की प्राप्ति के लिए प्रार्थनाएँ विद्यमान हैं। वैदिक प्रार्थनाओं की व्यापकताओं पर दृष्टि डालिये—

मृळा सुमृळय मृळय। ऋ० ७. ८६. १।

हे सबके रक्षक ईश्वर, मुझ पर अनुग्रह कीजिये।

अप नः शोशुचदघम्। ऋ. १. ९७. १।

हमारा पाप नष्ट कीजिये।

त्वं हिरण्यस्य वसुदा असि। ऋ. १२. १४

हे भगवन् आप सबको धन देने वाले हैं।

अर्वाचीनं रयिमा भरा। ऋ. १. १०२. ४।

हे सर्वशक्ति-सम्पन्न प्रभो, तुम्हारी कृपा से हम शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें।

... । ऋ. ... ।

आप हमें धन दीजिये।

हमको नाही ...

विद्युत्तो मेधामग्वेष्यामसि। ऋ १. १०८

जिस मेधा को ऋषि जानते हैं उसे मैं अपने अन्दर स्थापित करूँ।

... । ऋ. १.७.१०८

पापियों को दुखरूप में समूल नष्ट कर दो।

... कामयाधुक् गोभिरश्वैः सत-क्रतो। ऋ. १२. ३, ३१. ८।

हे जगदीश्वर गाय, बकरी, भेड़ आदि पशुओं से तथा अन्न के संग्रह की हमारे गृहों में कमी न रहे।

यजुर्वेद के निम्नलिखित मन्त्र में, ईश्वर से आत्मा, मन और शरीर से सम्बन्ध रखने वाली सब विभूतियों की प्राप्ति के लिए प्रार्थना की गई है—

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्। आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्। दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा, जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु ...

हे अनन्त शक्ति वाले प्रभो, आप गौ, अश्व आदि पशु धन देकर हमारी कामनाओं को पूर्ण करो।

उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः॥

य. ३. ४३।

गीत

जलधि ज्वार बन कर, पूरे गगन तक,
तरणि रश्मियां ले, धरा को सजाओ!

नया स्वर्ग हो, नव्य वातावरण हो,
जगत का मिटा सब, तम आवरण हो,
नहीं हो व्यसन से व्यथित भव कहानी,
नया पुरुष का स्नेहमय आचरण हो,

नहीं स्वर्ग के दोष, स्पर्श हो कुछ,
नये संगठन सूत्र में जग को बँधाओ!

लिए कमानवी कल्पना एक अभिनव,
मनुज का भरा पूर्ण अन्तःकरण हो,
लिए संगठन की नयी भावनाएं,
बढ़े सर्वदा किन्तु बढ़ता चरण हो,

लाओ गगन से नया एक भाविक,
धरणि में धवल कीर्ति चादर बिछाओ!

कि हो स्वर्ग को एक प्रतिबिम्ब धरणी,
मनुज में भरी एक नव कामना हो,
सकल मानवी पुण्य सगत मधुर मय,
मनुज में भरी प्रेम की कामना हो,

नहीं हो दुखी अर्थ सुख धर्म से नर-
नहीं रंच भी द्वेष, की भावना हो!

—देवदत्त आर्य देवेन्द्र,

क्षेमोऽस्मो न ओषधयः पच्यन्ताम्।
योगक्षेमो नः कल्पताम्।

इन प्रार्थनाओं से स्पष्ट हो रहा है कि संसार की भौतिक हों या आध्यात्मिक—सभी उत्तम और सुखदायक वस्तुएं मनुष्य के भोगने योग्य हैं, यदि उनका सदुपयोग किया जाय, सीमा का अति-क्रमण न हो, और 'मा गृधः कस्य स्विद्धनम्' इस आदेश का पालन करते हुये अन्य किसी के अधिकारों पर आक्रमण या हस्तक्षेप न हो और उनके भोग में आसक्ति न हो।

मा गृधः कस्य स्विद्धनम्

किसी अन्य के धन को लेने की अभिलाषा मत करो।

इस पद में जो धन शब्द आया है, उसका अभिप्राय केवल रुपया पैसा आदि चल अथवा जमीन जायदाद आदि अचल सम्पत्ति से नहीं है। यहां धन शब्द का बहुत व्यापक अर्थ में प्रयोग है। एक मनुष्य को जो कुछ प्रिय है, जिसे वह चाहता है और जिससे उसे सुख मिलता है, वह उसका धन है। प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है कि वह अपने धन का उपभोग करे। वह धन अधिकारों के रूप में हो, या सम्पत्ति के रूप में। जो न्याय पूर्वक उस का है, वह उस का धन है, उसे संयम पूर्वक भोगने का उसे पूरा अधिकार है।

परन्तु इस व्यवस्था के चलाने के लिये एक नियम का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है। वह नियम यह है कि जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने धन का उपभोग करने में स्वतन्त्र हो, वहां उसे यह अधिकार न हो कि वह दूसरे के धन को छीनने, या हड़पने की इच्छा या यत्न करे। यदि सब मनुष्यों को यह अधिकार मिल जाय कि वे दूसरों के धन को छीन लें, तो किसी का धन भी सुरक्षित नहीं रह सकता। हम सुख का उपभोग करें, इस की यह सीमा है कि हमारे सुख भोग से दूसरों की सुख सामग्री का व्याघात न होना चाहिये। मनुस्मृति में धर्म का

(शेष पृष्ठ १० पर)

क्षमा प्रार्थना

दीपावली के अवसर पर कतिपय कम्पोजीटर्स अवकाश पर चले गए, अत साप्ताहिक 'मित्र' की पूरी सामग्री प्रकाशित न कराई जा सकी। पाठकों तथा एजेंटों से इसके लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं। —व्यवस्थापक

एक गूढ़ पहेली

यहाँ में वैदिक कालीन जीवन का दर्शन

वाजपेय यज्ञ

(लेखक—श्री नरदेवशास्त्री वेदतीर्थ ज्वालापुर)

तैत्तिरीय ब्राह्मण में वाजपेय यज्ञ का विधि विधान है। शतपथ में भी इसका रूपान्तर से उल्लेख है।

शतपथ कहता है—

यो । वाजपेयेन यजते, स इदं सर्वं भवति ।
स इदं सर्वमुज्जयति प्रजापतिं ह्युज्जयति सर्वमु ह्येवेद प्रजापत ॥

वाजपेय यज्ञ करने वाला जगद्रूप होकर समस्त जगत् को जीत लेता है। प्रजापतिको जीत लेता है। पारमार्थिक दृष्टि से विचार करने वाले को इस यज्ञ के निमित्त म होने वाली यजमान की आध्यात्मिक उन्नति का अवश्य ध्यान आयेगा

श्रौत और स्मार्त यज्ञ

यह वाजपेय यज्ञ श्रौतयज्ञ है। इसलिए कि य ज्ञों का विचार है कि इस यज्ञ का विधान वेद में है। पुराणों में वर्णित आहुति रूप विधियों को भी यज्ञ कहते हैं। परन्तु इनको स्मार्त यज्ञ कहते हैं अर्थात् एक प्रकार से वैदिक विधियों का अशत अनुकरण अथवा अनुष्ठान समझिए। श्रद्धा क्षेत्र से सब प्रकार के यज्ञ सम-समान भले ही माने जायें तथापि स्मार्तयज्ञों का ही अधिक महत्व है, यह तो मानना ही पड़ेगा।

अग्नि स्थापना

वाजपेय यज्ञ की विधि जटिल है, वैसे देखा जाय तो सभी यज्ञों की विधिएं जटिल रहती अथवा होती हैं।

गृह्याग्नि

विवाह के समय जिस अग्नि की स्थापना की जाति है उसका नाम है, गृह्य।

इसी को स्मार्त अथवा औपासनाग्नि भी कहते हैं। जब तक कोई व्यक्ति गृहस्थाश्रम में है तब तक इस अग्नि को रक्षा करना उसका कर्तव्य है। प्रात साय उस अग्नि में आहुति डालना कर्तव्य है इसके अतिरिक्त एक गृहस्थ को अन्य तीन अथवा पाँच अग्नियों को स्थापना करनी चाहिए, हो सके तो। शास्त्र को आज्ञा है।

अग्न्याधान

यह अग्न्याधान समन्त्रक करना चाहिये। इस अग्नि की स्थापना के पश्चात प्रति दिन सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय दुग्ध तथा अन्य द्रव्यों की आहुति देनी चाहिये। वह भी समन्त्रक अर्थात मन्त्र के साथ देना चाहिए। इस विधि को समन्त्रक होम अथवा अग्नि होत्र होम कहते हैं।

यज्ञों के प्रकार

प्रत्येक गृहस्थ का उपरोक्त नित्य है कि वह पूर्णिमा और अमावस्या के दूसरे दिन एक यज्ञ करे। पूर्णिमा के यज्ञ को पूर्णमासेष्टि और अमावस्या के यज्ञ को अमावस्येष्टि अर्थात् दर्शेष्टि कहते हैं। इस यज्ञ में 'पुरोडाश' की आहुति दी जाती है। चावल अथवा जौ से बने हुए पदार्थ का नाम पुरोडाश है।

इसके पश्चात चार महीने के अनन्तर जो यज्ञ किये जाते हैं उनका नाम चातुर्मास्य यज्ञ हैं। ये यज्ञ इष्टि से थोड़े बड़े होते हैं। इस यज्ञ में ऋत्विजों की संख्या भी बड़ी रहती है। यज्ञों का मण्डप भी बड़ा रहता है। इन सब विविध यज्ञों को हवि संस्था कहते हैं। ये सब मिलाकर सात हैं।

हवि संस्था के पश्चात किये जाने वाले यज्ञों का नाम है सोमयज्ञ। ये भी सात हैं। उनके नाम ये हैं—

१—अग्निष्टोम २—अत्यग्निष्टोम ३—उक्थ्य ४—षोडशी ५—वाजपेय ६—अतिरात्र ७—आप्तोर्याम।

कोई कोई वाजपेय को सातवें स्थान पर रखते हैं।

सोमयज्ञ

जिस यज्ञ में सोम नामक वनस्पति का रस निकालकर, उसको पानी में मिलाकर उसकी आहुति दी जाती है वह सोमयज्ञ है। इस यज्ञ का मण्डप पूर्व उपवर्णित यज्ञ से बड़ा बड़ा होता है, अनुष्ठान भी बड़ा रहता है।

ऋत्विज

ऋत्विजों की संख्या १६ रहती है कभी काम न चले तो १७ भी हो जाती है। ये ऋत्विज ऋग्, यजु, साम, अथर्व इन चारों वेदों के प्रत्येक वेद के चार चार होते हैं। अथवा प्रथम तीन वेदों के ही होते हैं। ऋग्वेद के मन्त्रों से देवताओं की स्तुति की जाती है। यजुर्वेद से विधि की जाती है। सामवेद से गायन होता है। सोमयज्ञ छः दिवस (कम से कम) चलता है।

इस यज्ञ में वैदिक कालीन जीवन की कुछ कल्पना आ जाती है।

वाजपेय की विशेषता

यह वाजपेय याग सोमयाग ही है। याग और यज्ञ समानार्थक शब्द हैं। अग्निष्टोम और अन्य यज्ञों के विधि-विधान भी इस वाजपेय में दिखलायी पड़ते हैं।

वाजपेय की विशेष बातें

इस यज्ञ के प्रारम्भ में रथों की दौड़ रहती है। एक बाण जहाँ गिरता है उससे आगे एक बाण इस प्रकार धनुष से १७ बाण फेंक कर, नपे हुए अन्तर पर गूलर की लकड़ी गाड़ देते हैं। अथवा बाड़ बना देते हैं। उस स्थान पर पहुंचने के लिये रथों में दौड़ हो जाती है।

प्रत्येक रथमें तीन घोड़ों को जोड़ा जाता है। तीसरा घोड़ा दो घोड़ों के बीच में एक ही पंक्ति में अथवा दो घोड़ों के आगे जुड़ा जाता है। एक रथ में यजमान बैठता है। शेष रथों में क्षत्रिय बैठते हैं जो कि अपनी अपनी जाति के अग्रणी रहते हैं। उस समय ब्रह्मा नाम का ऋत्विज यज्ञ मण्डप में रथ चक्र पर बैठकर साम-गान करता है। सत्रह नक्कारों की गम्भीर ध्वनि के होते ही रथों की दौड़ प्रारम्भ होती है। यजमान का रथ गूलर की मेड़ के पास सबसे प्रथम पहुंचता है। यजमान अथवा यजमान पत्नी सत्रह पैड़ियों पर चढ़ कर यूप (एक खम्बा) पकड़ते हैं और सूर्य की उपासना करते हैं। उस समय एक अथवा सभी ऋत्विज वहाँ उपस्थित रहते हैं—इस यज्ञ में इसी प्रकार के कई विधान हैं। अभी अभी पूने में बापटशास्त्री ने इस प्रकार का एक यज्ञ किया। इस यज्ञ के लिए एक "वाजपेय अनुष्ठान समिति" बनी थी। इस यज्ञ में अनुमान से पचास सहस्र रु० व्यय हुआ होगा। इस यज्ञ में १७ प्रमुख तथा १३ सहायक ब्राह्मणों ने काम किया। प्राचीन समय के से रथों के अभाव में नये वर्तमान घोड़ों के तांगों का प्रयोग किया गया। पहिले रथ में श्रौताचार्य आपु[illegible] शास्त्री बापट यजमान रूप में बैठे थे, सोमरस तो मिलता नहीं उसके स्थान में किसी जंगली जड़ी-बूटी के रस का प्रयोग किया गया। पुरोहितों का वेष धोती और चादर रहा। यज्ञ की समाप्ति अवभृथ स्नान (यज्ञ की समाप्ति के स्नान) से हुई। इस यज्ञ के अवसर को वैदिक कालीन जीवन का पूर्ण दर्शन किया—

जैसा भी हुआ, जो भी हुआ—इस युग में इस प्रकार के दृश्य (यज्ञ के दृश्य) कुतूहलजनक ही हैं। चाहे ये यज्ञ-याग किसी की समझ में आवें अथवा न आएं किंतु यह मानना पड़ेगा कि इन यज्ञों का कोई न कोई विशेष उद्देश्य है और रहा है—इनका विधि-विधान क्रमबद्ध और सुसंगत है। ये विधि विधान समन्त्रक हैं। ये यज्ञ याग किन्हीं अथवा किन्हीं देवताओं का उद्देश्य करके किये जाते हैं। किन्हीं लौकिक—अधिकतर लौकिक और कभी-कभी पारलौकिक सुख-समृद्धि के हेतु होते थे, इसमें सन्देह नहीं। कालचक्र के प्रभाव से यज्ञों और याज्ञिकों की परम्परा नष्ट हो गयी है। बड़े बड़े यज्ञ तो प्राय लुप्त हो चुके हैं। इनकी खोज शास्त्रीय ढंग से होनी चाहिए और पता लगाना चाहिए कि हमारे प्राचीनतम पूर्वज इन यज्ञों को क्यों करते रहे, किस प्रकार करते रहे?

वर्तमान अथवा आधुनिक आर्यसमाजी अथवा आर्य विद्वान् तो 'कोरी पोपलीला" "कोरा ढकोसला" समझकर इन यज्ञों के विषय में कुछ भी सोचने समझने का प्रयास नहीं करेगा। यज्ञों में हिंसा के विधान को तो वह कभी नहीं मानेगा।

मुझे १९०५ में, वेद तीर्थ परीक्षा की तैयारी के समय ऐतरेय ब्राह्मण पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। किन्तु जब तक उसमें मण्डप का चित्र न मिला तब तक मैं उन उन प्रकरणों को समझ भी नहीं पाया। सौभाग्य से लायब्ररी में डॉक्टर हॉग का प्रकाशित सचित्र ऐतरेय ब्राह्मण मिला। जिस को सामने रखकर मैंने प्रकरणों को पढ़ा तब अग्निष्टोम यज्ञ को समझ सका—

यज्ञ मण्डप में अग्नि को किस प्रकार लाना चाहिए, स्थापन किस प्रकार करना चाहिए, किस मार्ग से लाना चाहिए, किस प्रकार स्थापना करनी चाहिए। ऋत्विज कहाँ-कहाँ बैठें। सदस्यों, दर्शकों के लिए पृथक स्थान, गौ आदि के लिए गोशाला का स्थान, अनेक कुण्डों का स्थान, इत्यादि स्पष्ट रूप में दिखलाया गया था। डॉक्टर हॉग ने बड़ी कठिनता से दाक्षिणात्य पण्डितों से इस यज्ञ के विधान को समझ पाया था। पूने के पण्डितों ने डॉक्टर को यज्ञ मण्डप में बहुत कुछ बैठाकर अग्निष्टोम यज्ञ की नकल करके दिखलाया था। उसी समय यज्ञ मण्डप का खिंचा हुआ चित्र डॉक्टर हॉग ने अपने छपवाये हुए ब्राह्मण (ऐतरेय) के साथ छाप दिया।

[शेष पृष्ठ [illegible] पर]

ईसाइयत का जाल

वैसे यह बात किसी राज प्रमुख, कर्मचारी अथवा भारतीय नागरिक के गले नहीं उतर सकती क्योंकि हमारे वर्तमान विधान में धर्मों का प्रचार करने पर प्रतिबन्ध नहीं है और ना हो प्रतिबन्ध होना चाहिये। परन्तु यदि धर्म का आसरा लेकर कोई आर्थिक या राजनैतिक षड्यन्त्र बनाया गया हो-उस कुचक्र को रोकने में प्रत्येक सरकारी गैर सरकारी व्यक्ति को भरसक प्रयत्न करना चाहिये।

पाठक अब मुझसे यही प्रश्न करेंगे कि भारत में मिशनरी किस प्रकार राज सत्ता को सिद्ध करना चाहते हैं जिसका उत्तर आजसे तीस वर्ष पूर्व अपने विचारों मैंने यह उत्तर दिया था।

पहले भी इन मिशनरियों द्वारा यह कुचक्र इसी लक्ष्य के लिये जारी था जिसमें यह सफल हों या न हों परन्तु यह अपने काम में इरादे से लगे हैं और विश्वास किये बैठे हैं (कभी लहर आयेगी)।

स्थान स्थान पर इनके मिशनरी के गाँव गाँव यह दौरा करते थे मैजिक लैन्टर्नों द्वारा मूर्तियां दिखाते मसीह की उच्चता का बखान करते और हर प्रकार गिरे हुये को ठुकराये गये को नीचे से नीचे को प्रत्येक दुःख का त्राण पाने के लिये मसीह की शरण में आने का उपदेश देते और पवित्र बाइबिल इन्जील को दो दो पैसे में दे जाते।

मुझे गिरे, पिटे, ठुकराये, दुत्कारे, और उनकी बातों में लोभ से अज्ञान से आ जाते और थोड़े से ही समय में बाबू जी बन जाते मैं सोचता और सोचता क्या यह मिशनरी यहाँ ईसाई धर्म का प्रचार करके अधिक संख्या में ईसाई बना कर आनेवाली कल में अपने नुमाइन्दे बना इनके वोटिंग तो नहीं करेंगे-यह भी सोचता कि क्या यह अपनी मौसी के पेटों (जमकों) के खिलाफ अपनी सत्ता चाहेंगे मेरा मन कहता अरे प्रभुता किसे बुरी लगती है, मगर यह असंभव भी तो मैदानी खिलाड़ी थे, और यह असम्भव नहीं हो सके।

पर आज का नक्शा देख कर तो कुछ दिशा में बताये सोच कर कोई हल निकाल लेगी के मुझे अब तक यही [illegible] विश्वास है कि इन मिशनरी के अन्दर अब कोई चेतना नहीं रही कि [illegible] —आज चेतना ही देना चाहिये।

और उन्होंने धर्म-धर्म पवित्र कह कर जाल फैला दिया है देखें भारतीय बुद्धू हैं या अक्लमन्द, राजनीतिज्ञ हैं या ठोठरू दास।

मेरी बातें सुन कर आप बौखलाइये नहीं है ध्यान से सोचिये इनके जाल के नमूने और तरीकों पर विचार कीजिये एक नमूना नीचे दे रहा हूँ जरा इसे विचारिये।

वाइस आफ प्रोफेसी के नाम से (फारम पोजेन्ट) पत्र व्यवहारिक स्कूल दुनिया में ऐसा सबसे बड़ा स्कूल जिसमें पवित्र बाइबिल की शिक्षा दी जाती है आजकल पूना में चल रहा है कितने ही हिस्सों में बाइबिल के पुस्तकाकार छोटे छोटे संस्करण विद्यार्थी को निशुल्क भेजे जाते हैं और एक न एक पत्र विद्यार्थी उसे भर कर भेज देता है जिसका उत्तर आता है अति उत्तम और बाद में एक प्रमाण—पत्र कुछ सुनहरा रंगीन सुन्दर पत्र विशेष।

अरे यह तो सब है धर्म और शिक्षा परन्तु मैंने इसे कुचक्र क्यों कहा। क्या इससे कुपित हुआ? जब मैंने कई विद्यार्थियों से पूछा कि इस पत्र व्यवहारिक बाइबिल शिक्षा से आप क्या चाहते हैं—क्यों इसे लिया उत्तर सुना तो दंग रह गया जो सब का एक ही उत्तर था वह था यह कि यदि कल कभी राज सत्ता ईसाई धर्म के हाथ में आई या अमरीका के हाथ में आई तो हमारा (इस वाइस आफ प्रोफेसी के प्रमाण पत्र प्राप्त व्यक्तियों का गौरव मय तिरंगे की मान मर्यादा की उपेक्षा न करके इसका कोई उपाय सोचने में समय देंगें ध्यान पहिले रखा जायेगा नौकरी में यहाँ वहां सब जगह, और कौन हैं यह विद्यार्थी नीच कहे जाने वाले अशिक्षित, बेढंगे, नही घराने वालों के तरुण जिनकी धार तो जन पर छोरे जाते जा रहे हैं जिन्हें हाथ में लेकर हमने शक्ति शाली ब्रिटेन से लोहा लिया था यह मिशनरी उन तरुण युवकों की बेकारी बे रोजगारी से इस प्रकार लाभ उठाना चाहते हैं जिससे दोनों काम सिद्ध होने के सपने देख रहे हैं भारतीय सभ्यता पर सोच रहा है मेरे पास वाइस आफ प्रोफेसी का प्रमाण पत्र है यदि मिशनरियों की सत्ता हो तो मैं भी कुछ बन जाऊँगा और यह रोग करोड़ों में व्याप्त हो चुका है क्या सरकारी गैर सरकारी सभी भारतीय अपने कर्तव्य को पहचानेंगे?

आर्य महिला मण्डल

स्वादिष्ट भोजन बना देना ही एक सुयोग्य गृहणी की पहचान नहीं वरन् उसका परोसना भी एक कला है जिसे एक योग्य गृहणी के लिये जानना अत्यन्त आवश्यक है।

अपनी-अपनी रुचि के ख्याल से कोई थाल में खाना पसन्द करता है तो कोई प्लेट में। अब लीजिये जरा थाल ही परोसने को लें। बहुत सी स्त्रियों की आदत होती है कि सूखी तथा रस की सब्जियों को थाल ही में पास पास रख देती हैं, जो देखने में अच्छा नहीं लगता। यदि वे ही सब्जियां छोटी छोटी कटोरियों में सजाई जाय तो थाल देखने में सुन्दर लगेगा। थाल लगाते समय कटोरियों के नाप का ही चुनाव करें तो और भी अच्छा हो। यदि चार प्रकार की सब्जी या रायता हो तो आप रसेदार सब्जी सबसे बड़ी कटोरी में तथा बाकी उससे छोटी में रख सकती हैं। साथ में एक चम्मच भी रख दें। बीच में पूरी या रोटी के लिये स्थान रखिये अब देखिये आप के थाल में शोभा कितनी बढ़ आयगी।

सलाद की प्लेट तो आप कितने ही प्रकार से सजा सकती हैं। सलाद के कोमल छोटे पत्तों पर एक एक कतरा गोल कटा प्याज टमाटर रखिये घिसी हुई मूली और गाजर तथा पुदीने के पत्तों से सुन्दर फूल बना सकती हैं। बीच में कहीं कहीं नीबू के चौथाई टुकड़े रख सकती हैं।

घर का बजट

आज कल प्राय परिवारों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। मँहगाई के कारण खर्च बहुत ज्यादा है। आय का अधिक भाग खर्च हो जाता है, बचत के रुपये बहुत कम बचता है और यदि आखिरी सप्ताह में बीमारी या मेहमान आयें तो आप को बचत के रुपयों को निकालना पड़ता होगा।

सीमित खर्च और बचत के लिये आप एक बजट बना लीजिये, इसमें जिसमें आप के होने वाले खर्च का अनुमान लिख लीजिये, जैसे राशन, किराया, कपड़ा, डाक्टर, स्कूल फीस, नैकर, दूध, फल, तरकारी आदि। इन सब के लिये जहाँ तक हो सके, व्यय सीमित रखिये।

इसके बाद जो आय बचे उसे दो भागों में बाँटिये। (१) किसी आकस्मिक घटना जैसे बड़ी बीमारी आदि के लिये (२) कभी किसी बड़े काम की पूर्ति के लिये जैसे शादी इत्यादि के लिये। इन मदों के लिए प्रतिमास कुछ न कुछ अवश्य बचाया जाना चाहिये।

इस प्रकार खर्च भी सीमित रहेगा और बचत भी होगी। एक बात यह और है कि जहां तक बन पड़े बचत के सारे रुपए मत निकालिए।

कभी खर्च के रुपयों में से बच जाय तो वह अपनी पसन्द की वस्तुओं कप इत्यादि पर इच्छानुसार खर्च करिये।

जिन परिवारों की आय बँधी नहीं है उन्हें भी बजट बनाना ही चाहिए। जिस महीने में अधिक आय हो उसमें रोज के आवश्यक खर्च के अतिरिक्त ऐसी वस्तुयें भी खरीद लीजिए जो कि अपने कम आय वाले महीने में काम आ सकें। इस प्रकार कम आय वाले महीने में भी खर्च का भार अधिक नहीं रहेगा।

नये व्यंजन

मौसमी अचार

शलजम का अचार

एक सेर शलजम छील कर गोल गोल काट लो और कड़ा-कड़ा उबाल लो। नमक दो तोला लाल मिर्च आधा तोला, लहसुन आधी छटाक, हल्दी चौथाई तोला भर, इन सब को एक साथ पीस कर एक तोला सरसों को तेल में सान कर शलजम के गट्टों में लपेट कर शीशे के बर्तन में शाम को रख दो। ऊपर से एक तोला शक्कर छोड़ दो और आधा तोला कलौंजी की पोटली बना कर गट्टों के बीच में रख दो। दूसरे दिन आधा सेर गर्म पानी में डाल दो। और दो रोज धूप में रख दो।

(२) गाजर व सेम का अचार

विधि वही है जो शलजम के अचार की है। इसमें लहसुन, शक्कर व कलौंजी की पोटली नहीं पड़ती।

जाति के स्तम्भ और स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी

लाजपतराय

(ले०—श्री वीरेन्द्र कुमार पत्रकार)

लाला लाजपतराय की मृत्यु पर 'यंग इंडिया' में लिखते हुए गांधी जी ने कहा था—'लालाजी एक संस्था थे। अपनी युवावस्था में ही उन्होंने देशसेवा अपना धर्म बना लिया था। उनके देश प्रेम में संकीर्णता का नाम निशान भी न था। वे अपने देश से इसलिए प्रेम करते थे कि उन्हें संसार से प्रेम था। उनकी राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयता से भरपूर थी। उनकी सेवाएं विविध थीं। वह बड़े ही उत्साही, समाज-सेवक धर्म सुधारक थे। ऐसा एक भी सार्वजनिक आन्दोलन न था, जिसमें लाला जी ने सक्रिय भाग न लिया हो। सेवा करने की उनकी भूख स्वाभाविक थी। उन्होंने शिक्षण संस्थाएँ खोलीं और बहु दलितों के मित्र बने। जहाँ कहीं दुःखी दारिद्र होता, वह सारे काम छोड़कर दौड़ पड़ते थे।" गांधी जी के इन शब्दों में लाला लाजपतराय के जीवन की पूर्णता और उनके सार्वजनिक कार्यों की महानता का सम्पूर्ण चित्र उभर आता है। जाति, समाज और शिक्षा के क्षेत्र में उनके महान कार्यों और राजनीति में उनके संघर्ष एवं आत्म त्याग के उदाहरण बहुत कम मिल[illegible]

साहित्य सेवा

लाला जी का जन्म २८ जनवरी सन् १८६५ में पंजाब के ढोंडीग्राम में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता के संरक्षण में ही हुई। बाद में उनके कुछ वर्ष लाहौर कालिज में भी व्यतीत हुए। वहीं आपका परिचय प्र० गुरुदत्त एम० ए० तथा महात्मा हंसराज से हुआ और वहीं से आर्य समाज की ओर आपका रुझान भी पैदा हुआ। आर्यसमाज के संसर्ग से ही उन्होंने जाति, समाज और स्वदेश सेवा की दीक्षा ली।

इन्हीं दिनों लाला जी को सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के भाषण पढ़ने को मिले। उनमें एक भाषण जोजेफ मेज़िनी पर था। मेजिनी की गहरी सहानुभूति ने लाला जी के जीवन को अनेक धाराओं में विभक्त कर दिया। वह जोजफ मेजिनी के व्यक्तित्व से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने मेजिनी की पुस्तक "मनुष्यों के अधिकार" का सफल उर्दू अनुवाद किया। बाद में उन्होंने अनेक पुस्तकों का लेखन कर 'साहित्य द्वारा देश सेवा' की उक्ति को चरितार्थ किया। उन्होंने मैजनी, गैरीबाल्डी, कृष्ण, शिवाजी, महर्षि दयानन्द और गुरुदत्त विद्यार्थी पर जीवनियाँ लिखकर अपनी सुन्दर लेखन शैली का परिचय दिया। 'आर्य समाज,' 'भारत का राजनीतिक भविष्य' और 'यंग इंडिया' नामक पुस्तकें उनकी अमूल्य कृतियाँ हैं, जिन्हें अमरीका प्रवास में उन्होंने लिखा था। मिस मेयो की 'मदर इंडिया' के उत्तर' में 'अनहैपी इंडिया' तो उनकी सर्वोत्कृष्ट रचना मानी गई है।

समाज सेवा

भारतवर्ष में गत १५० वर्षों में समाज और शिक्षा में जो गन्दगी आई, शायद ही पहले आई हो। समाज विकास और शिक्षा प्रगति का रुक जाना किसी भी राष्ट्र के लिए अभिशाप होता है। भारतीय समाज में कुरीतियों का प्रवेश हमारी गुलामी की नींव की ईंटों में गारे का काम करता रहा है और उसका मिटना देशोत्थान के लिए अत्यन्त आवश्यक था। सौभाग्य से हमारे देश को हर चौथाई शताब्दी में एक महापुरुष मिलता रहा, जिसके सुलझे हुए विचार और महान व्यक्तित्व से जाति, समाज और शिक्षा-क्षेत्रों में फैली हुई बदबू कम होती रही और इस प्रकार कुरीतियों को गहरे रूप में पनपने का अवसर नहीं मिला। राजा राममोहनराय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महर्षि दयानन्द, महादेव गोविन्द रानाडे और स्वामी श्रद्धानन्द प्रभृति महात्माओं ने समय समय पर सुन्दर समाज-रचना में अपना योग दिया और शिक्षा में क्रान्ति लाने के प्रयास किये।

यद्यपि लाला जी का जीवन चतुर्मुखी होने से वह किसी एक कार्य को लेकर चलने में असमर्थ थे, तथापि आर्यसमाज के निकट सम्पर्क में रहने से उनका रुझान समाज और शिक्षा-सुधार की ओर था। महर्षि दयानन्द की [illegible] वह महर्षि [illegible] सुधार और शिक्षा परिशोधन में वह महर्षि के पद चिन्हों पर ही चले।

वह शिक्षा क्षेत्र में ईसाई मिशनरियों द्वारा संचालित [illegible] स्कूलों से शिक्षा [illegible] लेकर लौटे हुए युवकों द्वारा आर्य-संस्कृति का अपमान और ईसाई सम्प्रदाय का समर्थन देखकर बहुत दुःखी थे। युवकों में भरती हुई भावना को [illegible] ही उन्हें [illegible] किसी शिक्षण संस्था की आवश्यकता महसूस हुई और इसी के परिणाम में लाहौर में डी० ए० वी० कालिज की स्थापना हुई। बहुत समय तक वह उसके अवैतनिक मन्त्री और उपप्रधान रहे तथा कभी-कभी शिक्षण कार्य भी करते रहे।

जाति रक्षा

जाति रक्षा के सिलसिले में सन् १८९९-१९०० तथा सन् १९०८ के उत्तर भारत के भयंकर दुर्भिक्षों में उनके महत् कार्यों की सराहना किये बिना नहीं रहा जा सकता। लाला जी का ही दम था कि दुर्भिक्ष स्थानों में सहायक समितियाँ और अनाथालय खोल कर लगभग २० ००० अनाथ बच्चों और कई सौ युवतियों की ईसाई मिशनरियों से रक्षा की गई। बाद में अछूतों और दलितों को हजारों की संख्या में मुसलमान और ईसाई बनाया जाने लगा, तब लाला जी ही थे कि उन्होंने अपनी वक्तृता शैली के बल पर अनेक दलितोद्धार संस्थाएँ स्थापित कर उनकी रक्षा की। इसके अतिरिक्त अलग से भी उन्होंने अछूतों और दलितों की बराबर सहायता की और उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के प्रयास किये। सहस्रों दलितों को मुसलमान और ईसाई होने से रोक कर उन्होंने हिन्दू जाति की जो सेवा की, उसके लिये राष्ट्र उनका आभारी रहेगा। समाज की बाल-विवाह आदि कुप्रथाओं को दूर करने में भी उनका सहयोग अविस्मरणीय है।

राजनीतिक क्षेत्र में

लाला जी का राजनीति में प्रवेश सन् १८८८ में हुआ। कांग्रेस के चतुर्थ अधिवेशन में उनका परिचय कुछ बड़े-बड़े नेताओं से हो गया था, [illegible] कांग्रेस के सभी अधिवेशनों में बराबर भाग लेने की सुविधा उन्हें मिलती रही और वह निर्भीक होकर अपने विचारों को जनता के सम्मुख रखते रहे। [illegible] कांग्रेस में उनका प्रभाव बढ़ा। वह कांग्रेस के [illegible] [illegible] [illegible]

(शेष अगले पृष्ठ पर)

कर्म विजय है फल की इच्छा हार है !

कर्मों ने तो मिट्टी में हरियाली भर दी,
मरुथल की भी कांचन मधु से प्याली भर दी,
किंतु तभी ही उसने थोड़ा-सा फल पाया,
जब बादल के आगे उसने शीश झुकाया,
कर्म, कर्म के लिए एक है साधना,
पर श्रम वेतन के लिए व्यापार है।
कर्म विजय है।

फल की इच्छा रखी न यदि फल मिल सका,
अजय चरण हो शिथिल बीच पथ में रुका,
आकर उसको कौन पुनः दे चेतना,
गीता का निष्काम स्वयं ही प्रेरणा,
प्राप्ति पिपासा, निष्ठा मति की शक्ति है,
आत्म शांति का कर्मयोग आधार है।
कर्म विजय है।

मैं भावों के सुमन अश्रु में जोड़ कर,
माल बनाती जो बन कर जाती बिखर,
फिर भी नित्य बनाती यह जाने बिना,
किस दिन होगी इसके द्वारा अर्चना,
भक्त चले जाते क्षण दो क्षण पूजकर,
मेरा मन तो प्रिय मंदिर का द्वार है।
कर्म विजय है।

—विद्यावती मिश्र

(पिछले पृष्ठ का शेष)

लाला लाजपत राय

के बम्बई कांग्रेस अधिवेशन में इंग्लैंड जाने वाले डेपुटेशन में गोखले जी के साथ उन्हें भी भेजना तय हुआ। विदेश में लाला जी ने जो भाषण दिए, उनसे तत्कालीन भारत की स्थिति का सही पता लगता है। इंग्लैंड में ही उनका परिचय दादाभाई नौरोजी से भी हुआ।

राजनीति में लाला जी तिलक जी को अपना गुरु मानते थे। तिलक जी भी उनसे स्वाभाविक स्नेह रखते थे। लोकमान्य के प्रति लाला जी की श्रद्धा का परिचय इसी से लगता है कि उन्होंने तिलक जी के नाम पर 'तिलक स्कूल आफ पालिटिक्स' नामक संस्था को जन्म दिया और बाद में इसी संस्था के अन्तर्गत उर्दू में 'वन्देमातरम्' तथा अंग्रेजी में साप्ताहिक 'पिपुल्स' प्रकाशित कर उसका संपादन किया। वन्देमातरम् में प्रकाशित लाला जी के ये शब्द कभी नहीं भूले जा सकते—"मेरा मजहब हक परस्ती है, मेरी अदालत मेरा अन्तःकरण है, मेरी जायदाद मेरी कलम है, मन्दिर मेरा दिल है और उमंगें सदा जवान हैं।"

बंग भंग और स्वदेशी आंदोलन

लार्ड कर्जन की अदूरदर्शिता और उसकी उद्दंड नीति के परिणामस्वरूप १९०७-८ में बंग-भंग के कारण बंगाल का कण-कण चेतन हो उठा था। इस राष्ट्रीय चेतना का प्रभाव पंजाब पर भी पड़ा। पंजाब ने करवट बदली और खुलकर बंग-भंग का विरोध किया। पंजाब की इस जागृति में लाला जी ने प्रमुख भाग लिया था, अतः ९ मई सन् १९०७ को गिरफ्तार कर मांडले (बर्मा) की जेल में नजरबन्द कर दिया गया। जेल में उन पर बहुत सख्तियां बरती गईं। बंग-भंग के साथ-साथ लाला जी की गिरफ्तारी ने पंजाब में आग भर दी और जब ११ नवम्बर १९०७ को वह रिहा होकर वापिस लाहौर पहुंचे, तो उन्होंने देखा कि बंग भंग के कारण स्वदेशी आन्दोलन भी जोर पकड़ चुका था। लालाजी ने उसमें सक्रिय भाग लिया। उन्होंने पंजाब के कोने-कोने में पहुंच स्वदेशी आन्दोलन के पक्ष में भाषण दिये और पत्रों में लेख लिखे। उनके ओजस्वी भाषणों और लेखों ने पंजाब की जनता को स्वदेशी आन्दोलन के प्रति जागरूक किया।

स्वदेशी आन्दोलन के प्रति लाला जी के विचार कितने दृढ़ थे, इसका प्रमाण उनके इन शब्दों से मिलता है, जो स्वदेशी आन्दोलन के सम्बन्ध में उन्होंने कहे थे—"मेरे विचार में स्वदेशी व्रत एक ऐसी औषधि है, जिसका संयत और निरन्तर प्रयोग हमारे दुःखों को हल्का कर देगा। मैं इसे अपने देश की चिर मुक्ति का साधन समझता हूँ। व्रत हमें आत्म सम्मान, आत्म निर्भरता, आत्म-निर्माण, स्वावलम्बन और अन्त में मानवता का पाठ पढ़ा देगा। स्वदेशी व्रत हमें सिखा देगा कि हम किसी जाति-पांति और सम्प्रदाय का विचार किये, समस्त भारतवासियों की अधिकाधिक भलाई के हेतु अपनी पूंजी, साधन-श्रम और मानसिक शक्तियों का उपयोग कैसे करें। स्वदेशी व्रत हमारे धार्मिक एवं साम्प्रदायिक मतभेदों के बावजूद हमें एक सूत्र में बांध देगा। स्वदेशी व्रत हमें एक ऐसी वेदी-प्रदान करेगा, जिस पर हम हृदय की सच्ची भक्ति और दृढ़ विश्वास संजोकर अपनी मातृभूमि की शुभकामना के लिए मिलकर खड़े हो सकेंगे।" लाला जी के इन उदात्त और गम्भीर विचारों ने पंजाब की जनता को प्रेरणा देकर स्वदेशी व्रत की ओर अग्रसर किया। सारा पंजाब स्वदेशी आन्दोलन की ध्वनि से गूंज उठा। यहाँ तक कि अनेक स्थानों पर जनता ने सामूहिक रूप से विदेशी माल की होलियां जला कर स्वदेशी-व्रत की शपथ ली।

अमरीका में भारत के पक्ष में आंदोलन

सन् १९१३ के कराची-कांग्रेस के अधिवेशन के निश्चयानुसार लाला जी को पुनः एक शिष्ट मंडल के साथ इंग्लैंड जाने का अवसर मिला। वह विदेशों में भारत के स्वतन्त्रता आंदोलन के पक्ष में जमीन तैयार करने के इच्छुक थे। अतः इंग्लैंड में उन्होंने कई भाषण दिए। वहाँ से वह जापान चले गए और जापानियों को भी अपने देश की वर्तमान स्थिति से परिचित कराया।

लाला जी जापान से सीधा भारत आना चाहते थे, उसी समय दुर्भाग्य से प्रथम विश्व युद्ध छिड़ गया और भारत सरकार ने उन्हें स्वदेश-वापिसी के लिए पार-पत्र नहीं दिया। विवश होकर वह जापान से अमरीका चले गये। अमरीका में लाला जी लगभग ५ वर्ष रहे। इस लम्बे समय में उन्होंने वहाँ रहकर भारत के पक्ष में जबरदस्त आन्दोलन किये। अमरीका में उन्होंने "इंडियन होमरूल लीग" तथा "इंडियन इन्फोर-मेशन ब्यूरो" नाम की संस्थाओं को जन्म दिया, "यंग इंडिया" नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया तथा हजारों की संख्या में लघु पुस्तिकाएं छपवा कर विदेशों में मुफ्त बटवाईं। लाला जी ने "भारत श्मशान भूमि" नामक विज्ञप्ति प्रकाशित की थी, जो भारत का सच्चे रूप में प्रतिबिम्बित करती थी। इस विज्ञप्ति से विश्व भर में धूम मच गई। बाद में इसी विज्ञप्ति का फ्रांस, इंग्लैंड, इटली, स्पेन, जर्मनी, रूस, फारस आदि देशों की भाषाओं में अनुवाद हुआ।

प्रथम विश्वयुद्ध १९१८ में समाप्त हुआ और उसी वर्ष जलियाँ वाला बाग हत्याकांड से ब्रिटिश नौकरशाही ने अपने पापस्वरूप भारत की जमीन को रक्तरंजित कर दिया। सुदूर अमरीका में लाला जी ने अंग्रेजों के इस अमानुषी कृत्य को दुःख के साथ सुना। उनके हृदय में एक आग्नेय अग्नि शिखा धधक उठी, वह तड़प उठे। उनकी इस तड़पन में स्वाभिमान एवं स्वदेशाभिमान का अद्भुत मिश्रण था। उसी समय लालाजी ने सिंह के समान दहाड़ते हुए पूरे क्रोध और क्षोभ के साथ अपनी बुलन्द आवाज में अंग्रेजी शासन के प्रति अवज्ञा और घृणा प्रकट करते हुए अमरीकियों को ब्रिटिश नौकरशाही के इस अन्याय अत्याचार और बर्बरतापूर्ण कृत्य का परिचय दिया! उन्होंने कई लेख भी अमरीका के प्रमुख समाचार पत्रों में प्रकाशित किए।

इस प्रकार लाला जी को विदेश में अपने देश के पक्ष में जमीन तैयार करने में अप्रत्याशित सफलता मिली।

असहयोग आंदोलन

प्रथम विश्व युद्ध में भारतवासियों द्वारा अंग्रेजों की दिल खोलकर सहायता करने के बावजूद सरकार ने अपनी काली-करतूतों में किसी प्रकार की कमी नहीं की। भारतीय विदेशी सत्ता से थक चुके थे। गर्म नर्म के झगड़े से तथा अन्य सैद्धान्तिक प्रश्नों पर देश के नेताओं में यद्यपि गहरा मतभेद था, तथापि विदेशी शासन से मुक्ति के प्रश्न पर सब एक थे और सभी में स्वशासन की भावना थी। अतएव सितम्बर १९२० में गांधी जी के कार्यक्रम पर विचार करने के लिए कलकत्ता में कांग्रेस की एक असाधारण बैठक हुई। इसकी अध्यक्षता लालाजी ने की। लोकमान्य की मृत्यु ने और गांधी जी के कांग्रेस-प्रवेश ने कांग्रेस की राजनीति में अभूतपूर्व परिवर्तन ला दिया था। स्वाभिमानी प्रकृति के होने के कारण असहयोग आंदोलन अथवा सत्याग्रह में लाला जी की विशेष आस्था न थी। वह यदाकदा अपनी इस अनास्था को अपने भाषणों में भी प्रकट करते रहते थे। किंतु कुछ न होने से कुछ होना वह भी पसन्द करते थे। इसीलिए जब असहयोग आंदोलन छिड़ा तो वह उसमें कूद पड़े। देखते ही देखते उन्होंने पंजाब भर के स्कूल-कालिजों को खाली करा दिया। सिर्फ डी० ए० वी० कालिज की दशा को लालाजी ने कभी अपने श्रम-बिन्दुओं से सींचा था। उसे ही खाली कराने के लिए उन्हें धरना तक देना पड़ा। लालाजी द्वारा पंजाब की इस जागृति को सरकार बहुत समय तक सहन न कर सकी और उन्हें ३ दिसम्बर १९२१ को गिरफ्तार कर पुनः जेल में ठूंस दिया गया। इसके बाद तो सरकार की उन पर कई बार मेहरबानियाँ हुईं और कई बार उन्हें गिरफ्तार कर जेल की यात्रा कराया गया।

(शेष पृष्ठ १० पर)

वर्तिका विश्वास की शाश्वत रहे!

चाह की झंझा बुझा पाये नहीं,
चाह को तृष्णा निकट आये नहीं,
चाह के संघर्ष से मानें न भय—
स्नेह की शुभ ज्योति मुरझाये नहीं,
स्वप्न का संसार ही चाहे रहे!
वर्तिका विश्वास की शाश्वत रहे!!

मनुज को मनुजत्व देने के लिए,
मस्त को निज स्वत्व देने के लिए,
क्षीण क्षण-भंगुर जगत व्यवहार को—
सृजन का अमरत्व देने के लिए,
काव्य की करुणा सदृश युग-युग बहे!
वर्तिका विश्व की शाश्वत रहे!!

दे नवल संदेश नूतन प्रेरणा,
दे नवल उद्देश्य, नूतन चेतना,
देवता का रूप तो बदले नहीं—
किन्तु नूतन भाव से हो अर्चना,
मौन जलकर बात यह अपना कहे!
वर्तिका विश्वास की शाश्वत रहे!!

—विद्यावती मिश्र

भारत में जेसुयट ईसाई मिशनों का भयंकर जाल

क्या अपनी संतान को अपने जीते जी विधर्मी बनने दोगे ?

(लेखक श्री माननीय प० शिवदयालु जी)

भारत के विभिन्न प्रदेशों में इस जेसुइट सोसायटी की शाखायें देखने में आती हैं। यह मिशन पूर्णतया फासिस्ट एवं राष्ट्र विरोधी हैं इस सोसायटी का जन्म १५३६ में स्पेनिश सिपाही इग्नेशियस लायोला द्वारा हुआ था। इस सोसायटी का अध्यक्ष फादर जनरल कहाता है। सन् १७७३ ई० में रोम के पोप ने इस सोसायटी को बन्द कर दिया था बन्द करने का कारण पोप की आज्ञाओं का न मानना ही प्रतीत होता है, अन्य वैधानिक इनके फादर जनरल को काला पोप 'ब्लैक पोप' कहते हैं, पोप द्वारा बन्द किये जाने की घोषणा होने पर इन्होंने अपना हैड क्वार्टर रूस को बनाया और १८२० में इन्हें रूस से भी निकाल दिया गया।

अनेक देशों में युद्ध कराने और गुप्त षड्यन्त्र रचकर राज्यों को पलट देना इनका कार्य-क्रम रहा है। यूरोप के अनेक देशों में इनका प्रवेश निषिद्ध है, किन्तु मूर्खता की पराकाष्ठा को पहुँची हुई भारत की उदारता ने इनको अपने यहाँ आज भी आश्रय दिया हुआ है।

जेसुयट शब्द का अर्थ कपटी, धूर्त, छलिया, षड्यन्त्रकारी आदि ब्रिटानिया इन्साइक्लोपीडिया में दिया हुआ है. यह जेसुयट घोर प्रतिक्रियावादी, धर्मान्ध एवं चरित्र में गिरे हुए लोग हैं।

आज हम राजस्थान के केन्द्र जयपुर नगर में स्थापित जेसुयट मिशन और उसकी संस्था सेंट जेवियर इन्स्टीट्यूट का परिचय देना चाहते हैं, इस संस्था का जयपुर में जन्म जौलाई सन् १९४१ ई० में वहा के भूतपूर्व मुख्य मन्त्री श्री मिर्जा इस्माइल खाँ के कार्यकाल में हुआ था। मिर्जा साहब ने इस संस्था को राज्य के कोष से पर्याप्त धन दिया तथा भूमि प्रदान की हनुमान मन्दिर का कुआ तथा अहाते का एक बड़ा भाग भी इसको दे डाला गया, यह संस्था धर्मप्राण राजस्थान की हिन्दू जनता को धर्म संस्कृति एवं आचार से भ्रष्ट करने के केवल उद्देश्य से स्थापित की गई है।

जेसुयट मिशन की यह सेन्ट जेवियर संस्था सेंट मेरी अकादमी की भांति ही धनीमाना जमींदार एवं शासक वर्ग की सन्तान को भ्रष्ट करने की नियत से स्थापित की गई है। जयपुर की इस संस्था में सम्प्रति ७०० छात्र शिक्षा पाते है। मासिक फीस २० रु० से २५ रु० तक है, इस स्कूल की वार्षिक आय १ लाख रुपया है। जब कि इसका व्यय केवल डेढ़ लाख है अर्थात् डेढ़ लाख रुपया प्रतिवर्ष अपने मिशन कार्य के लिये यह चालाक विदेशी पादरी इस संस्था से कमाते हैं।

संस्कृति विरोधी कार्य

बालकों को केरेक्टर नाम से बाइबिल की शिक्षा यहाँ दी जाती है और भारतीय महापुरुषों के प्रति घृणा का पाठ राम कृष्ण की कमतरि को पढ़ाया जाता है।

गुलाब सिंह, जोगेन्द्र सिंह, जितेन्द्र सिंह, शिवनारायण, भगवती सिंह आदि आर्य बालकों को संस्था की सीमा में पीटर, बरटी, विक्की, डेविड व रोबिन आदि नामों से पुकारा जाता है, संस्था के ७० प्रतिशत छात्र जो सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी अग्निवंशी राजपूत हैं, मानसिक रूप से ईसाई बन गए हैं, क्या स्वतन्त्र भारत का हिन्दू अब इस जाति और धर्म के नाश को भविष्य में सहन करेगा और राजस्थान की सिक्यूलर सरकार क्या हिन्दुत्व के नाश पर ही गर्व करती रहेगी ?

स्कूल में छात्र भारतीय वेश धारण नहीं कर सकते और न भारत की राष्ट्र भाषा एवं राजस्थान की प्रादेशिक भाषा हिन्दी को बोल सकते हैं और नाहीं किसी प्रकार का हिन्दू पर्व मना सकते हैं। यदि मनाना चाहें तो बेतिया, पटना आदि के ईसाई स्कूलों की भाँति छात्रों को सिक्यूलर सरकार द्वारा १४४ धारा लगवाकर तथा लाठी चार्ज करवाकर दमन किया जाता है।

बालकों को अंग्रेजी गाने सिखाए जाते और मांस भक्षों का प्रेमी बनाया जाता है।

राष्ट्रीयता विरोधी कार्य

भारत के राष्ट्र ध्वज को टेबल के नीचे लगाकर उसका अपमान किया जाता है और राजस्थान की मधु सब सरकार इन विदेशियों से जवाब तलब तक करने की जुरत नहीं करती।

भारत के प्रधान मन्त्री प० जवाहरलाल को कम्यूनिस्ट कह कर गालियां दी जाती हैं और नेहरू को मुंह पर खुशामद करने वाले राजस्थान के मन्त्री इन गालियों को नेहरू की पीठ पर सहते रहते हैं।

राष्ट्रीय पर्व १५ अगस्त व २६ जनवरी भी यहा नहीं मनाए जाते। इतना ही नहीं राष्ट्रीय पर्वों में छात्रों को भाग भी नहीं लेने दिया जाता।

भारतीय अध्यापकों को निकाला जा रहा है और विदेशी उनके स्थान पर रक्खे जा रहे हैं।

राजस्थान शिक्षा-विभाग के ओर की यहाँ खुली अवज्ञा होती है और कोई पूछने वाला नहीं। मानो राजस्थान में गौरांग प्रभुओं के गुलामों का ही राज्य चल रहा है।

आज हम पुनः बल-पूर्वक आर्य हिन्दू जनता तथा उनके नेताओं से अपील करते हैं कि वह विदेशी मिशनों द्वारा संचालित शिक्षा संस्थाओं के राष्ट्रीयकरण का आन्दोलन तुरन्त से उठाए और जब तक सरकार ऐसा न करे इनका बहिष्कार किया जावे और हिन्दू बालक, बालिकाओं को यहाँ पढ़ने से रोका जावे इस रोकने में यदि पिकेटिंग करना आवश्यक हो तो वह भी किया जावे।

हमें अपने सामने अपनी सन्तान को विधर्मी नहीं बनने

कार यदि राष्ट्रीयता का दम भरती है तो उसे इन राष्ट्र द्रोही विदेशी मिशनों को तुरन्त बन्द करना चाहिये तथा इनकी सब संस्थाओं को अपने हाथ में ले लेना चाहिये।

संसार ही क्या ?

जिसकी कभी रूप-छटा न लखी,
उस कल्पित मूर्ति से प्यार ही क्या !
जिसका न पता है ठिकाना हमें,
उसे देखने का अनुराग ही क्या ?
जिससे मिलना है असम्भव सा,
उससे मिलने का विचार ही क्या !
नहीं भाग्य में जो है "अलिन्द" कभी—
वह कल्पना का संसार ही क्या !

—"अलिन्द"

जनता में जागृति चाहिये

(पृष्ठ २ का शेष)

इसी प्रकार अभी अनाप चुने हुये सदस्यों की संख्या बढ़ गई है और अब उनके भत्तों आदि का खर्चा भी बढ़ गया है जिसको देने वाली है भारत की जनता।

इतना अधिक खर्च बरदाश्त करने के बाद भी अगर शासन ढ़ांचा रहे, उसके बनाये कानूनों में साल भर में दो तीन बार संशोधन की जरूरत पड़े, जनता का रुपया उनको समझने में, ठीक कराने में भी बरबाद हो तो यह परिस्थिति असह्य हो जायेगी। इस परिस्थिति को सुधारने के दो ही तरीके हैं। या तो यह शासन व्यवस्था बदल कर तानाशाही बुलाई जाय या जनता अपने प्रतिनिधियों पर अधिक नियन्त्रण रखना प्रारम्भ करे और इसके लिये अधिक सावधान व जागृत हो। शासन व्यवस्था इतनी जल्दी बदलना न तो इतना आसान है और न सम्भव ही है और फिर इसे चलाये अभी समय भी कितना हुआ है। अतएव सबसे आसान, आवश्यक और संभव कार्य है कि जनता स्वयं जागृत हो जितनी जल्दी होगी उतना ही अच्छा होगा क्योंकि ऐसा करके वह अपने समय, शक्ति और धन का दुरुपयोग होने से बचा सकेगी।

एक लघु-कथा

पाप छुड़ाने वाली कन्या

धनवान पिता की एक मात्र सन्तान मालती की माँ जब उसकी आयु ७ वर्ष की थी, स्वर्ग सिधार गई। पति के बार-बार पूछने पर भी उसने मरते समय मालती को उच्च शिक्षा देने की ही अपनी इच्छा प्रकट की। गृहस्थी के मामले में स्त्रियां पुरुषोंसे अधिक दूरदर्शी होती हैं। उसने सोच लिया कि धनवान पिता अवश्य ही दूसरा विवाह करेगा क्योंकि भारत वर्ष में नरक से त्राण पाने के नाम पर और साल में कम से कम दो बार मोटे चावलों के भात का पिंड पाने तथा जल के तृप्यंताम के बन्द चुल्लू पीने के लिये हिन्दू गरीब पिता भी कन्या के होते पुत्र प्राप्तिके बहानेसे गरीबों की कन्याओं का उद्धार करने का सत प्रयत्न करता ही रहता है। कन्या तो मानों सन्तान होती है ही नहीं—इसलिये मेरी कन्या शिक्षित होने से ही सुखी रह सकती है। विमाता बुरे स्वभाव की आई तो उसके व्यवहारों को वह शिक्षा के प्रताप से ही सहन कर लेगी। पिता ने यथा नियम पहले वर्ष में ही एक १४ वर्ष की बच्ची से, जो मालती से सिर्फ ७ वर्ष बड़ी थी। किन्तु उसके घर वालों ने भारत के गर्म मौसम की सहायता से उसे अच्छी खासी औरत बना दिया था, विवाह कर लिया। पिता का मालती स्नेह दिन दिन बढ़ने लगा, उसकी शिक्षा में उन्होंने कुछ उठा नहीं रखा। उत्तम स्कूलमें उत्तम ढंग से उसकी पढ़ाई का प्रबन्ध किया गया। घरपर भी सुयोग्य शिक्षक उसे पढ़ाने लगे। उधर उसकी बुद्धि बहुत प्रखर थी; सब बातों में वह अपनी मां की ही प्रतिमूर्ति थी। मैट्रिक में सर्वप्रथम आने से पिता को परम हर्ष हुआ, किंतु उस हर्ष के फूल में जो कांटा उसके दिल में चुभता था वह उसकी माँ का न रहना था। उसे यही पछतावा रहने लगा कि आज वह होती तो अपनी कन्या की सफलता पर कितनी प्रसन्न होती। उसकी दूसरी स्त्री भी बहुत सुशील आई और उसके दो पुत्र दो-दो वर्षों के अन्तर पर उत्पन्न होने से अब पिता को अपने इहलोक परलोक दोनों के सुख का पूर्ण निश्चय हो गया। मालती अपने भाइयों को सगा भाई समझती थी, और अपनी विमाता को उनके रक्षक, और शिक्षक से बिलकुल निश्चिन्त रखती थी। माधव भाई का गृहस्थ बहुत ही सुख का था, व्यापार दिन-दिन बढ़ रहा था। मालती की आयु १८ वर्ष की हो गई थी। वह एम० ए० में पढ़ती थी। पिता से उसने पत्र द्वारा विनती की कि उसे मन भर पढ़ लेने दें। जब पढ़ चुके तब उसके विवाह आदि का प्रसंग उठावें। इसी समय दूसरा विषय शुरू आरम्भ हो गया। पिता का अंग्रेजी दवाओं का व्यापार था, उसमें सोना बरसने लगा। दिन-दिन मां और मालती के लिए हीरों के भारी-भारी आभूषण आने लग, मोटरें हर तीसरे महीने बदली जाने लगीं। एक दिन मालती ने अपने मेहता से पूछा—काका आज कल बापू बुरी तरह रुपया कमा रहे हैं इसमें कहीं पाप का संभव तो नहीं है? मेहता मालती को सन्तान की तरह प्यार करता था, उस पर उसका जन्म से ही प्यार था। उसने कहा बेटी थोड़ा नहीं बहुत भारी संभव है। जो दवायें युद्ध ग्रस्त शत्रु देशों से आती थीं उनका आना बन्द हो गया [illegible] तुम्हारे बाप ने इन दवाओं का नकली माल तैयार करने का कारखाना खोला है। उसमें जो शीशी २५) रु० में बिकती है उसकी लागत ४ पैसे भी नहीं है। अनेक रोगी इन दवाओं से रोग मुक्त न होने के कारण मर चुके होंगे। यह सुन कर मालती के मन पर भारी चोट लगी। उसने पिछले दो तीन महीने में उसे जो हीरे के भारी आभूषण मिले थे, उसी दिन निकाल कर पिता की तिजोरी में रख दिये और पुराने हलके आभूषण पहन लिये। उसने अपनी माँ से सब हाल कहा, मां बोली तुम जानती हो मेरीबात वे कब सुनते हैं। तुम कहोगी तो कुछ समझ सकते हैं। उसने रात को भोजन को मना कर दिया। पिता जी १० बजे काला बाजारी क्लब से लौटे तो उन्हें मालती के भोजन न करने का हाल मालूम हुआ। तत्काल उसके कमरे में गये तो बैठी पढ़ रही थी। उन्होंने पूछा बिटिया, कैसी तबियत है। आज भोजन नहीं किया?

पिता जी तबीयत बहुत खराब है। मुझे आज आप के व्यापार और उसमें होने वाले अन्धाधुन्ध लाभ का रहस्य काका से मालूम हुआ। मैंने मन में ठान लिया है कि यदि आप इस व्यापार को आज ही बन्द नहीं करेंगे तो मैं काका के घर चली जाऊँगी। इस घर में अन्न जल ग्रहण नहीं करूंगी।

'बेटी, हमारे व्यापार में तुम क्यों दखल देती हो?'

'व्यापार होता तो मुझे दखल देने की जरूरत नहीं थी। किंतु यह तो महान हत्याकांड है। इसे बिना बन्द कराये मैं नहीं मानूंगी।'

'बेटी! तुम्हारे बूढ़े काका की बुद्धि नष्ट हो गई है। उन्हें इन सब बातों को बच्चों से कहने की क्या आवश्यकता थी?'

'पिता जी उनके पुण्य और धर्म ज्ञान के कारण आप इस समय तक पाप के फल भोग से बचे हुए हैं। मेरे पूछने पर ही उन्होंने मुझे बताया। क्या वह मुझसे झूठ बोलते?'

"चलो भोजन करो, कल से व्यापार बन्द होगा।'

"पिता जी मुझे पूर्ण विश्वास था, कि आप मेरी टेक रखेंगे। अब मेरी एक विनती है, लाभ का सब धन माताजी के नाम से एक स्त्रियों के लिए अस्पताल बनाने में खर्च कर दीजिए। गरीब स्त्रियों की प्राण रक्षा होने पर जो पाप लगा है शायद धुल जाय।'

यह भी मंजूर है।

'बस मेरे पिता' इतना कह कर उससे गला रुक जाने से आगे कहा नहीं गया पिता के चरणों में लोट गई।

वाजपेय यज्ञ

[पृष्ठ ४ का शेष]

विचार करने की बात है कि क्या इन याज्ञिकविधि विधानों का कोई तात्पर्य नहीं? क्या ये सब व्यर्थ के आडम्बर हैं? क्या हमारे प्राचीन पूर्वजों ने (जो इतने बुद्धिमान थे) इन यज्ञों की परम्परा को सम्भालने में व्यर्थ ही बहुमूल्य समय नष्ट किया?

कहते हैं कि सतयुग में कृतयुग में इस प्रकार के यज्ञ नहीं थे—लोग तप को ही प्रधान मानते थे, इसलिये वह युग तप प्रधान था। सतयुग के पश्चात त्रेतायुग आया, यह ज्ञान प्रधान युग रहा। द्वापर युग में यज्ञ चल पड़े और यज्ञ यागों की प्रबलता हुई।

फिर सबसे पीछे कलियुग आया इसमें दान की ही प्रधानता रही।

तप पर कृतयुगे।
त्रेताया ज्ञानमुच्यते॥
द्वापरे यज्ञ मित्याहुः।
दानमेक कलौ युगे॥

भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं कि:—

यज्ञो दान तपश्चैव।
पावनानि मनीषिणाम्॥
एतान्यपि, तु कर्माणि।
सङ्ग त्यक्त्वा परन्तप॥
कर्तव्यानीति मे पार्थ।
निश्चित मतमुत्तमम्॥

हे अर्जुन यज्ञ दान, तप मनुष्यों को पवित्र करने वाले हैं। और यदि फलाकांक्षा छोड़कर किये जायें तो बहुत ही उत्तम है यह मेरा उत्तम मत है।

गीता के इस श्लोक में कहे हुए ये कौन से यज्ञ हैं?

महाभाष्यकार पतञ्जलि कहते हैं कि पहिले समय में सौ सौ वर्ष-सहस्र सहस्र वर्ष के यज्ञ होते थे अर्थात् पूर्णाहुति सौ-सौ वर्ष सहस्र-सहस्र वर्षों में पड़ जाती थी। अर्थात् यज्ञ प्रारम्भ होने के पश्चात अनेक पीढ़ियों में जाकर यज्ञ समाप्त होते थे। ये कौन से यज्ञ? और वेद कहता है—

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः।
तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्॥
ते ह नाकं महिमानः सचन्त।
यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥

पहिले देव अर्थात् विद्वान यज्ञों से यज्ञ नामक परमात्मा को प्राप्त कर लेते थे। यज्ञ ही उनका मुख्य धर्म था। इन्हीं यज्ञों द्वारा वे बड़े भारी स्वर्गलोक को प्राप्त कर लेते थे। जिस स्वर्गलोक में उनके पूर्व पुरुष सिद्ध बने हुये रहते हैं, सुख भोगते रहे हैं। यजुर्वेद में वर्णित यह कौन से यज्ञ हैं।

लाला लाजपत राय

(पृष्ठ ७ का शेष)

साइमन कमीशन और लाला जी की मृत्यु

लालाजी स्वाभिमानी व्यक्ति थे। वह सब कुछ सहन कर सकते थे पर अपना और अपने राष्ट्र का अपमान उन्हें सह्य न था। उनके इस स्वभाव से ही उनकी जान गई।

भारत के लिए साइमन-कमीशन की नियुक्ति और उसमें एक भारतीय का भी न होना लालाजी को बहुत खला। उन्होंने इसे अपनी मातृभूमि का अपमान समझा और साइमन कमीशन के बहिष्कार के लिए समस्त देशवासियों से अपील की। परिणाम-स्वरूप अक्टूबर १९२८ में जब कमीशन ने भारत की भूमि में पैर रखा तबसे उसका काले झंडों से स्वागत किया गया और सारा देश 'साइमन वापिस जाओ' के नारों से गूंज उठा। अपने दौरे में कमीशन ३० अक्टूबर को लाहौर पहुंचा। लाहौर के नागरिकों ने धारा १४४ तोड़कर जलूस की शक्ल में उसका घोर विरोध किया। लाला जी जलूस का नेतृत्व कर रहे थे। गोरा पुलिस ने क्रोधकर जलूस पर लाठी चार्ज किया और रायजादा हंसराज के बीच में आ जाने पर भी कई लाठियाँ लालाजी के सिर पर पड़ीं। इतने बड़े अपमान को वह पी न सके। फलतः १७ नवम्बर १९२८ को उनका देहान्त हो गया। लालाजी के रूप में देश ने एक स्वदेश प्रेमी स्वाभिमानी-जाति ने अपना स्तम्भ तथा दलितों ने अपना सहायक खो दिया।

यथार्थवादी

लालाजी की सर्वाधिक प्रशंसा की जा सकती है उनकी वास्तविक बुद्धि को लेकर। कुछ लोगों को यह भी प्रतीत हो सकता है कि वह क्रान्तिकारी से प्रतिक्रियावादी बन गए। किन्तु यदि क्रान्ति की भावना वह वायु है, जो राज्य रूपी पोत को आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक है, तो वस्तुवाद वह बोझ है जो जहाज को सीधा रखने के लिए उसकी पेंदी में लादा जाता है। लालाजी की धारणा थी कि सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति के लिए भारत को दृढ़ आधार की आवश्यकता है। यदि अत्यधिक उग्र गति को देखकर कभी कभी उन्हें परेशानी होती थी तो वह उत्साह के अभाव के कारण नहीं, बल्कि इस चिन्ता के कारण कि कहीं अत्यधिक तेज चाल को ही समाप्त न कर दे। प्रगति भी तो व्यवस्थापूर्वक ही होनी चाहिए।

राजनीति के मूल्यों का मान सदा स्थिर नहीं रहता। प्रत्येक आने वाले युग के अपने अलग मानदंड होते हैं। किंतु मुसीबत में धैर्य, कष्ट में उत्साह और ईमानदारी से ग्रहण किए गए आदर्शों की पूर्ति में अथक प्रयत्न और दृढ़ एकाग्रचित्तता के कारण उत्पन्न प्रशंसा व श्रद्धा में किसी भी युग का कोई परिवर्तन कभी नहीं कर सकता। ये शाश्वत गुण हैं और मानव की महत्ता तथा उसकी योग्यता के अपरिवर्तित एवं अपरिवर्तनीय मानदंड हैं।

लालाजी में कमियां भी थीं। कमियां किस मानव-आत्मा में नहीं होतीं? पर उनकी रचनात्मक सफलताएं उनकी असफलताओं से अधिक व्यापक हैं, जो स्मृति से मिटाई नहीं जा सकतीं और इतिहास में उनका स्थान निश्चित है। इन्हीं सफलताओं के कारण लालाजी राष्ट्र के आदर और प्रेम के पात्र हैं।

त्यागपूर्वक उपभोग करो

(पृष्ठ ३ का शेष)

चौथा साक्षात् स्वस्य च प्रियमात्मनः को बतलाया है। उसका अभिप्राय यह है कि यदि हम यह जानना चाहते हैं कि दूसरे के साथ किया हुआ कोई व्यवहार अच्छा है या बुरा, तो अपनी आत्मा से पूछ कर देखें कि यदि हमारे साथ कोई वैसा व्यवहार करे, तो हम उसे अच्छा समझेंगे या बुरा? यदि हमें अपनी आत्मा से यह उत्तर मिले कि यदि कोई अन्य व्यक्ति हमारे धन को चुरा ले तो हमें बुरा लगेगा तो समझ लो कि दूसरे के धन को चुराना बुरा है, अतः पाप है। प्रत्येक मनुष्य अपनी स्वाधीनता से प्यार करता है। उस पर अनुचित प्रतिबन्ध लगे तो उसे बुरा मानता है, इससे स्पष्ट है कि जो व्यक्ति दूसरों की स्वाधीनता का अपहरण करता है, वह बुरा काम करता है। यही पाप और पुण्य को पहिचानने का सब से सरल और प्रत्यक्ष उपाय है। महाभारत में व्यास मुनि ने निम्नलिखित श्लोक में पाप पुण्य की इस कसौटी को बहुत सरल ढंग से समझाया है—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

धर्म का सार सुनो, और सुनकर उस पर विचार करो। जो व्यापार तुम्हारी आत्मा को प्रतिकूल मालूम होता है, वह दूसरों के साथ मत करो। व्यवहार की यह सरल से सरल कसौटी है। तुम नहीं चाहते कि कोई दूसरा व्यक्ति तुम्हें गाली दे, तुम दूसरे को गाली मत दो। यदि कोई आदमी तुम्हारी किसी वस्तु पर अधिकार करना चाहे तो तुम दुखी होते हो, बस समझ लो कि तुम्हें भी दूसरों की किसी वस्तु पर अधिकार न जमाना चाहिए। 'मा गृधः कस्य स्विद्धनम्' का यही अभिप्राय है।

अपने धन की रक्षा करो

तुम दूसरों के धन की अभिलाषा मत करो, इसके अन्तर्गत यह तात्पर्य भी आ जाता है कि अपने धन की रक्षा करो। इस मन्त्र के पूर्वार्द्ध में कहा है कि जगत् की वस्तुओं का निर्लेप होकर उपभोग करो। उपभोग तभी हो सकता है, जब हम उन्हें परिश्रम से प्राप्त करें, और प्राप्त करने के अनन्तर उनकी रक्षा करें। अपनी वस्तुओं की रक्षा न करें, और दूसरों की वस्तुओं पर हाथ डालने का विचार भी न करें, तो प्रश्न है यह कि उपभोग किसका करें। यदि वैदिक कर्मशास्त्र के आधारभूत इस 'ईशावास्य' मंत्र का सार सरल शब्दों में बतलाना हो तो हम कहेंगे कि ईश्वर के बनाये, और ईश्वर द्वारा नियन्त्रित इस जगत् को अपने परिश्रम से कमाई हुई मूल्यवान वस्तुओं की आसक्ति से रहित होकर उपभोग करो। उपभोग की मस्ती में आकर दूसरों की वस्तुओं को अपनाने का यत्न न करो, और अपनी वस्तुओं की यत्न पूर्वक रक्षा करो।

जो विचारक 'त्यक्तेन भुञ्जीथाः' का यह अभिप्राय समझते हैं, कि मनुष्य का कल्याण धन के सर्वथा त्याग में है, वे धर्म के मर्म को नहीं समझते। [illegible] ने धर्म का यह लक्षण किया है। 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः' जिससे इस जीवन में 'अभ्युदय' अर्थात् ऐश्वर्य और निःश्रेयस प्राप्त हों, और उसके पश्चात 'निःश्रेयस' अर्थात् मोक्ष मिले वह धर्म है। जब 'अभ्युदय' का साधन धर्म है तो 'अभ्युदय' पाप कैसे हो सकता है। जीवन की दैनिक और प्रारम्भिक आवश्यकताओं से लेकर चक्रवर्ती राज्य तक अभ्युदय शब्द के अन्तर्गत है। धर्मानुसार उन सब उत्तम और सुखदायी वस्तुओं को प्राप्त करके उनको उपभोग करना न केवल उचित है, अपितु कर्तव्य कर्म है—शर्तें केवल दो हैं, उनका उपभोग करते हुये उनमें लिप्त न हों, और उन्हें प्राप्त करते समय यह ध्यान रखें कि कहीं तुम किसी दूसरे के अधिकार या पदार्थ पर हाथ तो नहीं डाल रहे हो। यदि ये दो दोष न हों तो जगत की किसी अच्छी वस्तु को प्राप्त करना या उसका उपभोग करना अपराध नहीं है, प्रत्युत धर्म है।

'जीवो जीवस्य भोजनम्' का सिद्धांत

'जीवो जीवस्य भोजनम्' महाभारत के इस वाक्य का यह अभिप्राय है कि इस संसार में बड़ा जीव छोटे को खा जाता है। यह संसार की वस्तुस्थिति का वर्णन है। यदि हम यह कहें कि जल की भाँति मनुष्य में भी प्रायः नीचे की ओर बहने की प्रवृत्ति होती है तो यह वस्तुस्थिति का वर्णन अवश्य है, परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि यह कल्याणकारी [illegible] कोई सिद्धान्त है। बुद्धिहीन जीवों में यह प्रवृत्ति है कि वे एक दूसरे को खा जाते हैं—जो बलवान् होगा वह निर्बल को खा जायगा। वे जीव पशुपक्षी हों, या मनुष्य देह धारी—यदि वे विवेक से काम नहीं लेते तो वे 'जीवो जीवस्य भोजनम्' के पाशविक सिद्धान्त पर चलते हैं। परन्तु मनुष्य को सोचने की शक्ति इस लिये दी गई है कि वह भले और बुरे में विवेक कर सके। मनुष्य और पशु में यही भेद है।

ईसा की उन्नीसवीं शती के [illegible] जब योरोप के विचारकों ने विकासवाद की खोज में अपनी बुद्धि का उपयोग किया था। उन्होंने देखा कि सृष्टि के संघर्ष में आकर प्रायः वे ही बच जाते हैं जो बलवान् और योग्यतम होते हैं। जो निर्बल हों वे नष्ट हो जाते हैं। उन्होंने इससे यह परिणाम निकाला कि इस संसार में भाग्य से वे ही जीवित हैं, जो हर प्रकार से श्रेष्ठतम हैं और भविष्य में भी ऐसा ही रहेगा। यदि इस युक्ति श्रृंखला को मान लिया जाय तो हम इस नतीजे पर पहुँच जाते हैं कि मनुष्य जाति की उन्नति के लिये आवश्यक है कि मनुष्यों और जातियों का संघर्ष निरन्तर जारी रहे। "मैं दूसरे के अधिकार पर आक्रमण न करूं" यह भावना नष्ट हो जाय, ताकि बलहीन मनुष्य या मनुष्यसमूहों को नष्ट करके बलवान् और भी अधिक बलवान् होते जायें। विकासवाद और विज्ञान के चमत्कारों की चकाचौंध से अन्धे आँखों वालों ने एक ऐसे भविष्य की कल्पना की। जिसमें योरप की 'सिविलाइज्ड' जातियाँ सारे भूखण्ड पर छा जायेंगी, क्योंकि वे योग्यतम होंगी। गोरों की गाड़ी पीलों और कालों को रौंदती हुई सारी पृथ्वी पर छा जायगी। ऐसी कल्पनाओं ने 'योग्यतम का बचाव' 'निर्बलों का नाश' 'जीवन संघर्ष' जैसे वाक्यों को सिद्धांतों का रूप दे दिया, जो वस्तुतः अन्धी प्रकृति की अनीतियों का वर्णन करने वाले थे। सहानुभूति और विवेक, जो मनुष्य के विशेष गुण हैं, उन्हें भुलाकर, केवल पाशविक प्रवृत्तियों को संसार की उन्नति का साधन मान लेने के परिणामों को हम स्पष्ट देख रहे हैं। गत ५० वर्षों में निरन्तर 'संघर्ष द्वारा योरोप ने न केवल अपना अपितु संसार भर का जो विनाश किया है, इतिहास में उसकी उपमा मिलनी कठिन है। प्रलय प्रवाह के समान विनाशकारी युद्धों का इतना लम्बा अनुभव प्राप्त करके अब भी पश्चिम ने पूरी तरह 'निरन्तर संघर्ष' जैसी कल्पनाओं की निस्सारता और अन्धता को समझा या नहीं, यह कहना कठिन है।

इस प्रकार की सब कल्पनाओं के आधारभूत जो भौतिकवाद है, 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्य स्विद्धनम्' यह श्रुति वाक्य उन सब का एक उत्तर है। प्रत्येक मनुष्य और जाति का यह धर्म है कि वह अपने अधिकारों तथा पदार्थों का संयमपूर्वक उपयोग करे, परन्तु दूसरों के अधिकारों तथा पदार्थों की अभिलाषा भी न करे। मनुष्य जाति के कल्याण का एक यही उपाय है।

जागरण

विहँस रहा विकास है खडा समक्ष जागरण,
उठो तुम्हे पुकारती प्रकाश की प्रथम किरण।
प्रगति प्रलय मचा रही, हठात् सिन्धु-ज्वार पर,
भविष्य है खडा विनोत टूटते कगार पर।
सतर्क वर्तमान है विनाश दुर्ग द्वार पर,
अनेक युग पुकारते, प्रबल तरुण पुकार पर,

अरे! वसुन्धरा उठी, उठो कि झुक गया गगन,
क्षितिज छिपा सका न प्राण-प्राण का मधुर मिलन,
मचल रही तरणि, समक्ष लाटती लहर-लहर,
उठो कि अन्धकार में विकल प्रभात का प्रहर।

विनत विनाश है, अथाह धार चूमती चरण,
उठो तुम्हे पुकारती प्रकाश की प्रथम किरण।
अनक बिजलिया चमक रहीं परन्तु एक तुम
विपत्तिया समेट आज बन चुके अनक तुम,
प्रशस्त पथ वहा जहा कि तुम हठात् हो गये खड,
विजय वहीं जहा कि तुम हठात् हो गये खड।

बढो कि साथ-साथ साधना समीर चल रहा,
विवश बना नवीन साथ-साथ युग बदल रहा।
तरणि समेट कर रही, तरल तरग प्यार है,
बढो कि सिन्धु-धार बन रही स्वय कगार है।

निहारते निराश निर्निमेष जिन्दगी मरण,
उठो तुम्हे पुकारतो प्रकाश की प्रथम किरण।
—वीरभानुसिह प्रताप

वैदिक प्रार्थना

इस अंक के आकर्षण

विकास वाद

(श्री सुरेशचन्द्र वेदालंकार, एम०ए०एल०टी०,डी०वी कालेज, गोरखपुर)

हमने सत्यार्थ प्रकाश के आधार पर जगत् के तीन कारण बतलाए (१) निमित्त कारण (२) उपादान और(३) साधारण कारण। ईश्वर, जीव और प्रकृति इन तीनों की सहायता से विश्व का निर्माण हुआ है। परन्तु इसके विरोधी दो पक्ष हैं। एक प्रकृति वादी या विकास वादी और दूसरे हैं वेदान्त। आज हम वेदान्तियो के सृष्ट्युत्पत्ति सम्बन्धी विषय पर कुछ न लिख कर विकास वाद पर अपने विचार प्रकट करेंगे। ये विकास वादियो का सिद्धान्त है कि इन्द्रियों को अगोचर अर्थात् अव्यक्त, सूक्ष्म और चारों ओर अखण्डित भरे हुए एक ही निरवयव मूल द्रव्य से सारी व्यक्तसृष्टि उत्पन्न हुई है। इसी मूल द्रव्य शक्ति का क्रमशः विकास होता आया है और इस पूर्व पर क्रम को छोड़कर अचानक या निरर्थक कुछ भी निर्माण नहीं हुआ है। इस मत को ही उत्क्रान्तिवाद या विकासवाद कहते हैं। इस मत का सारांश यह है कि विकासवाद की शृंखला अविच्छिन्न है। जो परमाणु जिनसे जड़ जगत् बना है जीवन के भी कारण हैं। विकास के कार्य में जीवन भी एक मंजिल है। परमाणुओं के एक रीति से जुड़ने पर जड़ चीजें बनती हैं और उनको दूसरी अवस्था में स्थिति होने से चेतन वस्तुएं। अनुपात भेद से परमाणुओं से जड़ और चेतन विश्व का निर्माण होता है। वे कहते हैं कि इन परमाणुओं के अतिरिक्त किसी अन्य कारण के मानने की आवश्यकता नहीं। आगे वे लोग अपने पक्ष के पुष्टि के लिये कहते हैं कि समासों के मुख्य तत्वों से बिल्कुल भिन्न होते हैं। ओषजन और उद्जन ये दो गैसें हैं। ये जब आपस में एक विशेष अनुपात से मिलती हैं तो जल बनता है। परन्तु इस जल और इन गैसों के गुण सर्वथा भिन्न होते हैं। इसी प्रकार ओषजन, उद्जन, नत्रजन और कार्बन के मेल से कार्बनिक एसिड गैस (Co_2) जल (H_2o) और एमोनिया (NH_3) बनते हैं तथा इन समासों के ही विशेष अनुपात में मिलने से प्रोटाप्लाज्म या जीवन द्रव्य बनता है। इस प्रोटाप्लाज्म में जीवन रूपी नवीन गुण है। स्फटिक जो जड़ है वह एक निश्चित आकार को प्राप्त करता हुआ बढ़ता है। इसी प्रकार जीवित वस्तुएं भी एक विशेष आकार में बढ़ती है। इसी प्रकार केवल परमाणुओं के केवल भिन्न भिन्न रूप में जुड़ने से सब जीवित चीजें बन गई हैं।

सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में विकास वाद के अनुसार सूर्य था। इसे हिन्दी में नीहारिका और अंग्रेजी में Nebnla (नेबुला) कहते हैं। यह बादल जैसा सूक्ष्म था इस नीहारिका के परमाणुओं के परस्पर समीप आने और विभिन्न प्रकार परस्पर संयुक्त होने से विविध वर्णों वाली यह सृष्टि हुई। यह हुआ इस प्रकार कि धीरे धीरे घूमते हुए इस नेबुला की शक्ति घटी उसकी गति मन्द हुई और उस द्रव्य का संकोच हुआ। पृथ्वी समेत सब ग्रह उत्पन्न हुए यह पृथ्वी पहले जलती हुई आग का गोला थी। परन्तु ज्यों ज्यों उसकी उष्णता कम होती गई त्यों त्यों मूल द्रव्यों में से कुछ द्रव्य पतले और कुछ घने हो गये। इस प्रकार पृथ्वी के ऊपर की हवा तथा पानी और उसके नीचे का पृथ्वी का जड़ गोला ये तीन पदार्थ बने, और इसके बाद इन तीनों के मिश्रण अथवा संयोग से सब सजीव तथा निर्जीव सृष्टि उत्पन्न हुई।

विकास वाद के आविष्कारक एवं समर्थक डार्विन साहब ने यह भी प्रतिपादित किया है कि इसी तरह मनुष्य भी छोटे कीड़े से बढ़ते बढ़ते अपनी वर्तमान अवस्था में पहुंचा है। आइए, जरा मनुष्य तक पहुंचने के उनके रूपों को भी देख लें। जब पृथ्वी ठंडी होगई तो उनके अनुसार सबसे पहली जानदार चीज उत्पन्न हुई वह नर्म मुरब्बे के समान थी। उस पर न कोई खोल था और न आवरण। वह गोल थी और इसका आकार सदा बदलता रहता है। आकार बदलने का कारण यह है कि इसमें न हड्डी होती है न खोल। उनका आकार इस प्रकार का होता है।

× × ×

यह जो बीच में बिन्दु है, वहा उन प्राणियों का हृदय है। यह वस्तु धीरे धीरे कहीं से पतली होने लगती है और अन्त में टूट कर दो बन जाती है। हृदय के भी दो टुकड़े हो जाते हैं। इसके टूट कर दो होने का ज्ञान निम्न-चित्र से होगा।

× × ×

इस प्रकार प्रथम आकार का जानवर धीरे-धीरे अन्त में आकर हो जाता है। इसका प्रमाण न होते हुए भी अटकल द्वारा विकास वादी इस जानवर की कल्पना करते हैं। वैसे इसे जीवनभर कहना भी कहाँ तक ठीक है। यह बाद में विचार किया जायगा।

इन जोंकों के बाद समुद्र की घास, घोंघे, केकड़े और कीड़े पैदा हुए। इसके बाद मछलियों की बारी आई। पहले जानवर तो पानी से बाहर रह ही नहीं सकते थे, बाद में ऐसे जानवर पैदा हुए जो पानी और जमीन दोनों पर रह सकते थे। जैसे मगर मच्छ और मेंढक। इसके बाद उन जानवरों का नम्बर आया जो जमीन पर ही रह सकते थे। तब हवा में उड़ने वाली चिड़ियायें। जमीन के जानवरों में साँप, छिपकली और घड़ियाल आदि थे। फिर दूध पिलाने वाले जानवर। और अन्त में वे जानवर जो आदमी से मिलते जुलते हैं यानी बन्दर या बनमानुस। और इस प्रकार इन बनमानुसों की सन्तान हम मनुष्य हुए। यह है विकास वाद की व्याख्या। वैसे तो ये लोग और भी परिस्थिति आदि की बात चलाते हैं और कहते हैं जो अपने को बदलती परिस्थितियों के अनुकूल बना लेता है वह जीवित रहता है। इन सबका उल्लेख करने से हमारा अभिप्राय यह है कि प्रकृति वादी जीवात्मा और परमात्मा को न मान कर प्रकृति से विकास से निरन्तर निर्माण मानते हैं।

जीने का अधिकार उसी को !

जिसने सीख लिया है मरना जीने का अधिकार उसी को,
जिसने काटे पार कर लिये फूलों का उपहार उसी को,

जिसने गीत सजोये अपने तलवारों के झन-झन स्वर पर,
जिसने विप्लव राग उठाये रिमझिम गोली के वर्षण पर,
जो बलिदानों का प्रेमी है, इस धरती का प्यार उसी को!
जिसने सीख लिया है मरना जीने का अधिकार उसी को।

हस हँस कर आदर्श मार्ग पर सीखा है जिसने बलि होना,
अपनी पीड़ा पर मुस्काना औरों के कष्टों पर रोना,
कष्ट सहन जिसने सीखा है वसुधा का उपहार उसी को!
जिसने सीख लिया है मरना जीने का अधिकार उसी को!

दुर्गमता लख बीहड़ मग की जो न कभी भी रुका कहीं पर,
अगणित कष्टाघात सहे पर जो न कभी भी झुका कहीं पर,
झुका रहा है अपना मस्तक यह सारा संसार उसी को!
जिसने सीख लिया है मरना जीने का अधिकार उसी को,

विनय—

सभा की सूचनायें

उपदेश विभाग की सूचना

उत्तरप्रदेशीय आर्यसमाजों को सूचित किया जाता है कि सभा के प्राचीन उपदेशक श्री पं० धर्मपाल सिंह जी काशी निवासी उपदेशक पद पर पुनर्नियुक्त हो गये हैं। आपके पहुंचने पर समाजों को चाहिये कि उपदेश कराने की व्यवस्था करें और वेद प्रचार मार्ग व्यय तथा पिछला सभा प्राप्तव्य धन सन् १९५४ का देने की कृपा करें और सभा की रसीद प्राप्त करें।

श्री पं० बालकृष्ण जी शर्मा का प्रचारक पद से त्याग-पत्र स्वीकार कर लिया गया है। इनको सभा प्राप्तव्य धन न दिया जावे।

श्री कृष्णलाल जी आर्य काशी पुर निवासी प्रचारक की सेवाएं, नियुक्त की अवधि समाप्त होने के कारण समाप्त कर दी गई। अतः किसी प्रकार का धन इत्यादि न दिया जावे।

—बलदेव सिंह
अधिष्ठाता उपदेश विभाग

[illegible] द्वारा पत्थरों के जोड़ों की समस्या का हल

एक नये प्रकार के सीमेंट का निर्माण हुआ है जो पत्थरों के पतले जोड़ों से तेल का रिसना बिल्कुल रोक देता है। यह सीमेंट तेल के सम्पर्क में आते ही फूल जाता है। यह सीमेंट एक यन्त्र द्वारा सूत की भांति कंक्रीट के पतले जोड़ों में लगा दिया जाता है, और बाद में उनमें तेल भरा जाता है। तेल भरते ही सीमेंट में मौजूद रबड़ के कण फूल कर जोड़ों के बीच के सभी छेदों को भर देते हैं। इसके बाद भी आवश्यकता पड़ने पर, जोड़ों को कसा जा सकता है।

गाती हुई सड़कें

अमेरिका के एक राज्य में मोटर-ड्राइवरों को चेतावनी गाती हुई सड़कों द्वारा दी जाती है। जब कारों के ड्राइवर उस राज्य में प्रवेश करते हैं तब इन कारों के पहियों के सड़कों से रगड़ने पर विभिन्न मधुर स्वर निकलते हैं, जिनसे ड्राइवरों को मालूम हो जाता है कि आगे चौराहा, स्कूल या कोई मोड़ आ रहा है। रात को सड़कों पर बिजली के खम्भों का प्रकाश नहीं रहता, पर कारों की हेडलाइटों के प्रकाश के अतिरिक्त इन गाती सड़कों पर आने से ड्राइवरों को कोई दिक्कत नहीं होती।

अपने बाल खुद कटिए

एक ऐसे छोटे कंघे का आविष्कार अभी हाल में हुआ है, जिसके द्वारा कोई भी अपने बाल खुद काट सकता है। देखने में यह कंघा साधारण सेफ्टी रेजर के समान है, जिसमें विशेष प्रकार के ब्लेड लगे हैं। इसको विधिपूर्वक प्रयोग करने से आप अपने बाल कंघा को फेरकर ही खुद काट सकते हैं। इससे बाल को किसी प्रकार की हानि होने की संभावना नहीं है।

१ मिनट में ३०० लाइनें

अभी हाल में अमेरिका में एक ऐसे टाइपराइटर का आविष्कार हुआ है जो एक एक अक्षर टाइप करने के बजाय एक पूरी लाइन को ही तत्काल टाइप कर देता है। इस टाइपराइटर से साधारणतः एक मिनट में ३०० लाइनें टाइप हो जाती हैं। टाइपराइटर में सेन्टर की तरह से एक पतला चिकना रहता है, जिसके आधार पर यह टाइपराइटर लाइनें टाइप करता जाता है।

यांत्रिक मस्तिष्क

हिसाब करने वाला एक टाइपराइटर, जो बिजली से चलता है, इलेक्ट्रॉनिक व यन्त्रों से काम करता है। [illegible] मनुष्य की अपेक्षा रफ्तार [illegible] गणना की रफ्तार में साधारणतया १००० गुणा अधिक होती है। इस टाइपराइटर का यांत्रिक मस्तिष्क तेजी से निरन्तर घूमनेवाला एक यन्त्र होता है जिसके चारों ओर सब अक्षर और अंक आदि लगे होते हैं। विद्युत शक्ति फोते के चिह्नों को तत्काल अक्षरों या अंकों में बदलता जाता है। एक पंक्ति में ८० अक्षर या अंक आते हैं। चक्र की गति बहुत तेज होती है, और ८० विद्युत प्रहारों से स्याही के रिबन से कागज पर छाप पड़ती जाती है। इस प्रकार प्रश्न का सही उत्तर मिलता है।

अणु-शक्ति का नया प्रयोग

अब अणु शक्ति का उपयोग खाद्यान्नों, औषधियों, धातुओं तथा अन्य वस्तुओं में मिलावट का पता लगाने के लिये किया जा रहा है। विश्लेषण की इस अद्भुत प्रक्रिया की सहायता से यह सहज में ही पता लगाया जा सकता है कि वस्तुएं शुद्ध हैं अथवा नहीं, और यदि वे अशुद्ध हैं तो उनमें कितने प्रतिशत मिलावट है।

सिनेरेमा

सवाक् चित्रों के आविष्कार के पश्चात् फिल्म उद्योग में जो सबसे अधिक क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है, वह है 'सिनेरेमा'। ऐसी एक 'स्टीरियोस्कोपिक' अथवा 'तीन परिमाण वाले' (Three Dimensional) एक नये प्रकार के बोलपट का प्रदर्शन हाल में ही न्यूयार्क में हुआ। सवाक् चित्रपटों के पश्चात् 'सिनेरेमा' फिल्म संसार के इतिहास में सबसे बड़ी क्रांतिकारी ईजाद है।

इस नये चित्र का प्रदर्शन एक मुड़े हुए 'स्क्रीन पर तीन प्रोजेक्टरों' द्वारा हुआ। दर्शकों को यह चित्र देखते समय ऐसा लगता था, जैसे वह 'स्टीरियोस्कोप' द्वारा कोई चित्र देख रहे हों। दर्शकों का मत है कि यह नया चित्र आज के प्रचलित चित्रों की अपेक्षा 'अधिक वास्तविकता पूर्ण' है।

इससे पूर्व भी 'तीन परिमाण' वाले चित्रों के निर्माण के प्रयत्न किये गये थे, पर वे प्रयत्न सफल नहीं हुए थे, क्योंकि उनको देखते समय दर्शकों को विशेष प्रकार के चश्मे पहनने पड़ते थे। इस नये चित्र को देखने के लिये दर्शकों को किसी प्रकार के चश्मे नहीं [illegible]। इस नये चित्रों को संसार [illegible] प भी प्रदर्शित करने की [illegible] की जा रही है।

'सिनेरेमा' की वास्तविकता को बढ़ाने के लिये इस चित्र में आवाज भी 'तीन परिमाण' पद्धति द्वारा भरी गई है। यदि परदे पर कोई व्यक्ति बाईं ओर से बोलता दिखाई देता है, तो उसकी आवाज भी उसी ओर से आती सुनाई देती है। चित्र के एक दृश्य में दर्शकों को एक वायुयान ठीक अपने ऊपर से गुजरता सुनाई देता है। परदे पर आकर ज्यों-ज्यों वह क्षितिज में विलीन होता जाता है, त्यों त्यों उसकी आवाज भी कम होती जाती है। सारा चित्र एकदम इतना वास्तविक है कि दर्शकों को लगता है कि वह कोई बाहरी दृश्य नहीं देख रहे हैं बल्कि स्वयं उस दृश्य में सम्मिलित हैं। नदी पर तैरती एक नाव का एक दृश्य इतना वास्तविक है कि दर्शकों को ऐसा लगता है कि वह स्वयं नाव में बैठे हैं। कई दर्शक तो चित्र देखते समय किसी पुल के आने पर वास्तव में अपना सर नीचा कर लेते थे कि पुल से टकरा न जायें।

'सिनेरेमा' १५ वर्ष के अनुसंधान और परिश्रम का फल है। इसके निर्माता फ्रेड वालार ने 'सिनेरेमा' के अतिरिक्त फोटोग्राफिक प्रिन्टर' तथा ३६० डिग्री के चित्र लेने वाले कैमरे का निर्माण भी किया है।

कृत्रिम हृदय कोष का प्रयोग

अभी हाल से अमेरिका में डाक्टरों ने ४१-वर्षीय एक रोगी के वायें हृदय-कोष के स्थान में ५० मिनट के आपरेशन के समय तक एक कृत्रिम हृदय-कोष रक्षा पर किये रखा।

यंत्रद्वारा पहले असली हृदय कोष का सारा रक्त निकाल लिया गया, और आपरेशन के पश्चात् पुनः वहीं डाल दिया गया।

वायें हृदय कोष पर आपरेशन बिना उसका पूरा खून निकाले सम्भव नहीं था, और साधारण परिस्थिति में खून निकालने पर रोगी की मृत्यु तुरन्त हो जाती। कृत्रिम हृदय कोष से न केवल रोगी को जीवित रखा, बल्कि गले हुए वास्तविक हृदय कोष को स्वस्थ बनाने वाले आपरेशन को भी सफल बनाया।

अणु-शक्ति का एक नया उपयोग

अब अणु शक्ति से कम लागत पर बिजली पैदा करने वाली भट्टियों के निर्माण ने अधिक ईंधन का उत्पादन तथा उनका अन्य कार्यों में उपयोग सम्भव कर दिया है। स्वयं अणु शक्ति सम्बन्धी वर्तमान कारखानों में अब अणु शक्ति के प्रयोग से [illegible] भांति जल कर राख हो जाने वाले कोयले में इस प्रक्रिया से एक पदार्थ और उत्पन्न हो जायगा, जिसका उपयोग ईंधन के रूप में किया जा सकेगा। इस नये ईंधन का परिमाण भी उस कोयले से अधिक होगा, जिसके जलने से वह तैयार होगा। इन भट्टियों में ताप तथा प्लूटोनियम जैसे अन्य ईंधन साथ-साथ पैदा हो सकते हैं। जहाँ विद्युत्-शक्ति का अभाव रहता है, वहां अणु-भट्टियां ही अपने कृत्रिम ईंधन द्वारा इस अभाव को दूर कर सकेंगी।

सभा का वृहदधिवेशन

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के आगामी वृहदधिवेशन के लिए निमन्त्रण पत्र भेजने के लिए आर्यमित्र के अंकों में सूचना प्रकाशित कराई जा चुकी है। आशा है समाजों के अधिकारी गण का ध्यान इस महत्व पूर्ण विषय की ओर गया होगा और अपनी २ समाज की अन्तरंग में निर्णय करने के लिए इस विषय को विशेष रूप से प्रस्तुत करने के लिए तैयारियां कर रहे होंगे। समय की न्यूनता के कारण आर्यसमाजों का ध्यान इस ओर पुनः आकर्षित कर निवेदन है कि निमन्त्रण पत्र १५ दिसम्बर १९५२ तक अवश्य भेजने की कृपा करें।

गढ़वाल प्रदेश में श्री उपमंत्री सभा का भ्रमण प्रोग्राम

गढ़वाल प्रदेश की समाजों को सूचित किया जाता है कि सभा के उत्साही उपमंत्री श्री ईश्वर दयालु जी आर्य बिजनौर निवासी ४ दिसम्बर से ६ तक गढ़वाल में भ्रमण करेंगे। समाजों से निवेदन है कि इस भ्रमण को प्रत्येक दृष्टि से सफल बनाने का भरसक प्रयत्न करें और वेद प्रचारार्थ धन प्रदान करें और समाजों का विधिवत् निरीक्षण कराने की कृपा करें।

सभा के ११ मास समाप्त हो चुके हैं। सभा के वर्ष का एक मास शेष रहा है। इस वर्ष निरीक्षक महोदयों ने अपने नियत जिलों का निरीक्षण करने में प्रगति नहीं की है। अभी समय है। जिन २ समाजों और संस्थाओं का निरीक्षण न किया हो तो करने की कृपा करें। और रिपोर्ट सभा में भेज दें।

—जयदेव सिंह एडवोकेट, सभा मन्त्री

अध्यापिकाओं की आवश्यकता है

आर्य कन्या पाठशाला कोटद्वार के लिये, दो बड़ी अध्यापिकाओं की आवश्यकता है। जो हाई स्कूल और जूनियर हाई स्कूल की कक्षाओं तक होम साइन्स, अर्थ शास्त्र, नागरिक शास्त्र व आर्ट पढ़ाने की योग्यता रखती हों। आवेदन पत्र २० नवम्बर तक प्रमाण पत्र सहित पहुँचना चाहिये। आर्य विचारों की महिलाओं को प्रमुखता दी जायगी।

प्रधान आर्यसमाज,
कोटद्वार, (गढ़वाल)

[पृष्ठ ७ का शेष]
की सिद्धि न हुई हो, ऐसा कहने वाला खोज सक कोई व्यक्ति नहीं मिला। किन्तु कठिनाई तो यह है कि महात्मा जी किसी के द्वार पर जाने अथवा पूजा पाठ करने को शीघ्र तैयार नहीं होते। हैं वैसे तो साधु, एक सिद्ध महात्मा हैं, इनको न तो किसी का भय ठहरा, न चिन्ता, न क्षोभ न मोह। राजा और रंक सभी समान हैं। मन में आ जाता है तो एक भिखारी के द्वार पर बिना बुलाये पहुँच कर पूजा पाठ कर देते हैं उसे वरदान दे देते हैं और मन में आ जाता है तो राजा को भी ठुकरा देते हैं। पर चेष्टा से सब कुछ पाया जा सकता है।

यही कारण था कि कितने व्यक्ति दिन रात उस महात्मा के सम्मुख हाथ जोड़े खड़े चिरौरी किया करते उन्हें प्रसन्न करने की चेष्टा करते अपने घर ले जाने के लिए।

ऐसे ही व्यक्तियों में थे अमीरचन्द जी। वैसे तो उनको सन्तति और सम्पत्ति किसी की भी कमी नहीं थी, कमी थी तो केवल सन्तोष की वे चाहते थे—'हर्रे लगे न फिटकरी, रंग ही चोखा', परिश्रम न करना पड़े और सम्पत्ति दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जाय। इनके लिए वे किसी भूखे-नंगे भिखारी को पाव भर अन्न और धेला भर पैसा देने में सम्पत्ति की महान क्षति समझते थे किन्तु काशी से तिलक-धारी पण्डितों को बुलाकर बिगड़े हुए ग्रहों को प्रसन्न करने में साधुओं का आशीर्वाद प्राप्त करने में, हजारों रुपये खर्च कर देने में लेश मात्र भी संकोच नहीं करते थे। इनका एकमात्र कारण होता था। कुबेर का खजाना प्राप्त करने के लिए आशा और अभिलाषा।

जिस घड़ी से उस सिद्ध साधु की बातें उनके पण्डा द्वारा सुनें, उसी घड़ी से उनके हृदय में मंथन होने लगा, प्रत्येक क्षण बड़ी व्यग्रता से व्यतीत करने लगे। वे उस घड़ी को पलक मारते देखना चाहते थे। जब वे साधु उनके घर आकर संसार भर के सारे आशीर्वाद, वरदान उनके सिर लाद देंगे, विधिवत पूजा करेंगे और खुलने पर दीख पड़ेगा कुबेर का खजाना।

इसके लिए पहिले वे चेलों की पूजा किये प्रसन्न किये जिससे वे अपने गुरु को इस काम के लिए मना सकें, तैयार कर सकें और स्वयं का पूछना ही क्या उस साधु को मनाने के लिए हर सम्भव उपाय करने लगे।

अमीरचन्द की चेष्टा सफल हो गई, उनकी मिन्नतें साधु ने स्वीकार कर लीं और दे दी अपनी स्वीकारोक्ति। अमीरचन्द के हर्ष का पारावार न रहा। प्रसन्नता के मारे पाव भूमि पर जैसे पड़ते ही न थे। दौड़ हुए घर गये। यह शुभ सम्वाद अपने परिवार वालों से सुनाये साथ ही साथ जुट गये पूजा पाठ की व्यवस्था में।

घर द्वार पुता गया सामग्रियां मंगाई गईं। पूजा का स्थान चुना गया घर के भीतरी भाग के एक कमरे का सूना-सा कोना। वहां वेदी बनाई गई, स्वर्ण कलश, गंगाजल से भरकर रखा गया उस पर स्वर्णदीप घृत के जलाये गये छोटा सा हवन-कुण्ड बनाया गया।

यह सब हुआ साधु के आदेश से चेलों के बताये अनुसार।

सन्ध्या को वह घड़ी भी आ पहुँची जब साधु सदलबल अमीरचन्द के द्वार पर पधारे। अमीरचन्द ने स्वागत में गंगाजल से उनके चरण पखारे पुष्प पधारा और वह जल घर के कोनों में छींटा गया तथा परिवार के प्रत्येक व्यक्ति ने सिर आंखों से लगाया एवं दो दो बूंद गले के नीचे उतार लिया।

रात के दस बजे पूजा की शुभ घड़ी आई और पूजा आरम्भ हुई और होती रही रात दिन। इस प्रकार पूजा हुई सात दिनों तक।

साधु का आदेश था कि कोई व्यक्ति पूजा वाले कमरे के द्वार पर आ नहीं सकता है केवल दो चेलों को छोड़कर। कोई भी बाहरी व्यक्ति पूर्णाहुति की घड़ी तक आंगन में आ नहीं सकता है। इन दोनों चेलों और साधु को टोक नहीं सकता है उनसे बातें नहीं कर सकता है। किसी वस्तु की आवश्यकता पड़ने पर अथवा कुछ कहना-सुनना आवश्यकीय होने पर लिखकर बतला दिया जायगा। साधु और चेलों पर आते-जाते समय किसी की छाया भी न पड़े।

अमीरचन्द ने इस आदेश का पूर्ण रूप से पालन किया। जिस घड़ी से पूजा आरम्भ हुई उसी घड़ी से उन्होंने किसी बाहरी व्यक्तियों को आंगन में आने को कौन कहे बाहरी बरामदे में आने नहीं दिया, किसी से मिले भी नहीं, बोले भी नहीं यहां तक कि दास दासियों को भी सात दिन के लिए छुट्टी दे दिये।
तक कि दास दासियों को भी सात दिन के लिए छुट्टी दे दिये।

साधु महाराज नित्य ही रात दस बजे पूजा करने बैठते और प्रातः चार बजे चले जाते गङ्गा स्नान करने। और फिर बैठ जाते अपने उस स्थान पर जहाँ बैठकर गांजा का दम लगाते और लोगों को कष्ट निवारण हेतु चुटकी भर राख दिया करते। प्रात चार बजे से लेकर रात दस बजे तक उनके वे दोनों चुने हुए चेले पूजा पाठ करते।

बड़ी व्यग्रता के साथ दिनों की प्रतीक्षा के पश्चात पूर्णाहुति की वह घड़ी भी आ पहुंची। उस दिन विशेष रूप से मौन व्रत धारण करने का साधु का आदेश था। घर में मौत की सी निस्तब्धता छा गई थी। जो जहाँ था वहीं ही श्वास रोके घड़ी की प्रतीक्षा कर रहा था, अब प्रत्येक वस्तुयें सतगुनी दिख पड़ेंगी और हवन की वह राख मिलेगी जिसे किसी भी वस्तु का स्पर्श होने मात्र से वह सतगुनी हो जाया करेगी। परिणाम स्वरूप कभी कोई भी वस्तु घटने न पायगी।

ऐसा ही साधु और साधु के चेलों ने बतलाया था।

साधु के आदेशानुसार उस रात दस बजे के पूर्व ही घर के सभी सोने चांदी के पात्र, स्वर्णाभूषण एक दूसरे कमरे में रख दिये गये। यहाँ तक कि जो रुपये वे बाजार से मंगवा लिए गये थे। घर के सभी द्वार खोल दिये गये थे जिससे अपनी इच्छानुसार घरों में घुमाई जा सके, हवन की राख छींटी जा सके और वस्तुएं सात गुनी हो सकें।

उसी रात पूर्णाहुति का पूजन था, पांच व्यक्तियों की आवश्यकता थी इस लिए चार चले आये थे।

रात के दस बजे पूर्णाहुति का कार्य आरम्भ हो गया। बारह बजे साधु महाराज प्रत्येक घरों में आरती लेकर घूमने लगे दो बजे परिक्रमा समाप्त हुई और हो गई पूर्णाहुति।

पूजा वाले कमरे का द्वार बन्द कर दिया गया। साधु और चेले अपनी झोली और कमण्डल उठा कर चलते बने। जाते समय लिखा कर द्वार पर लटका दिया गया — सूर्योदय के पूर्व न तो इस कमरे का द्वार खुले और न कोई किसी कमरे में प्रवेश करे और न कोई अपने स्थान से हिले डुले अथवा मुंह खोले।

सूर्योदय के साथ-साथ सभी वस्तुएं सतगुनी हुई मिलेंगी। उस समय द्वार खोलकर हवन कुण्ड से आंख मूंद मुट्ठी भर राख उठा लेना और उसे यत्नपूर्वक रख देना जब देखना कोई भी वस्तु घट रही है तब राख का स्पर्श करा देना वह पुनः सतगुनी हो जायगी।

रात के बारह बजे तक तो घर के अन्य व्यक्ति जगते रहे किन्तु सात दिनों तक बराबर जागते रहना असम्भव था इस लिए धीरे धीरे झपकियाँ लेने लगे और अन्त में गहरी नींद सो गये। जागते रहे केवल अमीरचन्द प्रवेशद्वार के पास सिमटे दुबके एक कोने में चुप चाप पड़े थे, मन मोदक खा रहे थे हवाई किले बना रहे थे।

साधु और चेलों जानकर वे नित्य की भांति प्रातः चार बजे उठे और आंगन में प्रवेश किये। पूजा वाले कमरे की ओर दृष्टि उठाते ही देखे झूलते हुए कागज के टुकड़े को धड़कते हृदय से एक श्वांस में हट गये और पुनः लौटकर बैठ गये अपने स्थान पर।

सूर्य की किरणें फूटीं और साथ ही साथ अमीरचन्द कमरे का द्वार खोले सर्व प्रथम आंखें मूंद हवन कुण्ड से मुट्ठी भर राख उठा लिये। आंखें खोलने पर देखें न तो स्वर्ण पात्र हैं न स्वर्णाभूषण। दौड़कर गये आंखें मिचे एक कमरे से दूसरे कमरे में गये। तिजोरी भी खुली हुई खाली एक कौड़ी भी नहीं था।

चिल्ला पड़े—गजब हो गया, मैं लुट गया।

परिवार के सोये हुए व्यक्ति जाग पड़े, घर में कुहराम-सा मच गया। पुरुष अलग चीखने और चिल्लाने लगे। स्त्रियाँ अलग सिर और छाती पीट कर चीत्कार करने लगीं, उनका सुहाग चिन्ह शीश फूल और अंगूठी भी नहीं बची थीं, उसे सतगुनी करने के लिए उतार लीगई थी।

विद्युत की भांति यह समाचार पूरे नगर में फैल गया। लोग दौड़ पड़े उस स्थान की ओर जहाँ साधु आसन लगाये लोगों को आशीर्वाद एवं महा प्रसाद स्वरूप चुटकी भर राख दिया करते थे। वहाँ न साधु थे और न उनके चेले थे, थे कुछ व्यक्ति उनकी प्रतीक्षा में खड़े आशीर्वाद एवं प्रसाद लेने के लिए।

इधर उधर ढूंढा गया पर उनका कोई चिन्ह भी नहीं मिला। अमीरचन्द पागलों की भांति चिल्ला रहे थे— मैं लुट गया मैं मर गया। कहाँ गया वह धूर्त, लुटेरा, डाकू व सिद्ध साधु?

लोगों ने सुना, माथा ठनका, अनुभव किया और धीरे से कह दिया — उसका क्या दोष? यह परिणाम है लोभ लालच का।

राष्ट्रोत्थान के लिए आर्य समाज रचनात्मक कार्यक्रम बनाए

प्रान्त के आर्यसमाजों से सभा प्रधान की अपील

संयुक्त प्रान्त में एक हजार से अधिक आर्य समाजें आर्य प्रतिनिधि सभा से सम्बन्धित हैं। मैं प्रत्येक आर्य समाजों से बल पूर्वक अनुरोध करता हूँ कि आगामी वार्षिक अधिवेशन में कम से कम एक हजार प्रतिनिधि तो एकत्रित हों संगठित राष्ट्र उत्थान का कार्य और विशेष रूप से चरित्र निर्माण का कार्य आर्य समाजों को विधि पूर्वक करना है। मेरा विचार है कि अब की बार अधिवेशन में एक दिन कार्य समीक्षा के कार्यक्रम और और प्रचार की विधि इत्यादि पर विचार किया जाय और दूसरे दिन निर्वाचन हो और रिपोर्ट इत्यादि स्वीकार हो। मैंने कई वर्ष इस प्रान्त का गत वर्ष और इस वर्ष दौरा किया मेरा अनुभव है कि आर्य समाजों में प्रगति लाने के लिये एक कार्यक्रम की महान आवश्यकता है। केवल धन कठी के आधार पर चलते रहने से उत्साह में वृद्धि नहीं होती और उदासीनता का भी भय उत्पन्न हो जाता है। जनवरी

(शेष पृष्ठ ९ पर)

आर्य महिला मण्डल

नमस्ते बहन

रविवार

सर्दी का मौसम फिर आ गया। कहते हैं कि इसी ऋतु में स्वास्थ्य की उन्नति करने के लिये अधिक प्रयत्नशील रहना चाहिए पर मेरा अनुभव है कि सर्दी के कारण मेरा सुबह शाम को घूमना भी नियमित नहीं रह सकता। इसका परिणाम यह होता है कि पेट खराब रहने लगता है, और नाक लाल तथा सूजी सी रहने लगती है। हाथ, पांव भी सूज जाते हैं, और इस सूखे अंगों पर क्रीम या कुछ भी लगाने से कोई स्थायी लाभ नहीं होता।

इस बार, ऐसा न हो, इसलिये मैं सुबह-शाम कम से कम आधा घण्टा तक घूमना अपना नियम बना रही हूँ।

सोमवार

कल शारदा ने अपने ६-साल के लड़के सतीश के बारे में, एक विचित्र बात बताई। जब से उसकी नई बहन आई है, (वह पांच महीने की है), वह हमेशा चिड़चिड़ा रहता है, और जब उसे कुछ खाने को दिया जाता है, तो उसे उठाकर फेंक देता है।

मैंने ऐसा देखा कि 'नासमझ' समझे जाने वाले बच्चों में भी ईर्ष्या की भावना अति उत्पन्न होती है। मैंने शारदा को समझाया कि अब तक सतीश के अकेला बच्चा होने के कारण उसे अपनी मां का पूर्ण प्यार प्राप्त था, पर अब एक नन्हीं बहन के आ जाने से उसे लगता है कि उसके प्यार में कोई साझीदार आ गया। मैंने उससे कहा तुम पूर्ववत् उसके प्रति अपने प्यार का प्रदर्शन करती रहो, तो उसका चिड़चिड़ापन काफी हद तक दूर हो जायगा।

मंगलवार

मैं बिस्कुट प्रायः घर पर ही बनाती हूँ। कल बिस्कुट बनाते-बनाते देखा, वे बुरी तरह फैल गये, और उनका आकार बिगड़ गया। ठंडे हो जाने पर बेढंगे हो गये हैं कई प्रयोग किये, पर उनमें एक साधारण सा प्रयोग सफल रहा। प्रयोग यह था कि चाकू से उन्हें नये डिजाइन के अनुसार काट लिया। नये डिजाइन पशुओं की आकृति के होने के कारण, वे बच्चों को बहुत पसन्द आये।

बुधवार

पुरानी सहेली राधा का पत्र आया कि वह अपने पति के साथ शीघ्र ही यहां आ रही है। आत्मवान राधा ! सचमुच विवाह ने उसका जीवन एक दम पलट दिया है स्कूल के दिनों में हम सब सोचा करते थे कि सीधी-सादी, अनाकर्षक राधा के भविष्य सचमुच उसकी आकृति के समान ही अनाकर्षक रहेगा, पर वह तो इतने अच्छी नाम से गयी। आज वह हर प्रकार से अपनी सभी सहेलियों से अधिक सुखी है। लेकिन अभी तक उसके मन में बड़प्पन या गर्व के कोई भाव नहीं आये हैं जैसा कि उसके नियमित रूप से आने वाले पत्रों की भाषा से प्रकट होता है।

पहले राधा से कुछ ईर्ष्या करने लगी थी, पर अब मेरा यह दृढ़ मत हो गया है कि ईर्ष्या से लाभ नहीं होता। किसी से भी ईर्ष्या करने का एक अचूक उपाय यह है कि सदा सब व्यक्तियों के अच्छे गुणों की ओर ही ध्यान दिया जाये।

गुरुवार

शारदा ने आज सुबह बताया कि उसकी बच्ची को कल रात सर्दी लग गई है। इतनी छोटी बच्ची को दवा आदि देने में भी उसे बड़ा डर लगता है।

मेरी पहली बच्ची को भी जब इस प्रकार सर्दी की शिकायत हो जाती थी, तो मैं एक डाक्टर की सलाह पर, उसे अधिकांश समय ऊनी स्वेटर पहनाकर धूप और खुली हवा में रखती थी तथा दूध देने के सम्बन्ध में नियमित रहती थी। आहार में अनियमितता होने से, सर्दी का प्रभाव बच्चों और व्यस्कों दोनों पर जल्दी पड़ता है।

शुक्रवार

सुबह रमा आई थी। जब हम दोनों बातें कर रहे थे, तब उसका ८ साल का लड़का सोम सहसा उठकर दीवारों पर कोयले से चित्रकारी करने लगा। रमा एकदम गुस्से में आकर बोली मैं इसकी आदत से तंग हूँ। घर पर भी दीवारों को खराब करता रहता है, और बाहर भी अपनी आदत से बाज नहीं आता। चल रे, इधर ! सुनता कि नहीं।'

मैंने कहा यह आदत तो सब बच्चों में होती है, रमा। मेरे राम में भी थी। पर मैंने तो उसकी आदत छुड़ाने के लिए उसे अपने कमरे का पलंग वाला कोना दे दिया। किसी दूसरी जगह उसे अपनी चित्रकारी का प्रदर्शन करने की आज्ञा नहीं थी। तीन-चार दिन में ही उसकी यह शौक पूरा हो गया, और अब वह स्वयं कहता है कि यह आदत बुरी है।

शनिवार

कल सरोज के यहां शकरकन्द के मजेदार कबाब खाये। पहले शकरकन्द को उबाल कर छील लिया जाता है। फिर उसका भुर्ता बनाकर आटे की तरह गूंथ लेते हैं फिर उचित मात्रा में पिसी हुई शक्कर मिला कर घी का मोइन देते हैं। और इस तरह बने हुए मीठे आटे के छोटे २ पुवे घी में सेंकते हैं।

इसी भांति रतालू के भी कबाब बन सकते हैं जो स्वाद में कम नहीं होते।

मां का दूध

दस महीने तक जिस बोझ को हम स्त्रियां अपने उदर में उठाये फिरती हैं उसके आगमन के बाद उसके प्रति अगाध स्नेह आप से आप खिंचा चला जाता है और एक अनजान सुख हमें अपने में समेट लेता है। उस नन्हें शिशु की जिन्दगी की डोर टूटने न पावे, इसके लिए प्रकृति हमें वरदान स्वरूप दूध का समुद्र छाती में भर देती है। इसीलिए आंचल के दूध का मैं कहूँगी कि माँ के दूध की कीमत अनमोल कही गयी है।

अक्सर प्रसव के तीन-चार दिनों बाद ही छाती में दूध की बूंदें उतर पाती हैं। तब तक के लिए नवजात शिशु को बकरी गाय आदि के दूधों पर आश्रय भटकाने पड़ते हैं। मगर शहर की हवा, खासकर पढ़ी-लिखी, साफ-सुथरी, आनेवाली माताएं बहका देती हैं और वे समझती हैं कि स्तन पान कराने से उनके शारीरिक आकर्षण का मोल गिर जायगा। और फिर उन्हें लगता है कि यह बोतल का कमाल है जो नवजात शिशु की फिक्र को उन तक नहीं फटकने देती। बोतल की चलन इसी विचार धारा के कारण बढ़ती जा रही है।

हालांकि, यह बिलकुल सही नहीं है। चूंकि मां के दूध के जरिये जो खून सम्बन्ध पनपता है, जो अपनेपन की भावना जगती है वह बोतल कहाँ से लायेगी

आरम्भ में उसे लेटे-लेटे ही दूध पिलाने की विधि अपनानी चाहिए। ऐसे कि आप उसके बगल में लेटी रहेंगी। छाती उसके मुंह के पास ऐसे सटा देंगी कि उसके ओठों के बीच स्तन की घुण्डी हो। इसके लिए सहज तरीका यह है कि केहुनी बिस्तर पर गड़ा हथेली पर सिर रख लें। वह आप से आप मुँह खोलकर छाती से दूध चूसने लग जायगा। मगर हाँ, उसकी नाक न दबने पावे, इसके लिए आपको दूसरा हाथ स्तन के ऊपर रखना चाहिए। बहुत सी सासें अपनी बहुओं को बच्चे की नाक चिपटी हो जाने के डर से बिस्तर पर लेटकर पिलाने नहीं देतीं। उनका यह अनुशासन नाक के मामले में ठीक भले ही हो, मगर है बच्चे की स्वतंत्रता में बाधक। पैर-हाथ हवा में चलाते रहने की क्रिया, जिसे एक प्रकार की कसरत भी कह सकती हैं, बिस्तर से गोद में जो कर अपनी स्वतंत्रता को बैठती है।

कभी कभी छाती में दूध उस मात्रा में उतर नहीं पाता जितने में कि बच्चे की पूरी खुराक मिल सके। तब आपको उदास नहीं होना चाहिए, बल्कि सारी चिन्ताएं दूर फेंक अच्छी तरह और तरीके से भोजन करना चाहिए। माँ की आवश्यकताएं भी छाती के दूध के बढ़ने में सहायक होती हैं—जैसे उनके मन का [illegible] कुछ नहीं और दूध के [illegible] छाती [illegible] जायें। और नहीं घर-गृहस्थी की सोच फिक्र, झुंझलाहट, खीझ वगैरह दुश्मन जिनकी ऐसी होती है कि बहते दूध का स्रोत तक सोख लेती हैं। इसलिए इससे बचने का मतलब होगा कि आप शिशु की जिन्दगी में खुशियों का खजाना इकट्ठी करती जायें।

पहले दो सप्ताहों में दस से पन्द्रह मिनट तक बच्चे के मुँह में छाती रहने देनी चाहिए और वह भी हेर फेर करके। बाद में उसकी मर्जी जब तक हो लेने दें। यहां एक बात याद रखने की है। वह दूध के साथ जो हवा खींचता है पेट के भीतर वही बुलबुले की शक्ल में कुछ देर टिका रहता है। इससे किसी किसी बच्चे के, जो अधिक हवा खींच लेता है, दूध की पूरी खुराक पेट में उतर नहीं पाती और वह बेचैन हो उठता है। ऐसे मौके पर आप उसे कंधे पर लिटा पीठ आहिस्ते आहिस्ते सहला दें। यदि आपका बच्चा अपनी खुराक की अंतिम बूंद चूसने तक भी बेचैनी न दिखावे, फिर भी बाद में कंधे पर लिटा उसकी पीठ सहला देनी ही चाहिए। आप देखेंगी कि उसके पेट में कभी दर्द न होगा।

यों देखा जाता है कि बहुत-सी माताएं दूध पिलाने के लिए निश्चित समय या अन्य कोई कायदे पर अमल नहीं करतीं। कितनों का विश्वास है कि बच्चा दिन और रात में मिलाकर जितना दूध पाता है। इस विश्वास की बुनियाद पर कई माताएं अपने बच्चों के मुँह के पास जब भी रोया वह चाहे वह रोना भूख से हो या किसी अन्य कारण से, बस छाती कर देती हैं और अक्सर ऐसा होता है कि बच्चा चुप हो जाता है जिससे वे समझ लेती हैं कि भूख ही उसके रोने का कारण था था। यह ठीक वैसा ही है जैसा तेज धूप में रंगीन चश्मा लगाने पर आँख को होता है।

—कौशल्या रानी [illegible]

नये व्यंजन

सीताफल की खीर

सामान—१ सेर घी या, १ सेर दूध, १ पाव मावा, १ छटांक किशमिश, १ छटांक चिरौंजी, पिस्ता, १ छटांक बादाम।

बनाने की विधि—सीताफल को काटकर उबाल लिया, उबलने पर इसको फिर दूध में डालकर, पतीली अथवा कड़ाई में गर्म होने को रख दिया। जब कुछ ही समय में दूध और सीताफल घुल जायें तो इसमें मेवाओं को काटकर डाल दिया। जब इसको खाने के काम में लायेंगे, अत्यन्त स्वादिष्ट होगी।

बथुए की टिकिया

विधि:—बथुआ उबालकर उसको बारीक पीस कर तथा साग के कुछ पत्तों को भी उसमें पीस कर मिला देना चाहिए। पत्तों के छिलके पीसने के पहले उतार लेना चाहिए। नमक, मिर्च, अमचूर, धनियां तथा बेसन मिलाकर अथवा उबाल आलू के साथ मिलाकर उसकी छोटी छोटी टिकिया बना लेनी चाहिएं। —[illegible]

आर्य्यावर्त

श्री सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम. ए. एल. टी. डी. वी. कालेज, गोरखपुर

आर्यों का आदि देश कौन सा था

इस विषय पर विचार करने से पूर्व हमने आर्य कौन हैं ? इस विषय पर प्रकाश डाला था और बताया था कि श्रेष्ठों का नाम आर्य, विद्वान् देव और दुष्टों के दस्यु अर्थात् डाकू, मूर्ख आदि नाम हुए। जब आर्य और दस्युओं में अर्थात् विद्वान् जो देव, अविद्वान् जो असुर उनमें सदा लड़ाई बखेड़ा हुआ और जब बहुत उपद्रव होने लगा तब आर्य लोग सब भूगोल में उत्तम इस भूमि के खंड को जानकर यहीं आकर बसे, इसी से देश का नाम आर्यावर्त हुआ। इस आर्यावर्त की सीमा के विषय में मनुस्मृति के २।२१७ प्रकरण में एक श्लोक आया है:—

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः॥
सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशमार्यावर्तं प्रचक्षते॥

अर्थात् उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पूर्व और पश्चिम में समुद्र है तथा सरस्वती, पश्चिम में अटक नदी, पूर्व में दृषद्वती जो नेपाल के पूर्व भाग पहाड़ से निकल के बंगाल के आसाम के पूर्व और ब्रह्मा के पश्चिम ओर होकर दक्षिण के समुद्र में मिली है, जिसको ब्रह्मपुत्रा कहते हैं और जो उत्तर के पहाड़ों से निकल कर दक्षिण के समुद्र की खाड़ी में अटक मिली है हिमालय की मध्यरेखा से दक्षिण और पहाड़ों के भीतर और रामेश्वर पर्यन्त विन्ध्याचल के भीतर जितने देश हैं उन सबको आर्यावर्त इस लिये कहते हैं कि यह आर्यावर्त देव अर्थात् विद्वानों ने बसाया और आर्य जनों के निवास करने से आर्यावर्त कहाया है।

प्रश्न—प्रथम इस देश का नाम क्या था और इस में कौन बसते थे ?

उत्तर—इसके पूर्व इस देश का नाम कोई भी न था और न कोई आर्यों के पूर्व इस देश में आकर बसे थे।

प्रश्न—कोई कहते हैं कि यह लोग ईरान से आए इसी से इन लोगों का नाम आर्य हुआ है। इनके पूर्व यहाँ जंगली लोग बसते थे कि जिनको असुर और राक्षस कहते थे। आर्य लोग अपने को देवता बतलाते थे और उनका जब संग्राम हुआ उसका नाम देवासुर संग्राम कथाओं में ठहराया।

उत्तर—यह बात सर्वथा झूठ है क्यों कि:—

विजानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ॥ ऋ० मं० १।सू०५१ मं० ८

उत शूद्रे उतार्ये ॥ अथर्व० का० १९। व० ६२॥

यह लिख चुके हैं कि आर्य नाम धार्मिक विद्वान् आप्त पुरुषों का और इनसे विपरीत जनों का नाम दस्यु अर्थात् डाकू, दुष्ट, अधार्मिक और अविद्वान् है। तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, द्विजों का नाम आर्य और शूद्र का नाम अनार्य तथा अनाड़ी है। स्वामी जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश के इस ही प्रकरण में लिखा है " इससे भी सिद्ध होता है कि आर्यावर्त के बाहर चारों ओर जो हिमालय के पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम वायव्य, उत्तर ईशान देश में मनुष्य रहते हैं उन्हीं का नाम असुर सिद्ध होता है।

क्यों कि जब जब हिमालय प्रदेशस्थ आर्यों पर लड़ने को चढ़ाई करते थे तब तब यहां के राजा महाराजा लोग उन्हीं उत्तर आदि देशों में आर्यों के संरक्षक होते थे। और जो श्री रामचन्द्र जी से दक्षिण में युद्ध हुआ है उसका नाम देवासुर संग्राम नहीं है किन्तु उसको राम रावण अथवा आर्य और राक्षसों का संग्राम कहते हैं। किसी भी संस्कृत ग्रन्थ वा इतिहास में यह नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरान से आये और यहां के जंगलियों को लड़ कर जय पाके निकाल कर इस देश के राजा हुए, पुनः विदेशियों का लेख माननीय कैसे हो सकता है ?

और म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः मनु १०।४५।
म्लेच्छ देशस्त्वतः परः ॥ मनु २।२३।

जो आर्यावर्त देश से भिन्न देश हैं वे दस्युदेश और म्लेच्छ देश कहाते हैं। इससे भी यह सिद्ध होता है कि जो आर्यावर्त से भिन्न पूर्व देश से लेकर ईशान, उत्तर, वायव्य और पश्चिम देशों में रहने वालों का नाम दस्यु और म्लेच्छ तथा असुर है। और नैर्ऋत्य, दक्षिण तथा आग्नेय दिशाओं में आर्यावर्त से भिन्न भी देखा जा सकता है कि इन्हीं लोगों का स्वरूप भयंकर, जैसा राक्षसों का वर्णन किया गया है दिखाई देता है। और आर्यावर्त की ठीक पर नीचे रहने वालों का नाम नाग और उस देश का नाम पाताल इस लिए कहते हैं कि वह देश आर्यावर्तीय मनुष्यों के पाद अर्थात् पग के तले है। और उनके नागवंशी अर्थात् नाग नाम वाले पुरुष के वंश के राजा होते थे उसी की उलोपी राजकन्या से अर्जुन का विवाह हुआ था। अर्थात् इक्ष्वाकु से लेकर कौरव पांडव तक सब भूगोल में आर्यों का राज्य और वेदों का थोड़ा थोड़ा प्रचार आर्यावर्त से भिन्न देशों में भी रहता था। इसमें यह प्रमाण है कि ब्रह्मा का पुत्र विराट्, विराट् का मनु, मनु के मरीच्यादि दश इनके स्वायंभुवादि राजा और उनके सन्तान इक्ष्वाकु आदि राजा जो आर्यावर्त के प्रथम राजा हुए जिन्होंने यह आर्यावर्त बसाया है। अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य प्रमाद, परस्पर विरोध से अन्य देशों पर राज्य करने की तो कथा ही क्या कहना किन्तु आर्यावर्त में भी आर्यों का अखंड, स्वतंत्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ भी है वह विदेशियों से पादाक्रान्त है। कुछ थोड़े राजा स्वतंत्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देश वासियों को अनेक दुःख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है।

इस प्रकार स्वामी जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश में आर्यावर्त के विषय में यह सब बातें लिखी हैं।

आत्म विश्वास

युग की गति को मोड़ चलूंगा।
पर्वत भी पथ में आवे तो, पत्थर को भी फोड़ चलूंगा॥

इस धरती का स्वामी मैं हूं, नहीं दूसरा राजा।
यह धरती मेरी है मेरी, मैं हूं इसका राजा॥
मानवता का राज्य यहां है, मानवता की वाणी।
मेरी धरती पर बसते हैं, सुख से मानव प्राणी॥
दूर हटो, गिरिराज ! तुम्हारे लौह बांध भी तोड़ चलूंगा॥

मेरे इङ्गित पर खिल खिल कर हंसती हैं-आशाएँ।
मेरी इच्छा पर फलती हैं, मेरी अभिलाषाएं॥
बाधाओं के उन्नत मस्तक, ठोकर से झुक जावे।
सागर की लहरें थम जावें, वायु वेग रुक जावे॥
भाग्य छोड़ दे साथ राह में, किस्मत को भी छोड़ चलूंगा॥

जीवन का अभिशाप बड़ा है, संकट से झुक जाना।
इस धरती पर पाप बड़ा है, कदम बढ़ा, रुक जाना॥
घूम रहा हूं-जाने कब से, मैं अलबेला राही।
चोटों से मजबूत बना हूं, मैं निर्भय सिपाही॥
मेरा है विश्वास अटल, साथी से नाता जोड़ चलूंगा॥

कर्म वीर हूं, अपने पथ का, खुद निर्माण करूंगा।
मैं निष्प्राण अचेतन तन में, अपना प्राण भरूंगा॥
सावधान, ओ भोले राही ! पथ से भटक न जाना।
दूर नहीं है मंजिल अंतिम, हिम्मत हार न जाना॥
साहस से मैं अन्तरिक्ष के तारों को भी तोड़ चलूंगा॥

अंगारों में मुस्काता हूं, मैं फौलादी आला।
तूफानों से टकराता हूं, मेरा खेल निराला।
हार जीत से चाबुक मेरी, सब भंडा उठवाती।
काल-व्याल के रक्तिम फण पर, विजय ध्वजा लहराती॥
शक्ति स्वरूप का बनी सिपाही, मैं विजयी बेजोड़ चलूंगा॥

—[illegible]

आर्यसमाज के समस्त पत्रों में सबसे अधिक छपने वाला आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र—

ओ३म्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

आर्य-मित्र

वर्ष ५७ | अंक ४३

लखनऊ रविवार १८ दिसम्बर मार्गशीर्ष शुक्ल ५ संवत् २०१२ सौर ३१ मार्ग शीर्ष दयानन्दाब्द १३१ सृष्टि संवत १९७२९४९०५६

शुद्धि सप्ताह की योजना

२३ से ३० दिसम्बर तक शुद्धि सप्ताह मनाने का आयोजन कर आर्य प्रतिनिधि सभा ने शुभ एवं अत्यन्त सामयिक पग उठाया है। राष्ट्र में फैलते हुये तीव्र साम्प्रदायिकता के प्रतिनिधि ईसाई मत की गतिविधि को देख कौन भारतीयता प्रेमी चिन्तित न होगा। इन का धन बल और षड्यन्त्रों के प्रति उत्साह हमारी सांस्कृतिक व आध्यात्मिक शक्ति तथा राष्ट्रीय चेतना को छिन्न भिन्न करने का प्रबल प्रयत्न कर रहा है। देश की जनता संकट को भांप कर भी अनजान बन स्वयं मृत्यु को निमन्त्रण दे रही है। ऐसी स्थिति में ह्रास और विनाश के प्रवाह को रोकने का कार्य समाज की जागृत चेतना ही तो ओर ध्यान ही क्या रह जाता?

अतः अमर शहीद श्रद्धेय श्रद्धानन्द के बलिदान दिवस से पुनः शुद्धि का बिगुल बजाने का आरम्भ हमारे कर्तव्य की ओर उठाया शुभ पग है। शुद्धि मन्त्र के प्रसारक श्रद्धानन्द का बलिदान बीसवें वर्ष की प्रेरणा करता हुआ सबको देश में हमारा मार्ग दर्शा रहा है। आशा और विश्वास का यह संदेश वाहक उत्थान की दिशा में चलने का निमन्त्रण देता हुआ सभी को उद्बोधन कर आह्वान कर रहा है। हमारा कहना है कि अन्तर की कायरता और आलस्य को त्याग, इस पुकार को सुना जाए, २३ से ३० दिसंबर तक शुद्धि सप्ताह पूरी शक्ति से मनाया जाए।

हम शुद्धि मंत्र का प्रसार करते हुए तीन शुद्धियों को लक्ष्य बनाएँ, प्रथम आत्म शुद्धि, द्वितीय विचार शुद्धि, तृतीय मत शुद्धि! सर्व प्रथम आवश्यकता आत्म शुद्धि की है! बिना इसके किसी भी कार्य में सफलता पाना असंभव सा ही है। हम अपने मन वचन और कर्म में एकता स्थापित करें! जीवन के आचरण को पवित्र करें और कहें मानें उसी का प्रसार अनुभव करें। इसी आत्म शुद्धि के अभाव में पवित्र वैदिक संदेश प्रसारित नहीं हो पा रहा! संगठन और सिद्धांतों की प्रबलता हमारे पास होते हुए भी विजय भी प्राप्त कर सकना [illegible] हो रहा है। इसलिए शुद्धि यज्ञ की [illegible]ता का प्रथम चरण आत्म शुद्धि है।

[illegible]

मानें यह आत्म शुद्धि है किन्तु जो मानें वा कहें वह सत्य हो, इसके लिए आवश्यकता विचार शुद्धि की है। विचारों का आधार ज्ञान है। ज्ञान की प्राप्ति का बल संस्कारों का निर्माण और जीवन लक्ष्य की जानकारी विचार शुद्धि का अंग है। इसके बिना हम न स्वयं कल्याण की ओर चल सकते हैं न अन्यों को चलाने की प्रेरणा ही कर सकते हैं।

आत्म शुद्धि और विचार की शुद्धि के पश्चात् मत शुद्धि का स्थान है। सत्य ज्ञान प्राप्त कर अन्यों को भी उस सत्य ज्ञान के दर्शन कराना इसका आधार है? विश्व पर विहंगम दृष्टि डालकर विचार कीजिए आप को चारों ओर विभिन्नता का साम्राज्य छाया प्रतीत होता है। सभी पृथक पृथक मार्ग पर चलते हुए अपनी-अपनी स्वार्थपूर्ति के हेतु शक्ति संवर्धन में लगे हैं। गुटबन्दी, पक्षपात और साम्प्रदायिकता के द्वारा मानव को मानव से पृथक कर मृत्यु की ओर ले जाने के सामान जुटाए जा रहे हैं। विनाश का ह मानव जाति पशुता व दानवता की चादर ओढ़ पृथ्वी पर विनाश की स्थापना कर रही है। इस व्याकुलता और महानाश को समाप्त कर सत्य, धर्म, एकता प्रेम और समानता की स्थापना का यत्न ही मतशुद्धि का आधार है। हमारी इच्छा है कि भू विस्तृत पर न कोई हिंदू रहें न मुसलमान, ईसाई रहें न सिक्ख यहूदी, जैन, पारसी या अन्य कोई। सभी केवल मनुष्य बनें, मानव-मानव के बीच पार्थक्य की सभी दीवारें गिर ही जायें और एक बनकर प्रेम से सभी एक मार्ग के पथिक बनें।

इस पवित्र लक्ष्य की पूर्ति के लिए महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की थी। इसी मार्ग पर बढ़ते हुए धर्मवीर श्रद्धानन्द ने शुद्धि का बिगुल बजाया था और आज इन्हीं महान् विभूतियों द्वारा दिखाए मार्ग पर तेजी से चलने के लिए हम आर्य जनता का आह्वान कर रहे हैं।

हमारी प्रार्थना है कि पुरानी सारी परम्पराएं छोड़ कर इस सप्ताह का आयोजन नवीनतम उत्साह से किया जाए। कोई स्थान हमारे प्रांत का ऐसा न बचे जहां इस सप्ताह में हम वैदिक संदेश न पहुँचा दें। समस्त जिला, नगर और कस्बात के प्रतिनिधि कराव [illegible]

[illegible]

पर हमें इस तूफान में घबराना नहीं है। अडिग चट्टान के समान खड़े होकर इन प्रलय की लहरों को रोकना है और संकल्प लेना है कि जब तक प्रत्येक मंदिर, मस्जिद और गिरजाघर पर, मानव के हृदय पर सत्य धर्म की प्रतीक 'ओ३म्' की पावन पताका न लहराने लगेगी, हमारा अभियान जारी रहेगा। हम रुकेंगे नहीं, झुकेंगे या मार्ग से हटेंगे भी नहीं, हम विजयी होंगे और कर सकेंगे शुद्धि यज्ञ पूर्ण, यह विचार ही भविष्य की आकार शिला के रूप में हमारा मार्ग दर्शन कर रहे हैं।

'विदेह' जी ने कहा था?

१३ दिसम्बर को अचानक फतेहगढ़ में श्री विद्यानन्द जी विदेह कथा करते हुये मिल गए उस दिन तो नहीं, पर कायमगंज आदि से लौटते हुए १२ की रात्रि को उनसे बातचीत का मौका मिला अत्यन्त अपनत्व दर्शाते हुए श्री विदेह जी ने हमें उपदेश दिए कि हम स्वयं उनके बारे में कुछ न लिखें और साथ ही यह भी कहा कि हमें चन्द रुपयों के लिए अपना आत्मा न बेचनी चाहिए विदेह जी की यह बात सुनकर और उनके सोचने के निम्न स्तर को देखकर हमें अत्यन्त खेद हुआ। श्री विदेह जी संभवतः यह भूल गए कि हमने पंजाब में रहते हुए उनका विरोध केवल उनके सैद्धान्तिक दोषों के कारण किया था और आज भी हमारा उनसे विरोध केवल सिद्धान्त भेद के कारण ही है। किसी के दबाव या बहकावे में हम आ सकें, ऐसा केवल 'विदेह जी' ही सोच सकते हैं। हमारा नम्रता पूर्वक विदेह जी से यह निवेदन है कि वह संन्यासी के वेश में रहते हुए इतने निम्न-स्तर पर सोचने की कृपा न करें।

पिछले दिनों दिल्ली आने पर हमें ज्ञात हुआ था कि विदेह जी अपनी भूलों का पश्चातापकर पुन. आर्यसमाज के पवित्र मार्ग पर चलने का विचार रखते हैं। किन्तु विदेह जी ने इस बातचीत के दौरान में जो भावना प्रकट की, उससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि वह अपने मार्ग पर अडिग रहना चाहते हैं और उनकी क्षमा याचना द्वारा भूल स्वीकार आदि [illegible]

कि मुझ में या मेरी पुस्तकों में कोई दोष है, ऐसा मैं नहीं मानता। मैंने जो अपनी पुस्तकों का प्रकाशन बन्द करने के लिए लिखा है, केवल सार्वदेशिक सभा के आदेश को मानने के लिए है। उनकी बातों से यह भी प्रतीत होता था कि उन्हें अपने कार्यों पर, अपने भ्रान्त दर्शन पर तनिक भी पश्चाताप नहीं है।

उनसे मिलने के बाद हम इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि विदेहजी अपनी लच्छेदार बातों से पाप और आप का भय दिखा-दिखा कर लोगों को बहका सकते हैं, अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए त्याग का ढोंग रचकर धन एकत्रित कर सकते हैं परन्तु पावन वैदिक विचारधारा के प्रति न उनकी आस्था है और न उनको उसका ज्ञान ही है उनके विचार से उनके आशीर्वाद से लोगों के पुत्र हो सकते हैं और उनके नाम पर चलकर मुक्ति मिल सकती है इस प्रकार के विचारों द्वारा वह आज भी जनता को अन्धकार में ही रख रहे हैं।

हमारा जनता से आग्रह है कि किसी भी मूल्य पर इस प्रकार के व्यक्ति को समाज में स्थान न मिलना चाहिए वैसे सार्वदेशिक सभा इनपर प्रतिबन्ध लगा चुकी है किन्तु अत्यन्त खेद का विषय है कि कुछ आर्य भाई महर्षि दयानन्द और पावन वैदिक सिद्धान्तों का हनन करने वाले श्री विदेह जी को प्रोत्साहन दे रहे हैं आर्य जनता को यह न भूलना चाहिए कि विदेह जी का साथ देना आर्यसमाज की जड़ों को खोखला करना है आपका कर्तव्य क्या है? इसका निर्णय स्वयं कीजिए।

श्री विदेहजी से हमारा आग्रह है कि वह वास्तव में यदि अपने कथित सिद्धान्तों को मूर्तरूप देना चाहते हैं तो अपने छल और कपट को छोड़कर हृदय को निर्मल बनाएं और महान् गुरु महर्षि दयानन्द की शरण में आएँ हम उनके साथी होंगे किन्तु यदि वह इसी प्रकार जनता को धोखा देने के लिए बाह्य आडम्बर रखेंगे तो हम पूरी शक्ति से उनका और उनके भ्रान्त विचारों का विरोध करेंगे हमें उस दिन अत्यन्त हर्ष होगा जिस दिन विदेहजी सन्मार्ग पर चलकर हमारे साथी बनेंगे परम पिता परमात्मा से हमारी यही कामना है कि वह विदेह जी को सन्मार्ग पर लाए इतना कहते हुए जो विदेह जी ने कहा था हम उस पर चलने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं।

देवभाषा करवट बदल रही है (२)

(संस्कृत, राष्ट्रीय एकता की आधारशिला है)

(लेखक—आचार्य श्री नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ ज्वालापुर-हरिद्वार)

तिरुपति की विश्व संस्कृत परिषद् का वृत्तान्त हम पहिले दे चुके हैं और आज दूसरी दृष्टि से विचार कर रहे हैं। इस परिषद् का सन्देश यही था कि 'क्रियावान् ही पण्डित है, इसलिए क्रियावान् बनो' "उठो, जागो, चलो, आगे बढ़ो" "तभी उद्धार होगा"। यह प्राचीन भाषा कहीं पिछड़ न जाए इसलिए इसके अध्ययन क्रम में परिवर्तन, इसका नवीन करण, इसका एक सूत्री करण, इसका सुलभीकरण आदि पर तो विचार हुआ ही, साथ ही वर्तमान संस्कृत विद्यापीठों की संस्कृत शालाओं का पोषण, शास्त्री और प्राध्यापक (नये और पुराने) इन दोनों को समतल पर लाने का प्रयत्न, इत्यादि पूर्व प्रश्नों पर विचार हुआ। शिक्षण और विद्यापीठों में संस्कृत के प्रचलन और संवर्द्धन की बात भी आयी और प्रचुर रूप में विचार हुआ।

यह हम पहिले कह ही चुके हैं कि तिरुपति के इस सम्मेलन में शास्त्री, पण्डितों की कमी नहीं थी। चार राज्यपाल, तीन प्रधानमन्त्रियों की उपस्थिति से सम्मेलन को चार चाँद लग गये थे। वे केवल विद्याप्रेमी के नाते नहीं पधारे थे अपितु राष्ट्रिय भावना से प्रेरित होकर ही आये थे। जैसा कि उनके भाषणों से स्पष्ट प्रकट है।

सोमनाथ में स्व० सरदार पटेल ने जो प्रथम विश्वसंस्कृत परिषद् बुलायी थी (१०५१) वह भी राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर ही बुलाया थी। सोमनाथ मन्दिर का पुनः स्थापना भी इसी भावना से किया गया था। इस विश्वसंस्कृत परिषद् का द्वितीय अधिवेशन काशी क्षेत्र में हुआ। तृतीय अधिवेशन नागपुर में हुआ। चौथा अधिवेशन तिरुपति में हुआ। और स्वागताध्यक्ष ने प्रस्ताव किया कि अगली (पांचवी) परिषद् जगन्नाथपुरी में हो। तात्पर्य यह कि चारों दिशाओं में पश्चिम, उत्तर, मध्य और दक्षिण में परिषद् हो जाने के पश्चात् अन्य पूर्व के धर्म धाम में परिषद् की जाय।

स्वागताध्यक्ष श्री चन्द्रमौलि ने संकेत किया था, अपने भाषण में, कि स्वतन्त्रता प्राप्त भारत को जो नयी शक्ति प्राप्त हुई है उसके एकीकरण के लिए भी संस्कृत की आवश्यकता है।

राष्ट्रपति से तिरुपति की परिषद् का उद्घाटन करने की प्रार्थना करते हुए आन्ध्र के राज्यपाल श्री त्रिवेदी जी ने कहा कि—

"संस्कृत भारतीय संस्कृति का प्राण है। इसका उद्घाटन करने के लिए राष्ट्रपति पधारे हैं, यह उत्तम शकुन (सगुन) है। संस्कृत किसी समय हमारी राष्ट्रभाषा थी। इसमें प्राचीन वैभव, विचारधन और आध्यात्मिक भावना ओत-प्रोत है। अर्वाचीन भाषाओं को जो स्फूर्ति मिली वह संस्कृत से ही मिली थी। प्राचीन समय में भारतीय एकता की आधारशिला संस्कृत ही तो थी"

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी ने कहा संस्कृत अब भी प्राचीन राष्ट्रियता की, एकता की द्योतक है। भारत को संस्कृत के द्वारा ही एकजीव और सजीव होने का अवसर और लाभ प्राप्त हुआ था। वह एकजीविता और सजीविता आज भी संस्कृत के प्रभाव से ही जीवित रह सकती है। यदि हम संस्कृत को छोड़ बैठे तो फिर हमारा भविष्य भी क्या रहेगा। श्री मुन्शी इससे भी आगे बढ़े और आपने कहा कि—'रामायण, महाभारत, भागवत, गीता उपनिषद्, कालिदास की कृतियां इनके परिशीलन द्वारा ही वर्तमान जगत् के अधःपात को रोक सकेंगे" समारोप (उपसंहार) में आपने कहा कि—

"वेदकाल से लेकर आज तक भारत जो जीवित रहा वह संस्कृत के कारण ही जीवित रहा"।

राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू ने हैदराबाद में जो वृक्षारोपण किया था, उसमें और दिल्ली के वृक्षारोपण की विधि विधान में समता देखकर राष्ट्रपति स्तम्भित रह गये। उन्होंने कहा कि प्रदेशों के इतनी दूरी पर रहने पर भी इन प्रदेशों की धार्मिक तथा व्यावहारिक विधि विधानों की समता देखकर किसको आनन्द न होगा और किसकी सत्ता विकसित न होगी। उन्होंने आगे कहा कि हमारे हिन्दुओं के सभी संस्कारों में चाहे वह किसी प्रदेश के हों, समान विधिविधान भी क्या जतलाते हैं? उनके उद्घाटन के भाषण में यही एक विशेष बात उन्होंने कही थी।

ये उपर्युक्त सभी भाषण राष्ट्रियत्व की भावना से प्रेरित होकर ही किये गये थे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

परन्तु इससे स्पष्ट है कि भाषा और इतिहास की दृष्टि से संस्कृत को जो स्थान मिला है। उससे अधिक ऊंचा स्थान राष्ट्रिय तथा सांस्कृतिक दृष्टि से भी है—यह बात तिरुपति विश्वसंस्कृत परिषद् में किये किये गये इन भाषणों से भी स्पष्ट प्रतीत होती थी।

अब प्रश्न यह है कि (हमारे राजकारणी नेताओं के सम्मुख) राष्ट्रिय और सांस्कृतिक एकता के इस पुराने तागे (सूत्र) को छोड़कर एकता के सूत्र का कोई कोई नवीनीकरण भी किसी प्रकार सम्भव भी है? क्योंकि संस्कृत तो प्राचीन राष्ट्रिय एकता अथवा सांस्कृतिक एकता की प्रतीक है उसका सम्बन्ध है प्राचीन धर्म से। अब यदि हम प्राचीन राष्ट्रिय एकता और संस्कृति की बात करते हैं तो प्राचीन धर्म भी साथ ही आ जाता है। उसको छोड़कर काम नहीं चल सकता और इधर नयी स्वतन्त्रता के पश्चात् नयी शासन प्रणाली में सब कुछ निधर्मी है, और धर्म निरपेक्ष शासन प्रणाली होने के कारण अन्य-धर्मी हमसे सहमत नहीं हो सकते। वे अपनी अपनी दृष्टि से ही सोचेंगे। हिंदू राजनैतिक नेता तो इस प्राचीन दृष्टि सोच सकते हैं। हाँ केवल संस्कृति विहीन संस्कार के पुनरुज्जीवन की बात लेकर चलें तो फिर नवीन राष्ट्रियता के साथ प्राचीन राष्ट्रियता की टक्कर लगने की बात टल सकती है।

अनेक हिन्दू नेताओं का मत है कि आज की नयी राष्ट्रिय एकता के लिये प्राचीन राष्ट्रिय अथवा सांस्कृतिक एकता के अक्षुण्ण सूत्र की क्या आवश्यकता है? यह तो वर्तमान प्रगति में बाधक हो हो सकता है। श्री नेहरू जो कभी कभी प्राचीन संस्कृति की बात पर बिगड़ उठते हैं, उसका कारण भी यही है कि प्राचीन राष्ट्रियता संस्कृतिक एकता की बात नवीन अथवा राष्ट्रियता और एकता के लिए बाधक पड़ती है। तिरुपति परिषद् में आये हुए सन्देशों में नेहरू जी का सन्देश नहीं है। अन्यों के सन्देश हैं।

बम्बई के राज्यपाल श्री म न थ ने स्पष्ट कहा कि नयी एकता के लिए नये सूत्र की खोज व्यर्थ है। प्राचीन राष्ट्रिय एकता अथवा संस्कृत एकता को पुनरुज्जीवन की संशय की दृष्टि से भले ही देखें किन्तु इस देश की परम्परा बनी रहनी चाहिये क्योंकि यदि हम प्राचीन परम्परागत एकता सभी सूत्र तोड़ देंगे तो नयी एकता के नया आधार शिला के नये रूप से रखने का काम ही इतना अधिक कठिन हो जायगा कि इस नये ढंग से नयी आधार शिला जमाने में ही पांच सौ वर्ष लग जायेंगे। किसी राष्ट्र के लिए ऐतिहासिक परम्परा सदा से अपेक्षित रहती ही है। संस्कृत और उसके वाङ्मय में यह आधारशिलाएं भरी हुई हैं। इसमें धार्मिक संस्कृति भी तो आता है इस बात के विचार की आज आवश्यकता नहीं है। संस्कृत में धर्मतत्व ज्ञान से अतिरिक्त राजशास्त्र

(शेष पृष्ठ ६ पर)

आर्य्य महिला मण्डल

कपड़ों पर चित्रकारी

कपड़े सादे भी होते हैं और फूल का डिज़ाइनदार भी, किन्तु जो निखरा हुआ रूप स्वयं चित्रित कपड़े का होता है, वह अन्य नमूनों में अलभ्य है। कपड़ोंपर चित्रोंकी चित्रकारीमें जापानी महिलाओं से होड़ लेने का साहस करना कठिन है। उनके कपड़े तो क्या, घर के जूते और दीवारें तक सजीव दिखाई देती हैं।

कपड़ा पर स्वयं चित्रकारी करना, आरम्भ मे तनिक कठिन भले ही प्रतीत हो किन्तु अभ्यास से तो दुर्लभ दुर्ग भी प्राप्य हो सकते हैं!

जार्जेट, रेशमी आदि कपड़ों पर चित्रकारी अधिक सुन्दर लगती है और स्थायी सिद्ध होती है। कारण यह है कि सूती कपड़ा रुखाई के कारण रंग का अपने आप में सोख नहीं सकता और जार्जेट और सिल्क में रंग अच्छी तरह रम जाता है। और फिर सूती कपड़ा नित्य इतनी सावधानी से भी तो नहीं धोया जाता जितना रेशमी कपड़ा या जार्जेट।

विधि—कोई भी उत्तम नमूना लेकर कपड़े पर लाइनों के रूप मे उतार लेना चाहिये। नमूनों के चुनाव में एक बात याद रखिए। उनकी आकृति स्वाभाविक फूलों के सदृश हो, अनुमानित नहीं, अन्यथा कला कभी अकलात्मक लगने लगेगी।

नमूने की छाप लेने के बाद किसी लकड़ी की चौकी पर स्याहीचूस और उस पर कस कर ताने हुए कपड़े के चारों ओर पिन लगा देने चाहिये जो लकड़ी में भी घुस जाये। रंग पोस्टर के भी हो सकते हैं और कलाकारों के तैल के भी। पहले सस्ते किन्तु कम सुन्दर और दूसरे मंहगे किन्तु अधिक सुन्दर होते हैं। बस, रंगों की लेकर पत्तियों में हरे, डलियों में गहरे हरे और फूलों में बनावट के अनुसार रंग भर लेने चाहिए। दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। तैल अधिक न लगाइये और रंग भरते समय हल्के गहरे रंगों का क्रम न भूलिये। प्रायः डिज़ाइन में ऊपर का भाग हल्का और नीचे की ओर क्रमशः गहरा होता चला जाता है। पत्तियाँ भी, इसी प्रकार, ऊपर से हल्की और नीचे की ओर गहरी होती है। फूलों में विभिन्नता हो सकती है। कई फूल अन्दर गहरे और बॉर्डर की ओर हल्के और कई बार परिस्थिति विपरीत भी होती है।

कपड़े को सूखने हुए दो तीन दिन लगते हैं। यदि इसकी बड़ी चौकी न हो कि पूरा कपड़ा एक साथ फैलाया जा सके तो थोड़ा भाग चित्रित किया जा सकता है।

कपड़ों पर फूल चित्रित करने से कढ़ाई की अपेक्षा कार्य शीघ्र हो जाता है और अधिक स्वाभाविक भी लगने लगता है।

बची हुई ऊन का उपयोग

पूरी बाहों वाले स्वेटरों की सर्दियाँ बीत चुकी हैं, इन दिनों तो हल्की सी बिना बाहों वाली कोटी ही पर्याप्त है। क्यों न ऐसी न ऐसी एक सुन्दर सी कोटी बना ली जाए और फिर कम खर्च में। प्रायः कुछ न कुछ ऊन हर बुनाई में से बच जाती है, और यह उसके छोटे छोटे गोले बेकार से पड़े रहते हैं। ऐसी ऊन एकत्रित कर लें। उनमें से चार रंग के ऐसे गोले जो कम से कम चौथाई आउंस हो अलग कर लें। या तो इन चारों रंगों से मेल खाती हुई और चार रंग की ऊन ले लें, अथवा इन चारों में खिलती हुई एक ही रंग की ऊन आधा आउंस ले लें। भिन्न रंगों की ऊन का मेल इस प्रकार भी कर सकते हैं जैसे हरे में लाल, लाल में हरा, नीले में पीला और पीले में नीला। अथवा हरे में लाल, नीले और कत्थई रंग की ऊन में पीले रंग की ऊन। इनके अलावा एक आउंस हल्के गुलाबी रंग के ऊन ले लें।

सुविधा के लिये चारों रंगों के नाम क, ख, ग, घ, मान लें और उनमें डालने वाला रंग 'च'। सारी बुनाई एक सलाई सीधी व एक सलाई उल्टी की बुनाई में होगी। केवल चार्ट की पहली व दूसरी तथा नौवीं व दसवीं दोनों तरफ से सीधी बुनी जायगी।

लगभग दस साल की लड़की के लिए इस नम्बर की सलाइयों पर गुलाबी ऊन से ५५ घर चढ़ा लें। चार सलाइयाँ सीधी बुन लें। चौथी सलाई के अन्त में एक घर बढ़ा दें। अब चार्ट देखकर बुनती जाइये। और बुनाई 'क' ऊन से आरम्भ करें। चार्ट की पहली व दूसरी सलाई दोनों ओर से सीधी बुनें। तीसरी सलाई से 'क' और 'च' दोनों रंग लगेंगे। नौवीं व दसवीं सलाई भी दोनों ओर से सीधी बुनी जायगी। हर सलाई के आरम्भ में बुनती के अन्त तक घर बढ़ाती जायें।

चार्ट का नमूना पूरा उतारने के पश्चात् गुलाबी रंग की ऊन से सलाई में ३५ घर नये चढ़ायें और उसी ऊन से दूसरी सलाई के घर सीधे बुन लें। अगली सलाई उल्टी। अब सलाई में कुल घर ५६ होने चाहिए। इस प्रकार यह बुनाई बगल के नीचे से आरम्भ होती जिससे चाहिए सीधी दिखती है। अब सलाइयों के पश्चात् 'ख' ऊन से चार्ट में दी गयी बुनाई शुरू करें। नमूना पूरा उतरने पर फिर गुलाबी रंग में आठ सलाई पहले की तरह डाल लें।

गले की छांट

गुलाबी रंग में दो १० घर घटा कर 'ग' ऊन से चार्ट में दी गई बुनाई आरम्भ करें। हर सलाई के शुरू में एक घर घटाती जाए। 'ग' ऊन की बुनाई पूरी होने पर, जब गुलाबी ऊन से बुनाई करे तब भी हर सलाई के आरम्भ में एक घर घटाती जाएँ। गुलाबी ऊन की आठ सलाइयाँ समाप्त होने पर 'घ' ऊन से चार्ट में दी बुनाई करें। नमूने की चार सलाइयों के पश्चात् घर घटाना बन्द कर दें। नमूना पूरा हो जाने पर सारे घर बन्द कर दें। सामने का दूसरा पेश भी इसी प्रकार बुनें, केवल मोढ़े के घर सलाई के शुरू में बढ़ाने की अपेक्षा सलाई के अन्त में बढ़ाएँ गले की छांट इसी प्रकार होगी, केवल छांट उल्टी सलाई से आरम्भ करें।

पिछला पेंश

सामने के पेश के समान ही आरम्भ होगा।

गले की छांट.—

पहली सलाई में दो घर इकट्ठे घटायें फिर सलाई के शुरू में एक घर इस प्रकार कुल चार घर घटाएँ। 'घ' ऊन की बुनाई को पिछले भाग का बीच समझ कर उसके बाद 'ग' फिर 'ख' फिर 'क' इस प्रकार ऊन लगाए। जब दूसरी बार 'ग' ऊन से बुनाई आरम्भ करे तो जिस प्रकार पहले घर घटाये थे उसी प्रकार बढ़ा लें। मोढ़े की चौड़ाई पूरी होने पर ३१ घर एक दम घटा दें और घर और घटाए हर, सलाई के शुरू में एक घर घटा कर। इसके बाद चार सलाइयाँ गुलाबी ऊन में बुन कर घर बन्द कर दें।

मोढे जोड़कर गले व बाहों की पट्टियाँ बुन लें। बुनाई दोनों ओर से सीधी हो। किनारे सीने के पश्चात् नीचे से घर उठा लें और ३॥ इंच बुन लें। बुनाई दोनों ओर से सीधी हो। अब घर उठा कर समान की पट्टियाँ आधा इन्च चौड़ी बुना लें। पट्टियाँ बची हुई ऊनों से बनाएँ परन्तु रंगों की अनुरूपता रहे।

यह नाप लगभग १० साल की लड़की के लिये है। उसमें घर अधिक अथवा कम करके और पहली भाँति अधिक या कम ऊन में बड़ा छोटा तैयार हो सकता है।

बड़ी जाकेट बनाने के लिये चार्ट में दिये गये नमूने की धारी अधिक डाल लें और छोटी बनानी हो तो एक धारी कम कर दें।

शेष पृष्ठ १० पर

मेरा देश

(लेखक रवीन्द्र नाथ ठाकुर)

प्रति-दिक् आलोकित देश विदर्भ, विराट
पांचाल, अयोध्या, काँची गर्वोन्नत ललाट--
सर्वित अन्तस्तल विलासमय भ्रू इंगित से
अश्वों की हेषा से औ' गज के बृंहण से
खड्गों की झनझन, चापों की टंकारों से
वीणा के संगीत, नूपुरों के शिंजन से
वन्दीजन के वन्दन-रव, उत्सवोच्छ्वास से
शंखों के उद्घोष, विजय के महोल्लास से
रथ के घघर-मन्द्र मार्ग के कल्लोलों से
नियत ध्वनित, घोषित कर्मों के कोलाहल से।
और, वहाँ से तनिक दूर हट,
ब्राह्मण का निःशब्द तपोवन
लिये शांति संयम उदारता और मौन गाम्भीर्य।
वहाँ बसे हैं स्फीत स्फूर्त क्षत्रिय की गरिमा,
वहीं स्तब्ध है महामौन ब्राह्मण की महिमा!

अच्छे बच्चों के गुण

जो व्यवहार भले आदमी एक दूसरे से करते हैं उसको शिष्टाचार कहते हैं। उसका मूल सिद्धांत है दूसरों को अपने प्रति प्रेम और आदर का परिचय देना और किसी को अपने द्वारा असुविधा और किसी प्रकार का कष्ट न पहुंचाना, चाहे वह किसी भी श्रेणी का आदमी हो।

बाल्य अवस्था से ही शिष्टाचार के नियम भली भाँति जान लेने चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से उन पर चलना आसान हो जाता है। ये नियम भिन्न भिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न रूप से प्रचलित हैं और देश काल के अनुसार बदलते रहते हैं। उनमें से कुछ नीचे लिखे जाते हैं। आशा है कि तुम उन पर अवश्य ध्यान दोगे।

(१) बड़ों को सदा 'आप' कहना चाहिये 'तुम' नहीं।

(२) उनको प्रातः उठ कर अथवा पहले सामना होने पर और अलग होने पर प्रणाम करो।

(३) किसी नये व्यक्ति से परिचय कराया जाय तो उसको प्रणाम करो। प्रणाम उच्च स्वर से न करो, नम्रता पूर्वक सामने होकर करो।

(४) कोई बड़ा बुलाये तो 'क्या', 'हैं' 'हाँ', मत कहो, 'जी हाँ', जी शब्द का प्रयोग करो।

(५) लोगों को बुलाने पर या पत्र लिखने पर और बातें करते समय प्रथम श्री, श्रीयुत' आदि आदर-सूचक शब्द अवश्य लगाना चाहिये।

(६) अपने से बड़े की तरफ पीठ कर के मत बैठो और उनसे आगे हो कर मत चलो।

(७) किसी दूर के आदमी को बुलाना हो तो वहीं से मत पुकारो जरा आगे बढ़ कर उसको बुला लो। किसी बड़े का बुलाना हो तो दौड़कर उनके पास चल जाओ।

(८) व्याख्यान, कथा आदि में बात चीत करना चाहिये।

[९] मेज पर झुक कर बात चीत मत करो, सीधे हो कर करो। बैठना हो तो कमर टेढ़ी कर के मत बैठो।

[१०] अपने से बड़े या किसी अभ्यागत का स्वागत खड़े हो कर करो और वे जाने लगें तो कुछ दूर तक पहुंचा दो।

[११] कोई बड़ा या अतिथि तुम्हारे स्थान की रीति के विपरीत व्यवहार कर बैठे तो हंसो मत।

[१२] भोजन के समय कोई उससे भोजन के लिए आग्रह करना अनिवार्य है।

[१३] जब कोई इलायची या कोई वस्तु सामने रखे तो उसमें से यथोचित भाग लो।

[१५] जिनके मेहमान बनो उनको भोजन का समय पूछ लो और उसी समय उनका साथ दो। भोजन न करना हो तो पहले ही कह दो।

[१६] किसी का नाम पूछना हो तो, पूछो आप का शुभ नाम क्या है?

[१७] किसी मित्र के साथ कोई अपरिचित व्यक्ति आ जाय तो अपने मित्र से अनजान व्यक्ति की तरफ इशारा करके पूछो, आप कौन सज्जन हैं?

[१८] उचित स्थान पर 'कृपा' शब्द का प्रयोग करो। जैसे कृपा कर बैठिये इत्यादि।

"आप तो कहते थे, यह गुड़िया बोलती है? पर, यह तो नहीं बोलती।"

"अजी, पहले तो बहुत बोलती थी, पर अभी कुछ दिन पहले यह एक गूंगा-खाने में रह आयी है।"

"हमारे बैंक की व्यवस्था में हाल ही में काफी जबर्दस्त फेरफार हुए हैं।"

"क्या?"

"असल में बैंक के डायरेक्टरों की सख्या बैंक में रुपया जमा कराने वालों से बढ़ गई थी।"

"और तुम्हारे जिनको यह बड़ा रकम कैसी है?"

"यह मेरा होटल का बिल है।"

"अच्छा, खैर आगे से कोई होटल मत खरीदना।"

"बेटे व्यापार और जीवन में सफल होने के लिये दो बातों का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है।"

"कौन कौन सी बातें?

लेखक [मित्र से]: "और सबसे बड़ी बात तो यह है कि मैं लिख नहीं सकता, यह जानने के लिये मुझे १० साल लगे।"

मित्र 'फिर आपने क्या किया? लिखना छोड़ दिया?"

लेखक नहीं साहब, तब तक तो मैं बहुत प्रसिद्ध हो चुका था।"

"तो आप आज अपना मत मुझे तो देंगे ही? क्यों?"

"जी नहीं, आपका नम्बर दूसरा रहेगा।"

"पहले नम्बर पर कौन है?"

"पहले नम्बर पर तो कोई उम्मीदवार हो सकता है। कोई भी"

'मैं अभी ऐसी मशीन के बारे में पढ़ रहा था, जो १० व्यक्तियों का कार्य करती है। काफी 'बुद्धिमान' मशीन मालूम पड़ती है।"

"अगर सचमुच वह सारा काम कर सकती है, तब तो उसे बुद्धिमान' कहना ठीक न होगा।"

"मैं। सुना है कि मेरे बेटे ने आपकी दुकान में सूट सिलवाकर पीछे ३ साल से उसकी सिलाई के दाम नहीं चुकाये।"

'जी हां, यह सच है। आप क्या वह दाम चुकाने आये हैं?

"नहीं, मैं भी एक वैसा ही सूट...

'ईमानदार और चतुराई।"

'ईमानदारी क्या होती है?"

"हमेशा कुछ भी क्यों न हो जाये, अपने वायदे का पालन करो।"

"चतुराई।"

"कभी कोई वायदा करो ही मत।"

'डाक्टर आगे से अपने पति को तेज काफी मत दीजियेगा।'

"पर डाक्टर, जब उन्हें हल्की काफी देती हूं, वे तब भी उत्तेजित हो जाते।"

पहेलियाँ

(१) कुबड़ी पतली एक चिड़िया देखी
जो तुम से पानी पीती है।
सोने का सा मुकुट है उसका
बिन पानी वह मरती है॥

(२) कुबड़ी पतली एक नारि कहावे
जग जग में छेद करावे।
जाय जाय पर सग न रोवै,
और होत बिछुड़ावे रोवै॥

(३) लाल मुँह की भरी कुलाची।
सिरहीं हो बँगली पर नाची॥
जब लटपट में प्यारे झुम्पी।
दिल का हाल बतावें चुप्पी॥

(४) कुकड़ा और कुकड़िन पहचानी।
नगर के लोग सब खुशी मनावें।
लेकर जावें बराती।

नोट—बच्चे इन पहेलियों का उत्तर लिखकर भेजें और अगले अंक में प्रकाशित होने वाले उत्तर से मिलावें।

—नलिनी कान्त गुप्त

नये व्यंजन

हरे चनों की बर्फी

(पृष्ठ ७ का शेष)

सामग्री—१ पाव छिले हुये चने, आध पाव घी, १ पाव शक्कर, आध पाव दूध, बादाम, पिस्ता, इलायची।

विधि —पहले आप चन को धोकर पानी में कुछ देर भीगने दीजिये, फिर उस खूब महीन पीस लीजिये। अब पीठी को आध पाव घी में भूनने के लिये चढ़ा दीजिये। जब पीठी भुन कर सूख जाय, तब उसमें दूध डाल दीजिये। साथ ही शक्कर भी पाव भर डाल दीजिये। अब इसे खूब अच्छी तरह से चलाते रहिये, जब सब मिलकर एक दिल हो जावे, व जमने लायक गाढ़ी हो जावे तब उसे एक थाली में घी लगाकर जमा दीजिये। ऊपर से बादाम पिस्ता खूब बारीक कतर कर लगा दीजिये। साथ ही इलायची भी पीस कर छिड़क दीजिये। १-२ घंटे पश्चात् इन्हें चौकोने काट लीजिये। और खाने के काम में लाइये।

मटे के बड़े —आप काले व पतले-पतले गोल मटे लीजिये। उनके गोल पतले पतले टुकड़े कर लीजिये। फिर थोड़ा सा मैदा लेकर उसे खूब अच्छी तरह फेंट लीजिये। उसमें उन टुकड़ों को लपेट लपेट कर घी में तल लीजिये। अब १ पाव दही व आध सेर दूध में मिलाकर उसे अच्छी तरह से मथ लें। फिर उसमें केशर, पिसी इलायची, पिस्ता, किशमिश मिला दें। अब तले हुये टुकड़ों को तैयार किये हुये दूध में भिगो दें। कुछ समय पश्चात् वे भीग कर खाने योग्य हो जावेंगे।

हरे चने के लड्डू—छिले हुये चनों को ऊपर के छिलका निकाल दीजिये, व दाल को खूब महीन पीस लीजिये। अब पीठी में थोड़ा सा पानी मिलाकर गाढ़ा घोल बना लीजिये, और उसको बूंदी छान लीजिये। अब एक बर्तन में डेढ़ तार की चाशनी तैयार करके रख लीजिये, और उसमें बूंदी मिला दीजिये और उसके लड्डू बाँध लीजिये। सुगन्धि के लिये इलायची व गुलाबजल भी डाल दीजिये। फिर खाने के काम में लाइयें।

(पृष्ठ ५ का शेष)

व्यवहार शास्त्र, कला अर्थ शास्त्र आदि भी तो है।

इस दृष्टि से भी महत्व का भाषण महत्व पूर्ण था।

श्री गोविन्द वल्लभ पन्त जी के सन्देश में धर्म ज्ञान के अतिरिक्त संस्कृत में आये हुए अनेक विविध विषयों की सूची भी दी हुई है।

एक बात यह है कि संस्कृत में आने वाली इन धर्म की बात को टालने के लिए "संस्कृति" शब्द का प्रयोग अच्छा समझा गया है और लोग गोलमाल रूप संस्कृत शब्द का प्रयोग करते रहते हैं। पर उनका संस्कृत शब्द में धर्म की गंध आने लगा है इसलिये अब संस्कृत शब्द के स्थान में परम्परा गत उत्तराधिकार (हैरीटेज) शब्द का प्रयोग करने लगे हैं।

हुमायूं कबीर जैसे इस्लामी धर्म के विद्वान् भी राम कृष्ण, शंकराचार्य की बात का परम्परा गत प्रभाव [हैरीटेज] माना। अर्थात् कोई धर्म ही परम्परा प्रभाव की बात को नहीं छोड़ सकता है और न छोड़ना चाहता है, किन्तु हैरीटेज अथवा संस्कृति के नाम पर केवल गाना, बजाना, चित्र, शिल्प इत्यादि बातों को लेकर धर्मज्ञान, तत्व ज्ञान, आचार, धार्मिक या ऐं, सामाजिक एवं सामुदायिक उत्सव

देवभाषा करवट बदल रही है (२)

(संस्कृत राष्ट्रीय एकता की आधारशिला है!)

आदि की बातों को टाल जाना कैसी विचित्र बात है?

परम्परा के नाम पर इस प्रकार की गायन वादन नर्तन की बात ही रखनी है तो संस्कृत के वेद के उपयुक्त प्रकरण काव्य नाटकों का निदर्शन क्यों नहीं होता अथवा क्यों नहीं करया जाता। इस प्रकार हम जो संस्कृत के टुकड़े टुकड़े करके कुछ बातें लेते हैं, कुछ बात छोड़ देने की नीति प्रशंसनीय नहीं कही जा सकती। इस प्रकार के प्रवृत्ति स्वयं प्रेरित नहीं अपितु दूसरों से उत्पन्न होनेवाले भयों का आशङ्का के कारण हैं और संस्कृत में आई हुई संस्कृति को छोड़ कर भारतीय परम्परा की बात कहना ऐसा ही जैसे राम को छोड़कर रामायण के लिखने अथवा कहने की बात।

राजनीतिक नेताओं के मन में उठने वाली एक और आशङ्का के बारे में मध्य प्रदेश के राज्यपाल श्री पट्टाभि सीतारामैया इनके सन्देश में उल्लेख है। स्वाराज्य प्राप्त करने का अर्थ केवल यही नहीं है कि विदेशियों को यहाँ से निकाला जाय। उसका अर्थ यह भी है सहस्त्र वर्ष से टूटे हुये सांस्कृतिक उन्नति के सूत्रों को जोड़ कर उसके शेष का पूरा कर या जाय। भारत को समष्टि रूप में सब एक साथ एक रूप में जो स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है वह केवल अंगरेजों के २०० वर्ष तक हमारे सिर पर शासक रूप में बैठने का ही फल नहीं है। वह स्वतन्त्रता प्राप्त एक सहस्त्र वर्ष के पश्चात् हुई है। इसलिये तागे यहीं जोड़ना पड़ेगा। इस तागे को जोड़ने का श्रेय संस्कृत को ही है। राष्ट्रिय दृष्टि से, एकता का सूत्र परम्परा सातत्य किसी दृष्टि से विचार करिये इसी निर्णय पर पहुंचना होगा, संस्कृत की शैक्षाणिक, भाषिक, विद्या की ही प्रधानता ही शास्त्र पण्डितों की दृष्टि में मुख्य ही है किन्तु राजनैतिक नेता और दृष्टि से देखते हैं और इन बातों को आनुषङ्गिक मानते हैं।

सम्प्रदायवादिता अथवा जातीयता, प्रतिगामिता पुनरुज्जीवन वाद इत्यादि आरोपों, आक्षेपों से बचने के लिये हिन्दुओं को इस आपद्धर्म से ही काम लेना पड़ रहा है। ऐसे विकट समय में तिरुपति राज में हमारे नेताओं को अभिसंस्कृति राष्ट्रवाद के गौरव की झलक दिखलायी पड़ी यही बड़ा काम संस्कृत विश्वपरिषद् से हुआ, ऐसा हम समझते हैं। इस प्रकार के विचार श्री ग० वि० केस करने केसरी ४ दिसम्बर के अंक 'राष्ट्रीय एकता की आधार शिला' इस शीर्षक के लेख में प्रकट किये हैं। हम इन विचारों का स्वागत करते हैं।

सोवियत अतिथियों का कलकत्ते में भव्य स्वागत जुलूस

समाज कल्याण और आर्य समाज

लेखक—श्री ब्रजपालसिंह बिशरिया एम० ए० एल० टी० बरेली।

विश्व का इतिहास साक्षी है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त प्रत्येक देश को अनेक आर्थिक, नैतिक एवं सामाजिक आपत्तियों का सामना करना पड़ा है परन्तु जिस देश के इस संकट कालीन अवस्था में पग लड़खड़ा गये उसका अस्तित्व ही मिट गया। भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त होते ही कम कम कठिनाइयों का सामना न करना पड़ा। अंग्रेज ने राष्ट्रीयता के मूल तत्व एक धर्म, भाषा, संस्कृति इतिहास को कभी देश में पनपने ही न दिया। इन तत्वों को मिटाने के लिये अंग्रेज ने तलवार से तो काम न लिया परन्तु मीठी छुरी से अपनी संस्कृति, धर्म तथा इतिहास को भारतीय जीवन के प्रत्येक अंग में केन्द्र किया। २५० वर्ष की पराधीनता के उपरान्त राष्ट्रीयता के इन मूल तत्वों को पुनर्जीवित करने का कार्य ही कुछ कम न किया था फिर आर्थिक अव्यवस्था ने राष्ट्र उन्नति की समस्या को और भी कठिन बना दिया। देश का विभाजन तो नव निर्मित सरकार के लिये एक सिर दर्द बन गया। पुरुषार्थियों के बसाने की समस्या राष्ट्र उत्थान के अनेकों कार्यों में बाधक बन गई। इन समस्याओं को सुलझाने और सम्पूर्ण देश का शासन चलाने का दायित्व उन लोगों के हाथ आया जिनकी कार्यवाहियाँ अब तक सुधारात्मक न होकर विदेशी सरकार के प्रति विरोधात्मक रही थी। इसलिये वे सदैव ही विरोधात्मक कार्यों में निपुण रहे हों। सुधारात्मक कार्य करने का श्रेय तो पराधीन काल में भी आर्य समाज को ही मिला। अंग्रेज काल का आर्य समाज का इतिहास संघर्ष का इतिहास रहा है एक हैदराबाद सत्याग्रह ही क्या अनेकों अन्य आन्दोलन भारतीयों में राष्ट्रीयता के तत्वों को जागृत रखने के निमित्त करने पड़े। आज भी स्वामी दयानन्द जैसे पराक्रमी के आर्य समाज की ओर आँखें फाड़ फाड़ कर देख रहा है कि कब हिन्दू समाज की कुरीतियों को दूर करने के हेतु मैदान में उतरता है।

देश को स्वतंत्र हुये लगभग आठ वर्ष बीत गये परन्तु राष्ट्र उन्नति के लिये समाज सुधार की आवश्यकता की ओर इस सम्बन्ध में बहुत कम प्रगति हुई है। यहाँ तक कि समाज कल्याण बोर्डों की स्थापना भी १९५५ में की गई है। अब कि समाज का नैतिक पतन हो गया। भ्रष्टाचार, घूस, चरित्रहीनता आदि ने समाज की जड़ों को खोखला कर डाला। समाज के किसी क्षेत्र की ओर दृष्टि पात करने से प्रतीत होता है कि मजदूर इस लिये दुखी है कि पूंजीपति उसका शोषण करने पर तुला है। अध्यापक इस लिये बेचैन है कि एक तो वस्तुओं के मूल्यानुसार उसका वेतन नहीं बढ़ा दूसरे स्कूलों में वेतन तीन २ चार २ माह तक नहीं मिलता। व्यापारी इस लिये हाथ पर हाथ रखे असमंजस में है कि समाज की क्रय शक्ति दिन प्रतिदिन घटती जा रही है ऊपर से बिक्री कर देना तथा उसका हिसाब किताब रखना एक सिर दर्द है। व्यापार की स्थिति तो १९४६ के मुकाबले आज पूर्णतया विपरीत पाई जाती है। तब वस्तुओं की कमी थी पैसे की कमी न थी आज पैसे की कमी है वस्तुओं की कमी नहीं। दूसरी ओर शिक्षित बेकारों की संख्या तेजी से बढ़ती चली जा रही है। और समाज इस बोझ को उठाने में असमर्थता प्रगट कर रहा है। ऐसी परिस्थिति में समाज में शान्तिमय क्रांतिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है।

प्रसन्नता का विषय है कि आर्य समाज ने मद्यनिषेध आन्दोलन करने का निश्चय कर लिया है परन्तु समाज सुधार का यह एक छोटा सा अंग है। समाज स्वास्थ्य के निर्बल होने का एक मात्र कारण शुद्ध घी एवं दूध का अभाव है। कितनी लज्जा की बात है कि अमरीका और इङ्गलैंड का कृत्रिम दूध तथा घी सरकार के विभाग द्वारा बेचा जा रहा है। जिस देश में घी और दूध की नदियां बहती थी और व्यवस्था के ठीक हो जाने पर आज भी बह सकती हैं, उस देश में विदेशी घी दूध बिना मूल्य वितरण किया जाता है। इस देश का कितना पतन हो गया है ! हर्ष की बात है कि उत्तर प्रदेश सरकार ने जनता की भावनाओं का मान करने के हेतु गोवध पर प्रतिबन्ध लगा दिया है परन्तु वनस्पति घी का नाम मिटाये बिना शुद्ध दूध तथा घी का उपलब्ध होना कठिन है। सरकार तो इस घी में रंग देने के विषय में गत आठ वर्षों से रंग नहीं पकड़ पाई यद्यपि टैस्ट के रंग का सुझाव भी दिया गया। फिर कांग्रेस की सरकार घी के प्रचलन को समाप्त करने की चर्चा चलायगी और आगे भी चुनाव में पूँजी तथा मतों की बलि घी पर चढ़ायगा ? ऐसी भूल वह कदापि न करेगी। इसलिये आर्य समाज को आगे पग इस ओर उठाना चाहिये और जनता का विश्वास सम्पादन कर सरकार को वनस्पति घी पर प्रतिबन्ध लगाने को बाध्य करना चाहिये।

समाज में पतन का कारण जनता में धार्मिक भावनाओं की कमी तथा रूढ़िवाद का अति अधिक प्रचार और आर्थिक निर्बलता भी है। आर्य समाज के पास प्रचारकों का अभाव नहीं यदि कमी है तो प्रचार कार्य को तीव्र गति से बढ़ाने के लिये धन की। परन्तु समाज कल्याण के पवित्र कार्यों को तीव्र गति से बढ़ाते ही धन का अभाव न रहेगा। कारण ! यह ईश्वरीय कार्य है। इस सम्बन्ध में भी दो मत नहीं कि आर्थिक अवनति के कारण समाज में अनेकों प्रकार की बुराइयां घर करती चली आ रही हैं। परस्पर विश्वास, सद्भावना, व्यवहार कुशलता तथा बन्धुत्व की भावना दिन प्रति दिन लुप्त होती जा रही है। जातिपाति, ऊंच नीच, धनी निर्धन, सबल निर्बल, शिक्षित, अशिक्षित का भेदभाव समाज कल्याण के मार्ग में बाधक है। शिवा, प्रताप, राम, कृष्ण, दयानन्द, विवेकानन्द की सन्तान आज इतनी पतनोन्मुख हो चुकी है, आर्य समाज के कर्णधारों, स्वामी दयानन्द के अनुयायियों को क्रियात्मक योजनानुसार समाज कल्याण के क्षेत्र में अग्रसर होना चाहिए परन्तु ध्यान रहे कि योजना

(शेष पृष्ठ १७ पर)

आर्य समाज का प्रथम नियम

(लेखक—श्री विजय बिहारी लाल सिद्धान्त वाचस्पति, एम. ए. एम. एड. जयपुर)

आर्य समाज के वेदादि सत्य शास्त्रों पर आधारित सिद्धांतों का ठीक रूप निरूपण हम आर्य समाज के दस नियमों में पाते हैं। आर्य समाज के सच्चे सैद्धान्तिक स्वरूप को दर्शाने वाले इन नियमों को यदि आर्य समाज के सिद्धान्तों के विशाल भवन के दस स्तम्भ कहे गये तो लेश मात्र भी अत्युक्ति न होगी। आर्य समाज के प्रथम नियम में परमेश्वर को आदिमूल (First Cause) माना गया है। इस नियम को हम विषय के लिये दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। एक ओर सब सत्य विद्या तथा दूसरी ओर जो कुछ भी पदार्थ विद्या से जाना जाता है इन सबका आदि मूल परमेश्वर सिद्ध है। सब सत्य विद्या का मूल परमेश्वर को प्रतिपादित करने का श्रेय इस सिद्धान्त का निरूपण है कि अपौरुषेय वेद ज्ञान के द्वारा सृष्टि के आरम्भ में परमेश्वर ने अपने अमृत पुत्रों—मनुष्य मात्र—के कल्याण के लिये अग्नि, वायु आदित्य व अंगिरा ऋषियों के हृदयों में उनकी समाधि अवस्था में सब सत्य विद्या को बीज रूप से वैदिक ऋचाओं के रूप में प्रकाशित किया। छोटा सा बीज पृथ्वी में बोया जा कर उचित देख रेख द्वारा विशाल वृक्ष जिस प्रकार बनाया जाना सम्भव नहीं, ठीक वैसे ही ज्ञान को तो विकसित कर मानव मस्तिष्क विद्या का कितना प्रसार कर सकता है, परन्तु मनुष्य के लिये यह सम्भव नहीं है कि ज्ञान का मूल स्रोत वह स्वयं हो सके।

सृष्टि के आरम्भ से आज पर्यन्त मनुष्य ने पीढ़ी दर पीढ़ी अर्जित व संकलित ज्ञान की सुरक्षा व वृद्धि के द्वारा ज्ञान व विद्या के अथाह सागर का निर्माण किया है। परन्तु इस ज्ञान के मूल स्रोत का इतिहास खोजते हुए जब हम सृष्टि निर्माण के प्रारम्भिक दिनों तक पहुचें तो हमारे सामने यह समस्या उपस्थित होती है कि सृष्टि के आरम्भ के इन मनुष्यों को ज्ञान कहाँ से प्राप्त हुआ? यहाँ विकासवादी दृष्टिकोण समाधान उपस्थित करता है कि मनुष्य तब सर्वथा ज्ञान शून्य पैदा हुए भी शनैः शनैः उसने अपने प्रयोगों व उनके द्वारा अनुभव से ज्ञान की वृद्धि की। विकासवाद की छाप आज प्रत्येक क्षेत्र में इतनी बैठ रही है कि इसके विरोध में सहसा कुछ विचार व्यक्त करना अर्वाचीन व पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में अपने को पिछड़ा हुआ उपस्थित करना है।

विकासवाद की अपनी स्वयं की तर्क शैली है। परन्तु अनेक प्रत्यक्ष घटनाओं ने कुछ और ही सिद्ध किया है। अकबर द्वारा बहरी व गूंगी धायों में पालित बच्चों के अतिरिक्त, समय समय पर भेड़िये में पले बच्चों का वर्णन समाचार पत्रों में प्रकाशित होता रहा है। अभी पिछले दिनों में ही भेड़ियों के बीच में पला हुआ १४ वर्षीय बालक रामू लखनऊ के शफाखाने में रहा वह विकासवाद के सिद्धान्त के लिये एक चुनौती के समान है।

सृष्टि के आरम्भ से अब तक के मनुष्य जाति के समस्त वंशानुगत संस्कारों से प्रभावित होकर भी वह बालक १४ वर्ष की आयु होने पर भी सर्वथा पशुवत् व्यवहार करता रहा व मानवोचित कोई व्यवहार नहीं सीख पाया। इस उदाहरण से सिद्ध होता है कि मनुष्य को ज्ञान के मूल स्रोत की अनिवार्यतः आवश्यकता है ही। सृष्टि के आरम्भ में भी मानव को इसी प्रकार ज्ञान के स्रोत की आवश्यकता थी, और दयालु परमेश्वर ने वह ज्ञान उसे दिया। अपने उत्पत्ति काल, ज्ञान की सम्पूर्णता आदि कसौटियों पर कसे जाने पर वेद ही ज्ञान का वह स्रोत सिद्ध होता है जिसमें प्रदत्त बीज रूप ज्ञान के आधार पर ही आज मानव ने अत्यधिक विद्या को इस विकसित में पहुंचाया है। अतः वेद ज्ञान का इस प्रकार परमेश्वर से होने से ही इस नियम में "सब सत्य विद्या का मूल" परमेश्वर को कहा है।

परन्तु जब हम जगत में व्याप्त सब सत्य विद्या का मूल परमेश्वर सिद्ध करते हैं तो शंका उपस्थित होती है कि इस सब सत्य विद्या के विपरीत जो संसार में हम असत्य अधर्म आदि को देख रहे हैं उनका मूल कहाँ है। वास्तव में उन सब का मूल है मनुष्य का अज्ञान तथा मनुष्य का स्वार्थ। जब मनुष्य ने सत्य ज्ञान को जानने का प्रयत्न नहीं किया तो अज्ञान जन्य और जब सत्य ज्ञान को जान कर भी अपने क्षुद्र व्यक्तिगत स्वार्थों के कारण उसका दमन या दुरुपयोग किया तो स्वार्थ जन्य सत्य विरोधी ज्ञान या विद्या का प्रसार व विकास हुआ।

इसी नियम के दूसरे भाग में परमेश्वर को "जो पदार्थ—विद्या से जाना जाता है" उस सब का भी मूल माना है। आध्यात्म विद्या ब्रह्मविद्या के अतिरिक्त सांसारिक पदार्थ आदि से सम्बन्धित विद्या को पदार्थ विद्या माना गया है। इस पदार्थ विद्या से जो कुछ भी हम जान सकते हैं वह सब प्रकृति का खेल है।

प्रकृति के दो रूप कारण प्रकृति तथा कार्य प्रकृति हैं। कारण प्रकृति सूक्ष्म रूप है तथा प्रलयान्तर तब तक कोई महत्व व उपयोग नहीं रखती जब तक कि सृष्टि का निमित्त कारण परमेश्वर इस जड़ रूप कारण प्रकृति को उपादान कारण बना उसे कार्य प्रकृति में परिवर्तित नहीं करे।

अतः परमेश्वर की चेतना सत्ता ही वास्तव में मूल स्रोत है जिसकी 'ईक्षण' से कार्य प्रकृति के नाना रूपेण चमत्कार प्रकट होते हैं।

इस प्रकार सब सत्य विद्या के प्रकाशक वेद ज्ञान के रचयिता होने, तथा कारण प्रकृति को कार्य प्रकृति में परिवर्तित करने के मूल कारण होने से ही इस नियम में कहा गया है कि "सब सत्य विद्या और जो पदार्थ-विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।"

(पृष्ठ १२ का शेष)

समाज की आर्थिक दशा के अनुकूल हो।

नर से नारायण बनाने वाले संस्कारों के वस्तुतः प्रचार के अभाव से ही आज मनुष्य पशुता की ओर बढ़ता जा रहा है। यदि अब भी आर्य समाज के पथ प्रदर्शक तथा नेता राजनैतिक दलदल में फंसे रहे तो एक पंचवर्षीय योजना ही क्या अनेकों ऐसी योजनायें भी समाज की उन्नति करने में असफल सिद्ध होंगी राष्ट्र निर्माण के कार्य के लिये आज शांतिमय क्रांति की सुधारात्मक दृष्टि से आवश्यकता है। यदि समाज का स्तर ऊंचा उठ गया तो वह दिन दूर नहीं जब अपने देश की गणना भी उन्नत देशों में होगी और हम तभी मस्तक ऊंचा कर विश्व को शांति का पाठ पढ़ा सकेंगे। आर्य समाज के नेताओं को अब बिगुल बजाने की देर है समाज के हर क्षेत्र का वातावरण अनुकूल है।

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
ओ३म्
आर्यमित्र
शुद्धि मन्त्र का करो प्रसार
जड़ जीवन के अंधकार में,
मोह मयी मदिरा की धार।
बहा रही आनन्द शांति को,
छाया चहुँ दिशि हाहाकार।
पीड़ा, क्रन्दन की झंझा में,
रक्षा का है यही प्रकार।
शुद्धि मन्त्र का करो प्रसार॥
अन्तर की वीणा के सरगम,
बजा रहे प्रलयंकर गीत।
क्षुब्ध विजन में सिसक रहा है,
धरती का शाश्वत संगीत।
गहन निशा के मध्य प्रहर में,
कहा सिद्धि से है यदि प्यार।
शुद्धि मन्त्र का करो प्रसार॥
शुद्धि हृदय की और भाव की,
कर सकती युग का निर्माण।
भर सकती ज्योतित गरिमा को,
दे सकती अभिनव वरदान।
इसीलिये कर्तव्य प्रथम यह,
आज बढ़ाओ शुद्धि प्रकार।
शुद्धि मन्त्र का करो प्रसार॥
ज्ञान और विज्ञान रूप यह,
यह उन्नति की ओर प्रयाण।
ऐक्य भाव की मंजुल कलिका,
ऐक्य सूत्र का यह अभियान।
अतुल शक्ति का स्रोत दिव्य है,
अमर सुधा सा उच्च विचार।
शुद्धि मन्त्र का करो प्रसार॥
क्रान्ति यज्ञ का सफल अस्त्र यह,
करती भावों का विस्तार।
भरती जन जन में हरियाली,
करती आलोकित अभिसार।
गहन निराशा की आंधी में,
आशा की मंजुल पतवार।
शुद्धि मन्त्र का करो प्रसार॥
शुद्धि करो बिछुड़े भूलों की,
और बढ़ो भी लक्ष्य महान।
भेद भरी चालों को दलकर,
उदित करो रवि पूर्ण ललाम।
एक बनें जगती के प्राणी,
आज मिला अन्तर का सार।
शुद्धि मन्त्र का करो प्रसार॥
शुद्धि बुद्धि की, मन की, तन की,
पुनः ज्ञान दे नूतन प्राण।
हिन्दू मुस्लिम सिक्ख ईसाई,
मानव बन फिर करें प्रयाण।
द्वेष ईर्ष्या और घृणा का,
अन्त करेगा यही विचार।
शुद्धि मन्त्र का करो प्रसार॥
अपने रहते सुख पाये क्या,
मानवता का मंजुल दीप।
बीरों के रहते मिट पाये,
शुद्धि मन्त्र का करो प्रसार।
(सुश्री राकेश रानी)

स्वामी श्रद्धानन्द के शाश्वत लक्ष्यकी हत्या न कीजिए ?

(श्री सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम० ए० एल० टी० डी० वी० कालेज, गोरखपुर)

२३ दिसम्बर को स्वामी श्रद्धानंद जी महाराज का बलिदान दिवस है। उस दिन आर्यसमाजों एवँ गुरुकुल आदि शिक्षणालयों में सभायें होंगी, स्वामी जी पर भाषण दिये जायगे उनके प्रति श्रद्धाँजलियाँ अर्पित की जायगी और उन आयोजनों की सफलता या असफलता पर टीक टिप्पणियाँ करते हुए हम अपने घरों को चल देंगे और फिर वही रफ्तार बेढंगी जो पहले थी वह अब भी के अनुसार हमारे कार्य शुरू हो जायगे। हम यदि इस समय अपने कार्यों क' ओर यदि दृष्टिपात भी करेंगे अपनी कमजोरियों पर विचार करना चाहिये तो हमारे कुछ उत्साही नेता अपने लेखों और भाषण द्वारा हमारी बातों को दबा देंगे, उनका नेतृत्व भी मान लिया जायगा और बस श्रद्धांजलि अर्पण पूरा कार्य हो जायगा।

पर हमारा विचार है है कि हम स्वामी जी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए यह भी विचारें कि क्या सचमुच हमने उनके उद्देश्यों को पूरा करने की ओर एक कदम बढ़ाया है। यदि नहीं बढ़ाया तो अगले वर्ष बढ़ाना चाहिये और यदि बढ़ाया है तो उसमें और तेजी लानी चाहिये। स्वामी श्रद्धानन्द के कार्य तीन भागों में बाँटे जा सकते हैं। (१) आर्य समाज श्रद्धा उत्पन्न करने विषयक (२) शुद्धि विषयक और (३) गुरुकुल विषयक। वैसे तो आर्यसमाज के ही तीन कार्य हैं पर हमने 'विषय को स्पष्ट करने के लिए इन तीनों को पृथक् पृथक् कर दिया है। आर्य समाज के प्रति श्रद्धा भावना उत्पन्न करने के लिए हमको प्रयत्न करना चाहिये। और यह तभी सम्भव है कि जब हम आर्यसमाज के सिद्धान्तों को और उनकी आवश्यकता को समझें। बिना सिद्धान्त समझे जो किसी वीर के प्रति श्रद्धा की जाती है वह अन्धविश्वास का रूप धारण कर लेती है। इसलिए हमें आर्यसमाजियों को स्वाध्याय की प्रेरणा देनी चाहिये। हमारे साप्ताहिक अधिवेशन इस प्रकार होने चाहिये कि उनमें आर्यसमाज के सिद्धान्तों का निर्वाचन हो, वेद तथा उपनिषदों की कथायें हों। और प्रभु भक्ति आदि पर व्याख्यान हों। कम से कम वहाँ पर पहुँचने पर हम किसी तरह की हलचल भावनाओं और विचारधारा को न प्रकट करें। यह एक सत्य है कि आज प्रायः आर्य समाजें व्यक्तिगत स्वार्थों और संघर्ष का अखाड़ा बन गई हैं। कारण यह है कि सिद्धान्त प्रियता का बिल्कुल अभाव है। हमें तो यहाँ तक भी सन्देह है कि आर्यसमाजी होते हुए भी कई सदस्य आर्यसमाजके संस्थापक तथा उनके बाद आर्य संस्था का नेतृत्व करने वाले स्वामी दयानन्द और श्रद्धानन्द का नाम भी जानते हों। पूज्य नारायण स्वामी और गुरुदत्त विद्यार्थी पं० लेखराम की तो चर्चा ही क्या? आर्यसमाज को सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिये उन्हें समझाने के लिये कटिबद्ध होना चाहिये। अभी कुछ दिन पूर्व पंडित बुद्धदेव विद्यालंकार ने "काशी बदल रहा है" शीर्षक लेख लिखा था। पंडित जी स्वयं सच्चे ऋषिभक्त, एवं उत्साही कार्यकर्ता हैं उन्होंने अपने ही समान सभी आर्य सदस्यों को माना और लिखा कि आज संध्या हवन करनेवाले एवं आर्य सिद्धान्तों में विश्वास रखने वाले अधिक हैं। पर मेरा विचार है यह सत्य नहीं। कम से कम उत्तर प्रदेश के लिए तो यह निश्चित रूप सत्य नहीं। अतः स्वामी जी के बलिदान दिवस के दिन से आर्यसमाज को सामूहिक रूप अपनी वेदी की रक्षा करनी चाहिए।

दूसरा काम स्वामी जी का शुद्धि का काम है। आज आर्यसमाज इस दिशा में कुछ कार्य कर रहा है, यह सत्य है। पर कभी शुद्ध करने वालों की तो नहीं है पर शुद्ध हुए भाइयों को अपने में मिलाने की अवश्य है। उन भाइयों को अपनाने में जो सबसे बड़ी बाधा है वह जातीयता की भावना है। अर्थात् हम अपनी जाति से बहिष्कृत कर दिए जायगे। अपनी लड़की और बहन की शादी में कठिनाई उपस्थित होगी। आर्यसमाज भी आज देश की दूसरी संस्थाओं की भाँति अपने चुनावों, संस्थाओं के चुनावों में जातीयता के दल दल में फंस गया है। हमें तो आर्य जाति एक अलग जाति के रूप में बनानी चाहिए जिसमें गुण और कर्म के आधार पर सभी व्यक्तियों का प्रवेश हो सके। उसमें जन्मानुसार वर्ण व्यवस्था के स्थान पर कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था का संचालन करना होगा और बिछुड़े हुओं को फिर मिलाना होगा तभी हम स्वामी श्रद्धानन्द के शुद्धि के कार्य की ओर कुछ बढ़ सकेंगे।

मुझे आज मुख्य रूप से आर्य जनता को गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की दुर्दशा के विषय में कुछ कहना है। मैं किसी विशेष गुरुकुल को लक्ष्य करके अपना लेख नहीं लिख रहा हूं। परन्तु मैं आर्य भाइयों से, उन भाइयों से जो गुरुकुलों के लिए चन्दा देते हैं जो गुरुकुल के विद्यार्थियों को आर्यसमाज का एक जीता जागता सिपाही समझते हैं उनको सावधान करना चाहता हूं कि आज गुरुकुल में आर्यसमाजी विचार धारा का प्रायः लोप हो चुका है। आप, जाइये और देखिये वहाँ आर्यसमाज की अपेक्षा राजनैतिक का वातावरण प्रत्यक्ष रूप में दिखाई देगा। वहां संध्या और हवन का स्थान राजनैतिक चर्चाओं ने ले लिया है। प्रातःकाल में नमस्कार करने के भय से उपस्थिति के समय तो विद्यार्थी संध्या हवन करने पहुँच जाते हैं पर उपस्थिति बन जाने के बाद आप पास बिना किसी भय के अपनी चर्चाओं में लीन हो जाते हैं। हाथ पैर धोकर संध्या करना, संध्या के मंत्रों का उच्चारण करना यह सब वहाँ शान के विरुद्ध समझा जाने लगा है। डी० ए० वी० कालेजों और आर्यकन्या पाठशालाओं की भाँति दो विद्यार्थी सबकी ओर से हवन और संध्या कर देते हैं।

सादगी अब मूर्खता मानी जाने लगी है। सामान व्यवहार का स्थान

(शेष पृष्ठ १९ पर)

गीत

—अरुण कुमार 'प्रेम'—

संघर्षों में बढ़ते जाना ही जीवन है।

जीवन की लघु नौका संसृति के सागर में,
सुख-दुख की लहरें मौसम भी तूफानी है।
धुंधला-धुंधला सा लक्ष्य दिखाई पड़ता है,
साहस ने गति को दे दी नई रवानी है।
विश्राम दूसरा नाम मृत्यु का है साथी,
बाधाओं से लड़ते जाना ही जीवन है।

ध्रुव आसमान का नहीं, धरा का गौरव है,
युग-युग से अम्बर की धरती पर चमक रहा।
जो अन्धकार में खोज नहीं पाते राहें—
पथ बतलाता, अक्षय प्रदी -सा दमक रहा।
मानव का मन तो हिमगिरसे भी ऊंचा है,
अविरल ऊंचे चढ़ते जाना ही जीवन है।

जीवन तो है वह महायज्ञ जिसकी खातिर—
युग-युग से तिल-तिल जलता ही इन्सान रहा।
फूलों सा मन पाकर शूलों की गोदी में—
कुछ कर जाने को, पलता ही इन्सान रहा।
अपने गीतों में सर्जन का विश्वास भरे,
नित नये द्वन्द्व गढ़ते जाना ही जीवन है।

आर्यसमाज के समस्त पत्रों में सबसे अधिक छपने वाला आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र—

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

आर्य-मित्र

वर्ष ५७ — अंक ४४

लखनऊ रविवार २५ दिसम्बर मार्गशीर्ष शुक्ल १२ संवत् २०१२ सौर ७ पौष दयानन्दाब्द १३१ सृष्टि संवत १९७२९०९४५६

सम्पादकीय

दिन-रात, शुक्ल-पक्ष के निश्चित परिवर्तन के सन् १९५५ जा रहा है! हम ने कर्म क्षेत्र का एक वर्ष और खोया। हम जा रहे हैं अंत की ओर! किंतु अंत मृत्यु नहीं प्रकाश मिलने का कारण बने, यही भावना वैदिक विचारधारा की अनुपम विशेषता है!

जीवन का उद्देश्य कर्म है, कर्म का अर्थ है 'जलना'। जलना भी दो प्रकार का, एक समाप्ति के लिए, एक प्रकाश के लिए! जलना वह जो अपने तक सीमित रहता है, प्रकाश वह दे सकता है जो अपने को भूल दूसरों के लिए सब कुछ समर्पित कर सके! अन्त दोनों का होता है पर एक मिट जाता है और दूसरा अपना सिद्धि प्राप्त कर चिर आनन्द की प्राप्ति में सफल हो जाता है!

इसीलिए हमारी लेखनी आज सभी से जलने का आग्रह करती हुयी भी मृत्यु या अन्त के स्थान पर प्रकाश का लक्ष्य बनाये रखने की प्रार्थना कर रही है! समस्त विश्व की गतिविधि पर दृष्टिपात करने के उपरांत हम इसी निश्चय पर पहुंचे हैं कि यदि सभी अपने जलने के लक्ष्य में तनिक सा परिवर्तन कर डालें तो मानस का यह घना अन्धकार नष्ट हो आलोक चहुँ दिशि भर जाए, कहीं, किसी भी कूचे पर अन्धकार न रहे न आकुलता, पीड़ा या शोषण क्रंदन।

नयी साधना की उदय भावना से जब निर्माण कामना की राह पर चलते हुए हम देखें अन्तर की प्रकृतियों की ओर विचार करें अपने कर्तव्य का! भौतिक शिक्षा और सामग्री के बल पर उन्नति की चाह कर सुख और शांति के दर्शन क्या आज तक हमें हो सके! क्या केवल धन हमारी समस्याओं का हल है, जिसे पाकर हम कह सकते हैं, इस बारे में पता नहीं क्यों हमारा मस्तिष्क तनिक भी विचार नहीं करता?! निरन्तर संघर्ष के बाद भी यदि अन्त शुभ नहीं, तो दोष किस का? हमारा या हमारे कर्मों का?

जलो............!

श्वास-श्वास में हम बढ़ रहे हैं आगे या पीछे? इसी पर कभी विचार नहीं किया, मृत्यु शाप है या वरदान? अन्त किसका हमारा या शरीर का या दोनों का? इन सभी का उत्तर केवल जीवन लक्ष्य जान लिया जा सकता है। मनुष्य जन्म लेता है किसलिए, कुछ कमाने के लिए, वह यदि पूरी शक्ति से नहीं कमाता

वर्ष भले ही रहा हो, किंतु यह आवश्यक नहीं कि अगला वर्ष भी ऐसा ही रहे, सिसकने, रोने से न कुछ संभव हुआ है न हो सकता है। निर्माण शांति और कल्याण यदि इष्ट है तो हमें मार्ग बदलना होगा! एक निश्चित लक्ष्य बनाकर अभियान का व्रत लेना होगा। शांति के लिए विचारों की क्रांति के पथ

मृत्यु के लिए नहीं,

है जो उसका अन्त समय भी साथ जा सके, तो फिर अन्त हुआ साधन शरीर का, यदि उसने ऐसा धन कमाया जो नहीं रह गया तो यह शरीर का भी अन्त हुआ और हनन हुआ आत्मा का भी! वह लक्ष्य से भटक गया!

यह भटकना और विस्मृति ही सभी विनाशकारी तरंगों का उद्गम है। जीवन दर्शन को समझने हेतु आवश्यक है इस रहस्य को जानना! जानने के बाद

को सफल बनाना होगा!

सुना था कि सोया सिंह ललकार सुनकर कभी भागता नहीं, मर भले ही जाए पर कायरों की भाँति कभी जान बचाता नहीं, स्थितियों से घबराता नहीं। इसी युक्ति की सत्यता आज कसौटी पर कसने जा रही है। २०० करोड़ व्यक्तियों के हृदयों पर छाया अज्ञान अन्धकार हमें आर्यों को चुनौती दे रहा है। महर्षि

प्रकाश के लिए

कितना आमूल-चूल परिवर्तन हम में आ जाएगा इसकी कल्पना भी अत्यन्त दुष्कर है।

इसी ज्ञान के अभाव का परिणाम है कि धरती नरक बनी बिलख रही है। मानवता, स्नेह और अपनत्व का लेश भी कहीं शेष दृष्टिगोचर नहीं हो रहा! स्वार्थ और क्रूरता ने सभी को भ्रमित व्यथित कर रखा है। ऐसे में कौन किस का मार्ग दर्शन करे, किंतु इतना ही विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि यदि कुछ व्यक्ति भी जलने का संकल्प लें प्रकाश के लिए तो नरक बना यह संसार स्वर्ग का रूप धारण कर सकता है।

बीत रहा वर्ष हमारी दुर्बलताओं का

दयानन्द का आदेश और वीर शहीद अमर श्रद्धानन्द का बलिदान हमें पुकार रहा है, आकाश के कण-कण से ध्वनि आ रही है हे आर्य, उठो प्रकाश के लिए जलो, पर मृत्यु के लिए नहीं।

दैनिक आर्यमित्र का भविष्य

सन् १९५५ में आर्य समाज ने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया! यह कार्य है 'दैनिक आर्यमित्र' का

प्रकाशन! वर्षों की चिर संचित अभिलाषा आर्य समाज स्थापना दिवस को इस बार पूर्ण हुयी। १९५५ का वर्ष अत्यन्त विघ्न बाधाओं के होते भी आनन्द पार हुआ। और आर्य जनता की आशाओं का केन्द्र अपने जीवन के ९ मास पूर्ण कर नए वर्ष १९५६ में प्रवेश करने जा रहा है।

उन्नत और स्वर्णिम भविष्य के लिए जनता का अपूर्व योग इसे मिलता रहा। आशीषों के पालने में झूलते 'आर्यमित्र' को चिन्ता किस बात की? जिसकी माता स्वयं आर्य जनता है जिस का लक्ष्य पूत पावन वेद की आज्ञाओं का प्रसार हो जो परम पिता परमात्मा के दिव्य ज्ञान का संदेश वाहक हो, उसकी साधना को रोक सके यह शक्ति किस अनार्य में संभव है? सौभाग्य से इसे महामान्य श्री पूर्णचन्द जी एडवोकेट का संरक्षण मिला। उनके प्रधान होते हुए यह असंभव कार्य संभव हुआ, श्री कालीचरण जी का उत्साह और आचार्य श्री महेन्द्र प्रताप जी शास्त्री का निर्देशन इसे मिला। इसके साथ मिली आर्य जनता की स्नेह धारा जिसके बल से यह निरंतर फल फूल रहा है।

हम विश्वास रखते हैं कि सन् १९५५ में जहां 'दैनिक आर्यमित्र' ने जड़ें जमायी हैं वहां १९५६ में यह लोक प्रिय बन आत्म निर्भर हो सकेगा। इसका साइज और स्तर भी हम बढ़ा सकेंगे! आर्यमित्र दैनिक बढ़ रहा है, करेगा महर्षि का लक्ष्य पूर्ण! यह हमारा अटल विश्वास है।

और यह आधारित है सभी के स्नेह सौहार्द पर, जो किसी भी अवस्था में छिनेगा नहीं

श्री जयदेव सिंह जी

कल अचानक यह जानकर कि सभा मंत्री माननीय श्री जयदेवसिंह जी रक्तचाप का वेग बढ़ जाने से रुग्ण हो

अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द

(वीरेन्द्रकुमार, ५ मीराबाई मार्ग, लखनऊ)

२३ दिसम्बर सन् १९२६ को इसी नगर में आर्यजाति के परम हितैषी, आदर्श सन्यासी श्रद्धानन्द जी का बलिदान एक क्रूर मुसलमान द्वारा हुआ था। विश्वप्रेम के समर्थक होने पर वह हिन्दू मुसलमान भाईचारे के पक्षपाती थे पर उन्हें केवल इसीलिए मारा गया कि वह सत्य का प्रकाश करने से नहीं घबराते थे। 'किसको क्या अच्छा लगता है और क्या अच्छा नहीं लगता' उन्हें इसका विचार नहीं था। ऋषि दयानन्द सरस्वती ने उनके जीवन में एक ही बात पिरोई थी कि सत्य का प्रकाश होना चाहिए। महर्षि की इस शिक्षा का उन्होंने गांठ बांध लिया था।

मृत्यु का कारण

हिन्दू मुस्लिम एकता समर्थक होने पर भी वह मुसलमानों की पक्षपातपूर्ण नीति से सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने आरम्भ में मुसलमानों के बड़े बड़े नेताओं से मिलकर एक तथ्य को उनके सम्मुख रखा भी था। साथ ही चाहा था कि मुस्लिम जाति में परिवर्तन किया जाए। पर उसका कोई परिणाम न निकलते देखकर वह शुद्धि और हिन्दू संगठन की ओर अग्रसर हुए। वो अपनी जाति को शक्तिशाली बनाना दोष नहीं और न इससे साम्प्रदायिकता ही उभरती है। पर मुसलमानों ने यह सहन नहीं किया। स्वामी जी के विरुद्ध विष वमन किया गया और उसका परिणाम निकला "स्वामी जी की हत्या"।

स्वामी श्रद्धानन्द की मृत्यु से मानो आर्यसमाज का तो तेज ही खंडित हो गया। जो थोड़ा भी स्वामी जी के सम्पर्क में आये, उन पर उनकी निडरता, वीरता, साहस और पुरुषार्थ की छाप पड़े बिना रही। कोई उनसे कितना भी मतभेद रखता हो, पर वह भी मानता ही रहेगा कि वह देश और बलिदान के अति आगत रहा करते थे।

तेज और बलिदान एक सिक्के के दो पहलू होते हैं। तेज किसी अपमान, अन्याय तथा अत्याचार को सहन नहीं कर पाता, तब वह बलिदान में परिणत हो जाता है। स्वामी जी की तेजस्विता को यह कदापि स्वीकार नहीं था कि समाज और देश पद-दलित होता रहे। जिन लोगों ने १९१९ की घटना देखी है, वे स्वामी जी की वीरता को जानते हैं। गोली चलाने के सैनिक रायफल ताने खड़े हैं, स्वामी जी सीना तानकर सामने खड़े हो जाते हैं सैनिकों की रायफल तनी की तनी रह जाती है। उस दिन सारा भारतवर्ष स्वामी जी इस वीरता पर मुग्ध था। ऐसी ही निडरता और वीरता गुलाम देशों को आजादी की राह दिखाती है।

वस्तुतः स्वामी जी राष्ट्र नायकों की नक्षत्र माला में एक जाज्वल्यमान नक्षत्र के समान हैं, "प्रयत्न और सफलता" इन दो महान् मंत्रों की उनके साथ दृढ़ साध थी। अपने ऊंचे व्यक्तित्व के साथ जो कि अणु अणु से देशभक्त था, उन्होंने अपने सम्पूर्ण बुद्धिगत एवं नैतिक शक्ति को मातृभूमि की सेवा में, विशेषकर धार्मिक तथा सामाजिक सुधार के क्षेत्र में अर्पण कर दिया था। आर्यसमाज की प्रगति के लिए तो उन्हें आशीर्वाद मिलना चाहिए। उनकी अनन्त आत्मशक्ति एवं कठोर श्रम के परिणामस्वरूप ही गत १५ वर्ष पूर्व तक आर्यसमाज दीपशिखा अन्धकार में भटकते हुए आर्यसमाज रूपी दीपशिखा अन्धकार में भटकते हुए मानव आदि ज्ञान का आलोकपथ दर्शाती रही और राष्ट्र के लिए कल्याणकारी समाज की रचना में अपनी दीप्ति का प्रकाश दान करती रही। यद्यपि यह दुर्भाग्य की बात है कि आज कतिपय स्वार्थी थोथे आदर्शवादी और ऋषि के सिद्धान्तों के नाम पाखंड की रचना वालों के कारण आदर्शवादी सृजन शक्ति नष्ट होती जा रही है पर जहाँ तक स्वामी श्रद्धानन्द का प्रश्न है, यह निश्चित है कि वह महर्षि के सच्चे भक्त और शिष्य थे और उन्होंने अन्त तक आर्यसमाज की चैतन्य शक्ति को अविकल बनाये रखने की चेष्टा की।

महर्षि द्वारा सामाजिक चेतना उत्पन्न करने के सभी साधनों को स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने कार्यक्रम में स्वीकार किया उन्होंने समाज सुधार की कुछ बुनियादी रीतियों को समयानुसार स्थापित कर दलितों और अछूतों की समस्या हल करने की महत्वपूर्ण चेष्टा की। दलित और अछूतों का पक्ष स्वामी जी के हृदय को बहुत प्यारा था। उन्होंने उनके हितों की रक्षा के लिए बड़े से बड़ा कदम उठाने में कभी संकोच नहीं किया। यद्यपि वह स्वयं उच्चवर्ण के थे, पर दलित जातियों को उच्चजाति के अत्याचारों से मुक्त कराने में उन्होंने कोताही नहीं की। अपना सारा समय उन्होंने मानवजाति के लिए अर्पित किया हुआ था और इस दृष्टि से वह सच्चे हिन्दू आर्य थे। अस्पृश्यता और विषमता जैसे अहिन्दू पक्षपाती और रीति रिवाजों को, जो ब्राह्मणों के स्वेच्छाचार से पैदा हुई थीं, उन्होंने अपने हृदय से निकाल दिया था।

अस्पृश्यता और अछूत समस्या के विषय में उन्होंने ही सर्वप्रथम कांग्रेस मंच से अपने ऐतिहासिक भाषण में प्रकाश डाला था और कहा था—"आज जो भारत में सात करोड़ के लगभग अछूत हैं, वे हमारी कमजोरी और निर्बुद्धि के कारण हैं। मैं तो उन्हें अछूत नहीं मानता हूं। हमें उन्हें अपनाना पड़ेगा, यदि हमें स्वतन्त्रता संग्राम को जीतना है। प्रमेय उन्हें ब्रिटिश सरकार रूपी जहाज के लंगर के समान मानते हैं। है भी ठीक। हिन्दुस्तान का एक बड़ी आबादी का हमारी मूर्खता से एक कोने पड़ी है जिनके जीने मरने से हमें कोई प्रयोजन नहीं है, यदि धीरे धीरे ईसाई होकर अंग्रेज सरकार रूपी जहाज के लंगर न बन जाए, तो इसमें आश्चर्य क्या है। अतः उन्हें अपनाना परमावश्यक है इसलिए भी कि इतनी बड़ी आबादी को अछूत बनाकर नहीं रखा जा सकता।

स्वामी जी के उक्त विचारों से पता चलता है छुआछूत के प्रति उनके मन कितना विद्रोह था और वह इस समस्या को हल करने के लिए कितने उतावले थे।

वीरता साहस और त्याग की बात कह डालने से मनुष्य में गुणों के आ जाने का ... कुछ गुण थे जिनमें असाधारण त्याग था ... इनका गुण था ... धर्म ... संस्थाओं संगठन और शुद्धि-कार्य में आत्मविश्वास ही उनकी सफलता की कुंजी थी। सन्यासी बनने पर अपना नाम "श्रद्धानन्द" रखने में भी उनके आत्मविश्वास और श्रद्धा का पता चलता है। इसी प्रकार उनके त्याग है। देश और धर्म के लिए उन्होंने सर्वमेध यज्ञ किया। धनधाम आदि सम्पत्ति को लात मारकर स्वयं भी देश पर बलिदान हुए।

संकीर्णता से परे

कुछ लोग स्वामी जी पर प्रान्तीयता का मिथ्या आरोप लगाते हैं। पर उनका यह विचार भ्रममूलक ही नहीं, स्वामी जी के प्रति घोर अन्याय मूलक भी है। सन्यास लेने के बाद कन्या गुरुकुल का पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के आधीन न करके सार्वदेशिक सभा के आधीन कर देना ही इसका प्रबल प्रतिवाद है। इतना ही नहीं, वह हमारे गुरुकुलों को एक सूत्र में पिरोकर प्रान्तीयता का मूलोच्छेद कर देने का विचार रखते थे। एक बार जब वह बम्बई गये तो बम्बई गुरुकुल के कार्यकर्ताओं से मिलकर उन्हें भी यही सिद्धान्त स्वीकार करने पर बल दिया। वह पंजाब को भी इसी सिद्धान्त पर चलने का उपदेश देते रहे।

अन्त में इतना ही कहना है कि स्वामी श्रद्धानन्द हमारे देश की एक विभूति थे। वह समय के पाग की मांग को पूरा करने के लिए जन्मे थे। अतएव वह उन आदर्श महापुरुषों में, जो दुनिया की ... पर चलकर लक्ष्यभ्रष्ट नहीं रह सकते, वरन अपने आदर्श पर पहुंचने के लिए पर्वतों, जंगलों और नदियों को पार करने के लिए सड़कें बनाते हैं। उन्हें जब गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का दर्शन हुआ तो वह घरबार छोड़कर उठ खड़े हुए, दर दर फिर कर उन विपरीत अवस्थाओं में गुरुकुल का स्थापित करके छोड़ा। और जब उन्होंने हिन्दुओं के

शेष पृष्ठ ११ पर

शुद्धि का महत्व

(ले० हरिदत्त शास्त्री एम० ए०)

आज की सभ्य दुनिया का यह नियम है कि यदि कोई विद्वान अपराध करे तो उसका अपराध एक नासमझ मूर्ख या बालक के अपराध से कम समझा जाता है। और मूर्ख का अपराध बढ़ा हुआ माना जाता है, जो कि नितान्त अनुचित है, यदि ब्राह्मण ब्राह्मण का वध करे तो वह वध्य है क्यों कि ब्राह्मण है, पर शूद्र

न हो जाने वाला वध्य है क्योंकि स्मृति शूद्र की हत्या में दोष नहीं मानती। वह ऐसा विधान क्यों ? वह एक प्रश्न है ? महा कवि नैषध ता लिखते हैं अज्ञानी को कम पाप लगता है विद्वान को अधिक।

ज्येष्ठ दोषा इति दृ.षणाघव,
कृशात्व महाज्ञान वशाद् येनस ॥
नैषधीय चरित १।७५ ॥

फिर स्मृति करों का दृष्टि इतनी शुद्र चला क्या है।

जिस जाति में एक समुदाय के लोग ऐसे घृणित हों कि दूसरे समुदाय के लोग उनके दर्शन मात्र से पापी हो जाते हैं। जिस जाति में एक समुदाय के लोग ऐसे पद दलित हों कि एक समुदाय के लोग, आप चाहे कितने ही मैले अपवित्र क्यों न हों किन्तु दूसरे समुदाय के स्वच्छ, पवित्र और धर्मात्मा मनुष्यों से छूना भी पाप समझें।

जिस जाति में एक समुदाय ऐसी ऐसी घृणा से देखा जावे कि उनके किसी विशेष रास्ते पर चलने से वह रास्ता व वह सड़क ही अपवित्र हो जा जिसकी छाया के पड़ने से व्यक्ति पुनः स्नान योग्य समझा जाता हो! जिस जाति में बाप के किए कर्मों का फल सन्तान को मिलता हो जिस जाति में एक जाति को उन्नत होने का कोई अवसर न दिया जाता हो (यह बात अब नहीं रही) वह जाति कैसे बढ़ सकता है हिन्दु या आर्य जाति एक ऐसी जाती है जिसमें परस्पर तो प्रेम भाव नहीं पर अन्यों के साथ ईसाई या मुसलमान के साथ प्रेम भाव पर्याप्त हो शूद्रों के हिन्दु जातियाँ उस ही समय तक घृणा की दृष्टि से देखती है जब तक वे हिन्दु रहते हैं, यदि वह ईसाई या मुसलमान हुआ कि आदर का पात्र बना इससे स्पष्ट है कि विधर्मियों की संख्या या गो रक्षकों की संख्या या राम कृष्ण के निन्दकों या न मानने वालों की संख्या अपने ही हाथों बढ़ाई है।

अब यह भी विचार करें कि मनुष्य घटता व बढ़ता है तो किन कारणों से ? इसका उत्तर आपस्तम्ब धर्म सूत्र २।५।११ में मिलता है कि

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्ण
मापद्यते जाति परिवृत्तौ।
अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं वर्ण
मापद्यते जाति परिवृत्तौ ॥
आपस्तम्ब २।५।११

अर्थात् कर्म प्रधान विश्व करि राखा
जो जस करे सो तस फल चाखा ॥

उक्त धर्म शास्त्र के वचन से यह सिद्ध है कि मनुष्य कर्मानुसार अपनी दूसरी योनि में परिवर्तन कर सकता है। बृहन्नारदीय पुराण,

प्रायश्चित्तानि च दुर्वाराणि परायण।
तस्य पापानि नश्यन्ति अन्यथा पतितो भवेत् ॥

राजधर्म प्रकरण के ६५ वें अध्याय में—

शनकैस्तु क्रिया लोपादिमाः क्षत्रिय जातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणा दर्शनेन च ॥ मनु०

उक्त ६५ वें अध्याय में—

दक्षिणा यज्ञाना दातव्या भूतमिच्छता।
पाकयज्ञा महार्हाश्च दातव्याः सर्वदस्युभिः ॥

इत्यादि वाक्य मिलते हैं जिनसे सिद्ध है कि प्रत्येक 'नर' को चाहे वह नारी हो कुछ कर्तव्य निश्चित रूप से करने ही चाहिए।

वर्ण शब्द क्या कहता है

निरुक्त कार लिखते हैं कि "वर्णो वृणोतेः" (निरुक्त अध्याय २ खण्ड ३) यह सिद्ध कर रहा है कि वर्ण वह है जिसे मनुष्य वरण कर सके—ले सके छोड़ सके यदि किया करे। महाभारत के शान्ति पर्व में भारद्वाज व भृगु के सम्वाद मे लिखा है कि—

काम क्रोध भय लोभ शोक चिन्ता-
क्षुधाश्रमः।
सर्वेषां नः प्रभवति कस्माद् वर्णो
विभज्यते ॥
स्वेद मूत्रपुरीषाणि श्लेष्मपित्तं
सशोणितम्।
तनुः क्षरति सर्वेषां कस्माद् वर्णो
विभज्यते ॥
जङ्गमाना मसंख्येयाः स्थावराणां
च जातयः।
तेषां विविध वर्णानां कुतो वर्ण
विनिश्चयः ॥

(महा भारत शान्तिपर्व १८८ अध्याय)

इसका उत्तर देते हुए महा मुनि भृगु कहते हैं कि—

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्व सृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम् ॥

शूद्र वे ही हैं जो—

हिंसानृत प्रियाः लुब्धाः सर्वकर्मोपजीविनः।
कृष्णाः शौच परिभ्रष्टाः ते द्विजाः शूद्रतां गताः ॥

इस प्रकार जो अपने कर्मों में कोई भेद नहीं करते जिस कर्म को चाहा उससे जीविका चलाने लग जाते हैं वे ही व्यक्ति शूद्र कहाते हैं अन्य नहीं।

विष्णु पुराण के ४ अंश में इस अध्याय में यह वचन आता है कि त्रिशंकु के वंश में एक 'बाहु' नामक राजा था वह युद्ध में हैहय तालजङ्घ आदि राजाओं से पराजित होकर अपनी गर्भवती स्त्री के साथ वन में जा छिपा वहाँ 'और्व' ऋषि के आश्रम में राजा का शरीरान्त हुआ

तथा सती होती हुई उसकी स्त्री को 'और्व' ने समझा कर रोका उसके जो पुत्र हुआ उसका नाम सगर था। उसने अपने पिता के शत्रुओं से बदला लेने की प्रतिज्ञा की यह समाचार सुनते ही वे राजगण अपने कुल गुरु वशिष्ठ की शरण में जा पहुंचे वशिष्ठ ने सागर को समझाया कि यह सब मृत तुल्य हैं इन्हें क्यों मारते हो, शरणागत को मारना नहीं चाहिए, तब सगर ने उन सब के कुरूप भेस बनवा दिया नाई को बुलवा कर उनके सिर उस्तरे से मुंडवा दिये, और उनकी यवन संज्ञा रख दी जिन्हीं मुसलमानों के सिर वे आधे-आधे बाल सिर के वे मूँछ के बनवा दिये वे दूसरी तरह के मुसलमान कहलाए जिन्हीं के सिरमें सब उतरे हुए बालों को चिपका दिये उन्हें शक संज्ञा दे दी। किन्हीं की मूँछे उनकी

(शेष पृष्ठ ११ पर)

'महर्षि दयानन्द':—

काशी की बात है। बात कहने से पूर्व संस्कृत व्याकरण की एक बात बता दूं तो कुछ सुबोध हो जाय। 'तस्य भावः' अर्थात् 'उसका भाव' इस अर्थ में संस्कृत में, और हिन्दी में भी, त्व प्रत्यय का प्रयोग होता है। यथा मधुर का भाव हुआ मधुरत्व, देव का भाव देवत्व आदि। अब बात पर आइये। महाकवि बाण भट्ट की शैली में शिवा जी व औरंगजेब के समय की मुगल कालीन पृष्ठ भूमि पर आश्रित, संस्कृत के नवीन श्रेष्ठ उपन्यास "शिवराज" के प्रणेता पंडित अम्बिका दत्त जी व्यास एक दिन काशी में एक पंसारी की दूकान पर गये और पता नहीं किस "मूड" में संस्कृत में ही 'गुडस्य भावः' (गुड़ का भाव) पूछ बैठे। और तभी पीछे से उनके कान में आवाज आई ('गुडत्वम्') (गुड़त्व) ऐसा, अप्रत्याशित, विनोदात्मक, विद्वतापूर्ण या व्यास जी चकित से रह गये व घूम कर देखा तो उत्तर देने वाले महर्षि दयानन्द सरस्वती मुस्काते हुये आगे बढ़ चुके थे। पंडित जी ने भी सोचा होगा कि किस मुहूर्त में संस्कृत में गुड़ का भाव पूछा कि सम्भवतः शास्त्री व पंडितों में श्रेष्ठ उत्तर देने वाला निर्भीक संन्यासी यहां भी बाजी मार ले गया।

आर्यसमाज और ब्राह्मसमाज

(ले० श्री भवानीलाल 'भारतीय' एम० ए० सि० वाचस्पति)

ईसाइयों के यूनीटेरियन (एकेश्वरवादी) धर्म के अनुकरण पर प्रसिद्ध सुधारक राजा राममोहनराय ने ब्राह्म समाज की स्थापना की वस्तुतः इस प्रकार की सामूहिक उपासना का अस्तित्व प्राचीन इतिहास में नहीं मिलता यह ईसाई और मुसलमानी उपासना प्रणाली का अनुकरण है। जे० एन० फर्कुहर ने ठीक ही लिखा है राम मोहन राय द्वारा प्रचारित उपासना प्रणाली ईसाई है। प्राचीन हिन्दू धर्म में सामूहिक उपासना का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसी प्रकार राममोहन राय द्वारा प्रचारित धार्मिक शास्त्र भी ईसा की शिक्षाओं से ही लिया गया था।

अब यह सिद्ध हो चुका है कि ब्राह्म समाज ईसाई यूनीटेरियन धर्म के आधार पर बनी तो यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि आर्यसमाज की स्थापना करते समय ऋषि दयानन्द और उनके अनुयायियों के समक्ष ब्राह्मसमाज और प्रार्थना समाज ब्राह्मसमाज का 'महाराष्ट्रीय रूप' का ही आदर्श था। प्रयत्न तो यह भी किया गया था कि प्रचलित ब्राह्म समाज को ही बदल कर आर्यसमाज का रूप दे दिया जाय, परन्तु इसमें सबसे बड़ी बाधा वेद के स्वतः प्रामाण्य की थी, जिसे ब्राह्म लोग स्वीकार नहीं करते थे और ऋषि दयानन्द छोड़ते नहीं थे अन्त में समझौते का कोई मार्ग नहीं निकला और सन् १८७५ ई० में बम्बई नगर में सर्व प्रथम महर्षि ने आर्य समाज की नींव डाली। अतः यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि आर्यसमाज की स्थापना का आदर्श ब्राह्मसमाज का संगठन था। अच्छे आदर्श को किसी भी स्थान से ग्रहण करने में कोई हानि नहीं है अतः इसे स्वामी दयानन्द ने देश काल और परिस्थिति के अनुकूल समझ कर स्वीकार किया था। संगठन के युग में सामूहिक उपासना के महत्व से वे परिचित थे।

केवल ऊपरी ढांचे की दृष्टि से भले ही आर्य समाज और ब्राह्म समाज में समानता ढूंढी जाय, अन्यथा सिद्धान्तों की दृष्टि से दोनों में बड़ा अन्तर है। आर्य समाज जहाँ प्राचीन परम्परा का अनुसरण करते हुये वेद को ईश्वरीय ज्ञान और निर्भ्रान्त [illegible] शिक्षा की पुस्तकें मानता है वहाँ ब्राह्मसमाज का वेदों के विषय में कोई निश्चित मत नहीं है। यद्यपि राममोहन राय ने अपने ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर वेद को ईश्वरीय ज्ञान स्वीकार किया है, परन्तु उन्होंने कहीं भी इसको दृढ़ता से प्रतिपादन नहीं किया और न उसकी विशेष आवश्यकता पर ही बल दिया ऐसी परिस्थिति में दोनों संस्थाओं का वेद को लेकर एक मत होना कठिन था।

राम मोहन राय के पश्चात् तो ब्राह्मसमाज ने स्पष्ट रूप से वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानने से इनकार कर दिया। मैक्समूलर ने लिखा है ब्राह्म समाज के सदस्यों ने अपनी पवित्र धार्मिक पुस्तकों से पूर्व की अपेक्षा अधिक परिचय प्राप्त करने के पश्चात् सन् १८५० में स्पष्ट घोषणा कर दी कि ईश्वर से प्रेरित होने का दावा वेदों या ब्राह्मण के बारे में नहीं किया जा सकता।

१८७७ ई० के दिल्ली दरबार के अवसर पर ऋषि दयानन्द ने एक सर्व धर्म सम्मेलन का आयोजन किया जिसमें ब्राह्मसमाज के प्रतिनिधि रूप में केशवचन्द्र सेन और नवीन चन्द्र राय उपस्थित थे। यहाँ पर भी देशोन्नति का विचार हुआ परन्तु वेद की प्रामाणिकता के प्रश्न को लेकर कोई समझौता नहीं हो सका। इसी प्रकार महर्षि जब बम्बई और पंजाब के ब्राह्मसमाजियों से मिले तब भी उनके दृष्टिकोणों में जो प्रमुख अंतर था वह वेद की प्रामाणिकता को लेकर ही था। महर्षि के लिये वेद ही सर्वस्व था और इसे छोड़कर वे किसी से समझौता नहीं कर सकते थे।

ब्राह्मसमाज की समीक्षा के प्रसंग में महर्षि ने ब्राह्मसमाज का दृष्टिकोण पूर्व पक्ष स्थापित किया है। और उसका उत्तर भी दिया है। प्रश्न हम कोई पुस्तक ईश्वर प्रणीत या सर्वांश सत्य नहीं मानते क्योंकि मनुष्यों की बुद्धि निर्भ्रान्त नहीं होती इससे उनके बनाये ग्रन्थ भ्रान्त होते हैं। इसलिये हम सब से सत्य ग्रहण करते और असत्य को छोड़ देते हैं। चाहे सत्य वेद में बाईबिल में वा कुरान में और अन्य किसी ग्रन्थ में हो हमको ग्राह्य है, असत्य किसी का नहीं।

उत्तर—सर्वज्ञ परमात्मा के वचन का सहाय हम अल्पज्ञों को अवश्य होना चाहिये। जैसा कि वेद के व्याख्यान में लिख आये हैं वैसा तुमको अवश्य मानना चाहिये। नहीं तो 'यतोभ्रष्टस्ततोभ्रष्ट' हो जाना है। जब सर्व सत्य वेदों से प्राप्त होता है जिनमें असत्य कुछ भी नहीं तो उनका ग्रहण करने में शंका करनी अपनी और पराई हानि मात्र कर लेनी है। इसी बात से तुमको आर्यावर्ती लोग अपना नहीं समझते और तुम आर्यावर्त की उन्नति के कारण भी नहीं हो सके, क्योंकि तुम सब घर के भिक्षुक ठहरे हो। जिस देश को रोग हुआ है उसकी औषधि तुम्हारे पास नहीं है और यूरोपियन लोग तुम्हारी अपेक्षा नहीं करते और आर्यावर्ती लोग तुमको अन्य मतवालों के समान समझते हैं। अब भी समझ कर वेदादि के मत से देशोन्नति करने लगो तो भी अच्छा है। जो तुम यह कहते हो कि सब सत्य परमेश्वर से प्रकाशित होता है, पुनः ऋषियों के आत्माओं में ईश्वर से प्रकाशित हुये सत्यार्थ को क्यों नहीं मानते?

सिद्धान्त-विमर्श

स्वामी जी के कथन का अभिप्राय यह है कि वेद को अस्वीकार कर कोई भी संस्था भारत वासियों की उन्नति नहीं कर सकती। वेद विमुख होने से जो गति बौद्धों और जैनों की हुई वही ब्राह्मसमाजियों की भी हुई। वे भी हिन्दू समाज से पृथक समझे गये और उनकी गणना विधर्मियों में होने लगी। इसका कारण भी वेद के प्रति उनकी उपेक्षा ही है।

आर्यसमाज और ब्राह्मसमाज के दार्शनिक दृष्टिकोण में भी अन्तर है। आर्य समाज ईश्वर, जीव और प्रकृति-तीनों पदार्थों को अनादि तथा सृष्टि का कारण मानती है ब्राह्मसमाज का दार्शनिक दृष्टिकोण अस्पष्ट है। पता नहीं लगता कि वे शांकर अद्वैतवाद के समर्थक हैं या और किसी सिद्धान्त के। स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है 'ब्राह्म लोग जगत् के उपादान कारण के बिना जगत् की उत्पत्ति मानते हैं, और जीव को भी ईश्वर से उत्पन्न हुआ मानते हैं, यह ईसाइयों और मुसलमानों के सिद्धान्तों के तुल्य है। सामी (Semetic) मजहबों में बिना कारण के ही कार्य की उत्पत्ति मानी जाती है। वस्तुतः इससे विश्व की पहेली का कोई हल उपस्थित नहीं होता क्योंकि जब तक ईश्वर, जीव और प्रकृति को पृथक पृथक् नहीं माना जाता तब तक दार्शनिक गुत्थियों का सुलझना असम्भव ही है।

जिस प्रकार पश्चाताप और प्रार्थना करने से पापों का निवृत्त होना ईसाई मुसलमान और पौराणिक लोग मानते हैं, उसी प्रकार ब्राह्म लोग भी मानते हैं। यह भी वैदिक सिद्धान्त के प्रतिकूल है। बिना कर्मों का फल भोगे पाप आदि की निवृत्ति नहीं होती। यदि यह मान लिया जाय कि परमात्मा प्रार्थना करने अथवा तोबा कर लेने से पापों को क्षमा कर देता है तो इससे वह अन्यायकारी सिद्ध होता है। ईसाई मत के विश्वासनुसार ब्राह्म लोग पूर्व जन्म और पुनर्जन्म को भी नहीं मानते महर्षि ने इनके सभी सिद्धान्तों की समीक्षा सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास में की है।

ब्राह्मसमाज की एक और त्रुटि की ओर स्वामी जी ने संकेत किया है। वह है वैदिक कर्म काण्ड के प्रति अनास्था। राम मोहनराय ने अग्निहोत्रादि के विषय में कुछ नहीं लिखा। ऋषि लिखते हैं "अग्निहोत्रादि परोपकारक कर्मों को कर्तव्य न समझना अच्छा नहीं। और जो विद्या का चिन्ह यज्ञोपवीत और शिखा को छोड़कर मुसलमान ईसाइयों के सदृश बन बैठना व्यर्थ है। जब पतलून आदि वस्त्र पहिनते हो और तमगों की इच्छा करते हो क्या यज्ञोपवीत आदि का पहनना भारत हो गया था।

जातिवाद और उसका इलाज

बलवन्त सिंह एम० एल० ए०

प्राचीन काल में ऋषि-मुनियों के अनुसार समाज और कुटुम्बों में अलग २ लोगों के लिये काम निश्चित करने की आवश्यकता थी इस विभाजन से काम अच्छे हुये और समाज को काफी लाभ हुआ। आहिस्ता जो लोग एक काम करने लगे उनमें उनका ज्ञान भी अधिक बढ़ा और काम दूसरों के मुकाबिले पर अच्छा हुआ। और बाप के बाद बेटे ने उसी काम को किया किन्तु फिर भी दूसरों के लिए उसी काम को करने से चाहे अधिक सहूलियत न हो परन्तु कोई रुकावट न थी। जब तक समाज की व्यवस्था ठीक चली वह व्यवस्था जिसे वर्ण व्यवस्था कहते हैं ठीक चलती रही। कुछ समय बाद जब देश की राजनीतिक व्यवस्था बिगड़ गई कुछ लोग, जिनके हाथ में सत्ता थी उन्होंने अपने को बड़ा और दूसरों को छोटा, चाहे वह समाज के लिए कैसे ही उपयोगी क्यों न हों। समझना शुरू कर दिया। देश में अशान्ति के कारण अपनी रक्षा करने के लिए छोटी छोटी पेशावर टुकड़ियां बन गईं क्योंकि ऐसा ही बन जाना स्वाभाविक था उठना बैठना ब्याह आदि सब उन्हीं लोगों में आपुस में होने लगा। दूसरों से लगाव कम होने लगा मतलबपरस्त लोगों ने इसके लिये साहित्य भी तैयार कर लिया और प्राचीन साहित्य में अपने विचारों की पुष्टि के लिए भी चीजें शामिल कर दीं। मुसलमानी राज्य सत्ता में ही इसकी बुराइयां देख पड़ने लगी थी और उस समय के सन्त महात्मा कबीर नानक, आदि ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई थी किन्तु अंग्रेजी काल में इसकी बुराइयां साफ साफ दिखाई देने लगीं क्योंकि अंग्रेज ने इसको विभाजन और राज्य के उसूल पर लेकर इसका लाभ उठाया। सरकारी नौकरियों में इसे स्थान दिया। जाति के नाम पर अलग नौकरियाँ और विवाह सभाओं में निश्चित हो गये अंग्रेज तो चला गया किन्तु उसका दिया जहर ज्यादा असर करने लगा। आज समाज में अधिक बातें इसी आधार पर चल रहीं हैं, और उसका मुख्य कारण यह है कि एक साधारण आदमी अपने चारों तरफ [illegible] का दास होता है और उसके अधिकतर काम उसी वातावरण से प्रभावित होकर होते हैं। जब कि एक आदमी का मिलना जुलना खाना ब्याह शादी एक विशेष जाति के लोगों में होती हैं और उन्हीं में उनका अधिकतर समय गुजरता है तो उससे यह आशा नहीं की जा सकती है कि वह इस वातावरण में विरुद्ध कुछ कर सके और अब वह एक दूषित चक्र बन गया है।

इस दूषित चक्र को तोड़ने के लिए हमारी राज्य व्यवस्था में यह बात तो रख दी गई है कि किसी धर्म या जाति विशेष की वजह से कोई किसी सरकारी नौकरी या पद के पाने का मुस्तहक न होगा। किंतु यह भी पर्याप्त साबित नहीं हो रहा और आये दिन यह शिकायत सुनने को मिलती है कि अमुक व्यक्ति ने अपनी जाति के आदमी को ही मान्यता दी। अब प्रश्न यह होता है कि वह दूषित वातावरण जिसमें हम घिरे हुये हैं उससे निकल जायं उसका इलाज यह है कि हमारी आत्मीयता दूसरी जाति के लोगों से भी हो। हमारे ब्याह शादी दूसरे के साथ भी हों जिससे वह एक जाति का चक्र कट हमारी आत्मीयता विस्तृत हो जाय। उसके लिये हमारे राजनैतिक तथा सामाजिक क्षेत्र के लोगों को दिखलाना चाहते। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि हमारे मिनिस्टर चौधरी चरण सिंह जी ने लोगों के सामने बड़ा ऊंचा आदर्श अपनी लड़की की शादी दूसरे लोगों में करके रखा है हम जानते हैं कि कुछ कट्टर पंथी लोग इसकी बुराई करेंगे किन्तु अच्छे काम को ऐसे लोगों से डरकर छोड़ना नहीं चाहिये। एक बात का ध्यान आवश्य उन लोगों को रखना चाहिये जहाँ एक बिरादरी या वातावरण की लड़कियां दूसरी जगह जाती हैं कि उनको दूसरी परिस्थितियों को ग्रहण करने का पूरा पूरा अवसर दें और दूसरे लोग इस प्रकार की शादियों को प्रोत्साहन दें। कुछ समय के लिये राज्य तथा केन्द्रीय सरकारों को ऐसे नियम भी बना देने श्रेयकर होंगे कि जो लोग ऐसी जाति पाँति तोड़कर शादी करें उनको सरकारी नौकरियों में कुछ तरजीह दें। इससे इस प्रकार की शादियों को प्रोत्साहन मिलेगा। अपने नामों के आगे पीछे जो जाति या बिरादरी सूचक शब्द लगाने की प्रथा जो अंग्रेज ने छोड़ा है उसे भी हमें छोड़ना चाहिये और अखिल भारत वर्षीय कॉंग्रेस के महामन्त्री श्री मन्नारायण जी का अनुकरण हमें करना चाहिये जिन्होंने अपने नाम के पीछे बहुत पुराना बिरादरी सूचक पद अग्रवाल हटा दिया। और सबसे अन्त में किंतु सबसे आवश्यक यह है कि अब हमें अपने हृदय में परिवर्तन कर लेना चाहिये जिससे कि अपने देश से जाति बिरादरी का यह अभिशाप दूर हो सके।

अमर शहीद श्रद्धानन्द

(पृष्ठ ५ का शेष)

महत्व को समझा जो एक ही रात में "सद्धर्म प्रचारक" को उर्दू से हिंदी में कर दिया। लोग कहते रहे कि ग्राहक "नहीं" के बराबर रह जायेंगे। पर स्वामी जी का आदेश था" नहीं, सद्धर्म प्रचारक कल से ही हिंदी में निकलेगा। आदेश पूरा किया गया और सब जानते हैं कि सद्धर्म प्रचारक अपने समय में उत्तर भारत के हिंदी पत्रों में सर्वाधिक ग्राहक संख्या का पत्र रहा। अपने आदर्श के सामने देखते हुए वह सत्य मार्ग को ग्रहण करने में न कभी घबराए, न कभी झिझके, न कभी संकोच में पड़े। अतः उन्हें "स्वामी" कहकर पुकारने वाले हम समस्त भारतवासी, विशेषकर आर्यसमाज के नेतागण तथा सभासद् उनकी इस वीरता, आदर्शवादिता के अनुगामी बनेंगे, यही आशा है विश्वास उनकी यह वीरता सत्यप्रियता और आदर्शवादिता ही असली और अमर श्रद्धानद थे, उनका नश्वर शरीर नहीं।

शुद्धि का महत्व

(शेष पृष्ठ ६ का)

कहा दी उन्हें 'पल्हव' नाम दिया इस प्रकार इन क्षत्रियों की शक्ति ही नष्ट कर दी साथ ही इनको यज्ञादि से वञ्चित कर दिया इस प्रकार यह लोग शूद्र बन गये। इन लोगों की शुद्धि का उपाय क्या हो यह एक विचारणीय विषय है।

सब से प्रथम उपवास करके पंच गव्य का पान करें, क्योंकि गौ की सेवा से तथा गौ के दुग्धादि के सेवन से मनुष्य का शरीर जो वात पित्त कफ का समुदाय है पवित्र हो जाता है तदन्तर चौर कर्म करा के यज्ञ करावे जिसमें निम्न होम के मन्त्रों के बाद "मदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचम्" इत्यादि मंत्र से तीन बार आहुति दे तथा मेरा भिन्न भिन्न मानसिक शारीरिक एवं आत्मिक पाप दूर हो रहा है यह भावना करे। तदनन्तर अथर्ववेद के प्रायश्चित्तीय मन्त्रों से आहुति दे तदन्तर शिव सकल्प सूक्त से आहुति देता हुआ जो विशेष शाकल्य या पूर्णाहुति बना हो उसकी आहुति दे पूर्णाहुति शान्तिपाठ वर्णव्यवस्था के साथ शुद्धि यज्ञ की समाप्ति करे।

शुद्धि का महत्व

शुद्धि प्रति दिन जीवन में प्रमुख स्थान रखती है, प्रातः काल से शाम तक शरीर मन और आत्मा की शुद्धि में हम लोग लगे रहते हैं। जगद्गुरु शङ्कराचार्य ने यज्ञादि कर्म विहीन बौद्धों की जो हजारों की संख्या में थे उनकी शुद्धि शंखनाद से ही कर डाली थी। चंद्रगुप्त ने शक और हूणों को भी तथा शुद्ध किया था इसी प्रकार आज भी यदि लोग हृदय को उदार करके यवन एवं ईसाइयों की शुद्धि करके रोटी बेटी का व्यवहार करे तो अत्युत्तम हो। क्योंकि बिना हृदय के मिले और सब प्रकार के शोध व्यर्थ हैं। यही कारण है कि शुद्ध हुए लोग फिर दुःखी होकर हिन्दुओं या आर्यों के व्यवहार की दुर्गति से उद्विग्न होकर फिर लौट जाते हैं। शारीरिक शुद्धि के समान समाज शुद्धि भी अपना विशेष महत्व रखती है इसके बिना जाति निष्प्राण होती जाती है अतः शुद्धि की महत्ता को अपना कर उसे जीवन में परिणत करना ही चाहिये।

सभा की सूचनाएँ

उपदेश विभाग की शिविर-योजना

सभा में यह प्रस्ताव बहुत दिनों से विचाराधीन था कि उपदेश विभाग को सफल बनाने के लिए प्रति सप्ताह उपदेशक शिविर विभिन्न स्थानों में लगाये जावें। इस योजना को अधिष्ठाता जी उपदेश विभाग कार्यान्वित करने जा रहे हैं। सभा का विचार है कि एक एक सप्ताह के लिए शिविर उन स्थानों में लगाये जावें जहाँ जहाँ पर ऐसे ग्राम हों जहाँ मोटर तथा रेल सड़क द्वारा पहुँचने की सुविधा हो ? जो ग्राम की आयसमाज अपने अपने यहाँ शिविर लगाने के लिए आमन्त्रित करें, उसकी सूचना सभा कार्यालय को शीघ्र दें। इस योजना में समस्त प्रतिनिधि सभाओं को पूर्ण सहयोग देने की कृपा करें।

उपदेशविभाग की सूचना

समस्त महोपदेशक तथा प्रचारकों को सूचित किया जाता है कि सभा का वर्ष ३१ दिसम्बर ५५ को समाप्त होने में केवल एक सप्ताह शेष रहा है। अतः मार्ग व्यय बिल तथा डायरिया मास समाप्ति के एक सप्ताह के अन्दर भेज दें। यदि किन्हीं सज्जनों की पिछले मासों की डायरी भेजने की रह गई हो तो वह शीघ्र भेजने की कृपा करें।

श्रीयुत विद्यानन्द विदेह के सम्बन्ध में सार्वदेशिक सभा तथा उत्तर प्रदेशीय सभा के महत्वपूर्ण निश्चय:—

श्रीयुत मंत्री जी आर्यसमाज उत्तर प्रदेश।

महोदय ! नमस्ते।

विदित हो कि श्रीयुत विद्यानन्द जी विदेह के सम्बन्ध में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली का निश्चय इस सभा की अन्तरंग दिनांक २१ अक्तूबर १९५५ में प्रस्तुत हुआ और अपने निश्चय सं० २१ द्वारा उक्त सभा के निश्चय को सर्व सम्मति से सम्पुष्ट किया गया। अत यह सभा उत्तर प्रदेशीय समस्त आर्य समाजों तथा अन्तरंग सदस्यों से अनुरोध करती है कि अपने २ क्षेत्रों में इस आदेश का पालन करें व करावें।

इस सभा के निश्चय की लिपि:—

निश्चय सं० २१ विषय स० २७ श्री विद्यानन्द जी विदेह के सम्बन्ध में सार्वदेशिक सभा देहली का निर्णय सूचनार्थ एवं आवश्यक कार्यवाही करने की स्वीकृति प्रस्तुत हुआ। अत सर्व सम्मति से निश्चय हुआ कि यह सभा सार्वदेशिक सभा के श्री विदेह जी सम्बन्धी आदेश को सम्पुष्ट करती है तथा अन्तर्गत समस्त आर्य समाजों व अन्तरंग सदस्यों से अनुरोध करती है कि वह अपने क्षेत्रों में इस आदेश का पालन करें व करावें।

सार्वदेशिक सभा का निश्चय—

धर्मार्य सभा के इस निश्चय पर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की २८-८-५५ की अन्तरंग ने निम्नांकित निश्चय किया है.—

निश्चय स० २०—सार्वदेशिक धर्मार्य सभा की २७-८-५५ की अंतरंग का प्रस्ताव प्रस्तुत होकर पढ़ा गया निश्चय हुआ कि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से आर्य समाजों को इस आशय का आदेश दिया जाय कि क्योंकि विदेह जी ने अनेक बार ध्यान खींचे जाने पर और आश्वासन देकर भी वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध प्रचार बन्द नहीं किया है इस कारण—

(१) आर्य समाज की वेदी पर से उनके व्याख्यान न कराये जावें।

(२) उनके ग्रन्थ आर्य समाजों के पुस्तकालयों में न रखे जावें।

(३) उनके ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए अथवा अन्य किसी कार्य के लिए आर्थिक सहायता न दी जाय।

इस निश्चय को क्रियान्वित करना प्रत्येक आर्य, आर्य समाज और आर्य संस्था का परम कर्तव्य है। सभा को आशा है कि इस निश्चय का अक्षरशः पालन होगा और कोई आर्य, आर्य समाज और आर्य संस्था आदि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को अनुशासन भंग की कार्यवाही करने का अवसर न देगा। यह सभा इस निश्चय का, बुराई के प्रसार को रोकने के लिए कड़ाई के साथ परिपालन कराने के लिए कृत संकल्प है।

विदेह जी के प्रति इस अनुशासनात्मक कार्यवाही के करने में सभा को दुःख है। सब से बड़ा दुःख इस बात का है कि सभा ने विदेह जी को अपनी गतिविधि में सुधार करके आर्य समाज का एक उपयोगी अंग बने रहने की आवश्यकता से अधिक अवसर दिया परन्तु उन्होंने उससे समुचित लाभ न उठा कर सभा को उपयुक्त प्रकार का निर्णय करने के लिये विवश कर दिया। आर्य समाज की शिक्षाओं, सिद्धान्तों और मन्तव्यों के विरुद्ध प्रचार करने में कोई आर्य स्वतन्त्र नहीं किया जा सकता। आर्य समाज के सिद्धान्त, उसके मन्तव्य और उसके प्रचार उसका हित विदेह जी पर बलिदान नहीं किये जा सकते।

जयदेवसिंह
बी० ए० एल-एल० बी०
मन्त्री
आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश

कार्ल जे० शापिरो अमेरिका का प्रसिद्ध नवयुवक कवि जो १० जुलाई को भारत आये थे और यहाँ दो महीने रहकर गये थे।

बायीं ओर—श्री जोसेफ आज़ा संयुक्त राष्ट्र संघ के अमरीका ... के प्रतिनिधि दायीं ओर—श्री ... सराय ... एक दूसरे के साथ खड़े हुये।

जागते रहो

(पिछले पृष्ठ का शेष)

जागे रहें तब न उद्देश्य सफल हो ऋग्वेद कहता है कि जो जागता रहता ऋचायें उसकी कामना करती हैं। जो जागता रहता है उसी पर यज्ञ प्रसन्न रहता है। जो जागता रहता है साम भी उसीकी ओर दौड़े आते हैं इसलिये हमारा यह कहना है कि हे आर्यो, यदि आप सो रहे हो फिर भी अपने आप को जगे हुवे समझ रहे हो तो क्या हमारा यह कर्त्तव्य नहीं है कि इस भ्रान्ति को दूर करें ? क्या किसी को आलस्य प्रमाद कर्तव्य विमुखता, इत्यादि से सावधान करने का नाम निराशा वाद है, क्या आप ईमान्दारी से यह कह सकते हैं कि आप पाश्चात्य कोरे भौतिक वाद की लपेट में नहीं आ रहे हैं ? क्या आप पेट के प्रश्न आगे करके धर्म को पीछे नहीं छोड़ रहे हैं ? क्या आप आत्मवञ्चना तथा जनवञ्चना में नहीं लगे हुए हैं ? क्या आप कोरे प्रचारवादी बन रहे हैं ? क्या आप इन प्रश्नों के उत्तर ईमानदारी से दे सकते हैं ? क्या आप जिस गति से चल रहे हैं उस गति से अपने वेद शास्त्र, त्याग, तपस्या श्रद्धा, आदि को सफल बना सकेंगे ? तुममें बल बहुत है तुम उसे समझते नहीं हो तुममें ज्ञान बहुत है पर वह वाच का सारा "वाचो विग्लापनम्" अर्थात् कोरो वाचालता में नष्ट हो रहा है। अब यदि अपनी रक्षा करनी है तो श्रद्धा सूक्त में सायं प्रातः मध्यान्ह में श्रद्धा पूर्वक श्रद्धा देवी का आवाहन करो। अब भी समय है चेतने का, उठने का, स्वरूप को समझ कर कर्तव्य पालन करने का।

प्रदेशीय वेद प्रचार स्थायी निधि के लिए धन की अपील

वेद प्रचार आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य। वेद प्रचार को अधिक प्रगति देने के लिये एक वेद प्रचार निधि की अत्यन्त आवश्यकता है और यदि एक स्थायी निधि वेद प्रचार के लिये एक लाख रुपये एकत्रित हो जावें तो वेद प्रचार का कार्य बड़ी सुगमता से सफल हो सकता है, उत्तर प्रदेश एक बहुत बड़ा प्रदेश है, और आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश से एक सहस्त्र से अधिक आर्य समाज सम्बन्धित हैं प्रत्येक आर्य समाज एक रुपया प्रति सभासद और एक २ रुपया समाज के हितैषियों से प्राप्त करें तो एक लाख रुपया एकत्रित हो हो सकता है। स्थायी निधि बन जाने पर योग्य और प्रभावशाली उपदेशक, प्रचारक नियुक्त किये जा सकेंगे ? और इन प्रचारकों की कार्यविधि इस प्रकार बनाई जायगी कुछ ग्रमीण जनता में प्रचार करेंगे, कुछ बड़े नगरों में, कुछ सभा के कार्यालय में विशेष रूप से उत्सवों इत्यादि में भेजे जा सकेंगे ?

ईसाई मत निरोध के लिये भी प्रचारक नियुक्त होंगे। और विशेष योग्यता के प्रचारक, उपदेशक तैयार करने के लिये एक उपदेशक विद्यालय की स्थापना की जायगी। इन सब आवश्यक कार्यों की सफलता के लिये हम बलपूर्वक प्रत्येक आर्यसमाज से अनुरोध करेंगे कि वह एक रुपया प्रत्येक आर्य सभासद तथा हितैषियों से एकत्रित करके जो कोष व्यक्त को आर्यप्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश ५ मीराबाई मार्ग लखनऊ के नाम भेजने की कृपा करेंगे।

पूर्णचन्द्र
एडवोकेट
प्रधान

जयदेवसिंह
एडवोकेट
मन्त्री

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश

विद्या ब्राह्मण के पास आकर बोली।

विद्या—ब्राह्मण, मेरी रक्षा करो।

ब्राह्मण—क्या हो गया देवी ?

विद्या—मैं तेरा अमूल्य, कभी न घटनेवाला कोष (खजाना) हूँ।

ब्राह्मण—क्या आपत्ति देवी।

विद्या—अनाधिकारियों के हाथ में पड़कर दुखी जा रही हूँ।

ब्राह्मण—वे अनाधिकारी कौन ! देवी ?

विद्या—इन असूयु (डेरे) असूयक (निन्दक), ब्रह्मचर्यादि साधन-शून्य लोगों के पल्ले पड़ी हूँ। ऐसे लोगों को मुझे मत सौंप विद्वान् ! नहीं तो मैं निकम्मी हो जाऊँगी। फलवती नहीं बन सकूँगी। देखो ब्राह्मण ! जिसको भी तुम समझो कि वे भाव-शुद्ध हैं, शुचि हैं, अप्रमादि हैं, मेधावी है, ब्रह्मचर्य सम्पन्न हैं, उन्हीं को मुझे सौंपना, जिससे फलवती होकर वीर्यवती बन सकूँ और आप गुरु-शिष्यों के परिश्रम को सार्थक कर सकूँ।

ब्राह्मण—किसे मैं क्या ध्यान रख रहा हूँ।

विद्या—कहाँ ध्यान रख रहे हो विद्वान् ! ऐसों को मेरा दान करो जो किसी दशा में भी तुमसे न द्रोह रखते हैं अथवा द्रोह करते हैं—

विद्या—(शिष्यों से)—देखो शिष्यो, जो गुरु, तुम्हारे हृदय के अज्ञानान्धकार को सत्य ज्ञान दान द्वारा छिन्नभिन्न करता रहता है वही तुम्हारा सच्चा गुरु है। जो तुम्हें विद्यारूपी अमृत पिलाकर तुम्हारे मोह को दूर कर देता है वही तुम्हारा सच्चा गुरु है उसके साथ सद्भाव से बर्तना, उसके साथ कभी अन्याय, अधर्म, असत्य व्यवहार नहीं रखना। उसके साथ कभी कपट व्यवहार मत करना। उसी को माता पिता, ज्ञानदाता, बुद्धिदाता समझना—यदि इस बात का ध्यान रखोगे तो मैं सफल हो सकूँगी और तेरा परिश्रम सफल होगा, तेरे गुरु का परिश्रम होगा।

इस उपर्युक्त विद्या-ब्राह्मण-संवाद में गुरुकुलों का तत्व आ जाता है—गुरुकुल में जाकर हमारे वेद-शास्त्र सफल हो सकते हैं।

गुरु-शिष्य परम्परा तभी सफल हो सकती है। वेद शास्त्रों की रक्षा के साथ-साथ हमारी भी, हमारे समाज की भी रक्षा हो सकती है। हमारे उद्देश्य भी सफल हो सकते हैं और संसार भर के उपकार करने, सत्यबने की बात भी हो सकती है। यह तभी होगा जब हमारे गुरुकुल अर्थ शुचिता का ध्यान रखेंगे, सब प्रकार के अनर्थक प्रलोभनों से बचेंगे-भावशुद्धि से चलेंगे। क्योंकि मनु कहते हैं कि—

वेदा स्त्यागाश्च यज्ञाश्च।
नियमाश्च तपांसि च ॥
न विप्रदुष्ट भावस्य।
सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥

वेद, त्याग, यज्ञ, नियम, तप ये सब के सब कभी भी सफल होते हैं जो शुद्ध भाव से इनको अपनाते रहते हैं-विशुद्ध भावों से प्रेरित हुए पुरुषों का।

शुद्धि सप्ताह का कार्यक्रम

भारत को स्वतंत्रता प्राप्त होने के पश्चात् भी अवैदिक मत संगठित होकर अपनी शक्ति बढ़ाते जा रहे हैं। विशेष रूप से ईसाई मिशनरियों के जाल और उनकी गतिविधि प्रत्येक भारत हितैषी के लिये चिन्ता का कारण बनी हुई हैं।

आर्यसमाज आरम्भ से ही मत मतान्तरों के अज्ञान का विरोधी रहा है, उसने ईर्ष्या द्वेष या शक्ति बढ़ाने की भावना से नहीं, अपितु सत्य न्याय और मानवता के प्रतीक वैदिक सन्देश को प्रचारित करने के उद्देश्य से संसार के समस्त भेदभावों को मिटाकर वेद धर्म मार्ग की स्थापना का सतत प्रयत्न किया है। इस पवित्र लक्ष्य को लेकर चलते हुए धर्मवीर लेखराम और श्रद्धानन्द जैसे महान् वीरों ने अपने प्राणों की आहुति देकर भी सत्य की दीप्त ज्योति प्रज्वलित रखने का यत्न किया है।

अमर शहीद श्रद्धेय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का बलिदान दिवस २३ दिसम्बर को हमें ज्ञान के महान सन्देश को प्रचारित करने की अजस्र प्रेरणा दे रहा है। इसी प्रेरणा के बल पर और राष्ट्र की जटिल परिस्थिति में अज्ञानान्धकार के प्रतिनिधियों को बढ़ते देखकर आपकी उत्तरप्रदेशीय आर्य प्रतिनिधि सभा ने कृतसंकल्प होकर अपने प्रान्त से अवैदिक मतों विशेषरूप से ईसाई मत की विषाक्त गतिविधि से आर्यजाति की रक्षा करने के लिए २३ से ३० दिसम्बर तक शुद्धि सप्ताह मनाने का निश्चय किया है।

इस पत्र द्वारा मैं आपसे और आप द्वारा नगर की समस्त जनता से हम निवेदन करना चाहते हैं कि आप अपने नगर में इस सप्ताह को पूर्ण शक्ति, उत्साह और प्रभावशाली ढंग से मनाएं २३ दिसम्बर का दिन नगर में "श्रद्धानन्द दिवस" के रूप में प्रभातफेरी निकाल कर और सायकाल को सार्वजनिक स्थान पर सभा कर मनाए। इस दिन वैदिक सन्देश की महानता और धर्म के वास्तविक स्वरूप पर व्याख्यान कराकर अमर शहीद को श्रद्धांजलि सच्चे हृदय से अर्पित करें, और उस महान आत्मा के बलिदान से शिक्षा लेते हुए प्रण करें कि प्रत्येक मनुष्य तक वैदिक सन्देश पहुंचाए बिना हमारा अभियान रुकेगा नहीं। २४ से ३० दिसम्बर तक का कार्यक्रम निम्न रूप में रखें।

२४ दि० शुद्धि का महत्व
२५ दि० ईसाई मत समीक्षा
२६ दि० विदेशी पादरियों की राष्ट्रघातक गतिविधि
२७ दि० ईसाईयत का वास्तविक स्वरूप
२८ दि० धर्म क्या है और क्या ईसाईयत को धर्म की संज्ञा दी जा सकती है।
२९ दि० सभा का स्थापना दिवस और [illegible] का उद्देश्य
३० दि० वैदिक धर्म और आर्यसमाज की विशेषता।

इन विषयों पर सार्वजनिक व्याख्यान कराएं और विशेषरूप से २९ दिसम्बर का दिन आर्य प्रतिनिधि सभा के स्थापना दिवस के रूप में मनाएं।

इस प्रकार इस सप्ताह के सारे कार्यक्रमों द्वारा हम जनता को बताएं कि आर्यसमाज का महान लक्ष्य क्या है और हम अन्य मतों का विरोध क्यों कर रहे हैं। जीवन के प्रति वैदिक दृष्टिकोण की व्यवहारिक भावना का विस्तार और सत्य ज्ञान की स्थापना प्रत्येक मस्तिष्क पर हमें करनी चाहिये। साथ ही धन के बल पर भारत के धर्म और ज्ञान एवं संस्कृति को भ्रष्ट करने की तैयारी में रत विदेशी ईसाई पादरियों की सच्ची स्थिति का ज्ञान भी हमें जनता को करा देना चाहिये।

प्रान्त में ईसाई मिशनरियों की गतिविधि से रक्षा करने के लिये आपकी सभा ने चार आने के नोट भी प्रकाशित किये हैं, जो संख्या में इस पत्र के साथ भेजे जा रहे हैं, इस सारे सप्ताह में आप अधिक जनता तक ईसाई विरोध कार्य में चार आना सहायता रूप में प्राप्त करने के लिये पहुंचें और अपने नगर में कोई भी व्यक्ति ऐसा न छोड़ें जो कम से कम एक नोट न ले।

इस आशा और विश्वास के साथ कि सदा भांति महर्षि के दिव्य सन्देश के प्रचारार्थ आपकी समाज का सहयोग पूरे बल से हमें प्राप्त होगा ही, हम आपसे "शुद्धि सप्ताह" मनाने की प्रार्थना करते हैं।

पूर्णचंद्र ऐडवोकेट
प्रधान

जयदेवसिंह ऐडवोकेट
मंत्री

आर्य प्रतिनिधिसभा उत्तर प्रदेश

स्वामी श्रद्धानन्द

३६ वर्ष पूर्व राजधानी दिल्ली के घंटाघर पर एक सन्यासी ने गोरे फौजियों की संगीनों के सामने गज भर चौड़ा सीना तान कर कहा था। "चलाओ गोली, मुझ पर गोली, मुझ पर चलाओगे, जनता पर नहीं। मेरे सीने को छेद कर ही गोली जनता तक पहुंच सकेगी"। संसार का इस वीर सन्यासी स्वामी श्रद्धानन्द को [illegible] से ऊंचे और वज्र से कठोर रूप में जानती है। स्वामी जी का दूसरा रूप से भी हैं। वे बच्चों की भांति रोये भी हैं। लोकमान्य तिलक के स्वर्गवास का सम्वाद पाकर वे फफक फफक कर रोये थे। उनकी आंखों से आंसू थमते न थे। एक बार और १९२४ के मार्च माह में गुरुकुल के उत्सव पर आये थे वह। वे प्रचंड आग लगने पर कई झोपड़ियां जल कर खाक हो गई थी एक डेढ़ दो वर्ष का बालक भी अग्नि को अर्पण हो गया। हजारों की भीड़ किंकर्तव्य विमूढ़ सी खड़ी थी। उस समय वह निर्भीक सन्यासी शोलों पर नंगे पैर रखता हुआ आगे बढ़ा, कन्धे का भगवा दुपट्टा उतारा और झुलसे बच्चे को उसमें लपेट, छाती से लगा आंखों से अविरल अश्रुधारा बहाता हुआ अनन्त विश्राम स्थल की ओर बढ़ा। हजारों की जनता पीछे चली, रोती हुई उन आंसुओं में बच्चे के मा बाप का शोक बह गया था। तुलना कीजिये, स्वामी के प्रथम व द्वितीय रूपकी।

'गंगू' बहराइच

स्वामी श्रद्धानन्द के शाश्वत लक्ष्य की हत्या न कीजिये

(पृष्ठ २ का शेष)

असमानता ने ले लिया है। गरीब अमीर विद्यार्थियों में जहाँ पहले जरा नहीं नजर आता था अब तो वही खाने, पहनने, खेलने और चिकित्सा आदि में यह भेद बिल्कुल स्पष्ट दृष्टि गोचर हो रहा है। भोजन में हास्टल सिस्टम शुरू हो चुका है, एक विद्यार्थी घी, आचार, मुरब्बे, तरकारियां, प्याज लहसुन उड़ा रहा है और दूसरा विद्यार्थी सूखी रोटियों से काम चला रहा है। शहर में सिनेमा देखना अब उतना बड़ा अपराध नहीं कि जिसके लिए दंड देने की आवश्यकता समझी जाय। रुपये पैसे विद्यार्थी रखते ही हैं। तो तो अब कौन सी विशेषता है कि जिसके लिए गुरुकुलों की आवश्यकता अनुभव की जा सकती है। आत्मबलिदान के दिवस इस [illegible] पर मैं आर्य जनता एवं गुरुकुलों के अधिकारियों का ध्यान इस विषय की ओर आकर्षित करना चाहता हूं कि कहीं भूल से आप स्वामी श्रद्धानन्द और स्वामी दयानन्द की हत्या के भागी तो नहीं बन रहे हैं। उन हत्यारों ने तो हमारे इन पूज्य नेताओं के भौतिक शरीर का यत्न किया था। भौतिक शरीर नष्ट होना ही था एक दिन जो उत्पन्न हुआ है कि वह मरेगा ही। पर उनकी वास्तविक हत्या उनके कार्यों एवं विचार धाराओं का दुरुपयोग करने से होगी। जिन्होंने उनकी विचार धारा स्वीकार नहीं की उनकी तो कोई बात नहीं परन्तु जो उनके गुणों का आदर करते हैं पर जो अन्दर से उनकी विचार धारा को नष्ट कर रहे हैं पाप उन्हीं के सिर पड़ेगा अत: आज हम स्वामी जी प्रति अपनी सच्ची श्रद्धाञ्जलि तभी समर्पित करेंगे जब हम उनके उद्देश्यों की दिशा में एक कदम आगे बढ़ें, स्वयं आर्य बनें, आर्य बनें, आर्य विचार धारा के पोषक बनें। यही सच्ची श्रद्धाञ्जलि है।

पताः—'आर्यमित्र'
५ मीराबाई मार्ग, लखनऊ
फोन—११३
तार—'आर्यमित्र

आर्यमित्र

रजिस्टर्ड नं०एल० ६०
२६ दिसम्बर, १९५५

दमा-खांसी

२० मिनट में खत्म

कठिन से कठिन और भयंकर दमा खांसी व फेफड़ों सम्बन्धी समस्त रोगों की परीक्षित रामबाण दवा "ॐकोरस" सेवन कीजिए। दवा गुणहीन साबित करने पर दाम वापिस की गारंटी। मू० ५० खुराक ५॥), २० खुराक १०) डाक व्यय अलग। उत्तर के लिये जवाबी कार्ड आना लाजमी है।

ओंकार केमिकल वर्क्स
हरदोई यू० पी०

अमृतभल्लातकी रसायन

शीत ऋतु का उपहार

यह शिलाजीत, बंग, मकरध्वज आदि अनेक पौष्टिक दवाओं द्वारा निर्मित सर्वोत्तम रसायन है। वीर्य विकार, स्वप्नदोष बवासीर और निर्बलता पर लाभदायक है। स्त्रियों के श्वेतप्रदर पर रामबाण है मात्रा: १ से २ तोला तक प्रातः सायं गाय के दूध के साथ मूल्य१६) सेर

प्रयोगशाला—
गुरुकुल वृन्दावन जि०वृन्दावन

आयुर्वेद की सर्वोत्तम, कान के रोगों की अकसीर दवा!

कर्ण रोग नाशक तैल

कान बहना, शब्द होना, कम सुनना, दर्द होना, खाज आना, सांय सांय होना, मवाद आना, फुंसना, सीटी सी बजना आदि में चमत्कारी सिद्ध 'कर्ण रोग नाशक तैल' बड़ा अकसीर है। की० १ शी० १।), डाक पैकिंग १।) । ४ शी० पर खर्चा माफ, अपना पता साफ साफ लिखें। वी० पी० ३० से कम का आर्डर स्वीकार नहीं किया जाता।

पता—कार्यालय 'कर्ण रोग नाशक तैल' सम्तोनावन
नजीबाबाद यू० पी NAJIBABAD. U. P. A

सफेद कोढ़ के दाग

हजारों के नष्ट हुए और सैकड़ों के प्रशंसा-पत्र मिल चुके हैं। दवा का मूल्य ५) रुपये, डाक व्यय १)।
अधिक विवरण मुफ्त मंगा कर देखिये।

वैद्य के० आर० बोरकर
मु० पो० मंगरूलपुर, जिला अकोला (मध्य प्रदेश)

जाति निर्णय

जाति अन्वेषण—२६१ हिन्दू जातियों का अद्वितीय ग्रन्थ,लगभग २ ०० संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण ४) डाक व्यय १।)

ब्राह्मण निर्णय—२१४ ब्राह्मण जातियों का एक ही ग्रन्थ ६२० पृष्ठ सचित्र १०) डा० २॥) बहुत थोड़ी ही रही हैं।

क्षत्रिय वंश प्रदीप-प्रथम भाग। क्षत्रिय जाति का अति प्रसिद्ध ग्रन्थ। ११०० क्षत्रिय जातियों की सूची युक्त। लगभग ४०० पृष्ठ मू० २) डा० १)

वर्ण व्यवस्था कमीशन के २५१ प्रश्न—हस्तलिखित ११) डा० १)

नौमुस्लिम जाति निर्णय—अछूत तथा नौमुस्लिम जातियों का तथा 'शुद्धि सभा' का परम-उपकारक ग्रन्थ ५२० पृष्ठ ४) डा० १।)

खुखिया जाति निर्णय—श्री पं० ओ३म् दत्त शर्मा गौड़ 'विकल' स्वधर्मनिष्ठ, व्याख्यान विशारद, एम० एल० एम० पी० आदि के वर्षों के कठोर परिश्रम का अद्भुत फल। 'खुखिया जाति' का उद्धारक ग्रन्थ। २॥) डा० १।) थोड़ी ही और बची हैं। शीघ्र मंगाइये।

व्यवस्थापक—(आर्य) वर्णव्यवस्था मण्डल,
फुलेरा (जयपुर)

दैनिक स्वाध्याय के ग्रन्थ

१ऋग्वेद सुबोध भाष्य—मधुच्छन्दा, मेधातिथी, शुनःशेप, कण्व, पराशर, गोतम, हिरण्यगर्भ, नारायण, बृहस्पति विश्वकर्मा, सप्तऋषि (?) दिम सर,१८ ऋषियों के मंत्रों के सुबोध भाष्य मू. १६) डा. १॥)

ऋग्वेद का सप्तम मण्डल (वसिष्ठ ऋषि) सुबोध भाष्य । मू. ७) डा. व्य. १)

यजुर्वेद सुबोध भाष्य अध्याय , मू. १।।), अध्या ३० मू० अध्याय ३६, मू. ॥) सबका डा. व्य. १)

अथर्ववेद सुबोध भाष्य (संपूर्ण. १८ कांड) मू. २१) डा. व्य. २)

उपनिषद्भाष्य—ईश २), केन ॥), कठ १॥) प्रश्न १॥), मुण्डक १॥), माण्डूक्य ॥), ऐतरेय ॥।) सबका डा. व्य. २।)

श्रीमद्भगवद्गीता पुरुषार्थ बोधिनी टीका । मू. १२॥) डा. व्य. २)

वैदिक व्याख्यान— अग्नि में आदर्श पुरुष, २ वैदिक अर्थव्यवस्था, ३ स्वराज्य, ४ सौ वर्षों की आयु, ५ व्यक्तिवाद और समाजवाद, ६ शांतिः शांतिः शांतिः, ७ राष्ट्रीय उन्नति, ८ सप्त व्याहृति, ९ वैदिक राष्ट्रनीति, वैदिक राष्ट्रशासन, ११ वेद का अध्ययन अध्यापन, १२ भागवत में वेद दर्शन, १३ प्रजापतिका राज्यशासन, १४ त्रैत-द्वैत-अद्वैत, १५ क्या विश्व मिथ्या है ? १६ वेदों का संरक्षण ऋषियों ने कैसा किया ? १७ आप यह रक्षण कैसा कर रहे हैं ? १८ देवत्व प्राप्तिका अनुष्ठान, १९ जनता का हित करने का कर्तव्य। २० मानव की सार्थकता, २१ राष्ट्र निर्माण, २२ मानव की श्रेष्ठ शक्ति, २३ वेदोक्त विविध प्रकार के शासन। प्रत्येक का मूल्य ।=) डा. व्य. पृथक। आगे व्याख्यान छप रहे हैं।

ये ग्रंथ सब पुस्तक विक्रेताओं के पास मिलते हैं।

स्वाध्याय मण्डल, किल्ल-पारडी जि० (सूरत)

अमृतधारा

इसकी चन्द बूंदें लेने से हैजा, कै, दस्त, पेटदर्द, जी-मिचलाना, पेचिस, खट्टी-डकारें, बदहजमी, पेट फूलना, कफ, खाँसी, जुकाम आदि दूर होते हैं और लगाने से चोट, मोच, सूजन, फोड़ा-फुन्सी, बातदर्द, सिरदर्द, कानदर्द, दाँतदर्द, भिड़ मक्खी आदि के काटे के दर्द दूर करने में संसार की अनुपम महौषधि। हर जगह मिलता है।

कीमत बड़ी शीशी २।), छोटी शीशी ।।।)

रूप विलास कम्पनी, कानपुर

—मातावदल पंसारी अमीनाबाद,लखनऊ

बाबराम भारती द्वारा भगवानदीन आर्यभास्कर प्रेस, ५, मीराबाई मार्ग लखनऊ से मुद्रित तथा प्रकाशित।